ॐ अर्हं

जिनागम-ग्रन्थमाला ग्रन्थाङ्क—७

[परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्रीजोरावरमलजी महाराज की पुण्यस्मृति मे आयोजित]

पचम गणधर भगवत्सुधर्म-स्वामि-प्रणीत तृतीय अग

स्थानांगसूत्र

[मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद, विवेचन, परिशिष्ट युक्त]

सन्निधि ☐
उपप्रवर्त्तक शासनसेवी स्वामी श्रीव्रजलालजी महाराज

सयोजक तथा प्रधान सम्पादक ☐
युवाचार्य श्रीमिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर'

अनुवादक—विवेचक ☐
प हीरालाल शास्त्री

प्रकाशक ☐
श्री आगमप्रकाशन-समिति, ब्यावर, राजस्थान

☐ सम्पादकमण्डल
अनुयोगप्रवर्त्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
श्रीदेवेन्द्र मुनि शास्त्री
श्रीरतन मुनि
पण्डित श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल

☐ प्रबन्धसम्पादक
श्रीचन्द सुराणा 'सरस'

☐ सम्प्रेरक
मुनि श्रीविनयकुमार 'भीम'
श्रीमहेन्द्रमुनि 'दिनकर'

☐ अर्थसौजन्य
श्रीमान सेठ सुगनचन्दजी चोरडिया, मद्रास

☐ प्रकाशनतिथि
वीरनिर्वाणसवत् २५०८
वि स २०३८
ई सन् १९८१

☐ प्रकाशक
श्री आगमप्रकाशनसमिति
जैनस्थानक, पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
ब्यावर—३०५९०१

☐ मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर

☐ मूल्य ५०) रुपये

Published at the Holy Remembrance occasion
of
Rev Guru Sri Joravarmalji Maharaj

Fifth Ganadhara Sudharma Swami Compiled
Third Anga

THĀNĀNGA

[Original Text Hindi Version, Notes Annotations and Appendices etc]

Proximity
Up pravartaka Shasansevi Rev Swami Sri Brijlalji Maharaj

Convener & Chief Editor
Yuvacharya Sri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

Translator & Annotator
Pt Hiralal Shastri

Publishers
Sri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj)

☐ **Board of Editors**
Anuyoga-pravartaka Munisri Kanhaiyalal 'Kamal'
Sri Devendra Muni Shastri
Sri Ratan Muni
Pt Shobhachandra Bharill

☐ **Managing Editor**
Srichand Surana 'Saras'

☐ **Promotor**
Munisri Vinaykumar 'Bhima'
Sri Mahendramuni 'Dinkar'

☐ **Financial Assistance**
Seth Sri Suganchandji Choradia, Madras

☐ **Date of Publication**
Vir-nirvana Samvat 2508
Vikram Samvat 2038, Dec 1981

☐ **Publishers**
Sri Agam Prakashana Samiti
Jain Sthanak, Pipaliya Bazar, Beawar (Raj)
Beawar 305901

☐ **Printer**
Satishchandra Shukla
Vedic Yantralaya, Ajmer

☐ **Price** Rs 50/-

समर्पण

जिनका पावन स्मरण आज भी जिनशासन की सेवा की प्रशस्त प्रेरणा का स्रोत है,

जिन्होंने जिनागम के अध्ययन-अध्यापन के और प्रचार-प्रसार के लिए प्रबल पुरुषार्थ किया,

स्वाध्याय-तप की विस्मृतप्राय प्रथा को सजीव स्वरूप प्रदान करने के लिए 'स्वाध्यायि-संघ' की संस्थापना करके जैन समाज को चिर-ऋणी बनाया,

जो वात्सल्य के वारिधि, करुणा की मूर्त्ति और विद्वत्ता की विभूति से विभूषित थे,

अनेक क्रियाशील स्मारक आज भी जिनके विराट व्यक्तित्व को उजागर कर रहे हैं, उन

स्वर्गासीन महास्थविर प्रवर्त्तक
मुनि श्री पन्नालालजी म० के
कर-कमलों में सादर समर्पित

□ मधुकर मुनि

स्थानाङ्ग के प्रकाशन में विशिष्ट अर्थसहयोगी—

श्री सुगनचन्दजी चोरडिया : संक्षिप्त परिचय

श्री 'बालाराम पृथ्वीराज की पढी अहमदनगर महाराष्ट्र म बडी शानदार और प्रसिद्ध थी। दूर दूर पेढी की महिमा फैली हुई थी। साख व धाक थी।

इस पढी के मालिक सेठ श्री बालारामजी मूलत राजस्थान के अतगत मरुधरा के सुप्रसिद्ध गाव नाखा चान्दावतों के निवासी थे।

श्री बालारामजी के भाई का नाम छोटमलजा था। छोटमलजी के चार पुत्र हुए—

१ लिखमीचन्दजी
२ हस्तीमलजी
३ चान्दमलजी
४ सूरजमलजी

श्रीयुत सेठ सुगनचन्दजी श्री लिखमीचन्दजी के सुपुत्र है। आपकी दो शादियाँ हुई थी। पहली पत्नी स आपके तीन पुत्र हुए—

१ दीपचन्दजी २ माँगीलालजी ३ पारसमलजी

दूसरी पत्नी से आप तीन पुत्र एवम सात पुत्रियो के पिता बने। आपके य तीन पुत्र है—

१ किशनचन्दजी २ रणजीतमलजी ३ महेन्द्रकुमारजी

श्री सुगनचन्दजी पहले अपनी पुरानी पेढी पर अहमदनगर म ही अपना व्यवसाय करते थे। बाद म आप व्यवसाय के लिय रायचूर (कर्नाटक) चले गए और वहाँ से समय पाकर आप उलुन्दर पठ पहुच गए। उलुन्दर पठ पहुँच कर आपन अपना अच्छा कारोबार जमाया।

आपके व्यवसाय के दो प्रमुख कार्यक्षेत्र हैं—फाइनेन्स और बैंकिंग। आपने अपने व्यवसाय म अच्छी प्रगति की। आज आपके पास अपनी अच्छी सम्पन्नता है। अभी-अभी आपने मद्रास को भी अपना व्यावसायिक क्षेत्र बनाया है। मद्रास के कारोबार का सचालन आपके सुपुत्र श्री किशनचन्दजी कर रहे है।

श्री सुगनचन्दजी एक धार्मिक प्रकृति के सज्जन पुरुष है। सत मुनिराज-महासतियो की सेवा करने की आपकी अच्छी अभिरुचि है।

मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन के आप सरक्षक सदस्य हैं। प्रस्तुत प्रकाशन मे आपने एक अच्छी अर्थ-राशि का सहयोग दिया है। एतदर्थ संस्था आपकी आभारी है।

आशा है, समय समय पर इसी प्रकार अर्थ-सहयोग देकर आप संस्था को प्रगतिशील बनाते रहेंगे।

□□

श्री आगम प्रकाशन समिति ब्यावर

(कार्यकारिणी समिति)

प्रकाशकीय

आचाराङ्ग उपासकदशांग, ज्ञाताधर्मकथांग, अन्तकृद्दशांग और अनुत्तरौपपातिकदशांग के प्रकाशन के पश्चात स्थानागसूत्र पाठकों के कर-कमलों में समर्पित किया जा रहा है। आगम प्रकाशन का यह कार्य जिस वेग से अग्रसर हो रहा है, आशा है उससे पाठक अवश्य सन्तुष्ट होंगे। हमारी हार्दिक अभिलाषा तो यह है कि प्रस्तुत प्रकाशन को और अधिक त्वरा प्रदान की जाए किन्तु आगमों के प्रकाशन का कार्य जोखिम का कार्य है। अनूदित आगमों को सावधानी के साथ निरीक्षण परीक्षण करने के पश्चात् ही प्रेस में दिया जाता है। इस कारण प्राय कुछ अधिक समय लग जाना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त विद्युत्सकट के कारण भी मुद्रण कार्य में बाधा पड जाती है। तथापि प्रयास यही है कि यथासभव शीघ्र इस महान और महत्त्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न किया जा सके।

प्रस्तुत आगम का अनुवाद पण्डित हीरालालजी शास्त्री ने किया है। अत्यन्त दुःख है कि शास्त्रीजी इसके आदि-अन्त के भाग को तैयार करने से पूर्व ही स्वर्गवासी हो गए। उनके निधन से समाज के एक उच्चकोटि के सिद्धान्तवेत्ता की महती क्षति तो हुई ही, समिति का एक प्रमुख सहयोगी भी कम हो गया। इस प्रकार समिति दीर्घदृष्टि और लगनशील कार्यवाहक अध्यक्ष सेठ पुखराजजी शीशोदिया एव शास्त्रीजी इन दो सहयोगियों से वचित हो गई है।

शास्त्रीजी द्वारा अनूदित समवायाग प्रेस में दिया जा रहा है। आगरा में सूत्रकृताग के प्रथम श्रुतस्कन्ध का मुद्रण चालू है। द्वितीय श्रुतस्कन्ध अजमेर में मुद्रित कराने की योजना है। भगवतीसूत्र का प्रथम भाग मुद्रण की स्थिति में आ रहा है। अन्य अनेक आगमों का कार्य भी चल रहा है।

स्थानाग के मूल पाठ एव अनुवादादि में आगमोदय समिति की प्रति आचार्य श्री अमोलकऋषिजी म तथा युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ (मुनि श्रीनथमलजी म) द्वारा सम्पादित 'ठाण' की सहायता ली गई है। अतएव अनुवादक की ओर से और हम अपनी ओर से भी इन सब के प्रति आभार व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

युवाचार्य पण्डितप्रवर श्रीमधुकर मुनिजी तथा पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल ने अनुवाद का निरीक्षण-सशोधन किया है। समिति के अर्थदाताओं तथा अन्य पदाधिकारियों से प्रत्यक्ष परोक्ष सहयोग प्राप्त हुआ है। प्रस्तावनालेखक विद्वद्वर्य श्रीदेवेन्द्र मुनि जी म सा का सहयोग अमूल्य है। किन शब्दों में उनका आभार व्यक्त किया जाय! श्री सुजानमलजी सेठिया तथा वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्धक श्री सतीशचन्द्रजी शुक्ल से भी मुद्रण कार्य में स्नेहपूर्ण सहयोग मिला है। इन सब के हम आभारी हैं।

समिति के सभी प्रकार के सदस्यों से तथा आगमप्रेमी पाठकों से नम्र निवेदन है कि समिति द्वारा प्रकाशित आगमों का अधिक से अधिक प्रचार प्रसार करने में हमें सहयोग प्रदान करें, जिससे समिति के उद्देश्य की अधिक पूर्ति हो सके।

समिति प्रकाशित आगमों से तनिक भी आर्थिक लाभ नहीं उठाना चाहती, बल्कि लागत मूल्य से भी कम ही मूल्य रखती है। किन्तु कागज तथा मुद्रण व्यय अत्यधिक बढ गया है और बढता ही जा रहा है। उसे देखते हुए आशा है जो मूल्य रखा जा रहा है वह अधिक प्रतीत नहीं होगा।

रतनचन्द्र मोदी	**जतनराज महता**	**चांदमल विनायकिया**
कार्यवाहक अध्यक्ष	महामत्री	मत्री

आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

आमुख

जैनधर्म, दर्शन व संस्कृति का मूल आधार वीतराग सर्वज्ञ की वाणी है। सर्वज्ञ अर्थात् आत्मद्रष्टा। सम्पूर्ण रूप से आत्मदर्शन करने वाले ही विश्व का समग्र दर्शन कर सकते हैं। जो समग्र को जानते हैं वे ही तत्त्वज्ञान का यथार्थ निरूपण कर सकते हैं। परमहितंकर निःश्रेयस का यथार्थ उपदेश कर सकते हैं।

सर्वज्ञो द्वारा कथित तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान तथा आचार व्यवहार का सम्यक् परिबोध आगम, शास्त्र या सूत्र के नाम से प्रसिद्ध है।

तीर्थंकरों की वाणी मुक्त सुमनों की वृष्टि के समान होती है, महान् प्रज्ञावान गणधर उसे सूत्र में ग्रथित करके व्यवस्थित—'आगम' का रूप दे देते हैं।

आज जिसे हम 'आगम' नाम से अभिहित करते हैं, प्राचीन समय में वे 'गणिपिटक' कहलाते थे। 'गणिपिटक' में समग्र द्वादशांगी का समावेश हो जाता है। पश्चाद्वर्ती काल में इसके अंग, उपांग, मूल, छेद आदि अनेक भेद किये गये।

जब लिखने की परम्परा नहीं थी, तब आगमों को स्मृति के आधार पर या गुरु-परम्परा से सुरक्षित रखा जाता था। भगवान् महावीर के बाद लगभग एक हजार वर्ष तक 'आगम' स्मृतिपरम्परा पर ही चले आये थे। स्मृतिदुर्बलता, गुरुपरम्परा का विच्छेद तथा अन्य अनेक कारणों से धीरे-धीरे आगमज्ञान भी लुप्त होता गया। महासरोवर का जल सूखता-सूखता गोष्पद मात्र ही रह गया। तब देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने श्रमणों का सम्मेलन बुलाकर, स्मृति-दोष से लुप्त होते आगमज्ञान को, जिनवाणी को सुरक्षित रखने के पवित्र उद्देश्य से लिपिबद्ध करने का ऐतिहासिक प्रयास किया और जिनवाणी को पुस्तकारूढ करके आने वाली पीढ़ी पर अवर्णनीय उपकार किया। यह जैनधर्म, दर्शन एवं संस्कृति की धारा को प्रवहमान रखने का अद्भुत उपक्रम था। आगमों का यह प्रथम सम्पादन वीर निर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् सम्पन्न हुआ।

पुस्तकारूढ होने के पश्चात् जैन आगमों का स्वरूप मूल रूप में तो सुरक्षित हो गया, किन्तु कालदोष, बाहरी आक्रमण, आन्तरिक मतभेद, विग्रह, स्मृति-दुर्बलता एवं प्रमाद आदि कारणों से आगमज्ञान की शुद्ध धारा, अर्थबोध की सम्यक् गुरुपरम्परा धीरे-धीरे क्षीण होने से नहीं रुकी। आगमों के अनेक महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ, पद तथा गूढ अर्थ छिन्न विच्छिन्न होते चले गए। जो आगम लिखे जाते थे, वे भी पूर्ण शुद्ध नहीं होते थे। उनका सम्यक् अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही रहे। अन्य भी अनेक कारणों से आगमज्ञान की धारा संकुचित होती गयी।

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में लोंकाशाह ने एक क्रान्तिकारी प्रयत्न किया। आगमों के शुद्ध और यथार्थ अर्थ ज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुनः चालू हुआ। किन्तु कुछ काल बाद पुनः उसमें भी व्यवधान आ गए। साम्प्रदायिक द्वेष, सैद्धान्तिक विग्रह तथा लिपिकारों की भाषाविषयक अल्पज्ञता आगमों की उपलब्धि तथा उनके सम्यक् अर्थबोध में बहुत बड़ा विघ्न बन गए।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में जब आगम मुद्रण की परम्परा चली तो पाठकों को कुछ सुविधा हुई। आगमों की प्राचीन टीकाएँ, चूर्णि व नियुक्ति जब प्रकाशित हुई तथा उनके आधार पर आगमों का सरल व स्पष्ट भावबोध मुद्रित होकर पाठकों को सुलभ हुआ तो आगमज्ञान का पठन पाठन स्वभावतः बढ़ा, सैकड़ों जिज्ञासुओं में आगम स्वाध्याय की प्रवृत्ति जगी व जैनेतर देशी विदेशी विद्वान् भी आगमों का अनुशीलन करने लगे।

आगमों के प्रकाशन सम्पादन-मुद्रण के कार्य में जिन विद्वानों तथा मनीषी श्रमणों ने ऐतिहासिक कार्य किया, पर्याप्त सामग्री के अभाव में आज उन सबका नामोल्लेख कर पाना कठिन है। फिर भी मैं स्थानकवासी परम्परा के कुछ महान मुनियों का नाम ग्रहण अवश्य ही करूंगा।

पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज स्थानकवासी परम्परा के वे महान साहसी व दृढसंकल्प बली मुनि थे, जिन्होंने अल्प साधना के बल पर भी पूरे बत्तीस सूत्रों का हिन्दी में अनूदित करके जन-जन को सुलभ बना दिया। पूरी बत्तीसी का सम्पादन प्रकाशन एक ऐतिहासिक कार्य था जिससे सम्पूर्ण स्थानकवासी व तेरापंथी समाज उपकृत हुआ।

गुरुदेव पूज्य स्वामी श्रीजोरावरमलजी महाराज का एक संकल्प—

मैं जब गुरुदेव स्व. स्वामी श्री जोरावरमलजी महाराज के तत्त्वावधान में आगमों का अध्ययन कर रहा था तब आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित कुछ आगम उपलब्ध थे। उन्हीं के आधार पर गुरुदेव मुझे अध्ययन कराते थे। उनको देखकर गुरुदेव को लगता था कि यह संस्करण यद्यपि काफी श्रमसाध्य है एवं अब तक के उपलब्ध संस्करणों में काफी शुद्ध भी हैं, फिर भी अनेक स्थल अस्पष्ट हैं। मूल पाठ में एवं उसकी वृत्ति में कहीं-कहीं अंतर भी है, कहीं वृत्ति बहुत संक्षिप्त है।

गुरुदेव स्वामी श्री जोरावरमलजी महाराज स्वयं जैन सूत्रों के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनकी मेधा बड़ी व्युत्पन्न व तर्कणा प्रधान थी। आगम साहित्य की यह स्थिति देखकर उन्हें बहुत पीड़ा होती और कई बार उन्होंने व्यक्त भी किया कि आगमों का शुद्ध, सुन्दर व सर्वोपयोगी प्रकाशन हो तो बहुत लोगों का कल्याण होगा, कुछ परिस्थितियों के कारण उनका संकल्प, मात्र भावना तक सीमित रहा।

इसी बीच आचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज, जैनधर्म दिवाकर आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज, पूज्य श्री घासीलाल जी महाराज आदि विद्वान मुनियों ने आगमों की सुन्दर व्याख्याएं व टीकाएं लिखकर अथवा अपने तत्त्वावधान में लिखवाकर इस कमी को पूरा किया है।

वर्तमान में तेरापंथ सम्प्रदाय के आचार्य श्री तुलसी ने भी यह भगीरथ प्रयत्न प्रारम्भ किया है और अच्छे स्तर से उनका आगमकार्य चल रहा है। मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल' आगमों की वक्तव्यता को अनुयोगों में वर्गीकृत करने का मौलिक एवं महत्त्वपूर्ण प्रयास कर रहे हैं।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा के विद्वान श्रमण स्व. मुनिश्री पुण्यविजयजी ने आगम-सम्पादन की दिशा में बहुत ही व्यवस्थित व उत्तमकोटि का कार्य प्रारम्भ किया था। उनके स्वर्गवास के पश्चात् मुनिश्री जम्बूविजयजी के तत्त्वावधान में यह सुन्दर प्रयत्न चल रहा है।

उक्त सभी कार्यों का विहंगम अवलोकन करने के बाद मेरे मन में एक संकल्प उठा। आज कहीं तो आगमों के मूल मात्र का प्रकाशन हो रहा है और कहीं आगमों की विशाल व्याख्याएं की जा रही हैं। एक पाठक के लिए दुर्बोध है तो दूसरी जटिल। मध्यम मार्ग का अनुसरण कर आगम-वाणी का भावोद्घाटन करने वाला ऐसा प्रयत्न होना चाहिए जो सुबोध भी हो, सरल भी हो, संक्षिप्त हो, पर सारपूर्ण व सुगम हो।

गुरुदेव ऐसा ही चाहते थे। उसी भावना को लक्ष्य में रखकर मैंने ४-५ वर्ष पूर्व इस विषय में चिन्तन प्रारम्भ किया। सुदीर्घ चिन्तन के पश्चात वि० सं० २०३६ वैशाख शुक्ला १० महावीर कैवल्यदिवस को दृढ निर्णय करके आगमबत्तीसी का सम्पादन-विवेचन कार्य प्रारम्भ कर दिया और अब पाठकों के हाथों में आगम ग्रन्थ क्रमशः पहुंच रहे हैं, इसकी मुझे अत्यधिक प्रसन्नता है।

आगम-सम्पादन का यह ऐतिहासिक कार्य पूज्य गुरुदेव की पुण्यस्मृति में आयोजित किया गया है। आज उनका पुण्यस्मरण मेरे मन को उल्लसित कर रहा है। साथ ही मेरे वन्दनीय गुरु भ्राता पूज्य स्वामी श्रीहजारीमलजी महाराज की प्रेरणाएं—उनकी आगमभक्ति तथा आगम सम्बन्धी तलस्पर्शी ज्ञान, प्राचीन धारणाएं मेरा सम्बल बनी हैं अतः मैं उन दोनों स्वर्गीय आत्माओं की पुण्यस्मृति में विभोर हूं।

शासनसेवी स्वामीजी श्री ब्रजलालजी महाराज का मार्गदर्शन, उत्साह-संवर्द्धन, सेवाभावी शिष्य मुनि विनयकुमार व महेन्द्रमुनि का साहचर्य-बल, सेवा-सहयोग तथा महासती श्री कानकुंवरजी, महासती श्री झणकारकुंवरजी, परमविदुषी साध्वी श्री उमरावकुंवरजी 'अर्चना'—की विनम्र प्रेरणाएँ मुझे सदा प्रोत्साहित तथा कार्यनिष्ठ बनाये रखने में सहायक रही हैं।

मुझे दृढ़विश्वास है कि आगम-वाणी के सम्पादन का यह सुदीर्घ प्रयत्न-साध्य कार्य सम्पादन करने में मुझे सभी सहयोगियों, श्रावकों व विद्वानों का पूर्ण सहकार मिलता रहेगा और मैं अपने लक्ष्य तक पहुंचने में गतिशील बना रहूंगा।

इसी आशा के साथ,

☐ मुनि मिश्रीमल 'मधुकर'

पुनश्च —

मेरा जैसा विश्वास था उसी रूप में आगमसम्पादन का काम सम्पन्न हुआ है और होता जा रहा है।

१ श्रीयुत श्रीचन्दजी सुराणा 'सरस' ने आचारांग सूत्र का सम्पादन किया।

२ श्रीयुत डा० छगनलाल जी शास्त्री ने उपासकदशा सूत्र का सम्पादन किया।

३ श्रीयुत प० शोभाचन्द्र जी सा भारिल्ल ने ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र का सम्पादन किया।

४ विदुषी साध्वीजी श्री दिव्यप्रभाजी ने अन्तकृद्दशासूत्र का सम्पादन किया।

५ विदुषी साध्वीजी मुक्तिप्रभाजी ने अनुत्तरौपपातिकसूत्र का सम्पादन किया।

६ स्व० प० श्री हीरालालजी शास्त्री ने स्थानांगसूत्र का सम्पादन किया।

सम्पादन के साथ इन सभी आगमग्रन्थों का प्रकाशन भी हो गया है। उक्त सभी विद्वानों का मैं आभार मानता हूं।

इन सभी विद्वानों के सतत सहयोग से ही यह आगमसम्पादन कार्य सुचारु रूप से प्रगति के पथ पर अग्रसर होता जा रहा है।

श्रीयुत प० र० श्री देवेन्द्रमुनिजी म. ने आगमसूत्रों पर प्रस्तावना लिखने का जो महत्त्वपूर्ण बीड़ा उठाया है, इसके लिए उन्हें शत शत साधुवाद।

यद्यपि इस आगममाला के प्रधान सम्पादक के रूप में मेरा नाम रखा गया है परन्तु मैं तो केवल इसका संयोजक मात्र हूं। श्रीयुत श्रद्धेय भारिल्लजी ही सही रूप में इस आगममाला के प्रधान सम्पादक हैं।

भारिल्लजी का आभार प्रकट करने के लिए मेरे पास शब्दावली नहीं है।

इस आगमसम्पादन में जैसी सफलता प्रारम्भ में मिली है वैसी ही भविष्य में भी मिलती रहेगी, इसी आशा के साथ।

दिनांक १३ अक्टूबर १९८१
नोखा चान्दावतों (राजस्थान)

☐ (युवाचार्य) मधुकरमुनि

प्रस्तावना

स्थानाग सूत्र • एक समीक्षात्मक अध्ययन

भारतीय धर्म दर्शन साहित्य और संस्कृति रूपी भव्य भवन के वेद, त्रिपिटक और आगम ये तीन मूल आधार स्तम्भ हैं, जिन पर भारतीय-चिन्तन आधृत है। भारतीय धर्म दर्शन साहित्य और संस्कृति की अन्तरात्मा को समझने के लिये इन तीनों का परिज्ञान आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

वेद—

वेद भारतीय तत्त्वद्रष्टा ऋषियों की वाणी का अपूर्व व अनूठा संग्रह है। समय समय पर प्राकृतिक सौन्दर्य-सुषमा को निहार कर या अद्भुत, अलौकिक रहस्यों को देखकर जिज्ञासु ऋषियों की हृत्तन्त्री के सुकुमार तार झनझना उठे और वह अन्तर्हृदय की वाणी वेद के रूप में विश्रुत हुई। ब्राह्मण दार्शनिक मीमांसक वेदों को सनातन और अपौरुषेय मानते हैं। नैयायिक और वैशेषिक प्रभृति दार्शनिक उसे ईश्वरप्रणीत मानते हैं। उनका यह अभिमत है कि वेद ईश्वर की वाणी है। किन्तु आधुनिक इतिहासकार वेदों की रचना का समय अन्तिम रूप से निश्चित नहीं कर सके हैं। विभिन्न विज्ञों के विविध मत हैं पर यह निश्चित है कि वेद भारत की प्राचीन साहित्य सम्पदा है। प्रारम्भ में ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद ये तीन ही वेद थे। अतः उन्हें वेदत्रयी कहा गया है। उसके पश्चात् अथर्ववेद को मिलाकर चार वेद बन गये। ब्राह्मण ग्रन्थ व आरण्यक ग्रन्थों में वेदों की विशेष व्याख्या की गयी है। उस व्याख्या में कर्मकाण्ड की प्रमुखता है। उपनिषद वेदों का अन्तिम भाग होने से वह वेदान्त कहलाता है। उसमें ज्ञानकाण्ड की प्रधानता है। वेदों को प्रमाणभूत मानकर ही स्मृतिशास्त्र और सूत्र-साहित्य का निर्माण किया गया। ब्राह्मण परम्परा का जितना भी साहित्य निर्मित हुआ है, उस का मूल स्रोत वेद है। भाषा की दृष्टि से वैदिक विज्ञों ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम संस्कृत को बनाया है और उस भाषा को अधिक से अधिक समृद्ध करने का प्रयास किया है।

त्रिपिटक

त्रिपिटक तथागत बुद्ध के प्रवचनों का सुव्यवस्थित संकलन-आकलन है, जिस में आध्यात्मिक धार्मिक, सामाजिक और नैतिक उपदेश भरे पड़े हैं। बौद्धपरम्परा का सम्पूर्ण आचार विचार और विश्वास का केन्द्र त्रिपिटक साहित्य है। पिटक तीन हैं, सुत्तपिटक, विनयपिटक, अभिधम्म पिटक। सुत्तपिटक में बौद्धसिद्धान्तों का विश्लेषण है, विनयपिटक में भिक्षुओं की परिचर्या और अनुशासन सम्बन्धी चिन्तन है, और अभिधम्मपिटक में तत्त्वों का दार्शनिक विवेचन है। आधुनिक इतिहास वेत्ताओं ने त्रिपिटक का रचनाकाल भी निर्धारित किया है। बौद्ध-साहित्य अत्यधिक विशाल है। उस साहित्य ने भारत को ही नहीं अपितु चीन, जापान, लंका, बर्मा, कम्बोडिया, थाईदेश, आदि अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज को भी प्रभावित किया है। वैदिक-विज्ञों ने विज्ञों की भाषा संस्कृत अपनाई तो बुद्ध ने उस युग की जनभाषा पाली अपनाई। पाली भाषा को अपनाने से बुद्ध जनसाधारण के अत्यधिक लोकप्रिय हुये।

जैन आगम

'जिन' की वाणी में जिसकी पूर्ण निष्ठा है, वह जैन है। जो राग द्वेष आदि आध्यात्मिक शत्रुओं के विजेता हैं वे जिन हैं। श्रमण भगवान महावीर जिन भी थे, तीर्थंकर भी थे। वे यथार्थज्ञाता, वीतराग, आप्त

पुरुष थे। वे अलौकिक एवं अनुपम दयालु थे। उनके हृदय के कण-कण में, मन के अणु-अणु में करुणा का सागर ठाठें मार रहा था। उन्होंने संसार के सभी जीवों की रक्षा रूप दया के लिये पावन प्रवचन किए। उन प्रवचनों को तीर्थंकरों के साक्षात् शिष्य श्रुतकेवली गणधरों ने सूत्ररूप में आबद्ध किया। वह—गणिपिटक आगम है।[1] आचार्य भद्रबाहु के शब्दों में यों कह सकते हैं, तप, नियम ज्ञान रूप वृक्ष पर आरूढ होकर अनन्त ज्ञानी केवली भगवान् भव्य जनों के विबोध के लिये ज्ञान कुसुम की वृष्टि करते हैं। गणधर अपने बुद्धि-पट में उन कुसुमों को झेल कर प्रवचनमाला गूँथते हैं। वह आगम है।[2] जैन धर्म का सम्पूर्ण विश्वास, विचार और आचार का केन्द्र आगम है। आगम ज्ञान विज्ञान का, धर्म और दर्शन का, नीति और अध्यात्मचिन्तन का अपूर्व खजाना है। वह अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य के रूप में विभक्त है। नन्दीसूत्र आदि में उसके सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा है।

अपेक्षा दृष्टि से जैन आगम पौरुषेय भी है और अपौरुषेय भी। तीर्थंकर व गणधर आदि व्यक्तिविशेष के द्वारा रचित होने से वे पौरुषेय हैं। और पारमार्थिक दृष्टि से चिन्तन किया जाय तो सत्यतथ्य एक है। विभिन्न देश काल व व्यक्ति की दृष्टि से उस सत्य तथ्य का आविर्भाव विभिन्न रूपों में होता है। उन सभी आविर्भावों में एक ही चिरन्तन सत्य अनुस्यूत है। जितने भी अतीत काल में तीर्थंकर हुए हैं, उन्होंने आचार की दृष्टि से अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह सामायिक, समभाव विश्ववात्सल्य और विश्वमैत्री का पावन सन्देश दिया है। विचार की दृष्टि से स्याद्वाद, अनेकान्तवाद या विभज्यवाद का उपदेश दिया। इस प्रकार अर्थ की दृष्टि से जैन आगम अनादि अनन्त है। समवायाङ्ग में यह स्पष्ट कहा है—द्वादशांग गणिपिटक कभी नहीं था, ऐसा नहीं है यह भी नहीं है कि कभी नहीं है और कभी नहीं होगा, यह भी नहीं है। वह था, है, और होगा। वह ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है अवस्थित है और नित्य है।[3] आचार्य संघदास गणि ने बृहत्कल्पभाष्य में लिखा है कि तीर्थंकरों के केवलज्ञान में किसी भी प्रकार का भेद नहीं होता। जैसा केवलज्ञान भगवान् ऋषभदेव का था, वैसा ही केवलज्ञान श्रमण-भगवान् महावीर का भी था। इसलिए उनके उपदेशों में किसी भी प्रकार का भेद नहीं होता।[4] आचारांग में भी कहा गया है कि जो अरिहंत हो गये हैं, जो अभी वर्तमान में हैं और जो भविष्य में होंगे, उन सभी का एक ही उपदेश है कि किसी भी प्राण भूत, जीव और सत्त्व की हत्या मत करो। उनके ऊपर अपनी सत्ता मत जमाओ। उन्हें गुलाम मत बनाओ, उन्हें कष्ट मत दो। यही धर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है, और विवेकी पुरुषों ने बताया है।[5] इस प्रकार जैन आगमों में पौरुषेयता और अपौरुषेयता का सुन्दर समन्वय हुआ है।[6]

---

१ यद् भगवद्भिः सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिः परमर्षिभिरर्हद्भिस्तत्स्वाभाव्यात् परमशुभस्य च प्रवचनप्रतिष्ठापनफलस्य तीर्थकरनामकर्मणोऽनुभावादुक्तं, भगवच्छिष्यैरतिशयवद्भिस्तदतिशयवाग्बुद्धिसम्पन्नैर्गणधरैर्दृब्धं तदङ्गप्रविष्टम्।

—तत्त्वार्थ स्वोपज्ञ भाष्य १।२०

२ तवनियमनाणरुक्खं आरूढो केवली अमियनाणी।
तो मुयइ नाणवुट्ठि भवियजणविबोहट्ठाए॥
तं बुद्धिमएण पडेण गणहरा गिण्हिउं निरवसेसं। —आवश्यक नियुक्ति, गा ८९-९०

३ क—समवायांग-द्वादशांग परिचय
ख—नन्दीसूत्र, सूत्र ५७

४ बृहत्कल्पभाष्य २०२—२०३

५ (क) आचारांग अ ४ सूत्र १२६
(ख) सूत्रकृतांग २।१।१५, २।२।४१

६ अन्ययोगव्यच्छेदिका ५ आ हेमचन्द्र

यहा पर यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि तीर्थंकर अर्थ रूप म उपदेश प्रदान करते हैं, व अर्थ के प्रणेता है। उस अर्थ को सूत्रबद्ध करने वाले गणधर[७] या स्थविर हैं। नन्दीसूत्र आदि म आगमो के प्रणेता तीर्थंकर कहे हैं।[८] जैन आगमो का प्रामाण्य गणधरकृत होने से ही नही, अपितु अर्थ के प्रणेता तीर्थंकर की वीतरागता और सर्वार्थसाक्षात्कारित्व के कारण है। गणधर केवल द्वादशांगी की रचना करते है। अगबाह्य आगम की रचना करने वाले स्थविर है।[९] अगबाह्य आगम का प्रामाण्य स्वतन्त्र भाव से नही, अपितु गणधरप्रणीत आगम के साथ अविसवाद होने से है।

आगम की सुरक्षा में बाधाए

वैदिक विज्ञो ने वेदो को सुरक्षित रखने का प्रबल प्रयास किया है वह अपूर्व है अनूठा है। जिसके फलस्वरूप ही आज वेद पूर्ण रूप म प्राप्त हो रहे है। आज भी शताधिक ऐसे ब्राह्मण वेदपाठी है, जो प्रारम्भ से प्रान्त तक वेदो का शुद्ध-पाठ कर सकते है। उन्हें वेद पुस्तक की भी आवश्यकता नहीं होती। जिस प्रकार ब्राह्मण पण्डितो ने वेदो की सुरक्षा की उस तरह आगम और त्रिपिटको की सुरक्षा जैन और बौद्ध विज्ञ नहीं कर सके। जिसके अनेक कारण है। उसमे मुख्य कारण यह है कि पिता की ओर से पुत्र को वेद विरासत के रूप म मिलते रहे हैं। पिता अपने पुत्र को बाल्यकाल से ही वेदो का पढाता था। उसके शुद्ध उच्चारण का ध्यान रखता था। शब्दो म कही भी परिवर्तन न हो, इस का पूर्ण लक्ष्य था। जिससे शब्द परम्परा की दृष्टि से वेद पूर्ण रूप से सुरक्षित रहे। किन्तु अर्थ की उपेक्षा होने से वेदो की अर्थ परम्परा मे एकरूपता नही रह पाई, वेदो की परम्परा वशपरम्परा की दृष्टि से अबाध गति से चल रही थी। वेदो के अध्ययन के लिये ऐसे अनेक विद्याकेन्द्र थे जहाँ पर केवल वेद ही सिखाये जाते थे। वेदो के अध्ययन और अध्यापन का अधिकारी केवल ब्राह्मण वर्ग था। ब्राह्मण के लिये यह आवश्यक ही नही अपितु अनिवार्य था कि वह जीवन के प्रारम्भ म वेदो का गहराई से अध्ययन करे। वेदो का बिना अध्ययन किये ब्राह्मण वर्ग का समाज मे कोई भी स्थान नही था। वेदाध्ययन ही उस के लिये सर्वस्व था। अनेक प्रकार के क्रियाकाण्डो म वैदिक सूक्तो का उपयोग होता था। वेदो को लिखने और लिखाने म भी किसी भी प्रकार की बाधा नही थी। ऐसे अनेक कारण थे, जिनसे वेद सुरक्षित रह सके, किन्तु जैन आगम पिता की धरोहर के रूप मे पुत्र को कभी नही मिले। दीक्षा ग्रहण करने के बाद गुरु अपने शिष्यो को आगम पढाता था। ब्राह्मण पण्डितो को अपना सुशिक्षित पुत्र मिलना कठिन नहीं था। जबकि जैन श्रमणो को सुयोग्य शिष्य मिलना उतना सरल नही था। श्रुतज्ञान की दृष्टि से शिष्य का मेधावी और जिज्ञासु होना आवश्यक था। उसके अभाव म मन्दबुद्धि व आलसी शिष्य यदि श्रमण होता तो वह भी श्रुत का अधिकारी था। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये चारो ही वर्ण वाले बिना किसी सकोच के जैन श्रमण बन सकते थे। जैन श्रमणो की आचार-सहिता का अध्ययन करें तो यह स्पष्ट है कि दिन और रात्रि के आठ प्रहरो के चार प्रहर स्वाध्याय के लिये आवश्यक माने गये, पर प्रत्येक श्रमण के लिये यह अनिवार्य नही था कि वह इतने समय तक आगमो का अध्ययन करे ही। यह भी अनिवार्य नहीं था, कि मोक्ष प्राप्त करने के लिये सभी आगमो का गहराई से अध्ययन आवश्यक ही है। मोक्ष प्राप्त करने के लिये जीवाजीव का परिज्ञान आवश्यक था। सामायिक आदि आवश्यक क्रियाओ से मोक्ष सुलभ था। इसलिये सभी श्रमण और

---

७ आवश्यक नियुक्ति १९२

८ नन्दीसूत्र ४०

९ (क) विशेषावश्यक भाष्य गा ५५०
   (ख) बृहत्कल्पभाष्य गा १४४
   (ग) तत्त्वार्थभाष्य १-२०
   (घ) सर्वार्थसिद्धि १।२०

श्रमणियाँ आगमों के अध्ययन की ओर इतने उत्सुक नहीं थे। जो विशिष्ट मेधावी व जिज्ञासु श्रमण-श्रमणियाँ थी, जिनके अन्तर्मन में ज्ञान और विज्ञान के प्रति रस था, जो आगमसाहित्य के तलछट तक पहुंचना चाहते थे, वे ही आगमों का गहराई से अध्ययन, चिन्तन, मनन और अनुशीलन करते थे। यही कारण है कि आगमसाहित्य में श्रमण और श्रमणियों के अध्ययन के तीन स्तर मिलते हैं। कितने ही श्रमण सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन करते थे।[10] कितने ही पूर्वों का अध्ययन करते थे।[11] और कितने ही द्वादश अंगों को पढ़ते थे।[12] इस प्रकार अध्ययन के क्रम में अन्तर था। शेष श्रमण-श्रमणियाँ आध्यात्मिक साधना में ही अपने आप को लगाये रखते थे। जैन श्रमणों के लिये जैनाचार का पालन करना सर्वस्व था। जब कि ब्राह्मणों के लिये वेदाध्ययन करना सर्वस्व था। वेदों का अध्ययन गृहस्थ जीवन के लिए भी उपयोगी था। जब कि जैन आगमों का अध्ययन केवल जैन श्रमणों के लिये उपयोगी था, और वह भी पूर्ण रूप से साधना के लिए नहीं। साधना की दृष्टि से चार अनुयोगों में चरण करणानुयोग ही विशेष रूप से आवश्यक था। शेष तीन अनुयोग उतने आवश्यक नहीं थे। इसलिये साधना करने वाले श्रमण-श्रमणियों की उधर उपेक्षा होना स्वाभाविक था। द्रव्यानुयोग आदि कठिन भी थे। मेधावी सन्त-सतियाँ ही उनका गहराई से अध्ययन करती थीं, शेष नहीं।

हम पूर्व ही बता चुके हैं कि तीर्थंकर भगवान अर्थ की प्ररूपणा करते हैं, सूत्र रूप में संकलन गणधर करते हैं। एतदर्थ ही आगमों में यत्र-तत्र 'तस्स णं अयमट्ठे पण्णत्ते' वाक्य का प्रयोग हुआ है। जिस तीर्थंकर के जितने गणधर होते हैं, वे सभी एक ही अर्थ को आधार बनाकर सूत्र की रचना करते हैं। कल्पसूत्र की स्थविरावली में श्रमण भगवान् महावीर के नौ गण और ग्यारह गणधर बताये हैं।[13] उपाध्याय विनयविजय जी ने गण का अर्थ एक वाचना ग्रहण करने वाला 'श्रमणसमुदाय' किया है।[14] और गण का दूसरा अर्थ स्वयं का शिष्य समुदाय भी है। कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र ने[15] यह स्पष्ट किया है कि प्रत्येक गण की सूत्रवाचना पृथक्-पृथक् थी। भगवान महावीर के ग्यारह गणधर और नौ गण थे। नौ गणधर श्रमण भगवान महावीर के सामने ही मोक्ष पधार चुके थे और भगवान् महावीर के परिनिर्वाण होते ही गणधर-इन्द्रभूति गौतम केवली बन चुके थे। सभी

---

१० (क) सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ—अंतगड ६, वर्ग अ० १५

(ख) अन्तगड ८ वर्ग अ० १

(ग) भगवतीसूत्र २।१।९

(घ) ज्ञाताधर्म अ० १२। ज्ञाता २।१

११ (क) चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ—अन्तगड ३ वर्ग अ० ९

(ख) अन्तगड ३ वर्ग, अ० १

(ग) भगवतीसूत्र ११-११-४३२। १७-२-६१७

१२ अन्तगड वर्ग-४, अ० १

१३ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स नवगणा इक्कारस गणहरा हुत्था। —कल्पसूत्र

१४ एक वाचनिको यतिसमुदायो गणः कल्पसूत्र —सुबोधिका वृत्ति

१५ एवं रचयतां तेषां सप्तानां गणधारिणाम्।
परस्परमजायन्त विभिन्ना सूत्रवाचना ॥
अकम्पिताचलभ्रात्रोः श्रीमेतार्यप्रभासयोः।
परस्परमजायन्त सदृशा एव वाचना ॥
श्रीवीरनाथस्य गणधरेष्वेकादशस्वपि।
द्वयोर्द्वयोर्वाचनया साम्यादासन् गणा नव ॥
—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र-पर्व १०, सर्ग ५, श्लोक १७३ से १७५

ने अपने-अपने गण सुधर्मा को समर्पित किये थे क्योंकि वे सभी गणधरों से दीर्घजीवी थे।[16] आज जो द्वादशांगी विद्यमान है वह गणधर सुधर्मा की रचना है।

कितने ही तार्किक आचार्यों का यह अभिमत है कि प्रत्येक गणधर की भाषा पृथक् थी। इसलिए द्वादशांगी भी पृथक् होनी चाहिये। सेनप्रश्न ग्रन्थ मे तो आचार्य ने[17] यह प्रश्न उठाया है कि भिन्न-भिन्न वाचना होने से गणधरों में साम्भोगिक सम्बन्ध था या नहीं? और उन की समाचारी में एकरूपता थी या नहीं? आचार्य ने स्वयं ही उत्तर दिया है कि वाचना भेद होने से सभव है समाचारी में भेद हो! और कथंचित साम्भोगिक सम्बन्ध हो। बहुत से आधुनिक चिन्तक भी इस बात को स्वीकार करते हैं। आगमतत्त्ववेत्ता मुनि जम्बूविजय जी ने[18] आवश्यकचूर्णि का आधार बनाकर इस तर्क का खण्डन किया है। उन्होंने लिखा है कि यदि पृथक्-पृथक् वाचनाओं के आधार पर द्वादशांगी पृथक् पृथक् थी तो श्वेताम्बर और दिगम्बर के प्राचीन ग्रन्थों में इस का उल्लेख होना चाहिये था। पर वह नहीं है। उदाहरण के रूप में एक कक्षा में पढने वाले विद्यार्थियों के एक ही प्रकार के पाठ्यग्रन्थ होते है। पढ़ाने की सुविधा की दृष्टि से एक ही विषय को पृथक्-पृथक् अध्यापक पढ़ाते है। पृथक्-पृथक् अध्यापकों के पढ़ाने से विषय कोई पृथक् नहीं हो जाता। वैसे ही पृथक्-पृथक् गणधरों के पढाने से सूत्ररचना भी पृथक् नहीं होती। आचार्य जिनदास गणि महत्तर ने[19] भी यह स्पष्ट लिखा है कि दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् सभी गणधर एकान्त स्थान मे जाकर सूत्र की रचना करते है। उन सभी के अक्षर, पद और व्यन्जन समान होते हैं। इस से भी यह स्पष्ट है कि सभी गणधरों की भाषा एक सदृश थी। उसमें पृथक्ता नहीं थी। पर जिस प्राकृत भाषा में सूत्र रचे गये थे, वह लोकभाषा थी। इसलिए उस में एकरूपता निरन्तर सुरक्षित नहीं रह सकती थी। प्राकृतभाषा की प्रकृति के अनुसार शब्दों के रूपों में संस्कृत के समान एकरूपता नहीं है। समवायाग[20] आदि में यह स्पष्ट कहा गया है कि भगवान महावीर ने अर्धमागधी भाषा में उपदेश दिया। पर अर्धमागधी भाषा भी उसी रूप में सुरक्षित नहीं रह सकी। आज जो जैन आगम हमारे सामने हैं उनकी भाषा महाराष्ट्रीय प्राकृत है। दिगम्बर परम्परा के आगम भी अर्धमागधी में न होकर शौरसेनी प्रधान है, आगमों के अनेक पाठान्तर भी प्राप्त होते है।[21]

जैन श्रमणों की आचारसंहिता प्रारम्भ से ही अत्यन्त कठिन रही है। अपरिग्रह उनका जीवनव्रत है। अपरिग्रह महाव्रत की सुरक्षा के लिये आगमों को लिपिबद्ध करना उन्होंने उचित नहीं समझा। लिपि का परिज्ञान भगवान ऋषभदेव के समय से ही चल रहा था।[22] प्रज्ञापना सूत्र में अठारह लिपियों का उल्लेख मिलता है।[23]

---

१६ सामिस्स जीवते णव कालगता, जो य काल करेति सो सुधम्मसामिस्स गणं देति, इन्दभूती सुधम्मो य सामिम्मि परिनिव्वुए परिनिव्वुता। —आवश्यकचूर्णि, प-३३९

१७ तीर्थकरगणभृतां मिथो भिन्नवाचनत्वेऽपि साम्भोगिकत्वं भवति न वा? तथा सामाचार्यादिकृतो भेदो भवति न वा? इति प्रश्ने उत्तरम्—गणभृतां परस्परं वाचनाभेदेन सामाचार्या अपि कियान् भेदः सम्भाव्यते, तद्भेदे च कथञ्चिद् साम्भोगिकत्वमपि सम्भाव्यते। —सेनप्रश्न, उल्लास २, प्रश्न ८१

१८ सूयगडंगसुत्त-प्रस्तावना पृष्ठ-२८-३०

१९ जदा य गणहरा सव्वे पव्वजिता ताहे किर एगनिसज्जाए एगारस अंगाणि चोद्दसहिं चोद्दस पुव्वाणि, एवं ता भगवता अत्थो कहिता, ताहे भगवंता एगपासे सुत्तं करे (रें) ति तं अक्खरेहिं पदेहिं वंजणेहिं समं, पच्छा सामी जस्स जत्तियो गणो तस्स तत्तियं अणुजाणति। आतीयं सुहम्मं करेति तस्स महल्लमाउयं, गत्तो तित्थं होहिति त्ति। —आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ-३३७

२० समवायांगसूत्र पृष्ठ-७

२१ देखिये—पुण्यविजयजी व जम्बूविजयजी द्वारा सम्पादित जैन आगम ग्रन्थमाला के टिप्पण।

२२ (क) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिवृत्ति (ख) कल्पसूत्र १९५

२३ प्रज्ञापनासूत्र, पद १ ग—त्रिषष्टि—१-२-९६३

उस म "पोत्थार ' शब्द व्यवहृत हुआ है। जिसका अर्थ "लिपिकार" है।[24] पुस्तक लेखन का भाय शिल्प कहा है। अर्धमागधी भाषा एव ब्राह्मी लिपि का प्रयोग करने वाले लेखक को भाषार्याय कहा है।[25] स्थानाङ्ग म गण्डी[26] कच्छवी, मुष्टि, सपुटफलक, सुपाटिका इन पाँच प्रकार की पुस्तको का उल्लेख है। दशवकालिक हारिभद्रीया वत्ति म[27] प्राचीन आचार्यों के मन्तव्यो का उल्लेख करते हुये इन पुस्तको का विवरण प्रस्तुत किया है। निशीथचूर्णि म इन का वणन है।[28] टीकाकार ने पुस्तक का अर्थ ताडपत्र, सम्पुट का सचय और कम का अर्थ मषि और लखनी किया है। जन साहित्य के अतिरिक्त बौद्ध-साहित्य म भी लखनकला का विवरण मिलता है।[29] वैदिक वाङ्मय म भी लेखनकला सम्बन्धी अनेक उद्धरण है। सम्राट सिकन्दर के सेनापति निआर्कस ने भारत यात्रा क अपने सस्मरणो म लिखा है कि भारतवासी लोग कागज-निर्माण करते थ।[30] साराश यह है—अतीत काल से ही भारत म लिखने की परम्परा थी। किन्तु जैन आगम लिखे नहीं जाते थे। आत्मार्थी श्रमणो न देखा—यदि हम लिखेंगे तो हमारा अपरिग्रह महाव्रत पूर्णरूप से सुरक्षित नही रह सकेगा, हम पुस्तको को कहाँ पर रखेंगे, आदि विविध दष्टियो म चिन्तन कर उसे असयम का कारण माना।[31] पर जब यह देखा गया कि काल की काली छाया से विक्षुब्ध अनेक श्रुतधर श्रमण स्वर्गवासी बन गये। श्रुत की धारा छिन्न भिन्न होन लगी। तब मूर्धन्य मनीषियो ने चिन्तन किया। यदि श्रुतसाहित्य नही लिखा गया तो एक दिन वह भी आ सकता है कि जब सम्पूर्ण श्रुत-साहित्य नष्ट हो जाए। अत उन्होने श्रुत साहित्य को लिखन का निर्णय लिया। जब श्रुत साहित्य को लिखन का निर्णय लिया गया तब तक बहुत सारा श्रुत विस्मत हो चुका था। पहले आचार्यों ने जिस श्रुत-लेखन को असयम का कारण माना था, उसे ही सयम का कारण मानकर पुस्तक को भी सयम का कारण माना।[32] यदि एसा नही मानत, तो रहा-सहा श्रुत भी नष्ट हो जाता। श्रुत-रक्षा के लिये अनेक अपवाद भी निर्मित किये गये। जन श्रमणो की सख्या ब्राह्मण-वैदिक और बौद्ध-भिक्षुओ की अपेक्षा कम थी। इस कारण म भी श्रुत साहित्य की सुरक्षा मे बाधा उपस्थित हुयी। इस तरह जन आगम साहित्य के विच्छिन्न होन के अनेक कारण रहे हैं।

बौद्धसाहित्य के इतिहास का पर्यवेक्षण करने पर यह स्पष्ट होता है कि तथागत बुद्ध के उपदेश को व्यवस्थित करने के लिये अनेक बार सगीतियाँ हुइ। उसी तरह भगवान् महावीर के पावन उपदेशो को पुन सुव्यवस्थित करने के लिये आगमो की वाचनाएँ हुइ। आर्य जम्बू के बाद दस बातो का विच्छेद हो गया था।[33]

---

२४ प्रज्ञापनासूत्र पद—१

२५ प्रज्ञापनासूत्र पद—१

२६ (क) स्थानागसूत्र, स्थान—५ (ख) बृहत्कल्पभाष्य ३। ३, ८, २२
(ग) आउटलाइन्स आफ पैलियोग्राफी, जनल आफ यूनिवर्सिटी आफ बाम्बे, जिल्द ६, भा ६ पृ ८७, एव आर कापडिया तथा ओझा, वही पृ ४—५६

२७ दशवैकालिक हारिभद्रीयावत्ति पत्र—२५

२८ निशीथ चूर्णि उ १२

२९ राइस डेविड्स बुद्धिस्ट इण्डिया, प १०८

३० भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ २

३१ क—दशवैकालिक चूर्णि, पृ २१
ख—बृहत्कल्पनियुक्ति, १४७ उ ७३
ग—विशेषशतक—४०

३२ काल पुण पडुच्च चरणकरणट्ठा अवोच्छित्ति निमित्त च गण्हमाणस्स पोत्थए सजमो भवइ।
—दशवकालिक चूर्णि, पृ २१

३३ गणपरमोहि-पुलाए, आहारग-खवग-उवसमे कप्पे।
सजय-तिय केवलि-सिज्झणाण जबुम्मि वुच्छिन्ना॥ —विशेषावश्यकभाष्य, २५९३

श्रुत की अविरल धारा आय भद्रबाहु तक चलती रही। वे अंतिम श्रुतकेवली थे। जैन शासन को वीर निर्वाण की द्वितीय शताब्दी के मध्य दुष्काल के भयकर वात्याचक्र से जूझना पडा था। अनुकूल-भिक्षा के अभाव म अनेक श्रुतसम्पन्न मुनि कालकवलित हो गय थ। दुष्काल समाप्त होन पर विच्छिन्न श्रुत को सकलित करन के लिये वीर-निर्वाण १६० (वि पू ३१०) के लगभग श्रमण-सघ पाटलिपुत्र (मगध) म एकत्रित हुआ। आचाय स्थूलिभद्र इस महासम्मलन के व्यवस्थापक थ। इस सम्मलन का सवप्रथम उल्लेख 'तित्थोगाली'[34] म प्राप्त होता है। उसके बाद के बने हुये अनक ग्रन्था म भी इस वाचना का उल्लेख है।[35] मगध जैन श्रमणा की प्रचारभूमि थी, किन्तु द्वादशवर्षीय दुष्काल क कारण श्रमणा का मगध छोड कर समुद्र किनारे जाना पडा।[36] श्रमण किस समुद्र तट पर पहुँचे इस का स्पष्ट उल्लेख नही है। कितन ही विद्वानो न दक्षिणी समुद्र तट पर जान की कल्पना की है। पर मगध के सन्निकट बगोपसागर (बगाल की खाडी) भी है। जिस के किनारे उडीसा अवस्थित है। वह स्थान भी हो सकता है। दुष्काल के कारण सन्निकट होन से श्रमण सघ का वहाँ जाना सभव लगता है। पाटलिपुत्र में सभी श्रमणा ने मिलकर एक-दूसर स पूछकर प्रामाणिक रूप स ग्यारह अगा का पूणत सकलन उस समय किया।[37] पाटलिपुत्र म जितने भी श्रमण एकत्रित हुए थे उनम दृष्टिवाद का परिज्ञान किसी श्रमण को नहीं था। दृष्टिवाद जैन आगमा का अत्यन्त महत्त्वपूण भाग था जिसका सकलन किय बिना अगा की वाचना अपूण थी। दृष्टिवाद के एकमात्र ज्ञाता भद्रबाहु थे। आवश्यक-चूर्णि के अनुसार वे उस समय नेपाल की पहाडियो म महाप्राण ध्यान की साधना कर रह थ।[38] सघ ने आगम निधि की सुरक्षा के लिय श्रमणसघाटक को नेपाल प्रेषित किया। श्रमणा न भद्रबाहु स प्राथना की— आप वहाँ पधार कर श्रमणा को दृष्टिवाद की ज्ञान-राशि से लाभान्वित करें।' भद्रबाहु न साधना म विक्षेप समझते हुए प्राथना को अस्वीकार कर दिया।

तित्थोगालिय के अनुसार भद्रबाहु न आचाय होते हुय भी सघ के दायित्व से उदासीन होकर कहा— श्रमणो! मेरा आयुष्यकाल कम रह गया है! इतने स्वल्प समय म मै दृष्टिवाद की वाचना देने म असमथ हू। आत्महिताथ मैं अपन आपको समर्पित कर चुका हूँ। अत सघ को वाचना देकर क्या करना है?[39] इस निराशाजनक उत्तर से श्रमण उत्तप्त हुए। उन्होंने पुन निवेदन किया—'सघ की प्राथना का अस्वीकार करने पर आपका क्या प्रायश्चित्त लेना होगा।'[40]

---

३४ तित्थोगाली गाथा—७१४—श्वेताम्बर जन सघ, जालोर

३५ क—आवश्यकचूर्णि भाग—२, पृ १८७,
ख—परिशिष्ट पव—सग ९ श्लो ५५—६९।

३६ आवश्यकचूर्णि भाग दो पत्र १८७।

३७ अह वारस वारिसिओ जाओ कूरो कयाइ दुक्कालो।
सव्वो साहुसमूहो तओ गओ कत्थई कोई॥ २२॥
तदुवरमे सो पुणरवि पाडिले पुत्ते समागओ विहिया।
सघेण सुयविसया चिंता किं कस्स अत्थियति॥ २३॥
ज जस्स आसि पास उद्देसज्झयणमाइ त सव।
सघडिय एक्कारसगाइ तहेव ठविआइ॥ २४॥ —उपदेशमाला, विशेषवृत्ति पत्राक २४१

३८ नेपालवत्तणीए य भद्दबाहुसामी अच्छति चोद्दसपुव्वी। —आवश्यक चूर्णि भाग-२, पृ १८७

३९ सो भणिए एव भाणिए असिट्ठ किलिट्ठएण वयणेण।
न हु ता अह समत्थो, इण्हि म वायण दाउ॥
अप्पटठे आउत्तस्स मज्झ किं वायणाए कायव।
एव त भणियमत्ता रोसस्स वस गया साहू॥ —तित्थोगाली—गाथा २८ २९

४० सघ भणतस्स तुह को दडो होई त मुणसु। —तित्थोगाली

आवश्यकचूर्णि[४१] के अनुसार आये हुये श्रमण-संघाटक ने कोई नया प्रश्न उपस्थित नहीं किया, वह पुनः लौट गया। उसने सारा संवाद संघ को कहा। संघ अत्यधिक विक्षुब्ध हुआ। क्योंकि भद्रबाहु के अतिरिक्त दृष्टिवाद की वाचना देने में कोई भी समर्थ नहीं था। पुनः संघ ने श्रमण-संघाटक को नेपाल भेजा। उन्होंने निवेदन किया—भगवन्! संघ की आज्ञा की अवज्ञा करने वाले को क्या प्रायश्चित्त आता है?[४२] प्रश्न सुनकर भद्रबाहु गम्भीर हो गये। उन्होंने कहा—जो संघ का अपमान करता है, वह श्रुतनिह्नव है। संघ से बहिष्कृत करने योग्य है। श्रमण संघाटक ने पुनः निवेदन किया—आपने भी संघ की बात को अस्वीकृत किया है, आप भी इस दण्ड के योग्य हैं? "तित्थोगालिय" में प्रस्तुत प्रसंग पर श्रमण-संघ के द्वारा बारह प्रकार के सम्भोग विच्छेद का भी वर्णन है।

आचार्य भद्रबाहु को अपनी भूल का परिज्ञान हो गया। उन्होंने मधुर शब्दों में कहा—मैं संघ की आज्ञा का सम्मान करता हूँ। इस समय मैं महाप्राण की ध्यान-साधना में संलग्न हूँ। प्रस्तुत ध्यान साधना से चौदह पूर्व की ज्ञान राशि का मुहूर्त मात्र में परावर्तन कर लेने की क्षमता आ जाती है। अभी इसकी सम्पन्नता में कुछ समय अवशेष है। अतः मैं आने में असमर्थ हूँ। संघ प्रतिभासम्पन्न श्रमणों को यहाँ प्रेषित करे। मैं उन्हें साधना के साथ ही वाचना देने का प्रयास करूँगा।

"तित्थोगालिय"[४३] के अनुसार भद्रबाहु ने कहा—मैं एक अपवाद के साथ वाचना देने को तैयार हूँ। आत्महितार्थ, वाचना ग्रहणार्थ आने वाले श्रमण-संघ में बाधा उत्पन्न नहीं करूँगा। और वे भी मेरे कार्य में बाधक न बनें। कायोत्सर्ग सम्पन्न कर भिक्षार्थ आते-जाते समय और रात्रि में शयन-काल के पूर्व उन्हें वाचना प्रदान करता रहूँगा। "तथास्तु" कह वन्दन कर वहाँ से वे प्रस्थित हुये। संघ को संवाद सुनाया।

संघ ने महान् मेधावी उद्यमी स्थूलभद्र आदि को दृष्टिवाद के अध्ययन के लिये प्रेषित किया। परिशिष्ट पर्व[४४] के अनुसार पाँच सौ शिक्षार्थी नेपाल पहुँचे थे। तित्थोगालिय[४५] के अनुसार श्रमणों की संख्या पन्द्रह सौ थी। इनमें पाँच सौ श्रमण शिक्षार्थी थे और हजार श्रमण परिचर्या करने वाले थे। आचार्य भद्रबाहु प्रतिदिन उन्हें सात वाचना प्रदान करते थे। एक वाचना भिक्षाचर्या से आते समय, तीन वाचना विकाल वेला में और तीन वाचना प्रतिक्रमण के पश्चात् रात्रि में प्रदान करते थे।

दृष्टिवाद अत्यन्त कठिन था। वाचना प्रदान करने की गति मन्द थी। मेधावी मुनियों का धैर्य ध्वस्त हो गया। चार सौ निन्यानवे शिक्षार्थी मुनि वाचना-क्रम को छोड़कर चले गये। स्थूलभद्र मुनि निष्ठा से अध्ययन

---

४१ तं ते भणंति दुक्कालनिमित्तं महापाणं पविट्ठोमि तो न जाति वायणं दातुं।

—आवश्यकचूर्णि भाग-२, पत्रांक १८७

४२ तेहिं अण्णोवि संघाडओ विसज्जितो जो संघस्स आणं—अतिक्कमति तस्स को दंडो? तो अक्खाई उग्घाडिज्जई। तं भणंति मा उग्घाडेह पेसेह मेहावी, सत्त पडिपुच्छगाणि देमि।

—आवश्यकचूर्णि, भाग-२, पत्रांक १८७

४३ एक्केण कारणेण, इच्छं भे वायणं दाउं
अप्पट्ठे आउत्तो, परमट्ठे सुट्ठु दाइं उज्जुत्तो।
न वि अहं वायरियव्वो, अहंपि नवि वायरिस्सामि॥
पारियकाउस्सग्गो भत्तट्ठितो व अहव सेज्जाए।
नितो व अइंतो वा एवं भे वायणं दाहं॥ —तित्थोगाली गाथा—३५, ३६।

४४ परिशिष्ट पर्व सर्ग ९ गाथा-७०

४५ तित्थोगाली—

म लगे रहे। आठ वर्ष मे उन्होंने आठ पूर्वो का अध्ययन किया।[४६] आठ वर्ष के लम्बे समय म भद्रबाहु और स्थूलभद्र के बीच किसी भी प्रकार की वार्ता का उल्लेख नहीं मिलता। एक दिन स्थूलभद्र से भद्रबाहु ने पूछा— तुम्हे भिक्षा एव स्वाध्याय योग म किसी भी प्रकार का कोई कष्ट तो नही है ?' स्थूलभद्र ने निवेदन किया— मुझे कोई कष्ट नही है। पर जिज्ञासा है कि मैंने आठ वर्षों म कितना अध्ययन किया है ? और कितना अवशिष्ट है ?' भद्रबाहु ने कहा— वत्स ! सरसो जितना ग्रहण किया है, और मेरु जितना बाकी है। दृष्टिवाद के अगाध ज्ञान सागर म अभी तक तुम बिन्दुमात्र पाये हो।' स्थूलभद्र ने पुन निवेदन किया भगवन ! मैं हतोत्साह नही हू किन्तु मुझे वाचना का लाभ स्वल्प मिल रहा है। आपके जीवन का मध्याकाल है इतने कम समय म वह विराट ज्ञान-राशि कैसे प्राप्त कर सकूंगा ! भद्रबाहु ने आश्वासन देते हुए कहा— वत्स ! चिन्ता मत करो। मेरा साधना-काल सम्पन्न हो रहा है। अब मैं तुम्हे यथेष्ट वाचना दूगा। उन्होंने दो वस्तु कम दशपूर्वो की वाचना ग्रहण कर ली। तित्थोगालिय के अनुसार दशपूर्व पूर्ण कर लिये थे। और ग्यारहवें पूर्व का अध्ययन चल रहा था। साधनाकाल सम्पन्न होने पर आर्यभद्रबाहु स्थूलभद्र के साथ पाटलिपुत्र आये यक्षा आदि साध्वियां वन्दनार्थ गई। स्थूलभद्र ने चमत्कार प्रदर्शित किया।[४७] जब वाचना ग्रहण करने के लिये स्थूलभद्र भद्रबाहु के पास पहुचे तो उन्होंने कहा— 'वत्स ! ज्ञान का अह विकास म बाधक है। तुम ने शक्ति का प्रदर्शन कर अपने आप को अपात्र सिद्ध कर दिया है। अब तुम आगे की वाचना के लिये योग्य नही हो। स्थूलभद्र को अपनी प्रमादवृत्ति पर अत्यधिक अनुताप हुआ। चरणो म गिर कर क्षमायाचना की और कहा—पुन अपराध की आवृत्ति नही होगा। आप मुझे वाचना प्रदान करें। प्रार्थना स्वीकृत नही हुई। स्थूलभद्र ने निवेदन किया—मैं पर रूप का निर्माण नही करूगा, अवशिष्ट चार पूर्व ज्ञान देकर मेरी इच्छा पूर्ण करें।[४८] स्थूलभद्र के अत्यन्त आग्रह पर चार पूर्वों का ज्ञान इस अपवाद के साथ देना स्वीकार किया कि अवशिष्ट चार पूर्वो का ज्ञान आगे किसी को भी नही दे सकेगा। दशपूर्व तक उन्होंने अर्थ से ग्रहण किया था और शेष चार पूर्वों का ज्ञान शब्दश प्राप्त किया था। उपदेशमाला विशेष वृत्ति, आवश्यक-चूर्णि, तित्थोगालिय परिशिष्टपर्व प्रभृति ग्रन्थो म कहीं सक्षेप म और कहीं विस्तार से यह वर्णन है।

दिगम्बर साहित्य के उल्लेखानुसार दुष्काल के समय बारह सहस्र श्रमणो से परिवृत होकर भद्रबाहु उज्जैन होते हुए दक्षिण की ओर बढे और सम्राट् चन्द्रगुप्त को दीक्षा दी। कितने ही दिगम्बर विद्वानो का यह मानना है कि दुष्काल के कारण श्रमणसघ म मतभेद उत्पन्न हुआ। दिगम्बर श्रमण को निहार कर एक श्राविका का गर्भपात हो गया। जिससे आगे चलकर अर्ध फालग सम्प्रदाय प्रचलित हुआ।[४९] अकाल के कारण वस्त्र-प्रथा का प्रारम्भ हुआ। यह कथन साम्प्रदायिक मान्यता को लिये हुए है। पर ऐतिहासिक सत्य-तथ्य को लिये हुए नहीं है। कितने दिगम्बर मूर्धन्य मनीषियो का यह मानना है कि श्वेताम्बर आगमो की सरचना शिथिलाचार के सपोषण हेतु की गया है। यह भी सर्वथा निराधार कल्पना है। क्योंकि श्वेताम्बर आगमो के नाम दिगम्बर मान्य ग्रन्थो म भी प्राप्त हैं।[५०]

---

४६ श्रीभद्रबाहुपादान्ते स्थूलभद्रो महामति ।
पूर्वाणामष्टक वर्षैरपाठीदष्टभिर्भृशम ॥ —परिशिष्ट पर्व, सर्ग—९

४७ दृष्टवा सिंह तु भीतास्ता सूरिमेत्य व्यजिज्ञपन ।
ज्येष्ठार्य जग्रस सिंहस्तत्र साद्यापि तिष्ठति ॥ —परिशिष्ट पर्व सर्ग-९ श्लोक-८१

४८ अह भणइ थूलभद्दो अण्ण रूव न किंचि काहामो ।
इच्छामि जाणिउ जे अह चत्तारि पुव्वाइ ॥ —तित्थोगाली पइन्ना-८००

४९ जैन साहित्य का इतिहास पूर्व पीठिका सघभेद प्रकरण पृ ३७५ —पण्डित कैलाशचन्दजी शास्त्री वाराणसी

५० (क) षट्खण्डागम, भाग-१, पृ ९६
(ख) सर्वार्थसिद्धि पूज्यपाद १-२०
(ग) तत्त्वार्थराजवार्तिक, अकलक १-२०
(घ) गोम्मटसार जीवकाण्ड, नेमिचन्द्र, पृ १३४

यहाँ पर यह भी स्मरण रखना होगा कि नेपाल जाकर योग की साधना करने वाले भद्रबाहु और उज्जैन होकर दक्षिण की ओर बढ़ने वाले भद्रबाहु, एक व्यक्ति नहीं हो सकते। दोनों के लिए चतुर्दशपूर्वी लिखा गया है। यह उचित नहीं है। इतिहास के लम्बे अन्तराल में इस तथ्य को दोनों परम्पराएं स्वीकार करती हैं। प्रथम भद्रबाहु का समय वीर-निर्वाण की द्वितीय शताब्दी है तो द्वितीय भद्रबाहु का समय वीर-निर्वाण की पाँचवी शताब्दी के पश्चात् है। प्रथम भद्रबाहु चतुर्दश पूर्वी और छेद सूत्रों के रचनाकार थे।[51] द्वितीय भद्रबाहु वराहमिहिर के भ्राता थे। राजा चन्द्रगुप्त का सम्बन्ध प्रथम भद्रबाहु के साथ न होकर द्वितीय भद्रबाहु के साथ है। क्योंकि प्रथम भद्रबाहु का स्वर्गवासकाल वीरनिर्वाण एक सौ सत्तर (१७०) के लगभग है। एक सौ पचास वर्षीय नन्द साम्राज्य का उच्छेद और मौर्य शासन का प्रारम्भ वीर-निर्वाण दो सौ दस के आस-पास है। द्वितीय भद्रबाहु के साथ चन्द्रगुप्त अवन्ती का था पाटलिपुत्र का नहीं। आचार्य देवसेन ने चन्द्रगुप्त को दीक्षा देने वाले भद्रबाहु के लिए श्रुतकेवली विशेषण नहीं दिया है किन्तु निमित्तज्ञानी विशेषण दिया है।[52] श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार भी वे निमित्तवेत्ता थे। सम्राट चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्नों का फलादेश बताने वाले द्वितीय भद्रबाहु ही होने चाहिये। मौर्यशासक चन्द्रगुप्त और अवन्ती के शासक चन्द्रगुप्त और दोनों भद्रबाहु की जीवन घटनाओं में एक सदृश नाम होने से संभ्रमण हो गया है।

दिगम्बर परम्परा का अभिमत है कि दोनों भद्रबाहु समकालीन थे। एक भद्रबाहु ने नेपाल में महाप्राण नामक ध्यान-साधना की तो दूसरे भद्रबाहु ने राजा चन्द्रगुप्त के साथ दक्षिण भारत की यात्रा की। पर इस कथन के पीछे परिपुष्ट ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। हम पूर्व बता चुके हैं कि दुष्काल की विकट वेला में भद्रबाहु विशाल श्रमण संघ के साथ बंगाल में समुद्र के किनारे रहे।[53] संभव है उसी प्रदेश में उन्होंने छेदसूत्रों की रचना की हो। उसके पश्चात् महाप्राणायाम की ध्यान साधना के लिए वे नेपाल पहुँचे हों और दुष्काल के पूर्ण होने पर भी वे नेपाल में ही रहे हों। डाक्टर हर्मन जेकोबी ने भी भद्रबाहु के नेपाल जाने की घटना का समर्थन किया है।

तित्थोगालिय के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि पाटलिपुत्र में अंग-साहित्य की वाचना हुई थी। वहाँ अंगबाह्य आगमों की वाचना के सम्बन्ध में कुछ भी निर्देश नहीं है। इस का अर्थ यह नहीं है कि अंगबाह्य आगम उस समय नहीं थे। श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार अंगबाह्य आगमों की रचनाएं पाटलिपुत्र की वाचना से पहले हो चुकी थी। क्योंकि वीर-निर्वाण (६४) चौंसठ में शय्यम्भव जैन श्रमण बने थे। और वीर-निर्वाण ७५ में वे आचार्य पद से अलंकृत हुए थे। उन्होंने अपने पुत्र अल्पायुष्य मुनि मणक के लिए आत्मप्रवाद से दशवैकालिक सूत्र का नियूहण किया।[54] वीर निर्वाण के ८० वर्ष बाद इस महत्त्वपूर्ण सूत्र की रचना हुई थी। स्वयं भद्रबाहु ने भी छेदसूत्रों की रचनाएँ की थी, जो उस समय विद्यमान थे। पर इन ग्रन्थों की वाचना के सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं है। पण्डित श्री दलसुख मालवणिया का अभिमत है कि आगम या श्रुत उस युग में अंग ग्रन्थों तक ही सीमित था। बाद में चलकर श्रुतसाहित्य का विस्तार हुआ। और आचार्यकृत क्रमशः आगम की कोटि में रखा गया।[55]

---

५१ वंदामि भद्दबाहुं पाईणं चरिय सगलसुयनाणिं।
सुत्तस्स कारगमिसिं दसासु कप्पे य ववहारे॥ —दशाश्रुतस्कन्धनियुक्ति—गाथा-१

५२ आसि उज्जेणीणयरे आयरियो भद्दबाहुणामेण।
जाणिय सुणिमित्तधरो भणियो संघो णियो तेण—भावसंग्रह

५३ इतश्च तस्मिन् दुष्काले-कराले कालरात्रिवत्।
निर्वाहार्थं साधुसंघस्तीरे नीरनिधेर्ययौ॥ —परिशिष्ट पर्व-सर्ग ९ श्लोक ५५

५४ सिद्धान्तसारमुद्धृत्याचार्य शय्यम्भवस्तदा।
दशवैकालिकं नाम, श्रुतस्कन्धमुदाहरत्॥ —परिशिष्ट पर्व सर्ग-५ श्लोक ८५

५५ (क) जैन दर्शन का आदिकाल पृष्ठ ६-७ दलसुख मालवणिया (ख) आगम युग का जैन दर्शन पृष्ठ २७

पाटलिपुत्र की वाचना के सम्बन्ध में दिगम्बर प्राचीन साहित्य में कहीं उल्लेख नहीं है। यद्यपि दोनों ही परम्पराएं भद्रबाहु को अपना आराध्य मानती हैं। आचार्य भद्रबाहु के शासनकाल में दो विभिन्न दिशाओं में बढ़ती हुई श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा के आचार्यों की नामशृङ्खला एक केन्द्र पर आ पहुँची थी। अब पुन वह शृङ्खला विशृङ्खलित हो गयी थी।

द्वितीय वाचना

आगमसंकलन का द्वितीय प्रयास वीर-निर्वाण ३०० से ३३० के बीच हुआ। सम्राट् खारवेल उड़ीसा प्रान्त के महाप्रतापी शासक थे। उनका अपर नाम महामेघवाहन था। इन्होंने अपने समय में एक बृहद् जैन सम्मेलन का आयोजन किया था, जिसमें अनेक जैन भिक्षु आचार्य विद्वान तथा विशिष्ट उपासक सम्मिलित हुए थे। सम्राट खारवेल को उनके कार्यों को प्रशस्ति के रूप में धम्मराज भिक्खुराज खेमराज जैसे विशिष्ट शब्दों से सम्बोधित किया गया है। हाथी गुफा (उड़ीसा) के शिलालेख में इस सम्बन्ध में विस्तार से वर्णन है। हिमवन्त स्थविरावली के अनुसार महामेघवाहन भिक्षुराज खारवेल सम्राट ने कुमारी पर्वत पर एक श्रमण सम्मेलन का आयोजन किया था। प्रस्तुत सम्मेलन में महागिरि-परम्परा के बलिस्सह बोधिलिङ्ग, देवाचार्य धर्मसेनाचार्य नक्षत्राचार्य प्रभृति दो सौ जिनकल्पतुल्य उत्कृष्ट साधना करने वाले श्रमण तथा आर्य सुस्थित आर्य सुप्रतिबुद्ध उमास्वाति श्यामाचार्य प्रभृति तीन सौ स्थविरकल्पी श्रमण थे। आर्या पोइणी प्रभृति ३०० साध्वियां, भिखुराय चूर्णक सेलक प्रभृति ७०० श्रमणोपासक और पूर्णमित्रा प्रभृति ७०० उपासिकाएँ विद्यमान थीं।

बलिस्सह उमास्वाति श्यामाचार्य प्रभृति स्थविर श्रमणों ने सम्राट खारवेल की प्रार्थना को सम्मान देकर सुधर्मा-रचित द्वादशांगी का संकलन किया। उसे भोजपत्र, ताड़पत्र और वल्कल पर लिपिबद्ध करवाकर आगम वाचना के ऐतिहासिक पृष्ठों में एक नवीन अध्याय जोड़ा। प्रस्तुत वाचना भुवनेश्वर के निकट कुमारगिरि-पर्वत पर जो वर्तमान में खण्डगिरि उदयगिरि पर्वत के नाम से विश्रुत है वहाँ हुई थी, जहाँ पर अनेक जैन गुफाएं हैं। जो कलिंग नरेश खारवेल महामेघवाहन के धार्मिक जीवन को परिचायिका है। इस सम्मेलन में आर्य सुस्थित और सुप्रतिबुद्ध दोनों सहोदर भी उपस्थित थे। कलिंगाधिप भिक्षुराज ने इन दोनों का विशेष सम्मान किया था।[५४] हिमवन्त थेरावली के अतिरिक्त अन्य किसी जैन ग्रन्थ में इस सम्बन्ध में उल्लेख नहीं है। खण्डगिरि और उदयगिरि में इस सम्बन्ध में जो विस्तृत लेख उत्कीर्ण है उसमें स्पष्ट परिज्ञात होता है कि उन्होंने आगम वाचना के लिए सम्मेलन किया था।[५५]

तृतीय वाचना

आगमों को संकलित करने का तृतीय प्रयास वीर-निर्वाण ८२७ से ८४० के मध्य हुआ। वीर-निर्वाण की नवमी शताब्दी में पुन द्वादश वर्षीय दुष्काल से श्रुत-विनाश का भीषण आघात जैन शासन को लगा। श्रमण-जीवन की मर्यादा के अनुकूल आहार की प्राप्ति अत्यन्त कठिन हो गयी। बहुत-से श्रुतसम्पन्न श्रमण काल

---

५४ सुट्ठियसुपडिबद्धे अज्जे दुन्नि वि ते नमसामि।
भिक्खुराय कलिंगाहिवेण सम्माणिए जिट्ठे॥

—हिमवंत स्थविरावली गा १०

५५ क—जर्नल आफ दी बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी,
भाग १३, पृ ३३६

ख—जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग १, पृ ८२

ग—जैनधर्म के प्रभावक आचार्य पृ १०-११-साध्वी संघमित्रा

के अंक में समागत। सूत्रग्रहण, परावर्तन के अभाव में श्रुत-सरिता सूखने लगी। अति विषम स्थिति थी। बहुत सारे मुनि सुदूर प्रदेशों में विहरण करने के लिये प्रस्थित हो चुके थे।

दुष्काल की परिसमाप्ति के पश्चात मथुरा में श्रमण सम्मेलन हुआ। प्रस्तुत सम्मेलन का नेतृत्व आचार्य स्कंदिल ने संभाला।[५६] श्रुतसम्पन्न श्रमणों की उपस्थिति से सम्मेलन में चार चाँद लग गये। प्रस्तुत सम्मेलन में मधुमित्र, गन्धहस्ति, प्रभृति १५० श्रमण उपस्थित थे। मधुमित्र और स्कन्दिल ये दोनों आचार्य आचार्यसिंह के शिष्य थे। आचार्य गन्धहस्ती मधुमित्र के शिष्य थे। इनका वैदुष्य उत्कृष्ट था। अनेक विद्वान श्रमणों के स्मृतपाठों के आधार पर आगम श्रुत का संकलन हुआ था। आचार्य स्कन्दिल की प्रेरणा से गन्धहस्ती ने ग्यारह अंगों का विवरण लिखा। मथुरा के श्रावक ओसवाल वंशज सुश्रावक ओसालक ने गन्धहस्ती-विवरण सहित सूत्रों को ताडपत्र पर उट्टङ्कित करवा कर निर्ग्रन्थों को समर्पित किये। आचार्य गन्धहस्ती को ब्रह्मदीपिका शाखा में मुकुटमणि माना गया है।

प्रभावकचरित के अनुसार आचार्य स्कन्दिल जैन शासन रूपी नन्दनवन में कल्पवृक्ष के समान हैं। समग्र श्रुतानुयोग को अंकुरित करने में महामेघ के समान थे। चिंतामणि के समान वे इष्टवस्तु के प्रदाता थे।[५७]

यह आगमवाचना मथुरा में होने से माथुरी वाचना कहलायी। आचार्य स्कन्दिल की अध्यक्षता में होने से स्कन्दिली वाचना के नाम से इसे अभिहित किया गया। जिनदास गणि महत्तर ने[५८] यह भी लिखा है कि दुष्काल के क्रूर आघात से अनुयोगधर मुनियों में केवल एक स्कन्दिल ही बच पाये थे। उन्होंने मथुरा में अनुयोग का प्रवर्तन किया था। अतः यह वाचना स्कन्दिली नाम से विश्रुत हुई।

प्रस्तुत वाचना में भी पाटलिपुत्र की वाचना की तरह केवल अंग सूत्रों की ही वाचना हुई। क्योंकि नन्दीसूत्र की चूर्णि[५९] में अंगसूत्रों के लिये कालिक शब्द व्यवहृत हुआ है। अंगबाह्य आगमों की वाचना या संकलना का इस समय भी प्रयास हुआ हो, ऐसा पुष्ट प्रमाण नहीं है। पाटलिपुत्र में जो अंगों की वाचना हुई थी उसे ही पुनः व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया था। नन्दीसूत्र के[६०] अनुसार जो वर्तमान में आगम-विद्यमान हैं वे माथुरी वाचना के अनुसार हैं। पहले जो वाचना हुई थी वह पाटलिपुत्र में हुई थी, जो बिहार में था। उस समय बिहार जैनों का केन्द्र रहा था। किन्तु माथुरी वाचना के समय बिहार से हटकर उत्तर प्रदेश केन्द्र हो गया था। मथुरा से ही कुछ श्रमण दक्षिण की ओर आगे बढ़े थे। जिसका सूचन हमें दक्षिण में विश्रुत माथुरी संघ के अस्तित्व से प्राप्त होता है।[६१]

---

५६ इत्थ दूसमदुब्भिक्खे दुवालसवारिसिए नियत्ते सयलसंघं मेलिअ आगमाणुओगो पवत्तिओ खन्दिलायरियेण

—विविध तीर्थकल्प—पृ १९

५७ पारिजातोऽपारिजातो जैनशासननन्दने।
सर्वश्रुतानुयोगद्रु-कन्दकन्दलनाम्बुदः ॥
विद्याधरवराम्नाये चिन्तामणिरिवेष्टदः।
आसीच्छ्रीस्कन्दिलाचार्यः पादलिप्तप्रभोः कुले ॥

—प्रभावकचरित, पृ ५४

५८ अण्णे भणंति जहा-सुत्तं ण णट्ठं, तम्मि दुब्भिक्खकाले जे अण्णे पहाणा अणुओगधरा ते विणट्ठा, एगे खंदिलायरिए संथरे, तेण मधुराए अणुओगो पुणो साधूण पवत्तितो त्ति मधुरा वायणा भण्णति।

—नन्दीचूर्णि, गा-३२, पृ ९

५९ अहवा कालियं आयारादि सुत्तं तदुवदेसेण सण्णी भण्णति।

—नन्दीचूर्णि पृ ४६

६० जेसिं इमो अणुओगो पयरइ अज्जावि अड्ढभरहम्मि।
बहुनगरनिग्गयजसे ते वंदे खन्दिलायरिए—नन्दीसूत्र ॥ गा ३२

६१ क—नन्दीचूर्णि पृ ९
ख—नन्दीसूत्र गाथा-३३ मलयगिरि वृत्ति पृ ५१

नन्दीसूत्र की चूर्णि और मलयगिरि वृत्ति के अनुसार यह माना जाता है कि दुर्भिक्ष के समय श्रुतज्ञान कुछ भी नष्ट नहीं हुआ था। केवल आचार्य स्कन्दिल के अतिरिक्त शेष अनुयोगधर श्रमण स्वर्गस्थ हो गये थे। एतदर्थ आचार्य स्कन्दिल ने पुनः अनुयोग का प्रवर्तन किया, जिससे सम्पूर्ण अनुयोग स्कन्दिल-सम्बन्धी माना गया।

चतुर्थ वाचना

जिस समय उत्तर-पूर्व और मध्य भारत में विचरण करनेवाले श्रमणों का सम्मेलन मथुरा में हुआ था, उसी समय दक्षिण और पश्चिम में विचरण करने वाले श्रमणों की एक वाचना वीरनिर्वाण संवत् ८२७ से ८४० के आस-पास वल्लभी में आचार्य नागार्जुन की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। इस वल्लभीवाचना या नागार्जुनीय-वाचना की संज्ञा मिली। इस वाचना का उल्लेख भद्रेश्वर रचित कहावली ग्रन्थ में मिलता है, जो आचार्य हरिभद्र के बाद हुए हैं।[62] स्मृति के आधार पर सूत्र संकलना होने के कारण वाचनाभेद रह जाना स्वाभाविक था।[63] पण्डित दलसुख मालवणिया ने[64] प्रस्तुत वाचना के सम्बन्ध में लिखा है— 'कुछ चूर्णियों में नागार्जुन के नाम से पाठान्तर मिलते हैं। पण्णवणा जैसे अंगबाह्य सूत्र में भी पाठान्तर का निर्देश है। अतएव अनुमान किया गया कि नागार्जुन ने भी वाचना की होगी। किन्तु इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मौजूदा अंग आगम माथुरीवाचनानुसारी है यह तथ्य है। अन्यथा पाठान्तरों में स्कन्दिल के पाठान्तरों का भी निर्देश मिलता।[65] अंग और अन्य अंगबाह्य ग्रन्थों की व्यक्तिगत रूप में कई वाचनाएँ होनी चाहिये थीं। क्योंकि आचारांग आदि आगम साहित्य की चूर्णियों में जो पाठ मिलते हैं उनसे भिन्न पाठ टीकाओं में अनेक स्थानों पर मिलते हैं। जिससे यह तो सिद्ध है कि पाटलिपुत्र की वाचना के पश्चात् समय-समय पर मूर्धन्य मनीषी आचार्यों के द्वारा वाचनाएँ होती रही हैं।[66] उदाहरण के रूप में हम प्रश्नव्याकरण को ले सकते हैं। समवायाङ्ग में प्रश्नव्याकरण का जो परिचय दिया गया है, वर्त्तमान में उसका वह स्वरूप नहीं है। आचार्य श्री अभयदेव ने प्रश्नव्याकरण की टीका में लिखा है कि अतीत काल में वे सारी विद्याएँ इसमें थीं।[67] इसी तरह अन्तकृत्दशा, में भी दश अध्ययन नहीं है। टीकाकार ने स्पष्टीकरण में यह सूचित किया है कि प्रथम वर्ग में दश अध्ययन हैं।[68] पर यह निश्चित है कि क्षत-विक्षत आगम-निधि को ठीक समय पर संकलन कर आचार्य नागार्जुन ने जैन शासन पर महान् उपकार किया है। इसीलिये आचार्य देववाचक ने बहुत ही भावपूर्ण शब्दों में नागार्जुन की स्तुति करते हुये लिखा है—मृदुना

---

६२ जैन दर्शन का आदिकाल पृ ७—पं. दलसुख मालवणिया

६३ इह हि स्कन्दिलाचार्यप्रवृत्तौ दुष्षमानुभावतो दुर्भिक्षप्रवृत्त्या साधूनां पठनगुणनादिकं सर्वमप्यनशत्। ततो दुर्भिक्षातिक्रमे सुभिक्षप्रवृत्तौ द्वयोः संघयोर्मेलापकोऽभवत्। तद्यथा एको वलभ्यामेको मथुरायाम्। तत्र च सूत्रार्थसंघटने परस्परवाचनाभेदो जातः। विस्मृतयोर्हि सूत्रार्थयोः स्मृत्वा संघटने भवत्यवश्यं वाचनाभेदो न काचिदनुपपत्तिः। —ज्योतिष्करण्डक टीका

६४ जैन दर्शन का आदिकाल—पृ ७

६५ वीरनिर्वाण संवत् और जैन कालगणना, पृ ११४ —गणि कल्याणविजय

६६ जैन दर्शन का आदिकाल, पृ ७

६७ जैन आगम साहित्य मनन और मीमांसा, पृ १७० से १८५
—देवेन्द्रमुनि प्र. श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय-उदयपुर

६८ अन्तकृद्दशा, प्रस्तावना पृ २१ से २४ तक —श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री

आदि गुणों से सम्पन्न, सामायिक श्रुतादि के ग्रहण से अथवा परम्परा से विकास की भूमिका पर क्रमशः आरोहणपूर्वक वाचकपद को प्राप्त ओघश्रुतसमाचारी में कुशल आचार्य नागार्जुन को मैं प्रणाम करता हूं।[६९]

दोनों वाचनाओं का समय लगभग समान है। इसलिये सहज ही यह प्रश्न उद्बुद्ध होता है कि एक ही समय में दो-भिन्न भिन्न स्थलों पर वाचनाएं क्यों आयोजित की गई? जो श्रमण वल्लभी में—एकत्र हुए थे वे मथुरा भी जा सकते थे। फिर क्यों नहीं गये? उत्तर में कहा जा सकता है—उत्तर भारत और पश्चिम भारत के श्रमण संघ में किन्हीं कारणों से मतभेद रहा हो उनका मथुरा की वाचना को समर्थन न रहा हो। उस वाचना की गति-विधि और कार्यक्रम की पद्धति व नेतृत्व में पश्चिम का श्रमणसंघ सहमत न हो! यह भी संभव है कि माथुरी वाचना पूर्ण होने के बाद इस वाचना का प्रारम्भ हुआ हो। उनके अन्तर्मानस में यह विचार-लहरियां तरंगित हो रही हों कि मथुरा में आगम-संकलन का जो कार्य हुआ है, उससे हम अधिक श्रेष्ठतम कार्य करेंगे। संभव है इसी भावना से उत्प्रेरित होकर कालिक श्रुत के अतिरिक्त भी अंग-बाह्य व प्रकरणग्रंथों का संकलन और आकलन किया गया हो। या सविस्तृत पाठ वाले स्थल अर्थ की दृष्टि से सुव्यवस्थित किये गये हों।

इस प्रकार अन्य भी अनेक संभावनाएं की जा सकती हैं। पर उनका निश्चित आधार नहीं है। यही कारण है कि माथुरी और वल्लभी वाचनाओं में कई स्थलों पर मतभेद हो गये। यदि दोनों श्रुतधर आचार्य परस्पर मिल कर विचार-विमर्श करते तो संभवतः वाचनाभेद मिटता। किन्तु परिताप है कि न वे वाचना के पूर्व मिले और न बाद में ही मिले। वाचनाभेद उनके स्वर्गस्थ होने बाद भी बना रहा, जिससे वृत्तिकारों को 'नागार्जुनीया पुनः एवं पठन्ति' आदि वाक्यों का निर्देश करना पड़ा।

पञ्चम वाचना

वीर-निर्माण की दशवीं शताब्दी (९८० या ९९३ ई., सन् ४५४-४६६) में देवर्द्धि गणि क्षमा श्रमण की अध्यक्षता में पुनः श्रमण-संघ एकत्रित हुआ। स्कन्दिल और नागार्जुन के पश्चात् दुष्काल ने हृदय को कम्पा देने वाले नाखूनी पंजे फैलाये! अनेक श्रुतधर श्रमण काल-कवलित हो गये। श्रुत की महान् क्षति हुयी। दुष्काल परिसमाप्ति के बाद वल्लभी में पुनः जैन संघ सम्मिलित हुआ। देवर्द्धि गणि ग्यारह अंग और एक पूर्व से भी अधिक श्रुत के ज्ञाता थे। श्रमण-सम्मेलन में त्रुटित और अत्रुटित सभी आगमपाठों का स्मृति-सहयोग से संकलन हुआ। श्रुत को स्थायी रूप प्रदान करने के लिए उसे पुस्तकारूढ किया गया। आगम लेखन का कार्य आर्यरक्षित के युग में अंश रूप से प्रारम्भ हो गया था। अनुयोगद्वार में द्रव्यश्रुत और भावश्रुत का उल्लेख है। पुस्तक लिखित श्रुत को द्रव्यश्रुत माना गया है।[७०]

आर्य स्कन्दिल और नागार्जुन के समय में भी आगमों को लिपिबद्ध किया गया था। ऐसा उल्लेख मिलता है।[७१] किन्तु देवर्द्धिगणि के कुशल नेतृत्व में आगमों का व्यवस्थित संकलन और लिपिकरण हुआ है इसलिये

---

६९ (क) मिउमद्दवसपण्णे अणुपुव्वि वायगत्तणं पत्ते।
ओहसुयसमायारे णागज्जुणवायए वंदे॥ —नन्दीसूत्र गाथा ३५

(ख) लाइफ इन ऐश्यंट इण्डिया एज डेपिक्टेड इन दी जैन कैनंस। पृष्ठ—३२-३३
—(ला० इन ए० इ०) डा० जगदीशचन्द्र जैन बम्बई, १९४७

(ग) योगशास्त्र प्र. ३, पृ. २०७

७० से किं तं दव्वसुअं? पत्तयपोत्थयलिहिअं —अनुयोगद्वार सूत्र

७१ जिनवचनं च दुष्षमाकालवशादुच्छिन्नप्रायमिति मत्वा भगवद्भिर्नागार्जुनस्कन्दिलाचार्यप्रभृतिभिः पुस्तकेषु न्यस्तम्। —योगशास्त्र, प्रकाश ३ पत्र २०७

आगम-लेखन का श्रेय देवर्द्धिगणि को प्राप्त है। इस संदर्भ में एक प्रसिद्ध गाथा है कि वल्लभी नगरी में देवर्द्धिगणि प्रमुख श्रमण संघ ने वीर-निर्वाण ९८० में आगमों को पुस्तकारूढ किया था।[72]

देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण के समक्ष स्कन्दिली और नागार्जुनीय ये दोनों वाचनाएं थी, नागार्जुनीय वाचना के प्रतिनिधि आचार्य कालक (चतुर्थ) थे। स्कन्दिली वाचना के प्रतिनिधि स्वयं देवर्द्धि गणि थे। हम पूर्व लिख चुके हैं आर्य स्कन्दिल और आर्य नागार्जुन दोनों का मिलन न होने से दोनों वाचनाओं में कुछ भेद था।[73] देवर्द्धि गणि ने श्रुतसंकलन का कार्य बहुत ही तटस्थ नीति से किया। आचार्य स्कन्दिल की वाचना को प्रमुखता देकर नागार्जुनीय वाचना को पाठान्तर के रूप में स्वीकार कर अपने उदात्त मानस का परिचय दिया, जिससे जैनशासन विभक्त होने से बच गया। उनके भव्य प्रयत्न के कारण ही श्रुतनिधि आज तक सुरक्षित रह सकी।

आचार्य देवर्द्धि गणि ने आगमों को पुस्तकारूढ किया। यह बात बहुत ही स्पष्ट है। किन्तु उन्होंने किन किन आगमों का पुस्तकारूढ किया? इसका स्पष्ट उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता। नन्दीसूत्र में श्रुतसाहित्य की लम्बी सूची है। किन्तु नन्दीसूत्र देवर्द्धि गणी की रचना नहीं है। उसके रचनाकार आचार्य देव वाचक है। यह बात नन्दीचूर्णि और टीका से स्पष्ट है।[74] इस दृष्टि से नन्दी सूची में जो नाम आये हैं, वे सभी देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण के द्वारा लिपिबद्ध किये गये हों, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। पण्डित दलसुख मालवणिया[75] का यह अभिमत है कि अंगसूत्रों को तो पुस्तकारूढ किया ही गया था और जितने अंगबाह्य ग्रन्थ जो नन्दी से पूर्व हैं, वे पहले से ही पुस्तकारूढ होंगे। नन्दी की आगमसूची में ऐसे कुछ प्रकीर्णक ग्रन्थ हैं, जिनके रचयिता देवर्द्धिगणि के बाद के आचार्य है। सम्भव है उन ग्रन्थों को बाद में आगम की कोटि में रखा गया हो।

कितने ही विज्ञों का यह अभिमत है कि वल्लभी में सारे आगमों को व्यवस्थित रूप दिया गया। भगवान् महावीर के पश्चात् एक सहस्र वर्ष में जितनी भी मुख्य मुख्य घटनाएँ घटित हुई, उन सभी प्रमुख घटनाओं को समावेश यत्र तत्र आगमों में किया गया। जहाँ जहाँ पर समान आलापकों का बार-बार पुनरावर्त्तन होता था उन आलापकों को संक्षिप्त कर एक दूसरे का पूर्तिसंकेत एक दूसरे आगम में किया गया। जो वर्तमान में आगम उपलब्ध है, वे देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण की वाचना के है। उसके पश्चात् उसमें परिवर्तन और परिवर्धन नहीं हुआ।[76]

यह सहज ही जिज्ञासा उद्बुद्ध हो सकती है कि आगम-संकलना यदि एक ही आचार्य की है तो अनेक स्थानों पर विसंवाद क्यों है? उत्तर में निवेदन है कि सम्भव है उसके दो कारण हों। जो श्रमण उस समय विद्यमान थे उन्हें जो-जो आगम कण्ठस्थ थे उन्हीं का संकलन किया गया था। संकलनकर्त्ता को देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने एक ही बात दो भिन्न आगमों में भिन्न प्रकार से कही है यह जानकर के भी उसमें हस्तक्षेप करना अपनी अनधिकार चेष्टा समझी हो। वे समझते थे कि सर्वज्ञ की वाणी में परिवर्तन करने से अनन्त संसार बढ़ सकता है। दूसरी बात यह भी हो सकती है—नौवीं शताब्दी में सम्पन्न हुई माथुरी और वल्लभी वाचना की परम्परा

---

७२ वलहीपुरम्मि नयरे, देवड्ढिपमुहेण समणसंघेण।
पुत्थइ आगमु लिहियो नवसय असीआओ विराओ॥

७३ परोप्परमसंपण्णमेलावा य तस्समयाओ खंदिल्लनागज्जुणायरिया काल काउं देवलोगं गया। तेण तुल्लयाए वि तद्धरियसिद्धंताणं जो संजाओ कथंम (कहमवि) वायणा भेओ सो य न चालिओ पच्छिमेहिं।

—कहावली-२९८

७४ नन्दीसूत्र चूर्णि पृ १३।

७५ जैनदर्शन का आदिकाल, पृ ७

७६ दसवेआलियं, भूमिका, पृ २७, आचार्य तुलसी

के जो श्रमण बचे थे, उन्हें जितना स्मृति में था, उतना ही देवर्द्धिगणि ने संकलन किया था, सम्भव है वे श्रमण बहुत सारे आलापक भूल हो गये हों, जिससे भी विसंवाद हुये हैं।[७७]

ज्योतिष्करण्ड की वृत्ति[७८] में यह प्रतिपादित किया गया है कि इस समय जो अनुयोगद्वार सूत्र उपलब्ध है वह माथुरी वाचना का है। ज्योतिष्करण्ड ग्रन्थ के लेखक आचार्य वल्लभी वाचना की परम्परा के थे। यही कारण है कि अनुयोगद्वार और ज्योतिष्करण्ड के संख्यास्थानों में अन्तर है। अनुयोगद्वार में शीर्षप्रहेलिका की संख्या एक सौ छानवे (१९६) अंकों की है और ज्योतिष्करण्ड में शीर्षप्रहेलिका की संख्या २५० अंकों की है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आगमों को व्यवस्थित करने के लिये समय समय पर प्रयास किया गया है। व्याख्याक्रम और विषयगत वर्गीकरण की दृष्टि से आर्य रक्षित ने आगमों को चार भागों में विभक्त किया है—(१) चरणकरणानुयोग—कालिकश्रुत, (२) धर्मकथानुयोग—ऋषिभाषित उत्तराध्ययन आदि, (३) गणितानुयोग—सूर्यप्रज्ञप्ति आदि। (४) द्रव्यानुयोग—दृष्टिवाद या सूत्रकृत् आदि। प्रस्तुत वर्गीकरण विषय सादृश्य की दृष्टि से है। व्याख्याक्रम की दृष्टि से आगमों के दो रूप हैं—(१) अपृथक्त्वानुयोग, (२) पृथक्त्वानुयोग। आर्य रक्षित से पहले अपृथक्त्वानुयोग प्रचलित था। उसमें प्रत्येक सूत्र का चरण-करण, धर्मकथा, गणित और द्रव्य दृष्टि से विश्लेषण किया जाता था। यह व्याख्या अत्यन्त ही जटिल थी। इस व्याख्या के लिये प्रकृष्ट प्रतिभा की आवश्यकता होती थी। आर्य रक्षित ने देखा—महामेधावी दुर्बलिका पुष्यमित्र जैसे—प्रतिभासम्पन्न शिष्य भी उसे स्मरण नहीं रख पा रहे हैं तो मन्दबुद्धि वाले श्रमण उसे कैसे स्मरण रख सकेंगे? उन्होंने पृथक्त्वानुयोग का प्रवर्तन किया जिससे चरण-करण प्रभृति विषयों की दृष्टि से आगमों का विभाजन हुआ।[७९] जिनदासगणि महत्तर ने लिखा है कि अपृथक्त्वानुयोग के काल में प्रत्येक सूत्र का विवेचन चरण करण आदि चार अनुयोगों तथा ७०० नयों से किया जाता था। पृथक्त्वानुयोग के काल में चारों अनुयोगों की व्याख्या पृथक् पृथक् की जाने लगी।[८०]

नन्दीसूत्र में आगम साहित्य को अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य, इन दो भागों में विभक्त किया है।[८१] अंगबाह्य के आवश्यक, आवश्यकव्यतिरिक्त, कालिक, उत्कालिक आदि अनेक भेद प्रभेद किये हैं। दिगम्बर परम्परा के तत्त्वार्थसूत्र की श्रुतसागरीय वृत्ति में भी अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य ये दो आगम के भेद किये हैं।[८२] अंगबाह्य आगमों की सूची में श्वेताम्बर और दिगम्बर में मतभेद है। किन्तु दोनों ही परम्पराओं में अंगप्रविष्ट के नाम एवं संख्या मिलते हैं, जो प्रचलित हैं।

श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी, तेरापंथी सभी अंगसाहित्य को मूलभूत आगमग्रन्थ मानते हैं, और सभी की दृष्टि से दृष्टिवाद का सर्वप्रथम विच्छेद हुआ है। यह पूर्ण सत्य है कि जैन आगम साहित्य किसी न

---

७७ सामाचारीशतक, आगम स्थापनाधिकार-३८

७८ (क) सामाचारीशतक आगम स्थापनाधिकार-३८

(ख) गच्छाचार-पत्र—३ से ४।

७९ अपुहुत्ते अणुओगो चत्तारि दुवार भासई एगो।
पुहुत्ताणुओगकरणे ते अत्था तओ उ वुच्छिन्ना॥
देविन्दवन्दिएहिं महाणुभावेहिं रक्खिअ अज्जेहिं।
जुगमासज्ज विहत्तो अणुओगो तो कओ चउहा॥ —आवश्यकनिर्युक्ति गाथा ७७३-७७४

८० जत्थ एते चत्तारि अणुयोगा पिहप्पिहं वक्खाणिज्जंति पुहुत्ताणुयोगो, अपुहुत्ताणुजोगो पुण जं एक्केक्कं सुत्तं एतेहिं चउहिं वि अणुयोगेहिं सत्तहिं णयसतेहिं वक्खाणिज्जति॥ —सूत्रकृताङ्गचूर्णि पत्र—४

८१ तं समासओ दुविहं पण्णत्तं तं जहा—अंगपविट्ठं अंगबाहिरं च। —नन्दीसूत्र सू—७३।

८२ तत्त्वार्थसूत्र, श्रुतसागरीय वृत्ति १।२०

गम्भीरता का निय हुय है। तत्वनान का सूक्ष्म व गहा विश्लेपण उम म ह। पाश्चात्य चिन्तक डा हमन जकोबी न अगशास्त्र की प्रामाणिकता क सम्बन्ध म पर्याप्त प्रकाश डाला है। व अगशास्त्र का वस्तुत जनश्रुत मानते ह उसी के आधार पर उन्हाने जनधम की प्राचीनता सिद्ध करन का प्रयास किया है, और वे उस म सफल भी हुए है।[83]

'जैन आगम साहित्य मनन और मीमासा' ग्रन्थ म मन बहुत विस्तार क साथ आगम साहित्य के हर पहलू पर चितन किया ह। विस्तारभय स उन सभी विषया पर चितन न कर उस ग्रन्थ का देखन का सूचन करता हू। यहा अब हम स्थानागसूत्र क सम्बन्ध म चिन्तन करेंगे।

स्थानाङ्ग—स्वरूप और परिचय

द्वादशागा म स्थानाग का तृतीय स्थान ह। यह शब्द 'स्थान' और 'अग' इन दो शब्दा के मेल स निर्मित हुआ है। 'स्थान' शब्द अनेकार्थी ह। आचाय देववाचक[84] न और गुणधर[85] न लिखा है कि प्रस्तुत आगम म एक स्थान स लेकर दश स्थान तक जीव और पुद्गल के विविध भाव वर्णित ह, इसलिये इस का नाम 'स्थान' रखा गया है। जिनदास गणि महत्तर न[86] लिखा ह—जिसका स्वरूप स्थापित किया जाय व ज्ञापित किया जाय वह स्थान है। आचाय हरिभद्र न[87] कहा ह—जिस म जीवादि का व्यवस्थित रूप से प्रतिपादन किया जाता ह, वह स्थान है। उपदेशमाला म स्थान का अथ "मान" अर्थात परिमाण दिया है। प्रस्तुत आगम म तत्त्वा क एक स लेकर दश तक सख्या वाले पदार्थो का उल्लख है, अत इसे स्थान कहा गया ह। स्थान शब्द का दूसरा अथ उपयुक्त भी ह। इस म तत्त्वा का क्रम स उपयुक्त चुनाव किया गया है। स्थान शब्द का तृतीय अथ विश्रान्तिस्थल भी है, और अग का सामान्य अथ 'विभाग' ह। इस म सख्याक्रम स जीव, पुद्गल, आदि की स्थापना की गई है। अत इस का नाम 'स्थान' या 'स्थानाङ्ग' है।

आचाय गुणधर[88] ने स्थानाङ्ग का परिचय प्रदान करते हुय लिखा है कि स्थानाङ्ग म सग्रहनय की दृष्टि से जीव की एकता का निरूपण है। तो व्यवहार नय की दृष्टि स उस की भिन्नता का भी प्रतिपादन किया गया है। सग्रहनय की अपेक्षा चतन्य गुण की दृष्टि से जीव एक ह। व्यवहार नय की दृष्टि स प्रत्येक जीव अलग-अलग ह। ज्ञान और दशन की दृष्टि स वह दो भागा म विभक्त हैं। इस तरह स्थानाङ्ग सूत्र म सख्या की दृष्टि स जीव, अजीव, प्रभृति द्रव्या की स्थापना की गयी है। पयाय की दृष्टि स एक तत्त्व अनन्त भागा म विभक्त होता ह। और द्रव्य की दृष्टि से व अनन्त भाग एक तत्त्व म परिणत हो जात है। इस प्रकार भेद और अभेद की दृष्टि से व्याख्या, स्थानाङ्ग म है।

---

83 जैनसूत्राज्—भाग १ प्रस्तावना पृष्ठ—९

84 ठाणेण एगाइयाए एगुत्तरियाए वुड्ढीए दसट्ठाणगविवड्ढियाण भावाण परूवणा आघविज्जति

—नन्दीसूत्र सूत्र ८२

85 ठाण णाम जीवपुदगलादीणामगादिएगुत्तरकमेण ठाणाणि वण्णेदि। —कसायपाहुड, भाग १, पृ १२३

86 ठाविज्जति त्ति स्वरूपत स्थाप्यन्ते प्रज्ञाप्यन्त इत्यथ। —नन्दीसूत्रचूर्णि, पृष्ठ ६४

87 तिष्ठन्त्यस्मिन प्रतिपादनया जीवादय इति स्थानम् स्थानेन स्थाने वा जीवा स्थाप्यन्त व्यवस्थित-स्वरूपप्रतिपादनयेति हृदयम्। —नन्दीसूत्र हरिभद्रीया वृत्ति पृ ७०

88 एक्को चेव महप्पा सो दुवियप्पो तिलक्खणो भणिओ।
चदुसकमणाजुत्तो पचग्गगुणप्पहाणो य॥
छक्कापक्कमजुत्तो उवजुत्तो सत्तभगिसब्भावो।
अट्ठासवो णवट्ठो जीवो दसट्ठाणिओ भणिओ॥ —कसायपाहुड, भाग-१ पृ-११३। ६४, ६५

स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग और इन दोनों आगमों में विषय की प्रधानता न देकर संख्या को प्रधानता दी गई है। संख्या के आधार पर विषय का संकलन आकलन किया गया है। एक विषय की दूसरे विषय के साथ इस में सम्बन्ध की अन्वेषणा नहीं की जा सकती। जीव, पुद्गल, इतिहास, गणित, भूगोल, खगोल, दर्शन, आचार, मनोविज्ञान, आदि शताधिक विषय बिना किसी क्रम के इस में सङ्कलित किये गये हैं। प्रत्येक विषय पर विस्तार से चिन्तन न कर संख्या की दृष्टि से आकलन किया गया है। प्रस्तुत आगम में अनेक ऐतिहासिक सत्य तथ्य रहे हुए हैं। यह एक प्रकार से कोश की शैली में ग्रथित आगम है जो स्मरण करने की दृष्टि से बहुत ही उपयोगी है। जिस युग में आगम-लेखन की परम्परा नहीं थी, संभवत: उस समय कण्ठस्थ रखने की सुविधा के लिये यह शैली अपनाई गया हो। यह शैली जैन परम्परा के आगमों में ही नहीं, वैदिक और बौद्ध परम्परा के ग्रन्थों में भी प्राप्त होती है। महाभारत के वनपर्व, अध्याय एक सौ चौतीस में भी इसी शैली में विचार प्रस्तुत किये गये हैं। बौद्ध ग्रन्थ अङ्गुत्तरनिकाय, पुग्गल पञ्ञत्ति, महाव्युत्पत्ति एवं धर्मसंग्रह में यही शैली दृष्टिगोचर होती है।

जैन आगम साहित्य में तीन प्रकार के स्थविर बताये हैं। उन में श्रुतस्थविर के लिये 'ठाण समवायधरे' यह विशेषण आया है। इस विशेषण से यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत आगम का कितना अधिक महत्त्व रहा है।[८९] आचार्य अभयदेव ने स्थानाङ्ग की वाचना कब लेनी चाहिए, इस सम्बन्ध में लिखा है कि दीक्षा पर्याय की दृष्टि से आठवें वर्ष में स्थानाङ्ग की वाचना देनी चाहिये। यदि आठवें वर्ष से पहले कोई वाचना देता है तो उसे आज्ञा भंग आदि दोष लगते हैं।[९०]

व्यवहारसूत्र के अनुसार स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग के ज्ञाता को ही आचार्य, उपाध्याय और गणावच्छेदक पद देने का विधान है। इसलिये इस अंग का कितना गहरा महत्त्व रहा हुआ है, यह इस विधान से स्पष्ट है।[९१]

समवायाङ्ग और नन्दीसूत्र में स्थानाङ्ग का परिचय दिया गया है। नन्दीसूत्र में स्थानाङ्ग की जो विषय सूची आई है वह समवायाङ्ग की अपेक्षा संक्षिप्त है। समवायाङ्ग अङ्ग होने के कारण नन्दीसूत्र से बहुत प्राचीन है समवायाङ्ग की अपेक्षा नन्दीसूत्र में विषय सूची संक्षिप्त क्यों हुई? यह आगम मर्मज्ञों के लिये चिन्तनीय प्रश्न है।

समवायाङ्ग के अनुसार स्थानाङ्ग की विषयसूची इस प्रकार है।

(१) स्वसिद्धान्त, परसिद्धान्त और स्व-पर-सिद्धान्त का वर्णन है।

(२) जीव, अजीव और जीवाजीव का कथन।

(३) लोक, अलोक और लोकालोक का कथन।

(४) द्रव्य के गुण, और विभिन्न क्षेत्रकालवर्ती पर्यायों पर चिन्तन।

(५) पर्वत, पानी, समुद्र, देव, देवों के प्रकार, पुरुषों के विभिन्न प्रकार, स्वरूप गोत्र, नदियों, निधियों, और ज्योतिष्क देवों की विविध गतियों का वर्णन।

(६) एक प्रकार, दो प्रकार, यावत दस प्रकार के लोक में रहने वाले जीवों और पुद्गलों का निरूपण किया गया है।

नन्दीसूत्र में स्थानाङ्ग की विषयसूची इस प्रकार है—प्रारम्भ में तीन नम्बर तक समवायाङ्ग की तरह ही विषय का निरूपण है किन्तु व्युत्क्रम से है। चतुर्थ और पाँचवें नम्बर की सूची बहुत ही संक्षेप में है। जब टङ्क

---

८९ ववहारसुत्त, सूत्र १८ पृ १७४—मुनि कन्हैयालाल 'कमल'

९० *ठाण समवाओऽवि य अंग ते अट्ठवासस्स अन्यथा दानऽस्याज्ञाभङ्गादयो दोषा* —स्थानाङ्ग टीका

९१ *ठाण-समवायधरे कप्पइ आयरित्ताए उवज्झायत्ताए गणावच्छेइयत्ताए उद्दिसित्तए।*

—व्यवहारसूत्र—उ-३ सू ६८।

कूट, शैल, शिखरी, प्राग्भार, गुफा आकर, द्रह, और सरिताओं का कथन है। छठे नम्बर में कही हुयी बात नन्दी में भी इसी प्रकार है।

समवायाङ्ग[92] व नन्दीसूत्र[93] के अनुसार स्थानाङ्ग की वाचनाए सख्येय हैं, उसमें सख्यात श्लोक है, सख्यात सग्रहणियाँ है। आगमसाहित्य में उस का तृतीय स्थान है। उस में एक श्रुतस्कन्ध है, दश अध्ययन हैं। इक्कीस उद्देशनकाल है। बहत्तर हजार पद है। सख्यात अक्षर है यावत जिन प्रज्ञप्त पदार्थों का वर्णन है।

स्थानाङ्ग में दश अध्ययन है। दश अध्ययनों का एक ही श्रुतस्कन्ध है। द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अध्ययन के चार चार उद्देशक है। पंचम अध्ययन के तीन उद्देशक है। शेष छह अध्ययनों में एक-एक उद्देशक हैं। इस प्रकार इक्कीस उद्देशक है। समवायाग और नन्दीसूत्र के अनुसार स्थानाङ्ग की पदसख्या बहत्तर हजार कही गई है। आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित स्थानाङ्ग की सटीक प्रति में सात सौ ८३ (७८३) सूत्र है। यह निश्चित है कि वर्तमान में उपलब्ध स्थानाङ्ग में बहत्तर हजार पद नही है। वर्तमान में प्रस्तुत सूत्र का पाठ ३७७० श्लोक परिमाण है।

स्थानाङ्गसूत्र एसा विशिष्ट आगम है जिसमें चारों ही अनुयोगों का समावेश है। मुनि श्री कन्हैयालाल जी "कमल" ने लिखा है कि 'स्थानाङ्ग में द्रव्यानुयोग की दृष्टि से ४२६ सूत्र चरणानुयोग की दृष्टि से २१४ सूत्र गणितानुयोग की दृष्टि से १०९ सूत्र और धर्मकथानुयोग की दृष्टि से ५१ सूत्र है। कुल ८०० सूत्र हुये। जब कि मूल सूत्र ७८३ है। उन में कितने ही सूत्रों में एक-दूसरे अनुयोग से सम्बन्ध है। अत अनुयोग-वर्गीकरण की दृष्टि से सूत्रों की सख्या में अभिवृद्धि हुई है।

क्या स्थानाङ्ग अर्वाचीन है ?

स्थानाङ्ग में श्रमण भगवान महावीर के पश्चात दूसरी से छठी शताब्दी तक की अनेक घटनाएँ उल्लिखित हैं जिससे विद्वानों को यह शका हो गयी है कि प्रस्तुत आगम अर्वाचीन है। वे शकाएँ इस प्रकार हैं—

(१) नववें स्थान में गोदासगण, उत्तरबलिस्सहगण उद्देहगण चारणगण, उडुवातितगण, विस्सवातितगण कामड्ढिगण माणवगण, और कोडितगण इन गणों की उत्पत्ति का विस्तृत उल्लेख कल्पसूत्र में है।[94] प्रत्येक गण की चार-चार शाखाएँ, उद्देह आदि गणों के अनेक कुल थे। ये सभी गण श्रमण भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात दो सौ से पाँच सौ वर्ष की अवधि तक उत्पन्न हुये थे।

(२) सातवें स्थान में जमालि तिष्यगुप्त आषाढ, अश्वमित्र, गङ्ग, रोहगुप्त, गोष्ठामाहिल इन सात निह्नवों का वर्णन है। इन सात निह्नवों में से दो निह्नव भगवान महावीर को केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद हुए और शेष पाच निर्वाण के बाद हुये।[95] इनका अस्तित्वकाल भगवान् महावीर के केवलज्ञान प्राप्ति के चौदहवर्ष बाद से निर्वाण के पाँच सौ चौरासी वर्ष पश्चात तक का है।[96] अर्थात् वे तीसरी शताब्दी से लेकर छट्ठी शताब्दी के मध्य में हुये।

उत्तर में निवेदन है कि जैन दृष्टि से श्रमण भगवान महावीर सर्वज्ञ सर्वदर्शी थे। अत वे पश्चात होने

---

९२ समवायाग—सूत्र १३९, पृष्ठ १२३, मुनि कन्हैयालाल जी म

९३ नन्दी ८७ पृष्ठ ३५, पुण्यविजयजी म

९४ कल्पसूत्र सूत्र—२०६ से २१६ तक—देवेन्द्रमुनि

९५ णाणुप्पत्तीए दुवे उप्पण्णा णिव्वुए सेसा। —आवश्यकनियुक्ति, गाथा—७८४

९६ चोद्दस सोलसवासा, चोद्दस वीसुत्तरा य दोण्णि सया।
अट्ठावीसा य दुवे, पचेव सया उ चोयाला॥ —आवश्यकनियुक्ति, गाथा—७८३, ७८४

नागी घटनाओं का सकेत करें इसमें किसी भी प्रकार का आश्चर्य नहीं है। जैसे—नवम स्थान में आगामी उत्सर्पिणी-काल के भावी तीर्थंकर महापद्म का चरित्र दिया है। और भी अनेक भविष्य में होने वाली घटनाओं का उल्लेख है।

दूसरी बात यह है कि पहले आगम श्रुतिपरम्परा के रूप में चले आ रहे थे। जब आचार्य स्कन्दिल और देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के समय लिपिबद्ध किये गये। उस समय के घटनाएँ, जिनका प्रस्तुत आगम में उल्लेख है घटित हो चुकी थी। अतः जन मानस में भ्रान्ति उत्पन्न न हो जाए इस दृष्टि से आचार्य प्रवरों ने भविष्य-काल के स्थान पर भूतकाल की क्रिया देकर उस समय तक घटित घटनाएँ उसमें संकलित कर दी हों। इस प्रकार दो-चार घटनाएँ भूतकाल की क्रिया में निर्दिष्ट मात्र से प्रस्तुत आगम गणधरकृत नहीं हैं, इस प्रकार प्रतिपादन करना उचित नहीं है।

यह संख्या-निबद्ध आगम है। इसमें सभी प्रतिपाद्य विषयों का समावेश एक से दस तक की संख्या में किया गया है। एतदर्थ ही इसके दस अध्ययन हैं। प्रथम अध्ययन में संग्रहनय की दृष्टि से चिन्तन किया गया है। संग्रहनय अभेद दृष्टिप्रधान है। स्वजाति के विरोध के बिना समस्त पदार्थों का एकत्व में संग्रह करना अर्थात् अस्तित्वधर्म को न छोड़कर सम्पूर्ण-पदार्थ अपने-अपने स्वभाव में स्थित हैं। इसलिये सम्पूर्ण पदार्थों का सामान्य रूप से ज्ञान करना संग्रहनय है।

आत्मा एक है। यहाँ द्रव्यदृष्टि से एकत्व का प्रतिपादन किया गया है। जम्बूद्वीप एक है। क्षेत्र की दृष्टि से एकत्व विवक्षित है। एक समय में एक ही मन होता है। यह काल की दृष्टि से एकत्व निरूपित है। शब्द एक है। यह भाव की दृष्टि से एकत्व का प्रतिपादन है। इस तरह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से वस्तुतत्त्व पर चिन्तन किया गया है।

प्रस्तुत स्थान में अनेक ऐतिहासिक तथ्यों की सूचनाएँ भी हैं। जैसे—भगवान महावीर अकेले ही परिनिर्वाण को प्राप्त हुए थे। मुख्य रूप से तो द्रव्यानुयोग और चरणकरणानुयोग से सम्बन्धित वर्णन है।

प्रत्येक अध्ययन की एक ही सदृश के लिये स्थान शब्द व्यवहृत हुआ है। आचार्य अभयदेव ने स्थान के साथ अध्ययन भी कहा है।[१७] अन्य अध्ययनों की अपेक्षा आकार की दृष्टि से यह अध्ययन छोटा है। बीज रूप से जिन विषयों का संकेत इस स्थान में किया गया है, उनका विस्तार अगले स्थानों में उपलब्ध है। आधार की दृष्टि से प्रथम स्थान का अपना महत्त्व है।

द्वितीय स्थान में दो की संख्या से सम्बद्ध विषयों का वर्गीकरण किया गया है। इस स्थान का प्रथम सूत्र है— जदत्थि णं लोगे तं सव्वं दुपओआरं।

जैन दर्शन चेतन और अचेतन ये दो मूल तत्त्व मानता है। शेष सभी भेद प्रभेद उसके अवान्तर प्रकार हैं। यों जैन दर्शन में अनेकान्तवाद का प्रमुख स्थान है। अपेक्षादृष्टि से वह द्वैतवादी भी है और अद्वैतवादी भी है। संग्रहनय की दृष्टि से अद्वैत सत्य है। लोक में चेतन का और अचेतन में चेतन का अत्यन्ताभाव होने से द्वैत भी सत्य है। प्रथम स्थान में अद्वैत का निरूपण है तो द्वितीय स्थान में द्वैत का प्रतिपादन है। पहले स्थान में उद्देशक नहीं है द्वितीय स्थान में चार उद्देशक हैं। पहले स्थान की अपेक्षा यह स्थान बड़ा है।

प्रस्तुत स्थान में जीव और अजीव, त्रस और स्थावर, सयोनिक और अयोनिक, आयुसहित और आयुरहित, धर्म और अधर्म, बन्ध और मोक्ष, आदि विषयों की संयोजना है। भगवान् महावीर के युग में मोक्ष के सम्बन्ध में दार्शनिकों की विविध धारणाएं थीं। कितने ही विद्या से मोक्ष मानते थे और कितने ही आचरण से।

---

१७ तत्र च दशाध्ययनानि —स्थानाङ्ग वृत्ति पत्र—३

जैन दर्शन अनेकान्तवादी दृष्टिकोण को लिये हुए है। उस का यह वज्र आघोष है कि न केवल विद्या से मोक्ष है और न केवल आचरण से। वह इन दोनों के समन्वित रूप को मोक्ष का साधन स्वीकार करता है। भगवान् महावीर की दृष्टि से विश्व की सम्पूर्ण समस्याओं का मूल हिंसा और परिग्रह है। इन का त्याग करने पर ही बोधि की प्राप्ति होती है। सत्य का अनुभव होता है। इस में प्रमाण के दो भेद बताये है। प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष के दो प्रकार हैं—केवलज्ञान प्रत्यक्ष और नो-केवलज्ञान प्रत्यक्ष। इस प्रकार इस में तत्त्व, आचार, क्षेत्र, काल, प्रभृति अनेक विषयों का निरूपण है। विविध दृष्टियों से इस स्थान का महत्त्व है। कितनी ही ऐसी बातें इस स्थान मे आयी है जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

तृतीय स्थान में तीन की संख्या से सम्बन्धित वर्णन है। यह चार उद्देशकों में विभक्त है। इस में तात्त्विक विषयों पर जहा अनेक त्रिभगियां हैं वहा मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक विषयों पर भी त्रिभगियाँ हैं। त्रिभगियों के माध्यम से शाश्वत सत्य का मार्मिक ढग से उद्घाटन किया गया है। मानव के तीन प्रकार हैं। कितने ही मानव बोलने के बाद मन में अत्यन्त आह्लाद का अनुभव करते हैं और कितने ही मानव भयंकर दु ख का अनुभव करते हैं तो कितने ही मानव न सुख का अनुभव करते हैं और न दु ख का अनुभव करते है। जो व्यक्ति सात्त्विक हित मित, आहार करते हैं वे आहार के बाद सुख की अनुभूति करते हैं। जो लोग अहितकारी या मात्रा में अधिक भोजन करते हैं वे भोजन करने के पश्चात् दु ख का अनुभव करते हैं। जो साधक आत्मस्थ होते है, वे आहार के बाद बिना सुख दु ख अनुभव किये तटस्थ रहते है। त्रिभगी के माध्यम से विभिन्न मनोवृत्तियों का सुन्दर विश्लेषण हुआ है।

श्रमण-आचार संहिता के सम्बन्ध मे तीन बातों के माध्यम से ऐसे रहस्य भी बताये हैं जो अन्य आगम साहित्य में बिखरे पड़े हैं। श्रमण तीन प्रकार के पात्र रख सकता है—तुम्बा, काष्ठ मिट्टी का पात्र। निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थियां तीन कारणों से वस्त्र धारण कर सकते हैं—लज्जानिवारण, जुगुप्सानिवारण और परीषह-निवारण। दशवैकालिक[98] में वस्त्रधारण के सयम और लज्जा ये दो कारण बताये है। उत्तराध्ययन[99] में तीन कारण है—लोकप्रतीति सयमयात्रा का निर्वाह और मुनित्व की अनुभूति। प्रस्तुत आगम में जुगुप्सानिवारण यह नया कारण दिया है। स्वय की अनुभूति लज्जा है और लोकानुभूति जुगुप्सा है। नग्न व्यक्ति को निहार कर जन-मानस में सहज घृणा होती है। आवश्यक चूर्णि, महावीरचरियं, आदि में यह स्पष्ट बताया गया है कि भगवान् महावीर को नग्नता के कारण अनेक बार कष्ट सहन करने पड़े थे। प्रस्तुत स्थान में अनेक महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख है। तीन कारणों से अल्पवृष्टि अनावृष्टि होती है। माता पिता और आचार्य आदि के उपकारों से उऋण नही बना जा सकता।

चतुर्थ स्थान में चार की संख्या से सम्बद्ध विषयों का आकलन किया गया है। यह स्थान भी चार उद्देशकों में विभक्त है। तत्त्व जैसे दार्शनिक विषय को चौ-भंगियों के माध्यम से सरल रूप में प्रस्तुत किया गया है। अनेक चतुर्भङ्गियाँ मानव मन का सफल चित्रण करती है। वृक्ष, फल, वस्त्र आदि वस्तुओं के माध्यम से मानव की मनोदशा का गहराई से विश्लेषण किया गया है। जैसे कितने ही वृक्ष मूल में सीधे रहते हैं पर ऊपर जाकर टेढ़े बन जाते हैं। कितने ही मूल मे सीधे रहते हैं और सीधे ही ऊपर बढ़ जाते हैं। कितने ही वृक्ष मूल में भी टेढ़े होते है और ऊपर जाकर के भी टेढ़े ही होते हैं। और कितने ही वृक्ष मूल में टेढ़े होते हैं और ऊपर जाकर सीधे हो जाते हैं। इसी तरह मानवों का स्वभाव होता है। कितने ही व्यक्ति मन से सरल होते हैं और व्यवहार से भी। कितने ही व्यक्ति हृदय से सरल होते हुये भी व्यवहार से कुटिल होते हैं। कितने ही व्यक्ति

98. दशवैकालिक सूत्र, अध्य ६, गाथा—१९।

99. उत्तराध्ययन सूत्र अ २३ गाथा—३२।

मन से सरल नहीं होते और बाह्य परिस्थितिवश सरलता का प्रदर्शन करते हैं तो कितने ही व्यक्ति अन्तर में भी कुटिल होते हैं।

विभिन्न मनोवृत्ति के लोग विभिन्न युग में होते हैं। दक्षिण कितनी मार्मिक चौभंगी—कितने ही मानव आम्रप्रलम्ब कोरक के सदृश होते हैं जो सेवा करने वाले का योग्य समय में योग्य उपकार करते हैं। कितने ही मानव तालप्रलम्ब कोरक के सदृश होते हैं, जो दीर्घकाल तक सेवा करने वाले का अत्यन्त कठिनाई से योग्य उपकार करते हैं। कितने ही मानव वल्लीप्रलम्ब कोरक के सदृश होते हैं, जो सेवा करने वाले का सरलता से शीघ्र ही उपकार कर देते हैं। कितने ही मानव मेष विषाण कोरक के सदृश होते हैं, जो सेवा करने वाले को केवल मधुर-वाणी के द्वारा प्रसन्न रखना चाहते हैं किन्तु उसका उपकार कुछ भी नहीं करना चाहते।

प्रसंगवश कुछ कथाओं के भी निर्देश प्राप्त होते हैं जैसे अन्तक्रिया करने वाले चार व्यक्तियों के नाम मिलते हैं। भरत चक्रवर्ती, गजसुकुमाल, सम्राट सनत्कुमार और मरुदेवी। इस तरह विविध विषयों का संकलन है। यह स्थान एक तरह से अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक सरस और ज्ञानवर्धक है।

पाँचवें स्थान में पाँच की संख्या से सम्बन्धित विषयों का संकलन हुआ है। यह स्थान तीन उद्देशकों में विभाजित है। तात्त्विक, भौगोलिक, ऐतिहासिक, ज्योतिष, योग, प्रभृति अनेक विषय इस स्थान में आये हैं। कोई वस्तु अशुद्ध होने पर उसकी शुद्धि की जाती है। पर शुद्धि के साधन एक सदृश नहीं होते। जैसे मिट्टी शुद्धि का साधन है। उससे बर्तन आदि साफ किये जाते हैं। पानी शुद्धि का साधन है। उससे वस्त्र आदि स्वच्छ किये जाते हैं। अग्नि शुद्धि का साधन है। उससे स्वर्ण, रजत आदि शुद्ध किये जाते हैं। मन्त्र भी शुद्धि का साधन है, जिससे वायुमण्डल शुद्ध होता है। ब्रह्मचर्य शुद्धि का साधन है। उससे आत्मा विशुद्ध बनता है।

प्रतिमा साधना की विशिष्ट पद्धति है। जिसमें उत्कृष्ट तप की साधना के साथ कायोत्सर्ग की निर्मल साधना चलती है। इसमें भद्रा, सुभद्रा, महाभद्रा सर्वतोभद्रा, और भद्रोत्तर प्रतिमाओं का उल्लेख है। जाति, कुल, कर्म, शिल्प और लिङ्ग के भेद से पाँच प्रकार की आजीविका का वर्णन है। गंगा, यमुना, सरयु, ऐरावती और मही नामक महानदियों को पार करने का निषेध किया गया है। चौबीस तीर्थंकरों में से वासुपूज्य, मल्ली, अरिष्टनेमि पार्श्व और महावीर ये पाँच तीर्थंकर कुमारावस्था में प्रव्रजित हुये थे। आदि अनेक महत्त्वपूर्ण उल्लेख प्रस्तुत स्थान में हुये हैं।

छट्ठे स्थान में छह की संख्या से सम्बन्धित विषयों का संकलन किया है। यह स्थान उद्देशकों में विभक्त नहीं है। इसमें तात्त्विक, दार्शनिक, ज्योतिष और संघ सम्बन्धी अनेक विषय वर्णित हैं। जैन दर्शन में षट्द्रव्य का निरूपण है। इनमें पाँच अमूर्त हैं और एक—पुद्गल द्रव्य मूर्त है।

गण को वह अनगार धारण कर सकता है जो छह कसौटियों पर खरा उतरता हो। (१) श्रद्धाशील पुरुष (२) सत्यवादी पुरुष (३) मेधावी पुरुष (४) बहुश्रुत पुरुष (५) शक्तिशाली पुरुष (६) कलहरहित पुरुष।

जाति से आर्य मानव छह प्रकार का होता है। अनेक अनछुए पहलुओं पर भी चिन्तन किया गया है। जाति और कुल से आर्य पर चिन्तन कर आर्य की एक नयी परिभाषा प्रस्तुत की है। इन्द्रियों से जो सुख प्राप्त होता है वह अस्थायी और क्षणिक है, यथार्थ नहीं। जिन इन्द्रियों से सुखानुभूति होती है उन इन्द्रियों से परिस्थिति-परिवर्तन होने पर दुःखानुभूति भी होती है। इसलिये इस स्थान में सुख और दुःख के छह छह प्रकार बताये हैं।

मानव को कैसा भोजन करना चाहिये? जैन दर्शन ने इस प्रश्न का उत्तर अनेकान्त दृष्टि से दिया है। जो भोजन साधना की दृष्टि से विघ्न उत्पन्न करता हो, वह उपयोगी नहीं है। और जो भोजन साधना के लिये सहायक होता है वह भोजन उपयोगी है। इसलिये श्रमण छह कारणों से भोजन कर सकता है और छह

कारणा से भाजन का त्याग कर सकता है। भूगाल, इतिहास, लोकस्थिति कालचक्र, शरीर-रचना आदि विविध-विषया का इसमें सकलन हुआ है।

सातवें स्थान म सात की सख्या से सम्बधित विपया का सकलन है। इस म उद्देशक नही है। जीव-विज्ञान, लोक स्थिति, सस्थान, नय, आसन, चक्रवर्ती रत्न, काल की पहचान, समुदघात, प्रवचननिह्नव, नक्षत्र, विनय के प्रकार आदि अनेक विषय हैं। साधना के क्षेत्र म अभय आवश्यक है। जिस के अन्तर्मानस म भय का साम्राज्य हो अहिंसक नही बन सकता। भय के मूल कारण सात बताये है। मानव को मानव से जो भय होता है वह इहलोक भय है। आधुनिक युग म यह भय अत्यधिक बढ गया है आज सभी मानवो के हृदय धडक रहे हैं इन मे सात कुलकरो का भी वर्णन है, जो आदि युग म अनुशासन करते थे। अन्यान्य ग्रन्थो म कुलकरो के सम्बन्ध म विस्तार से निरूपण है। उनके सूत्रबीज यहा रहे हुये हैं। स्वर, स्वरस्थान, और स्वर-मण्डल का विशद वर्णन है। अन्य ग्रन्थो म आये हुए इन विषयो की सहज म तुलना की जा सकती है।

आठवे स्थान म आठ की सख्या से सबधित विषयो को सकलित किया गया है। इस स्थान म जीव-विज्ञान कर्मशास्त्र लोकस्थिति, ज्योतिष, आयुर्वेद, इतिहास, भूगोल आदि के सम्बन्ध म विपुल सामग्री का सकलन हुआ है।

साधना के क्षेत्र म सघ का अत्यधिक महत्त्व रहा है। सघ म रहकर साधना सुगम रीति से सभव है। एकाकी साधना भी की जा सकती है। यह मार्ग कठिनता को लिये हुए है। एकाकी साधना करने वाले म विशिष्ट योग्यता अपेक्षित है। प्रस्तुत स्थान म सर्वप्रथम उसी का निरूपण है। एकाकी रहने के लिए वे योग्यताएँ अपेक्षित है। काश! आज एकाकी विचरण करने वाले श्रमण इस पर चिन्तन करें तो कितना अच्छा हो!

साधना के क्षेत्र म सावधानी रखने पर भी कभी कभी दोष लग जाते हैं। किन्तु माया के कारण उन दोषो की वह विशुद्धि नही हो पाती। मायावी व्यक्ति के मन म पाप के प्रति ग्लानि नही होती और न धर्म के प्रति दृढ आस्था ही होती है। माया को शास्त्रकार ने 'शल्य' कहा है। वह शल्य के समान मन को चुभती रहती है। माया से स्नेह-सम्बन्ध टूट जाते है। आलोचना करने के लिये शल्य-रहित होना आवश्यक है। प्रस्तुत स्थान म विस्तार से उस पर चिन्तन किया गया है। गणि सम्पदा, प्रायश्चित्त के भेद आयुर्वेद के प्रकार, कृष्णराजिपद, काकिणि रत्नपद जम्बूद्वीप म पर्वत आदि विषयो पर चिन्तन है। जिनका ऐतिहासिक व भौगोलिक दृष्टि से महत्त्व है।

नवम स्थान म नौ सख्या से सम्बन्धित विषयो का सकलन है। ऐतिहासिक ज्योतिष तथा अन्यान्य विषयो का सुन्दर निरूपण हुआ है। भगवान महावीर युग के अनेक एतिहासिक प्रसग इस म आये हैं। भगवान् महावीर के तीर्थ म नौ व्यक्तियो म तीर्थंकर नामकर्म का अनुबन्ध किया। उनके नाम इस प्रकार हैं—श्रेणिक, सुपार्श्व उदायी पोट्टिल अनगार दृढायु, शख श्रावक, शतक श्रावक, सुलसा श्राविका, रेवती श्राविका। राजा बिम्बिसार श्रेणिक के सम्बन्ध म भी इस म प्रचुर-सामग्री है। तीर्थंकर नामकर्म का बध करने वालो म पोट्टिल का उल्लेख है। अनुत्तरौपपातिक सूत्र म भी पोट्टिल अनगार का वर्णन प्राप्त है। वहाँ पर महाविदेह क्षेत्र म सिद्ध होने की बात लिखी है तो यहाँ पर भरतक्षेत्र म सिद्ध होने का उल्लेख है। इस से यह सिद्ध है कि पोट्टिल नाम के दो अनगार होने चाहिये। किन्तु ऐसा मानने पर नौ की सख्या का विरोध होगा। अत यह चिन्तनीय है।

रोगोत्पत्ति के नौ कारणो का उल्लेख हुआ है। इन मे आठ कारणो म शरीर के रोग उत्पन्न होते है और नवम कारण से मानसिक-रोग समुत्पन्न होता है। आचार्य अभयदेव ने लिखा है कि—अधिक बैठने या कठोर आसन पर बैठने से बवासिर आदि उत्पन्न होते है। अधिक खाने या थोडा थोडा बार-बार खाते रहने से अजीर्ण आदि अनेक रोग उत्पन्न होते है। मानसिक रोग का मूल कारण इन्द्रियार्थ विकोपन अर्थात् काम विकार है। काम विकार से उन्माद आदि रोग उत्पन्न होते है। यहाँ तक कि व्यक्ति को वह रोग मृत्यु के द्वार तक पहुचा देता

मन से सरल नहीं होने और बाह्य परिस्थितिवश सरलता का प्रदर्शन करते है, तो कितने ही व्यक्ति अन्तर मे भी कुटिल होते हैं।

विभिन्न मनोवृत्ति के लोग विभिन्न युग मे होते हैं। देखिए कितनी मार्मिक चौभंगी—कितने ही मानव आम्रप्रलम्ब कोरक के सदृश होते हैं, जो सेवा करने वाले का योग्य समय मे योग्य उपकार करते हैं। कितने ही मानव तालप्रलम्ब कोरक के सदृश होते हैं जो दीर्घकाल तक सेवा करने वाले का अत्यन्त कठिनाई से योग्य उपकार करते हैं। कितने ही मानव वल्लीप्रलम्ब कोरक के सदृश होते हैं, जो सेवा करने वाले का सरलता से शीघ्र ही उपकार कर देते हैं। कितने ही मानव मेष-विषाण कोरक के सदृश होते हैं, जो सेवा करने वाले को केवल मधुर वाणी के द्वारा प्रसन्न रखना चाहते हैं किन्तु उसका उपकार कुछ भी नहीं करना चाहते।

प्रसगवश कुछ कथाओं के भी निर्देश प्राप्त होते हैं, जैसे अन्तक्रिया करने वाले चार व्यक्तियों के नाम मिलते हैं। भरत चक्रवर्ती गजसुकुमार सम्राट सनत्कुमार और मरुदेवी। इस तरह विविध विषयों का सकलन है। यह स्थान गत तरह से अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक सरस और ज्ञानवर्धक है।

पाँचवें स्थान मे पाँच की सख्या से सम्बन्धित विषयों का सकलन हुआ है। यह स्थान तीन उद्देशकों मे विभाजित है। तात्त्विक, भौगोलिक ऐतिहासिक, ज्योतिष, योग, प्रभृति अनेक विषय इस स्थान मे आये हैं। कोई वस्तु अशुद्ध होने पर उसकी शुद्धि की जाती है। पर शुद्धि के साधन सब सदृश नहीं होते। जैसे मिट्टी शुद्धि का साधन है। उससे बर्तन आदि साफ किये जाते हैं। पानी शुद्धि का साधन है। उससे वस्त्र आदि स्वच्छ किये जाते है। अग्नि शुद्धि का साधन है। उससे स्वर्ण रजत आदि शुद्ध किये जाते हैं। मन्त्र भी शुद्धि का साधन है, जिससे वायुमण्डल शुद्ध होता है। ब्रह्मचर्य शुद्धि का साधन है। उससे आत्मा विशुद्ध बनता है।

प्रतिमा साधना की विशिष्ट पद्धति है। जिसमे उत्कृष्ट तप की साधना के साथ कायोत्सर्ग की निर्मल साधना चलती है। इसमे भद्रा, सुभद्रा महाभद्रा, सर्वतोभद्रा और भद्रोत्तरा प्रतिमाओं का उल्लेख है। जाति, कुल, कर्म, शिल्प और लिङ्ग के भेद से पाँच प्रकार की आजीविका का वर्णन है। गगा, यमुना, सरयु ऐरावती और माही नामक महानदियों को पार करने का निषेध किया गया है। चौबीस तीर्थंकरो मे से वासुपूज्य, मल्ली, अरिष्टनेमि पार्श्व और महावीर ये पाँच तीर्थंकर कुमारावस्था मे प्रव्रजित हुए थे। आदि अनेक महत्त्वपूर्ण उल्लेख प्रस्तुत स्थान मे हुये हैं।

छट्ठे स्थान मे छह की सख्या से सम्बन्धित विषयों का सकलन किया है। यह स्थान उद्देशकों मे विभक्त नहीं है। इसमे तात्त्विक, दार्शनिक ज्योतिष और सघ सम्बन्धी अनेक विषय वर्णित है। जैन दर्शन मे षट्द्रव्य का निरूपण है। इनमे पाँच अमूर्त है और एक—पुद्गल द्रव्य मूर्त है।

गण को वह अनगार धारण कर सकता है जो छह कसौटियों पर खरा उतरता हो। (१) श्रद्धाशीलपुरुष (२) सत्यवादीपुरुष (३) मेधावी पुरुष (४) बहुश्रुतपुरुष (५) शक्तिशाली पुरुष (६) कलहरहित पुरुष।

जाति से आर्य मानव छह प्रकार का होता है। अनेक अनछुए पहलुओं पर भी चिन्तन किया गया है। जाति और कुल से आर्य पर चिन्तन कर आर्य की एक नयी परिभाषा प्रस्तुत की है। इन्द्रियों से जो सुख प्राप्त होता है वह अस्थायी और क्षणिक है यथार्थ नहीं। जिन इन्द्रियों मे सुखानुभूति होती है उन इन्द्रियों मे परिस्थिति परिवर्तन होने पर दु खानुभूति भी होती है। इसलिये इस स्थान मे सुख और दु ख के छह छह प्रकार बताये हैं।

मानव को कैसा भोजन करना चाहिये? जैन दर्शन ने इस प्रश्न का उत्तर अनेकान्तदृष्टि से दिया है। जो भोजन साधना की दृष्टि से विघ्न उत्पन्न करता हो, वह उपयोगी नहीं है। और जो भोजन साधना के लिए सहायक बनता है वह भोजन उपयोगी है। इसलिए श्रमण छह कारणों से भोजन कर सकता है और छह

कारणों से भोजन का त्याग कर सकता है। भूगोल, इतिहास, लोकस्थिति कालचक्र, शरीर-रचना आदि विविध-विषयों का इसमें संकलन हुआ है।

सातवें स्थान में सात की संख्या से सम्बन्धित विषयों का संकलन है। इस में उद्देशक नहीं है। जीव-विज्ञान, लोक स्थिति, संस्थान, नय, आसन, चक्रवर्ती रत्न, काल की पहचान, समुद्घात, प्रवचननिह्नव, नक्षत्र, विनय के प्रकार आदि अनेक विषय हैं। साधना के क्षेत्र में अभय आवश्यक है। जिस के अन्तर्मानस में भय का साम्राज्य हो, अहिंसक नहीं बन सकता। भय के मूल कारण सात बताये हैं। मानव को मानव से जो भय होता है, वह इहलोक भय है। आधुनिक युग में यह भय अत्यधिक बढ़ गया है, आज सभी मानवों के हृदय धड़क रहे हैं इन में सात कुलकरों का भी वर्णन है, जो आदि युग में अनुशासन करते थे। अन्यान्य ग्रन्थों में कुलकरों के सम्बन्ध में विस्तार से निरूपण है। उनके मूलबीज यहाँ रहे हुए हैं। स्वर, स्वरस्थान, और स्वर मण्डल का विशद वर्णन है। अन्य ग्रन्थों में आये हुए इन विषयों की सहज में तुलना की जा सकती है।

आठवें स्थान में आठ की संख्या से संबंधित विषयों का संकलित किया गया है। इस स्थान में जीव-विज्ञान, कर्मशास्त्र, लोकस्थिति, ज्योतिष, आयुर्वेद, इतिहास, भूगोल आदि के सम्बन्ध में विपुल सामग्री का संकलन हुआ है।

साधना के क्षेत्र में संघ का अत्यधिक महत्त्व रहा है। संघ में रहकर साधना सुगम रीति से संभव है। एकाकी साधना भी की जा सकती है। यह मार्ग कठिनता को लिये हुये है। एकाकी साधना करने वाले में विशिष्ट योग्यता अपेक्षित है। प्रस्तुत स्थान में सर्वप्रथम उसी का निरूपण है। एकाकी रहने के लिए व योग्यताएँ अपेक्षित हैं। काश ! आज एकाकी विचरण करने वाले श्रमण इस पर चिन्तन करें तो कितना अच्छा हो !

साधना के क्षेत्र में सावधानी रखने पर भी कभी-कभी दोष लग जाते हैं। किन्तु माया के कारण उन दोषों की वह विशुद्धि नहीं हो पाती। मायावी व्यक्ति के मन में पाप के प्रति ग्लानि नहीं होती और न धर्म के प्रति दृढ़ आस्था ही होती है। माया को शास्त्रकार ने शल्य कहा है। वह शल्य के समान मन में चुभती रहती है। माया से स्नेह-सम्बन्ध टूट जाते हैं। आलोचना करने के लिए शल्य-रहित होना आवश्यक है। प्रस्तुत स्थान में विस्तार से उस पर चिन्तन किया गया है। गणि सम्पदा, प्रायश्चित्त के भेद, आयुर्वेद के प्रकार, कृष्णराजियाँ काकिणि रत्नपद जम्बूद्वीप में पर्वत आदि विषयों पर चिन्तन है। जिनका ऐतिहासिक व भौगोलिक दृष्टि से महत्त्व है।

नवम स्थान में नौ संख्या से सम्बन्धित विषयों का संकलन है। ऐतिहासिक, ज्योतिष तथा अन्यान्य विषयों का सुन्दर निरूपण हुआ है। भगवान् महावीर युग के अनेक ऐतिहासिक प्रसंग इस में आये हैं। भगवान् महावीर के तीर्थ में नौ व्यक्तियों ने तीर्थंकर नामकर्म का अनुबन्ध किया। उनके नाम इस प्रकार हैं—श्रेणिक, सुपार्श्व उदायी पोट्टिल अनगार दृढायु शंख श्रावक, शतक श्रावक, सुलसा श्राविका, रेवती श्राविका। राजा बिम्बिसार श्रेणिक के सम्बन्ध में भी इस में प्रचुर सामग्री है। तीर्थंकर नामकर्म का बंध करने वालों में पोट्टिल का उल्लेख है। अनुत्तरौपपातिक सूत्र में भी पोट्टिल अनगार का वर्णन प्राप्त है। वहाँ पर महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होने की बात लिखी है तो यहाँ पर भरतक्षेत्र से सिद्ध होने का उल्लेख है। इस से यह सिद्ध है कि पोट्टिल नाम के दो अनगार होने चाहिये। किन्तु ऐसा मानने पर नौ की संख्या का विरोध होगा। अतः यह चिन्तनीय है।

रोगोत्पत्ति के नौ कारणों का उल्लेख हुआ है। इन में आठ कारणों से शरीर के रोग उत्पन्न होते हैं और नवम कारण से मानसिक-रोग समुत्पन्न होता है। आचार्य अभयदेव ने लिखा है कि—अधिक बैठने या कठोर आसन पर बैठने से बवासिर आदि उत्पन्न होते हैं। अधिक खाने या थोड़ा-थोड़ा बार-बार खाते रहने से अजीर्ण आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। मानसिक रोग का मूल कारण इन्द्रियार्थ-विकोपन अर्थात् काम विकार है। काम विकार से उन्माद आदि रोग उत्पन्न होते हैं। यहाँ तक कि व्यक्ति को वह रोग मृत्यु के द्वार तक पहुँचा देता

है। वृत्तिकार ने ग्राम नगर आदि के दश नामों का भी उल्लेख किया है। इन कारणों की तुलना सुश्रुत और चरक आदि रोगोत्पत्ति के कारणों से की जा सकती है। इन के अतिरिक्त उस युग की राज्य व्यवस्था के सम्बन्ध में भी इस में अच्छी जानकारी है। पुरुषादानीय पार्श्व व भगवान महावीर और श्रेणिक आदि के सम्बन्ध में कुछ ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण सामग्री भी मिलती है।

दशवें स्थान में दशविध संख्या को आधार बनाकर विविध विषयों का संकलन हुआ है। इस स्थान में भी विषयों की विविधता है। पूर्वस्थानों की अपेक्षा कुछ अधिक विषय का विस्तार हुआ है। लोक-स्थिति, शब्द के दश प्रकार, क्रोधोत्पत्ति के कारण, समाधि के कारण, प्रव्रज्या ग्रहण करने के कारण, आदि विविध-विषयों पर विविध दृष्टियों से चिन्तन है। *प्रव्रज्या ग्रहण करने के अनेक कारण हो सकते हैं। यद्यपि आगमकार ने कोई* उदाहरण नहीं दिया है, वृत्तिकार ने उदाहरणों का संकेत किया है। बृहत्कल्प भाष्य,[100] निशीथ भाष्य,[101] आवश्यक मलयगिरि वृत्ति[102] में विस्तार से उस विषय को स्पष्ट किया गया है। वैयावृत्य संगठन का अटूट सूत्र है। वह शारीरिक और चैतसिक दोनों प्रकार की होती है। शारीरिक अस्वस्थता को सहज में विनष्ट किया जा सकता है। जब कि मानसिक अस्वस्थता के लिये विशेष धृति और उपाय की अपेक्षा होती है। तत्त्वार्थ[103] और उस के व्याख्या-साहित्य में भी कुछ प्रकारान्तर से नामों का निर्देश हुआ है।

भारतीय संस्कृति में दान की विशिष्ट परम्परा रही है। दान अनेक कारणों से दिया जाता है। किसी में भय की भावना रहती है, तो किसी में कीर्ति की लालसा होती है किसी में अनुकम्पा का सागर ठाठें मारता है। प्रस्तुत स्थान में दान के दश भेद निरूपित हैं। भगवान् महावीर ने छद्मस्थ अवस्था में दश स्वप्न देखे थे। '**छउमत्थकालियाए अंतिमराइयंसि** इस पाठ से यह विचार बनते हैं। छद्मस्थ काल की अन्तिम रात्रि में भगवान् ने दश स्वप्न देखे। आवश्यकनिर्युक्ति[104] और आवश्यकचूर्णि[105] आदि में भी इन स्वप्नों का उल्लेख हुआ है। ये स्वप्न व्याख्या साहित्य की दृष्टि से प्रथम वर्षावास में देखे गये थे। बौद्ध साहित्य में भी तथागत—बुद्ध के द्वारा देखे गये पांच स्वप्नों का वर्णन मिलता है।[106] जिस समय वे बोधिसत्त्व थे। बुद्धत्व की उपलब्धि नहीं हुई थी। उन्होंने पांच स्वप्न देखे थे। वे इस प्रकार हैं—

(१) यह महान् पृथ्वी उन की विराट शय्या बनी हुयी थी। हिमाच्छादित हिमालय उन का तकिया था। पूर्वी समुद्र बायें हाथ से और पश्चिमी समुद्र दायें हाथ से, दक्षिणी समुद्र दोनों पांवों से ढका था।

(२) उनकी नाभि से तिरिया नामक तृण उत्पन्न हुए और उन्होंने आकाश को स्पर्श किया।

(३) कितने ही काले सिर श्वेत रंग के जीव पांव से ऊपर की ओर बढ़ते-बढ़ते घुटनों तक ढक कर खड़े हो गये।

(४) चार वर्ण वाले चार पक्षी चारों विभिन्न दिशाओं से आये। और उनके चरणारविन्दों में गिर कर सभी श्वेत वर्ण वाले हो गये।

(५) तथागत बुद्ध गूथ पर्वत पर ऊपर चढ़ते हैं। और चलते समय वे पूर्ण रूप से निर्लिप्त रहते हैं।

---

१०० बृहत्कल्प भाष्य—गाथा—२८८०
१०१ निशीथ भाष्य गाथा ३६५६
१०२ आवश्यक मलयगिरि वृत्ति—५३३
१०३ तत्त्वार्थ राजवार्तिक—द्वितीय भाग पृ ६२४
१०४ आवश्यकनिर्युक्ति—२७५।
१०५ आवश्यक चूर्णि—२७०।
१०६ अंगुत्तरनिकाय द्वितीय भाग—पृ ४२५ से ४२७

इन पांचों स्वप्नों की फलश्रुति इस प्रकार थी। (१) अनुपम सम्यक् समाधि को प्राप्त करना। (२) आर्य अष्टांगिक मार्ग का ज्ञान प्राप्त कर वह ज्ञान देवों और मानवों तक प्रकाशित करना। (३) अनेक श्वेत वस्त्रधारी प्राणांत होने तक तथागत के शरणागत होना। (४) चारों वर्ण वाले मानवों द्वारा तथागत द्वारा दिये गये धर्म-विनय के अनुसार प्रव्रजित होकर मुक्ति का साक्षात्कार करना। (५) तथागत, चीवर, भिक्षा, आसन, औषध आदि प्राप्त करते हैं। तथापि वे उनमें अमूर्च्छित रहते हैं। और मुक्तप्रज्ञ होकर उसका उपभोग करते हैं।

गहराई से चिन्तन करने पर भगवान् महावीर और तथागत बुद्ध दोनों के स्वप्न देखने में शब्द-साम्य तो नहीं है, किन्तु दोनों के स्वप्न की पृष्ठभूमि एक है। भविष्य में उन्हें विशिष्ट ज्ञान की उपलब्धि होगी और वे धर्म का प्रवर्तन करेंगे।

प्रस्तुत स्थान से आगम-ग्रन्थों की विशिष्ट जानकारी भी प्राप्त होती है। भगवान महावीर और अन्य तीर्थंकरों के समय ऐसी विशिष्ट घटनाएं घटीं, जो आश्चर्य के नाम से विश्रुत हैं। विश्व में अनेक आश्चर्य हैं। किन्तु प्रस्तुत आगम में आये हुए आश्चर्य उन आश्चर्यों से पृथक् हैं। इस प्रकार दशवें स्थान में ऐसी अनेक घटनाओं का वर्णन है जो ज्ञान-विज्ञान इतिहास आदि से सम्बन्धित हैं। जिज्ञासुओं को मूल आगम का स्वाध्याय करना चाहिये, जिससे उन्हें आगम के अनमोल रत्न प्राप्त हो सकेंगे।

दार्शनिक-विश्लेषण

हम पूर्व ही यह बता चुके हैं कि विविध विषयों का वर्णन स्थानांग में है। क्या धर्म और क्या दर्शन, ऐसा कौनसा विषय है जिसका सूचन इस आगम में न हो। आगम में वे विचार भले ही बीज रूप में हों। उन्होंने आगे चलकर व्याख्यासाहित्य में विराट रूप धारण किया। हम यहां अधिक विस्तार में न जाकर संक्षेप में स्थानांग में आये हुए दार्शनिक विषयों पर चिन्तन प्रस्तुत कर रहे हैं।

मानव अपने विचारों को व्यक्त करने के लिये भाषा का प्रयोग करता है। वक्ता द्वारा प्रयुक्त शब्द का नियत अर्थ क्या है? इसे ठीक रूप से समझना निक्षेप है। दूसरे शब्दों में शब्दों का अर्थों में और अर्थों का शब्दों में आरोप करना 'निक्षेप' कहलाता है।[१०७] निक्षेप का पर्यायवाची शब्द 'न्यास' भी है।[१०८] स्थानांग में निक्षेपों का सर्व पर घटित किया है।[१०९] सर्व के चार प्रकार हैं—नामसर्व स्थापनासर्व, आदेशसर्व और निरवशेषसर्व। यहाँ पर द्रव्य आदेश सर्व कहा है। सर्व शब्द का तात्पर्य अर्थ 'निरवशेष' है। बिना शब्द के हमारा व्यवहार नहीं चलता। किन्तु वक्ता के विवक्षित अर्थ को न समझने से कभी बड़ा अनर्थ भी हो जाता है। इसी अनर्थ के निवारण हेतु निक्षेप-विद्या का प्रयोग हुआ है। निक्षेप का अर्थ निरूपणपद्धति है। जो वास्तविक अर्थ को समझने में परम उपयोगी है।

आगम साहित्य में ज्ञानवाद की चर्चा विस्तार के साथ आई है। स्थानांग में भी ज्ञान के पांच भेद प्रतिपादित हैं।[११०] उन पाँच ज्ञानों को प्रत्यक्ष और परोक्ष[१११] इन दो भागों में विभक्त किया है। जो ज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना और केवल आत्मा से ही उत्पन्न होता है, वह ज्ञान प्रत्यक्ष है। अवधिज्ञान मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान ये तीन प्रत्यक्ष हैं। इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाला ज्ञान "परोक्ष" है। उसके दो प्रकार हैं—मति और श्रुत। स्वरूप की दृष्टि से सभी ज्ञान प्रत्यक्ष हैं। बाहरी पदार्थों की अपेक्षा से प्रमाण के स्पष्ट और अस्पष्ट लक्षण किये गये हैं। ग्राह्य पदार्थों का निश्चय करने के लिये दूसरे ज्ञान की जिसे अपेक्षा नहीं होती है उसे—स्पष्ट ज्ञान कहते है। जिसे अपेक्षा रहती है वह अस्पष्ट है। परोक्ष प्रमाण में दूसरे

---

१०७ णिच्छए णिण्णए खिवदि त्ति णिक्खेओ —धवला षट्खण्डागम पु १ पृ १०

१०८ नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः —तत्त्वार्थसूत्र १।५

१०९ चत्तारि सव्वा पन्नत्ता—नामसव्वए, ठवणसव्वए आएससव्वए निरवसेससव्वए —स्थानांग—२९९

११० स्थानांगसूत्र स्थान—५ सूत्र—

१११ स्थानांगसूत्र—स्थान—२ सूत्र—८६

ज्ञान की आवश्यकता होती है। उदाहरण के रूप में स्मृतिज्ञान में धारणा की अपेक्षा रहती है। प्रत्यभिज्ञान में अनुभव और स्मृति की—तर्क में व्याप्ति की। अनुमान में हेतु की, तथा आगम में शब्द और संकेत की अपेक्षा रहती है। इसलिए वे अस्पष्ट हैं। अपर शब्दों में यों कह सकते हैं कि जिस ज्ञान का ज्ञेय पदार्थ निर्णय—काल में छिपा रहता है वह ज्ञान अस्पष्ट या परोक्ष है। स्मृति का विषय स्मृतिकर्ता के सामने नहीं होता। प्रत्यभिज्ञान में भी वह अस्पष्ट होता है। तर्क में भी त्रिकालीन सब धूम और अग्नि प्रत्यक्ष नहीं होते। अनुमान का विषय भी सामने नहीं होता और आगम का विषय भी। अवग्रह आदि आत्म-सापेक्ष न होने से परोक्ष हैं। लोक व्यवहार में अवग्रह आदि को सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष विभाग में रखा है।[112]

स्थानाङ्ग में ज्ञान का वर्गीकरण इस प्रकार है—[113]
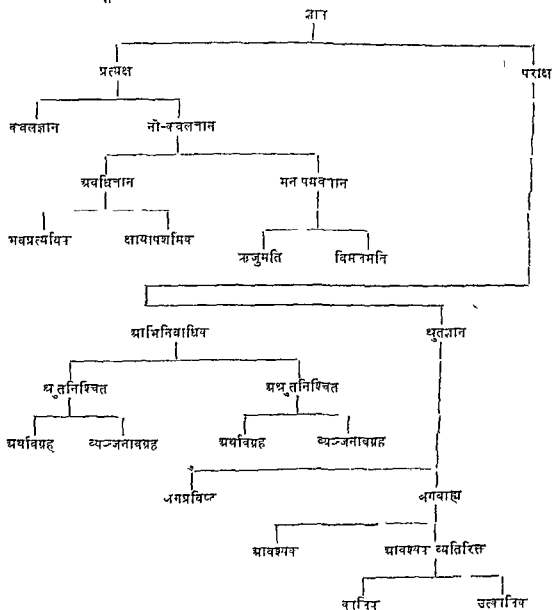
११२ दे०—देखिये जैन दर्शन—स्वरूप और विश्लेषण पृ. ३२६ से ३७२ देवेन्द्र मुनि

११३ स्थानांग सूत्र—स्थान-२, सूत्र ८६ से १०६।

स्थानांग में प्रमाण शब्द के स्थान पर हेतु शब्द का प्रयोग मिलता है। [114] ज्ञप्ति के साधनभूत होने से प्रत्यक्ष आदि को हेतु शब्द से व्यवहृत करने में औचित्यभंग भी नहीं है। चरक में भी प्रमाणों का निर्देश "हेतु" शब्द से हुआ है। [115] स्थानांग में ऐतिह्य के स्थान पर आगम शब्द व्यवहृत हुआ है। किन्तु चरक में ऐतिह्य को ही आगम कहा है। [116]

स्थानांग में निक्षेप पद्धति से प्रमाण के चार भेद भी प्रतिपादित हैं— [117] द्रव्यप्रमाण, क्षेत्रप्रमाण, कालप्रमाण और भावप्रमाण। यहाँ पर प्रमाण का व्यापक अर्थ लेकर उसके भेदों की परिकल्पना की है। अन्य दार्शनिकों की भांति केवल प्रमेयसाधक तीन, चार, छह आदि प्रमाणों का ही समावेश नहीं है। किन्तु व्याकरण और कोष आदि से सिद्ध प्रमाण शब्द के सभी अर्थों का समावेश करने का प्रयत्न किया है। यद्यपि मूल-सूत्र में भेदों की गणना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कहा गया है। बाद के आचार्यों ने इस पर विस्तार से विश्लेषण किया है। स्थानाभाव से हम इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं कर रहे हैं।

स्थानांग में तीन प्रकार के व्यवसाय बताये हैं। [118] प्रत्यक्ष अवधि आदि प्रात्ययिक—'इन्द्रिय और मन के निमित्त से' होने वाला, आनुगामिक— अनुसरण करने वाला। व्यवसाय का अर्थ है—निश्चय या निर्णय। यह वर्गीकरण ज्ञान के आधार पर किया गया है। आचार्य सिद्धसेन से लेकर सभी तार्किकों ने प्रमाण को स्व-पर व्यवसायी माना है। वार्तिककार शान्त्याचार्य ने न्यायावतारगत अवभास का अर्थ करते हुए कहा—अवभास व्यवसाय है न कि ग्रहणमात्र। [119] आचार्य अकलङ्क आदि ने भी प्रमाणलक्षण में व्यवसाय पद का स्थान दिया है। और प्रमाण को व्यवसायात्मक कहा है। [120] स्थानांग में व्यवसाय बताये गये हैं। प्रत्यक्ष, प्रात्ययिक-आगम और आनुगामिक-अनुमान। इन तीन की तुलना वैशेषिक दर्शन सम्मत प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम इन तीन प्रमाणों से की जा सकती है।

भगवान महावीर के शिष्यों में चार सौ शिष्य वाद-विद्या में निपुण थे। [121] नवम स्थान में जिन नव प्रकार के विशिष्ट व्यक्तियों को बताया है उन में वाद विद्या-विशारद व्यक्ति भी हैं। बृहत्कल्प भाष्य में वादविद्या-कुशल श्रमणों के लिये शारीरिक शुद्धि आदि करने के अपवाद भी बताये हैं। [122] वादी को जैन धर्म प्रभावक भी माना है। स्थानांग में विवाद के छह प्रकारों का भी निर्देश है। [123] अवष्वक्य, उत्ष्वक्य, अनुलोम्य, प्रतिलोम्य भइयित्वा, मेलयित्वा। वस्तुतः ये विवाद के प्रकार नहीं, किन्तु वादी और प्रतिवादी द्वारा अपनी विजय-वैजयन्ती फहराने के लिये प्रयुक्त की जाने वाली युक्तियों के प्रकार हैं। टीकाकार ने यहाँ विवाद का अर्थ 'जल्प' किया है।

जैसे—(१) निश्चित समय पर यदि वादी की वाद करने की तैयारी नहीं है तो वह स्वयं बहाना बनाकर सभास्थान का त्याग कर देता है। या प्रतिवादी को वहाँ से हटा देता है। जिससे वाद में विलम्ब होने के कारण वह उस समय अपनी तैयारी कर लेता है।

---

११४ स्थानांग सूत्र—स्थान ४, सूत्र ३३८।
११५ चरक विमान स्थान अ ८ सूत्र ३३।
११६ चरक विमानस्थान अ ८ सूत्र ४१।
११७ स्थानांग सूत्र स्थान ४ सूत्र २५८।
११८ स्थानांग सूत्र स्थान ३ सूत्र १८५॥
११९ न्यायावतार वार्तिक वृत्ति-कारिका ३॥
१२० न्यायावतार वार्तिक वृत्ति के टिप्पण पृ १४८ से १५१ तक
१२१ स्थानांग सूत्र स्थान—९ सूत्र ३८२
१२२ बृहत्कल्प भाष्य—६०३५
१२३ स्थानांग सूत्र—स्थान ६ सूत्र ५१२

(२) जब वादी को यह अनुभव होने लगता है कि मेरे विजय का अवसर आ चुका है, तब वह स्वतः सभा-संचालन करने लगता है और प्रतिवादी को प्रेरणा देकर के वाद का शीघ्र प्रारम्भ कराता है।[124]

(३) वादी सामनीति से विवादाध्यक्ष को अपने अनुकूल बनाकर वाद का प्रारम्भ करता है। या प्रतिवादी को अनुकूल बनाकर वाद प्रारम्भ कर देता है। उसके पश्चात उसे वह पराजित कर देता है।[125]

(४) यदि वादी को यह आत्म-विश्वास हो कि प्रतिवादी को हराने में वह पूर्ण समर्थ है तो वह सभापति और प्रतिवादी को अनुकूल न बनाकर प्रतिकूल ही बनाता है और प्रतिवादी को पराजित करता है।

(५) अध्यक्ष की सेवा करके वाद करना।

(६) जो अपने पक्ष के व्यक्ति हैं उन्हें अध्यक्ष से मेल कराता है। और प्रतिवादी के प्रति अध्यक्ष के मन में द्वेष पैदा करता है।

स्थानांग में वादकथा के दश दोष गिनाये हैं।[126] वे इस प्रकार है—

(१) तज्जातदोष—प्रतिवादी के कुल का निर्देश करके उसके पश्चात दूषण देना अथवा प्रतिवादी की प्रकृष्ट प्रतिभा से विक्षुब्ध होने के कारण वादी का चुप होजाना।

(२) मतिभंग—वाद-प्रसंग में प्रतिवादी या वादी का स्मृतिभ्रंश होना।

(३) प्रशास्तृदोष—वाद-प्रसंग में सभ्य या सभापति पक्षपाती होकर जय दान करें या किसी को सहायता दें।

(४) परिहरण—सभा के नियम-विरुद्ध चलना या दूषण का परिहार जात्युत्तर से करना।

(५) स्वलक्षण—अतिव्याप्ति आदि दोष।

(६) कारण—युक्तिदोष।

(७) हेतुदोष—असिद्धादि हेत्वाभास।

(८) संक्रमण—प्रतिज्ञान्तर करना। या प्रतिवादी के पक्ष को मानना। टीकाकार ने टीका में लिखा है—प्रस्तुत प्रमेय की चर्चा का त्यागकर अप्रस्तुत प्रमेय की चर्चा करना।

(९) निग्रह—छलादि के द्वारा प्रतिवादी को निगृहीत करना।

(१०) वस्तुदोष—पक्ष-दोष अर्थात प्रत्यक्षनिराकृत आदि।

न्यायशास्त्र में इन सभी दोषों के सम्बन्ध में विस्तार से विवेचन है। अतः इस सम्बन्ध में यहां विशेष विश्लेषण करने की आवश्यकता नहीं है।

स्थानांग में विशेष प्रकार के दोष भी बताये हैं और टीकाकार ने उस पर विशेष वर्णन भी किया है। छह प्रकार के वाद के लिए प्रश्नों का वर्णन है। नयवाद[127] का और निह्नववाद[128] का वर्णन है। जो उस युग के अपनी दृष्टि से चिन्तन रहे हैं। बहुत कुछ वर्णन जहाँ तहाँ बिखरा पड़ा है। यदि विस्तार के साथ तुलनात्मक दृष्टि से चिन्तन किया जाय तो दर्शन सम्बन्धी अनेक अज्ञात-रहस्य उद्घाटित हो सकते हैं।

---

१२४ तुलना कीजिए चरक विमान स्थान अ० ८ सूत्र २१

१२५ तुलना कीजिए चरक विमान स्थान अ० ८ सूत्र १६

१२६ स्थानांग सूत्र स्थान १० सूत्र ७४३

१२७ स्थानांग सूत्र स्थान ७

१२८ स्थानांग सूत्र स्थान ७

आचार-विश्लेषण

दर्शन की तरह आचार सम्बन्धी वर्णन भी स्थानांग में बहुत ही विस्तार के साथ किया गया है। आचार-संहिता के सभी मूलभूत तत्त्वों का निरूपण इसमें किया गया है।

धर्म के दो भेद हैं—सागार धर्म और अनगार-धर्म। सागार-धर्म-सीमित मार्ग है। वह जीवन की सरल और लघु पगडण्डी है। गृहस्थ धर्म अणु अवश्य है किन्तु हीन और निन्दनीय नहीं है। इसलिए सागार धर्म का आचरण करने वाला व्यक्ति श्रमणोपासक या उपासक कहलाता है।[129] स्थानांग में सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक् चरित्र को मुक्ति का मार्ग कहा है।[130] उपासकजीवन में सर्वप्रथम सत्य के प्रति आस्था होती है। सम्यग्दर्शन के आलोक में ही वह जड़ और चेतन संसार और मोक्ष, धर्म और अधर्म का परिज्ञान करता है। उस की यात्रा का लक्ष्य स्थिर हो जाता है। उस का सोचना समझना और बोलना, सभी कुछ विलक्षण होता है। उपासक के लिये "अभिगयजीवाजीवे" यह विशेषण आगम साहित्य में अनेक स्थलों पर व्यवहृत हुआ है। स्थानांग के द्वितीय स्थान में इस सम्बन्ध में अच्छा चिन्तन प्रस्तुत किया है।[131] मोक्ष की उपलब्धि के साधना के विषय में सभी दार्शनिक एकमत नहीं है। जैन दर्शन न एकान्त ज्ञानवादी है, न क्रियावादी है न भक्तिवादी है। उसके अनुसार ज्ञान क्रिया और भक्ति का समन्वय ही मोक्षमार्ग है। स्थानांग में[132] 'विज्जाए चेव चरणेण चेव' के द्वारा इस सत्य को उद्घाटित किया है।

स्थानांग[133] में उपासक के लिए पाँच अणुव्रतों का भी उल्लेख है। उपासक को अपना जीवन व्रत से युक्त बनाना चाहिये। श्रमणोपासक की श्रद्धा और वृत्ति की भिन्नता के आधार पर उस को चार भागों में विभक्त किया है। जिन के अन्तर्मानस में श्रमणों के प्रति प्रगाढ वात्सल्य होता है, उन की तुलना माता पिता से की है।[134] वे तत्त्वचर्चा और जीवननिर्वाह इन दोनों प्रसंगों में वात्सल्य का परिचय देते हैं। कितने ही श्रमणोपासकों के अन्तर्मन में वात्सल्य भी होता है और कुछ उग्रता भी रही हुयी होती है। उनकी तुलना भाई से की गयी है। वस श्रावक तत्त्वचर्चा के प्रसंगों में निष्ठुरता का परिचय देते हैं। किन्तु जीवन निर्वाह के प्रसंग में उनके हृदय में वत्सलता छलकती है। कितने ही श्रमणोपासकों में सापेक्ष वृत्ति होती है। यदि किसी कारणवश प्रीति नष्ट हो गयी तो वे उपेक्षा भी करते हैं। वे अनुकूलता के समय वात्सल्य का परिचय देते हैं और प्रतिकूलता के समय उपेक्षा भी कर देते हैं। कितने ही श्रमणोपासक ईर्ष्या के वशीभूत होकर श्रमणों में दोष ही निहारा करते हैं। वे किसी भी रूप में श्रमणों का उपकार नहीं करते हैं। उनके व्यवहार की तुलना सौत से की गई है।

प्रस्तुत आगम में[135] श्रमणोपासक की आन्तरिक योग्यता के आधार पर चार वर्ग किये हैं।

(१) कितने ही श्रमणोपासक दर्पण के समान निर्मल होते हैं। वे तत्त्वनिरूपण के यथार्थ प्रतिबिम्ब को ग्रहण करते हैं।

(२) कितने ही श्रमणोपासक ध्वजा की तरह अनवस्थित होते हैं। ध्वजा जिधर भी हवा होती है, उधर ही मुड़ जाती है। उसी प्रकार उन श्रमणोपासकों का तत्त्वबोध अनवस्थित होता है। निश्चित-बिन्दु पर उनके विचार स्थिर नहीं होते।

---

१२९ स्थानांग सूत्र स्थान २ सूत्र ७२
१३० स्थानांग सूत्र स्थान-३ सूत्र ४३ स-१३७।
१३१ स्थानांग सूत्र स्थान २ सूत्र—
१३२ स्थानांग सूत्र स्थान-२ सूत्र ४०
१३३ स्थानांग सूत्र स्थान-५ सूत्र ३८९
१३४ स्थानांग सूत्र स्थान ४ सूत्र ४३०
१३५ स्थानांग सूत्र स्थान-४ सूत्र ४३१

(३) कितने ही श्रमणोपासक स्थाणु की तरह प्राणहीन और शुष्क होते हैं। उनमें लचीलापन नहीं होता। वे आग्रही होते हैं।

(४) कितने ही श्रमणोपासक काँटे के सदृश होते हैं। काँटे की पकड़ बड़ी मजबूत होती है। वह हाथ को बींध देता है। वस्त्र भी फाड़ देता है। वैसे ही कितने ही श्रमणोपासक कदाग्रह से ग्रस्त होते हैं। श्रमण कदाग्रह छुड़वाने के लिये उसे तत्त्वबोध प्रदान करते हैं। किन्तु वे तत्त्वबोध को स्वीकार नहीं करते। अपितु तत्त्वबोध प्रदान करने वाले को दुर्वचनों के तीक्ष्ण काँटों से बींध देते हैं। इस तरह श्रमणोपासक के सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री है।

श्रमणोपासक की तरह ही श्रमणजीवन के सम्बन्ध में भी स्थानाङ्ग में महत्त्वपूर्ण सामग्री का संकलन हुआ है। श्रमण का जीवन अत्यन्त उग्र साधना का है। जो धीर, वीर और साहसी होते हैं, वे इस महामार्ग को अपनाते हैं। श्रमणजीवन, हर साधक, जो मोक्षाभिलाषी है, स्वीकार कर सकता है। स्थानाङ्ग में प्रव्रज्याग्रहण करने के दश कारण बताये हैं।[१३६] या अनेक कारण हो सकते हैं किन्तु प्रमुख कारणों का निर्देश किया गया है। वृत्तिकार[१३७] ने दश प्रकार की प्रव्रज्या के उदाहरण भी दिये हैं। (१) छन्दा – अपनी इच्छा से विरक्त होकर प्रव्रज्या धारण करना (२) रोषा—क्रोध के कारण प्रव्रज्या ग्रहण करना (३) दारिद्र्यधृ्या—गरीबी के कारण प्रव्रज्या ग्रहण करना। (४) स्वप्ना—स्वप्न से वैराग्य उत्पन्न होकर दीक्षा लेना। (५) प्रतिश्रुता—पहले की गयी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिय प्रव्रज्या ग्रहण करना। (६) स्मारणिका—पूर्व भव की स्मृति के कारण प्रव्रज्या ग्रहण करना। (७) रोगिणिका—रुग्णता के कारण प्रव्रज्या ग्रहण करना। (८) अनादृता—अपमान के कारण प्रव्रज्या ग्रहण करना (९) देवसंज्ञप्तिा—देवताओं के द्वारा संबोधित किये जाने पर प्रव्रज्या ग्रहण करना (१०) वत्सानुबंधिका—दीक्षित पुत्र के स्नेह के कारण प्रव्रज्या ग्रहण करना।

श्रमण प्रव्रज्या के साथ ही स्थानाङ्ग में श्रमणधर्म की सम्पूर्ण आचारसंहिता दी गई है। उसमें पाँच महाव्रत, अष्ट प्रवचनमाता, नव ब्रह्मचर्य गुप्ति, परीषहविजय, प्रत्याख्यान, पाँच परिज्ञा, बाह्य और आभ्यन्तर तप, प्रायश्चित्त, आलोचना करने का अधिकारी, आलोचना के दोष, प्रतिक्रमण के प्रकार, विनय के प्रकार, वैयावृत्य के प्रकार, स्वाध्याय ध्यान, अनुप्रेक्षाएँ, मरण के प्रकार, आचार के प्रकार, संयम के प्रकार, आहार के कारण, गोचरी के प्रकार, वस्त्र, पात्र, रजोहरण, भिक्षु प्रतिमाएँ, प्रतिलेखना के प्रकार, व्यवहार के प्रकार, संघ व्यवस्था, आचार्य उपाध्याय के अतिशय, गण छोड़ने के कारण, शिष्य और स्थविर, कल्प, समाचारी सम्भोग-विसम्भोग, निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों के विशिष्ट नियम आदि श्रमणाचार सम्बन्धी नियमोपनियमों का वर्णन है। जो नियम अन्य आगमों में बहुत विस्तार के साथ आये हैं। उनका संक्षेप में यहाँ सूचन किया है। जिससे श्रमण उन्हें स्मरण रखकर सम्यक् प्रकार से उनका पालन कर सके।

तुलनात्मक अध्ययन आगम के आलोक में—

स्थानाङ्ग सूत्र में शताधिक विषयों का संकलन हुआ है। इसमें जो सत्य-तथ्य प्रकट हुए हैं उनकी प्रतिध्वनि अन्य आगमों में निहारी जा सकती है। कहीं-कहीं पर विषय साम्य है तो कहीं कहीं पर शब्द-साम्य है। स्थानाङ्ग के विषयों की अन्य आगमों के साथ तुलना करने से प्रस्तुत आगम का सहज ही महत्त्व परिज्ञात होता है। हम यहाँ बहुत ही संक्षेप में स्थानाङ्गगत विषयों की तुलना अन्य आगमों के आलोक में कर रहे हैं।

स्थानाङ्ग[१३८] में द्वितीय सूत्र है "एगे आया"। यही सूत्र समवायाङ्ग[१३९] में भी शब्दशः मिलता है। भगवती[१४०] में इसी का द्रव्य दृष्टि से निरूपण है।

---

१३६ स्थानाङ्ग सूत्र स्थान—१० सूत्र ७१२

१३७ स्थानाङ्ग सूत्र वृत्ति पत्र—पृ ४४९

१३८ स्थानाङ्ग सूत्र स्थान-१० सूत्र २ मुनि कन्हैयालालजी सम्पादित

१३९ समवायाङ्ग सूत्र-समवाय १० सूत्र १

१४० भगवती सूत्र शतक १२ उद्दे० १०

स्थानाग का चतुर्थ सूत्र "एगा किरिया" है।[141] समवायाग[142] म भी इसका शब्दश उल्लेख है। भगवती[143] और प्रज्ञापना[144] मे भी क्रिया के सम्बन्ध म वर्णन है।

स्थानाग[145] मे पाचवा सूत्र है—'एगे लोए'। समवायाग[146] म भी इसी तरह का पाठ है। भगवती[147] और औपपातिक[148] म भी यही स्वर मुखरित हुआ है।

स्थानाग[149] म सातवा सूत्र है—एगे धम्मे। समवायाग[150] म भी यह पाठ इसी रूप म मिलता है। सूत्रकृताग[151] और भगवती[152] म भी इसका वर्णन है।

स्थानाग[153] का आठवा सूत्र है—"एगे अधम्मे'। समवायाग[154] म यह सूत्र इसी रूप म मिलता है। सूत्रकृताग[155] और भगवती[156] म भी इस विषय को देखा जा सकता है।

स्थानाग[157] का ग्यारहवा सूत्र है—एगे पुण्णे। समवायाग[158] मे भी इसी तरह का पाठ है, सूत्रकृताग[159] और औपपातिक[160] म भी यह विषय इसी रूप म मिलता है।

स्थानाग[161] का बारहवाँ सूत्र है—'एगे पावे'। समवायाग[162] म यह सूत्र इसी रूप म आया है। सूत्रकृताग[163] और औपपातिक[164] म भी इस का निरूपण हुआ है।

---

१४१ स्थानाग अ १ सूत्र ४
१४२ समवायाग सम १ सूत्र ५
१४३ भगवती शतक १ उद्दे ६
१४४ प्रज्ञापना सूत्र पद १६
१४५ स्थानाग अ १ सूत्र-५
१४६ समवायाग सम-१ सूत्र ७
१४७ भगवती शत १२ उ ७ सूत्र ७
१४८ औपपातिक सूत्र ५६
१४९ स्थानाग अ १ सूत्र ७
१५० समवायाग सम १ सूत्र-९
१५१ सूत्रकृताग श्रु २ अ ५
१५२ भगवता शत २० उ २
१५३ स्थानाग अ १ सूत्र ८
१५४ समवायाग सम १ सूत्र-१०
१५५ सूत्रकृताग श्रु २ अ ५
१५६ भगवती शत २० उ २
१५७ स्थानाग अ १ सू० ११
१५८ समवायाग सम १ सू ११
१५९ सूत्रकृताग श्रु २ अ ५
१६० औपपातिक-सूत्र—३४
१६१ स्थानाग सूत्र अ १ सूत्र-१२
१६२ समवायाग १ सूत्र १२
१६३ सूत्रकृताग श्रु २ अ ५
१६४ औपपातिक सूत्र ३४

स्थानांग[१६५] का नवम सूत्र 'एगे बन्धे' है और दशवाँ सूत्र 'एगे मोक्खे' है। समवायांग[१६६] में ये दोनों सूत्र इसी रूप में मिलते हैं। सूत्रकृतांग[१६७] और औपपातिक[१६८] में भी इनका वर्णन हुआ है।

स्थानांग[१६९] का तेरहवाँ सूत्र 'एगे आसवे' चौदहवाँ सूत्र "एगे संवरे" पन्द्रहवाँ सूत्र 'एगा वेयणा' और सोलहवाँ सूत्र 'एगा निज्जरा" है। यही पाठ समवायांग[१७०] में मिलता है और सूत्रकृतांग[१७१] और औपपातिक[१७२] में भी इन विषयों का इस रूप में निरूपण हुआ है।

स्थानांग[१७३] सूत्र के पचपनवें सूत्र में आर्द्रा नक्षत्र, चित्रा नक्षत्र, स्वाति नक्षत्र का वर्णन है। वही वर्णन समवायांग[१७४] और सूर्यप्रज्ञप्ति[१७५] में भी है।

स्थानांग[१७६] के सूत्र तीन सौ अट्ठावीस में अप्रतिष्ठान नरक, जम्बूद्वीप पालकयानविमान आदि का वर्णन है। उसकी तुलना समवायांग[१७७] के उन्नीस बीस, इक्कीस, और बावीसवें सूत्र से की जा सकती है, और साथ ही जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[१७८] और प्रज्ञापना[१७९] पद में भी।

स्थानांग[१८०] के ९५वें सूत्र में जीव-अजीव आवलिका का वर्णन है। वही वर्णन समवायांग[१८१], प्रज्ञापना[१८२], जीवाभिगम[१८३], उत्तराध्ययन[१८४] में है।

स्थानांग[१८५] के सूत्र ९६ में बन्ध आदि का वर्णन है। वैसा ही वर्णन प्रश्नव्याकरण[१८६], प्रज्ञापना[१८७], और उत्तराध्ययन[१८८] सूत्र में भी है।

---

१६५ स्थानांग अ-१ सूत्र ९, १०
१६६ समवायांगसूत्र १ सम १ सूत्र १३ १४
१६७ सूत्रकृतांगसूत्र श्रु-२ अ ५
१६८ औपपातिकसूत्र-३४
१६९ स्थानांगसूत्र अ-१ सूत्र १३ १४, १५, १६
१७० समवायांगसूत्र सम १ सूत्र-१५, १६ १७ १८,
१७१ सूत्रकृतांगसूत्र श्रुत २ अ ५
१७२ औपपातिकसूत्र—३४
१७३ स्थानांगसूत्रसूत्र–५५
१७४ समवायांगसूत्र २३, २४, २५
१७५ सूर्यप्रज्ञप्ति, प्रा १०, प्र ९
१७६ स्थानांगसूत्र, सूत्र ३२८
१७७ समवायांगसूत्र, सम-१, सूत्र १९ २०, २१, २२
१७८ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र वक्ष १ सूत्र ३
१७९ प्रज्ञापनासूत्र पद-२
१८० स्थानांगसूत्र, अ ४ उ ४ सूत्र ९५
१८१ समवायांगसूत्र १४९
१८२ प्रज्ञापना पद १ सूत्र १
१८३ जीवाभिगम प्रति १ सूत्र-१
१८४ उत्तराध्ययन अ ३६
१८५ स्थानांगसूत्र अ २ उ ४ सूत्र-९६
१८६ प्रश्नव्याकरण ५ वा
१८७ प्रज्ञापना पद २३
१८८ उत्तराध्ययन सूत्र अ ३१

स्थानागसूत्र[१८९] ११० वे सूत्र म पूव भाद्रपद आनि के तारो का वणन है तो सूयप्रज्ञप्ति[१९०] और समवायाग[१९१] म भी वह वणन मिलता है।

स्थानागसूत्र[१९२] १२६ वें सूत्र मे तीन गुप्तिया एव तीन दण्डको का वणन है। समवायाग,[१९३] प्रश्न-व्याकरण,[१९४] उत्तराध्ययन[१९५] और आवश्यक[१९६] म भी यह वणन है।

स्थानागसूत्र[१९७] १८२ व सूत्र म उपवास करनेवाले श्रमण को कितने प्रकार के धोवन पानी लेना कल्पता है, यह वणन समवायाग[१९८], प्रश्नव्याकरण[१९९], उत्तराध्ययन[२००] और आवश्यक सूत्र[२०१] म प्रकारान्तर म आया है।

स्थानागसूत्र[२०२] २१४ म विविध दृष्टिया से ऋद्धि के तीन प्रकार बताये हैं। उसी प्रकार का वणन समवायाग[२०३], प्रश्नव्याकरण[२०४] म भी आया है।

स्थानागसूत्र[२०५] २२७ वें सूत्र म अभिजित श्रवण अश्विनी भरणी मृगशिर पुष्य, ज्येष्ठा के तीन-तीन तारे कहे है। वही वणन समवायाग[२०६] और सूयप्रज्ञप्ति[२०७] म भी प्राप्त है।

स्थानागसूत्र[२०८] २४७ म चार ध्यान का और प्रत्यक ध्यान के लक्षण आलम्बन बताये गय है, वैसा ही वणन समवायाग[२०९], भगवती[२१०], और औपपातिक[२११] म भी है।

---

१८९ स्थानागसूत्र—अ २, उ ४, सूत्र ११०
१९० सूयप्रज्ञप्ति—प्रा १०, प्रा ९ सूत्र ४२
१९१ समवायागसूत्र—सम २ सूत्र ४
१९२ स्थानागसूत्र अ ३ उ १, सूत्र १२६
१९३ समवायाग, सम ३ सूत्र १
१९४ प्रश्नव्याकरणसूत्र, ५वाँ सवरद्वार
१९५ उत्तराध्ययनसूत्र, अ ३१
१९६ आवश्यकसूत्र अ ४
१९७ स्थानागसूत्र, अ ३, उ ३, सूत्र १८२
१९८ समवायाग, सम ३ सूत्र ३
१९९ प्रश्नव्याकरण सूत्र ५वाँ सवरद्वार
२०० उत्तराध्ययन अ ३१
२०१ आवश्यकसूत्र, अ ४
२०२ स्थानाग, अ ३, उ ४, सूत्र २१४
२०३ समवायाग, सम ३, सूत्र ४
२०४ प्रश्नव्याकरण ५वाँ सवरद्वार
२०५ स्थानाग अ ३, उ ४, सूत्र २२७
२०६ समवायाग, ३, सूत्र ७
२०७ सूयप्रज्ञप्तिसूत्र, प्रा १०, प्रा ९, सूत्र ४२
२०८ स्थानागसूत्र, अ ४ उ १, सूत्र २४७
२०९ समवायाग, सम ४, सूत्र ?
२१० भगवती, शत २५ उ ७ सूत्र ८०२
२११ औपपातिक सूत्र ३०

स्थानागसूत्र २८९[212] म चार कषाय, उनकी उत्पत्ति क कारण, आदि निरूपित ह । वैसा ही समवायाग[213] और प्रज्ञापना[214] म भी वह वणन है ।

स्थानागसूत्र[215] के सूत्र २८२ म चार विकथाए और विकथाओ के प्रकार का विस्तार स निरूपण है । वसा वणन समवायाग[216] और प्रश्नव्याकरण[217] म भी मिलता है ।

स्थानागसूत्र[218] के ३५६वें सूत्र म चार सज्ञाओ और उनके विविध प्रकारो का वणन ह । वैसा ही वणन समवायाग, प्रश्नव्याकरण[219] और प्रज्ञापना[220] म भी प्राप्त है ।

स्थानाग सूत्र ३८६[221] म अनुराधा, पूर्वाषाढा के चार-चार ताराओ का वणन है । वही वणन समवायाग[222] सूयप्रज्ञप्ति[223] आदि म भी ह ।

स्थानागसूत्र[224] के ६३८ म मगध का याजन आठ हजार धनुष का बताया है । वही वणन समवायाग[225] म भी है ।

तुलनात्मक अध्ययन बौद्ध और वैदिक ग्रन्थ—

स्थानाग के अन्य अनेक सूत्रो म आये हुये विषयो की तुलना अन्य आगमो के साथ भी की जा सकती है । किन्तु विस्तारभय स हम न सक्षप म ही सूचन किया है । अब हम स्थानाग क विषयो की तुलना बौद्ध और वैदिक ग्रन्थो के साथ कर रहे है । जिससे यह परिज्ञात हो सके कि भारतीय सस्कृति कितनी मिली जुली रही है । एक सस्कृति का दूसरी सस्कृति पर कितना प्रभाव रहा है ।

स्थनाग[226] म बताया है कि छह कारणो से आत्मा उन्मत्त होता है । अरिहत का अवणवाद करने से, धम का अवणवाद करन स, चतुर्विध सघ का अवणवाद करन स, यक्ष के आवेश से, मोहनीय कम के उदय स, तो तथागत बुद्ध न भी अगुत्तरनिकाय[227] म कहा है—चार अचिन्तनीय का चिन्ता करन से मानव उन्मादी हो जाता है—(१) तथागत बुद्ध भगवान् के ज्ञान का विषय (२) ध्यानी क ध्यान का विषय, (३) कमविपाक, (४) लोकचिन्ता ।

---

२१२ स्थानाग, अ ४, उ १, सूत्र २४९
२१३ समवायाग, सम ४ सूत्र १
२१४ प्रज्ञापना, पद १४, सूत्र १८६
२१५ स्थानाग, अ ४, उ २, सूत्र २८२
२१६ प्रश्नव्याकरण, ५वा सवरद्वार
२१७ समवायाग—सम ४, सूत्र ४
२१८ स्थानागसूत्र—अ ४, उ ४, सूत्र ३५६
२१९ समवायाग, सम ४, सूत्र ४
२२० प्रज्ञापना सूत्र, पद ८
२२१ स्थानाग सूत्र—अ ४, सूत्र ४८६
२२२ समवायाग, सम ४, सूत्र ७
२२३ सूयप्रज्ञप्ति प्रा १०, प्रा ९, सूत्र ४२
२२४ स्थानागसूत्र—अ ८, उ १, सूत्र ६३८
२२५ समवायाग सूत्र—सम ४, सूत्र ६
२२६ स्थानाग—स्थान-६
२२७ अगुत्तरनिकाय ४-७७

स्थानाग[228] म जिन कारणा स आत्मा क साथ कम का बध होता है, उन्ह आश्रव कहा है। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग, ये आश्रव है। बौद्ध ग्रन्थ अगुत्तरनिकाय[229] म आश्रव का मूल 'अविद्या' बताया है। अविद्या के निरोध म आश्रव का अपने आप निरोध होता है। आश्रव के कामाश्रव, भवाश्रव, अविद्याश्रव, ये तीन भेद किये है। मज्झिमनिकाय[230] के अनुसार मन वचन और काय की क्रिया का ठीक ठीक करने से आश्रव रुकता है। आचार्य उमास्वाति[231] ने भी काय वचन और मन की क्रिया को योग कहा है वही आश्रव है।

स्थानाग सूत्र मे विकथा के स्त्रीकथा भक्तकथा, देशकथा राजकथा, मदुकारुणिककथा, दशनभेदिनीकथा और चारित्रभेदनीकथा, ये सात प्रकार बताये है।[232] बुद्ध ने विकथा के स्थान पर 'तिरच्छान' शब्द का प्रयोग किया है। उसके राजकथा चोरकथा, महामात्यकथा, सेनाकथा, भयकथा, युद्धकथा, अन्नकथा, पानकथा, वस्त्रकथा, शयनकथा, मालाकथा, गन्धकथा, ज्ञातिकथा यानकथा ग्रामकथा, निगमकथा, नगरकथा, जनपदकथा, स्त्रीकथा, आदि अनेक भेद किये है।[233]

स्थानाग[234] मे राग और द्वेष स पाप कम का बध बताया है। अगुत्तर निकाय[235] म तीन प्रकार से कमसमुदय माना है—लोभज दोषज और मोहज। इनमे भी सब म अधिक मोहज को दोषजनक माना है।[236]

स्थानाग[237] म जातिमद कुलमद बलमद, रूपमद तपोमद श्रुतमद लाभमद और ऐश्वयमद ये आठ मदस्थान बताये है तो अगुत्तरनिकाय[238] म मद के तीन प्रकार बताये है—यौवन, आरोग्य और जीवितमद। इन मदो से मानव दुराचारी बनता है।

स्थानाग[239] मे आश्रव के निरोध को सवर कहा है और उसके भेद-प्रभेदो की चर्चा भी की गयी है। तथागत बुद्ध ने अगुत्तरनिकाय म कहा है[240] कि आश्रव का निरोध केवल सवर से ही नही होता प्रत्युत[241] (१) सवर स (२) प्रतिसेवना से (३) अधिवासना से (४) परिवजन स (५) विनोद से (६) भावना स होता है, इन सभी म भी अविद्यानिरोध को ही मुख्य आश्रवनिरोध माना है।

स्थानाग[242] म अरिहत सिद्ध साधु धम इन चार शरणो का उल्लेख है, तो बुद्ध ने 'बुद्ध सरण गच्छामि, धम्म सरण गच्छामि, सघ सरण गच्छामि इन तीन को महत्त्व दिया है।

---

२२८ स्थानाग—स्था ५, सूत्र ४१८
२२९ अगुत्तर निकाय—३-५८, ६-६३
२३० मज्झिमनिकाय—१-१-२
२३१ तत्त्वाथसूत्र, अ ६ सूत्र १ २
२३२ स्थानागसूत्र स्थान—७, सूत्र ५६९
२३३ अगुत्तरनिकाय १० ६९
२३४ स्थानाग ९६
२३५ अगुत्तरनिकाय ३।३
२३६ अगुत्तरनिकाय ३।९७, ३।३९
२३७ स्थानाग ६०६
२३८ अगुत्तरनिकाय ३।३९
२३९ स्थानाग ४२७
२४० अगुत्तरनिकाय ६।५८
२४१ अगुत्तरनिकाय ६।६३
२४२ स्थानागसूत्र-४,

स्थानांग[243] मे श्रमणोपासकों के लिए पांच अणुव्रतों का उल्लेख है तो अंगुत्तरनिकाय[244] मे बौद्ध उपासकों के लिए पांच शील का उल्लेख है। प्राणातिपातविरमण, अदत्तादानविरमण कामभोगमिथ्याचार से विरमण, मृषावाद से विरमण, सुरा मेरिय मद्य-प्रमाद स्थान से विरमण।

स्थानांग[245] मे प्रश्न के छह प्रकार बताये हैं—संशयप्रश्न, मिथ्याभिनिवेशप्रश्न, अनुयोगी प्रश्न, अनुलोम-प्रश्न, जानकर किया गया प्रश्न न जानने से किया गया प्रश्न, अंगुत्तरनिकाय[246] मे बुद्ध ने कहा—'कितने ही प्रश्न ऐसे होते हैं, जिनके एक अंश का उत्तर देना चाहिए। कितने ही प्रश्न ऐसे होते हैं जिनका प्रश्नकर्ता से प्रतिप्रश्न कर उत्तर देना चाहिये। कितने ही प्रश्न ऐसे होते हैं, जिनका उत्तर नहीं देना चाहिए।'

स्थानाङ्ग मे छह लेश्याओं का वर्णन है।[247] वैसे ही अंगुत्तरनिकाय[248] मे पूरणकश्यप द्वारा छह अभिजातियों का उल्लेख है जो रंग के आधार पर निश्चित की गई हैं। वे इस प्रकार हैं—

(१) कृष्णाभिजाति—बकरी, सुअर, पक्षी, और पशु पक्षी पर अपनी आजीविका चलानेवाला मानव कृष्णाभिजाति है।

(२) नीलाभिजाति—कंटकवृत्ति भिक्षुक नीलाभिजाति है—बौद्धभिक्षु और अन्य कर्म करने वाले भिक्षुओं का समूह।

(३) लोहिताभिजाति—एकशाटक निर्ग्रन्थों का समूह।

(४) हरिद्राभिजाति—श्वेतवस्त्रधारी या निर्वस्त्र।

(५) शुक्लाभिजाति—आजीवक श्रमण-श्रमणियों का समूह।

(६) परमशुक्लाभिजाति—आजीवक आचार्य, नन्द, वत्स, कृश, सांकृत्य, मस्करी, गोशालक, आदि का समूह।

आनन्द ने गौतम बुद्ध से इन छह अभिजातियों के सम्बन्ध में पूछा-तो उन्होंने कहा कि मैं भी छह अभिजातियों की प्रज्ञापना करता हूं।

(१) कोई पुरुष कृष्णाभिजातिक (नीच कुल में उत्पन्न) होकर कृष्णकर्म तथा पापकर्म करता है।

(२) कोई पुरुष कृष्णाभिजातिक होकर धर्म करता है।

(३) कोई पुरुष कृष्णाभिजातिक हो, अकृष्ण, अशुक्ल निर्वाण को पैदा करता है।

(४) कोई पुरुष शुक्लाभिजातिक (ऊंचे कुल मे समुत्पन्न होकर) शुक्ल कर्म करता है।

(५) कोई पुरुष शुक्लाभिजातिक हो कृष्ण कर्म करता है।

(६) कोई पुरुष शुक्लाभिजातिक हो, अकृष्ण-अशुक्ल निर्वाण को पैदा करता है।[249]

---

२४३ स्थानांग स्था-५
२४४ अंगुत्तरनिकाय ८-२५
२४५ स्थानांग, स्थान-६, सूत्र ५३४
२४६ अंगुत्तरनिकाय-४२
२४७ स्थानाङ्ग ५१
२४८ अंगुत्तरनिकाय ६।६।३, भाग तीसरा, पृ ३५, ९३-९४
२४९ अंगुत्तरनिकाय ६।६।३, भाग तीसरा पृ ९३, ९४

महाभारत[२५०] म प्राणिया के छह प्रकार क वण बताये हैं। सनतकुमार न दानवन्द्र वृत्रासुर से कहा—प्राणिया के वण छह हाल ह—कृष्ण, धूम्र, नील रक्त, हारिद्र और शुक्ल। इनमे म कृष्ण, धूम्र और नील वण का सुख मध्यम होता है। रक्त वण अधिक सह्य हाता है हारिद्र वण सुखकर और शुक्ल वण अधिक सुखकर होता है।

गीता[२५१] म गति के कृष्ण और शुक्ल ये दो विभाग किये ह। कृष्ण गतिवाला पुन पुन जन्म लेता ह और शुक्ल गतिवाला जन्म मरण स मुक्त हाता है।

धम्मपद[२५२] मे धम के दो विभाग किये हैं। वहा वणन है कि पण्डित मानव को कृष्ण धम को छोडकर शुक्ल धम का आचरण करना चाहिए।

पतजलि[२५३] न पातजलयोगसूत्र मे कम की चार जातियाँ प्रतिपादित की है। कृष्ण, शुक्ल कृष्ण, शुक्ल अशुक्ल अकृष्ण ये क्रमश अशुद्धतर अशुद्ध, शुद्ध और शुद्धतर है। इस तरह स्थानाग सूत्र म आये हुये लेश्यापद से आशिक दृष्टि से तुलना हो सकती है।

स्थानाग[२५४] म सुगत क तीन प्रकार बताये हैं—(१) सिद्धिसुगत, (२) देवसुगत (३) मनुष्यसुगत।

अगुत्तरनिकाय म भी राग द्वेष और माह को नष्ट करनेवाले को सुगत कहा ह।[२५४]

स्थानाग के अनुसार[२५५] पाच कारणा से जीव दुगति म जाता ह। वे कारण ह—(१) हिंसा (२) असत्य (३) चारी (४) मैथुन (५) परिग्रह। अगुत्तरनिकाय[२५] म नरक जान के कारणा पर चिन्तन करते हुय लिखा है—अकुशल कायकम अकुशल वाककम अकुशल मन कम सावद्य आदि कम।

श्रमण क लिये स्थानाग[२५७] म छह कारणा से आहार करन का उल्लेख ह—(२) क्षुधा की उपशान्ति (२) वैयावृत्य (३) ईर्याशोधन (४) सयमपालन (५) प्राणधारण (६) धमचिन्तन। अगुत्तरनिकाय म आनन्द न एक श्रमणी का इसी तरह का उपदेश दिया ह।[२५८]

स्थानाग[२५९] मे इहलोक भय, परलोकभय आदानभय अकस्मात भय वेदनाभय, मरणभय, अश्लोकभय, आदि भयस्थान बताये हैं तो अगुत्तरनिकाय[२६०] मे भी जाति जन्म जरा व्याधि, मरण, अग्नि, उदक, राज, चार, आत्मानुवाद—अपने दुश्चरित का विचार (दूसर मुझे दुश्चरित्रवान कहेंगे यह भय), दण्ड, दुगति आदि आठ भयस्थान बताये है।

---

२५० महाभारत शान्तिपर्व २८०।३३
२५१ गीता ८।२६
२५२ धम्मपद पण्डितवग्ग, श्लोक १९
२५३ पातजलयोगसूत्र ४।७
२५४ स्थानागसूत्र—१८४
२५४ अगुत्तरनिकाय ३।७२
२५५ स्थानाग ३९१
२५६ अगुत्तरनिकाय ३।७२
२५७ स्थानाग ५००
२५८ अगुत्तरनिकाय ८।१।९
२५९ स्थानाग ५४९
२६० अगुत्तरनिकाय ४।११९

स्थानागसूत्र[२६१] म बताया है कि मध्यलोक मे चन्द्र सूय, मणि, ज्योति, अग्नि आदि म प्रकाश होता है। अगुत्तरनिकाय[२६२] म आभा, प्रभा, आलोक, प्रज्योत, इन प्रत्येक के चार चार प्रकार बताये हैं—चन्द्र, सूय, अग्नि और प्रज्ञा।

स्थानाग[२६३] म लोक को चौदह रज्जु कहकर उसम जीव और अजीव द्रव्यो का सद्भाव बताया है। वैसे ही अगुत्तरनिकाय[२६४] म भी लोक को अनन्त कहा है। तथागत बुद्ध ने कहा है—पाँच कामगुण रूप रमादि यही लोक है। और जो मानव पाँच कामगुणो का परित्याग करता है, वही लोक के अन्त मे पहुँच कर वहाँ पर विचरण करता है।

स्थानाग[२६५] म भूकम्प के तीन कारण बताये हैं। (१) पृथ्वी के नीचे का घनवात व्याकुल होता है। उससे समुद्र म तूफान आता है। (२) कोई महेश महोरग देव अपने सामर्थ्य का प्रदशन करने के लिये पृथ्वी को चलित करता है। (३) देवासुर सग्राम जब होता है तब भूकम्प आता है। अगुत्तरनिकाय[२६६] म भूकम्प के आठ कारण बताये है—पृथ्वी के नीचे की महावायु के प्रकम्पन स उस पर रही हुई पृथ्वी प्रकम्पित होता है। (२) कोई श्रमण ब्राह्मण अपनी ऋद्धि के बल स पृथ्वी-भावना को करता है। (३) जब बोधिसत्व माता के गभ म आते हैं। (४) जब बोधिसत्व माता के गभ से बाहर आते हैं। (५) जब तथागत अनुत्तर ज्ञान लाभ प्राप्त करते हैं। (६) जब तथागत धम चक्र का प्रवतन करते हैं। (७) जब तथागत आयु सस्कार को समाप्त करते हैं। (८) जब तथागत निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

स्थानाग[२६७] म चक्रवर्ती के चौदह रत्नो का उल्लेख है तो दीघनिकाय[२६८] मे चक्रवर्ती के सात रत्नो का उल्लेख है।

स्थानाग[२६९] म बुद्ध के तीन प्रकार बताये हैं—ज्ञानबुद्ध, दशनबुद्ध और चारित्रबुद्ध तथा स्वयसबुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध और बुद्धबोधित। अगुत्तरनिकाय[२७०] म बुद्ध के तथागतबुद्ध और प्रत्येकबुद्ध ये दो प्रकार बताये हैं।

स्थानाग[२७१] म स्त्री के चरित्र का वणन करते हुए चतुभगी बतायी है। वैसे ही अगुत्तरनिकाय[२७२] म भार्या की सप्तभगी बतायी हैं—(१) वधक के समान (२) चोर के समान (३) अय्य के समान (४) अकमकामा (५) आलसी (६) चण्डी (७) दुरुक्तवादिनी। माता के समान, भगिनी के समान, सखी के समान, दासी के समान स्त्री के ये अन्य प्रकार भी बताये हैं।

स्थानाग[२७३] म चार प्रकार के मेघ बताये हैं—(१) गजना करते हैं पर बरसते नहीं है (२) गर्जते नहीं

---

२६१ स्थानाग—स्थान ४
२६२ अगुत्तरनिकाय ४।१४१, १४५
२६३ स्थानागसूत्र ८
२६४ अगुत्तरनिकाय ८।७०
२६५ स्थानाग—३
२६६ अगुत्तरनिकाय ८।१४१, १४५
२६७ स्थानाग सूत्र—७
२६८ दीघनिकाय—१७
२६९ स्थानाग ३।१५६
२७० अगुत्तरनिकाय २।६।५
२७१ स्थानाग २७०
२७२ अगुत्तरनिकाय ७।५९
२७३ स्थानाग ४।३४६

हैं, बरसन ह (३) गजते ह बरसत ह (४) गजते भी नहीं, बरसत भी नहीं ह। अगुत्तरनिकाय[२७४] म प्रत्यव भग म पुरुष को घटाया है—(१) बहुत बोलता है पर करता कुछ नहीं ह (२) बोलता नहीं है पर करता ह। (३) बोलता भी नहीं है करता भी नहीं (४) बोलता भी है और करता भी है। इस प्रकार गजना और बरसना रूप चतुभगी अन्य रूप से घटित का गई है।

स्थानाग[२७५] म कुम्भ के चार प्रकार बताये हैं—(१) पूण और अपूण (२) पूण और तुच्छ (३) तुच्छ और पूण (४) तुच्छ और अतुच्छ। इसी तरह कुछ प्रकारान्तर स अगुत्तरनिकाय[२७६] मे भी कुम्भ की उपमा पुरुष चतुर्भंगी स घटित की है (१) तुच्छ—खाली होन पर ढक्कन होता है (२) भरा होन पर भी ढक्कन नहीं होता। (३) तुच्छ होता है पर ढक्कन नहीं होता। भरा हुआ होता है पर ढक्कन नहीं होता। (१) जिस की वेश-भूषा तो सुन्दर है किन्तु जिसे आयसत्य का परिज्ञान नहीं है वह प्रथम कुम्भ के सदृश है। (२) आयसत्य का परिज्ञान होने पर भी बाह्य आकार सुन्दर नहीं है तो वह द्वितीय कुम्भ के समान है (३) बाह्य आकार भी सुन्दर नहीं और आयसत्य का परिज्ञान भी नहीं है।(४) आयसत्य का भी परिज्ञान है और बाह्य आकार भी सुन्दर है, वह तीसरे चौथे कुम्भ क समान है।

स्थानाग[२७७] म साधना के लिये शल्य-रहित होना आवश्यक माना है। मज्झिम निकाय[२७८] म तृष्णा के लिये शल्य शब्द का प्रयोग हुआ है और साधक को उस स मुक्त होन के लिए कहा गया है। स्थानाग[२७९] म नरक, तियच, मनुष्य और देव गति का वणन है। मज्झिमनिकाय[२८०] म पाच गतियाँ बताई हैं। नरक, तियक प्रेत्यविषयक मनुष्य और देवता। जन आगमो म प्रेत्यविषय और देवता को एक कोटि म माना है। भले हो निवासस्थान की दृष्टि स दो भद किय गय हो पर गति की दृष्टि से दोनो एक ही है। स्थानाग[२८१] म नरक और स्वग म जान क क्रमश य कारण बताय हैं—महारम्भ महापरिग्रह, मद्यमास का आहार, पचेन्द्रियवध। तथा सराग सयम सयमासयम बालतप और अकामनिजरा य स्वग के कारण हैं मज्झिमनिकाय[२८२] म भी नरक और स्वग के कारण बताय गय हैं (कायिक, ३) हिंसक, अदिन्नादायी (चार) काम म मिथ्याचारी, (वाचिक ४) मिथ्यावादी चुगलखोर परुष-भाषी, प्रलापी (मानसिक ३) अभिध्यालु व्यापन्नचित्त मिथ्यादृष्टि। इन कर्मों को करन वाले नरक म जाते है, इसके विपरीत काय करने वाल स्वग म जाते हैं।

स्थानाग[२८३] म बताया है कि तीथकर चक्रवर्ती, पुरुष ही होते हैं किन्तु मल्ली भगवती स्त्रीलिंग म तीर्थंकर हुई है। उन्हें दश आश्चर्यों म म एक आश्चय माना है। अगुत्तरनिकाय[२८४] म बुद्ध ने भी कहा कि भिक्षु यह तनिक भी सभावना नहीं है कि स्त्री अहत् चक्रवर्ती व शुक्र हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्थानाग विषय सामग्री की दृष्टि स आगम-साहित्य म अत्यधिक महत्त्वपूण

---

२७४ अगुत्तरनिकाय ४।११०
२७५ स्थानाग ४।३६०
२७६ अगुत्तरनिकाय ४।१०३।
२७७ स्थानाग—सू १८२
२७८ मज्झिमनिकाय—२-१-५
२७९ स्थानाग—स्थान ४
२८० मज्झिमनिकाय १-२-२
२८१ स्थानाग—स्थान ४ उ ४ सू ३७३
२८२ मज्झिमनिकाय १-५-१
२८३ स्थानाङ्ग—स्थान १०
२८४ अगुत्तरनिकाय

स्थान रखता है। या सामान्य गणना के अनुसार इस में बारह सौ विषय हैं। भेद-प्रभेद की दृष्टि से विषयों की संख्या और भी अधिक है। यदि इस आगम का गहराई में परिशीलन किया जाए तो विविध विषयों का गम्भीर ज्ञान हो सकता है। भारतीय ज्ञानगरिमा और सौष्ठव का इतना सुन्दर समन्वय अन्यत्र दुर्लभ है। इस में ऐसे अनेक सार्वभौम सिद्धान्तों का सकलन-आकलन हुआ है, जो जैन, बौद्ध और वैदिक परम्पराओं के ही मूलभूत सिद्धान्त नहीं हैं अपितु आधुनिक विज्ञान जगत् में वे मूलसिद्धान्त के रूप में वैज्ञानिकों के द्वारा स्वीकृत हैं। हर ज्ञानपिपासु और अभिसन्धित्सु को प्रस्तुत आगम अन्तस्तोष प्रदान करता है।

व्याख्या-साहित्य

स्थानांग सूत्र में विषय की बहुलता होने पर भी चिन्तन की इतनी जटिलता नहीं है, जिसे उद्घाटित करने के लिए उस पर व्याख्यासाहित्य का निर्माण अत्यावश्यक होता। यही कारण है कि प्रस्तुत आगम पर न किसी नियुक्ति का निर्माण हुआ और न भाष्य ही लिखे गये, न चूर्णि ही लिखी गई। सर्वप्रथम इस पर संस्कृत भाषा में नवाङ्गीटीकाकार अभयदेव सूरि ने वृत्ति का निर्माण किया। आचार्य अभयदेव प्रकृष्ट प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने वि. सं. ग्यारह सौ बीस में स्थानांग सूत्र पर वृत्ति लिखी। प्रस्तुत वृत्ति मूल सूत्रों पर है जो केवल शब्दार्थ तक ही सीमित नहीं है, अपितु उनमें सूत्र से सम्बन्धित विषयों पर गहराई से विचार हुआ है। विवेचन में दार्शनिक दृष्टि यत्र-तत्र स्पष्ट हुई है। 'तथा हि' 'यदुक्तं' 'उक्तं च' 'आह च' तदुक्तं 'यदाह' प्रभृति शब्दों के साथ अनेक अवतरण दिये हैं। आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व को सिद्ध करने के लिये विशेषावश्यकभाष्य की अनेक गाथाएँ उद्धृत की हैं। अनुमान से आत्मा की सिद्धि करते हुये लिखा है—इस शरीर का भोक्ता कोई न कोई अवश्य होना चाहिये, क्योंकि यह शरीर भोग्य है। जो भोग्य होता है उस का अवश्य ही कोई भोक्ता होता है। प्रस्तुत शरीर का कर्ता "आत्मा" है। यदि कोई यह तर्क करे कि कर्ता होने से रसोइया के समान आत्मा भी मूर्त्त होनी चाहिये तो ऐसी स्थिति में प्रस्तुत हेतु साध्यविरुद्ध हो जाता है किन्तु यह तर्क बाधक नहीं है, क्योंकि संसारी आत्मा कथंचित् मूर्त्त भी है। अनेक स्थलों पर ऐसी दार्शनिक चर्चाएं हुई हैं। वृत्ति में यत्र-तत्र निक्षेपपद्धति का उपयोग किया है। जो नियुक्तियों और भाष्यों का सहज स्मरण कराती है। वृत्ति में मुख्य रूप से संक्षेप में विषय को स्पष्ट करने के लिये दृष्टान्त भी दिये गये हैं।

वृत्तिकार अभयदेव ने उपसंहार में अपना परिचय देते हुये यह स्वीकार किया है कि यह वृत्ति मैंने यशोदेवगणी की सहायता से सम्पन्न की। वृत्ति लिखते समय अनेक कठिनाइयाँ आईं। प्रस्तुत वृत्ति को द्रोणाचार्य ने आदि से अन्त तक पढ़कर संशोधन किया। उसके लिए भी वृत्तिकार ने उनका हृदय से आभार व्यक्त किया। वृत्ति का ग्रन्थमान चौदह हजार दो सौ पचास श्लोक हैं। प्रस्तुत वृत्ति सन् १८८० में राय धनपतसिंह द्वारा कलकत्ता से प्रकाशित हुई। सन् १९१८ और १९२० में आगमोदय समिति बम्बई से, सन् १९३७ में माणकलाल चुन्नीलाल अहमदाबाद से और गुजराती अनुवाद के साथ मुन्द्रा (कच्छ) से प्रकाशित हुई। केवल गुजराती अनुवाद के साथ सन् १९३१ में जीवराज घेलाभाई डोसी अहमदाबाद से, सन् १९५५ में पं. दलसुख भाई मालवणिया ने गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद से स्थानांग समवायांग के साथ में रूपान्तर प्रकाशित किया है। जहाँ-तहाँ तुलनात्मक टिप्पण देने से यह ग्रन्थ अतीव महत्त्वपूर्ण बन गया है।

संस्कृतभाषा में संवत् १६५७ में नगर्षिगणी तथा पार्श्वचन्द्र व सुमति कल्लोल और संवत् १७०५ में हर्षनन्दन ने भी स्थानांग पर वृत्ति लिखी है। तथा पूज्य घासीलाल जी म. ने अपने ढंग से उस पर वृत्ति लिखी है। वीर संवत् २४४६ में हैदराबाद से सर्वप्रथम हिन्दी अनुवाद के साथ आचार्य अमोलकऋषि जी म. ने सरल संस्करण प्रकाशित करवाया। सन् १९७२ में मुनि श्री कन्हैयालाल जी 'कमल' ने आगम अनुयोग प्रकाशन, साण्डेराव से स्थानांग का एक शानदार संस्करण प्रकाशित करवाया है, जिसमें अनेक परिशिष्ट भी हैं। आचार्य-सम्राट आत्मारामजी म. ने हिन्दी में विस्तृत व्याख्या लिखी। वह आत्माराम प्रकाशन समिति लुधियाना से

प्रकाशित हुयी। वि स २०३३ म मू सस्कृत छाया हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पणा के साथ जैन विश्वभारती स इस का एक प्रशस्त सस्करण भी प्रकाशित हुआ है।

इसके अतिरिक्त अनेक सस्करण मूल रूप म भी प्रकाशित हुए है। स्थानकवासी परम्परा क आचाय धर्मसिंहमुनि ने अट्ठारहवी शताब्दी म स्थानाग पर टब्बा (टिप्पण) लिखा था। पर अभी तक वह प्रकाशित नही हुआ है।

प्रस्तुत सस्करण

समय-समय पर युग क अनुरूप स्थानाग पर लिखा गया है और विभिन्न स्थाना स इस सम्बन्ध म प्रयास हुए। उसी प्रयास की कडी की कडी म प्रस्तुत प्रयास भी है। श्रमण सघ के युवाचाय मधुकर मुनिजी एक प्रकृष्ट प्रतिभा के धनी सन्तरत्न हैं, मेरे सद्गुरुवय उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी म के निकटतम स्नेही, सहयोगी व सहपाठी है। उनकी वर्षों स यह चाह थी कि आगमो का शानदार सस्करण प्रकाशित हो जिसम शुद्ध मूलपाठ हिन्दी अनुवाद और विशिष्ट स्थला पर विवेचन हो। युवाचायश्री के कुशल निर्देशन म आगमा का सम्पादन और प्रकाशन काय प्रारम्भ हुआ और वह अत्य त द्रुतगति के साथ चल रहा है।

प्रस्तुत आगम का अनुवाद और विवेचन दिगम्बर परम्परा के मूधन्य मनीषी प हीरालालजी शास्त्री न किया है। पण्डित हीरालाल जी शास्त्री नीव की इट के रूप म रहकर दिगम्बर जन साहित्य के पुनरुद्धार के लिये जीवन भर लगे रहे। प्रस्तुत सम्पादन उन्होने जीवन का सान्ध्य वेला म किया है। सम्पादन सम्पन्न होने पर उनका निधन भी हो गया। उनके अपूर्ण काय का सम्पादन-कला ममज्ञ पण्डितप्रवर शोभाचन्द्र जी भारिल्ल ने बहुत ही श्रम के साथ सम्पन्न किया। यदि सम्पादन म अधिक श्रम होता तो अधिक निखार आता। पण्डित भारिल्ल जी की प्रतिभा का चमत्कार यत्र तत्र निहारा जा सकता है।

स्थानाग पर मैं बहुत ही विस्तार क साथ प्रस्तावना लिखना चाहता था। किन्तु मेरा स्वास्थ्य अस्वस्थ हो गया। इधर ग्रन्थ के विमाचन का समय भी निर्धारित हो गया। इसलिये सक्षेप म प्रस्तावना लिखने के लिये मुझे विवश होना पडा। तथापि बहुत कुछ लिख गया हू और इतना लिखना आवश्यक भी था। मुझे आशा है कि यह सस्करण आगम अभ्यासी स्वाध्यायप्रेमी साधको के लिय अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। आशा है कि अन्य आगमो की भाति यह आगम भी जन जन के मन को लुभायगा।

श्रीमती बग्जुबाई जसराज राका
स्थानकवासी जैन धमस्थानक
राखी (राजस्थान)
ज्ञानपचमी
२।११।१९८१

देवेन्द्रमुनि शास्त्री

विषयानुक्रम

द्वितीय उद्देशक

तृतीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशक

तृतीय उद्देशक

षष्ठस्थान

प्रथम उद्देशक

अष्टम स्थान

प्रथम उद्देशक

नवम स्थान

प्रथम उद्देशक

दशम स्थान

□□

पचमगणहर सिरिसुहम्मसामिविरइय तइय अग

ठाणं

पञ्चमगणधर श्रीसुधम-स्वामिविरचित तृतीयम् अङ्गम्

स्थानांगसूत्रम्

स्थानांग : प्रथम स्थान

सार संक्षेप

☐ द्वादशाङ्गी जिनवाणी के तीसरे अंगभूत इस स्थानाङ्ग मे वस्तु-तत्त्व का निरूपण एक से लेकर दश तक की संख्या (स्थान) के आधार पर किया गया है। जैन दर्शन मे सर्वकथन नयो की मुख्यता और गौणता लिए हुए होता है। जब वस्तु की एकता या नित्यता आदि का कथन किया जाता है, उस समय अनेकता या अनित्यता रूप प्रतिपक्षी अंश की गौणता रहती है और जब अनेकता या अनित्यता का कथन किया जाता है, तब एकता या नित्यता रूप अंश की गौणता रहती है। एकता या नित्यता के प्रतिपादन के समय द्रव्यार्थिकनय से और अनेकता या अनित्यता-प्रतिपादन के समय पर्यायार्थिक नय से कथन किया जा रहा है, ऐसा जानना चाहिए।

☐ तीसरे अंग के इस प्रथम स्थान मे द्रव्यार्थिक नय की मुख्यता से कथन किया गया है, क्योंकि यह नय वस्तु गत धर्मों की विवक्षा न करके अभेद की प्रधानता से कथन करता है। दूसरे आदि *शेष स्थानो मे वस्तुतत्त्व का निरूपण पर्यायार्थिक नय की मुख्यता से भेद रूप मे किया गया है।*

☐ *'आत्मा एक है'* यह कथन द्रव्य की दृष्टि से है, क्योंकि सभी आत्माएँ एक सदृश ही अनन्त शक्ति-सम्पन्न होती हैं। 'जम्बूद्वीप एक है,' यह कथन क्षेत्र की दृष्टि से है। 'समय एक है' यह कथन काल की दृष्टि से है और 'शब्द एक है' यह कथन भाव की दृष्टि मे है, क्योंकि भाव का अर्थ यहाँ पर्याय है और शब्द पुद्गलद्रव्य की एक पर्याय है। इन चारो सूत्रो के विषयभूत *द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव मे से एक-एक की मुख्यता से उनका प्रतिपादन किया गया है,* शेष की गौणता रही है, क्योंकि जैन दर्शन मे प्रत्येक वस्तु का निरूपण द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव के आधार पर किया जाता है।

द्रव्यार्थिक नय के दो प्रमुख भेद है—संग्रहनय और व्यवहारनय। संग्रहनय अभेदग्राही है और व्यवहारनय भेदग्राही है। इस प्रथम स्थान मे संग्रह नय की मुख्यता से कथन है। आगे के स्थानो मे व्यवहार नय की मुख्यता से कथन है। अतः *जहाँ इस स्थान मे आत्मा के एकत्व का कथन है वहीं* दूसरे आदि स्थानो मे उसके अनेकत्व का भी कथन किया गया है।

प्रथम स्थान के सूत्रो का वर्गीकरण अस्तिवादपद, प्रकीर्णक पद, पुद्गल पद, अष्टादश पाप पद, अष्टादश पाप विरमण पद, अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीपद, चतुर्विंशति दण्डक पद, भव्य-अभव्यसिद्धिक पद, दृष्टिपद, कृष्ण-शुक्ल पाक्षिकपद, लेश्यापद, जम्बूद्वीपपद, महावीरनिर्वाणपद, देवपद और नक्षत्र पद के रूप मे किया गया है।

इस प्रथम स्थान के सूत्रो की संख्या २५६ है।

प्रथम स्थान

१—सुयं मे आउसं ! तेणं भगवता एवमक्खायं—

हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है—उन भगवान् ने ऐसा कहा है। (१)

विवेचन—भगवान् महावीर के पांचवें गणधर श्री सुधर्मा स्वामी जम्बूनामक अपने प्रधान शिष्य को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—हे आयुष्मन्—चिरायुष्क ! मैंने अपने कानों से स्वयं ही सुना है कि उन अष्ट महाप्रातिहार्यादि ऐश्वर्य से विभूषित भगवान् महावीर ने तीसरे स्थानाङ्ग सूत्र के अर्थ का इस (वक्ष्यमाण) प्रकार से प्रतिपादन किया है।

अस्तित्व सूत्र

२—एगे आया।

आत्मा एक है (२)

विवेचन—जैन सिद्धान्त में वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन नय-दृष्टि की अपेक्षा से किया जाता है। वस्तु के विवक्षित किसी एक धर्म (स्वभाव / गुण) का प्रतिपादन करने वाले ज्ञान को नय कहते हैं। नय के मूल भेद दो हैं—द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय। भूत भविष्य और वर्तमान काल में स्थिर रहने वाले ध्रुव स्वभाव का प्रतिपादन द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि से किया जाता है और प्रति समय नवीन नवीन उत्पन्न होनेवाली पर्यायों—अवस्थाओं का प्रतिपादन पर्यायार्थिक नयकी दृष्टि से किया जाता है। प्रत्येक वस्तु सामान्य विशेषात्मक है, अतः सामान्य धर्म की विवक्षा या मुख्यता से कथन करना द्रव्यार्थिकनय का कार्य है और विशेष धर्मों की मुख्यता से कथन करना पर्यायार्थिक नयका कार्य है। प्रत्येक आत्मा में ज्ञान दर्शनरूप उपयोग समानरूप से संसारी और सिद्ध सभी अवस्थाओं में पाया जाता है, अतः प्रस्तुत सूत्र में कहा गया है कि आत्मा एक है, अर्थात् उपयोग स्वरूप से सभी आत्मा एक समान हैं। यह अभेद विवक्षा या संग्रह दृष्टि से कथन है। पर भेद-विवक्षा से आत्माएँ अनेक हैं, क्योंकि प्रत्येक प्राणी अपने अपने सुख-दुःख का अनुभव पृथक्-पृथक् ही करता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक आत्मा भी असंख्यात प्रदेशात्मक होने से अनेक रूप है। आत्मा के विषय में एकत्व-प्रतिपादन जिस अभेद दृष्टि से किया गया है, उसी दृष्टि से वक्ष्यमाण एकस्थान-सम्बन्धी सभी सूत्रों का कथन भी जानना चाहिए।

३—एगे दंडे।

दण्ड एक है (३)।

विवेचन—आत्मा जिस क्रिया विशेष से दण्डित अर्थात् ज्ञानादि गुणों से हीन या असार किया जाता है, उसे दण्ड कहते हैं। दण्ड दो प्रकार का होता है—द्रव्यदण्ड और भावदण्ड। लाठी-बेंत आदि से मारना द्रव्यदण्ड है। मन वचन काय की दुष्प्रवृत्ति को भावदण्ड कहते हैं। यहां पर दोनों

दण्ड विवक्षित है, क्योंकि हिंसादि से तथा मन वचन काय की दुष्प्रवृत्ति से आत्मा के ज्ञानादि गुणो का ह्रास होता है। इस ज्ञानादि गुणो के ह्रास या हानि होने की अपेक्षा वधसामान्य से सभी प्रकार के दण्ड एक समान होने से 'एक दण्ड है' ऐसा कहा गया है। यहा दण्ड शब्द से पाच प्रकार के दण्ड ग्रहण किए गए हैं—(१) अर्थदण्ड, (२) अनर्थदण्ड, (३) हिंसादण्ड, (४) अकस्माद् दण्ड और (५) दृष्टिविपर्यासदण्ड।

४—एगा किरिया।

क्रिया एक है (४)।

विवेचन—मन वचन काय के व्यापार को क्रिया कहते हैं। आगम में क्रिया के आठ भेद कहे गये हैं—(१) मृषाप्रत्यया, (२) अदत्तादानप्रत्यया, (३) आध्यात्मिकी, (४) मानप्रत्यया, (५) मित्र-द्वेषप्रत्यया, (६) मायाप्रत्यया, (७) लोभप्रत्यया, और (८) ऐर्यापथिकी क्रिया। इन आठो ही भेदो मे करण (करना) रूप व्यापार समान है, अत क्रिया एक कही गयी है। प्रस्तुत दो सूत्रो मे आगमोक्त १३ क्रियास्थानो का समावेश हो जाता है।

५—एगे लोए। ६—एगे अलोए। ७—एगे धम्मे। ८—एगे अहम्मे। ९—एगे बंधे। १०—एगे मोक्खे। ११—एगे पुण्णे। १२—एगे पावे। १३—एगे आसवे। १४—एगे संवरे। १५—एगा वेयणा। १६—एगा णिज्जरा।

लोक एक है (५)। अलोक एक है (६)। धर्मास्तिकाय एक है (७)। अधर्मास्तिकाय एक है (८)। बन्ध एक है (९)। मोक्ष एक है (१०)। पुण्य एक है (११)। पाप एक है (१२)। आस्रव एक है (१३)। संवर एक है (१४) वेदना एक है (१५)। निर्जरा एक है (१६)।

विवेचन—आकाश के दो भेद हैं—लोक और अलोक। जितने आकाश मे जीवादि द्रव्य अवलोकन किये जाते है, अर्थात् पाये जाते है उसे लोक कहते हैं और जहा पर आकाश के सिवाय अन्य कोई भी द्रव्य नही पाया जाता है, उसे अलोक कहते हैं। जीव और पुद्गलो के गमन मे सहायक द्रव्य को धर्मास्तिकाय कहते है और उनकी स्थिति मे सहायक द्रव्य को अधर्मास्तिकाय कहते हैं। योग और कषाय के निमित्त से कर्म पुद्गलो का आत्मा के साथ बधना बन्ध कहलाता है और उनका आत्मा से वियुक्त होना मोक्ष कहा जाता है। सुख का वेदन कराने वाले कर्म को पुण्य और दुःख का वेदन कराने वाले कर्म को पाप कहते है अथवा सातावेदनीय, उच्चगोत्र आदि शुभ अघातिकर्मो को पुण्य कहते हैं और असातावेदनीय, नीच गोत्र आदि अशुभकर्मो को पाप कहते हैं। आत्मा मे कर्म-परमाणुओ के आगमन को अथवा बन्ध के कारण को आस्रव और उसके निरोध को संवर कहते हैं। आठो कर्मों के विपाक को अनुभव करना वेदना है और कर्मों का फल देकर झरने का—निर्गमन को—निर्जरा कहते हैं। प्रकृत मे द्रव्यास्तिकाय की अपेक्षा लोक, अलोक, धर्मास्तिकाय, और अधर्मास्तिकाय एक-एक ही द्रव्य है। तथा बन्ध, मोक्षादि शेष तत्त्व बन्धन आदि की समानता से एक एक रूप ही है। अत उन्हे एक-एक कहा गया है।

प्रकीर्णक सूत्र

१७—एगे जीवे पाडिक्कएण सरीरएण।

प्रत्येक शरीर मे जीव एक है (१७)।

विवेचन—ससारी जीवों को शरीर की प्राप्ति शरीर-नामकर्म के उदय से होती है। ये शरीर-धारी ससारी जीव दो प्रकार के होते है—प्रत्येकशरीरी और साधारणशरीरी। जिस एक शरीर का स्वामी एक ही जीव होता है, उसे प्रत्येकशरीरी जीव कहते है। जैसे-देव-नारक आदि। जिस एक शरीर के स्वामी अनेक जीव होते है उन्हे साधारणशरीरी जीव कहते है। जसे जमीकन्द, आलू, अदरक आदि। प्रकृत सूत्र मे प्रत्येकशरीरी जीव विवक्षित है। यहा यह विशेष ज्ञातव्य है कि 'एगे आया' इस सूत्र मे शरीर-मुक्त आत्मा विवक्षित है और प्रस्तुत सूत्र मे कर्म-बद्ध एव शरीर-धारक ससारी जीव विवक्षित है।

१८—एगा जीवाण अपरिआइत्ता विगुव्वणा।

जीवो की अपर्यादाय विकुवणा एक है (१८)।

विवेचन—एक शरीर से नाना प्रकार की विक्रिया करने को विकुवणा कहते है। जसे देव अपने-अपने वैक्रियिक शरीर से गज, अश्व, मनुष्य आदि नाना प्रकार की विक्रिया कर सकता है। इस प्रकार की विकुवणा को **'परित समन्तात् वक्रियसमुद्घातेन बाह्यान पुद्गलान् आदाय गृहीत्वा'** इस निरुक्ति के अनुसार बाहिरी पुद्गलो को ग्रहण करके की जाने वाली विक्रिया पर्यादाय-विकुवणा कहलाती है। जो विकुवणा बाहिरी पुदगलो को ग्रहण किये बिना ही भवधारणीय शरीर मे अपने छोटे-बडे आदि आकार रूप की जाती है, उसे अपर्यादाय विकुवणा कहते हैं। प्रस्तुत सूत्र मे इसी की विवक्षा की गयी है। यह सभी देव, नारक, मनुष्य और तिर्यंच के यथासभव पायी जाती है।

१९—एगे मणे। २०—एगा वई। २१—एगे काय वायामे।

मन एक है (१९)। वचन एक है (२०)। काय व्यायाम एक है (२१)।

विवेचन—व्यायाम का अर्थ है व्यापार। सभी जीवो के मन वचन और काय का व्यापार यद्यपि विभिन्न प्रकार का होता है। यो मनोयोग और वचनयोग चार-चार प्रकार का तथा काययोग सात प्रकार का कहा गया है, किन्तु यहा व्यापार-सामान्य की विवक्षा म एकत्व कहा गया है।

२२—एगा उप्पा। २३—एगा वियती।

उत्पत्ति (उत्पाद) एक है (२२)। विगति (विनाश) एक है (२३)।

विवेचन—वस्तु का स्वरूप उत्पाद व्यय और ध्रौव्यरूप है। यहा दो सूत्रो के द्वारा आदि के परस्पर सापेक्ष दो रूपो का वणन किया गया है।

२४—एगा वियच्चा।

विगतार्चा एक है (२४)।

विवेचन—सस्कृत टीकाकार अभयदेवसूरि ने **'वियच्चा'** इस पद का सस्कृतरूप **'विगतार्चा'** करके विगत अर्थात् मृत और अर्चा अर्थात शरीर, ऐसी निरुक्ति करके 'मृतशरीर' अर्थ किया है। तथा 'वियच्चा' पाठान्तर के अनुसार 'विवर्चा' पद का अर्थ विशिष्ट उपपत्ति, पद्धति या विशिष्ट वेश-भूषा भी किया है। किन्तु मुनि नथमलजी ने उक्त अर्थों को स्वीकार न करके 'विगतार्चा' पद का अर्थ

विशिष्ट चित्तवृत्ति किया है। इन सभी अर्थों मे प्रथम अर्थ अधिक संगत प्रतीत होता है, क्योंकि सभी मृत शरीर एक रूप मे समान हैं।

२५—एगा गती। २६—एगा आगती। २७—एगे चयणे। २८—एगे उववाए।

गति एक है (२५)। आगति एक है (२६) च्यवन एक है (२७)। उपपात एक है (२८)

विवेचन—जीव के वर्तमान भव को छोड कर आगामी भव मे जाने को गति कहते हैं। पूर्व भव को छोडकर वर्तमान भव मे आने को आगति कहते है। ऊपर से च्युत होकर नीचे आने को च्यवन कहते है। वैमानिक और ज्योतिष्क देव मरण कर यत ऊपर से नीचे आकर उत्पन्न होते है अत उनका मरण 'च्यवन' कहलाता है। देवो और नारको का जन्म उपपात कहलाता है। ये गति-आगति और च्यवन-उपपात अर्थ की दृष्टि से सभी जीवो के समान होते हैं, अत उन्हे एक कहा गया है।

२९—एगा तक्का। ३०—एगा सण्णा। ३१—एगा मण्णा। ३२—एगा विण्णू।

तर्क एक है (२९)। संज्ञा एक है (३०)। मनन एक है (३१)। विज्ञता या विज्ञान एक है (३२)।

विवेचन—इन चारो सूत्रो मे मति ज्ञान के चार भेदो का निरूपण किया गया है। दार्शनिक दृष्टिकोण से सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के और आगमिक दृष्टि से आभिनिबोधिक या मतिज्ञान के अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चार भेद किये गये हैं। वस्तु के सामान्य स्वरूप को ग्रहण करना अवग्रह कहलाता है। अवग्रह से गृहीत वस्तु के विशेष धर्म को जानने की इच्छा को ईहा कहते है। ईहित वस्तु के निर्णय को अवाय कहते हैं और कालान्तर मे उसे नही भूलने को धारणा कहते हैं। ईहा से उत्तरवर्ती और अवाय से पूर्ववर्ती ऊहापोह या विचार-विमर्श को तर्क कहते है। न्यायशास्त्र मे व्याप्ति या अविनाभाव सम्बन्ध के ज्ञान को तर्क कहा गया है। संज्ञा के दो अर्थ होते हैं—प्रत्यभिज्ञान और अनुभूति। नन्दीसूत्र मे मतिज्ञान का एक नाम संज्ञा भी दिया गया है। उमास्वातिने मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध को पर्यायवाचक या एकार्थक कहा है। मलयगिरि तथा अभयदेव सूरि ने संज्ञा का अर्थ व्यञ्जनावग्रह के पश्चात् उत्तरकाल मे होने वाला मति विशेष किया है। तथा अभयदेवसूरि ने संज्ञा का दूसरा अर्थ अनुभूति भी किया है किन्तु प्रकृत मे संज्ञा का अर्थ प्रत्यभिज्ञान उपयुक्त है। स्मृति के पश्चात 'यह वही है' इस प्रकार से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। वस्तुगत धर्मों के पर्यालोचन को मनन कहते हैं। मलयगिरिने धारणा के तीव्रतर ज्ञान को विज्ञान कहा है और अभयदेव सूरि ने हेयोपादेय के निश्चय को विज्ञान कहा है। प्राकृत 'विन्नू' का संस्कृतरूपान्तर विज्ञता या विद्वत्ता भी किया गया है। उक्त संज्ञा आदि सभी ज्ञान जानने की अपेक्षा सामान्य रूप से एक ही हैं।

३३—एगा वेयणा।

वेदना एक है (३३)।

विवेचन—'वेदना' का उल्लेख इसी एकस्थान के पन्द्रहवे सूत्र मे किया गया है और यहाँ

पर भी इसका निर्देश किया गया है। वहा पर वेदना का प्रयोग सामान्य कम-फल का अनुभव करने के अथ मे हुआ है और यहाँ उसका अथ पीडा विशेष का अनुभव करना है। यह वेदना सामान्य रूप से एक ही है।

३४—एगे छेयणे। ३५—एगे भेयणे।

छेदन एक है (३४)। भेदन एक है (३५)।

विवेचन—छेदन शब्द का सामान्य अथ है—छेदना या टुकडे करना और भेदन शब्द का सामान्य अर्थ है विदारण करना। कमशास्त्र मे छेदन का अर्थ है—कर्मों की स्थिति का घात करना। अर्थात् उदीरणा करण के द्वारा कर्मो की दीघ स्थिति को कम करना। इसी प्रकार भेदन का अथ है—कर्मो के रस का घात करना। अर्थात उदीरणाकरण के द्वारा तीव्र अनुभाग को या फल देने की शक्ति को मन्द करना। ये छेदन और भेदन भी सभी जीवो के कर्मो की स्थिति और फल-प्रदान-शक्ति को कम या मन्द करने की समानता से एक ही है।

३६—एगे मरणे अंतिमसारीरियाण। ३७—एगे संसुद्ध अहाभूए पत्ते।

अन्तिम शरीरी जीवो का मरण एक है (३६)। सशुद्ध यथाभूत पात्र एक है (३७)।

विवेचन—जिसके पश्चात् पुन नवीन शरीर को धारण नहीं करना पडता है, ऐसे शरीर को अन्तिम या चरम शरीर कहते हैं। तद्-भव मोक्षगामी पुरुषो का शरीर अन्तिम होने की समानता मे एक है। इस चरम शरीर से मुक्त होने के पश्चात् आत्मा का यथाथ ज्ञाता द्रष्टारूप शुद्ध स्वरूप प्रकट होता है, वह सभी मुक्तात्माओ का समान होने से एक कहा गया है।

३८—'एगे दुक्खे' जीवाण एगभूए। ३९—एगा अहम्मपडिमा, 'ज से' आया परिक्लिसति। ४०—एगा धम्मपडिमा, ज से आया पज्जवजाए।

जीवो का दुःख एक और एकभूत है (३८)। अधमप्रतिमा एक है, जिससे आत्मा परिक्लेश को प्राप्त होता है (३९)। धमप्रतिमा एक है, जिससे आत्मा पयय-जात होता है (४०)।

विवेचन—स्वकृत कम फल भोगने की अपेक्षा सभी जीवो का दुख एक सदृश है। वह एक भूत है अर्थात् लोहे के गोले मे प्रविष्ट अग्नि के समान एकमेक है, आत्म प्रदेशो मे अन्त प्रविष्ट—व्याप्त है। प्रतिमा शब्द के अनेक अथ होते हैं—तपस्या विशेष, साधना विशेष, कायोत्सग, मूर्ति और मन पर होने वाला प्रतिबिम्ब या प्रभाव। प्रकृत मे अधम और धम का प्रभाव सभी जीवो के मन पर समान रूप से पडता है, अत उसे एक कहा गया है। अभयदेवसूरि ने पडिमा का अथ—प्रतिमा, प्रतिमा या शरीर किया है। पयवजात का अर्थ आत्मा की यथाथ शुद्ध पर्याय को प्राप्त होकर विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त करना है। इस अपेक्षा भी सभी शुद्धात्मा एकस्वरूप हैं।

४१—एगे मणे देवासुरमणुयाण तंसि तंसि समयंसि। ४२—एगा वई देवासुरमणुयाण तंसि तंसि समयंसि। ४३—एगे काय-वायामे देवासुरमणुयाण तंसि तंसि समयंसि। ४४—एगे उट्ठाण-कम्म बल-वीरिय-पुरिसकार परक्कमे देवासुरमणुयाण तंसि तंसि समयंसि।

देवा, असुरो और मनुष्यो का उस-उस चिंतनकाल मे एक मन होता है (४१)। देवो, असुरो और मनुष्यो का उस-उस वचन बोलने के समय एक वचन होता है (४२)। देवो, असुरो और मनुष्यो का उस-उस काय-व्यापार के समय एक कायव्यायाम होता है (४३)। देवो, असुरो और मनुष्यो का उस-उस पुरुषार्थ के समय उत्थान,कर्म, बल, वीय, पुरुषकार और पराक्रम एक होता है (४४)।

विवेचन—समनस्क जीवो मे देव और मनुष्य के सिवाय यद्यपि नारक और सज्ञी तिर्यंच भी सम्मिलित है, पर यहा विशिष्टतर लब्धि पाये जाने की अपेक्षा देवो और मनुष्या का ही सूत्र मे उल्लेख किया गया है। देव पदसे वैमानिक और ज्योतिष्क देवो का, तथा असुरपद से भवनपति और व्यन्तरो का ग्रहण अभीष्ट है। जीवो के एक समय मे एक ही मनोयोग, एक ही वचनयोग और एक ही काययोग होता है। मनोयोग के आगम मे चार भेद कहे गये हैं—सत्यमनोयोग, मृषा मनोयोग, सत्य-मृषामनोयोग और अनुभय मनोयोग। इसमे से एक जीवके एक समय मे एक ही मनोयोग का होना सभव है, शेष तीन का नही।

इसी प्रकार वचनयोग के भी चार भेद होते हैं—सत्यवचनयोग, मृषा-वचनयोग, सत्यमृषा वचनयोग और अनुभयवचनयोग। इन चारो मे से एक समय मे एक जीव के एक ही वचनयोग होना सभव है, शेष तीन वचनयोगो का होना सभव नही है।

काययोग के सात भेद बताये गये हैं—औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियिक-काययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग, आहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग। इनमे से एक समय मे एक ही काययोग का होना सभव है, शेष छह का नही। अत सूत्र मे एक काल मे एक काययोग का विधान किया गया है।

उत्थान, कर्म, बल आदि शब्द यद्यपि स्थूल दृष्टि से पर्याय-वाचक माने गये हैं, तथापि सूक्ष्म दृष्टि से उनका अर्थ इस प्रकार है—उत्थान—उठने की चेष्टा करना। कर्म—भ्रमण आदि की क्रिया। बल—शारीरिक सामर्थ्य। वीर्य—आतरिक सामर्थ्य। पुरुषकार—आत्मिक पुरुषार्थ और पराक्रम—कार्य-सम्पादनार्थ प्रबल प्रयत्न। यह भी एक जीव के एक समय मे एक ही होना है।

४५—एगे णाणे। ४६—एगे दसणे। ४७—एगे चरित्ते। ४८—एगे समए। ४९—एगे पएसे। ५०—एगे परमाणू। ५१—एगा सिद्धी। ५२—एगे सिद्धे। ५३—एगे परिणिव्वाणे। ५४—एगे परिणिव्वुए।

ज्ञान एक है (४५)। दर्शन एक है (४६)। चारित्र एक है (४७)। समय एक है (४८)। प्रदेश एक है (४९)। परमाणु एक है (५०)। सिद्धि एक है (५१)। सिद्ध एक है (५२)। परिनिर्वाण एक है (५३) और परिनिर्वृत्त एक है (५४)।

विवेचन—वस्तुस्वरूप के जानने को ज्ञान, श्रद्धा को दर्शन और यथार्थ आचरण को चारित्र कहते हैं। इन तीनो की एकता ही मोक्षमार्ग है अत इनको एक एक ही कहा गया है। काल द्रव्य के सबसे छोटे अश को समय, आकाश के सबसे छोटे अश को प्रदेश और पुद्गल के अविभागी अश को परमाणु कहते हैं। अतएव ये भी एक एक ही हैं। आत्मसिद्धि सबकी एक सदृश है अत सिद्ध एक है। कर्म जनित सर्व विकारी भावो के अभाव को परिनिर्वाण कहते हैं तथा शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता का अभाव होने पर स्वस्थिति के प्राप्त करने वाले को परिनिर्वृत अर्थात् मुक्त कहते हैं। ये सभी सिद्धात्माओ मे समान होते हैं अत उन्हे एक कहा गया है।

पुद्गल सूत्र

५५—एगे सद्दे। ५६—एगे रूवे। ५७—एगे गधे। ५८—एगे रसे। ५९—एगे फासे। ६०—एगे सुब्भिसद्दे। ६१—एगे दुब्भिसद्दे। ६२—एगे सुरूवे। ६३—एगे दुरूवे। ६४—एगे दीहे। ६५—एगे हस्से। ६६—एगे वट्टे। ६७—एगे तसे। ६८—एगे चउरसे। ६९—एगे पिहुले। ७०—एगे परिमडले। ७१—एगे किण्हे। ७२—एगे णीले। ७३—एगे लोहिए। ७४—एगे हालिद्दे। ७५—एगे सुक्किल्ले। ७६—एगे सुब्भिगधे। ७७—एगे दुब्भिगधे। ७८—एगे तित्ते। ७९—एगे कडुए। ८०—एगे कसाए। ८१—एगे अबिले। ८२—एगे महुरे। ८३—एगे कक्खडे जाव। ८४—[एगे मउए। ८५—एगे गरुए। ८६—एगे लहुए। ८७—एगे सीते। ८८—एगे उसिणे। ८९—एगे णिद्धे। ९०—एगे] लुक्खे।

शब्द एक है (५५)। रूप एक है (५६)। गन्ध एक है (५७)। रस एक है (५८)। स्पर्श एक है (५९)। शुभ शब्द एक है (६०)। अशुभ शब्द एक है (६१)। शुभ रूप एक है (६२)। अशुभ रूप एक है (६३)।

दीर्घ सस्थान एक है (६४)। ह्रस्व सस्थान एक है (६५)। वृत्त (गोल) सस्थान एक है (६६)। त्रिकोण सस्थान एक है (६७)। चतुष्कोण सस्थान एक है (६८)। विस्तीर्ण सस्थान एक है (६९)। परिमण्डल सस्थान एक है (७०)।

कृष्ण वर्ण एक है (७१)। नीलवर्ण एक है (७२)। लोहित (रक्त) वर्ण एक है (७३)। हारिद्र वर्ण एक है (७४)। शुक्लवर्ण एक है (७५)। शुभगन्ध एक है (७६) अशुभ गन्ध एक है (७७)।

तिक्त रस एक है (७८)। कटुक रस एक है (७९)। कषायरस एक है (८०)। आम्ल रस एक है (८१)। मधुर रस एक है (८२)। कर्कश स्पर्श एक है (८३)। मृदुस्पर्श एक है (८४)। गुरु स्पर्श एक है (८५)। लघु स्पर्श एक है (८६)। शीतस्पर्श एक है (८७)। उष्ण स्पर्श एक है (८८)। स्निग्ध स्पर्श एक है (८९)। और रूक्ष स्पर्श एक है (९०)।

विवेचन—उक्त सूत्रों में पुद्गल के लक्षण, कार्य, सस्थान (आकार) और पर्यायों का निरूपण किया गया है। रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये पुद्गल के लक्षण हैं। शब्द पुद्गल का कार्य है। दीर्घ, ह्रस्व वृत्त आदि पुद्गल के सस्थान हैं। कृष्ण, नील आदि वर्ण के पाच भेद हैं। शुभ और अशुभ रूप से गन्ध के दो भेद होते हैं। तिक्त, कटुक आदि रस के पाच भेद हैं और कर्कश, मृदु आदि स्पर्श के आठ भेद हैं। इस प्रकार पुद्गल-पद में पुद्गल द्रव्य का वर्णन किया गया है।

अष्टादश पाप-पद

९१—एगे पाणातिवाए जाव। ९२—[एगे मुसावाए। ९३—एगे अदिण्णादाणे। ९४—एगे मेहुणे]। ९५—एगे परिग्गहे। ९६—एगे कोहे। जाव ९७ [एगे माणे। ९८—एगा माया। ९९—एगे] लोभे। १००—एगे पेज्जे। १०१—एगे दोसे। जाव १०२—[एगे कलहे। १०३—एगे अब्भक्खाणे। १०४—एगे पेसुण्णे]। १०५—एगे परपरिवाए। १०६—एगा अरतिरती। १०७—एगे मायामोसे। १०८—एगे मिच्छादसणसल्ले।

प्राणातिपात (हिंसा) एक है (९१)। मृषावाद (असत्यभाषण) एक है (९२)। अदत्तादान (चोरी) एक है (९३) मैथुन (कुशील) एक है (९४)। परिग्रह एक है (९५)। क्रोध कषाय एक है (९६)। मान कषाय एक है (९७)। माया कषाय एक है (९८) लोभ कषाय एक है (९९) प्रेयस् (राग) एक है (१००) द्वेष एक है (१०१) कलह एक है (१०२)। अभ्याख्यान एक है (१०३)। पैशुन्य एक है (१०४)। पर-परिवाद एक है (१०५)। अरति-रति एक है (१०६) मायामृषा एक है (१०७)। और मिथ्यादर्शनशल्य एक है (१०८)।

विवेचन—यद्यपि मृषा और माया का पृथक्-पृथक् पाप माना गया है, किन्तु सत्रहवें पाप का नाम माया-मृषा दिया गया है, उसका अभिप्राय माया युक्त असत्य भाषण से है। किन्तु स्थानाङ्ग की टीका में इस का अर्थ वेष बदल कर दूसरों का ठगना कहा है। उद्वेग रूप मनोविकार को अरति और आनन्दरूप चित्तवृत्ति को रति कहते है। परन्तु इनको एक कहने का कारण यह है कि जहाँ किसी वस्तु मे रति होती हैं, वहाँ अन्य वस्तु मे अरति अवश्यम्भावी है। अत दोनो को एक कहा गया है।

अष्टादश पापविरमण-पद

१०९—एगे पाणाइवाय वेरमणे जाव। ११०—[एगे मुसवाय वेरमणे। १११—एगे अदिण्णादाण वेरमणे। ११२—एगे मेहुण-वेरमणे। ११३—एगे परिग्गह-वेरमणे। ११४—एगे कोह विवेगे। ११५—[एगे माण-विवेगे जाव, ११६—एगे] माया विवेगे। ११७—एगे लोभ-विवेगे। ११८—एगे पेज्ज विवेगे। ११९—एगे दोस-विवेगे। १२०—एगे कलह-विवेगे। १२१—एगे अब्भक्खाण-विवेगे। १२२—एगे पेसुण्ण विवेगे। १२३—एगे परपरिवाय विवेगे। १२४—एगे अरतिरति विवेगे। १२५—एगे मायामोस-विवेगे। १२६—एगे] मिच्छादंसण-सल्ल-विवेगे।

प्राणातिपात-विरमण एक है (१०९)। मृषावाद-विरमण एक है (११०)। अदत्तादान-विरमण एक है (१११)। मथुन-विरमण एक है (११२)। परिग्रह-विरमण एक है (११३)। क्रोध-विवेक एक है (११४)। मान-विवक एक है (११५)। माया-विवेक एक है (११६)। लोभ-विवेक एक है (११७)। प्रेयस्-(राग-) विवेक एक है (११८)। द्वेष-विवेक एक है (११९)। कलह-विवेक एक है (१२०)। अभ्याख्यान-विवेक एक है (१२१)। पैशुन्य विवेक एक है (१२२)। पर-परिवाद-विवेक एक है (१२३)। अरति-रति-विवेक एक है (१२४)। माया-मृषा-विवेक एक है (१२५)। और मिथ्यादशनशल्य-विवेक एक है (१२६)।

विवेचन—जिस प्रकार प्राणातिपात आदि अठारह पाप स्थानो के तर-तम भाव की अपेक्षा अनेक भेद होते हैं, किन्तु पापरूप कार्य की समानता से उन्हें एक कहा गया है, उसी प्रकार उन पाप-स्थानो के विरमण (त्याग) रूप स्थान भी तर-तम भाव की अपेक्षा अनेक होते हैं, किन्तु उनके त्याग की समानता से उन्हे एक कहा गया है।

अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी पद

१२७—एगा ओसप्पिणी। १२८—एगा सुसम सुसमा जाव। १२९—[एगा सुसमा। १३०—एगा सुसम-दूसमा। १३१—एगा दूसम-सुसमा। १३२—एगा दूसमा]। १३३—एगा दूसम-

दूसमा। १३४—एगा उस्सप्पिणी। १३५—एगा दुस्सम दुस्समा जाव। १३६—एगा दुस्समा। १३७—एगा दुस्सम-सुसमा । १३८—एगा सुसम दुस्समा। १३९—एगा सुसमा] । १४०—एगा सुसम-सुसमा।

अवसर्पिणी एक है (१२७)। सुषम-सुषमा एक है (१२७)। सुषमा एक है (१२९)। सुषम-दुषमा एक है (१३०)। दुषम-सुषमा एक है (१३१)। दुषमा एक है (१३२)। दुषम-दुषमा एक है (१३३)। उत्सर्पिणी एक है (१३४)। दुषम दुषमा एक है (१३५)। दुषमा एक है (१३६)। दुषम-सुषमा एक है (१३७)। सुषमा दुषमा एक है (१३८) सुषमा एक है (१३९)। और सुषम-सुषमा एक है (१४०)।

विवेचन—कालचक्र अनादि-अनन्त है, किन्तु उसके उतार-चढाव की अपेक्षा से दो प्रधान भेद किये गये है—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी। अवसर्पिणी काल मे मनुष्यो आदि की बल, बुद्धि, देह-मान आयु-प्रमाण आदि की तथा पुद्गलो मे उत्तम वर्ण, गन्ध आदि की क्रमश हानि होती है और उत्सर्पिणी काल मे उनकी क्रमश वृद्धि होती है। इनम से प्रत्येक के छह-छह भेद होते हैं, जो छह आरो के नाम मे प्रसिद्ध है और जिनका मूल सूत्रो मे नामोल्लेख किया गया है। अवसर्पिणी काल का प्रथम आरा अतिसुखमय है, दूसरा सुखमय है, तीसरा सुख-दु खमय है, चौथा दु ख-सुखमय है, पाचवा दु खमय है और छठा अतिदु खमय है। उत्सर्पिणी का प्रथम आरा अति दु खमय, दूसरा दु खमय, तीसरा दु ख-सुखमय, चौथा सुख-दु खमय, पांचवा सुखमय और छठा अति-सुखमय होता है। यहा यह विशेष ज्ञातव्य है कि इस कालचक्र के उक्त आरा का परिवर्तन भरत और ऐरवत क्षेत्र मे ही होता है, अन्यत्र नही होता।

१४१—एगा णेरइयाण वग्गणा। १४२—एगा असुरकुमाराण वग्गणा जाव। १४३—[एगा णागकुमाराण वग्गणा। १४४—एगा सुवण्णकुमाराण वग्गणा। १४५—एगा विज्जुकुमाराण वग्गणा। १४६—एगा अग्गिकुमाराण वग्गणा। १४७—एगा दीवकुमाराण वग्गणा। १४८—एगा उदहिकुमाराण वग्गणा। १४९—एगा दिसाकुमाराण वग्गणा। १५०—एगा वायुकुमाराण वग्गणा। १५१—एगा थणियकुमाराण वग्गणा। १५२—एगा पुढविकाइयाण वग्गणा। १५३—एगा आउकाइयाण वग्गणा। १५४—एगा तेउकाइयाण वग्गणा। १५५—एगा वाउकाइयाण वग्गणा। १५६—एगा वणस्सइकाइयाण वग्गणा। १५७—एगा बेइंदियाण वग्गणा। १५८—एगा तेइंदियाण वग्गणा। १५९—एगा चउरिंदियाण वग्गणा। १६०—एगा पंचिंदियतिरिक्खजोणियाण वग्गणा। १६१—एगा मणुस्साण वग्गणा। १६२—एगा वाणमंतराण वग्गणा। १६३—एगा जोइसियाण वग्गणा] । १६४—एगा वेमाणियाण वग्गणा।

नारकीय जीवो की वर्गणा एक है (१४१)। असुरकुमारो की वर्गणा एक है (१४२)। नागकुमारो की वर्गणा एक है (१४३)। सुपर्णकुमारो की वर्गणा एक है (१४४)। विद्युत्कुमारो की वर्गणा एक है (१४५)। अग्निकुमारो की वर्गणा एक है (१४६)। द्वीपकुमारो की वर्गणा एक है (११७)। उदधिकुमारो की वर्गणा एक है (१४८)। दिक्कुमारो की वर्गणा एक है (१४९)। वायुकुमारो की वर्गणा एक है (१५०)। स्तनित (मेघ) कुमारो की वर्गणा एक है (१५१)। पृथ्वी-कायिक जीवो की वर्गणा एक है (१५२)। अप्कायिक जीवो की वर्गणा एक है (१५३)। तेजस्कायिक

प्राणातिपात (हिंसा) एक है (९१)। मृषावाद (असत्यभाषण) एक है (९२)। अदत्तादान (चोरी) एक है (९३) मैथुन (कुशील) एक है (९४)। परिग्रह एक है (९५)। क्रोध कषाय एक है (९६)। मान कषाय एक है (९७)। माया कषाय एक है (९८) लोभ कषाय एक है (९९) प्रेयस् (राग) एक है (१००) द्वेष एक है (१०१) कलह एक है (१०२)। अभ्याख्यान एक है (१०३)। पैशुन्य एक है (१०४)। पर-परिवाद एक है (१०५)। अरति-रति एक है (१०६) मायामृषा एक है (१०७)। और मिथ्यादर्शनशल्य एक है (१०८)।

विवेचन—यद्यपि मृषा और माया को पृथक् पृथक् पाप माना गया है, किन्तु सत्रहवें पाप का नाम माया-मृषा दिया गया है, उसका अभिप्राय माया-युक्त असत्य भाषण से है। किन्तु स्थानाङ्ग की टीका मे इस का अर्थ वेष बदल कर दूसरों को ठगना कहा है। उद्वेग रूप मनोविकार को अरति और आनन्दरूप चित्तवृत्ति को रति कहते हैं। परन्तु इनको एक कहने का कारण यह है कि जहाँ किसी वस्तु मे रति होती है, वही अन्य वस्तु मे अरति अवश्यम्भावी है। अतः दोनों को एक कहा गया है।

अष्टादश पापविरमण-पद

१०९—एगे पाणाइवाय-वेरमणे जाव। ११०—[एगे मुसवाय वेरमणे। १११—एगे अदिण्णादाण वेरमणे। ११२—एगे मेहुण-वेरमणे। ११३—एगे परिग्गह-वेरमणे। ११४—एगे कोह विवेगे। ११५—[एगे माण विवेगे जाव, ११६—एगे] माया-विवेगे। ११७—एगे लोभ-विवेगे। ११८—एगे पेज्ज विवेगे। ११९—एगे दोस-विवेगे। १२०—एगे कलह-विवेगे। १२१—एगे अब्भक्खाण-विवेगे। १२२—एगे पेसुण्ण-विवेगे। १२३—एगे परपरिवाय-विवेगे। १२४—एगे अरतिरति विवेगे। १२५—एगे मायामोस विवेगे। १२६—एगे] मिच्छादंसण सल्ल विवेगे।

प्राणातिपात-विरमण एक है (१०९)। मृषावाद-विरमण एक है (११०)। अदत्तादान विरमण एक है (१११)। मैथुन-विरमण एक है (११२)। परिग्रह-विरमण एक है (११३)। क्रोध-विवेक एक है (११४)। मान विवेक एक है (११५)। माया-विवेक एक है (११६)। लोभ-विवेक एक है (११७)। प्रेयस्-(राग-) विवेक एक है (११८)। द्वेष-विवेक एक है (११९)। कलह विवेक एक है (१२०)। अभ्याख्यान विवेक एक है (१२१)। पैशुन्य विवेक एक है (१२२)। पर-परिवाद-विवेक एक है (१२३)। अरति-रति-विवेक एक है (१२४)। माया मृषा-विवेक एक है (१२५)। और मिथ्यादर्शनशल्य-विवेक एक है (१२६)।

विवेचन—जिस प्रकार प्राणातिपात आदि अठारह पाप स्थानों के तर-तम भाव की अपेक्षा अनेक भेद होते हैं, किन्तु पापरूप कार्य की समानता से उन्हें एक कहा गया है, उसी प्रकार उन पाप-स्थानों के विरमण (त्याग) रूप स्थान भी तर-तम भाव की अपेक्षा अनेक होते हैं, किन्तु उनके त्याग की समानता से उन्हें एक कहा गया है।

अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी पद

१२७—एगा ओसप्पिणी। १२८—एगा सुसम-सुसमा जाव। १२९—[एगा सुसमा। १३०—एगा सुसम दूसमा। १३१—एगा दूसम सुसमा। १३२—एगा दूसमा]। १३३—एगा दूसम-

दूसमा। १३४—एगा उस्सप्पिणी। १३५—एगा दुस्सम-दुस्समा जाव। १३६—एगा दुस्समा। १३७—एगा दुस्सम-सुसमा। १३८—एगा सुसम-दुस्समा। १३९—एगा सुसमा]। १४०—एगा सुसम-सुसमा।

अवसर्पिणी एक है (१२३)। सुषम-सुषमा एक है (१२८)। सुषमा एक है (१२९)। सुषम-दुषमा एक है (१३०)। दुषम-सुषमा एक है (१३१)। दुषमा एक है (१३२)। दुषम-दुषमा एक है (१३३)। उत्सर्पिणी एक है (१३४)। दुषम-दुषमा एक है (१३५)। दुषमा एक है (१३६)। दुषम-सुषमा एक है (१३७)। सुषमा-दुषमा एक है (१३८) सुषमा एक है (१३९)। और सुषम-सुषमा एक है (१४०)।

विवेचन—कालचक्र अनादि-अनन्त है किन्तु उसके उतार-चढाव की अपेक्षा से दो प्रधान भेद किये गये हैं—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी। अवसर्पिणी काल में मनुष्य आदि की बल, बुद्धि, देह-मान आयु-प्रमाण आदि की तथा पुद्गलों में उत्तम वर्ण गन्ध आदि की क्रमशः हानि होती है और उत्सर्पिणी काल में इनकी क्रमशः वृद्धि होती है। इन में प्रत्येक के छह-छह भेद होते हैं, जो छह आरा के नाम से प्रसिद्ध हैं और जिनका मूल सूत्रों में नामोल्लेख किया गया है। अवसर्पिणी काल का प्रथम आरा अतिसुखमय है, दूसरा सुखमय है तीसरा सुख-दुःखमय है, चौथा दुःख-सुखमय है, पांचवां दुःखमय है और छठा अतिदुःखमय है। उत्सर्पिणी का प्रथम आरा अति दुःखमय, दूसरा दुःखमय तीसरा दुःख-सुखमय, चौथा सुख-दुःखमय, पांचवां सुखमय और छठा अति-सुखमय होता है। यहां यह विशेष ज्ञातव्य है कि इस कालचक्र के उक्त आरों का परिवर्तन भरत और ऐरवत क्षेत्र में ही होता है, अन्यत्र नहीं होता।

१४१—एगा णेरइयाणं वग्गणा। १४२—एगा असुरकुमाराणं वग्गणा जाव। १४३—[एगा णागकुमाराणं वग्गणा। १४४—एगा सुवण्णकुमाराणं वग्गणा। १४५—एगा विज्जुकुमाराणं वग्गणा। १४६—एगा अग्गिकुमाराणं वग्गणा। १४७—एगा दीवकुमाराणं वग्गणा। १४८—एगा उदहिकुमाराणं वग्गणा। १४९—एगा दिसाकुमाराणं वग्गणा। १५०—एगा वायुकुमाराणं वग्गणा। १५१—एगा थणियकुमाराणं वग्गणा। १५२—एगा पुढविकाइयाणं वग्गणा। १५३—एगा आउकाइयाणं वग्गणा। १५४—एगा तेउकाइयाणं वग्गणा। १५५—एगा वाउकाइयाणं वग्गणा। १५६—एगा वणस्सइकाइयाणं वग्गणा। १५७—एगा बेइंदियाणं वग्गणा। १५८—एगा तेइंदियाणं वग्गणा। १५९—एगा चउरिंदियाणं वग्गणा। १६०—एगा पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं वग्गणा। १६१—एगा मणुस्साणं वग्गणा। १६२—एगा वाणमंतराणं वग्गणा। १६३—एगा जोइसियाणं वग्गणा]। १६४—एगा वेमाणियाणं वग्गणा।

नारकीय जीवों की वर्गणा एक है (१४१)। असुरकुमारों की वर्गणा एक है (१४२)। नागकुमारों की वर्गणा एक है (१४३)। सुपर्णकुमारों की वर्गणा एक है (१४४)। विद्युत्कुमारों की वर्गणा एक है (१४५)। अग्निकुमारों की वर्गणा एक है (१४६)। द्वीपकुमारों की वर्गणा एक है (१४७)। उदधिकुमारों की वर्गणा एक है (१४८)। दिक्कुमारों की वर्गणा एक है (१४९)। वायुकुमारों की वर्गणा एक है (१५०)। स्तनित (मेघ) कुमारों की वर्गणा एक है (१५१)। पृथ्वी-कायिक जीवों की वर्गणा एक है (१५२)। अप्कायिक जीवों की वर्गणा एक है (१५३)। तेजस्कायिक

जीवों की वर्गणा एक है (१५४)। वायुकायिक जीवों की वर्गणा एक है (१५५)। वनस्पतिकायिक जीवों की वर्गणा एक है (१५६)। द्वीन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है (१५७)। त्रीन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है (१५८)। चतुरिन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है (१५९)। पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिक जीवों की वर्गणा एक है (१६०)। मनुष्यों की वर्गणा एक है (१६१)। वान-व्यन्तर देवों की वर्गणा एक है (१६२)। ज्योतिष्क देवों की वर्गणा एक है (१६३)। और वैमानिक देवों की वर्गणा एक है (१६४)।

विवेचन—दण्डक का अर्थ यहाँ वाक्यपद्धति अथवा समानजातीय जीवों का वर्गीकरण करना है और वर्गणा समुदाय को कहते हैं। उक्त चौवीस दण्डकों में नारकी जीवों का एकदण्डक, भवनवासी देवों के दस दण्डक, स्थावरकायिक एकेन्द्रिय जीवों के पाँच दण्डक, द्वीन्द्रियादि तिर्यचों के चार दण्डक, मनुष्यों का एक दण्डक, व्यन्तरदेवों का एक दण्डक, ज्योतिष्क देवों का एक दण्डक और वैमानिक देवों का एक दण्डक। इस प्रकार सब चौवीस दण्डक होते हैं। प्रत्येक दण्डक की एक एक वर्गणा होती है। आगमों में संसारी जीवों का वर्णन इन चौवीस दण्डकों (वर्गों) के आश्रय से किया गया है।

भव्य अभव्यसिद्धिक-पद

१६५—एगा भवसिद्धियाणं वग्गणा। १६६—एगा अभवसिद्धियाणं वग्गणा। १६७—एगा भवसिद्धियाणं णेरइयाणं वग्गणा। १६८—एगा अभवसिद्धियाणं णेरइयाणं वग्गणा। १६९—एवं जाव एगा भवसिद्धियाणं वेमाणियाणं वग्गणा, एगा अभवसिद्धियाणं वेमाणियाणं वग्गणा।

भव्यसिद्धिक जीवों की वर्गणा एक है (१६५)। अभव्यसिद्धिक जीवों की वर्गणा एक है (१६६)। भव्यसिद्धिक नारकीय जीवों की वर्गणा एक है (१६७)। अभव्यसिद्धिक नारकीय जीवों की वर्गणा एक है (१६८)। इसी प्रकार भव्यसिद्धिक अभव्यसिद्धिक (असुरकुमारों से लेकर) वैमानिक देवों तक के सभी दण्डकों की वर्गणा एक-एक है (१६९)।

विवेचन—संसारी जीव दो प्रकार के होते हैं—भव्यसिद्धिक या भवसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक या अभवसिद्धिक। जिन जीवों में सिद्ध पद पाने की योग्यता होती है, वे भव्यसिद्धिक कहलाते हैं और जिनमें यह योग्यता नहीं होती है वे अभव्यसिद्धिक कहलाते हैं। यह भव्यपन और अभव्यपन किसी कर्म के निमित्त से नहीं, किन्तु स्वभाव से ही होता है, अतएव इसमें कभी परिवर्तन नहीं हो सकता। भव्यजीव कभी अभव्य नहीं बनता और अभव्य कभी भव्य नहीं हो सकता।

दृष्टि-पद

१७०—एगा सम्मद्दिट्ठियाणं वग्गणा। १७१—एगा मिच्छद्दिट्ठियाणं वग्गणा। १७२—एगा सम्मामिच्छद्दिट्ठियाणं वग्गणा। १७३—एगा सम्मद्दिट्ठियाणं णेरइयाणं वग्गणा। १७४—एगा मिच्छद्दिट्ठियाणं णेरइयाणं वग्गणा। १७५—एगा सम्मामिच्छद्दिट्ठियाणं णेरइयाणं वग्गणा। १७६—एवं जाव थणियकुमाराणं वग्गणा। १७७—एगा मिच्छद्दिट्ठियाणं [illegible] वग्गणा। १७८—एवं जाव वणस्सइकाइयाणं। १७९—एगा सम्मद्दिट्ठियाणं बेइंदियाणं [illegible] एगा मिच्छद्दिट्ठियाणं बेइंदियाणं वग्गणा। १८१—[1][एगा [illegible] वग्गणा [illegible] मिच्छद्दिट्ठियाणं

१ पाठान्तर—[illegible] —एवं तेइंदियाण वि [illegible]

तेइंदियाण वग्गणा। १८३—एगा सम्मद्दिट्ठियाण चउरिंदियाण वग्गणा। १८४—एगा मिच्छद्दिट्ठियाण चउरिंदियाण वग्गणा]। १८५—सेसा जहा णेरइया जाव एगा सम्मामिच्छद्दिट्ठियाण वेमाणियाण वग्गणा।

सम्यग्दृष्टि जीवो की वगणा एक है (१७०)। मिथ्यादृष्टि जीवो की वगणा एक है (१७१)। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवो की वर्गणा एक है (१७२)। सम्यग्दृष्टि नारकीय जीवो की वगणा एक है। (१७३)। मिथ्यादृष्टि नारकीय जीवो की वर्गणा एक है (१७४)। सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकीय जीवो की वगणा एक है (१७५)। इस प्रकार असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक के सम्यग्दष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवो की वगणा एक एक है (१७६)। पृथ्वीकायिक मिथ्यादृष्टि जीवो की वगणा एक है (१७७)। इसी प्रकार अप्कायिक जीवो से लेकर वनस्पतिकायिक तक के जीवो की वगणा एक-एक है (१७८)।

सम्यग्दृष्टि द्वीन्द्रिय जीवो की वर्गणा एक है (१७९)। मिथ्यादृष्टि द्वीन्द्रिय जीवो की वगणा एक है (१८०)। सम्यग्दृष्टि त्रीन्द्रिय जीवो की वगणा एक है (१८१)। मिथ्यादृष्टि त्रीन्द्रिय जीवो की वगणा एक है (१८२)। सम्यग्दष्टि चतुरिन्द्रिय जीवो की वर्गणा एक है (१८३)। मिथ्यादृष्टि चतुरिन्द्रिय जीवो की वगणा एक है (१८४)। सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि शेष दण्डको (पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिक, मनुष्य, वाण-व्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिको) की वगणा एक-एक है (१८५)।

विवेचन—सम्यक्त्व या सम्यग्दशन जिन जीवो के पाया जाता है, उन्हे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। मिथ्यात्वकर्म का उदय जिनके होता है, वे मिथ्यादृष्टि कहलाते है। तथा सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) प्रकृतिका उदय जिनके होता है, वे सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहे जाते है। यद्यपि सभी दण्डको मे इनका तर-तमभावगत भेद होता है, पर सामान्य की विवक्षा से उनकी एक वगणा कही गयी है।

कृष्ण शुक्लपाक्षिक पद

१८६—एगा कण्हपक्खियाण वग्गणा। १८७—एगा सुक्कपक्खियाण वग्गणा। १८८—एगा कण्हपक्खियाण णेरइयाण वग्गणा। १८९—एगा सुक्कपक्खियाण णेरइयाण वग्गणा। १९०—एव—चउवीसदंडओ भाणियव्वो।

कृष्णपाक्षिक जीवो की वगणा एक है (१८६)। शुक्लपाक्षिक जीवो की वर्गणा एक है (१८७)। कृष्णपाक्षिक नारकीय जीवो की वगणा एक है (१८८)। शुक्लपाक्षिक नारकीय जीवो की वगणा एक है (१८९)। इसी प्रकार शेष सभी कृष्णपाक्षिक और शुक्लपाक्षिक जीवो की वगणा एक एक है, ऐसा कहना (जानना) चाहिए (१९०)।

विवेचन—जिन जीवो का अपार्ध (देशोन या कुछ कम अर्ध) पुद्गल परावर्तन काल ससार मे परिभ्रमण का शेष रहता है, उन्हे शुक्लपाक्षिक कहा जाता है और जिनका ससार-परिभ्रमण काल इससे अधिक होता है वे कृष्णपाक्षिक कहे जाते हैं। यद्यपि अपार्ध पुद्गल परावर्तन का काल भी बहुत लम्बा होता है, तथापि मुक्ति प्राप्त करने की काल-सीमा निश्चित हो जाने के कारण उस जीव को शुक्लपाक्षिक कहा जाता है, क्योकि उसका भविष्य प्रकाशमय है। किन्तु जिनका समय अपार्ध पुद्गल

पगावनन मे अधिक रहता है उनके अनन्तकालमय भविष्य की कोई सीमा निश्चित नहीं होने के कारण उन्हें कृष्णपाक्षिक कहा जाता है।

लेश्या-पद

१९१—एगा कण्हलेसाण वग्गणा। १९२—एगा णीललेसाण वग्गणा। एवं जाव १९३—[एगा काउलेसाण वग्गणा। १९४—एगा तेउलेसाण वग्गणा। १९५—एगा पम्हलेसाण वग्गणा। १९६—एगा] सुक्कलेसाण वग्गणा। १९७—एगा कण्हलेसाण णेरइयाण वग्गणा। १९८—[एगा णीललेसाण णेरइयाण वग्गणा जाव। १९९—एगा] काउलेसाण णेरइयाण वग्गणा। २००—एवं—जस्स जइ लेसाओ—भवणवइ-वाणमंतर पुढवि-आउ-वणस्सइकाइयाण च चत्तारि लेसाओ, तेउ-वाउ-बेइंदिय-तेइंदिय चउरिंदियाण तिण्णि लेसाओ, पंचिंदियतिरिक्खजोणियाण मणुस्साण छल्लेस्साओ, जोतिसियाण एगा तेउलेसा वेमाणियाण तिण्णि उवरिमलेसाओ।

कृष्णलेश्यावाले जीवों की वर्गणा एक है (१९१)। नीललेश्यावाले जीवों की वर्गणा एक है (१९२)। [कापोतलेश्यावाले जीवों की वर्गणा एक है (१९३)। तेजोलेश्यावाले जीवों की वर्गणा एक है (१९४)। पद्मलेश्यावाले जीवों की वर्गणा एक है (१९५)।] शुक्ललेश्यावाले जीवों की वर्गणा एक है (१९६)। कृष्णलेश्यावाले नारक जीवों की वर्गणा एक है (१९७)। [नीललेश्यावाले नारक जीवों की वर्गणा एक है (१९८)।] कापोतलेश्यावाले नारक जीवों की वर्गणा एक है (१९९)।

इसी प्रकार जिन दण्डकों में जितनी लेश्याएं होती हैं (उनके अनुसार उनकी एक एक वर्गणा है (२००)। भवनपति, वाण-व्यन्तर, पृथ्वी, अप् (जल) और वनस्पतिकायिक जीवों में प्रारम्भ की चार लेश्याएं होती हैं। अग्नि, वायु द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में आदि की तीन लेश्याएं होती हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिक और मनुष्यों के छहों लेश्याएं होती हैं। ज्योतिष्क देवों के एक तेजोलेश्या होती है। वैमानिक देवों के अन्तिम तीन लेश्याएं होती हैं (२००)।

२०१—एगा कण्हलेसाण भवसिद्धियाण वग्गणा। २०२—एगा कण्हलेसाण अभवसिद्धियाण वग्गणा। २०३—एवं छसुवि लेसासु दो दो पयाणि भाणियव्वाणि। २०४—एगा कण्हलेसाण भवसिद्धियाण णेरइयाण वग्गणा। २०५—एगा कण्हलेसाण अभवसिद्धियाण णेरइयाण वग्गणा। २०६—एवं—जस्स जति लेसाओ तस्स ततियाओ भाणियव्वाओ जाव वेमाणियाण।

कृष्णलेश्यावाले भवसिद्धिक जीवों की एक वर्गणा है (२०१)। कृष्णलेश्यावाले अभवसिद्धिक जीवों की वर्गणा एक है (२०२)। इसी प्रकार छहों (कृष्ण, नील, कापोत, तेजस, पद्म और शुक्ल) लेश्यावाले भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक जीवों की वर्गणा एक एक है (२०३)। कृष्णलेश्यावाले भवसिद्धिक नारक जीवों की वर्गणा एक है (२०४)। कृष्णलेश्यावाले अभवसिद्धिक नारक जीवों की वर्गणा एक है (२०५)। इसी प्रकार जिसके जितनी लेश्याएं होती हैं, उनके अनुसार भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों की वर्गणा एक एक है (२०६)।

२०७—एगा कण्हलेसाण सम्मद्दिट्ठियाण वग्गणा। २०८—एगा कण्हलेसाण मिच्छद्दिट्ठियाण वग्गणा। २०९—एगा कण्हलेसाण सम्मामिच्छद्दिट्ठियाण वग्गणा। २१०—एवं—छसुवि लेसासु जाव वेमाणियाण 'जेसिं जइ दिट्ठीओ'।

कृष्णलेश्यावाले सम्यग्दृष्टि जीवो की वगणा एक है (२०७)। कृष्णलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवो की वर्गणा एक है (२०८)। कृष्णलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवो की वगणा एक है (२०९)। इसी प्रकार कृष्ण आदि छहो लेश्यावाले वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डका मे जिसके जितनी दृष्टियाँ होती है, उसके अनुसार उसकी वगणा एक-एक है (२१०)।

२११—एगा कण्हलेसाण कण्हपक्खियाण वग्गणा। २१२—एगा कण्हलेसाण सुक्कपक्खियाण वग्गणा। २१३—जाव वेमाणियाण। जस्स जति लेसाग्रो एए अट्ठ, चउवीसदडया।

कृष्णलेश्यावाले कृष्णपाक्षिक जीवो की वगणा एक है (२११)। कृष्णालेश्यावाले शुक्ल पाक्षिक जीवो की वगणा एक है (२१२) इसी प्रकार जिनमे जितनी लेश्याए होती है, उसके अनुसार कृष्णपाक्षिक और शुक्लपाक्षिक जीवो की वगणा एक एक है। ये ऊपर वतलाये गये चौवीस दण्डको की वगणा के आठ प्रकरण है (२१३)।

विवेचन—लेश्या का आगम-सूत्रा और शास्त्रा मे विस्तृत वर्णन पाया जाता है। उसमे से सस्कृत टीकाकार अभयदेव सूरिने **'लिश्यते प्राणी यया सा लेश्या'** यह निरुक्ति-परक अथ प्राचीन दो श्लोको को उद्धृत करते हुए किया है। अर्थात् जिस योग परिणति के द्वारा जीव कर्म से लिप्त होता है उसे लेश्या कहते है। अपने कथन की पुष्टि मे प्रज्ञापना वृत्तिकार का उद्धरण भी उन्होंने दिया है। आगे चलकर उन्होने लिखा है कि कुछ अन्य आचार्य कर्मों के निष्यन्द या रस को लेश्या कहते है। किन्तु आठो कर्मों का और उनकी उत्तर प्रकृतियो का फलरूप रस तो भिन्न भिन्न प्रकार होता है, अत सभी कर्मो के रस को लेश्या इस पद से नही कहा जा सकता है।

आगम मे जम्बू वृक्ष के फल को खाने के लिए उद्यत छह पुरुषो की विभिन्न मनोवृत्तियो के अनुसार कृष्णादि लेश्याओ का उदाहरण दिया गया है, उससे ज्ञात होता है कि कपाय जनित तीव्र-मन्द आदि भावो की प्रवृत्ति का नाम भावलेश्या है और वण नाम कर्मोदय जनित शरीर के कृष्ण, नील आदि वर्णों का नाम द्रव्यलेश्या है।

गोम्मटसार जीवकाण्ड मे लेश्याओ का सोलह अधिकारो द्वारा विस्तृत विवेचन किया गया है। वहा वताया गया है कि जो आत्मा को पुण्य-पाप कर्मो से लिप्त करे ऐसी कपायके उदय से अनुरजित योगो की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं। उसके मूल मे दो भेद है—द्रव्यलेश्या और भावलेश्या। दोनो ही लेश्याओ के छह भेद कहे गये है। उनके नाम और लक्षण इस प्रकार है—

१ कृष्णलेश्या—कृष्ण वणनाम कम के उदय से जीव के शरीर का भौरे के समान काला होना द्रव्य-कृष्णलेश्या है। क्रोधादिकपायो के तीव्र उदय से अति प्रचण्ड स्वभाव होना, दया-धर्म से रहित हिंसक कार्यों मे प्रवृत्ति होना, उपकारी के साथ भी दुष्ट व्यवहार करना और किसी के वश मे नही आना भावकृष्ण लेश्या है। इस लेश्या वाले के भाव फल के वृक्ष को देख कर उसे जड से उखाड कर फल खाने के होते हैं।

२ नील लेश्या—नीलवर्ण नामकर्म के उदय से जीव के शरीर का मयूर-कण्ठ के समान नीला होना द्रव्य नीललेश्या है। इन्द्रियो मे विपयो की तीव्र लोलुपता होना, हेय-उपादेय के विवेक से

रहित होना, मानी, मायाचारी, आलसी होना, धन-धान्य में तीव्र गृद्धता होना, दूसरों को ठगने की प्रवृत्ति होना, ये सब भाव नील लेश्या के लक्षण हैं। इस लेश्या वाले के भाव फले वृक्ष की बड़ी बड़ी शाखाएँ काट कर फल खाने के होते हैं।

३ कापोतलेश्या—मन्द अनुभाग वाले कृष्ण और नील वर्ण के उदय में सम्मिश्रणरूप कबूतर के वर्ण समान शरीर का वर्ण होना द्रव्यकापोत लेश्या है। जरा-जरा सी बातों पर रुष्ट होना, दूसरों की निन्दा करना, अपनी प्रशंसा करना, दूसरों का अपमान कर अपने को बड़ा बताना, दूसरों का विश्वास नहीं करना और भले-बुरे का विचार नहीं करना, ये सब भाव कापोत लेश्या के लक्षण हैं। इस लेश्या वाले के भाव फलवान वृक्ष की छोटी छोटी शाखाएं काट कर फल खाने के होते हैं।

४ तेजोलेश्या—रक्तवर्ण नामकर्म के उदय से शरीर का लाल वर्ण होना द्रव्य तेजोलेश्या है। कर्तव्य अकर्तव्य और भले बुरे को जानना, दया, दान करना और मन्द कषाय रखते हुए सबको समान दृष्टि से देखना, ये सब भाव तेजोलेश्या के लक्षण हैं। इस लेश्या वाले के भाव फलों से लदी टहनियां तोड़कर फल खाने के होते हैं। यहां यह ज्ञातव्य है कि शास्त्रों में जिस शाप और अनुग्रह करने वाली तेजोलेश्या का उल्लेख आता है, वह वस्तुतः तेजोलब्धि है, जो कि तपस्या की साधनाविशेष से किसी-किसी तपस्वी साधु को प्राप्त होती है।

५ पद्मलेश्या—पीत और रक्तनाम कर्म के उदय से दोनों वर्णों के मिश्रित मन्द उदय से गुलाबी कमल जैसा शरीर का वर्ण होना द्रव्य पद्मलेश्या है। भद्र परिणामी होना, साधुजनों को दान देना, उत्तम धार्मिक कार्य करना, अपराधी के अपराध क्षमा करना, व्रत शीलादि का पालन करना, ये सब भाव पद्मलेश्या के लक्षण हैं।' इस लेश्या वाले के भाव फलों के गुच्छे तोड़कर फल खाने के होते हैं।

६ शुक्ललेश्या—श्वेत नामकर्म के उदय से शरीर का धवल वर्ण या गौर वर्ण होना द्रव्य शुक्ललेश्या है। किसी से राग-द्वेष नहीं करना, पक्षपात नहीं करना, सबमें समभाव रखना, व्रत, शील, संयमादि को पालना और निदान नहीं करना ये भाव शुक्ल लेश्या के लक्षण हैं। इस लेश्या वाले के भाव नीचे स्वयं गिरे हुए फलों को खाने के होते हैं।

देवों और नारकों में तो भाव लेश्या एक अवस्थित और जीवन-पर्यन्त स्थायिनी होती है। किन्तु मनुष्यों और तिर्यचों में छहों लेश्याएं अनवस्थित होती हैं और वे कषायों की तीव्रता मन्दता के अनुसार अन्तर्मुहूर्त में बदलती रहती हैं।

प्रत्येक भावलेश्या के जघन्य अंश से लेकर उत्कृष्ट अंश तक असंख्यात भेद होते हैं। अतः स्थायी लेश्या वाले जीवों की वह लेश्या भी कषायिक भावों के अनुसार जघन्य से लेकर उत्कृष्ट अंश तक यथासम्भव बदलती रहती है।

'जल्लेसे मरइ तल्लेस्से उववज्जइ' इस नियम के अनुसार जो जीव जैसी लेश्या वाले परिणामों में मरता है, वैसी ही लेश्या वाले जीवों में उत्पन्न होता है।

उपर्युक्त छह लेश्याओं में से कृष्ण, नील और कापोत ये तीन अशुभ लेश्याएं कही गई हैं तथा तेज, पद्म और शुक्ल ये शुभ लेश्याएं मानी गई हैं।

प्रज्ञापना लेश्यापद में जिन जिन जीवों की जो-जो लेश्या समान होती है, उन-उन जीवों की समानता की दृष्टि से एकरूपता कही गई है।

सिद्ध पद

२१४—एगा तित्थसिद्धाण वग्गणा एव जाव। २१५—[एगा अतित्थसिद्धाण वग्गणा। २१६—एगा तित्थगरसिद्धाण वग्गणा। २१७—एगा अतित्थगरसिद्धाण वग्गणा। २१८—एगा सयबुद्धसिद्धाण वग्गणा। २१९—एगा पत्तेयबुद्धसिद्धाण वग्गणा। २२०—एगा बुद्धबोहियसिद्धाण वग्गणा। २२१—एगा इत्थीलिंगसिद्धाण वग्गणा। २२२—एगा पुरिसलिंगसिद्धाण वग्गणा। २२३—एगा णपु सकलिंगसिद्धाण वग्गणा। २२४—एगा सलिंगसिद्धाण वग्गणा। २२५—एगा अण्णलिंगसिद्धाण वग्गणा। २२६—एगा गिहिलिंगसिद्धाण वग्गणा]। २२७—एगा एक्कसिद्धाण वग्गणा। २२८—एगा अणिक्कसिद्धाण वग्गणा। २२९—एगा अपढमसमयसिद्धाण वग्गणा, एव जाव अणतसमयसिद्धाण वग्गणा।

तीथसिद्धो की वर्गणा एक है (२१४)। अतीथसिद्धो की वर्गणा एक है (२१५)। तीर्थंकर-सिद्धा की वगणा एक है (२१६)। अतीर्थंकरसिद्धो की वगणा एक है (२१७)। स्वयबुद्धसिद्धो की वगणा एक है (२१८)। प्रत्येकबुद्धसिद्धो की वगणा एक है (२१९)। बुद्धबोधितसिद्धो की वगणा एक है (२२०)। स्त्रीलिंगसिद्धो की वर्गणा एक है (२२१)। पुरुषलिंगसिद्धो की वगणा एक है (२२१)। नपुसकलिंगसिद्धो की वर्गणा एक है (२२३)। स्वलिंगसिद्धो की वगणा एक है (२२४)। अयलिंगसिद्धो की वर्गणा एक है (२२५)। गृहिलिंगसिद्धो की वगणा एक है (२२४)। एक (एक) सिद्धो की वगणा एक है (२२७) अनेकसिद्धो की वगणा एक है (२२८)। अप्रथमसमय सिद्धो की वगणा एक है। इसी प्रकार यावत् अनन्तसमयसिद्धा की वगणा एक है (२२९)।

विवेचन—इसी एक स्थानक के ५२ वे सूत्र मे स्वरूप की समानता की अपेक्षा 'सिद्ध एक है' ऐसा कहा गया है और उक्त सूत्रो मे उनके पन्द्रह प्रकार कहे गये हैं, सो इसे परस्पर विरोधी कथन नही समझना चाहिए। क्योकि यहाँ पर भूतपूवप्रज्ञापन नय की अर्थात् सिद्ध होने के मनुष्यभव की अपेक्षा तीथसिद्ध आदि की वगणा का प्रतिपादन किया गया है। इनका स्वरूप इस प्रकार है—

१ तीथसिद्ध—जो तीथ की स्थापना के पश्चात् तीथ मे दीक्षित होकर सिद्ध होते हैं, जैसे ऋषभदेव के गणधर ऋषभसेन आदि।

२ अतीथसिद्ध—जो तीथ की स्थापना से पूव सिद्ध होते हैं, जैसे मरुदेवी माता।

३ तीर्थंकर सिद्ध—जो तीर्थंकर होकर के सिद्ध होते हैं, जैसे ऋषभ आदि।

४ अतीर्थंकर सिद्ध—जो सामान्यकेवली होकर सिद्ध होते हैं, जैसे—गौतम आदि।

५, स्वयबुद्धसिद्ध—जो स्वय बोधि प्राप्त कर सिद्ध होते हैं जैसे—महावीर स्वामी।

६ प्रत्येकबुद्धसिद्ध—जो किसी बाह्य निमित्त से प्रबुद्ध होकर सिद्ध होते हैं, जैसे—नमिराज आदि।

७ बुद्धबोधितसिद्ध—जो आचाय आदि के द्वारा बोधि प्राप्त कर सिद्ध होते है, जैसे—जम्बूस्वामी आदि।

८ स्त्रीलिंगसिद्ध—जो स्त्रीलिंग से सिद्ध होते हैं, जसे—मरुदेवी आदि।

९ पुरुषलिंग सिद्ध—जो पुरुष लिंग से सिद्ध होते हैं, जसे—महावीर।

१० नपुंसकलिंगसिद्ध—जो कृत्रिम नपुंसकलिंग से सिद्ध होते हैं, जैसे—गांगेय।

११ स्वलिंगसिद्ध—जो निर्ग्रन्थ वेष से सिद्ध होते हैं, जैसे—सुधर्मा।

१२ अन्यलिंगसिद्ध—जो निर्ग्रन्थ वेष से अतिरिक्त अन्य वेष से सिद्ध होते हैं, जैसे—वल्कलचीरी

१३ गृहिलिंगसिद्ध—जो गृहस्थ के वेष से सिद्ध होते हैं, जैसे—मरुदेवी

१४ एकसिद्ध—जो एक समय में एक ही सिद्ध होते हैं, जैसे—महावीर।

१५ अनेकसिद्ध—जो एक समय में दो से लेकर उत्कृष्टतः एक सौ आठ तक एक साथ सिद्ध होते हैं। जैसे—ऋषभदेव।

इस प्रकार पन्द्रह द्वारों से मनुष्य पर्याय की अपेक्षा सिद्धों की विभिन्न वर्गणाओं का वर्णन किया गया है। परमार्थदृष्टि से सिद्धलोक में विराजमान सब सिद्ध समान रूप से अनन्त गुणों के धारक हैं, अतः उनकी एक ही वर्गणा है।

पुद्गल-पद

२३०—एगा परमाणुपोग्गलाणं वग्गणा, एवं जाव एगा अणंतपएसियाणं खंधाणं वग्गणा। २३१—एगा एगपएसोगाढाणं पोग्गलाणं वग्गणा जाव एगा असंखेज्जपएसोगाढाणं पोग्गलाणं वग्गणा। २३२—एगा एगसमयठितियाणं पोग्गलाणं वग्गणा जाव एगा असंखेज्जसमयठितियाणं पोग्गलाणं वग्गणा। २३३—एगा एगगुणकालगाणं पोग्गलाणं वग्गणा जाव एगा असंखेज्जगुणकालगाणं पोग्गलाणं वग्गणा, एगा अणंतगुणकालगाणं पोग्गलाणं वग्गणा। २३४—एवं वण्णा गंधा रसा फासा भाणियव्वा जाव एगा अणंतगुणलुक्खाणं पोग्गलाणं वग्गणा।

(एक प्रदेशी) परमाणु पुद्गलों की वर्गणा एक है, इसी प्रकार द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्धों की वर्गणा एक-एक है (२३०)। एक प्रदेशावगाढ पुद्गलों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार दो, तीन यावत् असंख्यप्रदेशावगाढ पुद्गलों की वर्गणा एक एक है (२३१)। एक समय की स्थिति वाले पुद्गलों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार दो तीन यावत् असंख्य समय की स्थिति वाले पुद्गलों की वर्गणा एक एक है (२३२)। एक गुण काले पुद्गलों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार दो तीन यावत् असंख्य गुण काले पुद्गलों की वर्गणा एक एक है। अनन्त गुण काले पुद्गलों की वर्गणा एक है (२३३)। इसी प्रकार सभी वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों के एक गुणवाले यावत् अनन्त गुण रूक्ष स्पर्शवाले पुद्गलों की वर्गणा एक एक है (२३४)।

२३५—एगा जहण्णपएसियाणं खंधाणं वग्गणा। २३६—एगा उक्कस्सपएसियाणं खंधाणं वग्गणा। २३७—एगा अजहण्णुक्कस्सपएसियाणं खंधाणं वग्गणा। २३८—एवं एगा जहण्णोगाहणगाणं खंधाणं वग्गणा। २३९—एगा उक्कोसोगाहणगाणं खंधाणं वग्गणा। २४०—एगा अजहण्णुक्कोसोगाहणगाणं खंधाणं वग्गणा। २४१—एगा जहण्णठितियाणं खंधाणं वग्गणा। २४२—एगा उक्कस्सठितियाणं खंधाणं वग्गणा। २४३—एगा अजहण्णुक्कोसठितियाणं खंधाणं वग्गणा। २४४—एगा जहण्णगुणकालगाणं खंधाणं वग्गणा। २४५—एगा उक्कस्सगुणकालगाणं खंधाणं वग्गणा। २४६—एगा अजहण्णुक्कस्सगुणकालगाणं खंधाणं वग्गणा। २४७—एवं—वण्ण गंध रस फासाणं वग्गणा भाणियव्वा जाव एगा अजहण्णुक्कस्सगुणलुक्खाणं पोग्गलाणं [खंधाणं] वग्गणा।

जघन्य प्रदेशी स्कन्धो की वगणा एक है (२३५)। उत्कृष्टप्रदेशी स्कन्धो की वगणा एक है (२३६) अजघन्योत्कृष्ट, (न जघन्य, न उत्कृष्ट, किन्तु दोना के मध्यवर्ती) प्रदेशवाले स्कन्धो की वगणा एक है (२३७)। जघन्य अवगाहना वाले स्कन्धो की वर्गणा एक है (२३८)। उत्कृष्ट अवगाहना वाले स्कन्धो की वगणा एक है (२३९)। अजघन्योत्कृष्ट अवगाहना वाले स्कन्धो की वगणा एक है (२४०)। जघन्य स्थिति वाले स्कन्धो की वगणा एक है (२४१)। उत्कृष्ट स्थितिवाले पुद्गलो की वर्गणा एक है (२४२)। अजघन्योत्कृष्ट स्थिति वाले स्कन्धो की वगणा एक है (२४३) जघन्य गुण काले स्कन्धो की वगणा एक है (२४४)। उत्कृष्ट गुण काले स्कन्धो की वगणा एक है (२४५) अजघन्योत्कृष्ट गुण काले स्कन्धो की वगणा एक है (२४६)। इसी प्रकार शेष सभी वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शो के जघन्य गुण, उत्कृष्ट गुण और अजघन्योत्कृष्ट गुणवाले पुद्गलो (स्कन्धो) की वगणा एक एक है।

विवेचन—पुदगलपद मे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से पुद्गल वर्गणाओ की एकता का विचार किया गया है। सूत्राङ्क २३० मे द्रव्य की अपेक्षा से, सूत्राङ्क २३१ मे क्षेत्र की अपेक्षा से, सूत्राङ्क २३२ मे काल की अपेक्षा से और सूत्राङ्क २३३ मे भाव की अपेक्षा कृष्ण रूप गुण की एकता का वर्णन है। शेष रूपो एव रस आदि की अपेक्षा एकत्व की सूचना सूत्राङ्क २३४ मे की गई है। इसी प्रकार सूत्राङ्क २३५ से २४७ तक के सूत्रो मे उक्त वगणाओ का निरूपण जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यगत स्कध-भेदो की अपेक्षा से किया गया है।

जम्बूद्वीप पद

२४८—एगे जबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाण जाव [सव्वब्भतराए सव्वखुड्डाए, वट्टे तेल्लापूयसठाणसठिए, वट्टे रहचक्कवालसठाणसठिए, वट्टे पुक्खरकण्णियासठाणसठिए, वट्टे पडिपुण्णचदसठाणसठिए, एग जोयणसयसहस्स आयामविक्खभेण, तिण्णि जोयणसयसहस्साइ सोलस सहस्साइ दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे अट्ठावीस च धणुसय तेरस अगुलाइ०] अद्ध गुलग च किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेण।

सर्व द्वीपो और सव समुद्रो म सबमे आभ्यन्तर (मध्य मे) जम्बूद्वीप नाम का एक द्वीप है, जो सबसे छोटा है। वह तेल-(मे तले हुए) पूवे के सस्थान (आकार) से सस्थित वृत्त (गोलाकार) है, रथ के चक्र-सस्थान से सस्थित वृत्त है, कमल-कर्णिका के सस्थान से सस्थित वृत्त है, तथा परिपूर्ण चन्द्र के सस्थान से सस्थित वृत्त है। वह एक लाख योजन आयाम (लम्बाई) और विष्कम्भ (चौडाई) वाला है। उसकी परिधि (घेरा) तीन लाख, सोलह हजार, दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोश, अट्ठाईस धनुप, तेरह अगुल और आधे अगुल से कुछ अधिक है (२४८)।

महावीर निर्वाण-पद

२४९—एगे समणे भगव महावीरे इमीसे ओसप्पिणीए चउव्वीसाए तित्थगराण चरमतित्थयरे सिद्धे बुद्धे मुत्ते जाव [अतगडे परिणिव्वुडे०] सव्वदुक्खप्पहीणे।

इस अवसर्पिणी काल के चौवीस तीर्थंकरो मे चरम (अन्तिम) तीर्थंकर श्रमण भगवान्

१० नपु सर्कालिगसिद्ध—जो कृत्रिम नपु सकलिग से सिद्ध होते है, जसे—गागेय ।

११ स्वलिगसिद्ध—जो निग्र न्थ वेप से सिद्ध होते हैं, जैसे—सुधर्मा ।

१२ अन्यलिगसिद्ध—जो निग्र न्थ वेप के अतिरिक्त अन्य वेप से सिद्ध होते हैं, जैसे—वल्कलचीरी

१३ गृहिलिगसिद्ध—जो गृहस्थ के वेप से सिद्ध होते हैं, जैसे—मरुदेवी

१४ एकसिद्ध—जो एक समय मे एक ही सिद्ध होते हैं, जैसे—महावीर ।

१५ अनेकसिद्ध—जो एक समय मे दो से लेकर उत्कृष्टत एक सौ आठ तक एक साथ सिद्ध होते हैं । जैसे—ऋषभदेव ।

इस प्रकार पन्द्रह द्वारो से मनुष्य पर्याय की अपेक्षा सिद्धो की विभिन्न वर्गणाओ का वर्णन किया गया है। परमार्थदृष्टि से सिद्धलोक मे विराजमान सब सिद्ध समान रूप से अनन्त गुणो के धारक हैं, अन उनकी एक ही वर्गणा है ।

पुद्गल-पद

२३०—एगा परमाणुपोग्गलाण वग्गणा, एव जाव एगा अणतपएसियाण खधाण वग्गणा । २३१—एगा एगपएसोगाढाण पोग्गलाण वग्गणा जाव एगा असखेज्जपएसोगाढाण पोग्गलाण वग्गणा । २३२—एगा एगसमयठितियाण पोग्गलाण वग्गणा जाव एगा असखेज्जसमयठितियाण पोग्गलाण वग्गणा । २३३—एगा एगगुणकालगाण पोग्गलाण वग्गणा जाव एगा असखेज्जगुणकालगाण पोग्गलाण वग्गणा, एगा अणतगुणकालगाण पोग्गलाण वग्गणा । २३४—एव वण्णा गधा रसा फासा भाणियव्वा जाव एगा अणतगुणलुक्खाण पोग्गलाण वग्गणा ।

(एक प्रदेशी) परमाणु पुदगलो की वगणा एक है, इसी प्रकार द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्धो की वगणा एक-एक है (२३०) । एक प्रदेशावगाढ पुद्गलो की वगणा एक है । इसी प्रकार दो, तीन यावत् असख्यप्रदेशावगाढ पुद्गलो की वगणा एक एक है (२३१) । एक समय की स्थिति वाले पुद्गलो की वर्गणा एक है । इसी प्रकार दो, तीन यावत् असख्य समय की स्थिति वाले पुद्गलो की वगणा एक एक है (२३०) । एक गुण काले पुद्गला की वगणा एक है । इसी प्रकार दो तीन यावत् असख्य गुण काले पुद्गलो की वगणा एक एक है । अनन्त गुण काले पुद्गलो की वगणा एक है (२३३) । इसी प्रकार सभी वण, गन्ध, रस और स्पर्शों के एक गुणवाले यावत अनन्त गुण रूक्ष स्पर्शवाले पुद्गलो की वगणा एक एक है (२३४) ।

२३५—एगा जहण्णपएसियाण खधाण वग्गणा । २३६—एगा उक्कस्सपएसियाण खधाण वग्गणा । २३७—एगा अजहण्णुक्कस्सपएसियाण खधाण वग्गणा । २३८—एव एगा जहण्णोगाहणगाण खधाण वग्गणा । २३९—एगा उक्कोसोगाहणगाण खधाण वग्गणा । २४०—एगा अजहण्णुक्कोसोगाहणगाण खधाण वग्गणा । २४१—एगा जहण्णठितियाण खधाण वग्गणा । २४२—एगा उक्कस्सठितियाण खधाण वग्गणा । २४३—एगा अजहण्णुक्कोसठितियाण खधाण वग्गणा । २४४—एगा जहण्णगुणकालगाण खधाण वग्गणा । २४५—एगा उक्कस्सगुणकालगाण खधाण वग्गणा । २४६—एगा अजहण्णुक्कस्सगुणकालगाण खधाण वग्गणा । २४७—एव—वण्ण गध रस फासाण वग्गणा भाणियव्वा जाव एगा अजहण्णुक्कस्सगुणलुक्खाण पोग्गलाण [खधाण] वग्गणा ।

जघन्य प्रदेशी स्कन्धो की वगणा एक है (२३५)। उत्कृष्टप्रदेशी स्कन्धो की वगणा एक है (२३६) अजघन्योत्कृष्ट, (न जघन्य, न उत्कृष्ट, किन्तु दोनो के मध्यवर्ती) प्रदेशवाले स्कन्धो की वगणा एक है (२३७)। जघन्य अवगाहना वाले स्कन्धो की वगणा एक है (२३८)। उत्कृष्ट अवगाहना वाले स्कन्धो की वगणा एक है (२३६)। अजघन्योत्कृष्ट अवगाहना वाले स्कन्धो की वगणा एक है (२४०)। जघन्य स्थिति वाले स्कन्धो की वगणा एक है (२४१)। उत्कृष्ट स्थितिवाले पुद्गलो की वर्गणा एक है (२४२)। अजघन्योत्कृष्ट स्थिति वाले स्कन्धो की वगणा एक है (२४३) जघन्य गुण काले स्कन्धो की वगणा एक है (२४४)। उत्कृष्ट गुण काले स्कन्धो की वगणा एक है (२४५) अजघन्योत्कृष्ट गुण काले स्कन्धो की वगणा एक है (२४६)। इसी प्रकार शेष सभी वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों के जघन्य गुण, उत्कृष्ट गुण और अजघन्योत्कृष्ट गुणवाले पुद्गलो (स्कन्धो) की वगणा एक एक है।

विवेचन—पुदगलपद मे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से पुद्गल वगणाओ की एकता का विचार किया गया है। सूत्राङ्क २३० मे द्रव्य की अपेक्षा से, सूत्राङ्क २३१ मे क्षेत्र की अपेक्षा से, सूत्राङ्क २३२ मे काल की अपेक्षा से और सूत्राङ्क २३३ मे भाव की अपेक्षा कृष्ण रूप गुण की एकता का वर्णन है। शेष रूपा एव रस आदि की अपेक्षा एकत्व की सूचना सूत्राङ्क २३४ मे की गई है। इसी प्रकार सूत्राङ्क २३५ से २४७ तक के सूत्रो मे उक्त वगणाओ का निरूपण जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यगत स्कध-भेदो की अपेक्षा से किया गया है।

जम्बूद्वीप पद

२४८—एगे जबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाण जाव [सव्वब्भतराए सव्वखुड्डाए, वट्टे तेल्लापूयसठाणसठिए, वट्टे रहचक्कवालसठाणसठिए, वट्टे पुक्खरकण्णियासठाणसठिए, वट्टे पडिपुण्णचदसठाणसठिए, एग जोयणसयसहस्स आयामविक्खभेण, तिण्णि जोयणसयसहस्साइ सोलस सहस्साइ दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे अट्ठावीस च धणुसय तेरस अगुलाइ०] अद्ध गुलग च किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेण।

सव द्वीपो और सव समुद्रो मे सबसे आभ्यन्तर (मध्य मे) जम्बूद्वीप नाम का एक द्वीप है, जो सबसे छोटा है। वह तेल-(मे तले हुए) पूये के सस्थान (आकार) से सस्थित वृत्त (गोलाकार) है, रथ के चक्र-सस्थान मे सस्थित वृत्त है, कमल-कर्णिका के सस्थान से सस्थित वृत्त है, तथा परिपूर्ण चन्द्र के सस्थान से सस्थित वृत्त है। वह एक लाख योजन आयाम (लम्बाई) और विष्कम्भ (चौडाई) वाला है। उसकी परिधि (घेरा) तीन लाख, सोलह हजार, दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, अट्ठाईस धनुष, तेरह अगुल और आधे अगुल से कुछ अधिक है (२४८)।

महावीर निर्वाण-पद

२४६—एगे समणे भगव महावीरे इमीसे ओसप्पिणीए चउव्वीसाए तित्थगराण चरमतित्थयरे सिद्धे बुद्धे मुत्ते जाव [अतगडे परिणिव्वुडे०] सव्वदुक्खप्पहीणे।

इस अवसर्पिणी काल के चौबीस तीर्थंकरो मे चरम—(अन्तिम) तीर्थंकर श्रमण

महावीर अकेले ही सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत (ससार का अन्त करने वाले) परिनिवृत्त (कर्मकृत विकारो से विहीन) एव सब दु खो से रहित हुए (२४९)।

देव पद

२५०—अणुत्तरोववाइया ण देवा 'एग रयणिं' उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता।

अनुत्तरोपपातिक देवो की ऊचाई एक हाथ की कही गई है (२५०)।

नक्षत्र पद

२५१—अद्दाणक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते।

२५२—चित्ताणक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते।

२५३—सातिणक्खत्त एगतारे पण्णत्ते।

आर्द्रा नक्षत्र एक तारा वाला है (२५१)। चित्रा नक्षत्र एक तारा वाला है (२५२)। स्वाति नक्षत्र एक तारा वाला है (२५३)।

पुद्गल पद

२५४—एगपदेसोगाढा पोग्गला अणता पण्णत्ता। २५५—एव एगसमयठितिया पोग्गला अणता पण्णत्ता। २५६—एगगुणकालगा पोग्गला अणता पण्णत्ता जाव[1] एगगुणलुक्खा पोग्गला अणता पण्णत्ता।

एक प्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त हैं (२५४)। एक समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त हैं (२५५)। एक गुण काले पुद्गल अनन्त हैं। इसी प्रकार शेष वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शो के एक गुण वाले पुदगल अनन्त-अनन्त कहे गये हैं। (२५६)।

॥ प्रथम स्थान समाप्त ॥

---

१ १। ७२-७९

द्वितीय स्थान

सार सक्षेप

प्रथम स्थान मे चेतन—अचेतन सभी पदार्थों का सग्रह नय की अपेक्षा से एकत्व का प्रतिपादन किया गया हैं। किन्तु प्रस्तुत द्वितीय स्थान मे व्यवहार नय की अपेक्षा भेद अभेद विवक्षा से प्रत्येक द्रव्य, वस्तु या पदार्थ के दो-दो भेद करके प्रतिपादन किया गया है। इस स्थान का प्रथम सूत्र है— 'जदत्थि ण लोगे त सव्व दुपग्रोग्रार'।

ग्रर्थात्—इस लोक मे जो कुछ है, वह सब दो दो पदो मे अवतरित होता है अर्थात् उनका समावेश दो विकल्पो मे हो जाता है। इसी प्रतिज्ञावाक्य के अनुसार इस स्थान के चारो उद्देशो मे त्रिलोक-गत सभी वस्तुग्रा का दो दो पदो मे वणन किया गया है।

इस स्थान के प्रथम उद्देश मे द्रव्य के दो भेद किये गये हैं—जीव और अजीव। पुन जीव तत्त्व के त्रस स्थावर, सयोनिक-ग्रयोनिक, सायुष्य-निरायुष्य, सेन्द्रिय-अनिन्द्रिय सवेदक-अवेदक, सरुपी अरूपी, सपुद्गल अपुद्गल, ससारी-सिद्ध और शाश्वत-अशाश्वत भेदो का निरूपण है।

तत्पश्चात् अजीव तत्त्व के आकाशास्तिकाय-नोआकाशास्ति काय, धमास्तिकाय-अधमास्तिकाय का वणन है तदनन्तर अन्य तत्वो के बन्ध-मोक्ष, पुण्य पाप, सवर-निजरा, और वेदना निजरा का वणन है। पुन जीव और अजीव के निमित्त से होने वाली २५ क्रियाओ का विस्तृत निरुपण है।

पुन गर्हा और प्रत्याख्यान के दो-दो भेदो का कथन कर मोक्ष के दो साधन बताये गये है। तत्पश्चात् बताया गया है कि केवलि प्ररूपित धम का श्रवण, बोधि की प्राप्ति, अनगारदशा ब्रह्मचर्य-पालन, शुद्धसयम-पालन, आत्म-सवरण और मतिज्ञानादि पाचो सम्यग्ज्ञानो की प्राप्ति जाने और त्यागे विना नही हो सकती, किन्तु दो स्थानो को जान कर उनके त्यागने पर ही होती है। तथा उत्तम धमश्रवण आदि की प्राप्ति दो स्थाना के आराधन से ही होती है।

तदनन्तर समय, उन्माद, दण्ड, दशन, ज्ञान, चारित्र, पृथ्वीकाय यावत् वनस्पतिकाय के दो-दो भेद कहकर दो दो प्रकार के द्रव्या का वणन किया गया है।

अन्त मे काल और आकाश के दो दो भेद बताकर चौबीस दण्डको मे दो दो शरीरो की प्ररूपणा कर शरीर की उत्पत्ति और निवृत्ति के दो दो कारणो का वणन कर पूर्व और उत्तर दिशा की ओर मुख करके करने योग्य कार्यों का निरुपण किया गया है।

द्वितीय उद्देश का सार

चौवीस दण्डकवर्ती जीवा के वतमान भव मे एव अन्य भवो मे कर्मों के बन्धन और उनके फल का वेदन बताकर सभी दण्डकवाले जीवो की गति-आगति का वणन किया गया है। तदनन्तर चौवीस दण्डकवर्ती जीवो की भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक, अनन्तरोपपन्नक, परम्परोपपन्नक, गति-

समापनक-अगति समापन्नक, आहारक अनाहारक, उच्छ्वासक नोउच्छ्वासक, सज्ञी-असज्ञी आदि दो-दो अवस्थाओ का वर्णन किया गया है।

तदनन्तर अधोलोक आदि तीनो लोको मे जानने के दो दो स्थानो का, शब्दादि को ग्रहण करने के दो स्थानो का वर्णन कर प्रकाश, विक्रिया, परिवार, विषय सेवन, भाषा, आहार, परिणमन, वेदन और निर्जरा करने के दो दो स्थानो का वर्णन किया गया है। अन्त मे मरुत आदि देवो के दो प्रकार के शरीरो का निरूपण किया गया है।

तृतीय उद्देश का सार

दो प्रकार के शब्द और उनकी उत्पत्ति, पुद्गलो का सम्मिलन, भेदन, परिशाटन, पतन, विध्वस, स्वयकृत और परकृत कहकर पुद्गल के दो दो प्रकार बताये गये है।

तत्पश्चात् आचार और उसके भेद-प्रभेद, बारह प्रतिमाओ का दो दो के रूप मे निर्देश, सामायिक के प्रकार, जन्म-मरण के लिए विविध शब्दो का प्रयोग, मनुष्य और पचेन्द्रिय तिर्यचो के गर्भ-सम्बन्धी जानकारी, कायस्थिति और भवस्थिति का वर्णन कर दो प्रकार की आयु, दो प्रकार के कर्म, निरुपक्रम और सोपक्रम आयु भोगने वाले जीवो का वर्णन किया गया है।

तदनन्तर क्षेत्रपद, पर्वतपद, गुहापद, कूटपद, महाद्रहपद, महानदीपद, प्रपातद्रहपद, कालचक्र-पद, शलाकापुरुष-वशपद, शलाकापुरुषपद, चन्द्रसूरपद, नक्षत्रपद, नक्षत्रदेवपद, महाग्रहपद, और जम्बूद्वीप-वेदिकापद के द्वारा जम्बूद्वीपस्थ क्षेत्र पर्वत आदि का तथा नक्षत्र आदि का दो-दो के रूप मे विस्तृत वर्णन किया गया है।

पुन लवण समुद्रपद के द्वारा उसके विष्कम्भ और वेदिका के प्रमाण को बताकर धातकीषण्ड-पद के द्वारा तद्-गत क्षेत्र, पर्वत, कूट, महाद्रह, महानदी, बत्तीस विजयक्षेत्र, बत्तीस नगरियो, दो मन्दर आदि का विस्तृत वर्णन, अन्त मे धातकीषण्ड की वेदिका और कालोद समुद्र की वेदिका का प्रमाण बताया गया है।

तत्पश्चात् पुष्करवर पद के द्वारा वहा के क्षेत्र, पर्वत, नदी, कूट, आदि धातकीषण्ड के समान दो दो जानने की सूचना दी गई है। पुन पुष्करवर द्वीप की वेदिका की ऊचाई और सभी द्वीपो और समुद्रो की वेदिकाओ की ऊचाई दो दो कोश बतायी गयी है।

अन्त मे इन्द्रपद के द्वारा भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी देवो के दो दो इन्द्रो का निरूपण कर विमानपद मे विमानो के दो दो वर्णों का वर्णन कर ग्रैवेयकवासी देवो के शरीर की ऊचाई दो रत्नि प्रमाण कही गयी है।

चतुर्थ उद्देश का सार

इस उद्देश मे जीवाजीवपद के द्वारा समय, आवलिका से लेकर उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी पर्यन्त काल के सभी भेदो को, तथा ग्राम, नगर से लेकर राजधानी तक के सभी जन-निवासो को, सभी प्रकार के उद्यान-वनादि को, सभी प्रकार के कूप नदी आदि जलाशयो को, तोरण, वेदिका, नरक, नारकावास, विमान विमानावास, कल्प, कल्पावास और छाया आतप आदि सभी लोकस्थित पदार्थों को जीव और अजीव रूप बताया गया है।

तत्पश्चात कमपद के द्वारा दो प्रकार के बध, दो स्थानो से पापकम का बध, दो प्रकार की वेदना से पापकम की उदीरणा, दो प्रकार से वेदना का वेदन, और दो प्रकार से कम-निजरा का वर्णन किया गया है।

तदनन्तर आत्म-निर्याणपद के द्वारा दो प्रकार से आत्म-प्रदेशो का शरीर को स्पशकर, स्फुरणकर, स्फोटकर सवतनकर, और निवतनकर बाहिर निकलने का वणन किया गया है।

पुन क्षयोपशम पद के द्वारा केवलिप्रज्ञप्त धम का श्रवण, बोधि का अनुभव, अनगारिता, ब्रह्मचर्यावास, सयम से सयतता, सवर से सवृतता और मतिज्ञानादि की प्राप्ति कर्मो के क्षय और उपशम से होने का वर्णन किया गया है।

पुन औपमिक काल पद के द्वारा पल्योपम, सागरोपमकाल का, पाप पद के द्वारा क्रोध, मानादि पापो के आत्मप्रतिष्ठित और परप्रतिष्ठित होने का वणन कर जीवपद के द्वारा जीवो के त्रस-स्थावर आदि दो दो भेदो का निरूपण किया गया है।

तत्पश्चात् मरणपद के द्वारा भ महावीर से अनुज्ञात और अननुज्ञात दो दो प्रकार के मरणो का वणन किया गया है। पुन लोकपद के द्वारा भगवान् से पूछे गये लोक-सम्बन्धी प्रश्नो का उत्तर, बोधिपद के द्वारा बोधि और बुद्ध, मोहपद के द्वारा मोह और मूढ जनो का वर्णन कर कमपद के द्वारा ज्ञानावरणादि आठो कर्मों की द्विरूपता का निरूपण किया गया है।

तदनन्तर मूर्च्छापद के द्वारा दो प्रकार की मूर्च्छाओ का, आराधनापद के द्वारा दो दो प्रकार की आराधनाओ का और तीर्थकर-वणपद के द्वारा दो दो तीर्थकरो के नामो का निर्देश किया गया है।

पुन सत्यप्रवादपूव की दो वस्तु नामक अधिकारो का निर्देश कर दो दो तारा वाले नक्षत्रो का, मनुष्यक्षेत्र-गत दो समुद्रो का और नरक गये दो चक्रवर्तियो के नामो का निर्देश किया गया है।

तत्पश्चात् देवपद के द्वारा देवो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का, दो कल्पो मे देवियो की उत्पत्ति का, दो कल्पो मे तेजोलेश्या का और दो दो कल्पो मे क्रमश कायप्रवीचार, स्पश, रूप, शब्द और मन प्रवीचार का वणन किया गया है।

अन्त मे पापकमपद के द्वारा त्रस और स्थावर-कायरूप से कर्मों का सचय निरूपण कर पुद्गलपद के द्विप्रदेशी, द्विप्रदेशावगाढ, द्विसमयस्थितिक तथा दो दो रूप, रस, गन्ध, स्पश गुणयुक्त पुद्गलो का वणन किया गया है।

द्वितीय स्थान

प्रथम उद्देश

द्विपदावतार पद

१—'जदत्थि णं' लोगे तं सव्वं दुपओआरं, तं जहा—जीवच्चेव, अजीवच्चेव। 'तसच्चेव, थावरच्चेव'। सजोणियच्चेव, अजोणियच्चेव। साउयच्चेव, अणाउयच्चेव। सइंदियच्चेव, अणिंदियच्चेव। सवेयगा चेव, अवेयगा चेव। सरूवी चेव, अरूवी चेव। सपोग्गला चेव। अपोग्गला चेव। संसारसमावण्णगा चेव, असंसारसमावण्णगा चेव। सासया चेव, असासया चेव। आगासे चेव, णोआगासे चेव। धम्मे चेव, अधम्मे चेव। बंधे चेव, मोक्खे चेव। पुण्णे चेव, पावे चेव। आसवे चेव, संवरे चेव। वेयणा चेव, णिज्जरा चेव।

लोक में जो कुछ है, वह सब दो दो पदों में अवतरित होता है। यथा-जीव और अजीव। त्रस और स्थावर। सयोनिक और अयोनिक। आयु-सहित और आयु-रहित। इन्द्रिय सहित और इन्द्रिय रहित। वेद-सहित और वेद-रहित। रूप सहित और रूप-रहित। पुद्गल सहित और पुद्गल रहित। संसार समापन्न (संसारी) और असंसार समापन्न (सिद्ध)। शाश्वत (नित्य) और अशाश्वत (अनित्य)। आकाश और नोआकाश। धर्म और अधर्म। बन्ध और मोक्ष। पुण्य और पाप। आस्रव और संवर। वेदना और निर्जरा (१)।

विवेचन—इस लोक में दो प्रकार के द्रव्य हैं—सचेतन-जीव और अचेतन-अजीव। जीव के दो भेद हैं—त्रस और स्थावर। जिनके त्रस नामकर्म का उदय होता है, ऐसे द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव त्रस कहलाते हैं और जिनके स्थावर नामकर्म का उदय होता है ऐसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति कायिक जीव स्थावर कहलाते हैं। योनि-सहित संसारी जीवों को सयोनिक और योनि-रहित सिद्ध जीवों को अयोनिक कहते हैं। इसी प्रकार आयु और इन्द्रिय सहित जीवों को सेन्द्रिय समागी और उनसे रहित जीव अनिन्द्रिय मुक्त कहलाते हैं। वेदयुक्त जीव सवेदी और वेदातीत दशम आदि गुणस्थानवर्ती तथा सिद्ध अवेदी कहलाते हैं। पुद्गलद्रव्य रूप सहित है और शेष पांच द्रव्य रूप-रहित हैं। संसारी जीव पुद्गलसहित हैं और मुक्त जीव पुद्गल-रहित हैं। जन्म-मरणादि से रहित होने के कारण सिद्ध शाश्वत हैं क्योंकि वे सदा एक शुद्ध अवस्था में रहते हैं और संसारी जीव अशाश्वत हैं क्योंकि वे जन्म, जरा, मरणादि रूप से विभिन्न दशाओं में परिवर्तित होते रहते हैं।

जिसमें सर्वद्रव्य अपने-अपने स्वरूप से विद्यमान हैं, उसे आकाश कहते हैं। नो शब्द के दो अर्थ होते हैं—निषेध और भिन्नार्थ। यहां पर नो शब्द का भिन्नार्थ अभीष्ट है, अतः आकाश के सिवाय शेष पांच द्रव्यों को नो आकाश जानना चाहिए। धर्म आदि शेष पदों का अर्थ प्रथम स्थान में 'अस्तिवाद पद' के विवेचन में किया गया है। उक्त सूत्र-संदर्भ में प्रतिपक्षी दो दो पदों का निरूपण किया गया है। यही बात आगे के सूत्रों में भी जानना चाहिए, क्योंकि यह स्थानाङ्ग का द्विस्थानक है।

क्रिया पद

२—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—जीवकिरिया चेव, अजीवकिरिया चेव। ३—जीवकिरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सम्मत्तकिरिया चेव, मिच्छत्तकिरिया चेव। ४—अजीवकिरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—इरियावहिया चेव, सपराइगा चेव। ५—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—काइया चेव, आहिगरणिया चेव। ६—काइया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—अणुवरयकायकिरिया चेव, दुपउत्तकायकिरिया चेव। ७—आहिगरणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सजोयणाधिकरणिया चेव, णिव्वत्तणाधिकरणिया चेव। ८—दो किरियाओ पण्णत्ताओ त जहा—पाओसिया चेव, पारियावणिया चेव। ९—पाओसिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—जीवपाओसिया चेव, अजीवपाओसिया चेव। १०—पारियावणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सहत्थपारियावणिया चेव, परहत्थपारियावणिया चेव।

क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीवक्रिया (जीव की प्रवृत्ति) और अजीवक्रिया (पुद्गल वर्गणाओ की कर्मरूप मे परिणति) (२)। जीवक्रिया दो प्रकार की कही गई है।—सम्यक्त्वक्रिया (सम्यग्दर्शन बढाने वाली क्रिया) और मिथ्यात्वक्रिया (मिथ्यादर्शन बढाने वाली क्रिया) (३)। अजीव क्रिया दो प्रकार की होती है—ऐर्यापथिकी (वीतराग को होने वाली कर्मास्रवरूप क्रिया) और साम्परायिकी (सकषाय जीव को होने वाली कर्मास्रवरूप क्रिया) (४)।

पुन क्रिया दो प्रकार की कही गई है—कायिकी (शारीरिक क्रिया) और आधिकरणिकी (अधिकरण-शस्त्र आदि की प्रवृत्तिरूप क्रिया) (५)। कायिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है। -अनुपरतकायक्रिया (विरति-रहित व्यक्ति की शारीरिक प्रवृत्ति) और दुष्प्रयुक्त कायक्रिया (इन्द्रिय और मन के विषयो मे आसक्त प्रमत्तसयत की शारीरिक प्रवृत्तिरूप क्रिया) (६)। आधिकरणिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—सयोजनाधिकरणिकी क्रिया (पूर्वनिर्मित भागो को जोडकर शस्त्र-निर्माण करने की क्रिया) और निर्वर्तनाधिकरणिकी क्रिया (नये सिरे से शस्त्र-निर्माण करने की क्रिया) (७)।

पुन क्रिया दो प्रकार की कही गई है—प्रादोषिकी (मात्सर्यभावरूप क्रिया) और पारितापनिकी (दूसरो को सताप देने वाली क्रिया) (८)। प्रादोषिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीवप्रादोषिकी (जीव के प्रति मात्सर्यभावरूप क्रिया) और अजीवप्रादोषिकी (अजीव के प्रति मात्सर्य भावरूप क्रिया) ९। पारितापनिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—स्वहस्तपारितापनिकी (अपने हाथ से स्वय को या दूसरे को परिताप देने रूप क्रिया) और परहस्तपारितापनिकी (दूसरे व्यक्ति के हाथ से स्वय को या अन्य को परिताप दिलानेवाली क्रिया) (१०)।

११—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—पाणातिवायकिरिया चेव, अपच्चक्खाणकिरिया चेव। १२—पाणातिवायकिरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सहत्थपाणातिवायकिरिया चेव, परहत्थपाणातिवायकिरिया चेव। १३—अपच्चक्खाणकिरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—जीवअपच्चक्खाणकिरिया चेव, अजीवअपच्चक्खाणकिरिया चेव।

पुन क्रिया दो प्रकार की कही गई है—प्राणातिपात क्रिया (जीव-घात से होने वाला कर्म-बन्ध)। और अप्रत्याख्यान क्रिया (अविरति से होनेवाला कर्म-बन्ध) (११)। प्राणातिपात क्रिया दो प्रकार की कही गई है—स्वहस्तप्राणातिपात क्रिया (अपने हाथ से अपने या दूसरे के प्राणो का घात

करना) और परहस्तप्राणातिपात क्रिया (दूसरे के हाथ से अपने या दूसरे के प्राणों का घात कराना) (१२)। अप्रत्याख्यानक्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीव-अप्रत्याख्यान क्रिया (जीव-विषयक अविरति से होने वाला कर्मबन्ध) और अजीव-अप्रत्याख्यान क्रिया (मद्य आदि अजीव विषयक अविरति से अर्थात् प्रत्याख्यान न करने से होने वाला कर्मबन्ध) (१३)।

१४—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—आरंभिया चेव, पारिग्गहिया चेव। १५—आरंभिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जीवआरंभिया चेव, अजीवआरंभिया चेव। १६—पारिग्गहिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जीवपारिग्गहिया चेव, अजीवपारिग्गहिया चेव।

पुनः क्रिया दो प्रकार की कही गई है—आरम्भिकी क्रिया (जीव उपमर्दनकी प्रवृत्ति) और पारिग्रहिकी क्रिया (परिग्रह में प्रवृत्ति) (१४)। आरम्भिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीव-आरम्भिकी क्रिया (जीवों के उपमर्दन की प्रवृत्ति) और अजीव-आरम्भिकी क्रिया (जीव कलेवर, जीवाकृति आदि के उपमर्दन की तथा अन्य अचेतन वस्तुओं के आरम्भ समारम्भ की प्रवृत्ति) (१५)। पारिग्रहिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीव पारिग्रहिकी क्रिया (सचेतन दासी दास आदि परिग्रह में प्रवृत्ति) और अजीव पारिग्रहिकी क्रिया (अचेतन हिरण्य सुवर्णादि के परिग्रह में प्रवृत्ति) (१६)।

१७—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—मायावत्तिया चेव, मिच्छादंसणवत्तिया चेव। १८—मायावत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—आयभाववंकणता चेव, परभाववंकणता चेव। १९—मिच्छादंसणवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—ऊणाइरियमिच्छादंसणवत्तिया चेव, तव्वइरित्तमिच्छादंसणवत्तिया चेव।

पुनः क्रिया दो प्रकार की कही गई है—मायाप्रत्यया क्रिया (माया से होने वाली प्रवृत्ति) और मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया (मिथ्यादर्शन से होनेवाली प्रवृत्ति) (१७)। मायाप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है—आत्मभाव वंचना क्रिया (अप्रशस्त आत्मभाव को प्रशस्त प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति) और परभाव वंचना क्रिया (कूट लेख आदि के द्वारा दूसरों को ठगने की प्रवृत्ति) (१८)। मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है—ऊनातिरिक्त मिथ्या-दर्शनप्रत्यया क्रिया (वस्तु का जो यथार्थ स्वरूप है उससे हीन या अधिक कहना। जैसे शरीर व्यापी आत्मा का अंगुष्ठ प्रमाण कहना। अथवा सर्व लोक-व्यापक कहना)। और तद्-व्यतिरिक्त मिथ्या-दर्शनप्रत्यया क्रिया (सद्-भूत वस्तु के अस्तित्व को स्वीकार न करना, जैसे आत्मा है ही नहीं) (१९)।

२०—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—दिट्ठिया चेव, पुट्ठिया चेव। २१—दिट्ठिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जीवदिट्ठिया चेव, अजीवदिट्ठिया चेव। २२—पुट्ठिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जीवपुट्ठिया चेव, अजीवपुट्ठिया चेव।

पुनः क्रिया दो प्रकार की कही गई है—दृष्टिजा क्रिया (देखने के लिए रागात्मक प्रवृत्ति का होना) और स्पृष्टिजा क्रिया (स्पर्शन के लिए रागात्मक प्रवृत्ति का होना) (२०)। दृष्टिजा क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीवदृष्टिजा क्रिया (सजीव वस्तुओं को देखने के लिए रागात्मक प्रवृत्ति का

होना) और अजीवदृष्टिजा क्रिया (अजीव वस्तुओ को देखने के लिए रागात्मक प्रवृत्ति का होना) (२१)। स्पृष्टिजा क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीवस्पृष्टिजा क्रिया (जीव के स्पर्श के लिए रागात्मक प्रवृत्ति का होना) और अजीवस्पृष्टिजा क्रिया (अजीव के स्पर्श के लिए रागात्मक प्रवृत्ति का होना) (२२)।

२३—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—पाडुच्चिया चेव, सामतोवणिवाइया चेव। २४—पाडुच्चिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—जीवपाडुच्चिया चेव, अजीवपाडुच्चिया चेव। २५—सामतोवणिवाइया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—जीवसामतोवणिवाइया चेव, अजीवसामतोवणिवाइया चेव।

पुन क्रिया दो प्रकार की कही गई है—प्रातीत्यिकी क्रिया (बाहिरी वस्तु के निमित्त से होने वाली क्रिया) और सामन्तोपनिपातिकी क्रिया (अपनी वस्तुओ के विषय मे लोगो के द्वारा की गई प्रशसा के सुनने पर होने वाली क्रिया) (२३)। प्रातीत्यिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीवप्रातीत्यिकी क्रिया (जीव के निमित्त से होने वाली क्रिया) और अजीवप्रातीत्यिकी क्रिया (अजीव-के निमित्ति से होने वाली क्रिया) (२४)। सामन्तोपनिपातिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीवसामन्तोपनिपातिकी क्रिया (अपने पास के गज, अश्व आदि सजीव वस्तुओ के विषय मे लोगो के द्वारा की गई प्रशसादि के सुनने पर होने वाली क्रिया) और अजीवसामन्तोपनिपातिकी क्रिया (अपने रथ, पालकी आदि अजीव वस्तुओ के विषय मे लोगो के द्वारा की गई प्रशसादि के सुनने पर होने वाली क्रिया) (२५)।

२६—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—साहत्थिया चेव, णेसत्थिया चेव। २७—साहत्थिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—जीवसाहत्थिया चेव, अजीवसाहत्थिया चेव। २८—णेसत्थिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—जीवणेसत्थिया चेव, अजीवणेसत्थिया चेव।

पुन क्रिया दो प्रकार की कही गई है—स्वाहस्तिकी क्रिया (अपने हाथ से होने वाली क्रिया) और नैसृष्टिकी क्रिया (किसी वस्तु के निक्षेपण से होनेवाली क्रिया) (२६)। स्वाहस्तिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीवस्वाहस्तिकी क्रिया (स्व-हस्त गृहीत जीव के द्वारा किसी दूसरे जीव को मारने की क्रिया) और अजीवस्वाहस्तिकी क्रिया (स्व हस्त-गृहीत अजीव शस्त्रादि के द्वारा किसी दूसरे जीवको मारने की क्रिया) (२७)। नैसृष्टिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीव नैसृष्टिकी क्रिया (जीव को फेकने से होनेवाली क्रिया) और अजीवनैसृष्टिकी क्रिया (अजीव को फेंकने से होने वाली क्रिया) (२८)।

२९—दो किरियाओ, पण्णत्ताओ, त जहा—आणवणिया चेव, वेयारणिया चेव। ३०—आणवणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—जीवआणवणिया चेव, अजीवआणवणिया चेव। ३१—वेयारणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—जीववेयारणिया चेव, अजीववेयारणिया चेव।

पुन क्रिया दो प्रकार की कही गई है—आनापनी क्रिया (आज्ञा देने से होनवाली क्रिया) और वदारिणी क्रिया (किसी वस्तु के विदारण से होनेवाली क्रिया) (२९)। आज्ञापनी क्रिया दो प्रकार

की कही गई है—जीव-आज्ञापनी क्रिया (जीव के विषय मे आज्ञा देने से होनेवाली क्रिया) और अजीव-आज्ञापनी क्रिया (अजीव के विषय मे आज्ञा देने से होने वाली क्रिया) (३०)। वैदारिणी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीववैदारिणी क्रिया (जीव के विदारण से होने वाली क्रिया) और अजीववैदारिणी क्रिया (अजीव के विदारण से होनेवाली क्रिया) (३१)।

३२—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—अणाभोगवत्तिया चेव, अणवकखवत्तिया चेव। ३३—अणाभोगवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—अणाउत्तआइयणता चेव, अणाउत्तपमज्जणता चेव। ३४—अणवकखवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—आयसरीरअणवकखवत्तिया चेव, परसरीरअणवकखवत्तिया चेव।

पुन क्रिया दो प्रकार की कही गई है—अनाभोगप्रत्यया क्रिया (असावधानी से होने वाली क्रिया) और अनवकाक्षाप्रत्यया क्रिया (आकाक्षा या अपेक्षा न रखकर की जाने वाली क्रिया) (३२)। अनाभोगप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है—अनायुक्त आदानता क्रिया (असावधानी से वस्त्र आदि का ग्रहण करना) और अनायुक्त प्रमाजनता क्रिया (असावधानी से पात्र आदि का प्रमाजन करना) (३३)। अनवकाक्षा प्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है—आत्मशरीर-अनवकाक्षाप्रत्यया क्रिया (अपने शरीर की अपेक्षा न रख कर की जाने वाली क्रिया) और पर शरीर-अनवकाक्षाप्रत्यया क्रिया (दूसरे के शरीर की अपेक्षा न रख कर की जाने वाली क्रिया) (३४)।

३५—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—पेज्जवत्तिया चेव, दोसवत्तिया चेव। ३६—पेज्जवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—मायावत्तिया चेव, लोभवत्तिया चेव। ३७—दोसवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—कोहे चेव, माणे चेव।

पुन क्रिया दो प्रकार की कही गई है—प्रेय प्रत्यया क्रिया (राग के निमित्त से होने वाली क्रिया) और द्वेषप्रत्यया क्रिया (द्वेष के निमित्त से होने वाली क्रिया) (३५)। प्रेय प्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है—मायाप्रत्यया क्रिया (माया के निमित्त से होने वाली राग क्रिया) और लोभ-प्रत्यया क्रिया (लोभ के निमित्त से होने वाली राग क्रिया) (३६)। द्वेषप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है—क्रोधप्रत्यया क्रिया (क्रोध के निमित्त से होने वाली द्वेषक्रिया) और मानप्रत्यया क्रिया (मान के निमित्त से होने वाली द्वेषक्रिया) (३७)।

विवेचन—हलन-चलन रूप परिस्पन्द को क्रिया कहते हैं। यह सचेतन और अचेतन दोनो प्रकार के द्रव्यो मे होती है, अत सूत्रकार ने मूल मे क्रिया के दो भेद बतलाये हैं। किन्तु जब हम आगम सूत्रो मे एव तत्त्वार्थसूत्र की टीकाओ मे वर्णित २५ क्रियाओ की ओर दृष्टिपात करते हैं, तब जीव के द्वारा होनेवाली या जीव मे कर्मबन्ध कराने वाली क्रियाए ही यहा अभीष्ट प्रतीत होती है, अत द्वि-स्थानक के अनुरोध से अजीवक्रिया का प्रतिपादन युक्ति सगत होते हुए भी इस द्वितीय स्थानक मे वर्णित शेष क्रियाओ मे पच्चीस की सख्या पूरी नही होती है। क्रियाओ की पच्चीस सख्या की पूर्ति के लिए तत्त्वार्थसूत्र की टीकाओ मे वर्णित क्रियाओ को लेना पडेगा।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि साम्परायिक आस्रव के ३९ भेद मूल तत्त्वार्थसूत्र मे कहे गये हैं, किन्तु उनकी गणना तत्त्वार्थभाष्य और सर्वार्थसिद्धि टीका मे ही स्पष्टरूप से सर्वप्रथम प्राप्त होती

है। तत्त्वार्थभाष्य मे २५ क्रियाओ के नामो का ही निर्देश है, किन्तु सर्वार्थसिद्धि म उनका स्वरूप भी दिया गया है। इस द्विस्थानक मे वर्णित क्रियाओ के साथ जब हम तत्त्वार्थसूत्र-वर्णित क्रियाओ का मिलान करते हैं, तब द्विस्थानक मे वर्णित प्रेयप्रत्यया क्रिया और द्वेषप्रत्यय क्रिया, इन दो को तत्त्वार्थसूत्र की टीकाओ मे नही पाते है। इसी प्रकार तत्त्वार्थसूत्र की टीकाओ मे वर्णित समादान क्रिया और प्रयोग क्रिया, इन दो को इस द्वितीय स्थानक मे नही पाते हैं।

जैन विश्वभारती से प्रकाशित 'ठाण' के पृ ११९ पर जो उक्त क्रियाओ की सूची दी है, उसमे २४ क्रियाओ का नामोल्लेख है। यदि अजीवक्रिया का नामोल्लेख न करके जीवक्रिया के दो भेद रूप से प्रतिपादित सम्यक्त्वक्रिया और मिथ्यात्वक्रिया का उस तालिका मे समावेश किया जाता तो तत्त्वार्थसूत्रटीका-गत दोनो क्रियाओ के साथ सख्या समान हो जाती और क्रियाओं की २५ सख्या भी पूरी हो जाती। फिर भी यह विचारणीय रह जाता है कि तत्त्वार्थ-वर्णित समादान क्रिया और प्रयोग क्रिया का समावेश स्थानाङ्ग-वर्णित क्रियाओ मे कहाँ पर किया जाय? इसी प्रकार स्थानाङ्ग-वर्णित प्रेयप्रत्यय क्रिया और द्वेषप्रत्यय क्रिया का समावेश तत्त्वार्थ-वर्णित क्रियाओ मे कहाँ पर किया जाय? विद्वानो को इसका विचार करना चाहिए।

जीव-क्रियाओ की प्रमुखता होने से अजीवक्रिया को छोडकर जीवक्रिया के सम्यक्त्वक्रिया और मिथ्यात्वक्रिया इन दो भेदो को परिगणित करने मे दोनो स्थानाङ्ग और तत्त्वार्थ-गत २५ क्रियायो की तालिका इस प्रकार होती है—

स्थानाङ्गसूत्र-गत	तत्त्वार्थसूत्र-गत
१ सम्यक्त्व क्रिया	१ सम्यक्त्व क्रिया
२ मिथ्यात्व क्रिया	२ मिथ्यात्व क्रिया
३ कायिकी क्रिया	७ कायिकी क्रिया
४ आधिकरणिकी क्रिया	८ आधिकरणिकी क्रिया
५ प्रादोषिकी क्रिया	६ प्रादोषिकी क्रिया
६ पारितापनिकी क्रिया	९ पारितापिनी क्रिया
७ प्राणातिपात क्रिया	१० प्राणातिपातिकी क्रिया
८ अप्रत्याख्यान क्रिया	१५ अप्रत्याख्यान क्रिया
९ आरम्भिकी क्रिया	२१ आरम्भ क्रिया
१० पारिग्रहिकी क्रिया	२२ पारिग्रहिकी क्रिया
११ मायाप्रत्यया क्रिया	२३ माया क्रिया
१२ मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया	१४ मिथ्यादर्शन क्रिया
१३ दृष्टिजा क्रिया	११ दर्शन क्रिया
१४ स्पृष्टिजा क्रिया	१२ स्पर्शन क्रिया
१५ प्रातीत्यिकी क्रिया	१३ प्रात्ययिकी क्रिया
१६ सामन्तोपनिपातिकी क्रिया	१८ समन्तानुपात क्रिया
१७ स्वाहस्तिकी क्रिया	१६ स्वहस्त क्रिया
१८ नैसृष्टिकी क्रिया	१७ निसर्ग क्रिया

१९ आज्ञापनिका क्रिया	१६ आज्ञाव्यापादिका क्रिया
२० वदारिणी क्रिया	१८ विदारण क्रिया
२१ अनवकाक्षाप्रत्यया क्रिया	२० अनावाक्षा क्रिया
२२ अनाभोगप्रत्यया क्रिया	१५ अनाभोग क्रिया
२३ प्रेय प्रत्यया क्रिया	४ समादान क्रिया
२४ द्वेषप्रत्यया क्रिया	३ प्रयोग क्रिया
२५ × × ×	५ ईर्यापथ क्रिया

तत्वार्थसूत्रगत क्रियाओं के आगे जो अक दिये गये है वे उसके भाष्य और सर्वार्थसिद्धि के पाठ के अनुसार जानना चाहिए।

तत्वार्थसूत्रगत पाठ के अन्त म दी गई ईर्यापथ क्रिया का नाम जैन विश्वभारती के उक्त सस्करण की तालिका मे नही है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि यत अजीव क्रिया के दो भेद *स्थानाङ्गसूत्र मे कह गये हैं—साम्परायिक क्रिया और ईर्यापथ क्रिया। अत उन्ह* जीव क्रियाओ मे गिनाना उचित न समझा गया हो और इसी कारण साम्परायिक क्रिया को भी उसमे नही गिनाया गया हो? पर तत्वार्थसूत्र के भाष्य और अन्य सर्वार्थसिद्धि आदि टीकाओ मे उसे क्यो नही गिनाया गया है? यह प्रश्न फिर भी उपस्थित होता है। किन्तु तत्त्वार्थसूत्र के अध्येताओं से यह अविदित नही है कि वहाँ पर आस्रव के मूल मे उक्त दो भेद किये गये है। उनमे से साम्परायिक के ३९ भेदा मे २५ क्रियाएँ *परिगणित हैं। सम्पराय नाम कषाय का है।* तथा कषाय के ४ भेद भी उक्त ३९ क्रियाओ म परिगणित है। ऐसी स्थिति मे 'साम्परायिक आस्रव' की क्या विशेषता रह जाती है? इसका उत्तर यह है कि कषायो के ४ भेदो मे क्रोध, मान, माया और लोभ ही गिने गये ह और प्रत्येक कषाय के उदय मे तदनुसार कर्मों का आस्रव होता है। किन्तु साम्परायिक आस्रव का क्षेत्र विस्तृत है। उसमे कषायो के सिवाय हास्यादि नोकषाय, पाँचो इन्द्रियो की विषयप्रवृत्ति और हिंसादि पाचो पापो की परिणतिया भी अन्तगत हैं। यही कारण है कि साम्परायिक आस्रव के भेदो मे साम्परायिक क्रिया को नही गिनाया गया है।

ईर्यापथ क्रिया के विषय मे कुछ स्पष्टीकरण आवश्यक है।

प्रश्न—तत्त्वार्थसूत्र मे सकषाय जीवो को साम्परायिक आस्रव और अकषाय जीवा को ईर्यापथ आस्रव बताया गया है फिर भी ईर्यापथ क्रिया को साम्परायिक-आस्रव के भेदो मे क्यो परिगणित किया गया?

उत्तर—ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवे गुणस्थान म अकषाय जीवो को होने वाला आस्रव ईर्यापथ क्रिया से विवक्षित नही है। किन्तु गमनागमन रूप क्रिया से होने वाला आस्रव ईर्यापथ *क्रिया से अभीष्ट है। गमनागमन रूप चर्या मे सावधानी रखने को ईर्यासमिति कहते ह।* यह चलने रूप क्रिया है ही। अत इसे साम्परायिक आस्रव के भेदो मे गिना गया है।

कषाय-रहित वीतरागी ग्यारहवें, बारहवें और तेरहव गुणस्थानवर्ती जीवो के योग का सद्भाव पाये जाने से होने वाले क्षणिक सातावेदनीय के आस्रव को ईर्यापथ आस्रव कहते हैं। उसकी साम्परायिक आस्रव मे परिगणना नहीं की गई है।

ऊपर दिये गये स्थानाङ्ग और तत्त्वार्थसूत्र सम्बन्धी क्रियाओं के नामों में अधिकांशत समानता होने पर भी किसी किसी क्रिया के अर्थ मे भेद पाया जाता है। किसी-किसी क्रिया के प्राकृत नामका संस्कृत रूपान्तर भी भिन्न पाया जाता है। जैसे—'दिट्ठिया' क्रिया के अभयदेव सूरि ने 'दृष्टिजा' और 'दृष्टिका' ये संस्कृत रूप बता कर उनके अर्थ मे कुछ अन्तर किया है। इसी प्रकार 'पुट्ठिया' इस प्राकृत नामका 'पृष्टिजा, पृष्टिका, स्पृष्टिजा और स्पृष्टिका' ये चार संस्कृत रूप बताकर उनके अर्थ मे कुछ विभिन्नता बतायी है। पर हमने तत्त्वार्थसूत्रगत पाठ को सामने रख कर उनका अर्थ किया है जो स्थानाङ्गटीका से भी असगत नही है। वहाँ पर 'दिट्ठिया' के स्थान पर 'दर्शन क्रिया' और 'पुट्ठिया' के स्थान पर 'स्पर्शन क्रिया' का नामोल्लेख है।

सामन्तोपनिपातिकी क्रिया का अर्थ स्थानाङ्ग की टीका मे, तथा तत्त्वार्थसूत्र की टीकाओं मे बिलकुल भिन्न-भिन्न पाया जाता है। स्थानाङ्गटीका के अनुसार इसका अर्थ—जन-समुदाय के मिलन से होने वाली क्रिया है और तत्त्वार्थसूत्र की टीकाओं के अनुसार इसका अर्थ—पुरुष, स्त्री और पशु आदि से व्याप्त स्थान मे मल मूलादि का त्याग करना है। हरिभद्रसूरि ने इसका अर्थ—स्थण्डिल आदि मे भक्त आदि का विसर्जन करना किया है।

स्थानाङ्गसूत्र का 'णेसत्थिया' प्राकृत पाठ मान कर संस्कृत रूप 'नैसृष्टिकी' दिया और तत्त्वार्थसूत्र के टीकाकारो ने 'णेसग्गिया' पाठ मानकर 'निसर्ग क्रिया' यह संस्कृत रूप दिया है। पर वस्तुत दोनो के अर्थ मे कोई भेद नही है।

प्राकृत 'आणवणिया' का संस्कृत रूप 'आज्ञापनिका' मानकर आज्ञा देना और 'आनयनिका' मानकर 'मगवाना' ऐसे दो अर्थ किये है। किन्तु तत्त्वार्थसूत्र के टीकाकारो ने 'आज्ञाव्यापादिका' संस्कृत रूप मान कर उसका अर्थ—'शास्त्रीय आज्ञा का अन्यथा निरूपण करना' किया है।

इसी प्रकार कुछ और भी क्रियाओं के अर्थों मे कुछ न कुछ भेद दृष्टिगोचर होता है, जिससे ज्ञात होता है कि क्रियाओ के मूल प्राकृत नामो के दो पाठ रहे हैं और तदनुसार उनके अर्थ भी भिन्न-भिन्न किये गये है। जिनमे से एक परम्परा स्थानाङ्ग सूत्र के व्याख्याकारो की और दूसरी परम्परा तत्त्वार्थसूत्र से टीकाकारो की ज्ञात होती है। विशेष जिज्ञासुओं को दोनो की टीकाओ का अवलोकन करना चाहिए।

गर्हा पद

३८—दुविहा गरिहा पण्णत्ता, त जहा—मणसा वेगे गरहति, वयसा वेगे गरहति। अहवा—गरहा दुविहा पण्णत्ता, त जहा—दीह वेगे श्रद्ध गरहति, रहस्स वेगे श्रद्ध गरहति।

गर्हा दो प्रकार की कही गई है—कुछ लोग मन मे गर्हा (अपने पाप की निन्दा) करते हैं (वचन से नही) और कुछ लोग वचन से गर्हा करते हैं (मन मे नही)। अथवा इस सूत्र का यह आशय भी निकलता है कि कोई न केवल मन मे अपितु वचन से भी गर्हा करते हैं और कोई न केवल वचन से किन्तु मन से भी गर्हा करते हैं। गर्हा दो प्रकार की कही गई है—कुछ लोग दीर्घकाल तक गर्हा करते हैं और कुछ लोग अल्प काल तक गर्हा करते हैं (३८)।

प्रत्याख्यान पद

३९—दुविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, त जहा—मणसा वेगे पच्चक्खाति, वयसा वेगे पच्चक्खाति।

अहवा—पच्चक्खाणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—दीह वेगे अद्ध पच्चक्खाति, रहस्स वेगे अद्ध पच्चक्खाति ।

प्रत्याख्यान दो प्रकार का कहा गया है—कुछ लोग मन से प्रत्याख्यान (अशुभ काय का त्याग) करते हैं और कुछ लोग वचन से प्रत्याख्यान करते हैं। अथवा प्रत्याख्यान दो प्रकार का कहा गया है—कुछ लोग दीर्घकाल तक प्रत्याख्यान करते है और कुछ लोग अल्पकाल तक प्रत्याख्यान करते हैं (३६)। व्याख्या गर्हा के समान समझना चाहिए।

विद्या चरण पद

४०—दोहिं ठाणेहिं सपण्णे अणगारे अणादीय अणवयग्ग दीहमद्ध चाउरत ससारकतार वीतिवएज्जा, त जहा—विज्जाए चेव चरणेण चेव ।

विद्या (ज्ञान) और चरण (चारित्र) इन दोनो स्थाना से सम्पन्न अनगार (साधु) अनादि-अनन्त दीर्घ मार्ग वाले एव चतुर्गतिरूप विभागवाले ससार रूपी गहन वन को पार करता है, अर्थात् मुक्त होता है (४०)।

आरम्भ परिग्रह अपरित्याग पद

४१—दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया णो केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्ज सवणयाए, त जहा—आरभे चेव, परिग्गहे चेव । ४२—दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया णो केवल बोधि बुज्झेज्जा, त जहा—आरभे चेव, परिग्गहे चेव । ४३—दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया णो केवल मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइज्जा, त जहा—आरभे चेव, परिग्गहे चेव । ४४—दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया णो केवल बमचेरवासमावसेज्जा, त जहा—आरभे चेव, परिग्गहे चेव । ४५—दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया णो केवलेण सजमेण सजमेज्जा, त जहा—आरभे चेव, परिग्गहे चेव । ४६—दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया णो केवलेण सवरेण सवरेज्जा, त जहा—आरभे चेव, परिग्गहे चेव । ४७—दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया णो केवलमाभिणिवोहियणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—आरभे चेव, परिग्गहे चेव । ४८—दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया णो केवल सुयणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—आरभे चेव, परिग्गहे चेव । ४९—दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया णो केवल ओहिणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—आरभे चेव, परिग्गहे चेव । ५०—दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया णो केवल मणपज्जवणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—आरभे चेव परिग्गहे चेव । ५१—दो ठाणाइ अपरियाणेत्ता आया णो केवल केवलणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—आरभे चेव, परिग्गहे चेव ।

आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को ज्ञपरिज्ञा से जाने और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से छोडे विना आत्मा केवलि प्रज्ञप्त धर्म को नही सुन पाता (४१)। आरम्भ और परिग्रह इन दो स्थाना को जाने और छोडे विना आत्मा विशुद्ध बोधिका अनुभव नही कर पाता (४२)। आरम्भ और परिग्रह-इन दो स्थानो को जाने और छोडे विना आत्मा मुण्डित होकर घर से (ममता मोह छोड कर) अनगारिता (साधुत्व) को नहीं पाता (४३)। आरम्भ और परिग्रह-इन दो स्थाना को जाने और छोडे विना आत्मा सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यवास को प्राप्त नही होता (४४)। आरम्भ और परिग्रह इन दो

स्थानो को जाने और छोडे बिना आत्मा सम्पूर्ण सयम से सयुक्त नही होता (४५)। आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जाने और छोडे बिना आत्मा सम्पूर्ण सवर से सवृत नही होता (४६)। आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जाने और छोडे बिना आत्मा विशुद्ध आभिनिबोधिक ज्ञान को उत्पन्न अर्थात् प्राप्त नही कर पाता (४७)। आरम्भ और परिग्रह-इन दो स्थानो को जाने और छोडे बिना आत्मा विशुद्ध श्रुतज्ञान को उत्पन्न नही कर पाता (४८)। आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जाने और छोडे बिना आत्मा विशुद्ध अवधिज्ञान को उत्पन्न नही कर पाता (४९)। आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जाने और छोडे बिना आत्मा विशुद्ध मन पर्यवज्ञान को उत्पन्न नही कर पाता (५०)। आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जाने और छोडे बिना आत्मा विशुद्ध केवलज्ञान को उत्पन्न नही कर पाता (५१)।

आरम्भ परिग्रह परित्याग पद

५२—दो ठाणाइ परियाणेत्ता आया केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्ज सवणयाए, त जहा—आरभे चेव, परिग्गहे चेव। ५३—दो ठाणाइ परियाणेत्ता आया केवल बोधि बुज्झेज्जा, त जहा—आरभे चेव, परिग्गहे चेव। ५४—दो ठाणाइ परियाणेत्ता आया केवल मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइज्जा, त जहा—आरभे चेव, परिग्गहे चेव। ५५—दो ठाणाइ परियाणेत्ता आया केवल बभचेरवासमावसेज्जा, त जहा—आरभे चेव, परिग्गहे चेव। ५६—दो ठाणाइ परियाणेत्ता आया केवलेण सजमेण सजमेज्जा, त जहा—आरभे चेव, परिग्गहे चेव। ५७—दो ठाणाइ परियाणेत्ता आया केवलेण सवरेण सवरेज्जा, त जहा—आरभे चेव, परिग्गहे चेव। ५८—दो ठाणाइ परियाणेत्ता आया केवलमाभिणिबोहियणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—आरभे चेव, परिग्गहे चेव। ५९—दो ठाणाइ परियाणेत्ता आया केवल सुयणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—आरभे चेव, परिग्गहे चेव। ६०—दो ठाणाइ परियाणेत्ता आया केवल ओहिणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—आरभे चेव, परिग्गहे चेव। ६१—दो ठाणाइ परियाणेत्ता आया केवल मणपज्जवणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—आरभे चेव, परिग्गहे चेव। ६२—दो ठाणाइ परियाणेत्ता आया केवल केवलणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—आरभे चेव, परिग्गहे चेव।

आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को ज्ञपरिज्ञा से जानकर और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्यागकर आत्मा केवलि-प्रज्ञप्त धर्म को सुन पाता है (५२)। आरम्भ और परिग्रह-इन दो स्थानो को जानकर और त्यागकर आत्मा विशुद्धबोधि का अनुभव करता है (५३)। आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और त्याग कर आत्मा मुण्डित होकर और गृहवास का त्याग कर सम्पूर्ण अनगारिता को पाता है (५४)। आरम्भ और परिग्रह इन दो स्थानो को जानकर और त्याग कर आत्मा सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यवास को प्राप्त करता है (५५)। आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और त्याग कर आत्मा सम्पूर्ण सयम से सयुक्त होता है (५६) आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और त्यागकर आत्मा सम्पूर्ण सवर से सवृत होता है (५७) आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और त्याग कर आत्मा विशुद्ध आभिनिबोधिक ज्ञान को उत्पन्न (प्राप्त) करता है (५८)। आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और त्याग कर आत्मा विशुद्ध श्रुत ज्ञान को उत्पन्न करता है (५९)। आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और त्यागकर आत्मा विशुद्ध अवधिज्ञान को उत्पन्न करता है (६०)। आरम्भ और परिग्रह—इन

दो स्थानो को जानकर और त्यागकर आत्मा विशुद्ध मन पर्यवज्ञान को उत्पन्न करता है (६१)
आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानो को जानकर और त्यागकर आत्मा विशुद्ध केवलज्ञान को उत्पन्न करता है (६२)।

श्रवण समधिगमपद

६३—दोहिं ठाणेहिं आया केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्ज सवणयाए, त जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव। ६४—दोहिं ठाणेहिं आया केवल वोधि बुज्झेज्जा, त जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव। ६५—दोहिं ठाणेहिं आया केवल मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइज्जा, त जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव। ६६—दोहिं ठाणेहिं आया केवल बभचेरवासमावसेज्जा, त जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव। ६७—दोहिं ठाणेहिं आया केवल सजमेण सजमेज्जा, त जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव। ६८—दोहिं ठाणेहिं आया केवल सवरेण सवरेज्जा, त जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव। ६९—दोहिं ठाणेहिं आया केवलमाभिणिबोहियणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव। ७०—दोहिं ठाणेहिं आया केवल सुयणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव। ७१—दोहिं ठाणेहिं आया केवल ओहिणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव। ७२—दोहिं ठाणेहिं आया केवल मणपज्जवणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव। ७३—दोहिं ठाणेहिं आया केवल केवलणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।

धम की उपादेयता सुनने और उसे जानने, इन दो स्थाना (कारणो) से आत्मा केवलि-प्रज्ञप्त धम को सुन पाता है (६३)। सुनने और जानने—इन दो स्थानो से आत्मा विशुद्ध वोधि का अनुभव करता है (६४)। सुनने और जानने—इन दो स्थानो से आत्मा मुण्डित होकर और घर का त्याग कर सम्पूण अनगारिता को पाता है (६५)। सुनने और जानने—इन दो स्थानो से आत्मा सम्पूण ब्रह्मचय-वास को प्राप्त करता है (६६)। सुनने और जानने—इन दो स्थानो से आत्मा सम्पूण सयम से सयुक्त होता है (६७)। सुनने और जानने—इन दो स्थानो से आत्मा सम्पूण सवर से सवृत होता है (६८)। सुनने और जानने—इन दो स्थानो से आत्मा विशुद्ध आभिनिबोधिक ज्ञान को उत्पन्न करता है (६९)। सुनने और जानने—इन दो स्थानो से आत्मा विशुद्ध श्रुतज्ञान को उत्पन्न करता है (७०)। सुनने और जानने—इन दो स्थानो से आत्मा विशुद्ध अवधिज्ञान को उत्पन्न करता है (७१)। सुनने और जानने-इन दो स्थानो से आत्मा विशुद्ध मन पयवज्ञान को उत्पन्न करता है (७२)। सुनने और जानने—इन दो स्थानो से आत्मा विशुद्ध केवलज्ञान को उत्पन्न करता है (७३)।

समा (काल चक्र) पद

७४ - दो समाओ पण्णत्ताओ, त जहा—ओसप्पिणी समा चेव, उस्सप्पिणी समा चेव।

दो समा कही गई हैं—अवसर्पिणी समा—इसमे वस्तुओ के रूप, रस, गन्ध आदि का एव जीवो की आयु, बल, बुद्धि, सुख आदि का क्रम से ह्रास होता है। उत्सर्पिणी समा—इसमे वस्तुओ के रूप, रस, गन्ध आदि का एव जीवो की आयु, बल, बुद्धि, सुख आदि का क्रम से विकास होता है (७४)।

उन्माद पद

७५—दुविहे उम्माए पण्णत्ते, त जहा—जक्खाएसे चेव, मोहणिज्जस्स चेव कम्मस्स उदएण ।

तत्थ ण जे से जक्खाएसे, से ण सुहवेयतराए चेव, सुहविमोयतराए चेव । तत्थ ण जे से मोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएण, से ण दुहवेयतराए चेव, दुहविमोयतराए चेव ।

उन्माद अर्थात् बुद्धिभ्रम या बुद्धि की विपरीतता दो प्रकार की कही गई है—यक्षावेश से (यक्ष के शरीर मे प्रविष्ट होने से) और मोहनीय कर्म के उदय से । इनमे जो यक्षावेश जनित उन्माद है, वह मोहनीय कर्म जनित उन्माद की अपेक्षा सुख से भोगा जाने वाला और सुख से छूट सकने वाला होता है । किन्तु जो मोहनीय-कर्म-जनित उन्माद है, वह यक्षावेश जनित उन्माद की अपेक्षा दुःख से भोगा जाने वाला और दुःख से छूटने वाला होता है (७५) ।

दण्ड-पद

७६—दो दडा पण्णत्ता, त जहा—अट्ठादडे चेव, अणट्ठादडे चेव । ७७—णेरइयाण दो दडा पण्णत्ता, त जहा—अट्ठादडे य, अणट्ठादडे य । ७८—एव—चउवीसादडओ जाव वेमाणियाण ।

दर्शन पद

दण्ड दो प्रकार का कहा गया है—अर्थदण्ड सप्रयोजन (प्राणातिपातादि) और अनर्थदण्ड (निष्प्रयोजन प्राणातिपातादि) (७६) । नारकियो मे दोनो प्रकार के दण्ड कहे गये हैं—अर्थदण्ड और अनर्थदण्ड (७७) । इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डकों मे दो-दो दण्ड जानना चाहिए (७८) ।

७९—दुविहे दसणे पण्णत्ते, त जहा—सम्मद्दसणे चेव, मिच्छादसणे चेव । ८०—सम्मद्दसणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—णिसग्गसम्मद्दसणे चेव, अभिगमसम्मद्दसणे चेव । ८१—णिसग्गसम्मद्दसणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—पडिवाइ चेव, अपडिवाइ चेव । ८२—अभिगमसम्मद्दसणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—पडिवाइ चेव, अपडिवाइ चेव । ८३—मिच्छादसणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—अभिग्गहिय मिच्छादसणे चेव, अणभिग्गहियमिच्छादसणे चेव । ८४—अभिग्गहियमिच्छादसणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सपज्जवसिते चेव, अपज्जवसिते चेव । ८५—[अणभिग्गहियमिच्छादसणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सपज्जवसिते चेव, अपज्जवसिते चेव] ।

दर्शन (श्रद्धा या रुचि) दो प्रकार का कहा गया है—सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन (७९) । सम्यग्दर्शन दो प्रकार का कहा गया है—निसर्गसम्यग्दर्शन (अन्तरग मे दर्शनमोह का उपशमादि होने पर किसी बाह्य निमित्त के बिना स्वत स्वभाव से उत्पन्न होने वाला) और अधिगम सम्यग्दर्शन (अन्तरग मे दर्शनमोह का उपशमादि होने और बाह्य मे गुरु-उपदेश आदि के निमित्त से उत्पन्न होने वाला) (८०) । निसर्ग सम्यग्दर्शन दो प्रकार का कहा गया है—प्रतिपाती (नष्ट हो जाने वाला औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन) और अप्रतिपाती (नहीं नष्ट होने वाला क्षायिकसम्यक्त्व (८१) । अधिगम-सम्यग्दर्शन भी दो प्रकार का कहा गया है—प्रतिपाती और अप्रतिपाती (८२) । मिथ्यादर्शन दो प्रकार का कहा गया है—आभिग्रहिक (इस भव मे ग्रहण किया गया मिथ्यात्व) और

अनाभिग्रहिक (पूर्व भवों से आने वाला मिथ्यात्व) (८३)। आभिग्रहिक मिथ्यादर्शन दो प्रकार का कहा गया है—सपर्यवसित (सान्त) और अपर्यवसित (अनन्त) (८४)। अनाभिग्रहिक मिथ्यादर्शन दो प्रकार का कहा गया है—सपर्यवसित और अपर्यवसित (८५)।

विवेचन—यहाँ इतना विशेष ज्ञातव्य है कि भव्य का दोनों प्रकार का मिथ्यादर्शन सान्त होता है, क्योंकि वह सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर छूट जाता है। किन्तु अभव्य का अनन्त है, क्योंकि वह कभी नहीं छूटता है।

ज्ञान पद

८६—दुविहे णाणे पण्णत्ते, तं जहा—पच्चक्खे चेव, परोक्खे चेव। ८७—पच्चक्खे णाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—केवलणाणे चेव, णोकेवलणाणे चेव। ८८—केवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—भवत्थकेवलणाणे चेव, सिद्धकेवलणाणे चेव। ८९—भवत्थकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव, अजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव। ९०—सजोगिभवत्थकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पढमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव, अपढमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव। अहवा—चरिमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव, अचरिमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव। ९१—[अजोगिभवत्थकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पढमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव, अपढमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव। अहवा—चरिमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव, अचरिमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव]। ९२—सिद्धकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अणंतरसिद्धकेवलणाणे चेव, परंपरसिद्धकेवलणाणे चेव। ९३—अणंतरसिद्धकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—एक्काणंतरसिद्धकेवलणाणे चेव, अणेक्काणंतरसिद्धकेवलणाणे चेव। ९४—परंपरसिद्ध केवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—एक्कपरंपरसिद्धकेवलणाणे चेव, अणेक्कपरंपरसिद्धकेवलणाणे चेव।

ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—प्रत्यक्ष-(इन्द्रियादि की सहायता के बिना पदार्थों को जानने वाला ज्ञान)। तथा परोक्ष (इन्द्रियादि की सहायता से पदार्थों को जानने वाला ज्ञान) (८६)। प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—केवलज्ञान और नोकेवलज्ञान (केवलज्ञान से भिन्न) (८७)। केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—भवस्थ केवलज्ञान (मनुष्य भव में स्थित अरिहंतों का ज्ञान) और सिद्ध केवलज्ञान (मुक्तात्माओं का ज्ञान) (८८)। भवस्थ केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—सयोगिभवस्थ केवलज्ञान (तेरहवें गुणस्थानवर्ती अरिहंतों का ज्ञान) और अयोगिभवस्थ केवलज्ञान (चौदहवें गुणस्थानवर्ती अरिहंतों का ज्ञान) (८९)। सयोगिभवस्थ केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—प्रथम समयसयोगि-भवस्थ केवलज्ञान और अप्रथम समयसयोगि भवस्थ केवलज्ञान। अथवा—चरम समय सयोगिभवस्थ केवलज्ञान और अचरम समय भवस्थ केवलज्ञान (९०)। अयोगि-भवस्थ केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—प्रथम समय अयोगिभवस्थ केवलज्ञान और अप्रथम समय अयोगिभवस्थ केवलज्ञान। अथवा चरमसमय अयोगिभवस्थ केवलज्ञान और अचरम समय अयोगिभवस्थ केवलज्ञान (९१)। सिद्ध केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—अनन्तरसिद्ध केवलज्ञान (प्रथम समय के मुक्त सिद्धों का ज्ञान) और परम्परसिद्ध केवलज्ञान (जिन्हें सिद्ध हुए एक समय से अधिक काल हो चुका है ऐसे सिद्ध जीवों का ज्ञान) (९२)। अनन्तरसिद्ध केवलज्ञान दो प्रकार का कहा

गया है–एक अनन्तर सिद्ध का केवलज्ञान और अनेक अनन्तर सिद्धों का केवलज्ञान (९३)। परम्पर-सिद्ध केवलज्ञान भी दो प्रकार का कहा गया है—एक परम्पर सिद्ध का केवलज्ञान और अनेक परम्पर सिद्धा का केवलज्ञान (९४)।

९५—णोकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—ओहिणाणे चेव, मणपज्जवणाणे चेव। ९६—ओहिणाणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—भवपच्चइए चेव, खओवसमिए चेव। ९७—दोण्ह भवपच्चइए पण्णत्ते, त जहा—देवाण चेव, णेरइयाण चेव। ९८—दोण्ह खओवसमिए पण्णत्ते, त जहा—मणुस्साण चेव, पचिदियतिरिक्खजोणियाण चेव। ९९—मणपज्जवणाणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—उज्जुमती चेव, विउलमती चेव।

नोकेवलप्रत्यक्षज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—अवधिज्ञान और मन पर्यवज्ञान (९५)। अवधिज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—भवप्रत्ययिक (जन्म के साथ उत्पन्न होने वाला) और क्षायोपशमिक (अवधिज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम से तपस्या आदि गुणा के निमित्त से उत्पन्न होने वाला) (९६)। दो गति के जीवो को भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान कहा गया है—देवताओं को और नारकिया को (९७) दो गति के जीवो को क्षायोपशमिक अवधिज्ञान कहा गया है—मनुष्यों को और पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकों को (९८)। मन पर्यवज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—ऋजुमति (मानसिक चिन्तन के पुद्गलों को सामान्य रूप से जानने वाला) मन पर्यवज्ञान। तथा विपुलमति (मानसिक चिन्तन के पुद्गला की नाना पर्याया को विशेष रूप से जानने वाला) मन पर्यवज्ञान (९९)।

१००—परोक्खे णाणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—आभिणिबोहियणाणे चेव, सुयणाणे चेव। १०१—आभिणिबोहियणाणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सुयणिस्सिए चेव, असुयणिस्सिए चेव। १०२—सुयणिस्सिए दुविहे पण्णत्ते, त जहा—अत्थोग्गहे चेव, वजणोग्गहे चेव। १०३—असुयणिस्सिए दुविहे पण्णत्ते, त जहा—अत्थोग्गहे चेव, वजणोग्गहे चेव। १०४—सुयणाणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—अगपविट्ठे चेव अगबाहिरे चेव। १०५—अगबाहिरे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—आवस्सए चेव, आवस्सयवतिरित्ते चेव। १०६—आवस्सयवतिरित्ते दुविहे पण्णत्ते त जहा—कालिए चेव उक्कालिए चेव।

परोक्षज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान (१००)। आभिनिबोधिक ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—श्रुतनिश्रित और अश्रुतनिश्रित (१०१)। श्रुत-निश्रित दो प्रकार का कहा गया है—अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह (१०२)। अश्रुतनिश्रित दो प्रकार का कहा गया है—अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह (१०३)। श्रुतज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—अगप्रविष्ट और अगबाह्य (१०४)। अगबाह्य श्रुतज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—आवश्यक और आवश्यकव्यतिरिक्त (१०५)। आवश्यकव्यतिरिक्त दो प्रकार का कहा गया है—कालिक (दिन और रात के प्रथम और अन्तिम प्रहर मे पढा जाने वाला) श्रुत। और उत्कालिक (अकाल के सिवाय सभी प्रहरा मे पढा जाने वाला) श्रुत (१०६)।

विवेचन—वस्तुस्वरूप को जानने वाले आत्मिक गुण को ज्ञान कहते हैं। ज्ञान के पाच भेद कहे गये हैं—आभिनिबोधिक या मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवल-ज्ञान। इन्द्रिय और मन के द्वारा होने वाले ज्ञान को आभिनिबोधिक या मतिज्ञान कहते हैं। मतिज्ञान-

पूवक शब्द के आधार से होने वाले ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। इन्द्रिय और मन की सहायता के विना ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशमविशेष से उत्पन्न होने वाला और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा से सीमित, भूत भविष्यत और वर्तमानकालवर्ती रूपी पदार्थों को जानने वाला ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है। इन्द्रियादि की सहायता के विना ज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशमविशेष से उत्पन्न हुए एव दूसरो के मन सबधी पर्यायो को प्रत्यक्ष जानने वाले ज्ञान को मन पर्यय या मन पर्यव ज्ञान कहते हैं। ज्ञानावरणकर्म का सर्वथा क्षय हो जाने से त्रिलोक और त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्यो को और उनके गुण-पर्यायो को जानने वाले ज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं।

उक्त पाचो ज्ञानो का इस द्वितीय स्थानक मे उत्तरोत्तर दो-दो भेद करते हुए निरूपण किया गया है। प्रस्तुत ज्ञानपद मे ज्ञान के दो भेद कहे गये हैं—प्रत्यक्षज्ञान और परोक्षज्ञान। पुन प्रत्यक्ष ज्ञान के दो भेद कहे गये हैं—केवलज्ञान और नोकेवलज्ञान। पुन केवल ज्ञान के भी भवस्थ केवल-ज्ञान और सिद्ध केवलज्ञान आदि भेद कर उत्तरोत्तर दो दो के रूप मे अनेक भेद कहे गये हैं। तत्पश्चात् नोकेवलज्ञान के दो भेद कहे गये हैं—अवधिज्ञान और मन पर्यवज्ञान। पुन इन दोनो ज्ञानो के भी दो-दो के रूप मे अनेक भेद कहे गये हैं, जिनका स्वरूप ऊपर दिया जा चुका है।

इसी प्रकार परोक्षज्ञान के भी दो भेद कहे गये हैं—आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान। पुन आभिनिबोधिक ज्ञान के भी दो भेद कहे गये हैं—श्रुतनिश्रित और अश्रुतनिश्रित। श्रुत शास्त्र को कहते हैं। जो वस्तु पहिले शास्त्र के द्वारा जानी गई है, पीछे किसी समय शास्त्र के आलम्बन विना ही उसके संस्कार के आधार से उसे जानना श्रुतनिश्रित आभिनिबोधिक ज्ञान है। जैसे किसी व्यक्ति ने आयुर्वेद को पढते समय यह जाना कि त्रिफला के सेवन से कब्ज दूर होती है। अब जब कभी उसे कब्ज होती है, तब उसे त्रिफला के सेवन की बात सूझ जाती है। उसका यह ज्ञान श्रुत-निश्रित आभिनिबोधिक ज्ञान है। जो विषय शास्त्र के पढने मे नही, किन्तु अपनी सहज विलक्षण बुद्धि के द्वारा जाना जाय, उसे अश्रुतनिश्रित आभिनिबोधिकज्ञान कहते हैं।

श्रुत निश्रित आभिनिबोधिक ज्ञान के दो भेद कहे गये हैं—अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह। अर्थ नाम वस्तु या द्रव्य का है। किसी भी वस्तु के नाम, जाति आदि के विना अस्तित्व मात्र का बोध होना अर्थावग्रह कहलाता है। अर्थावग्रह से पूर्व असख्यात समय तक जो अव्यक्त किंचित् ज्ञान मात्रा होती है उसे व्यञ्जनावग्रह कहते है। द्विस्थानक के अनुरोध से सूत्रकार ने उनके उत्तर भेदो को नही कहा है। नन्दीसूत्र के अनुसार मतिज्ञान के समस्त उत्तर भेद ३३६ होते हैं।

प्रस्तुत सूत्र मे अश्रुतनिश्रित आभिनिबोधिक ज्ञान के भी दो भेद कहे गये है—अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह। नन्दीसूत्र मे इसके चार भेद कहे हैं—औत्पत्तिकी बुद्धि, वैनयिकी बुद्धि, कार्मिक-बुद्धि और पारिणामिकी बुद्धि। ये चारो बुद्धिया भी अवग्रह आदि रूप मे उत्पन्न होती हैं। इनका विशेष वर्णन नन्दीसूत्र मे किया गया है।

परोक्ष ज्ञान का दूसरा भेद जो श्रुतज्ञान है, उसके मूल दो भेद कहे गये हैं—अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य। तीर्थकर की दिव्यध्वनि को सुनकर गणधर आचाराङ्ग आदि द्वादश अङ्गो की रचना करते हैं, उस श्रुत को अङ्गप्रविष्ट श्रुत कहते है। गणधरो के पश्चात् स्थविर आचार्यों के द्वारा रचित श्रुत को अङ्गबाह्य श्रुत कहते है। इस द्विस्थानक मे अङ्गबाह्य श्रुत के दो भेद कहे गये हैं—आवश्यक सूत्र और आवश्यक-व्यतिरिक्त (भिन्न)। आवश्यक-व्यतिरिक्त श्रुत के भी दो भेद

है--कालिक और उत्कालिक । दिन और रात के प्रथम और अन्तिम पहर मे पढे जाने वाले श्रुत को कालिक श्रुत कहते है । जैसे--उत्तराध्ययनादि । अकाल के सिवाय सभी पहरो मे पढे जाने वाले श्रुत को उत्कालिक श्रुत कहते हैं । जैसे दशवैकालिक आदि ।

धर्मपद

१०७—दुविहे धम्मे पण्णत्ते, त जहा—सुयधम्मे चेव, चरित्तधम्मे चेव । १०८—सुयधम्मे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सुत्तसुयधम्मे चेव, अत्थसुयधम्मे चेव । १०९—चरित्तधम्मे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—अगारचरित्तधम्मे चेव, अणगारचरित्तधम्मे चेव ।

धर्म दो प्रकार का कहा गया है—श्रुतधर्म (द्वादशाङ्गश्रुत का अभ्यास करना) और चारित्र-धर्म (सम्यक्त्व, व्रत, समिति आदि का आचरण) (१०७) । श्रुतधर्म दो प्रकार का कहा गया है—सूत्र श्रुतधर्म (मूल सूत्रो का अध्ययन करना) और अर्थ श्रुतधर्म (सूत्रो के अर्थ का अध्ययन करना (१०८) । चारित्रधर्म दो प्रकार का कहा गया है--अगारचारित्र धर्म (श्रावको का अणुव्रत आदि रूप धर्म) और अनगारचारित्र धर्म (साधुओ का महाव्रत आदि रूप धर्म) (१०९) ।

सयम पद

११०—दुविहे सजमे पण्णत्ते, त जहा—सरागसजमे चेव, वीतरागसजमे चेव । १११—सरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सुहुमसपरायसरागसजमे चेव, बादरसपरायसरागसजमे चेव । ११२—सुहुमसपरायसरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—पढमसमयसुहुमसपरायसरागसजमे चेव, अपढमसमयसुहुमसपरायसरागसजमे चेव । अहवा—चरिमसमयसुहुमसपरायसरागसजमे चेव, अचरिमसमयसुहुमसपरायसरागसजमे चेव । अहवा—सुहुमसपरायसरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सक्लिसमाणए चेव, विसुज्झमाणए चेव । ११३—बादरसपरायसरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—पढमसमयबादरसपरायसरागसजमे चेव, अपढमसमयबादरसपरायसरागसजमे चेव । अहवा—चरिमसमयबादरसपरायसरागसजमे चेव, अचरिमसमयबादरसपरायसरागसजमे चेव । अहवा—बादरसपरायसरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—पडिवातिए चेव, अपडिवातिए चेव ।

सयम दो प्रकार का कहा गया है--सरागसयम और वीतरागसयम (११०) । सरागसयम दो प्रकार का कहा गया है--सूक्ष्मसाम्पराय सरागसयम और बादरसाम्पराय सरागसयम (१११) । सूक्ष्म साम्पराय सरागसयम दो प्रकार का कहा गया है--प्रथमसमय-सूक्ष्मसाम्पराय सरागसयम और अप्रथमसमय-सूक्ष्मसाम्परायसरागसयम । अथवा—चरमसमय सूक्ष्मसाम्पराय सरागसयम और अचरम-समय सूक्ष्मसाम्पराय सरागसयम । अथवा—सूक्ष्मसाम्पराय सरागसयम दो प्रकार का कहा गया है--सक्लिश्यमान सूक्ष्मसाम्पराय सरागसयम (ग्यारहवें गुणस्थान से गिर कर दसवें गुणस्थानवर्ती साधु का सयम सक्लिश्यमान होता है) और विशुद्धयमान सूक्ष्म साम्परायसरागसयम (दसवें गुणस्थान से ऊपर चढने वाले का सयम विशुद्धयमान होता है) (११२) । बादरसाम्परायसरागसयम दो प्रकार का कहा गया है—प्रथमसमय बादरसाम्परायसरागसयम और अप्रथमसमय बादर साम्पराय सरागसयम । अथवा—चरमसमय बादरसाम्परायसरागसयम और अचरमसमयबादरसाम्पराय सरागसयम । अथवा—बादरसाम्पराय सरागसयम दो प्रकार का कहा गया है--प्रतिपाती बादर-

साम्परायसरागसयम (नवम गुणस्थान से नीचे गिरनेवाले का सयम) और अप्रतिपाती बादरसम्पराय सरागसयम (नवम गुणस्थान से ऊपर चढने वाले का सयम) (११३)।

११४—वीयरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा उवसतकसायवीयरागसजमे चेव, खीणकसायवीयरागसजमे चेव। ११५—उवसतकसायवीयरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—पढमसमयउवसतकसायवीयरागसजमे चेव, अपढमसमयउवसतकसायवीयरागसजमे चेव। अहवा—चरिमसमयउवसतकसायवीयरागसजमे चेव, अचरिमसमयउवसतकसायवीयरागसजमे चेव। ११६—खीणकसायवीयरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—छउमत्थखीणकसायवीयरागसजमे चेव, केवलिखीणकसायवीयरागसजमे चेव। ११७—छउमत्थखीणकसायवीयरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सयबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसजमे चेव, बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागसजमे चेव। ११८—सयबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—पढमसमयसयबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसजमे चेव, अपढमसमयसयबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसजमे चेव। अहवा—चरिमसमयसयबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसजमे चेव, अचरिमसमयसयबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसजमे चेव। ११९—बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—पढमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागसजमे चेव, अपढमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागसजम चेव। अहवा—चरिमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरागसजमे चेव, अचरिमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरागसजमे चेव।

वीतराग सयम दो प्रकार का कहा गया है—उपशान्तकषाय वीतरागसयम और क्षीणकषाय वीतरागसयम (११४)। उपशान्तकषाय वीतरागसयम दो प्रकार का कहा गया है—प्रथमसमय उपशान्तकषाय वीतरागसयम और अप्रथमसमय उपशान्तकषाय वीतरागसयम। अथवा-चरमसमय-उपशान्तकषाय वीतरागसयम और अचरमसमय उपशान्तकषाय वीतराग सयम (११५)। क्षीणकषाय वीतरागसयम दो प्रकार का कहा गया है—छद्मस्थक्षीणकषाय वीतरागसयम और केवलिक्षीणकषाय वीतरागसयम (११६)। छद्मस्थक्षीणकषाय वीतरागसयम दो प्रकार का होता है—स्वयबुद्ध छद्मस्थ क्षीणकषायवीतरागसयम और बुद्धबोधित छद्मस्थ क्षीणकषाय वीतरागसयम (११७)। स्वयबुद्ध छद्मस्थक्षीणकषाय वीतराग सयम दो प्रकार का कहा गया है—प्रथमसमय स्वयबुद्ध-छद्मस्थक्षीणकषाय वीतराग सयम और अप्रथमसमय स्वयबुद्ध-छद्मस्थक्षीणकषाय वीतराग सयम। अथवा—चरमसमय स्वय बुद्ध-छद्मस्थ क्षीणकषाय वीतराग सयम और अचरमसमय स्वयबुद्ध छद्मस्थक्षीणकषाय-वीतराग सयम (११८)। बुद्धबोधितछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसयम दो प्रकार का कहा गया है—प्रथमसमय बुद्धबोधित छद्मस्थ क्षीणकषायवीतरागसयम और अप्रथमसमय बुद्धबोधित छद्मस्थ क्षीणकषाय वीतराग सयम अथवा चरमसमय बुद्धबोधित छद्मस्थक्षीणकषायवीतराग सयम और अचरमसमय बुद्धबोधित छद्मस्थक्षीणकषाय वीतराग सयम (११९)।

१२०—केवलिखीणकसायवीयरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसजमे चेव, अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसजमे चेव। १२१—सजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—पढमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसजमे चेव, अपढमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसजमे चेव। अहवा—चरिमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीय-

रागसजमे चेव, अचरिमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसजमे चेव। १२२—अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसजमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—पढमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसजमे चेव, अपढमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसजमे चेव। अहवा—चरिमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसजमे चेव, अचरिमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसजमे चेव।

केवलि-क्षीणकपाय वीतरागसयम दो प्रकार का वहा है—सयोगिकेवलि-क्षीणकपाय वीतरागसयम और अयोगिकेवलि-क्षीणकपाय वीतराग सयम (१२०)। सयोगिकेवलि क्षीण-कपाय वीतराग सयम दो प्रकार का कहा गया है—प्रथम समय सयोगिकेवलि क्षीण कपाय वीतराग सयम और अप्रथम समय सयोगिकेवलि क्षीणकपाय वीतरागसयम। अथवा—चरमसमय सयोगिकेवलि क्षीणकपाय वीतरागसयम और अचरमसमय सयोगिकेवलि क्षीणकपाय वीतरागसयम (१२१)। अयोगिकेवलिक्षीणकपाय वीतरागसयम दो प्रकार का कहा गया है—प्रथम समय अयोगिकेवलि क्षीणकपाय वीतरागसयम और अप्रथम समय अयोगिकेवलि क्षीणकपायवीतरागसयम। अथवा—चरम समय अयोगिकेवलि क्षीणकपाय सयम और अचरम समय अयोगिकेवलिक्षीणकपाय वीतरागसयम (१२२)।

विवेचन—अहिंसादि पच महाव्रतो के धारण करने को, ईर्यादि पच समितियो के पालने को, कपायो का निग्रह करने को, मन, वचन, कायके वश मे रखने को और पाचो इन्द्रियो के विषय जीतने को सयम कहते हैं। आगम मे अन्यत्र सयम के सामायिक, छेदोपस्थापनादि पाच भेद कहे गये है, किन्तु प्रकृत मे द्विस्थानक के अनुरोध से उसके दो मूल भेद कहे हैं—सरागसयम और वीतराग सयम। दशवें गुणस्थान तक राग रहता है, अत वहा तक के सयम को सरागसयम और उससे ऊपर के गुणस्थानो मे राग के उदय या सत्ता का अभाव हो जाने से वीतरागसयम होता है। राग भी दो प्रकार का कहा गया है—सूक्ष्म और बादर (स्थूल)। दशवे गुणस्थान मे सूक्ष्मराग रहता है, अत वहाँ के सयम को सूक्ष्मसाम्परायसयम (सूक्ष्म कपाय वाले मुनि का सयम) और नवम गुणस्थान तक के सयम को बादरसाम्परायसयम (स्थूल कपायवान् मुनि का सयम) कहते हैं। नवम गुणस्थान के अतिम समय मे बादर राग का अभाव कर दशम गुणस्थान म प्रवेश करने वाले जीवो के प्रथम समय के सयम को प्रथमसमय-सूक्ष्मसाम्पराय सरागसयम कहते हैं और उसके सिवाय शेप समयवर्ती जीवो के सयम को अप्रथम समय सूक्ष्मसाम्परायसरागसयम कहते है। इसी प्रकार दशम गुणस्थान के अतिम समय के सयम को चरम और उससे पूर्ववर्ती सयम को अचरम सूक्ष्म साम्परायसरागसयम कहते हैं। आगे के सभी सूत्रो मे प्रतिपादित प्रथम और अप्रथम, तथा चरम और अचरम का भी इसी प्रकार अर्थ जानना चाहिए।

कपायो का अभाव दो प्रकार से होता है—उपशम से और क्षय से। जब कोई जीव कपायो का उपशम कर ग्यारहवे गुणस्थान मे प्रवेश करता है, तब उसके प्रथम समय के सयम को प्रथम समय उपशान्त कपाय वीतरागसयम और शेप समयो के सयम को अप्रथम समय उपशान्त कपाय वीतराग सयम कहते हैं। इसी प्रकार चरम अचरम समय का अर्थ जान लेना चाहिए।

कपायो का क्षय करके बारहवें गुणस्थान मे प्रवेश करने के प्रथम समय मे और शेप समयो, तथा चरम समय और उससे पूर्ववर्ती अचरम समयवाले वीतराग छद्मस्थजीवो के वीतराग सयम को जानना चाहिए।

ऊपर श्रेणी चढने वाले जीव के सयम को विशुद्धयमान और उपशम श्रेणी करके नीचे गिरने वाले के सयम को सक्लिश्यमान कहते हैं। उनके भी प्रथम और अप्रथम तथा चरम और अचरम का उक्त प्रकार से जानना चाहिए।

सयोगि-अयोगि केवली के प्रथम-अप्रथम एव चरम अचरम समयो की भावना भी इसी प्रकार करनी चाहिए।

जीव निकाय-पद

१२३—दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, त जहा—सुहुमा चेव, बायरा चेव। १२४—दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, त जहा—सुहुमा चेव, बायरा चेव। १२५—दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, त जहा—सुहुमा चेव, बायरा चेव। १२६—दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, त जहा—सुहुमा चेव बायरा चेव। १२७—दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, त जहा—सुहुमा चेव, बायरा चेव। १२८—दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव। १२९—दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव। १३०—दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव। १३१—दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव। १३२—दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव। १३३—दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, त जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव। १३४—दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, त जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव। १३५—दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, त जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव। १३६—दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, त जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव। १३७—दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, त जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव।

पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—सूक्ष्म और बादर (१२३)। अप्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—सूक्ष्म और बादर (१२४)। तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये है—सूक्ष्म और बादर (१२५)। वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—सूक्ष्म और बादर (१२६)। वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—सूक्ष्म और बादर (१२७)।

पुन पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक (१२८)। अप्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक (१२९)। तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक (१३०)। वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये है—पर्याप्तक और अपर्याप्तक (१३१)। वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं— पर्याप्तक और अपर्याप्तक (१३२)।

पुन पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—परिणत (बाह्य शस्त्रादि कारणो से जो अन्य रूप हो गया-अचित्त हो गया है)। और अपरिणत (जो ज्यो का त्यो सचित्त है) (१३३)। अप्कायिक जीव दो प्रकार के कहे हैं—परिणत और अपरिणत (१३४)। तेजस्कायिक जीव दा प्रकार के कहे गये है—परिणत और अपरिणत (१३५)। वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—परिणत और अपरिणत (१३६)। वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—परिणत और अपरिणत (१३७)।

विवेचन—यहा सूक्ष्म और बादर का अर्थ छोटा या मोटा अभीष्ट नही है, किन्तु जिनके सूक्ष्म नामकर्म का उदय हो उन्हे सूक्ष्म और जिनके बादर नामकर्म का उदय हो उन्हे बादर जानना चाहिए। बादरजीव भूमि, वनस्पति आदि के आधार से रहते है किन्तु सूक्ष्म जीव निराधार और सारे लोक मे व्याप्त हैं। सूक्ष्म जीवो के शरीर का आघात-प्रतिघात और ग्रहण नही होता। किन्तु स्थूल जीवो के शरीर का आघात, प्रतिघात और ग्रहण होता है।

प्रत्येक जीव नवीन भव मे उत्पन्न होने के साथ अपने शरीर के योग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है, जिसमे उसके शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास भाषा आदि का निर्माण होता है। उन पुद्गलो के ग्रहण करने की शक्ति अन्तर्मुहूर्त्त मे प्राप्त हो जाती है। ऐसी शक्ति से सम्पन्न जीवो को पर्याप्तक कहते है। और जब तक उस शक्ति की पूर्ण प्राप्ति नही होती है, तब तक उन्हे अपर्याप्तक कहा जाता है।

द्रव्य-पद

१३८—दुविहा दव्वा पण्णत्ता त जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव।

द्रव्य दो प्रकार के कहे गये है—परिणत (बाह्य कारणो से रूपान्तर को प्राप्त) और अपरिणत (अपने स्वाभाविक रूप से अवस्थित) (१३८)।

जीव निकाय पद

१३९—दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, त जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव। १४०—दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, त जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव। १४१—दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, त जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव। १४२—दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, त जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव। १४३—दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, त जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव।

पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—गतिसमापन्नक (एक भव से दूसरे भव मे जाते समय अन्तराल गति मे वर्तमान) और अगति-समापन्नक (वर्तमान भव मे अवस्थित (१३९)। अप्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—गतिसमापन्नक और अगतिसमापन्नक (१४०)। तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—गतिसमापन्नक और अगतिसमापन्नक (१४१)। वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—गतिसमापन्नक और अगतिसमापन्नक (१३२)। वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—गतिसमापन्नक और अगतिसमापन्नक (१४३)।

द्रव्य पद

१४४—दुविहा दव्वा पण्णत्ता, त जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव।

द्रव्य दो प्रकार के कहे गये हैं—गतिसमापन्नक (गमन मे प्रवृत्त) और अगतिसमापन्नक (अवस्थित) (१४४)।

जीव निकाय-पद

१४५—दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, त जहा—अणतरोगाढा चेव, परपरोगाढा चेव। १४६—दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, त जहा—अणतरोगाढा चेव, परपरोगाढा चेव। १४७—दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, त जहा—अणतरोगाढा चेव, परपरोगाढा चेव। १४८—दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, त जहा—अणतरोगाढा चेव, परपरोगाढा चेव। १४९—दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, त जहा—अणतरोगाढा चेव, परपरोगाढा चेव।

पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—अनन्तरावगाढ (वर्तमान एक समय में किसी आकाश प्रदेश मे स्थित) और परम्परावगाढ (दो या अधिक समयों से किसी आकाश-प्रदेश मे स्थित) (१४५)। अप्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये है—अनन्तरावगाढ और परम्परावगाढ (१४६)। तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—अनन्तरावगाढ और परम्परावगाढ (१४७)। वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—अनन्तरावगाढ और परम्परावगाढ (१४८)। वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—अनन्तरावगाढ और परम्परावगाढ (१४९)।

द्रव्य पद

१५०—दुविहा दव्वा पण्णत्ता, त जहा—अणतरोगाढा चेव, परपरोगाढा चेव। १५१—दुविहे काले पण्णत्ते, त जहा—ओसप्पिणीकाले चेव, उस्सप्पिणीकाले चेव। १५२—दुविहे आगासे पण्णत्ते, त जहा—लोगागासे चेव, अलोगागासे चेव।

द्रव्य दो प्रकार के कहे गये हैं—अनन्तरावगाढ और परम्परावगाढ (१५०)। काल दो प्रकार का कहा गया है—अवसर्पिणीकाल और उत्सर्पिणीकाल (१५१)। आकाश दो प्रकार का कहा गया है—लोकाकाश और अलोकाकाश (१५२)।

शरीर-पद

१५३—णेरइयाण दो सरीरगा पण्णत्ता, त जहा—अब्भतरगे चेव, बाहिरगे चेव। अब्भतरए कम्मए, बाहिरए वेउव्विए। १५४—देवाण दो सरीरगा पण्णत्ता, त जहा—अब्भतरगे चेव, बाहिरगे चेव। अब्भतरए कम्मए, बाहिरए वेउव्विए। १५५—पुढविकाइयाण दो सरीरगा पण्णत्ता, त जहा—अब्भतरगे चेव, बाहिरगे चेव। अब्भतरगे कम्मए, बाहिरगे ओरालिए जाव वणस्सइकाइयाण। १५६—बेइदियाण दो सरीरा पण्णत्ता, त जहा—अब्भतरगे चेव, बाहिरगे चेव। अब्भतरगे कम्मए, अट्ठिमससोणितबद्धे बाहिरगे ओरालिए। १५७—तेइदियाण दो सरीरा पण्णत्ता, त जहा—अब्भतरगे चेव, बाहिरगे चेव। अब्भतरगे कम्मए, अट्ठिमससोणितबद्धे बाहिरगे ओरालिए। १५८—चउरिंदियाण दो सरीरा पण्णत्ता, त जहा—अब्भतरगे चेव, बाहिरगे चेव। अब्भतरगे कम्मए, अट्ठिमससोणितबद्धे बाहिरगे ओरालिए। १५९—पचिदियतिरिक्खजोणियाण दो सरीरगा पण्णत्ता त जहा—अब्भतरगे चेव, बाहिरगे चेव। अब्भतरगे कम्मए, अट्ठिमससोणियण्हारुछिराबद्धे बाहिरगे ओरालिए। १६०—मणुस्साण दो शरीरगा पण्णत्ता, त जहा—अब्भतरगे चेव, बाहिरगे चेव। अब्भतरगे कम्मए, अट्ठिमससोणियण्हारुछिराबद्धे बाहिरगे ओरालिए। १६१—विग्गहगइसमावण्णगाण णेरइयाण दो सरीरगा पण्णत्ता, त जहा—तेयए चेव, कम्मए चेव। णिरतर जाव वेमाणियाण।

१६२—णेरइयाण दोहिं ठाणेहिं सरीरुप्पत्ती सिया, त जहा—रागेण चेव, दोसेण चेव जाव वेमाणियाण। १६३—णेरइयाण दुट्ठाणणिव्वत्तिए सरीरगे पण्णत्ते, त जहा—रागणिव्वत्तिए चेव, दोसणिव्वत्तिए चेव जाव वेमाणियाण।

नारको के दो शरीर कहे गये है—आभ्यन्तर और बाह्य। आभ्यन्तर कार्मण शरीर है और बाह्य वैक्रियक शरीर है (१५३)। देवो के दो शरीर कहे गये हैं—आभ्यन्तर कामण शरीर (सर्वकर्मों का बीजभूत शरीर) और बाह्य वैक्रिय शरीर (१५४)। पृथ्वी-कायिक जीवो के दो शरीर कहे गये हैं—आभ्यन्तर कामणशरीर और बाह्य औदारिक शरीर। इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवो के दो-दो शरीर होते हैं—आभ्यन्तर कामणशरीर और बाह्य औदारिक शरीर (१५५)। द्वीन्द्रिय जीवो के दो शरीर होते हैं—आभ्यन्तर कामण शरीर और बाह्य अस्थि, मास और रुधिर युक्त औदारिक शरीर (१५६)। त्रीन्द्रिय जीवो के दो शरीर होते हैं—आभ्यन्तर कामण शरीर और बाह्य अस्थि, मास और रक्तमय औदारिक शरीर (१५७)। चतुरिन्द्रिय-जीवो के दो शरीर होते है—आभ्यन्तर कामणशरीर और बाह्य औदारिक शरीर (१५८)। पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवो के दो शरीर होते हैं—आभ्यन्तर कामण शरीर और बाह्य अस्थि, मास, रुधिर, स्नायु एव शिरायुक्त औदारिक शरीर (१५९)। मनुष्यों के दो शरीर होते है—आभ्यन्तर कामण शरीर और बाह्य अस्थि, मास, रुधिर, स्नायु एव शिरा युक्त औदारिक शरीर (१६०)।

पूर्व शरीर का त्याग करके जीव जब नवीन उत्पत्तिस्थान की ओर जाता है और उसका उत्पत्तिस्थान विश्रेणि मे होता है तब वह विग्रहगति-समापन्नक कहलाता है। ऐसे नारक जीवो के दो शरीर कहे गये हैं—तैजसशरीर और कार्मण शरीर। इसी प्रकार विग्रहगतिसमापन्नक वैमानिक देवो तक सभी दण्डको मे दो-दो शरीर जानना चाहिए (१६१)। नारको के दो स्थानो (कारणो) से शरीर की उत्पत्ति प्रारम्भ होती है—राग से और द्वेष से। इसी प्रकार वैमानिक देवो तक सभी दण्डको मे जानना चाहिए (१६२)। नारको के शरीर की निष्पत्ति (पूर्णता) दो स्थानो से होती हैं—राग से और द्वेष से (१६३)।

विवेचन—ससारी जीवो के शरीर की उत्पत्ति और निष्पत्ति का मूल कारण राग-द्वेष के द्वारा उपार्जित अमुक-अमुक कर्म ही है, तथापि यहा काय मे कारण का उपचार करके राग और द्वेष से ही शरीर की उत्पत्ति और निष्पत्ति कही गई है।

काय पद

१६४—दो काया पण्णत्ता, त जहा—तसकाए चेव, थावरकाए चेव। १६५—तसकाए दुविहे पण्णत्ते, त जहा—भवसिद्धिए चेव, अभवसिद्धिए चेव। १६६—थावरकाए दुविहे पण्णत्ते, त जहा—भवसिद्धिए चेव, अभवसिद्धिए चेव।

काय दो प्रकार के कहे गये हैं—त्रसकाय और स्थावरकाय (१६४)। त्रसकाय दो प्रकार का कहा गया है—भव्यसिद्धिक (भव्य) और अभव्यसिद्धिक (अभव्य) (१६५)। स्थावरकाय दो प्रकार का कहा गया है—भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक (१६६)।

दिशाद्विक करणीय पद

१६७—दो दिसाओ अभिगिज्झ कप्पति णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा पव्वावित्तए—पाईण

चेव, उदीण चेव। १६८—दो दिसाओ अभिगिज्झ कप्पति णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा—मुडावित्तए, सिक्खावित्तए, उवट्ठावित्तए, सभुजित्तए, सवासित्तए सज्झायमुद्दिसित्तए, सज्झाय समुद्दिसित्तए, सज्झायमणुजाणित्तए, आलोइत्तए, पडिक्कमित्तए, णिदित्तए, गरहित्तए, विउट्टित्तए, विसोहित्तए, अकरणयाए अब्भुट्ठित्तए अहारिह पायच्छित्त तवोकम्म पडिवज्जित्तए—पाईण चेव, उदीण चेव। १६९—दो दिसाओ अभिगिज्झ कप्पति णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा अपच्छिममारण-तियसलेहणा-जूसणा-जूसियाण भत्तपाणपडियाइक्खित्ताण पाओवगत्ताण काल अणवकखमाणाण विहरित्तए, त जहा—पाईण चेव, उदीण चेव।

निग्रन्थ और निग्रन्थियो को पूर्व और उत्तर इन दो दिशाओ मे मुख करके दीक्षित करना कल्पता है (१६७)। इसी प्रकार निग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो को पूर्व और उत्तर दिशा मे मुख करके मुण्डित करना, शिक्षा देना, महाव्रतो मे आरोपित करना, भोजनमण्डली मे सम्मिलित करना, सस्तारक मण्डली मे सवास करना, स्वाध्याय का उद्देश करना, स्वाध्याय का समुद्देश करना, स्वाध्याय की अनुज्ञा देना, आलोचना करना, प्रतिक्रमण करना, अतिचारो की निन्दा करना, गुरु के सम्मुख अतिचारो की गर्हा करना, लगे हुए दोषो का छेदन (प्रायश्चित्त) करना, दोषो की शुद्धि करना, पुन दोष न करने के लिए अभ्युद्यत होना, यथादोष यथायोग्य प्रायश्चित्त रूप तप कर्म स्वीकार करना कल्पता है (१६८)। पूर्व और उत्तर इन दो दिशाओ के अभिमुख होकर निग्रन्थ और निग्रन्थियो को मारणान्तिकी सल्लेखना की प्रीतिपूर्वक आराधना करते हुए, भक्त-पान का प्रत्याख्यान कर पादपोपगमन सथारा स्वीकार कर मरण की आकाक्षा नही करते हुए रहना कल्पता है। अर्थात सल्लेखना स्वीकार करके पूर्व और उत्तर दिशा की ओर मुख करके रहना चाहिए (१६९)।

विवेचन—किसी भी शुभ कार्य का करते समय पूर्व दिशा और उत्तर दिशा मे मुख करने का विधान प्राचीनकाल से चला आ रहा है। इसका आध्यात्मिक उद्देश्य तो यह है कि पूर्व दिशा से *उदित होने वाला सूर्य जिस प्रकार ससार को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार से* दीक्षा लेना आदि कार्य भी मेरे लिए उत्तरोत्तर प्रकाश देते रहे। तथा उत्तर दिशा मे मुख करने का उद्देश्य यह है कि भरतक्षेत्र की उत्तर दिशा मे विदेह क्षेत्र के भीतर सीमन्धर आदि तीर्थकर विहरमान हैं, उनका *स्मरण मेरा पथ प्रदर्शक रहे। ज्योतिर्विद् लोगो का कहना है कि पूर्व और उत्तर दिशा की ओर मुख* करके शुभ कार्य करने पर ग्रह-नक्षत्र आदि का शरीर और मन पर अनुकूल प्रभाव पडता है और दक्षिण या पश्चिम दिशा मे मुख करके कार्य करने पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। दीक्षा के पूर्व व्यक्ति का शिरोमुण्डन किया जाता है। दीक्षा के समय उसे दो प्रकार की शिक्षा दी जाती है—ग्रहण-शिक्षा—सूत्र और अर्थ को ग्रहण करने की शिक्षा और आसेवन-शिक्षा—पात्रादि के प्रतिलेखनादि की शिक्षा। शास्त्रो मे साधुओ की सात मडलियो का उल्लेख मिलता है—१ सूत्रमडली—सूत्र पाठ के समय एक साथ बैठना। २ अर्थ-मडली—सूत्र के अर्थ पाठ के समय एक साथ बैठना। इसी प्रकार ३ भोजन मडली, ४ काल प्रतिलेखन-मडली, ५ प्रतिक्रमण-मडली, ६, स्वाध्याय मडली और ७ सस्तारक मडली। इन सभी का निर्देश सूत्र १६८ मे किया गया है। स्वाध्याय के उद्देश, समुद्देश आदि का भाव इस प्रकार है—'यह अध्ययन तुम्हे पढना चाहिए,' गुरु के इस प्रकार के निर्देश को उद्देश कहते हैं। शिष्य भलीभाँति से पाठ पढ कर गुरु के *आगे निवदित करता है, तब गुरु उसे* स्थिर और परिचित करने के लिए जो निर्देश देते हैं, उसे समुद्देश कहते हैं। पढे हुए पाठ के स्थिर

ग्रौर परिचित हो जाने पर शिष्य पुन गुरु के आगे निवेदित करता है, इसमे उत्तीर्ण हो जाने पर गुरु उसे भलीभाँति से स्मरण रखने और दूसरो को पढाने का निर्देश देते हैं, इसे अनुज्ञा कहा जाता है। सूत्र १६६ मे निग्रन्थ और निग्रन्थियो को जो मारणान्तिकी सल्लेखना का विधान किया गया है, उसका अभिप्राय यह है—कषायो के कृश करने के साथ काय के कृश करने को सल्लेखना कहते है। मानसिक निर्मलता के लिए कषायो का कृश करना और शारीरिक वात-पित्तादि-जनित विकारो की शुद्धि के लिए भक्त-पान का त्याग किया जाता है, उसे भक्त पान-प्रत्याख्यान समाधिमरण कहते हैं। सामर्थ्यवान साधु उठना बठना और करवट बदलना आदि समस्त शारीरिक क्रियाओ को छोडकर, सस्तर पर कटे हुए वृक्ष के समान निश्चेष्ट पडा रहता है, उसे पादपोपगमन सथारा कहते हैं। इसका दूसरा नाम प्रायोपगमन भी है। इस अवस्था मे खान-पान का त्याग तो होता ही है, साथ ही वह मुख से भी किसी से कुछ नही बोलता है और न शरीर के किसी अग से किसी को कुछ सकेत ही करता है। समाधिमरण के समय भी पूर्व या उत्तर की ओर मुख रहना आवश्यक है।

द्वितीय स्थान का प्रथम उद्देश समाप्त।

—

द्वितीय उद्देश

वेदना पद

१७०—जे देवा उड्ढोववण्णगा कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा चारट्ठितिया गतिरतिया गतिसमावण्णगा, तेसि ण देवाण सता समित जे पावे कम्मे कज्जति, तत्थगतावि एगतिया वेदण वेदेंति, अण्णत्थगतावि एगतिया वेयण वेदेंति। १७१—णेरइयाण सता समिय जे पावे कम्मे कज्जति, तत्थगतावि एगतिया वेदण वेदेंति, अण्णत्थगतावि एगतिया वेदण वेदेंति जाव पचिदियति रिक्खजोणियाण। १७२—मणुस्साण सता समित जे पावे कम्मे कज्जति, इहगतावि एगतिया वेदण वेदेंति, अण्णत्थगतावि एगतिया वेदण वेदेंति। मणुस्सवज्जा सेसा एक्कगमा।

ऊर्ध्व लोक मे उत्पन्न देव, जो सौधम आदि कल्पा मे उपपन्न हैं, जो नौ ग्रैवेयक तथा अनुत्तर विमानो मे उपपन्न है, जो चार (ज्योतिश्चक्र क्षेत्र) मे उत्पन्न है, जो चारस्थितिक है अर्थात् समय-क्षेत्र-अढाई द्वीप से वाहर स्थित ह, जो गतिशील और सतत गति वाले है, उन देवो से सदा सवदा जो पाप कम का बन्ध होता है उसे कुछ देव उसी भव मे वेदन करते है और कुछ देव अन्य भव म भी वेदन करते है (१७०)। नारकी तथा द्वीन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रियतिर्यग्योनिक तक दण्डको के जीवा के सदा सवदा जो पाप कम का बन्ध होता है, उसे कुछ जीव उसी भव म वेदन करते हैं और कुछ उसका अन्य गति मे जाकर भी सदा-सवदा जो पाप कम का बन्ध होता है, उसे कुछ जीव उसी भव मे वेदन करते हैं और कुछ उसका अन्य गति मे जाकर भी वेदन करते हैं (१७१)। मनुष्यो के जा सदा-सवदा पाप कम का बध होता है, उसे कितने ही मनुष्य इसी भव मे रहते हुए वेदन करते हैं और *कितने ही उसे यहा भी वेदन करते हैं* और अन्य गति मे जाकर भी वदन करते हैं (१७२)। मनुष्या को छोडकर शेष दण्डको का कथन एक समान है। अर्थात् सचित कर्म का इस भव मे भी वेदन करते *है और अन्य भव मे जाकर भी वेदन करते हैं। मनुष्य के लिए 'इसी भव मे' ऐसा शब्द प्रयोग होता* है, अन्य जीवदण्डको मे 'उसी भव मे' ऐसा प्रयोग होता है। इसी कारण 'मनुष्य को छोड कर शेष दण्डको' *का कथन समान कहा गया है* (१७२)।

गति-आगति पद

१७३—णेरइया दुगतिया दुयागतिया पण्णत्ता, त जहा—णेरइए णेरइएसु उववज्जमाणे मणुस्सेहितो वा पचिदियतिरिक्खजोणिएहितो वा उववज्जेज्जा। से चेव ण से णेरइए णेरइयत्त विप्पजहमाणे मणुस्सत्ताए वा पचिदियतिरिक्खजोणियत्ताए वा गच्छेज्जा।

नारक जीव दो गति और दो आगति वाले कहे गये है। यथा—नैरयिक (बद्ध नरकायुष्क) जीव नारको मे मनुष्यो मे अथवा पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिको मे से (जाकर) उत्पन्न होता है। इसी प्रकार नारकी जीव नारक अवस्था को छोड कर मनुष्य अथवा पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनि मे (आकर) *उत्पन्न होता है* (१७३)।

विवेचन—गति का अर्थ है—गमन और आगति अर्थात् आगमन। नारक जीवो मे मनुष्य और पचेन्द्रिय तिर्यंच इन दो का गमन होता है और वहां से आगमन भी उक्त दोनो जाति के जीवो मे ही होता है।

१७४—एव असुरकुमारा वि, णवर—से चेव ण से असुरकुमारे असुरकुमारत्त विप्पजहमाणे मणुस्सत्ताए वा तिरिक्खजोणियत्ताए वा गच्छेज्जा। एव—सव्वदेवा।

इसी प्रकार असुरकुमार भवनपति देव भी दो गति और दो आगति वाले कहे गये हैं। विशेष—असुर कुमार देव असुरकुमार-पर्याय को छोडता हुआ मनुष्य पर्याय मे या तिर्यग्योनि मे जाता है। इसी प्रकार सब देवो की गति और आगति जानना चाहिए (१७४)।

विवेचन—यद्यपि असुरकुमारादि सभी देवो की सामान्य से दो गति और दो आगति का निर्देश इस सूत्र मे किया गया है, तथापि यह विशेष ज्ञातव्य है कि देवो मे मनुष्य और सज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच ही मर कर उत्पन्न होते हैं। किन्तु भवनत्रिक (भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क) और ईशान कल्प तक के देव मनुष्य और पचेन्द्रिय तिर्यंचो के सिवाय एकेन्द्रिय पृथ्वी, जल और वनस्पति काय मे भी उत्पन्न होते है।

१७५—पुढविकाइया दुगतिया दुयागतिया पण्णत्ता त जहा—पुढविकाइए पुढविकाइएसु उववज्जमाणे पुढविकाइएहिंतो वा णो-पुढविकाइएहिंतो वा उववज्जेज्जा। से चेव ण से पुढविकाइए पुढविकाइयत्त विप्पजहमाणे पुढविकाइयत्ताए वा णो-पुढविकाइयत्ताए वा गच्छेज्जा। १७६—एव जाव मणुस्सा।

पृथ्वीकायिक जीव दो गति और दो आगति वाले कहे गये है। यथा—पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकाय मे उत्पन्न होता हुआ पृथ्वीकायिको से अथवा नो पृथ्वीकायिको से आकर उत्पन्न होता है। वही पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिकता को छोडता हुआ पृथ्वीकायिक मे, अथवा नो-पृथ्वीकायिका—(अन्य अप्कायिकादि) मे जाता है (१७५)। इसी प्रकार यावत् मनुष्यो तक दो गति और दो आगति कही गई है। अर्थात् अप्काय से लेकर मनुष्य तक ये सभी दण्डकवाले जीव अपने-अपने काय मे अथवा अन्य काया से आकर उस उस काय मे उत्पन्न होते हैं और वे अपनी-अपनी अवस्था छोडकर अपने अपने उसी काय मे अथवा अन्य कायो मे जाते हैं (१७६)।

दण्डक-मार्गणा पद

१७७—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, त जहा—भवसिद्धिया चेव, अभवसिद्धिया चेव जाव वेमाणिया। १७८—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, त जहा—अणतरोववण्णगा चेव, परपरोववण्णगा चेव जाव वेमाणिया। १७९—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, त जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव जाव वेमाणिया। १८०—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, त जहा—पढमसमओववण्णगा चेव, अपढमसमओववण्णगा चेव जाव वेमाणिया। १८१—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, त जहा—आहारगा चेव, अणाहारगा चेव। एव जाव वेमाणिया। १८२—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, त जहा—उस्सासगा चेव, णोउस्सासगा चेव जाव वेमाणिया। १८३—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, त जहा—सइदिया चेव, अणिदिया चेव जाव वेमाणिया। १८४—दुविहा णेरइया पण्णत्ता त जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव जाव वेमाणिया।

नारक दो प्रकार से कहे गये हैं—भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको मे दो-दो भेद जानना चाहिए (१७७)।

पुन नारक दो प्रकार के कहे गये है—अनन्तरोपपन्नक और परम्परोपपन्नक। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको मे दो-दो भेद जानना चाहिए (१७८)।

पुन नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—गतिसमापन्नक (अपने उत्पत्तिस्थान को जाते हुए) और अगतिसमापन्नक (अपने भव मे स्थित)। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको मे दो दो भेद जानना चाहिए (१७९)।

पुन नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—प्रथमसमयोपपन्नक और अप्रथमसमयोपपन्नक। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों मे दो-दो भेद जानना चाहिए (१८०)।

पुन नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—आहारक और अनाहारक। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको मे दो दो भेद जानना चाहिए (१८१)।

पुन नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—उच्छ्वासक (उच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्त) और नो उच्छ्वासक (उच्छ्वास पर्याप्ति से अपूर्ण) (१८२)।

पुन नारक दो प्रकार के कहे गये है—सेन्द्रिय (इन्द्रिय पर्याप्ति से पर्याप्त) और अनिन्द्रिय (इन्द्रिय पर्याप्ति से अपर्याप्त) इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको मे दो दो भेद जानना चाहिए (१८३)।

पुन नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—पर्याप्तक (पर्याप्तियो से परिपूर्ण) और अपर्याप्तक (पर्याप्तिया से अपूर्ण)। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको मे दो दो भेद जानना चाहिए (१८४)।

१८५—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, त जहा—सण्णी चेव, असण्णी चेव। एव पचेंदिया सव्वे विगलिदियवज्जा जाव वाणमतरा। १८६—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, त जहा—भासगा चेव, अभासगा चेव। एवमेगिंदियवज्जा सव्वे। १८७—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, त जहा—सम्मद्दिट्ठिया चेव, मिच्छद्दिट्ठिया चेव। एगिंदियवज्जा सव्वे। १८८—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, त जहा—परित्तससारिया चेव, अणतससारिया चेव। जाव वेमाणिया। १८९—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, त जहा—सखेज्जकालसमयट्ठितिया चेव, असखेज्जकालसमयट्ठितिया चेव। एव—पचेंदिया एगिंदियविगलिंदियवज्जा जाव वाणमतरा। १९०—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, त जहा—सुलभबोधिया चेव, दुलभबोधिया चेव जाव वेमाणिया। १९१—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, त जहा—कण्हपक्खिया चेव, सुक्कपक्खिया चेव जाव वेमाणिया। १९२—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, त जहा—चरिमा चेव, अचरिमा चेव जाव वेमाणिया।

पुन नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—सज्ञी (मन पर्याप्ति से परिपूर्ण) और असज्ञी (जो असज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच योनि से नारकियो मे उत्पन्न होते हैं)। इसी प्रकार विकलेन्द्रिय जीवो को छोडकर वान-व्यन्तर तक के सभी दण्डको मे दो दो भेद जानना चाहिए (१८५)।

पुन नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—भाषक (भाषा पर्याप्ति से परिपूर्ण) और अभाषक

(भाषा पर्याप्ति से अपूर्ण)। इसी प्रकार एकेन्द्रियो को छोडकर सभी दण्डको मे दो-दो भेद जानना चाहिए (१८६)।

पुन नारक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि। इसी प्रकार एकेन्द्रियो को छोडकर सभी दण्डको मे दो-दो भेद जानना चाहिए (१८७)।

पुन नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—परीत ससारी (जिनका ससार-वास सीमित रह गया है) और अनन्त ससारी (जिनके ससार-वास का कोई अन्त नही है)। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डका मे दो-दो भेद जानना चाहिए (१८८)।

पुन नारक दो प्रकार के कहे गये है—सख्येय काल स्थिति वाले और असख्येय काल स्थिति वाले। इसी प्रकार एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवो को छोडकर वाण-व्यन्तर पर्यन्त सभी पञ्चेन्द्रिय जीवो मे दो-दो भेद जानना चाहिए (१८९)। (ज्योतिष्क और वैमानिक असख्येय काल की स्थिति वाले ही होते हैं और एकेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रिय जीव सख्यात काल की स्थिति वाले ही होते हैं।)

पुन नारक दो प्रकार के कहे गये है—सुलभ बोधि वाले और दुर्लभ बोधि वाले। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको मे दो दो भेद जानना चाहिए (१९०)।

पुन नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—कृष्णपाक्षिक और शुक्लपाक्षिक। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त दो-दो भेद जानना चाहिए (१९१)।

पुन नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—चरम (नरक मे पुन जन्म नही लेने वाले) और अचरम (नरक मे भविष्य मे भी जन्म लेने वाले)। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको मे दो-दो भेद जानना चाहिए (१९२)।

अधोऽवधिज्ञान दर्शन पद

१९३—दोहिं ठाणेहिं आया अहेलोगं जाणइ पासइ, तं जहा—समोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया अहेलोगं जाणइ पासइ, असमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया अहेलोगं जाणइ पासइ।

आहोहि समोहतासमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया अहेलोगं जाणइ पासइ।

दो प्रकार से आत्मा अधोलोक को जानता और देखता है (१) वैक्रिय आदि समुद्घात करके आत्मा अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता देखता है। (२) वैक्रिय आदि समुद्घात न करके भी आत्मा अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता—देखता है। (३) अधोवधि (परमावधिज्ञान से नीचे के नियत क्षेत्र को जानने वाला अवधि ज्ञानी) वैक्रिय आदि समुद्घात करके या किये बिना भी अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता—देखता है (१९३)।

१९४—दोहिं ठाणेहिं आया तिरियलोगं जाणइ पासइ, तं जहा—समोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया तिरियलोगं जाणइ-पासइ, असमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया तिरियलोगं जाणइ पासइ।

आहोहि समोहतासमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया तिरियलोगं जाणइ पासइ।

दो प्रकार से आत्मा तिर्यक् लोक को जानता देखता है—वैक्रिय आदि समुद्घात करके आत्मा

अवधिज्ञान से तिर्यक् लोक को जानता—देखता है। वैक्रिय आदि समुद्घात न करके भी आत्मा अवधि-ज्ञान से तियक् लोक को जानता—देखता है। अधोवधि (नियत क्षेत्र को जानने वाला—परमावधि से नीचे का अवधिज्ञानी) वक्रिय आदि समुद्घात करके या बिना किये भी अवधिज्ञान से तियक लोक को जानता—देखता है (१६४)।

१६५—दोहिं ठाणेहिं आया उड्ढलोग जाणइ-पासइ, त जहा—समोहतेण चेव अप्पाणेण आया उड्ढलोग जाणइ-पासइ, असमोहतेण चेव अप्पाणेण आया उड्ढलोग जाणइ पासइ।

आहोहि समोहतासमोहतेण चेव अप्पाणेण आया उड्ढलोक जाणइ पासइ।

दो प्रकार से आत्मा ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है—वक्रिय आदि समुद्घात करके आत्मा अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है। वैक्रिय आदि समुद्घात न करके भी आत्मा अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है। अधोवधि (नियत क्षेत्र को जानने वाला अवधिज्ञानी) वैक्रिय आदि समुद्घात करके, या किये बिना भी अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है (१६५)।

१६६—दोहिं ठाणेहिं आया केवलकप्प लोग जाणइ-पासइ, त जहा—समोहतेण चेव अप्पाणेण आया केवलकप्प लोग जाणइ-पासइ, असमोहतेण चेव अप्पाणेण आया केवलकप्प लोग जाणइ पासइ।

आहोहि समोहतासमोहतेण चेव अप्पाणेण आया केवलकप्प लोग जाणइ-पासइ।

दो प्रकार से आत्मा सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है—वैक्रिय आदि समुदघात करके आत्मा अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है। वैक्रिय आदि समुद्घात न करके भी आत्मा अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है। अधोवधि (परमावधि की अपेक्षा नियत क्षेत्र को जानने वाला अवधिज्ञानी) वैक्रिय आदि समुद्घात करके या किये बिना भी अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है (१६६)।

१६७—दोहिं ठाणेहिं आया अहेलोग जाणइ-पासइ, त जहा—विउव्वितेण चेव अप्पाणेण आया अहेलोग जाणइ पासइ अविउव्वितेण चेव अप्पणेण आया अहेलोग जाणइ-पासइ।

आहोहि विउव्वियाविउव्वितेण चेव अप्पाणेण आया अहेलोग जाणइ-पासइ।

दो प्रकार से आत्मा अधोलोक को जानता—देखता है—वैक्रिय शरीर का निर्माण करने पर आत्मा अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता—देखता है। वैक्रिय शरीर का निर्माण किये बिना भी आत्मा अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता—देखता है। अधोवधि ज्ञानी वक्रियशरीर का निर्माण करके या किये बिना भी अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता—देखता है (१६७)।

१६८—दोहिं ठाणेहिं आया तिरियलोग जाणइ-पासइ, त जहा—विउव्वितेण चेव अप्पाणेण आया तिरियलोग जाणइ-पासइ, अविउव्वितेण चेव अप्पाणेण आया तिरियलोग जाणइ-पासइ।

आहोहि विउव्वियाविउव्वितेण चेव अप्पाणेण आया तिरियलोग जाणइ-पासइ।

दो प्रकार से आत्मा तिर्यक् लोक को जानता—देखता है—वैक्रिय शरीर का निर्माण कर लेने पर आत्मा अवधिज्ञान से तियक् लोक को जानता—देखता है। वैक्रिय शरीर का निर्माण किये विना भी आत्मा अवधिज्ञान से तियक् लोक को जानता—देखता है। अधोवधि वैक्रियशरीर का निर्माण करके या उसका निर्माण किये विना भी अवधिज्ञान से तियक् लोक को जानता—देखता है (१६८)।

१६६—दोहिं ठाणेहिं आता उड्ढलोग जाणइ पासइ, त जहा—विउव्वितेण चेव आता उड्ढलोग जाणइ-पासइ, अविउव्वितेण चेव अप्पाणेण आता उड्ढलोग जाणइ-पासइ।

आहोहि विउव्वियाविउव्वितेण चेव अप्पाणेण आता उड्ढलोग जाणइ-पासइ।

दो प्रकार से आत्मा ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है—वैक्रिय शरीर का निर्माण कर लेने पर आत्मा अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है। वैक्रिय शरीर का निर्माण किये विना भी आत्मा अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है। अधोवधि वैक्रिय शरीर का निर्माण करके या उसका निर्माण किये विना भी अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है (१६६)।

२००—दोहिं ठाणेहिं आता केवलकप्प लोग जाणइ पासइ, त जहा—विउव्वितेण चेव अप्पाणेण आता केवलकप्प लोग जाणइ पासइ, अविउव्वितेण चेव अप्पाणेण आता केवलकप्प लोग जाणइ पासइ।

आहोहि विउव्वियाविउव्वितेण चेव अप्पाणेण आता केवलकप्प लोग जाणइ पासइ।

दो प्रकार से आत्मा सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है—वैक्रिय शरीर का निर्माण कर लेने पर आत्मा अवधि ज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है। वैक्रिय शरीर का निर्माण किये विना भी आत्मा अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है। अधोवधि वैक्रिय शरीर का निर्माण करके या उसका निर्माण किये विना भी अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है (२००)।

देशत-सर्वत श्रवणादि-पद

२०१—दोहिं ठाणेहिं आया सद्दाइ सुणेति, त जहा—देसेण वि आया सद्दाइ सुणेति सव्वेणवि आया सद्दाइ सुणेति। २०२—दोहिं ठाणेहिं आया रूवाइ पासइ, त जहा—देसेण वि आया रूवाइ पासइ, सव्वेणवि आया रूवाइ पासइ। २०३—दोहिं ठाणेहिं आया गधाइ अग्घाति, त जहा—देसेण वि आया गधाइ अग्घाति, सव्वेणवि आया गधाइ अग्घाति। २०४—दोहिं ठाणेहिं आया रसाइ आसादेति, त जहा—देसेण वि आया रसाइ आसादेति, सव्वेण वि आया रसाइ आसादेति। २०५—दोहिं ठाणेहिं आया फासाइ पडिसवेदेति, त जहा—देसेण वि आया फासाइ पडिसवेदेति, सव्वेण वि आया फासाइ पडिसवेदेति।

दो प्रकार से आत्मा शब्दों को सुनता है—एक देश (एक कान) से भी आत्मा शब्दों को सुनता है और सब से (दोनो कानो से) भी आत्मा शब्दो को सुनता है (२०१)। दो प्रकार से आत्मा रूपो को देखता है—एक देश (नेत्र) से भी आत्मा रूपो को देखता है और सब से भी आत्मा रूपो को देखता है (२०२)। दो प्रकार से आत्मा गधो को सूघता है—एक देश (नासिका) से भी आत्मा

गन्धो को सूघता है और सब से भी गन्धो को सूघना है (२०३)। दो प्रकार से आत्मा रसो का आस्वाद लेता है—एक देश (रसना) से भी आत्मा रसो का आस्वाद लेता है और सम्पूर्ण से भी रसो का आस्वाद लेता है (२०४)। दो प्रकार से आत्मा स्पर्शों का प्रतिसवेदन करता है—एक देश से भी आत्मा स्पर्शों का प्रतिसवेदन करता है और सम्पूर्ण से भी आत्मा स्पर्शों का प्रतिसवेदन करता है (२०५)।

विवेचन—श्रोत्रेन्द्रिय आदि इन्द्रियो का प्रतिनियत क्षयोपशम होने पर जीव शब्द आदि को श्रोत्र आदि इन्द्रियो के द्वारा सुनता—देखता आदि है। सस्कृत टीका के अनुसार 'एक देश से सुनता है' का अर्थ एक कान की श्रवण शक्ति नष्ट हो जाने पर एक ही कान से सुनता है और सब का अर्थ दोनो कानो से सुनता है—ऐसा किया है। यही बात नेत्र, रसना आदि के विषय मे भी जानना चाहिए। साथ ही यह भी लिखा है कि सभिन्नश्रोतृलब्धि से युक्त जीव समस्त इन्द्रियो से भी सुनता है अर्थात सारे शरीर से सुनता है। इसी प्रकार इस लब्धिवाला जीव रूप, रस, गन्ध और स्पर्श का ज्ञान किसी भी एक इन्द्रिय से और सम्पूर्ण शरीर से कर सकता है।

२०६—दोहिं ठाणेहिं आया ओभासति, त जहा—देसेणवि आया ओभासति, सव्वेणवि आया ओभासति। २०७—एव—पभासति, विकुव्वति, परियारेति, भास भासति, आहारेति, परिणामेति, वेदेति, णिज्जरेति। २०८—दोहिं ठाणेहिं देवे सद्दाइ सुणेति, त जहा—देसेणवि देवे सद्दाइ सुणेति, सव्वेणवि देवे सद्दाइ सुणेति जाव णिज्जरेति।

दो स्थानो से आत्मा अवभास (प्रकाश) करता है—खद्योत के समान एक देश से भी आत्मा अवभास करता है और प्रदीप की तरह सब रूप से भी अवभास करता है (२०६)। इसी प्रकार दो स्थानो से आत्मा प्रभास (विशेष प्रकाश) करता है, विक्रिया करता है, प्रवीचार (मैथुन सेवन) करता है, भाषा बोलता है, आहार करता है, उसका परिणमन करता है, उसका अनुभव करता है और उसका उत्सर्ग करता है (२०७)। दो स्थानो से देव शब्द सुनता है—शरीर के एक देश से भी देव शब्दों को सुनता है और सम्पूर्ण शरीर से भी देव शब्दो को सुनता है। इसी प्रकार देव दोनो स्थानो से अवभास करता है, प्रभास करता है, विक्रिया करता है प्रवीचार करता है, भाषा बोलता है, आहार करता है, उसका परिणमन करता है, उसका अनुभव करता है और उसका उत्सर्ग करता है (२०८)।

शरीर-पद

२०९—मरुया देवा दुविहा पण्णत्ता, त जहा—'एगसरीरी चेव दुसरीरी' चेव। २१०—एव किण्णरा किंपुरिसा गधव्वा णागकुमारा सुवण्णकुमारा अग्गिकुमारा वायुकुमारा। २११—देवा दुविहा पण्णत्ता, त जहा—'एगसरीरी चेव, दुसरीरी' चेव।

मरुत् देव दो प्रकार के कहे गये हैं—एक शरीर वाले और दो शरीर वाले (२०९)। इसी प्रकार किन्नर, किम्पुरुष, गन्धर्व, नागकुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वायुकुमार ये सभी देव दो-दो प्रकार के हैं—एक शरीर वाले और दो शरीर वाले (२१०)। (शेष) देव दो प्रकार के कहे गये हैं—एक शरीरवाले और दो शरीरवाले (२११)।

विवेचन—तीर्थंकरों के निष्क्रमण कल्याणक के समय आकर उनके वैराग्य के समर्थक लोकान्तिक देवों का एक भेद मरुत् है। अन्तरालगति में एक कार्मण शरीर की अपेक्षा एक शरीर कहा गया है और भवधारणीय वैक्रिय शरीर के साथ कार्मणशरीर की अपेक्षा दो शरीर कहे गये हैं। अथवा भवधारणीय वैक्रिय शरीर की अपेक्षा एक और उत्तर वैक्रिय शरीर की अपेक्षा से दो शरीर बतलाए गए हैं। मरुत् देव को उपलक्षण मानकर शेष लोकान्तिक देवों के भी एक शरीर और दो शरीरों का निर्देश इस सूत्र से किया गया जानना चाहिए। इस प्रकार सूत्र २१० में यद्यपि किन्नर आदि तीन व्यन्तर देवों का और नागकुमार आदि चार भवनपति देवों का निर्देश किया गया है, तथापि इन्हें उपलक्षण मानकर शेष व्यन्तरों और शेष भवनपतियों को भी एक शरीरी और दो शरीरी जानना चाहिए। उक्त देवों के सिवाय शेष ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के एक शरीरी और दो शरीरी होने का निर्देश सूत्र २११ से किया गया है।

द्वितीय उद्देश समाप्त ॥

२३१—दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, त जहा—परियादितच्चेव, अपरियादितच्चेव।

पुन पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं—परियादित और अपरियादित (२३१)।

विवेचन—'परियादित' और अपरियादित इन दोना प्राकृत पदो का सस्कृत रूपान्तर टीकाकार ने दो-दो प्रकार से किया है पर्यायातीत और अपर्यायातीत। पर्यायातीत का अर्थ विवक्षित पर्याय से अतीत पुद्गल होता है और अपर्यायातीत का अर्थ विवक्षित पर्याय मे अवस्थित पुद्गल होता है। दूसरा सस्कृत रूप पर्यात्त या पर्यादत्त और अपर्यात्त या अपर्यादत्त कहा है, जिसके अनुसार उनका अर्थ क्रमश कर्मपुदगलो के समान सम्पूर्णरूप से गृहीत पुद्गल और असम्पूर्ण रूप से गृहीत पुद्गल होता है। पर्यात्त का अर्थ परिग्रहरूप से स्वीकृत अथवा शरीरादिरूप से गृहीत पुद्गल भी किया गया है और उनसे विपरीत पुद्गल अपर्यात्त कहलाते हैं।

२३२—दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, त जहा—अत्ता चेव, अणत्ता चेव।

पुन पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं—आत्त (जीव के द्वारा गृहीत) और अनात्त (जीव के द्वारा अगृहीत) पुद्गल (२३२)।

२३३—दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, त जहा—इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव। कता चेव, अकता चेव, पिया चेव, अपिया चेव। मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव। मणामा चेव, अमणामा चेव।

पुन पुद्गल दो-दो प्रकार के कहे गये हैं—इष्ट और अनिष्ट, तथा कान्त और अकान्त, प्रिय और अप्रिय, मनोज्ञ और अमनोज्ञ, मनाम और अमनाम (२३३)।

विवेचन—सूत्रोक्त पदो का अर्थ इस प्रकार है—इष्ट—जो किसी प्रयोजन विशेष से अभीष्ट हो। अनिष्ट—जो किसी कार्य के लिए इष्ट न हो। कान्त—जो विशिष्ट वर्णादि से युक्त सुन्दर हो। अकान्त—जो सुन्दर न हो। प्रिय—जो प्रीतिकर एव इन्द्रियो को आनन्द-जनक हो। अप्रिय—जो अप्रीतिकर हो। मनोज्ञ—जिसकी कथा भी मनोहर हो। अमनोज्ञ—जिसकी कथा भी मनोहर न हो। मनाम—जिसका मन से चिन्तन भी प्रिय हो। अमनाम—जिसका मन से चिन्तन भी प्रिय न हो।

इन्द्रिय विषय पद

२३४—दुविहा सद्दा पण्णत्ता, त जहा—'अत्ता चेव, अणत्ता चेव'। इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव। कता चेव, अकता चेव। पिया चेव, अपिया चेव। मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव। मणामा चेव, अमणामा चेव। २३५—दुविहा रूवा पण्णत्ता त जहा—'अत्ता चेव, अणत्ता चेव'। इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव। कता चेव, अकता चेव। पिया चेव, अपिया चेव। मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव। मणामा चेव, अमणामा चेव। २३६—दुविहा गधा पण्णत्ता, त जहा—अत्ता चेव, अणत्ता चेव। इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव। कता चेव, अकता चेव। पिया चेव, अपिया चेव। मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव। मणामा चेव, अमणामा चेव। २३७—दुविहा रसा पण्णत्ता, त जहा—अत्ता चेव, अणत्ता चेव। इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव। कता चेव अकता चेव। पिया चेव, अपिया चेव। मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव। मणामा चेव, अमणामा चेव। २३८—दुविहा फासा पण्णत्ता, त

जहा—अत्ता चेव, अणत्ता चेव। इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव। कंता चेव, अकंता चेव। पिया चेव, अपिया चेव। मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव। मणामा चेव, अमणामा चेव।

दो प्रकार के शब्द कहे गये हैं—आत्त और अनात्त तथा इष्ट और अनिष्ट, कान्त और अकान्त, प्रिय और अप्रिय, मनोज्ञ और अमनोज्ञ, मनाम और अमनाम (२३४)। दो प्रकार के रूप कहे गये हैं—आत्त और अनात्त, इष्ट और अनिष्ट, कान्त और अकान्त, प्रिय और अप्रिय, मनोज्ञ और अमनोज्ञ, मनाम और अमनाम (२३५)। दो प्रकार के गन्ध कहे गये हैं—आत्त और अनात्त, इष्ट और अनिष्ट, कान्त और अकान्त, प्रिय और अप्रिय, मनोज्ञ और अमनोज्ञ, मनाम और अमनाम (२३६)। दो प्रकार के रस कहे गये हैं—आत्त और अनात्त, इष्ट और अनिष्ट, कान्त और अकान्त, प्रिय और अप्रिय, मनोज्ञ और अमनोज्ञ, मनाम और अमनाम (२३७)। दो प्रकार के स्पर्श कहे गये हैं—आत्त और अनात्त, इष्ट और अनिष्ट, कान्त और अकान्त, प्रिय और अप्रिय, मनोज्ञ और अमनोज्ञ, मनाम और अमनाम (२३८)।

आचार पद

२३९—दुविहे आयारे पण्णत्ते, तं जहा—णाणायारे चेव, णोणाणायारे चेव। २४०—णोणाणायारे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—दंसणायारे चेव, णोदंसणायारे चेव। २४१—णोदंसणायारे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—चरित्तायारे चेव, णोचरित्तायारे चेव। २४२—णोचरित्तायारे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—तवायारे चेव, वीरियायारे चेव।

आचार दो प्रकार का कहा गया है—ज्ञानाचार और नो-ज्ञानाचार (२३९), नो-ज्ञानाचार दो प्रकार का कहा गया है—दर्शनाचार और नो-दर्शनाचार (२४०)। नो-दर्शनाचार दो प्रकार का कहा गया है—चारित्राचार और नो-चारित्राचार (२४१)। नो-चारित्राचार दो प्रकार का कहा गया है—तप आचार और वीर्याचार (२४२)।

यद्यपि आचार के पांच भेद हैं, किन्तु द्विस्थानक के अनुरोध से उनको दो-दो भेद के रूप में वर्णन किया गया है। इनका विवेचन पंचम स्थानक में किया जायगा।

प्रतिमा पद

२४३—दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—समाहिपडिमा चेव, उवहाणपडिमा चेव। २४४—दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—विवेगपडिमा चेव, विउसग्गपडिमा चेव। २४५—दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—'भद्दा चेव, सुभद्दा चेव'। २४६—दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—महाभद्दा चेव, सव्वतोभद्दा चेव। २४७—दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—खुड्डिया चेव मोयपडिमा, महल्लिया चेव मोयपडिमा। २४८—दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—जवमज्झा चेव चंदपडिमा, वइरमज्झा चेव चंदपडिमा।

प्रतिमा दो प्रकार की कही गई हैं—समाधिप्रतिमा और उपधान प्रतिमा (२४३)। पुनः प्रतिमा दो प्रकार की कही गई हैं—विवेकप्रतिमा और व्युत्सर्गप्रतिमा (२४४)। पुनः प्रतिमा दो प्रकार की गई है—भद्रा और सुभद्रा (२४५)। पुनः प्रतिमा दो प्रकार की कही गई है-महाभद्रा और सर्वतोभद्रा (२४६)। पुनः प्रतिमा दो प्रकार की कही गई है—क्षुद्रक मोक प्रतिमा और महती मोक-

प्रतिमा (२४७)। पुन प्रतिमा दो प्रकार की कही गई है—यवमध्यचन्द्र-प्रतिमा और वज्रमध्यचन्द्र प्रतिमा (२४८)।

विवेचन—टीकाकार ने 'प्रतिमा' का अर्थ प्रतिपत्ति, प्रतिज्ञा या अभिग्रह किया है। आत्म-शुद्धि के लिए जो विशिष्ट साधना की जाती है उसे प्रतिमा कहा गया है। श्रावकों की ग्यारह और साधुओं की बारह प्रतिमाएं हैं। प्रस्तुत छह सूत्रों के द्वारा साधुओं की बारह प्रतिमाओं का निर्देश द्विस्थानक के अनुरोध से दो-दो के रूप मे किया गया है। इनका अर्थ इस प्रकार है—

१ समाधि प्रतिमा—अप्रशस्त भावों को दूर कर प्रशस्त भावों की श्रुताभ्यास और सदाचरण के द्वारा वृद्धि करना।

२ उपधान प्रतिमा—उपधान का अर्थ है तपस्या। श्रावकों की ग्यारह और साधुओं की बारह प्रतिमाओं में से अपने बल-वीर्य के अनुसार उनकी साधना करने को उपधान प्रतिमा कहते हैं।

३ विवेक प्रतिमा आत्मा और अनात्मा का भेद-चिन्तन करना, स्व और पर का भेद ज्ञान करना। जैसे—मेरा आत्मा ज्ञान-दर्शन स्वरूप है और क्रोधादि कषाय तथा शरीरादिक मेरे से सर्वथा भिन्न हैं। इस प्रकार के चिन्तन से पर पदार्थों से उदासीनता और आत्मस्वरूप में संलीनता प्राप्त होती है, तथा हेय-उपादेय का विवेक ज्ञान प्रकट होता है।

४ व्युत्सर्ग प्रतिमा—विवेकप्रतिमा के द्वारा जिन वस्तुओं को हेय अर्थात् छोड़ने के योग्य जाना है, उनका त्याग करना व्युत्सर्ग प्रतिमा है।

५ भद्रा प्रतिमा—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर—इन चारों दिशाओं में क्रमशः चार-चार प्रहर तक कायोत्सर्ग करना। यह प्रतिमा दो दिन-रात मे दो उपवास के द्वारा सम्पन्न होती है।

६ सुभद्रा प्रतिमा—इसकी साधना भी भद्राप्रतिमा से ऊंची संभव है। किन्तु टीकाकार के समय में भी इसकी विधि विच्छिन्न या अज्ञात हो गई थी।

७ महाभद्रप्रतिमा—चारों दिशाओं में क्रम से एक एक अहोरात्र तक कायोत्सर्ग करना। यह प्रतिमा चार दिन-रात मे चार दिन के उपवास के द्वारा सम्पन्न होती है।

८ सर्वतोभद्रप्रतिमा—चारों दिशाओं, चारों विदिशाओं, तथा ऊर्ध्व दिशा और अधोदिशा—इन दशों दिशाओं में क्रम से एक एक अहोरात्र तक कायोत्सर्ग करना। यह प्रतिमा दश दिन-रात और दश दिन के उपवास से पूर्ण होती है। पंचम स्थानक में इसके दो भेदों का भी निर्देश है, उनका विवेचन वहीं किया जायगा।

९ क्षुद्रक-मोक प्रतिमा—मोक नाम प्रस्रवण (पेशाब) का है। इस प्रतिमा का साधक शीत या उष्ण ऋतु के प्रारम्भ मे ग्राम से बाहिर किसी एकान्त स्थान में जाकर और भोजन का त्याग कर प्रातःकाल सर्वप्रथम किये गये प्रस्रवण का पान करता है। यह प्रतिमा यदि भोजन करके प्रारम्भ की जाती है तो छह दिन के उपवास से सम्पन्न होती है और यदि भोजन न करके प्रारम्भ की जाती है तो सात दिन के उपवास से सम्पन्न होती है। इस प्रतिमा की साधना के तीन लाभ बतलाये गये हैं—सिद्ध होना, महर्द्धिक देवपद पाना और शारीरिक रोग से मुक्त होना।

१० महती मोक-प्रतिमा– इसकी विधि क्षुद्रक मोक प्रतिमा के समान ही है। अन्तर केवल

इतना है कि जब वह खा-पीकर स्वीकार की जाती है, तब वह सात दिन के उपवास से पूरी होती है और यदि बिना खाये पिये स्वीकार की जाती है तो आठ दिन के उपवास से पूरी होती है।

११ यवमध्य चन्द्र प्रतिमा—जिस प्रकार यव (जौ) का मध्य भाग स्थूल और दोनो ओर के भाग कृश होते है, उसी प्रकार से इस साधना मे कवल (ग्रास) ग्रहण मध्य मे सबसे अधिक और आदि-अन्त मे सबसे कम किया जाता है। इसकी विधि यह है—इस प्रतिमा का साधक साधु शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को एक कवल आहार लेता है। पुन तिथि के अनुसार एक कवल आहार बढाता हुआ शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को पन्द्रह कवल आहार लेता है। पुन कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को १४ कवल आहार लेकर क्रम से एक-एक कवल घटाते हुए अमावस्या को उपवास करता है। चन्द्रमा की एक एक कला शुक्ल पक्ष म जसे बढती है और कृष्णपक्ष मे एक-एक घटती है उसी प्रकार इस प्रतिमा मे कवलो की वृद्धि और हानि होने से इसे यवमध्य चन्द्र प्रतिमा कहा गया है।

१२ वज्रमध्य चन्द्र प्रतिमा—जिस प्रकार वज्र का मध्य भाग कृश और आदि-अन्त भाग स्थूल होता है, उसी प्रकार जिस साधना मे कवल-ग्रहण आदि-अन्त मे अधिक और मध्य मे एक भी न हो, उसे वज्रमध्य चन्द्र प्रतिमा कहते है। इसे साधनेवाला साधक कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को १४ कवल आहार लेकर क्रम से चन्द्रकला के समान एक एक कवल घटाते हुए अमावस्या को उपवास करता है। पुन शुक्लपक्ष म प्रतिपदा के दिन एक कवल ग्रहण कर एक-एक कला वृद्धि के समान एक एक कवल वृद्धि करते हुए पूर्णिमा को १५ कवल आहार ग्रहण करता है।

सामायिक पद

२४९—दुविहे सामाइए पण्णत्ते, त जहा—अगारसामाइए चेव, अणगारसामाइए चेव।

सामायिक दो प्रकार की कही गई है—अगार-(श्रावक) सामायिक अर्थात् देशविरति और अनगार (साधु)-सामायिक अर्थात सर्वविरति (२४९)।

जन्म मरण पद

२५०—दोण्ह उववाए पण्णत्ते, त जहा—देवाण चेव, णेरइयाण चेव। २५१—दोण्ह उव्वट्टणा पण्णत्ता, त जहा—णेरइयाण चेव, भवणवासीण चेव। २५२—दोण्ह चयणे पण्णत्ते, त जहा—जोइसियाण चेव, वेमाणियाण चेव। २५३—दोण्ह गब्भवक्कती पण्णत्ता, त जहा—मणुस्साण चेव, पचेंदियतिरिक्खजोणियाण चेव।

दो का उपपात जन्म कहा गया है—देवो का और नारको का (२५०)। दो का उद्वर्तन कहा गया है—नारको का और भवनवासी देवो का (२५१)। दो का च्यवन होता है—ज्योतिष्क देवो का और वैमानिक देवो का (२५२)। दो की गर्भव्युत्क्रान्ति कही गई है—मनुष्यो की और पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिक जीवो की (२५३)।

विवेचन—देव और नारको का उपपात जन्म होता है। च्यवन का अर्थ है ऊपर से नीचे आना और उद्वर्तन नाम नीचे से ऊपर आना का है। नारक और भवनवासी देव मरण कर नीचे से ऊपर मध्यलोक मे जन्म लेते हैं, अत उनके मरण को उद्वर्तन कहा गया है। तथा ज्योतिष्क और विमानवासी देव मरण कर ऊपर से नीचे—मध्यलोक मे जन्म लेते है, अत उनके मरण

कहा गया है। मनुष्य और पचेन्द्रिय तिर्यंचो का जन्म माता के गर्भ से होता है, अतः उसे गर्भ व्युत्क्रांति कहते हैं।

गर्भस्थ पद

२५४—दोण्हं गब्भत्थाणं आहारे पण्णत्ते, तं जहा—मणुस्साणं चेव, पचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव। २५५—दोण्हं गब्भत्थाणं वुड्ढी पण्णत्ता, तं जहा—मणुस्साणं चेव, पचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव। २५६—दोण्हं गब्भत्थाणं—णिवुड्ढी विगुव्वणा गतिपरियाए समुग्घाते कालसंजोगे आयाती मरणे पण्णत्ते, तं जहा—मणुस्साणं चेव, पचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव। २५७—दोण्हं छविपव्वा पण्णत्ता, तं जहा—मणुस्साणं चेव, पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव। २५८—दो सुक्कसोणितसंभवा पण्णत्ता, तं जहा—मणुस्सा चेव, पंचिंदियतिरिक्खजोणिया चेव।

दो प्रकार के जीवो का गर्भावस्था मे आहार कहा गया है—मनुष्यो का और पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिको का (इन दो के सिवाय अन्य जीवो का गर्भ होना ही नही है।) (२५४)। दो प्रकार के गर्भस्थ जीवो की गर्भ मे रहते हुए शरीर-वृद्धि कही गई है—मनुष्यो की और पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिको की (२५५)। दो गर्भस्थ जीवो की गर्भ मे रहते हुए हानि, विक्रिया, गतिपर्याय, समुद्घात, कालसंयोग, गर्भ से निर्गमन और गर्भ मे मरण कहा गया है—मनुष्यो का तथा पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिको का (२५६)। दो के चर्म-युक्त पर्व (सन्धि-बन्धन) कहे गये है—मनुष्यो के और पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिको के (२५७)। दो शुक्र (वीर्य) और शोणित (रक्त-रज) से उत्पन्न कहे गये हैं—मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीव (२५८)।

स्थिति पद

२५९—दुविहा ठिती पण्णत्ता, तं जहा—कायट्ठिती चेव, भवट्ठिती चेव। २६०—दोण्हं कायट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—मणुस्साणं चेव, पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव। २६१—दोण्हं भवट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—देवाणं चेव, णेरइयाणं चेव।

स्थिति दो प्रकार की कही गई है—कायस्थिति (एक ही काय मे लगातार जन्म लेने की काल मर्यादा) और भवस्थिति (एक ही भव की काल-मर्यादा) (२५९)। दो की कायस्थिति कही गई है—मनुष्यो की और पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिको की (२६०)। दो की भवस्थिति कही गई है—देवो की और नारको की (२६१)।

विवेचन—पचेन्द्रिय तिर्यंचो के अतिरिक्त एकेन्द्रिय, आदि तिर्यचो की भी कायस्थिति होती है। इस सूत्र से उनकी कायस्थिति का निषेध नही समझना चाहिए। प्रस्तुत सूत्र अन्ययोगव्यवच्छेदक नही, अयोगव्यवच्छेदक है, अर्थात् दो की कायस्थिति का विधान ही करता है, अन्य की कायस्थिति का निषेध नही करता। देव और नारक जीव मर कर पुनः देव नारक नही होते, अतः उनकी कायस्थिति नही होती, मात्र भवस्थिति ही होती है।

आयु पद

२६२—दुविहे आउए पण्णत्ते, तं जहा—अद्धाउए चेव, भवाउए चेव। २६३—दोण्हं

श्रद्धाउए पण्णत्ते, त जहा—मणुस्साण चेव, पचिदियतिरिक्खजोणियाण चेव। २६४—दोण्ह भवाउए पण्णत्ते, त जहा—देवाण चेव, णेरइयाण चेव।

आयुष्य दो प्रकार का कहा गया है—अद्धायुष्य (एक भव के व्यतीत होने पर भी भवान्तरानुगामी कालविशेष रूप आयुष्य) और भवायुष्य (एक भववाला आयुष्य) (२६२)। दो का अद्धायुष्य कहा गया है—मनुष्यो का और पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिको का (२६३)। दो का भवायुष्य कहा गया है—देवो का और नारको का (२६४)।

कर्म पद

२६५—दुविहे कम्मे पण्णत्ते, त जहा—पदेसकम्मे चेव, अणुभावकम्मे चेव। २६६—दो अहाउय पालेंति, त जहा—देवच्चेव, णेरइयच्चेव। २६७—दोण्ह आउय-सवट्टए पण्णत्ते, त जहा—मणुस्साण चेव, पचेंदियतिरिक्खजोणियाण चेव।

कर्म दो प्रकार का कहा गया है—प्रदेश कर्म (जो कर्म मात्र कर्मपुद्गलो से वेदा जाय—रस-अनुभाग से नही) और अनुभाव कर्म (जिसके अनुभाग-रस का वेदन किया जाय) (२६५)। दो यथायु (पूर्णायु) का पालन करते हैं—देव और नारक (२६६)। दो का आयुष्य सवर्तक (अपवर्तन वाला) कहा गया है—मनुष्यो का और पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिको का (२६७)। तात्पर्य यह है कि मनुष्य और तिर्यंच दीर्घकालीन आयुष्य को अल्पकाल मे भी भोग लेते हैं, क्योकि वह सोपक्रम होता है। यह सूत्र भी पूर्ववत् अयोगव्यवच्छेदक ही है।

क्षेत्र पद

२६८—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तर दाहिणे ण दो वासा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्ण णातिवट्ट ति आयाम विक्खभ-सठाण-परिणाहेण, त जहा—भरहे चेव, एरवए चेव। २६९—एवमेएणमभिलावेण—हेमवते चेव, हेरण्णवए चेव। हरिवासे चेव, रम्मयवासे चेव।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर (सुमेरु) पर्वत के उत्तर और दक्षिण मे दो क्षेत्र कहे गये हैं—भरत (दक्षिण मे) और ऐरवत (उत्तर मे)। ये दोनो क्षेत्र-प्रमाण मे सर्वथा सदृश हैं, नगर-नदी आदि की दृष्टि से उनमे कोई विशेषता नही है, कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमे कोई विभिन्नता नही है, वे आयाम (लम्बाई), विष्कम्भ (चौडाई), सस्थान (आकार) और परिणाह (परिधि) की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते है—समान हैं। इसी प्रकार इसी अभिलाप (कथन) से हैमवत और हैरण्यवत, तथा हरिवर्ष और रम्यकवर्ष भी परस्पर सर्वथा समान कहे गये हैं (२६९)।

२७०—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम पच्चत्थिमे ण दो खेत्ता पण्णत्ता—बहुसम तुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्ण णातिवट्ट ति आयाम विक्खभ-सठाण-परिणाहेण, त जहा पुव्वविदेहे चेव, अवरविदेहे चेव।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के पूर्व और पश्चिम मे दो क्षेत्र कहे गये हैं—पूर्व विदेह और अपर विदेह। ये दोनो क्षेत्र प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, नगर-नदी आदि की दृष्टि से

उनमें कोई भिन्नता नहीं है, कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से भी उनमें कोई विभिन्नता नहीं है। इनका आयाम, विष्कम्भ और परिधि भी एक दूसरे के समान है।

२७१—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर दाहिणे णं दो कुराओ पण्णत्ताओ—बहुसम तुल्लाओ जाव देवकुरा चेव, उत्तरकुरा चेव।

तत्थ णं दो महतिमहालया महादुमा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्णं णाइवट्टंति आयाम विक्खंभुच्चत्तोव्वेह संठाण परिणाहेणं, तं जहा—कूडसामली चेव, जंबू चेव सुदंसणा।

तत्थ णं दो देवा महिड्डिया महज्जुइया महाणुभागा महायसा महाबला महासोक्खा पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—गरुले चेव वेणुदेवे अणाढिते चेव जंबुद्दीवाहिवती।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर और दक्षिण में दो कुरु कहे गये हैं—उत्तर में उत्तरकुरु और दक्षिण में देवकुरु। ये दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, नगर-नदी आदि की दृष्टि से उनमें कोई विशेषता नहीं है, कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमें कोई विभिन्नता नहीं है, वे आयाम, विष्कम्भ, संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं। वहां (देवकुरु में) कूटशाल्मली और (उत्तर कुरु में) सुदर्शन जम्बू नाम के दो अति विशाल महावृक्ष हैं। वे दोनों प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, उनमें परस्पर कोई विशेषता नहीं है, कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमें कोई विभिन्नता नहीं है, वे आयाम, विष्कम्भ, उच्चत्व, उद्वेध (मूल, गहराई), संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं। उन पर महान् ऋद्धिवाले, महा द्युतिवाले, महाशक्ति वाले, महान् यशवाले, महान् बलवाले, महान् सौख्यवाले और एक पल्योपम की स्थितिवाले दो देव रहते हैं—कूटशाल्मली वृक्ष पर सुपर्णकुमार जाति का गरुड वेणुदेव और सुदर्शन जम्बूवृक्ष पर जम्बूद्वीप का अधिपति अनादृत देव (२७१)।

पर्वत पद

२७२—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर दाहिणे णं दो वासहरपव्वया पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्णं णातिवट्टंति आयाम विक्खंभुच्चत्तोव्वेह संठाण परिणाहेणं, तं जहा—चुल्लहिमवंते चेव, सिहरिच्चेव। २७३—एवं महाहिमवंते चेव, रुप्पिच्चेव। एवं—णिसढे चेव, णीलवंते चेव।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर और दक्षिण में दो वर्षधर पर्वत कहे गये हैं—दक्षिण में क्षुल्लक हिमवान् और उत्तर में शिखरी। ये दोनों क्षेत्र प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, उनमें परस्पर कोई विशेषता नहीं है, कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमें कोई विभिन्नता नहीं है, वे आयाम, विष्कम्भ, उच्चत्व, उद्वेध, संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं (२७२)। इसी प्रकार महाहिमवान और रुक्मी, तथा निषध और नीलवन्त पर्वत भी परस्पर में क्षेत्र-प्रमाण, कालचक्र-परिवर्तन, आयाम, विष्कम्भ, उच्चत्व, उद्वेध, संस्थान और परिधि में एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं (२७३)। (महाहिमवान् और निषध पर्वत मन्दर के दक्षिण में हैं, और नीलवन्त तथा रुक्मी मन्दर के उत्तर में हैं।)

२७४—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे ण हेमवत हेरण्णवतेसु वासेसु दो वट्टवेयड्ढपव्वता पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्ण णातिवट्टं ति आयाम विक्खभुच्च-त्तोव्वेह-सठाण परिणाहेण, त जहा—सद्दावाती चेव, वियडावाती चेव।

तत्थ ण दो देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसति, त जहा—साती चेव, पभासे चेव।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे हैमवत और उत्तर मे हैरण्यवत क्षेत्र मे दो वृत्त वैताढ्य पर्वत कहे गये हैं, जो परस्पर क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमे कोई विभिन्नता नही है, वे आयाम, विष्कम्भ, उच्चत्व, उद्वेध सस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नही करते हैं। उन पर महान् ऋद्धि वाले यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं—दक्षिण दिशा मे स्थित शब्दापाती वृत्त वैताढ्य पर स्वाति देव और उत्तर दिशा मे स्थित विकटापाती वृत्त वैताढ्य पर प्रभासदेव (२७४)।

२७५—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे ण हरिवास-रम्मएसु वासेसु दो वट्टवेयड्ढपव्वया पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव त जहा—गधावाती चेव, मालवतपरियाए चेव।

तत्थ ण दो देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसति, त जहा—अरुणे चेव, पउमे चेव।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, मन्दर पर्वत के दक्षिण मे, हरिक्षेत्र मे गन्धापाती और उत्तर मे रम्यक क्षेत्र मे माल्यवत्पर्याय नामक दो वृत्त वैताढ्य पर्वत कहे गये हैं। दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उच्चत्व, उद्वेध, सस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का उल्लघन नही करते हैं। उन पर महान् ऋद्धि वाले यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं—गन्धापाती पर अरुणदेव और माल्यवत्पर्याय पर पद्मदेव (२७५)।

२७६—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण देवकुराए कुराए पुव्वावरे पासे, एत्थ ण आस-क्खधग सरिसा अद्धचद-सठाण सठिया दो वक्खारपव्वया पण्णत्ता बहुसमतुल्ला जाव त जहा—सोमणसे चेव, विज्जुप्पभे चेव।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे देवकुरु के पूर्व पार्श्व मे सौमनस और पश्चिम पार्श्व मे विद्युत्प्रभ नाम के दो वक्षार पर्वत कहे गये हैं। वे अश्व-स्कन्ध के सदृश (आदि मे नीचे और अन्त मे ऊंचे) तथा अर्धचन्द्र के आकार से अवस्थित हैं। वे दोनो क्षेत्र प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश है, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उच्चत्व, उद्वेध, सस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नही करते हैं (२७६)।

२७७—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण उत्तरकुराए कुराए पुव्वावरे पासे, एत्थ ण आस-क्खधग सरिसा अद्धचद सठाण सठिया दो वक्खारपव्वया पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव त जहा—गधमायणे चेव, मालवते चेव।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर मे उत्तरकुरु के पूर्व पार्श्व मे गन्धमादन और

अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नही करते हैं। वहाँ महान् ऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपमकी स्थितिवाली दो देवताए रहती हैं—पद्मद्रह मे श्री और पौण्डरीकद्रह मे लक्ष्मी।

२८८—एव महाहिमवत रुप्पीसु वासहरपव्वएसु दो महद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव त जहा—महापउमद्दहे चेव, महापोंडरीयद्दहे चेव।

तत्थ ण दो देवयाओ हिरिच्चेव, बुद्धिच्चेव।

इसी प्रकार महाहिमवान् और रुक्मी वर्षधर पर्वत पर दो महाद्रह कहे गये है, जो क्षेत्र प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध, संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नही करते हैं। वहाँ दो देवियाँ रहती हैं—महापद्मद्रह मे ह्री और महापौण्डरीक द्रह मे बुद्धि।

२८९—एव—णिसढ णीलवतेसु तिगिछद्दहे चेव, केसरिद्दहे चेव।

तत्थ ण दो देवताओ धिती चेव, कित्ती चेव।

इसी प्रकार निषध और नीलवन्त वर्षधर पर्वत पर दो महाद्रह कहे गये हैं, जो क्षेत्र प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नही करते हैं। वहाँ दो देविया रहती है—तिगिच्छिद्रह के धृति और केसरीद्रह मे कीर्ति।

महानदी पद

२९०—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण महाहिमवताओ वासहरपव्वयाओ महापउमद्दहाओ दहाओ दो महाणईओ पवहति, त जहा—रोहियच्चेव, हरिकतच्चेव।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के महापद्मद्रह से रोहिता और हरिकान्ता नाम की दो महानदिया प्रवाहित होती हैं।

२९१—एव—णिसढाओ वासहरपव्वयाओ तिगिछद्दहाओ दहाओ दो महाणईओ पवहति, त जहा—हरिच्चेव, सीतोदच्चेव।

इसी प्रकार निषध वर्षधर पर्वत के तिगिछद्रह नामक महाद्रह से हरित और सीतोदा नामकी दो महानदियाँ प्रवाहित होती है।

२९२—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण णीलवताओ वासहरपव्वताओ केसरिद्दहाओ दहाओ दो महाणईओ पवहति, त जहा—सीता चेव, णारिकता चेव।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप के मन्दर पर्वत के उत्तर मे नीलवान् वर्षधर पर्वत के केसरीनामक महाद्रह से सीता और नारीकान्ता नामकी दो महानदिया प्रवाहित होती है।

२९३—एव—रुप्पीओ वासहरपव्वताओ महापोंडरीयद्दहाओ दहाओ दो महाणईओ पवहति, त जहा—णरकता चेव, रुप्पकूला चेव।

इसी प्रकार रुक्मी वर्षधर पर्वत के महापौण्डरीक द्रह नामक महाद्रह से रक्तान्ता और रूप्यकूला नामकी दो महानदियाँ प्रवाहित होती हैं।

प्रपातद्रह पद

२६४—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं भरहे वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला, तं जहा—गंगप्पवायद्दहे चेव, सिंधुप्पवायद्दहे चेव।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में भरत क्षेत्र में दो प्रपातद्रह कहे गये हैं—गंगाप्रपातद्रह और सिन्धु प्रपातद्रह। वे दोनों क्षेत्रप्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत्, आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध, संस्थान और परिधि की अपेक्षा वे एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं।

२६५—एवं—हेमवए वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला, तं जहा—रोहियप्पवायद्दहे चेव, रोहियंसप्पवायद्दहे चेव।

इसी प्रकार हैमवत क्षेत्र में दो प्रपातद्रह कहे गये हैं—रोहितप्रपात द्रह और रोहितांश प्रपात द्रह। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध, संस्थान और परिधि की अपेक्षा ये एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं।

२६६—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं हरिवासे वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला, तं जहा—हरिपवायद्दहे चेव, हरिकंतप्पवायद्दहे चेव।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में हरि वर्ष क्षेत्र में दो प्रपातद्रह कहे गये हैं—हरितप्रपात द्रह और हरिकान्तप्रपात द्रह। ये दोनों क्षेत्र प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध, संस्थान और परिधि की अपेक्षा वे एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं।

२६७—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर दाहिणे णं महाविदेहे वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव तं जहा—सीतप्पवायद्दहे चेव, सीतोदप्पवायद्दहे चेव।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण में महाविदेह क्षेत्र में दो महाप्रपातद्रह कहे गये हैं—सीताप्रपातद्रह और सीतोदाप्रपातद्रह। ये दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध, संस्थान और परिधि की अपेक्षा ये एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं।

२६८—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं रम्मए वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव तं जहा—णरकंतप्पवायद्दहे चेव, णारिकंतप्पवायद्दहे चेव।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर में रम्यक क्षेत्र में दो प्रपातद्रह कहे गये हैं—नरकान्ता प्रपातद्रह और नारीकान्ताप्रपातद्रह। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध संस्थान और परिधि की अपेक्षा ये एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं।

२९९—एव—हेरण्णवते वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव त जहा—सुवण्णकूलप्पवायद्दहे चेव, रुप्पकूलप्पवायद्दहे चेव।

इसी प्रकार हैरण्यवत क्षेत्र मे दो प्रपातद्रह कहे गये है—स्वर्ण-कूलाप्रपातद्रह और रूप्यकूला-प्रपातद्रह। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सवथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध, सस्थान और परिधि की अपेक्षा वे एक दूसरे का अतिक्रमण नही करते हैं।

३००—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण एरवए वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव त जहा—रत्तप्पवायद्दहे चेव, रत्तावईपवायद्दहे चेव।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पवत के उत्तर म ऐरवत क्षेत्र मे दो प्रपातद्रह कहे गये हैं—रक्ताप्रपातद्रह और रक्तवतीप्रपातद्रह। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सवथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध, सस्थान और परिधि की अपेक्षा वे एक दूसरे का अतिक्रमण नही करते है।

महानदी पद

३०१—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण भरहे वासे दो महाणईओ पण्णत्ताओ—बहुसमतुल्लाओ जाव त जहा—गगा चेव, सिधू चेव।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप म मन्दर पवत के दक्षिण मे भरत क्षेत्र मे दो महानदिया कही गई हैं—गगा और सिन्धु। वे दोनो क्षेत्र प्रमाण की दृष्टि से सवथा सदृश है, यावत आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध, सस्थान और परिधि की अपेक्षा व एक दूसरे का अतिक्रमण नही करती हैं।

३०२—एव—जहा—पवातद्दहा, एव णईओ भाणियव्वाओ जाव एरवए वासे दो महाणईओ पण्णत्ताओ—बहुसमतुल्लाओ जाव त जहा—रत्ता चेव, रत्तावती चेव।

इसी प्रकार जैसे प्रपातद्रह कहे गये है, उसी प्रकार नदियाँ कहनी चाहिए। यावत् एरवत क्षेत्र मे दो महानदियाँ कही गई हैं—रक्ता और रक्तवती। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सवथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध, सस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नही करती हैं।

कालचक्र-पद

जबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमदूसमाए समाए दो सागरोवमकोडाकोडीओ काले होत्था। ३०४—जबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु इमीसे ओसप्पिणीए सुसमदूसमाए समाए दो सागरोवमकोडाकोडीओ काले पण्णत्ते। ३०५—जबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु आगमिस्साए उस्सप्पिणीए सुसमदूसमाए समाए दो सागरोवमकोडाकोडीओ काले भविस्सति।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे भरत और ऐरवत क्षेत्र मे अतीत उत्सर्पिणी के सुषम-दुषमा आरे का काल दो कोडा-कोडी सागरोपम था (३०३)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे भरत और एरवत क्षेत्र मे वर्तमान अवसर्पिणी के सुषम-दुषमा आरे का काल दो कोडाकोडी सागरोपम कहा गया है (३०४)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे आगामी सुषम-दुषमा आरे का काल दो कोडा-कोटी सागरोपम होगा (३०५)।

३०६—जम्बुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमाए समाए मणुया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेण होत्था, दोण्णि य पलिओवमाइं परमाउं पालइत्था। ३०७—एवमिमीसे ओसप्पिणीए जाव पालइत्था। ३०८—एवमागमेस्साए उस्सप्पिणीए जाव पालयिस्सति।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी के सुषमा नामक आरे में मनुष्यों की ऊंचाई दो गव्यूति (कोश) की थी और उनकी उत्कृष्ट आयु दो पल्योपम की थी (३०६)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में भरत और एरवत क्षेत्र में वर्तमान अवसर्पिणी के सुषमा नामक आरे में मनुष्यों की ऊंचाई दो गव्यूति (कोश) की थी और उनकी उत्कृष्ट आयु दो पल्योपम की थी (३०७)। इसी प्रकार यावत् आगामी उत्सर्पिणी के सुषमा नामक आरे में मनुष्यों की ऊँचाई दो गव्यूति (कोश) और उत्कृष्ट आयु दो पल्योपम की होगी (३०८)।

शलाका पुरुष वंश पद

३०९—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु 'एगसमये एगजुगे' दो अरहंतवंसा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा। ३१०—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो चक्कवट्टिवंसा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा। ३११—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो दसारवंसा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में भरत और एरवत क्षेत्र में एक समय में, एक युग में अरहंतों के दो वंश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (३०९)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में भरत क्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र में एक समय में, एक युग में चक्रवर्तियों के दो वंश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (३१०)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में भरत और ऐरवत क्षेत्र में एक समय में एक युग में दो दसार—(बलदेव वासुदेव) वंश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (३११)।

शलाका पुरुष-पद

३१२—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो अरहंता उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा। ३१३—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो चक्कवट्टी उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा। ३१४—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो बलदेवा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा। ३१५—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो वासुदेवा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में, भरत और ऐरवत क्षेत्र में, एक समय में एक युग में दो अरहंत उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (३१२)। जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भरत और ऐरवत क्षेत्र में, एक समय में, एक युग में दो चक्रवर्ती उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (३१३)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में भरत और ऐरवत क्षेत्र में एक समय में एक युग में दो बलदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (३१४)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में भरत और ऐरवत क्षेत्र में एक समय में एक युग में दो वासुदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (३१५)।

कालानुभाव पद

३१६—जंबुद्दीवे दीवे दोसु कुरासु मणुया सया सुसमसुसममुत्तमं इड्ढिं पत्ता पच्चणुभवमाणा

विहरंति, तं जहा—देवकुराए चेव, उत्तरकुराए चेव। ३१७—जंबुद्दीवे दीवे दोसु वासेसु मणुया सया सुसममुत्तमं इड्ढिं पत्ता पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—हरिवासे चेव, रम्मगवासे चेव। ३१८—जंबुद्दीवे दीवे दोसु वासेसु मणुया सया सुसमदूसममुत्तमर्मिड्ढिं पत्ता पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—हेमवए चेव, हेरण्णवए चेव। ३१९—जंबुद्दीवे दीवे दोसु खेत्तेसु मणुया सया दूसमसुसममुत्तमर्मिड्ढिं पत्ता पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—पुव्वविदेहे चेव, अवरविदेहे चेव। ३२०—जंबुद्दीवे दीवे दोसु वासेसु मणुया छव्विहंपि कालं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—भरहे चेव, एरवते चेव।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण और उत्तर के देवकुरु और उत्तरकुरु में रहने वाले मनुष्य सदा सुषम-सुषमा नामक प्रथम आरे की उत्तम ऋद्धि को प्राप्त कर उसका अनुभव करते हुए विचरते हैं (३१६)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में हरिक्षेत्र और उत्तर में रम्यक क्षेत्र में रहने वाले मनुष्य सदा सुषमा नामक दूसरे आरे की उत्तम ऋद्धि को प्राप्त कर उसका अनुभव करते हुए विचरते हैं (३१७)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में हैमवत क्षेत्र में और उत्तर के हैरण्यवत क्षेत्र में रहने वाले मनुष्य सदा सुषम दुषमा नाम तीसरे आरे की उत्तम ऋद्धि को प्राप्त कर उसका अनुभव करते हुए विचरते हैं (३१८)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व में पूर्व विदेह और पश्चिम में अपर—(पश्चिम—) विदेह क्षेत्र में रहने वाले मनुष्य सदा दुषम-सुषमा नामक चौथे आरे की उत्तम ऋद्धि को प्राप्त कर उसका अनुभव करते हुए विचरते हैं (३१९)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में भरत क्षेत्र और उत्तर में ऐरवत क्षेत्र में रहने वाले मनुष्य छहों प्रकार के काल का अनुभव करते हुए विचरते हैं (३२०)।

चन्द्र-सूर्य-पद

३२१—जंबुद्दीवे दीवे—दो चंदा पभासिंसु वा पभासंति वा पभासिस्संति वा। ३२२—दो सूरिआ तविंसु वा तवंति वा तविस्संति वा।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में दो चन्द्र प्रकाश करते थे, प्रकाश करते हैं और प्रकाश करेंगे (३२१)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में दो सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे (३२२)।

नक्षत्र पद

३२३—दो कित्तियाओ, दो रोहिणीओ, दो मग्गसिराओ, दो अद्दाओ, दो पुणव्वसू, दो पूसा, दो अस्सलेसाओ, दो महाओ, दो पुव्वाफग्गुणीओ, दो उत्तराफग्गुणीओ, दो हत्था, दो चित्ताओ, दो साईओ, दो विसाहाओ, दो अणुराहाओ, दो जेट्ठाओ, दो मूला, दो पुव्वासाढाओ, दो उत्तरासाढाओ, दो अभिईओ, दो सवणा, दो धणिट्ठाओ, दो सयभिसया, दो पुव्वाभद्दवयाओ, दो उत्तराभद्दवयाओ, दो रेवतीओ, दो अस्सिणीओ, दो भरणीओ, [जोयं जोएसु वा जोएंति वा जोइस्संति वा?]।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में दो कृत्तिका, दो रोहिणी, दो मृगशिरा, दो आर्द्रा, दो पुनर्वसु, दो पुष्य, दो अश्लेषा, दो मघा, दो पूर्वाफाल्गुनी, दो उत्तराफाल्गुनी, दो हस्त, दो चित्रा, दो स्वाति, दो विशाखा, दो अनुराधा, दो ज्येष्ठा, दो मूल, दो पूर्वाषाढा, दो उत्तराषाढा, दो अभिजित, दो श्रवण,

दो धनिष्ठा, दो शतभिषा, दो पूर्वा भाद्रपद दो उत्तरा भाद्रपद, दो रेवती, दो अश्विनी, दो भरणी, इन नक्षत्रों ने चन्द्र के साथ योग किया था, योग करते हैं और योग करेंगे (३२३)।

नक्षत्र देव पद

३२४—दो अग्गी, दो पयावती, दो सोमा, दो रुद्दा, दो अदिती, दो बहस्सती, दो सप्पा, दो पिती, दो भगा, दो अज्जमा, दो सविता, दो तट्ठा, दो वाऊ, दो इदग्गी, दो मित्ता, दो इंदा, दो णिरती, दो आऊ, दो विस्सा, दो बम्हा, दो विण्हू, दो वसू, दो वरुणा, दो अया, दो विविद्धी, दो पुस्सा, दो अस्सा, दो यमा।

नक्षत्रों के दो दो देव हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—दो अग्नि, दो प्रजापति, दो सोम, दो रुद्र, दो अदिति, दो बृहस्पति, दो सर्प, दो पितृ-देवता, दो भग, दो अर्यमा, दो सविता, दो त्वष्टा, दो वायु, दो इन्द्राग्नि, दो मित्र, दो इन्द्र, दो निर्ऋति, दो अप्, दो विश्वा, दो ब्रह्मा, दो विष्णु, दो वसु, दो वरुण, दो अज, दो विवृद्धि, दो पूषन्, दो अश्व, दो यम।

महाग्रह पद

३२५—दो इंगालगा, दो वियालगा, दो लोहितक्खा, दो सणिच्चरा, दो आहुणिया, दो पाहुणिया, दो कणा, दो कणगा, दो कणकणगा, दो कणगविताणगा, दो कणगसंताणगा, दो सोमा, दो सहिया, दो आसासणा, दो कज्जोवगा, दो कब्बडगा, दो अयकरगा, दो दुंदुभगा, दो संखा, दो संखवण्णा, दो संखवण्णाभा, दो कंसा, दो कंसवण्णा, दो कंसवण्णाभा, दो रुप्पी, दो रुप्पाभासा', दो णीला, दो णीलोभासा, दो भासा, दो भासरासी, दो तिला, दो तिलपुप्फवण्णा, दो दगा, दो दगपंचवण्णा, दो काका, दो कक्कंधा, दो इंदग्गी, दो धूमकेऊ, दो हरी, दो पिंगला, दो बुद्धा, दो सुक्का, दो बहस्सती, दो राहू, दो अगत्थी, दो माणवगा, दो कासा, दो फासा, दो धुरा, दो पमुहा, दो वियडा, दो विसंधी, दो णियल्ला, दो पइल्ला, दो जडियाइलगा, दो अरुणा, दो अग्गिल्ला, दो काला, दो महाकालगा, दो सोत्थिया, दो सोवत्थिया, दो वद्धमाणगा, दो पलंबा, दो णिच्चालोगा, दो णिच्चुज्जोता, दो सयंपभा, दो ओभासा, दो सेयंकरा, दो खेमंकरा, दो आभंकरा, दो पभंकरा, दो अपराजिता, दो अरया, दो असोगा, दो विगतसोगा, दो विमला, (दो वितता, दो वितत्था), दो विसाला, दो साला, दो सुव्वता, दो अणियट्टी, दो एगजडी, दो दुजडी, दो करकरिगा, दो रायग्गला, दो पुप्फकेतू, दो भावकेऊ, [चारं चरिंसु वा चरंति वा चरिस्संति वा ?]।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में दो अंगारक, दो विकालक, दो लोहिताक्ष, दो शनिश्चर, दो आहुन, दो प्राहुन, दो कन, दो कनक, दो कनकवितानक, दो कनकसंतानक, दो सोम, दो सहित, दो आश्वासन, दो कार्योपग, दो कर्बटक, दो अजकरक, दो दुंदुभक, दो शंख, दो शंखवर्ण, दो शंख-वर्णाभ, दो कंस, दो कंसवर्ण, दो कंसवर्णाभ, दो रुक्मी, दो रुक्माभास, दो नील, दो नीलाभास, दो भस्म, दो भस्मराशि, दो तिल, दो तिलपुष्पवर्ण, दो दक, दो दकपंचवर्ण, दो काक, दो कर्कन्ध, दो इन्द्राग्नि, दो धूमकेतु, दो हरि, दो पिंगल, दो बुद्ध, दो शुक्र, दो बृहस्पति, दो राहु, दो अगस्ति, दो मानवक, दो काश, दो स्पर्श, दो धुर, दो प्रमुख, दो विकट, दो विसन्धि, दो नियल्ल, दो पदल्ल, दो जटितालक, दो अरुण, दो अग्निल, दो काल, दो महाकालक, दो स्वस्तिक, दो

विहरति, त जहा—देवकुराए चेव, उत्तरकुराए चेव। ३१७—जंबुद्दीवे दीवे दोसु वासेसु मणुया सया सुसममुत्तम इड्ढि पत्ता पच्चणुभवमाणा विहरंति, त जहा—हरिवासे चेव, रम्मगवासे चेव। ३१८—जंबुद्दीवे दीवे दोसु वासेसु मणुग्रा सया सुसमदूसममुत्तममिड्ढि पत्ता पच्चणुभवमाणा विहरंति, त जहा—हेमवए चेव, हेरण्णवए चेव। ३१९—जंबुद्दीवे दीवे दोसु खेत्तेसु मणुया सया दूसमसुसम मुत्तममिड्ढि पत्ता पच्चणुभवमाणा विहरंति, त जहा—पुव्वविदेहे चेव, अवरविदेहे चेव। ३२०—जंबुद्दीवे दीवे दोसु वासेसु मणुया छव्विहपि काल पच्चणुभवमाणा विहरंति, त जहा—भरहे चेव, एरवते चेव।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण और उत्तर के देवकुरु और उत्तरकुरु मे रहने वाले मनुष्य सदा सुषम-सुषमा नामक प्रथम आरे की उत्तम ऋद्धि को प्राप्त कर उसका अनुभव करते हुए विचरते हैं (३१६)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे हरिक्षेत्र और उत्तर मे रम्यक क्षेत्र मे रहने वाले मनुष्य सदा सुषमा नामक दूसरे आरे की उत्तम ऋद्धि को प्राप्त कर उसका अनुभव करते हुए विचरते हैं (३१७)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे हैमवत क्षेत्र में और उत्तर के हैरण्यत क्षेत्र में रहने वाले मनुष्य सदा सुषम-दुषमा नाम तीसरे आरे की उत्तम ऋद्धि को प्राप्त कर उसका अनुभव करते हुए विचरते हैं (३१८)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के पूर्व मे पूर्व विदेह और पश्चिम मे अपर—(पश्चिम—) विदेह क्षेत्र मे रहने वाले मनुष्य सदा दुषम-सुषमा नामक चौथे आरे की उत्तम ऋद्धि को प्राप्त कर उसका अनुभव करते हुए विचरते हैं (३१९)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे भरत क्षेत्र और उत्तर मे ऐरवत क्षेत्र मे रहने वाले मनुष्य छहों प्रकार के काल का अनुभव करते हुए विचरते हैं (३२०)।

चन्द्र-सूर्य पद

३२१—जंबुद्दीवे दीवे—दो चदा पभासिसु वा पभासति वा पभासिस्सति वा। ३२२—दो सूरिआ तविसु वा तवति वा तविस्सति वा।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे दो चन्द्र प्रकाश करते थे, प्रकाश करते हैं और प्रकाश करेंगे (३२१)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में दो सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे (३२२)।

नक्षत्र-पद

३२३—दो कित्तियाओ, दो रोहिणीओ, दो मग्गसिराओ, दो अद्दाओ, दो पुणव्वसू, दो पूसा, दो अस्सलेसाओ, दो महाओ दो पुव्वाफग्गुणीओ, दो उत्तराफग्गुणीओ, दो हत्था, दो चित्ताओ, दो साईओ, दो विसाहाओ, दो अणुराहाओ, दो जेट्ठाओ, दो मूला, दो पुव्वासाढाओ, दो उत्तरासाढाओ, दो अभिईओ, दो सवणा, दो धणिट्ठाओ, दो सयभिसया, दो पुव्वाभद्दवयाओ, दो उत्तराभद्दवयाओ, दो रेवतीओ, दो अस्सिणीओ, दो भरणीओ, [जोय जोएसु वा जोएंति वा जोइस्संति वा ?]।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे दो कृत्तिका, रोहिणी, दो मृगशिरा, दो आर्द्रा, दो पुनर्वसू, दो पुष्य, दो अश्लेषा, दो मघा, दो पूर्वाफाल्गुणी, दो उत्तराफाल्गुणी, दो हस्त, दो चित्रा, दो स्वाति, दो विशाखा, दो अनुराधा, दो ज्येष्ठा, दो मूल, दो पूर्वाषाढा, दो उत्तराषाढा, दो अभिजित, दो श्रवण,

दो धनिष्ठा, दो शतभिषा, दो पूर्वा भाद्रपद दो उत्तरा भाद्रपद, दो रेवती, दो अश्विनी, दो भरणी, इन नक्षत्रों ने चन्द्र के साथ योग किया था, योग करते हैं और योग करेंगे (३२३)।

नक्षत्र देव पद

३२४—दो अग्गी, दो पयावती, दो सोमा, दो रुद्दा, दो अदिती, दो बहस्सती, दो सप्पा, दो पिती, दो भगा, दो अज्जमा, दो सविता, दो तट्ठा, दो वाऊ, दो इदग्गी, दो मित्ता, दो इंदा, दो णिरती, दो आऊ, दो विस्सा, दो बम्हा, दो विण्हू, दो वसू, दो वरुणा, दो अया, दो विविद्धी, दो पुस्सा, दो अस्सा, दो यमा।

नक्षत्रों के दो दो देव हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—दो अग्नि, दो प्रजापति, दो सोम, दो रुद्र, दो अदिति, दो बृहस्पति, दो सर्प, दो पितृ-देवता, दो भग, दो अर्यमा, दो सविता, दो त्वष्टा, दो वायु, दो इन्द्राग्नि, दो मित्र, दो इन्द्र, दो निऋति, दो अप् दो विश्वा, दो ब्रह्म, दो विष्णु, दो वसु, दो वरुण, दो अज, दो विवृद्धि, दो पूषन्, दो अश्व, दो यम।

महाग्रह पद

३२५—दो इंगालगा, दो वियालगा, दो लोहितक्खा, दो सणिच्चरा, दो आहुणिया, दो पाहुणिया, दो कणा, दो कणगा, दो कणकणगा, दो कणगवितारणगा, दो कणगसंताणगा, दो सोमा, दो सहिया, दो आसासणा, दो कज्जोवगा, दो कब्बडगा, दो अयकरगा, दो दुंदुभगा, दो संखा, दो संखवण्णा, दो संखवण्णाभा, दो कंसा, दो कंसवण्णा, दो कंसवण्णाभा, दो रुप्पी, दो रुप्पाभासा', दो णीला, दो णीलोभासा, दो भासा, दो भासरासी, दो तिला, दो तिलपुप्फवण्णा, दो दगा, दो दगपंचवण्णा, दो काका, दो कक्कंधा, दो इंदग्गी, दो धूमकेऊ, दो हरी, दो पिंगला, दो बुद्धा, दो सुक्का, दो बहस्सती, दो राहू, दो अगत्थी, दो माणवगा, दो कासा, दो फासा, दो धुरा, दो पमुहा, दो वियडा, दो विसंधी, दो णियल्ला दो पइल्ला, दो जडियाइलगा, दो अरुणा, दो अग्गिल्ला, दो काला, दो महाकालगा, दो सोत्थिया, दो सोवत्थिया, दो वद्धमाणगा, दो पलंबा, दो णिच्चालोगा, दो णिच्चुज्जोता, दो सयंपभा, दो ओभासा, दो सेयंकरा, दो खेमंकरा, दो आभंकरा, दो पभंकरा, दो अपराजिता, दो अरया, दो असोगा, दो विगतसोगा, दो विमला, (दो वितता, दो वितत्था), दो विसाला, दो साला, दो सुव्वता, दो अणियट्टी, दो एगजडी, दो दुजडी, दो करकरिगा, दो रायग्गला, दो पुप्फकेतू, दो भावकेऊ, [चारं चरिंसु वा चरंति वा चरिस्संति वा ?]।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में दो अंगारक, दो विकालक, दो लोहिताक्ष, दो शनिश्चर, दो आहुत, दो प्राहुत, दो कन, दो कनक, दो कनकवितानक, दो कनकसंतानक, दो सोम, दो सहित, दो आश्वासन, दो कार्योपग, दो कर्बटक, दो अजकरक, दो दुंदुभक, दो शंख, दो शंखवर्ण, दो शंख-वर्णाभ, दो कंस, दो कंसवर्ण, दो कंसवर्णाभ, दो रुक्मी, दो रुक्माभास, दो नील, दो नीलाभास, दो भस्म, दो भस्मराशि, दो तिल, दो तिलपुष्पवर्ण, दो दक, दो दकपंचवर्ण, दो काक, दो कर्कन्ध, दो इन्द्राग्नि, दो धूमकेतु दो हरि, दो पिंगल, दो बुद्ध, दो शुक्र, दो बृहस्पति, दो राहु, दो अगस्ति, दो माणवक, दो काश, दो स्पर्श, दो धुर, दो प्रमुख, दो विकट, दो विसन्धि, दो नियल्ल, दो पदल्ल, दो जटितायलक, दो अरुण, दो अग्निल, दो काल, दो महाकालक, दो स्वस्तिक, दो

सौवस्तिक, दो वधमानक, दो प्रलम्ब, दो नित्यालोक, दो नित्योद्योत, दो स्वयम्प्रभ, दो अवभास, दो श्रेयस्कर, दो क्षेमकर, दो आभकर, दो प्रभकर, दा अपराजित, दो अजरस्, दो अशोक, दो विगत-शोक, दो विमल, दो वितत, दो वित्रस्त, दो विशाल, दो शाल, दो सुव्रत, दो अनिवृत्ति, दो एक जटिन्, दो जटिन्, दो करकरिक, दो दोराजागल, दो पुष्पकेतु, दो भावकेतु, इन ८८ महाग्रहो ने चार (सचरण) किया था, चार करते हैं और चार करेंगे।

जम्बूद्वीप वेदिका पद

३२६—जबुद्दीवस्स ण दीवस्स वेइया दो गाउयाइ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता।

जम्बूदीप नामक द्वीप की वेदिका दो कोश ऊची कही गई है।

लवण समुद्र-पद

३२७—लवणे ण समुद्दे दो जोयणसयसहस्साइ चक्कवालविक्खभेण पण्णत्ते। ३२८—लवणस्स ण समुद्दस्स वेइया दो गाउयाइ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता।

लवण समुद्र का चक्रवाल विष्कम्भ (वलयाकार विस्तार) दो लाख योजन कहा गया है (३२७)। लवण समुद्र की वेदिका दो कोश ऊची कही गई है (३२८)।

धातकीषण्ड पद

३२९—धायइसडे दीवे पुरत्थिमद्धे ण मदरस्स पव्वयस्स उत्तर दाहिणे ण दो वासा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव त जहा—भरहे चेव, एरवए चेव।

धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध मे मन्दर पवत के उत्तर दक्षिण मे दो क्षेत्र कहे गये है—दक्षिण मे भरत और उत्तर मे ऐरवत। वे दोनो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, सस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नही करते हैं।

३३०—एव—जहा जबुद्दीवे तहा एत्थवि भाणियव्व जाव दोसु वासेसु मणुया छव्विहपि काल पच्चणुभवमाणा विहरति, त जहा—भरहे चेव, एरवए चेव, णवर—कूडसामली चेव, धायईरुक्खे चेव। देवा—गरुले चेव वेणुदेवे, सुदसणे चेव।

इसी प्रकार जैसा जम्बू द्वीप के प्रकरण मे वणन किया गया है, वसा ही यहा पर भी कहना चाहिए, यावत् भरत और ऐरवत इन दोनो क्षेत्रो में मनुष्य छहो ही कालो के अनुभाव को अनुभव करते हुए विचरते हैं। विशेष इतना है कि यहाँ वृक्ष दो हैं—कूटशाल्मली और धातकी वृक्ष। कूट-शाल्मली वृक्ष पर गरुडकुमार जाति का वेणुदेव और धातकी वृक्ष पर सुदर्शन देव रहता है।

३३१—धायइसडे दीवे पच्चत्थिमद्धे ण मदरस्स पव्वयस्स उत्तर दाहिणे ण दो वासा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव त जहा—भरहे चेव, एरवए चेव।

धातकीपण्ड द्वीप के पश्चिमार्ध मे मन्दर पवत के उत्तर दक्षिण मे दो क्षेत्र कहे गये हैं—दक्षिण मे भरत और उत्तर में ऐरवत। वे दोना क्षेत्र प्रमाण की दृष्टि मे सवथा सदृश हैं, यावत् आयाम विष्कम्भ, सस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नही करते हैं।

३३२—एव—जहा जबुद्दीवे तहा एत्यवि भाणियव्वं जाव छव्विहपि काल पच्चणुभवमाणा विहरति, त जहा—भरहे चेव, एरवए चेव, णवर—कूडसामली चेव, महाधायईरुक्खे चेव। देवा गरुले चेव वेणुदेवे, पियदसणे चेव।

इसी प्रकार जैसा जम्बूद्वीप के प्रकरण मे वणन किया है, वसा ही यहाँ पर भी कहना चाहिए, यावत भरत और ऐरवत इन दोनो क्षेत्रो मे मनुष्य छहा ही कालो के अनुभाव का अनुभव करते हुए विचरते है। विशेष इतना है कि यहा वृक्ष दो हैं—कूटशाल्मली और महाधातकी वृक्ष। कूट शाल्मली पर गरुडकुमार जाति का वेणुदेव और महाधातकी वृक्ष पर प्रियदशन देव रहता है।

३३३—धायइसडे ण दीवे दो भरहाइ, दो एरवयाइ, दो हेमवयाइ, दो हेरण्णवयाइ, दो हरिवासाइ, दो रम्मगवासाइ, दो पुव्वविदेहाइ, दो अवरविदेहाइ, दो देवकुराओ, दो देवकुरमहद्दुमा, दो देवकुरुमहद्दुमवासी दवा, दो उत्तरकुराओ, दो उत्तरकुरुमहद्दुमा, दो उत्तरकुरुमहद्दुमवासी देवा। ३३४—दो चुल्लहिमवता, दो महाहिमवता, दो णिसढा, दो णीलवता, दो रुप्पी, दो सिहरी। ३३५—दो सद्दावाती, दो सद्दावातिवासी साती देवा, दो वियडावाती, दो वियडावातिवासी पभासा देवा, दो गधावाती, दो गधावातिवासी अरुणा देवा, दो मालवतपरियागा, दो मालवतपरियागवासी पउमा देवा।

धातकीषण्ड द्वीप मे दो भरत, दो ऐरवत, दो हैमवत, दो हैरण्यवत, दो हरिवष, दो रम्यक वष, दो पूव विदेह, दो अपर विदेह, दो देवकुरु, दो देवकुरु महाद्रुम, दो देवकुरु महाद्रुमवासी देव, दो उत्तर कुरु, दो उत्तर कुरुमहाद्रुम और दो उत्तर कुरु महाद्रुमवासी देव कहे गये हैं (३३३)। वहाँ दो चुल्ल हिमवान्, दो महाहिमवान्, दो निषध, दो नीलवान्, दो रुक्मी और दो शिखरी वषधर पवत कहे गये हैं (३३४)। वहाँ दो शब्दापाती, दो शब्दापाति-वासी स्वाति देव, दो विकटापाती, दो विकटापातिवासी प्रभासदेव, दो गन्धापाती, दो गन्धापातिवासी अरुणदेव, दो माल्यवत्पर्याय, दो माल्यवत्पर्यायवासी पद्मदेव, ये वृत्त वैताढ्य पवत और उन पर रहने वाले देव कहे गये हैं (३३५)।

३३६—दो मालवता, दो चित्तकूडा, दो पम्हकूडा, दो णलिणकूडा, दो एगसेला, दो तिकूडा, दो वेसमणकूडा, दो अजणा, दो मातजणा, दो सोमणसा, दो विज्जुप्पभा, दो अकावती, दो पम्हावती, *दो आसीविसा, दो सुहावहा, दो चदपव्वता, दो सूरपव्वता, दो णागपव्वता, दो देवपव्वता,* दो गधमायणा, दो उसुगारपव्वया, दो चुल्लहिमवतकूडा, दो वेसमणकूडा, दो महाहिमवतकूडा, दो वेरुलियकूडा दो णिसढकूडा, दो रुयगकूडा दो णीलवतकूडा, दो उवदसणकूडा, दो रुप्पिकूडा, दो मणिकचणकूडा, दो सिहरिकूडा, दो तिगिछकूडा।

धातकीषण्ड द्वीप मे दो माल्यवान्, दो चित्रकूट, दो पक्ष्मकूट, दो नलिनकूट, दो एकशैल, दो त्रिकूट, दो वैश्रमण कूट, दो अजन, दो मातांजन, दो सौमनस, दो विद्युत्प्रभ, दो अकावती, दो पक्ष्मावती, दो आसीविष, दो सुखावह, दो चन्द्रपवत, दो सूयपवत, दो नागपवत, दो देवपवत, दो गन्धमादन, दो इषुकार पवत, दो चुल्ल हिमवत्कूट, दो वैश्रमण कूट, दो महाहिमवत्कूट, दो वैडूर्यकूट, दो निषधकूट, दो रुचक कूट, दो नीलवत्कूट, दो उपदशनकूट, दो रुक्मिकूट, दो मणिकांचन-कूट दो शिखरि कूट, दो तिगिछ कूट कहे गये हैं।

३३७—दो पउमद्दहा, दो पउमद्दहवासिणीग्रो सिरीग्रो देवीग्रो, दो महापउमद्दहा, दो महापउमद्दहवासिणीग्रो हिरीग्रो देवीग्रो, एव जाव दो पु डरीयद्दहा, दो पोंडरीयद्दहवासिणीओ लच्छीग्रो देवीग्रो ।

धातकीखण्ड द्वीप मे दो पद्मद्रह, दो पद्मद्रहवासिनी श्रीदेवी, दो महापद्मद्रह, दो महापद्मद्रह-वासिनी ह्रीदेवी, इसी प्रकार यावत् (दो तिगिछिद्रह, दो तिगिछिद्रहवासिनी धृतिदेवी, दो केशरीद्रह, दो केशरीद्रहवासिनी कीर्तिदेवी, दो महापौण्डरीकद्रह, दो महापौण्डरीकद्रहवासिनी बुद्धिदेवी) दो पौण्डरीकद्रह, दो पौण्डरीकद्रहवासिनी लक्ष्मीदेवी कही गई है ।

३३८—दो गगप्पवायद्दहा जाव दो रत्तावतीपवातद्दहा ।

धातकीखण्ड द्वीप मे दो गगाप्रपातद्रह, यावत् (दो सिन्धुप्रपातद्रह, दो रोहिताप्रपातद्रह, दो रोहिताशाप्रपातद्रह, दो हरितप्रपातद्रह, दो हरिकान्ताप्रपातद्रह, दो सीताप्रपातद्रह, दो सीतोदाप्रपातद्रह, दो नरकान्ताप्रपातद्रह, दो नारीकान्ताप्रपातद्रह, दो सुवर्णकूलाप्रपातद्रह, दो रूप्यकूलाप्रपातद्रह) दो रक्ताप्रपातद्रह) दो रक्तवतीप्रपातद्रह कहे गये है ।

३३९—दो रोहियाओ जाव दो रुप्पकूलाग्रो, दो गाहवतीग्रो, दो दहवतीग्रो, दो पकवतीग्रो, दो तत्तजलाग्रो, दो मत्तजलाग्रो, दो उम्मत्तजलाग्रो, दो खीरोयाग्रो, दो सीहसोताग्रो, दो अतोवाहिणीग्रो, दो उम्मिमालिणीग्रो, दो फेणमालिणीग्रो, गभीरमालिणीग्रो ।

धातकीखण्ड द्वीप मे दो रोहिता यावत् (दो हरिकान्ता, दो हरित्, दो सीतोदा, दो सीता, दो नारीकान्ता, दो नरकान्ता) दो रूप्यकूला, दो ग्राहवती, दो द्रहवती, दो पकवती, दो तप्तजला, दो मत्तजला, दो उन्मत्तजला, दो क्षीरोदा, दो सिंहस्रोता, दो अन्तोमालिनी, दो उर्मिमालिनी, दो फेनमालिनी और दो गम्भीरमालिनी नदियाँ कही गई हैं ।

विवेचन—यद्यपि धातकीखण्ड द्वीप के दो भरत क्षेत्रो में दो गगा और दो सिन्धु नदिया भी हैं, तथा वही के दो ऐरवत क्षेत्रो मे दो रक्ता और दो रक्तोदा नदिया भी हैं, किन्तु यहाँ पर सूत्र मे उनका निर्देश नही किया गया है, इसका कारण टीकाकार ने यह बताया है कि जम्बूद्वीप के प्रकरण मे कहे गये 'महाहिमवताग्रो वासहरपव्वयाग्रो' इत्यादि सूत्र २९० का आश्रय करने से यहा गगा-सिन्धु आदि नदियो का उल्लेख नही किया गया है ।

३४०—दो कच्छा, दो सुकच्छा, दो महाकच्छा, दो कच्छावती, दो ग्रावत्ता, दो मगलवत्ता, दो पुक्खला, दो पुक्खलावई, दो वच्छा, दो सुवच्छा, दो महावच्छा, दो वच्छगावती, दो रम्मा, दो रम्मगा, दो रमणिज्जा, दो मगलावती, दो पम्हा, दो सुपम्हा, दो महपम्हा, दो पम्हगावती, दो सखा, दो णलिणा दो कुमुया, दो सलिलावती, दो वप्पा, दो सुवप्पा, दो महावप्पा, दो वप्पगावती दो वग्गू, दो सुवग्गू, दो गधिला, दो गधिलावती ।

धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध-सम्बन्धी विदेहो मे दो कच्छ, दो सुकच्छ, दो महाकच्छ, दो कच्छकावती, दो आवर्त, दो मगलावर्त, दो पुष्कल, दो पुष्कलावती, दो वत्स, दो सुवत्स, दो महावत्स, दो वत्सकावती, दो रम्य, दो रम्यक, दो रमणीय, दो मगलावती, दो पक्ष्म, दो सुपक्ष्म, दो महापक्ष्म, दो पक्ष्मकावती, दो शख, दो नलिन, दो कुमुद, दो सलिलावती, दो वप्र,

सुवप्र, दो महावप्र, दो वप्रकावती, दो वल्गु, दो सुवल्गु, दो गंधिल और दो गन्धिलावती ये बत्तीस विजय क्षेत्र हैं।

३४१—दो खेमाओ, दो खेमपुरीओ, दो रिट्ठाओ, दो रिट्ठपुरीओ, दो खग्गीओ, दो मंजूसाओ, दो ओसधीओ, दो पोंडरिगिणीओ, दो सुसीमाओ, दो कुंडलाओ, दो अपराजियाओ, दो पभंकराओ, दो अंकावईओ, दो पम्हावईओ, दो सुभाओ, दो रयणसंचयाओ, दो आसपुराओ, दो सीहपुराओ, दो महापुराओ, दो विजयपुराओ, दो अवराजिताओ, दो अवराओ, दो असोयाओ, दो विगयसोगाओ, दो विजयाओ, दो वेजयंतीओ, दो जयंतीओ, दो अपराजियाओ, दो चक्कपुराओ, दो खग्गपुराओ, दो अवज्झाओ, दो अउज्झाओ।

उपर्युक्त बत्तीस विजयक्षेत्रों में दो क्षेमा, दो क्षेमपुरी, दो रिष्टा, दो रिष्टपुरी, दो खड्गी, दो मंजूषा, दो औषधी, दो पौण्डरीकिणी, दो सुसीमा, दो कुण्डला, दो अपराजिता, दो प्रभंकरा, दो अंकावती, दो पक्ष्मावती, दो शुभा, दो रत्नसंचया, दो अश्वपुरी, दो सिंहपुरी, दो महापुरी, दो विजयपुरी, दो अपराजिता, दो अपरा, दो अशोका, दो विगतशोका, दो विजया, दो वैजयन्ती, दो जयन्ती, दो अपराजिता, दो चक्रपुरी, दो खड्गपुरी, दो अवध्या और दो अयोध्या, ये बत्तीस नगरियाँ हैं (३४१)।

३४२—दो भद्दसालवणा, दो णंदणवणा, दो सोमणसवणा, दो पंडगवणाइं।

धातकीषण्ड द्वीप में दो मन्दरगिरियों पर दो भद्रशालवन, दो नन्दनवन, दो सौमनस वन और दो पण्डक वन हैं (३४२)।

३४३—दो पंडुकंबलसिलाओ, दो अतिपंडुकंबलसिलाओ, दो रत्तकंबलसिलाओ, दो अइरत्तकंबलसिलाओ।

उक्त दोनों पण्डक वनों में दो पाण्डुकम्बल शिला, दो अतिपाण्डुकम्बलशिला, दो रक्तकम्बल शिला और दो अतिरक्तकम्बल शिला (क्रम से चारों दिशाओं में अवस्थित) हैं (३४३)।

३४४—दो मंदरा, दो मंदरचूलियाओ। ३४५—धायइसंडस्स णं दीवस्स वेदिया दो गाउयाइं उड्ढमुच्चत्तेणं पण्णत्ता। ३४६—कालोदस्स णं समुद्दस्स वेइया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

धातकीषण्ड द्वीप में दो मन्दर गिरि हैं और उनकी दो मन्दरचूलिकाएँ हैं।

धातकीषण्ड द्वीप की वेदिका दो कोश ऊंची कही गई है (३४५)। कालोद समुद्र की वेदिका दो कोश ऊंची कही गई है (३४६)।

पुष्करवर-पद

३४७—पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो वासा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला जाव तं जहा—भरहे चेव, एरवए चेव।

अर्ध पुष्करवर द्वीप के पूर्वार्ध में मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण में दो क्षेत्र कहे गये हैं—दक्षिण में भरत और उत्तर में ऐरवत। वे दोनों क्षेत्र प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं यावत् आयाम, विष्कम्भ, संस्थान और परिधि की अपेक्षा वे एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं (३४७)।

३३७—दो पउमद्दहा, दो पउमद्दहवासिणीओ सिरीओ देवीओ, दो महापउमद्दहा, दो महापउमद्दहवासिणीओ हिरीओ देवीओ, एव जाव दो पुंडरीयद्दहा, दो पोंडरीयद्दहवासिणीओ लच्छीओ देवीओ।

धातकीखण्ड द्वीप मे दो पद्मद्रह, दो पद्मद्रहवासिनी श्रीदेवी, दो महापद्मद्रह, दो महापद्मद्रह-वासिनी ह्रीदेवी, इसी प्रकार यावत् (दो तिगिंछिद्रह, दो तिगिंछिद्रहवासिनी धृतिदेवी, दो केशरीद्रह, दो केशरीद्रहवासिनी कीर्त्तिदेवी, दो महापौण्डरीकद्रह, दो महापौण्डरीकद्रहवासिनी बुद्धिदेवी) दो पौण्डरीकद्रह, दो पौण्डरीकद्रहवासिनी लक्ष्मीदेवी कही गई हैं।

३३८—दो गगप्पवायद्दहा जाव दो रत्तावतीपवातद्दहा।

धातकीखण्ड द्वीप मे दो गंगाप्रपातद्रह, यावत् (दो सिन्धुप्रपातद्रह, दो रोहिताप्रपातद्रह, दो रोहितांशाप्रपातद्रह, दो हरितप्रपातद्रह, दो हरिकान्ताप्रपातद्रह, दो सीताप्रपातद्रह, दो सीतोदाप्रपातद्रह, दो नरकान्ताप्रपातद्रह, दो नारीकान्ताप्रपातद्रह, दो सुवर्णकूलाप्रपातद्रह, दो रूप्यकूलाप्रपातद्रह) दो रक्ताप्रपातद्रह) दो रक्तवतीप्रपातद्रह कहे गये हैं।

३३९—दो रोहियाओ जाव दो रुप्पकूलाओ, दो गाहवतीओ, दो दहवतीओ, दो पंकवतीओ, दो तत्तजलाओ, दो मत्तजलाओ, दो उम्मत्तजलाओ, दो खीरोयाओ, दो सीहसोताओ, दो अंतोवाहिणीओ, दो उम्मिमालिणीओ, दो फेणमालिणीओ, गभीरमालिणीओ।

धातकीखण्ड द्वीप मे दो रोहिता यावत् (दो हरिकान्ता, दो हरित्, दो सीतोदा, दो सीता, दो नारीकान्ता, दो नरकान्ता) दो रूप्यकूला, दो ग्राहवती, दो द्रहवती, दो पंकवती, दो तप्तजला, दो मत्तजला, दो उन्मत्तजला, दो क्षीरोदा, दो सिंहस्रोता, दो अन्तोमालिनी, दो उर्मिमालिनी, दो फेनमालिनी और दो गम्भीरमालिनी नदियाँ कही गई है।

विवेचन—यद्यपि धातकीखण्ड द्वीप के दो भरत क्षेत्रो मे दो गगा और दो सिन्धु नदिया भी है, तथा वहीं के दो ऐरवत क्षेत्रो मे दो रक्ता और दो रक्तोदा नदियाँ भी हैं, किन्तु यहाँ पर *सूत्र मे उनका निर्देश नहीं किया गया है, इसका कारण टीकाकार ने यह बताया है कि जम्बूद्वीप* के प्रकरण मे कहे गये 'महाहिमवताओ वासहरपव्वयाओ' इत्यादि सूत्र २९० का आश्रय करने से *यहा गगा-सिन्धु आदि नदियो का उल्लेख नही किया गया है।*

३४०—दो कच्छा, दो सुकच्छा, दो महाकच्छा, दो कच्छावती, दो आवत्ता, दो मगलवत्ता, दो पुक्खला, दो पुक्खलावई, दो वच्छा, दो सुवच्छा, दो महावच्छा, दो वच्छगावती, दो रम्मा, दो रम्मगा, दो रमणिज्जा, दो मगलावती, दो पम्हा, दो सुपम्हा, दो महपम्हा, दो पम्हगावती, दो संखा, दो णलिणा दो कुमुया, दो सलिलावती, दो वप्पा, दो सुवप्पा, दो महावप्पा, दो वप्पगावती दो वग्गू, दो सुवग्गू, दो गधिला, दो गधिलावती।

धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध-सम्बन्धी विदेहो मे दो कच्छ, दो सुकच्छ, दो महाकच्छ, दो कच्छकावती, दो आवर्त, दो मंगलावर्त, दो पुष्कल, दो पुष्कलावती, दो वत्स, दो सुवत्स, दो महावत्स, दो वत्सकावती, दो रम्य, दो रम्यक, दो रमणीय, दो मगलावती, दो पक्ष्म, दो सुपक्ष्म, दो महापक्ष्म, दो पक्ष्मकावती, दो शख, दो नलिन, दो कुमुद, दो सलिलावती, दो वप्र,

सुवप्र, दो महावप्र, दो वप्रकावती, दो वल्गु, दो सुवल्गु, दो गन्धिल और दो गन्धिलावती ये बत्तीस विजय क्षेत्र हैं।

३४१—दो खेमाओ, दो खेमपुरीओ, दो रिट्ठाओ, दो रिट्ठपुरीओ, दो खग्गीओ, दो मंजूसाओ, दो ओसधीओ, दो पोंडरिगिणीओ, दो सुसीमाओ, दो कुंडलाओ, दो अपराजियाओ, दो पभंकराओ, दो अंकावईओ, दो पम्हावईओ, दो सुभाओ, दो रयणसंचयाओ, दो आसपुराओ, दो सीहपुराओ, दो महापुराओ, दो विजयपुराओ, दो अवराजिताओ, दो अवराओ, दो असोयाओ, दो विगयसोगाओ, दो विजयाओ, दो वेजयंतीओ, दो जयंतीओ, दो अपराजियाओ, दो चक्कपुराओ, दो खग्गपुराओ, दो अवज्झाओ, दो अउज्झाओ।

उपर्युक्त बत्तीस विजयक्षेत्रों में दो क्षेमा, दो क्षेमपुरी, दो रिष्टा, दो रिष्टपुरी, दो खड्गी, दो मंजूषा, दो औषधी, दो पौण्डरीकिणी, दो सुसीमा, दो कुण्डला, दो अपराजिता, दो प्रभंकरा, दो अंकावती, दो पक्ष्मावती, दो शुभा, दो रत्नसंचया, दो अश्वपुरी, दो सिंहपुरी, दो महापुरी, दो विजयपुरी, दो अपराजिता, दो अपरा, दो अशोका, दो विगतशोका, दो विजया, दो वैजयन्ती, दो जयन्ती, दो अपराजिता, दो चक्रपुरी, दो खड्गपुरी, दो अवध्या और दो अयोध्या, ये बत्तीस नगरियाँ हैं (३४१)।

३४२—दो भद्दसालवणा, दो णंदणवणा, दो सोमणसवणा, दो पंडगवणाइं।

धातकीषण्ड द्वीप में दो मन्दरगिरियों पर दो भद्रशालवन, दो नन्दनवन, दो सौमनस वन और दो पण्डक वन हैं (३४२)।

३४३—दो पंडुकंबलसिलाओ, दो अतिपंडुकंबलसिलाओ, दो रत्तकंबलसिलाओ, दो अइरत्तकंबलसिलाओ।

उक्त दोनों पण्डक वनों में दो पाण्डुकम्बल शिला, दो अतिपाण्डुकम्बलशिला, दो रक्तकम्बल शिला और दो अतिरक्तकम्बल शिला (क्रम से चारों दिशाओं में अवस्थित) हैं (३४३)।

३४४—दो मंदरा, दो मंदरचूलिआओ। ३४५—धायइसंडस्स णं दीवस्स वेदिया दो गाउयाइं उड्ढमुच्चत्तेणं पण्णत्ता। ३४६—कालोदस्स णं समुद्दस्स वेइया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

धातकीषण्ड द्वीप में दो मन्दर गिरि हैं और उनकी दो मन्दरचूलिकाएँ हैं।

धातकीषण्ड द्वीप की वेदिका दो कोश ऊंची कही गई है (३४५)। कालोद समुद्र की वेदिका दो कोश ऊंची कही गई है (३४६)।

पुष्करवर-पद

३४७—पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो वासा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला जाव तं जहा—भरहे चेव, एरवए चेव।

अर्ध पुष्करवर द्वीप के पूर्वार्ध में मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण में दो क्षेत्र कहे गये हैं— दक्षिण में भरत और उत्तर में ऐरवत। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, संस्थान और परिधि की अपेक्षा वे एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं (३४७)।

३४८—तहेव जाव दो कुराओ पण्णत्ताओ—देवकुरा चेव, उत्तरकुरा चेव।

तत्थ ण दो महतिमहालया महद्दुमा पण्णत्ता, त जहा—कूडसामली चेव, पउमरुक्खे चेव। देवा—गरुले चेव वेणुदेवे, पउमे चेव जाव छव्विहपि काल पच्चणुभवमाणा विहरति।

तथैव यावत् (जम्बूद्वीप के प्रकरण मे कहे गये सूत्र २६९-२७१ का सब वर्णन यहा वक्तव्य है) दो कुरु कहे गये है। वहाँ दो महातिमहान् महाद्रुम कहे गये है—कूटशाल्मली और पद्मवृक्ष। उनमे मे कूटशाल्मली वृक्ष पर गरुडजाति का वेणुदेव और पद्मवृक्ष पर पद्मदेव रहता है। (यहा पर जम्बूद्वीप के समान सब वर्णन वक्तव्य है।) यावत् भरत और ऐरवत इन दोना क्षेत्रा म मनुष्य छहा ही कालो के अनुभाव को अनुभव करते हुए विचरते है (३४८)।

३४९—पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे ण मदरस्स पव्वयस्स उत्तर दाहिणे ण दो वासा पण्णत्ता। तहेव णाणत्त—कूडसामली चेव, महापउमरुक्खे चेव। देवा—गरुले चेव वेणुदेवे, पुडरीए चेव।

अर्धपुष्करवर द्वीप के पश्चिमार्ध म मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण मे दो क्षेत्र कहे गये हैं—दक्षिण मे भरत और उत्तर मे ऐरवत। उनमे (आयाम, विष्कम्भ, सस्थान और परिधि की अपेक्षा) कोई नानात्व नही है। विशेष इतना ही है कि यहा दो विशाल द्रुम हैं—कूटशाल्मली और महापद्म। इनमे से कूटशाल्मली वृक्ष पर गरुडजाति का वेणुदेव और महापद्मवृक्ष पर पुण्डरीक देव रहता ह (३४९)।

३५०—पुक्खरवरदीवड्ढे ण दीवे दो भरहाइ, दो एरवयाइ जाव दो मदरा, दो मदर-चूलियाओ।

अर्धपुष्करवर द्वीप मे दा भरत, दो ऐरवत से लेकर यावत्, और दो मन्दर, और दो मन्दर-चूलिका तक सभी दो दो है (३५०)।

वेदिका-पद

३५१—पुक्खरवरस्स ण दीवस्स वेइया दो गाउयाइ उड्ढमुच्चत्तेण पण्णत्ता। ३५२—सव्वेसिपि ण दीवसमुद्दाण वेदियाओ दो गाउयाइ उड्ढमुच्चत्तेण पण्णत्ताओ।

पुष्करवर द्वीप की वेदिका दो कोश ऊची कही गई है (३५१)। सभी द्वीपो और समुद्रो की वेदिकाएँ दो-दो कोश ऊची कही गई हैं (३५२)।

इन्द्र पद

३५३—दो असुरकुमारिंदा पण्णत्ता, त जहा—चमरे चेव, बली चेव। ३५४—दो णागकुमारिंदा पण्णत्ता, त जहा—धरणे चेव, भूयाणदे चेव। ३५५—दो सुवण्णकुमारिंदा पण्णत्ता, त जहा—वेणुदेवे चेव, वेणुदाली चेव। ३५६—दो विज्जुकुमारिंदा पण्णत्ता, त जहा—हरिच्चेव, हरिस्सहे चेव। ३५७—दो अग्गिकुमारिंदा पण्णत्ता, त जहा—अग्गिसिहे चेव, अग्गिमाणवे चेव। ३५८—दो दीवकुमारिंदा पण्णत्ता, त जहा—पुण्णे चेव, विसिट्ठे चेव। ३५९—दो उदहिकुमारिंदा पण्णत्ता, त जहा—जलकते चेव, जलप्पभे चेव। ३६०—दो दिसाकुमारिंदा पण्णत्ता, त जहा—अमियगती चेव,

अमितवाहणे चेव। ३६१—दो वायुकुमारिंदा पण्णत्ता, त जहा—वेलबे चेव, पभजणे चेव। ३६२—दो थणियकुमारिंदा पण्णत्ता, त जहा—घोसे चेव, महाघोसे चेव।

असुरकुमारो के दो इन्द्र कहे गये है—चमर और बली (३५३)। नागकुमारो के दो इन्द्र कहे गये है—धरण और भूतानन्द (३५४)। सुपर्णकुमारो के दो इन्द्र कहे गये हैं-वेणुदेव और वेणुदाली (३५५)। विद्युत्कुमारा के दो इन्द्र कहे गये है—हरि और हरिस्सह (३५६)। अग्नि-कुमारो के दो इन्द्र कहे गये हैं—अग्निशिख और अग्निमानव (३५७)। द्वीपकुमारो के दो इन्द्र कहे गये है—पूर्ण और विशिष्ट (३५८)। उदधिकुमारो के दो इन्द्र कहे गये है—जलकान्त और जलप्रभ (३५९)। दिशाकुमारा के दो इन्द्र कहे गये है—अमितगति और अमितवाहन (३६०)। वायु-कुमारो के दो इन्द्र कहे गये हैं—वेलम्ब और प्रभजन (३६१)। स्तनितकुमारो के दो इन्द्र कहे गये हैं—घोष और महाघोष (३६२)।

३६३—दो पिसाइंदा पण्णत्ता, त जहा—काले चेव, महाकाले चेव। ३६४—दो भूइंदा पण्णत्ता, त जहा—सुरूवे चेव, पडिरूवे चेव। ३६५—दो जक्खिंदा पण्णत्ता, त जहा—पुण्णभद्दे चेव, माणिभद्दे चेव। ३६६—दो रक्खसिंदा पण्णत्ता, त जहा—भीमे चेव, महाभीमे चेव। ३६७—दो किण्ण-रिंदा पण्णत्ता, त जहा—किण्णरे चेव, किंपुरिसे चेव। ३६८—दो किंपुरिसिंदा पण्णत्ता, त जहा—सप्पुरिसे चेव, महापुरिसे चेव। ३६९—दो महोरगिंदा पण्णत्ता, त जहा—अतिकाए चेव, महाकाए चेव। ३७०—दो गधव्विंदा पण्णत्ता, त जहा—गीतरती चेव, गीयजसे चेव।

पिशाचो के दो इन्द्र कहे गये है—काल और महाकाल (३६३)। भूतो के दो इन्द्र कहे गये हैं—सुरूप और प्रतिरूप (३६४)। यक्षो के दो इन्द्र कहे गये है—पूर्णभद्र और माणिभद्र (३६५)। राक्षसो के दो इन्द्र कहे गये है—भीम और महाभीम (३६६)। किन्नरो के दो इन्द्र कहे गये हैं—किन्नर और किम्पुरुष (३६७)। किम्पुरुषो के दो इन्द्र कहे गये है—सत्पुरुष और महापुरुष (३६८)। महोरगो के दो इन्द्र कहे गये हैं—अतिकाय और महाकाय (३६९)। गन्धर्वो के दो इन्द्र कहे गये हैं—गीतरति और गीतयश (३७०)।

३७१—दो अणपण्णिंदा पण्णत्ता त जहा—सण्णिहिए चेव, सामण्णे चेव। ३७२—दो पणप-ण्णिंदा पण्णत्ता, त जहा—धाए चेव, विहाए चेव। ३७३—दो इसिवाइंदा पण्णत्ता, त जहा—इसिच्चेव इसिवालए चेव। ३७४—दो भूतवाइंदा पण्णत्ता, त जहा—इस्सरे चेव महिस्सरे चेव। ३७५—दो कंदिंदा पण्णत्ता, त जहा—सुवच्छे चेव, विसाले चेव। ३७६—दो महाकंदिंदा पण्णत्ता, त जहा—हस्से चेव, हस्सरती चेव। ३७७—दो कुभंडिंदा पण्णत्ता, त जहा—सेए चेव, महासेए चेव। ३७८—दो पतइंदा पण्णत्ता, त जहा—पत्तए चेव, पतयवई चेव।

अणपन्नो के दो इन्द्र कहे गये है—सन्निहित और सामान्य (३७१)। पणपन्नो के दो इन्द्र कहे गये हैं—धाता और विधाता (३७२)। ऋषिवादियो के दो इन्द्र कहे गये हैं—ऋषि और ऋषिपालक (३७३)। भूतवादियो के दो इन्द्र कहे गये हैं—ईश्वर और महेश्वर (३७४)। स्कन्दको के दो इन्द्र कहे गये है—सुवत्स और विशाल (३७५)। महास्कन्दको के दो इन्द्र कहे गये हैं—हास्य और हास्यरति (३७६)। कूष्माण्डको के दो इन्द्र कहे गये है—श्वेत और महाश्वेत (३७७)। पतगो के दो इन्द्र कहे गये है—पतग और पतगपति (३७८)।

संवत्सर (वर्ष), पांच संवत्सर का एक युग, बीस युग का एक शतवर्ष, दश शतवर्षों का सहस्र वर्ष और सौ सहस्र वर्षों का एक शतसहस्र या लाख वर्ष होता है। ८४ लाख वर्षों का एक पूर्वांग और ८४ लाख पूर्वांगों का एक पूर्व होता है। आगे की सब संख्याओं का ८४-८४ लाख से गुणित करते हुए शीर्षप्रहेलिका तक ले जाना चाहिए। शीर्षप्रहेलिका में ५४ अंक और १४० शून्य होते हैं। यह सबसे बड़ी संख्या मानी गई है।

शीर्षप्रहेलिका के अंकों की उक्त संख्या स्थानांग के अनुसार है। किन्तु वीरनिर्वाण के ८४० वर्ष के बाद जो वलभी वाचना हुई, उसमें शीर्षप्रहेलिका की संख्या २५० अंक प्रमाण होने का उल्लेख ज्योतिष्करंड में मिलता है। तथा उसमें नलिनांग और नलिन संख्याओं से आगे महानलिनांग, महानलिन आदि अनेक संख्याओं का भी निर्देश किया गया है।

शीर्षप्रहेलिका की अंक राशि चाहे १९४ अंक-प्रमाण हो, अथवा २५० अंक-प्रमाण हो, पर गणना के नामों में शीर्षप्रहेलिका को ही अन्तिम स्थान प्राप्त है। यद्यपि शीर्षप्रहेलिका से भी आगे संख्यात काल पाया जाता है, तो भी सामान्य ज्ञानी के व्यवहार-योग्य शीर्षप्रहेलिका ही मानी गई है। इससे आगे के काल का उपमा के माध्यम से वर्णन किया गया है। पल्य नाम गड्ढे का है। एक योजन लम्बे चौड़े और गहरे गड्ढे को मेष के अति सूक्ष्म रोमों को कैंची से काटकर भरने के बाद एक-एक रोम को सौ-सौ वर्षों के बाद निकालने में जितना समय लगता है, उतने काल को एक पल्योपम कहते हैं। यह असंख्यात कोडाकोडी वर्षप्रमाण होता है। दश कोडाकोडी पल्योपमों का एक सागरोपम होता है। दश कोडाकोडी सागरोपम काल की एक उत्सर्पिणी होती है और अवसर्पिणी भी दश कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण होती है।

शीर्षप्रहेलिका तक के काल का व्यवहार संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले प्रथम पृथ्वी के नारक, भवनपति और व्यन्तर देवों के, तथा भरत और ऐरवत क्षेत्र में सुषम दुषमा आरे के अन्तिम भाग में होने वाले मनुष्यों और तिर्यंचों के आयुष्य का प्रमाण बताने के लिए किया जाता है। इससे ऊपर असंख्यात वर्षों की आयुष्य वाले देव नारक और मनुष्य, तिर्यंचों के आयुष्य का प्रमाण पल्योपम से और उससे आगे के आयुष्य वाले देव-नारकों का आयुष्यप्रमाण सागरोपम से निरूपण किया जाता है।

३९०—गामाति वा णगराति वा णिगमाति वा रायहाणीति वा खेडाति वा कब्बडाति वा मडंबाति वा दोणमुहाति वा पट्टणाति वा आगराति वा आसमाति वा संबाहाति वा सण्णिवेसाइ वा घोसाइ वा आरामाइ वा उज्जाणाति वा वणाति वा वणसंडाति वा वावीति वा पुक्खरणीति वा सराति वा सरपंतीति वा अगडाति वा तलागाति वा दहाति वा णदीति वा पुढवीति वा उदहीति वा वातखधाति वा उवासंतराति वा वलयाति वा विग्गहाति वा दीवाति वा समुद्दाति वा वेलाति वा वेइयाति वा दाराति वा तोरणाति वा णेरइयाति वा णेरइयावासाति वा जाव वेमाणियाति वा वेमाणियावासाति वा कप्पाति वा कप्पविमाणावासाति वा वासाति वा वासधरपव्वताति वा कूडाति वा कूडागाराति वा विजयाति वा रायहाणीति वा—जीवाति या अजीवाति या पवुच्चति।

ग्राम और नगर, निगम और राजधानी, खेट और कर्वट, मडंब और द्रोणमुख, पत्तन और आकर, आश्रम और संवाह, सन्निवेश और घोष, आराम और उद्यान, वन और वनषण्ड, वापी

और पुष्करिणी, सर और सरपक्ति, कूप और तालाब, ह्रद और नदी, पृथ्वी और उदधि, वातस्कन्ध और अवकाशान्तर, वलय और विग्रह, द्वीप और समुद्र, वेला और वेदिका, द्वार और तोरण, नारक और नारकावास, तथा वैमानिक तक के सभी दण्डक और उनके आवास, कल्प और कल्पविमानावास, वर्ष और वर्षधर पर्वत, कूट और कूटागार, विजय और राजधानी, ये सभी जीव और अजीव कहे जाते है (३९०)।

विवेचन—ग्राम, नगरादि मे रहने वाले जीवो की अपेक्षा उनको जीव कहा गया है और ये ग्राम, नगरादि मिट्टी, पाषाणादि अचेतन पदार्थो से बनाये जाते हैं, अत उन्हे अजीव भी कहा गया है। ग्राम आदि का अर्थ इस प्रकार है—जहा प्रवेश करने पर कर लगता हो, जिसके चारो ओर कॉंटो की बाढ हो, अथवा मिट्टी का परकोटा हो और जहा किसान लोग रहते हो, उसे ग्राम कहते है। जहा रहने वालो को कर न लगता हो, ऐसी अधिक जनसख्या वाली वसतियो को नगर कहते है। जहा पर व्यापार करने वाले वणिक् लोग अधिकता से रहते हो, उसे निगम कहते है। जहा राजाओ का राज्याभिषेक किया जावे, जहा उनका निवास हो, ऐसे नगर-विशेषो को राजधानी कहते है। जिस वसति के चारो ओर धलि का प्राकार हो, उसे खेट कहते हैं। जहा वस्तुओ का क्रय-विक्रय न होता हो और जहा अनतिक व्यवसाय होता हो ऐसे छोटे कुनगर को कर्वट कहते है। जिस वसति के चारो ओर आधे या एक योजन तक कोई ग्राम न हो उसे मडम्ब कहते है। जहा पर जल और स्थल दोनो से जाने आने का मार्ग हो, उसे द्रोणमुख कहते है। पत्तन दो प्रकार के होते हैं—जलपत्तन और स्थलपत्तन। जल-मध्यवर्ती द्वीप को जलपत्तन कहते है और निर्जल भूमिभाग वाले पत्तन को स्थलपत्तन कहते हैं। जहा सोना, लोहा आदि खान हो और उनमे काम करने वाले मजदूर रहते हो उसे आकर कहते है। तापसो के निवास स्थान को, तथा तीर्थस्थान का आश्रम कहते है। समतल भूमि पर खेती करके धान्य की रक्षा के लिए जिस ऊची भूमि पर उसे रखा जावे ऐसे स्थानो को सवाह कहते है। जहा दूर-दूर तक के देशो मे व्यापार करने वाले सार्थवाह रहते हो, उसे सन्निवेश कहते है। जहा दूध दही के उत्पन्न करने वाले घोषी, गुवाले आदि रहते हो, उसे घोष कहते है।

जहा पर अनेक प्रकार के वृक्ष और लताए हो, केले आदि से ढके हुए घर हो और जहॉं पर नगर-निवासी लोग जाकर मनोरजन करे, ऐसे नगर के समीपवर्ती बगीचो को आराम कहते है। पत्र, पुष्प, फल, छायादिवाले वृक्षो से शोभित जिस स्थान पर लोग विशेष अवसरो पर जाकर खान-पान आदि गोष्ठी का आयोजन करे, उसे उद्यान कहते हैं। जहा एक जाति के वृक्ष हो, उसे वन कहते है। जहा अनेक जाति के वृक्ष हो, उसे वनखण्ड कहते है।

चार कोण वाले जलाशय को वापी कहते है। गोलाकार निर्मित जलाशय को पुष्करिणी कहते है अथवा जिसमे कमल खिलते हो, उसे पुष्करिणी कहते है। ऊची भूमि के आश्रय मे स्वय बने हुए जलाशय को सर या सरोवर कहते है। अनेक सरोवरो की पक्ति को सर-पक्ति कहते है। कूप (कुआ) को अवट या अगड कहते है। मनुष्यो के द्वारा भूमि खोद कर बनाये गये जलाशय का तडाग या तालाब कहते है। हिमवान् आदि पर्वतो पर अकृत्रिम बने सरोवरो को द्रह (ह्रद) कहते है। अथवा नदियो के नीचले भाग मे जहा जल गहरा भरा हो ऐसे स्थानो को भी द्रह कहते है।

घनवात, तनुवात आदि वातो के स्कन्ध को वातस्कन्ध कहते हैं। घनवात आदि वातस्कन्धो के नीचे वाले आकाश को अवकाशान्तर कहते ह। लोक के सब ओर वेष्टित वातो के समूह को वलय या वातवलय कहते ह। लोकनाडी के भीतर गति के मोड को विग्रह कहते हैं। समुद्र के जल की वृद्धि को वेला कहते ह। द्वीप या समुद्र के चारो ओर की सहज-निर्मित भित्ति को वेदिका कहते ह। द्वीप, समुद्र और नगरादि मे प्रवेश करने वाले माग को द्वार कहते हैं। द्वारो के आगे बने हुए अर्धचन्द्राकार मेहरावो को तोरण कहते है।

नारको के निवासस्थान को नारकावास कहते ह। वैमानिक देवो के निवासस्थान को वैमानिकावास कहते ह। भरत आदि क्षेत्रा को वर्ष कहते हैं। हिमवान आदि पर्वतो को वर्षधर कहते है। पर्वतो की शिखरो को कूट कहते ह। कूटो पर निर्मित भवनो को कूटागार कहते ह। महाविदेह के क्षेत्रो को विजय कहते ह जो कि वहा के चक्रवर्तियो के द्वारा जीते जाते है। राजा के द्वारा शासित नगरी को राजधानी कहते है।

ये सभी उपयु क्त स्थान जीव और अजीव दोनो मे व्याप्त होते है, इसलिए इन्हे जीव भी कहा जाता है और अजीव भी कहा जाता है।

३६१—छायाति वा आतवाति वा दोसिणाति वा अधकाराति वा ओमाणाति वा उम्माणाति वा अतियाणगिहाति वा उज्जाणगिहाति वा अवलिंबाति वा सणिप्पवाताति वा—जीवाति या अजीवाति या पवुच्चति।

छाया और आतप, ज्योत्स्ना और अन्धकार, अवमान और उन्मान, अतियानगृह और उद्यान गृह, अवलिम्ब और सनिप्रवात, ये सभी जीव और अजीव दोनो कहे जाते हैं (३६१)।

विवेचन—वृक्षादि के द्वारा सूर्य ताप क निवारण को छाया कहते है। सूर्य के उष्ण प्रकाश को आतप कहते हैं। चन्द्र की शीतल चादनी को ज्योत्स्ना कहते हैं। प्रकाश के अभाव को अन्धकार कहते हैं। हाथ, गज आदि के माप को अवमान कहते हैं। तुला आदि मे तौलने के मान को उन्मान कहते हैं। नगरादि के प्रवेशद्वार पर जो धर्मशाला, सराय या गृह होते है उन्हे अतियान गृह कहते हैं। उद्यानो मे निर्मित गृहो को उद्यानगृह कहते हैं।

'अवलिंबा' और **सणिप्पवाया'** इन दोनो का सस्कृत टीकाकार ने कोई अर्थ न करके लिखा है कि इनका अर्थ रूढि से जानना चाहिए। मुनि नथमल जी ने इन की विवेचना करते हुए लिखा है कि **'अवलिंब'** का दूसरा प्राकृत रूप **'ओलिंब'** हो सकता है। दीमक का एक नाम **'ओलिभा'** है। यदि वर्ण-परिवर्तन माना जाय, तो **'अवलिंब'** का अर्थ दीमक का ढूह हो सकता है। और यदि पाठ-परिवर्तन की सभावना मानी जाय तो **'ओलिंद'** पाठ की कल्पना की सकती हैं, जिसका अर्थ होगा-बाहिर के दरवाजे का प्रकोष्ठ। अतियानगृह और उद्यानगृह के अनन्तर प्रकोष्ठ का उल्लेख प्रकरण-सगत भी है।

'सणिप्पवाय' के सस्कृत रूप दो किये जा सकते हैं—शनै प्रपात और सनिष्प्रपात। शनै प्रपात का अर्थ धीमी गति से गिरने वाला झरना और सनिष्प्रताप का अर्थ भीतर का प्रकोष्ठ (अपवरक) होता है। प्रकरण-सगति की दृष्टि से यहाँ सनिष्प्रपात अर्थ ही होना चाहिए।

सूत्रोक्त छाया आतप आदिजीवों से सम्बन्ध रखने के कारण जीव और पुद्गलों की पर्याय होने के कारण अजीव कहे गये हैं।

३९२—दो रासी पण्णत्ता, त जहा—जीवरासी चेव, अजीवरासी चेव।

राशि दो प्रकार की कही गई है—जीवराशि और अजीवराशि (३९२)।

कर्म पद

३९३—दुविहे बधे पण्णत्ते, त जहा—पेज्जबधे चेव, दोसबधे चेव। ३९४—जीवा ण दोहिं ठाणेहिं पाव कम्म बधति, त जहा—रागेण चेव, दोसेण चेव। ३९५—जीवा ण दोहिं ठाणेहिं पाव कम्म उदीरेंति, त जहा—अब्भोवगमियाए चेव वेयणाए, उवक्कमियाए चेव वेयणाए। ३९६—जीवा ण दोहिं ठाणेहिं पाव कम्म वेदेंति, त जहा—अब्भोवगमियाए चेव वेयणाए, उवक्कमियाए चेव वेयणाए। ३९७—जीवा ण दोहिं ठाणेहिं पाव कम्म णिज्जरेंति, त जहा—अब्भोवगमियाए चेव वेयणाए, उवक्कमियाए चेव वेयणाए।

बन्ध दो प्रकार का कहा गया है—प्रेयोबन्ध और द्वेषबन्ध (३९३)। जीव दो स्थानों से पाप कर्म का बन्ध करते हैं—राग से और द्वेष से (३९४)। जीव दो स्थानों से पाप-कर्म की उदीरणा करते हैं—आभ्युपगमिकी वेदना से और औपक्रमिकी वेदना से (३९५)। जीव दो स्थानों से पाप-कर्म का वेदन करते हैं—आभ्युपगमिकी वेदना से और औपक्रमिकी वेदना से (३९६)। जीव दो स्थानों से पाप कर्म की निर्जरा करते हैं-आभ्युगमिकी वेदना से और औपक्रमिकी वेदना से (३९७)।

विवेचन—कर्म फल के अनुभव करने को वेदन या वेदना कहते हैं। वह दो प्रकार की होती है—आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी। अभ्युपगम का अर्थ है—स्वयं स्वीकार करना। तपस्या किसी कर्म के उदय से नहीं होती, किन्तु युक्तिपूर्वक स्वयं स्वीकार की जाती है। तपस्या-काल में जो वेदना होती है, उसे आभ्युपगमिकी वेदना कहते हैं। उपक्रम का अर्थ है—कर्म की उदीरणा का कारण। शरीर में उत्पन्न होने वाले रोगादि की वेदना को औपक्रमिकी वेदना कहते हैं। दोनों प्रकार की वेदना निर्जरा का कारण है। जीव राग और द्वेष के द्वारा जो कर्मबन्ध करता है, उसका उदय, उदीरणा या निर्जरा उक्त दो प्रकारों से होती है।

आत्म निर्याण पद

३९८—दोहिं ठाणेहिं आता सरीर फुसित्ता ण णिज्जाति, त जहा—देसेणवि आता सरीर फुसित्ता ण णिज्जाति सव्वेणवि आता सरीरग फुसित्ता ण णिज्जाति। ३९९—दोहिं ठाणेहिं आता सरीर फुरित्ता ण णिज्जाति, त जहा—देसेणवि आता सरीर फुरित्ता ण णिज्जाति, सव्वेणवि आता सरीरग फुरित्ता ण णिज्जाति। ४००—दोहिं ठाणेहिं आता सरीर फुडित्ता ण णिज्जाति, त जहा—देसेणवि आता सरीर फुडित्ता ण णिज्जाति, सव्वेणवि आता सरीरग फुडित्ता ण णिज्जाति। ४०१—दोहिं ठाणेहिं आता सरीर सवट्टइत्ता ण णिज्जाति, त जहा—देसेणवि आता सरीर सवट्टइत्ता ण णिज्जाति, सव्वेणवि आता सरीरग सवट्टइत्ता ण णिज्जाति। ४०२—दोहिं ठाणेहिं आता सरीर णिवट्टइत्ता ण णिज्जाति, त जहा—देसेणवि आता सरीर णिवट्टइत्ता ण णिज्जाति, सव्वेणवि आता सरीरग णिवट्टइत्ता ण णिज्जाति।

दो प्रकार से आत्मा शरीर का स्पर्श कर बाहिर निकलती है—देश से (कुछ प्रदेशों से, या शरीर के किसी भाग से) आत्मा शरीर का स्पर्श कर बाहिर निकलती है और सब प्रदेशों से आत्मा शरीर का स्पर्श कर बाहिर निकलती है (३९८)। दो प्रकार से आत्मा शरीर को स्फुरित (स्पन्दित) कर बाहिर निकलती है—एक देश से आत्मा शरीर को स्फुरित कर बाहिर निकलती है और सब प्रदेशों से आत्मा शरीर को स्फुरित कर बाहिर निकलती है (३९९)।

दो प्रकार से आत्मा शरीर को स्फुटित कर बाहिर निकलती है—एक देश से आत्मा शरीर को स्फुटित कर बाहिर निकलती है और सब प्रदेशों से आत्मा शरीर को स्फुटित कर बाहर निकलती है (४००)।

दो प्रकार से आत्मा शरीर को संवर्तित (संकुचित) कर बाहिर निकलती है—एक देश से आत्मा शरीर को संवर्तित कर बाहिर निकलती है और सब प्रदेशों से आत्मा शरीर को संवर्तित कर बाहिर निकलती है (४०१)।

दो प्रकार से आत्मा शरीर को निर्वर्तित (जीव-प्रदेशों से अलग) कर बाहिर निकलती है—एक देश से आत्मा शरीर को निर्वर्तित कर बाहिर निकलती है और सब प्रदेशों से आत्मा शरीर को निर्वर्तित कर बाहिर निकलती है (४०२)।

विवेचन—इन सूत्रों में बतलाया गया है कि जब आत्मा का मरण-काल आता है, उस समय वह शरीर के किसी एक भाग से भी बाहिर निकल जाती है अथवा सब शरीर से भी एक साथ निकल जाती है। संसारी जीवों के प्रदेशों का बहिर्गमन किसी एक भाग से होता है और सिद्ध होने वाले जीवों के प्रदेशों का निर्गमन सर्वाङ्ग से होता है। आत्म प्रदेशों के बाहिर निकलते समय शरीर में होने वाली कम्पन, स्फुरण और संकोचन और निवर्तन दशाओं का उक्त सूत्रों द्वारा वर्णन किया गया है।

क्षय उपशम पद

४०३—दोहिं ठाणेहिं आता केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए, तं जहा—खएण चेव उवसमेण चेव। ४०४—दोहिं ठाणेहिं आता—केवलं बोधिं बुज्झेज्जा, केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा, केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा, केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा, केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं सुयणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं ओहिणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा तं जहा—खएण चेव, उवसमेण चेव।

दो प्रकार से आत्मा केवलि प्रज्ञप्त धर्म को सुन पाती है—कर्मों के क्षय से और उपशम से (४०३)। दो प्रकार से आत्मा विशुद्ध बोधि का अनुभव करती है, मुण्डित हो घर छोड़कर सम्पूर्ण अनगारिता को पाती है, सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यवास को प्राप्त करती है, सम्पूर्ण संयम के द्वारा संयत होती है, सम्पूर्ण संवर के द्वारा संवृत होती है, विशुद्ध आभिनिबोधिक ज्ञान को प्राप्त करती है, विशुद्ध श्रुत-ज्ञान को प्राप्त करती है, विशुद्ध अवधिज्ञान को प्राप्त करती है और विशुद्ध मन पर्यव ज्ञान को प्राप्त करती है—क्षय से और उपशम से (४०३)।

विवेचन—यद्यपि यहाँ पर धर्म-श्रवण, बोधि-प्राप्ति आदि सभी कार्य विशेषों की प्राप्ति का कारण सामान्य से कर्मों का क्षय या उपशम कहा गया है, तथापि प्रत्येक स्थान की प्राप्ति में विभिन्न

कर्मों के क्षय, उपशम और क्षयोपशम से होती है। यथा—केवलिप्रज्ञप्त धम श्रवण और बोध प्राप्ति के लिए ज्ञानावरणीय कम का क्षयोपशम और दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम आवश्यक है। मुण्डित होकर अनगारिता पाने, ब्रह्मचयवासी होने, सयम और सवर से युक्त होने के लिए—चारित्र मोहनीय कम का उपशम और क्षयोपशम आवश्यक है। विशुद्ध आभिनिवोधिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए आभिनिवोधिक ज्ञानावरण कम का क्षयोपशम, विशुद्ध श्रुतज्ञान की प्राप्ति के लिए श्रुतज्ञानावरण कम का क्षयोपशम, विशुद्ध अवधिज्ञान की प्राप्ति के लिए अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम और विशुद्ध मन पयवज्ञान की प्राप्ति के लिए मन पयवज्ञानावरण कम का क्षयोपशम आवश्यक है। तथा इन सब के साथ दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्म के विशिष्ट क्षयोपशम की भी आवश्यकता है।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि उपशम तो केवल मोहकम का ही होता है, तथा क्षयोपशम चार घातिकर्मों का ही होता है। उदय को प्राप्त कम के क्षय से तथा अनुदय प्राप्त कर्म के उपशम से होने वाली विशिष्ट अवस्था को क्षयोपशम कहते है। मोहकम के उपशम का उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त ही है। किन्तु क्षयोपशम का काल अन्तमुहूर्त से लगाकर सैकडो वर्षो तक का कहा गया है।

औपमिक काल-पद

४०५—दुविहे श्रद्धोवमिए पण्णत्ते त जहा—पलिश्रोवमे चेव, सागरोवमे चेव। से कि त पलिश्रोवमे ? पलिश्रोवमे—

सग्रहणी गाथा

ज जोयणविच्छिण्ण, पल्ल एगाहियप्पस्ढाण।
होज्ज णिरतरणिचित भरित वालग्गकोडीण ॥१॥
वाससए वाससए, एक्केक्के अवहडमि जो कालो।
सो कालो बोद्धव्वो, उवमा एगस्स पल्लस्स ॥२॥
एएसि पल्लाण, कोडाकोडी हवेज्ज दस गुणिता।
त सागरोवमस्स उ, एगस्स भवे परीमाण ॥३॥

औपमिक अद्धाकाल दो प्रकार का कहा गया है—पल्योपम और सागरोपम। भन्ते ! पल्योपम किसे कहते है ? सग्रहणी गाथा—

एक योजन विस्तीर्ण गड्ढे को एक दिन से लेकर सात दिन तक के उगे हुए (मेष के) वालाग्र के खण्डो से ठसाठस भरा जाय। तदनन्तर सौ सौ वर्षों मे एक एक वालाग्रखण्ड के निकालने पर जितने काल म वह गड्ढा खाली होता है, उतने काल को पल्योपम कहा जाता है। दश कोडाकोडी पल्योपमो का एक सागरोपम काल कहा जाता है।

पाप पद

४०६—दुविहे कोहे पण्णत्ते, त जहा—आयपइट्ठिए चेव, परपइट्ठिए चेव। ४०७ दुविहे दुविहा माया, दुविहे लोभे, दुविहे पेज्जे, दुविहे दोसे, दुविहे कलहे दुविहे अब्भक्खाणे,

दुविहे परपरिवाए, दुविहा अरतिरती, दुविहे मायामोसे, दुविहे मिच्छादसणसल्ले पण्णत्ते, त जहा—आयपइट्ठिए चेव, परपइट्ठिए चेव। एव णेरइयाण जाव वेमाणियाण।

क्रोध दो प्रकार का कहा गया है—आत्म-प्रतिष्ठित और पर प्रतिष्ठित (४०६)। इसी प्रकार मान दो प्रकार का, माया दो प्रकार की, लोभ दो प्रकार का, प्रेयस (राग) दो प्रकार का, द्वेष दो प्रकार का, कलह दो प्रकार का, अभ्याख्यान दो प्रकार का, पैशुन्य दो प्रकार का, परपरिवाद दो प्रकार का, अरति रति दो प्रकार की, माया-मृषा दो प्रकार की, और मिथ्यादर्शन शल्य दो प्रकार का कहा गया है—आत्म-प्रतिष्ठित और पर-प्रतिष्ठित। इसी प्रकार नारको से लेकर वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको मे जीवो के क्रोध आदि दो दो प्रकार के होते हैं (४०७)।

विवेचन—बिना किसी दूसरे के निमित्त से स्वय ही अपने भीतर प्रकट होने वाले क्रोध आदि को आत्म-प्रतिष्ठित कहते हैं। तथा जो क्रोधादि पर के निमित्त से उत्पन्न होता है उसे पर-प्रतिष्ठित कहते है। सस्कृत टीकाकार ने अथवा कह कर यह भी अर्थ किया है कि जो अपने द्वारा आक्रोश आदि करके दूसरे मे क्रोधादि उत्पन्न किया जाता है, वह आत्म-प्रतिष्ठित है। तथा दूसरे व्यक्ति के द्वारा आक्रोशादि से जो क्रोधादि उत्पन्न किया जाता है वह पर-प्रतिष्ठित कहलाता है। *यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि पृथ्वीकायिकादि असज्ञी पचेन्द्रिय तक के दण्डको मे आत्म प्रतिष्ठित* क्रोधादि पूर्वभव के सस्कार द्वारा जनित होते हैं।

जीव पद

४०८—दुविहा ससारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, त जहा—तसा चेव, थावरा चेव। ४०९—दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—सिद्धा चेव, असिद्धा चेव। ४१०—दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—सइदिया चेव अणिदिया चेव, सकायच्चेव अकायच्चेव, सजोगी चेव अजोगी चेव, सवेया चेव अवेया चेव, सकसाया चेव अकसाया चेव, सलेसा चेव अलेसा चेव, णाणी चेव अणाणी चेव, सागारोवउत्ता चेव अणागारोवउत्ता चेव, आहारगा चेव अणाहारगा चेव, भासगा चेव अभासगा चेव, चरिमा चेव अचरिमा चेव, ससरीरी चेव असरीरी चेव।

ससार समापन्नक (ससारी) जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—त्रस और स्थावर (४०८)। सब जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—सिद्ध और असिद्ध (४०९)। पुन सब जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—सेन्द्रिय (इन्द्रिय सहित) और अनिन्द्रिय (इन्द्रिय-रहित)। सकाय और अकाय, सयोगी और अयोगी, सवेद और अवेद, सकषाय और अकषाय, सलेश्य और अलेश्य, ज्ञानी और अज्ञानी, साकारोपयोग-युक्त और अनाकारोपयोग युक्त, आहारक और अनाहारक, भाषक और अभाषक, सशरीरी और अशरीरी (४१०)।

मरण पद

४११—दो मरणाइ समणेण भगवता महावीरेण समणाण णिग्गथाण णो णिच्च वण्णियाइ णो णिच्च कित्तियाइ णो णिच्च वुइयाइ णो णिच्च पसत्थाइ णो णिच्च अब्भणुण्णायाइ भवति, त जहा—वलयमरणे चेव, वसट्टमरणे चेव। ४१२—एव णियाणमरणे चेव तब्भवमरणे चेव, गिरिपडणे चेव, तरुपडणे चेव, जलपवेसे चेव जलणपवेसे चेव, विसभक्खणे चेव सत्थोवाडणे चेव। ४१३—दो मरणाइ समणेण भगवता महावीरेण समणाण णिग्गथाण णो *णिच्च वण्णियाइ* णो णिच्च कित्तियाइ

णो णिच्च बुइयाइ णो णिच्च पसत्थाइ णो णिच्च अब्भणुण्णायाइ भवति। कारणे पुण अप्पडिकुट्ठाइ, त जहा—वेहाणसे चेव गिद्धपट्ठे चेव। ४१४—दो मरणाइ समणेण भगवया महावीरेण समणाण णिग्गथाण णिच्च वण्णियाइ णिच्च कित्तियाइ णिच्च बुइयाइ णिच्च पसत्थाइ णिच्च अब्भणुण्णायाइ भवति, त जहा—पाओवगमणे चेव, भत्तपच्चक्खाणे चेव। ४१५—पाओवगमणे दुविहे पण्णत्ते त जहा—णीहारिमे चेव, अणीहारिमे चेव। णियम अपडिकम्मे। ४१६—भत्तपच्चक्खाणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—णीहारिमे चेव, अणीहारिमे चेव। णियम सपडिकम्मे।

श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निग्रन्थो के लिए दो प्रकार के मरण कभी भी वर्णित, कीर्तित, उक्त, प्रशसित और अभ्यनुज्ञात नही किये है—वलन्मरण और वशार्त मरण (४११)। इसी प्रकार निदान मरण और तद्भवमरण, गिरिपतन मरण और तरुपतन मरण, जल-प्रवेश मरण और अग्नि-प्रवेश मरण, विष-भक्षण मरण और शस्त्रावपाटन मरण (४१२)। ये दो दो प्रकार के मरण श्रमण निग्रन्थो के लिए श्रमण भगवान् महावीर ने कभी भी वर्णित, कीर्तित, उक्त, प्रशसित और अभ्यनुज्ञात नही किये है। किन्तु कारण-विशेष होने पर वैहायस और गिद्धपट्ठ (गृद्ध स्पृष्ट) ये दो मरण अभ्यनुज्ञात हैं (४१३)। श्रमण भगवान महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए दो प्रकार के मरण सदा वर्णित, कीर्तित, उक्त, प्रशसित और अभ्यनुज्ञात किये है—प्रायोपगमन मरण और भक्त-प्रत्याख्यान मरण (४१४)। प्रायोपगमन मरण दो प्रकार का कहा गया है—निर्हारिम और अनिर्हारिम। प्रायोपगमन मरण नियमत अप्रतिकर्म होता है (४१५)। भक्तप्रत्याख्यानमरण दो प्रकार का कहा गया है— निर्हारिम और अनिर्हारिम। भक्तप्रत्याख्यानमरण नियमत सप्रतिकर्म होता है।

विवेचन— मरण दो प्रकार के होते है—अप्रशस्त मरण और प्रशस्त मरण। जो कषायावेश से मरण होता है वह अप्रशस्त कहलाता है और जो कषायावेश विना-समभावपूर्वक शरीरत्याग किया जाता है, वह प्रशस्त मरण कहलाता है। अप्रशस्त मरण के वलन्मरण आदि जो अनेक प्रकार कहे गये हैं उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

१ वलन्मरण—परिषहो से पीडित होने पर सयम छोडकर मरना।
२ वशार्तमरण—इन्द्रिय-विषयो के वशीभूत होकर मरना।
३ निदानमरण—ऋद्धि, भोगादि की इच्छा करके मरना।
४ तद्भवमरण—वर्तमान भव की ही आयु बाध कर मरना।
५ गिरिपतनमरण—पर्वत से गिर कर मरना।
६ तरुपतनमरण—वृक्ष से गिर कर मरना।
७ जल प्रवेश मरण—अगाध जल मे प्रवेश कर या नदी मे बहकर मरना।
८ अग्नि प्रवेश मरण—जलती आग मे प्रवेश कर मरना।
९ विष भक्षणमरण—विष खाकर मरना।
१० शस्त्रावपाटन मरण—शस्त्र से घात कर मरना।
११ वैहायसमरण—गले मे फासी लगाकर मरना।
१२ गिद्धपट्ठ या गृद्धस्पृष्टमरण—वृहत्काय वाले हाथी आदि के मृत शरीर मे प्रवेश कर

मरना। इस प्रकार मरने से गिद्ध आदि पक्षी उस शव के साथ मरने वाले के शरीर को भी नोच नोच कर खा डालते हैं। इस प्रकार से मरने को गृद्धस्पृष्टमरण कहते हैं।

उक्त सूत्रो मे आये हुए वर्णित आदि पदो का अर्थ इस प्रकार है—

१ **वर्णित**—उपादेयरूप से सामान्य वर्णन करना।

२ **कीर्तित**—उपादेय बुद्धि से विशेष कथन करना।

३ **उक्त**—व्यक्त और स्पष्ट वचनो से कहना।

४ **प्रशस्त या प्रशंसित**—श्लाघा या प्रशसा करना।

५ **अभ्यनुज्ञात**—करने की अनुमति, अनुज्ञा या स्वीकृति देना। भगवान् महावीर ने किसी भी प्रकार के अप्रशस्त मरण की अनुज्ञा नही दी है। तथापि सयम एव शील आदि की रक्षा के लिए वैहायस-मरण और गृद्धस्पृष्ट-मरण की अनुमति दी है, किन्तु यह अपवादमार्ग ही है।

प्रशस्त मरण दो प्रकार के हैं—भक्तप्रत्याख्यान और प्रायोपगमन। भक्त-पान का क्रम-क्रम से त्याग करते हुए समाधि पूर्वक प्राण-त्याग करने को भक्तप्रत्याख्यान मरण कहते हैं। इस मरण को अगीकार करने वाला साधक स्वय उठ बैठ सकता है, दूसरो के द्वारा उठाये-बैठाये जाने पर उठता-बैठता है और दूसरो के द्वारा की गई वैयावृत्त्य को भी स्वीकार करता है। अपने सामर्थ्य को देख-कर साधु सस्तर पर जिस रूप से पड जाता है, उसे फिर बदलता नही है किन्तु कटे हुए वृक्ष के समान निश्चेष्ट ही पडा रहता है, इस प्रकार से प्राण त्याग करने को प्रायोपगमन मरण कहते हैं। इसे स्वीकार करने वाला साधु न स्वय अपनी वैयावृत्त्य करता है और न दूसरो से ही कराता है। इसी मे भगवान् महावीर ने उसे अप्रतिकम अर्थात् शारीरिक-प्रतिक्रिया से रहित कहा है। किन्तु भक्तप्रत्याख्यान मरण सप्रतिकम होता है।

निर्हारिम का अर्थ है—मरण-स्थान से मृत शरीर को बाहर ले जाना। अनिर्हारिम का अर्थ है— मरण स्थान पर ही मृत शरीर का पडा रहना। जब समाधिमरण वसतिकादि मे होता है, तब शव को बाहर लेजाकर छोडा जा सकता है, या दाह-क्रिया की जा सकती है। किन्तु जब मरण गिरि-कन्दरादि प्रदेश मे होता है, तब शव बाहर नही ले जाया जाता।

लोक-पद

४१७—के अय लोगे? जीवच्चेव, अजीवच्चेव। ४१८—के अणता लोगे? जीवच्चेव अजीवच्चेव। ४१९—के सासया लोगे? जीवच्चेव अजीवच्चेव।

यह लोक क्या है? जीव और अजीव ही लोक है (४१७)। लोक मे अनन्त क्या है? जीव और अजीव ही अनन्त है (४१८)? लोक मे शाश्वत क्या है? जीव और अजीव ही शाश्वत है (४१९)।

बोधि पद

४२०—दुविहा बोधी पण्णत्ता, त जहा—णाणबोधी चेव, दसणबोधी चेव। ४२१—दुविहा बुद्धा पण्णत्ता, त जहा—णाणबुद्धा चेव, दसणबुद्धा चेव।

बोधि दो प्रकार की कही गई है—ज्ञानबोधि और दर्शनबोधि (४२०)। बुद्ध दो प्रकार के कहे गये हैं—ज्ञानबुद्ध और दर्शनबुद्ध (४२१)।

मोह पद

४२२—दुविहे मोहे पण्णत्ते, तं जहा—णाणमोहे चेव, दंसणमोहे चेव। ४२३—दुविहा मूढा पण्णत्ता, तं जहा—णाणमूढा चेव, दंसणमूढा चेव।

मोह दो प्रकार का कहा गया है—ज्ञानमोह और दर्शनमोह (४२२)। मूढ दो प्रकार के कहे गये हैं— ज्ञानमूढ और दर्शनमूढ (४२३)।

कर्म पद

४२४—णाणावरणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—देसणाणावरणिज्जे चेव, सव्वणाणावरणिज्जे चेव। ४२५—दरिसणावरणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—देसदरिसणावरणिज्जे चेव, सव्वदरिसणावरणिज्जे चेव। ४२६—वेयणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सातावेयणिज्जे चेव, असातावेयणिज्जे चेव। ४२७—मोहणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—दंसणमोहणिज्जे चेव, चरित्तमोहणिज्जे चेव। ४२८—आउए कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अद्धाउए चेव, भवाउए चेव। ४२९—णामे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सुभणामे चेव, असुभणामे चेव। ४३०—गोत्ते कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—उच्चागोते चेव, णीयागोते चेव। ४३१—अंतराइए कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पडुप्पण्णविणासिए चेव, पिहितआगामिपहं चेव।

ज्ञानावरणीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है—देशज्ञानावरणीय (मतिज्ञानावरण आदि) और सर्वज्ञानावरणीय (केवलज्ञानावरण) (४२४)। दर्शनावरणीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है—देशदर्शनावरणीय और सर्वदर्शनावरणीय (केवलदर्शनावरण) (४२५)। वेदनीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है—सातवेदनीय और असातवेदनीय (४२६)। मोहनीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय (४२७)। आयुष्यकर्म दो प्रकार का कहा गया है—अद्धायुष्य (कायस्थिति की आयु) और भवायुष्य (उसी भव की आयु) (४२८)। नामकर्म दो प्रकार का कहा गया है—शुभनाम और अशुभनाम (४२९)। गोत्रकर्म दो प्रकार का कहा गया है—उच्चगोत्र और नीचगोत्र (४३०)। अन्तरायकर्म दो प्रकार का कहा गया है—प्रत्युत्पन्नविनाशि (वर्तमान में प्राप्त वस्तु का विनाश करने वाला) और पिहित आगामिपथ अर्थात् भविष्य में होने वाले लाभ के मार्ग को रोकने वाला (४३१)।

मूर्च्छा पद

४३२—दुविहा मुच्छा पण्णत्ता, तं जहा—पेज्जवत्तिया चेव, दोसवत्तिया चेव। ४३३—पेज्जवत्तिया मुच्छा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—माया चेव, लोभे चेव। ४३४—दोसवत्तिया मुच्छा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—कोहे चेव, माणे चेव।

मूर्च्छा दो प्रकार की कही गई है—प्रेयस्प्रत्यया (राग के कारण होने वाली मूर्च्छा) और द्वेषप्रत्यया (द्वेष के कारण होने वाली मूर्च्छा) (४३२)। प्रेयस्प्रत्यया मूर्च्छा दो प्रकार की कही

गई है—मायारूपा और लोभरूपा (४३३)। द्वेषप्रत्यया मूर्च्छा दो प्रकार की कही गई है—क्रोधरूपा और मानरूपा (४३४)।

आराधना पद

४३५—दुविहा आराहणा पण्णत्ता, तं जहा—धम्मियाराहणा चेव, केवलिआराहणा चेव। ४३६—धम्मियाराहणा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सुयधम्माराहणा चेव, चरित्तधम्माराहणा चेव। ४३७—केवलिआराहणा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—अंतकिरिया चेव, कप्पविमाणोववत्तिया चेव।

आराधना दो प्रकार की कही गई है—धार्मिक आराधना (धार्मिक श्रावक-साधु जनों के द्वारा की जाने वाली आराधना) और कैवलिकी आराधना (केवलियों के द्वारा की जाने वाली आराधना) (४३५)। धार्मिकी आराधना दो प्रकार की कही गई है—श्रुतधर्म की आराधना और चारित्रधर्म की आराधना (४३६)। कैवलिकी आराधना दो प्रकार की कही गई है—अन्तक्रियारूपा और कल्पविमानोपपत्तिका (४३७)। कल्पविमानोपपत्तिका आराधना श्रुतकेवली आदि की ही होती है, केवलज्ञानकेवली की नहीं। केवलज्ञानी शैलेशीकरणरूप अन्तक्रिया आराधना ही करते हैं।

तीर्थंकर वर्ण पद

४३८—दो तित्थगरा णीलुप्पलसमा वण्णेणं पण्णत्ता, तं जहा—मुणिसुव्वए चेव, अरिट्ठणेमी चेव। ४३९—दो तित्थगरा पियंगुसामा वण्णेणं पण्णत्ता, तं जहा—मल्ली चेव, पासे चेव। ४४०—दो तित्थगरा पउमगोरा वण्णेणं पण्णत्ता, तं जहा—पउमप्पहे चेव, वासुपुज्जे चेव। ४४१—दो तित्थगरा चंदगोरा वण्णेणं पण्णत्ता, तं जहा—चंदप्पभे चेव, पुप्फदंते चेव।

दो तीर्थंकर नीलकमल के समान नीलवर्ण वाले कहे गये हैं—मुनिसुव्रत और अरिष्टनेमि (४३८)। दो तीर्थंकर प्रियंगु (कांगनी) के समान श्यामवर्णवाले कहे गये हैं—मल्लिनाथ और पार्श्वनाथ (४३९)। दो तीर्थंकर पद्म के समान लाल गौरवर्णवाले कहे गये हैं—पद्मप्रभ और वासुपूज्य (४४०)। दो तीर्थंकर चन्द्र के समान श्वेत गौरवर्णवाले कहे गये हैं—चन्द्रप्रभ और पुष्पदन्त (४४१)।

पूर्ववस्तु-पद

४४२—सच्चप्पवायपुव्वस्स णं दुवे वत्थू पण्णत्ता।

सत्यप्रवाद पूर्व के दो वस्तु (महाधिकार) कहे गये हैं (४४२)।

नक्षत्र पद

४४३—पुव्वाभद्दवयाणक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते। ४४४—उत्तराभद्दवयाणक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते। ४४५—पुव्वफग्गुणीणक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते। ४४६—उत्तराफग्गुणीणक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते।

पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र के दो तारे कहे गये हैं (४४३)। उत्तराभाद्रपद के दो तारे कहे गये हैं (४४४)। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र के दो तारे कहे गये हैं (४४५)। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के दो तारे कहे गये हैं (४४६)।

समुद्र पद

४४७—अतो ण मणुस्सखेत्तस्स दो समुद्दा पण्णत्ता, त जहा—लवणे चेव, कालोदे चेव ।

मनुष्य क्षेत्र के भीतर दो समुद्र कहे गये है—लवणोद और कालोद ।

चक्रवर्ती पद

४४८—दो चक्कवट्टी अपरिचत्तकामभोगा कालमासे काल किच्चा अहेसत्तमाए पुढवीए अपइट्ठाणे णरए णेरइयत्ताए उववण्णा त जहा—सुभूमे चेव, बम्भदत्ते चेव ।

दो चक्रवर्ती काम-भागो का छोड विना मरण काल मे मरकर नीचे की ओर सातवी पृथ्वी के अप्रतिष्ठान नरक मे नारकी रूप से उत्पन्न हुए—सुभूम और ब्रह्मदत्त ।

देव पद

४४९—असुरिंदवज्जियाण भवणवासीण देवाण उक्कोसेण देसूणाइ दो पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता । ४५०—सोहम्मे कप्पे देवाण उक्कोसेण दो सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता । ४५१—ईसाणे कप्पे देवाण उक्कोसेण सातिरेगाइ दो सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता । ४५२—सणकुमारे कप्पे देवाण जहण्णेण दो सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता । ४५३—माहिंद कप्पे देवाण जहण्णेण साइरेगाइ दो सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता । ४५४—दोसु कप्पेसु कप्पित्थियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—सोहम्मे चेव, ईसाणे चेव । ४५५—दोसु कप्पेसु देवा तेउलेस्सा पण्णत्ता, त जहा—सोहम्मे चेव, ईसाणे चेव । ४५६—दोसु कप्पेसु देवा कायपरियारगा पण्णत्ता, त जहा—सोहम्मे चेव, ईसाणे चेव । ४५७—दोसु कप्पेसु देवा फासपरियारगा पण्णत्ता, त जहा—सणकुमारे चेव, माहिंदे चेव । ४५८—दोसु कप्पेसु देवा रूवपरियारगा पण्णत्ता, त जहा—बभलोगे चेव, लतगे चेव । ४५९—दोसु कप्पेसु देवा सद्दपरियारगा पण्णत्ता, त जहा—महासुक्के चेव, सहस्सारे चेव । ४६०—दो इदा मणपरियारगा पण्णत्ता, त जहा—पाणए चेव, अच्चुए चेव ।

असुरेन्द्र को छोडकर शेष भवनवासी देवो की उत्कृष्ट स्थिति कुछ कम दो पल्योपम कही गई है (४४९) । सौधर्म कल्प मे देवो की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम कही गई है (४५०) । ईशानकल्प मे देवो की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम से कुछ अधिक कही गई है (४५१) । सनत्कुमार कल्प मे देवो की जघन्य स्थिति दो सागरोपम कही गई है (४५२) । माहेन्द्रकल्प मे देवो की जघन्य स्थिति दो सागरोपम से कुछ अधिक कही गई है (४५३) । दो कल्पो मे कल्पस्त्रिया (देविया) कही गई हैं—सौधमकल्प मे और ईशानकल्प मे (४५४) । दो कल्पो मे देव तेजोलेश्यावाले कहे गये हैं—सौधम-कल्प मे और ईशान कल्प मे (४५५) । दो कल्पो मे देव काय-परिचारक (काय से सभोग करने वाले) कहे गये हैं—सौधमकल्प मे और ईशानकल्प मे (४५६) । दो कल्पो मे देव स्पर्श परिचारक (देवी के स्पर्शमात्र से वासनापूर्ति करने वाले) कहे गये हैं—सनत्कुमार कल्प मे और माहेन्द्र कल्प मे (४५७) । दो कल्पो मे देव रूप-परिचारक (देवी का रूप देखकर वासना पूर्त्ति करने वाले) कहे गये हैं—ब्रह्मलोक मे और लान्तक कल्प मे (४५८) । दो कल्पो मे देव शब्द-परिचारक (देवी के शब्द सुन कर वासना पूर्त्ति करने वाले) कहे गये हैं—महाशुक्रकल्प मे और सहस्रार कल्प मे (४५९) । दो इन्द्र मन परिचारक (मन मे देवी का स्मरण कर वासना-पूर्त्ति करने वाले) कहे गये हैं—प्राणतेन्द्र और अच्युतेन्द्र (४६०) ।

पपाकम पद

४६१—जीवाण दुट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिसु वा चिणति वा चिणिस्सति वा, त जहा—तसकायणिव्वत्तिए चेव, थावरकायणिव्वत्तिए चेव।

जीवो ने द्विस्थान-निर्वातित पुदगलो को पाप कम के रूप मे चय किया है, करते हैं और करेंगे—त्रसकाय निर्वतित (त्रस काय के रूप मे उपार्जित) और स्थावरकायनिर्वतित (स्थावरकाय के रूप मे उपार्जित) (४६१)।

४६२—जीवा ण दुट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए उवचिणिसु वा उवचिणति वा, उवचिणिस्सति वा, बधिसु वा बधेंति वा बधिस्सति वा, उदीरिसु वा उदीरेंति वा उदीरिस्सति वा, वेदेंसु वा वेदेंति वा वेदिस्सति वा, णिज्जरिसु वा णिज्जरेंति वा णिज्जरिस्सति वा, त जहा—तसकायणिव्वत्तिए चेव, थावरकायणिव्वत्तिए चेव।

जीवा ने द्विस्थान निर्वतित पुद्गला का पाप कम के रूप मे उपचय किया है, करते हैं और करेगे। उदीरण किया है, करते हैं और करेंगे। वेदन किया है, करते है और करग। निजरए किया है, करते हैं और करग—त्रसकाय निर्वातित और स्थावरकाय-निर्वतित।

विवेचन—चय अर्थात् कम परमाणुश्रा को ग्रहण करना और उपचय का अर्थ है गृहीत कम-परमाणुओ के अबाधाकाल के पश्चात् निषेक-रचना। उदीरण का अर्थ अनुदय-प्राप्त कम-परमाणुओ को अपकर्षण कर उदय मे क्षेपए करना—उदयावलिका मे 'खीच' लाना। उदय प्राप्त कम परमाणुओ के फल भोगने को वेदन कहते हैं और कम-फल भोगने के पश्चात् उनके झड जाने को निजरा या निजरण कहते हैं। कर्मो के ये सभी चय-उपचयादि को त्रसकाय और स्थावरकाय के जीव ही करते ह, अत उन्ह त्रसकाय-निर्वातित और स्थावरकाय निर्वतित कहा गया है।

पुद्गल-पद

४६३—दुपएसिया खधा अणता पण्णत्ता। ४६४—दुपदेसोगाढा पोग्गला अणता पण्णत्ता। ४६५—एव जाव दुगुणलुक्खा पोग्गला अणता पण्णत्ता।

द्विप्रदेशी पुद्गल स्कन्ध अनन्त हैं (४६३)। द्विप्रदेशावगाढ (आकाश के दो प्रदेशो मे रहे हुए) पुद्गल अनन्त हैं (४६४)। इसी प्रकार दो समय की स्थिति वाले और दो गुण वाले पुद्गल अनन्त कहे गये है, शेष सभी वर्ण, गन्ध, रस और स्पश के दो गुण वाले यावत् दो गुण रूक्ष पुद्गल अनन्त-अनन्त कहे गये हैं (४६५)।

चतुर्थ उद्देश समाप्त।
स्थानाङ्ग का द्वितीय स्थान समाप्त॥

तृतीय स्थान

सार सक्षेप

प्रस्तुत स्थान के चार उद्देश हैं, जिनमे तीन तीन की सख्या से सबद्ध विषयो का निरूपण किया गया है।

प्रथम उद्देश मे तीन प्रकार के इन्द्रो का, देव-विक्रिया, और उनके प्रवीचार-प्रकारो का तथा योग, करण, आयुष्य-प्रकरण के द्वारा उनके तीन तीन प्रकारो का वर्णन किया गया है। पुन गुप्ति-अगुप्ति, दण्ड, गर्हा, प्रत्याख्यान, उपकार और पुरुषजात पदो के द्वारा उनके तीन तीन प्रकारो का वर्णन है।

तत्पश्चात् मत्स्य, पक्षी, परिसप, स्त्री-पुरुषवेदी, नपु सकवेदी, तिर्यग्योनिक, और लेश्यापदो के द्वारा उनके तीन तीन प्रकार बताये गये हैं। पुन तारा चलन, देव-विक्रिया, अधकार-उद्योत आदि पदो के द्वारा तीन-तीन प्रकारो का वर्णन है। पुन तीन दुष्प्रतीकारो का वर्णन कर उनसे उऋण होने का बहुत मार्मिक वर्णन किया गया है।

तदनन्तर ससार से पार होने के तीन मार्ग बताकर कालचक्र, अच्छिन्न पुद्गल चलन, उपधि, परिग्रह, प्रणिधान, योनि, तृणवनस्पति, तीर्थ, शलाका पुरुष और उनके वश के तीन-तीन प्रकारो का वर्णन कर, आयु, बीज-योनि, नरक, समान-क्षेत्र, समुद्र, उपपात, विमान, देव और प्रज्ञप्ति पदो के द्वारा तीन तीन वर्ण्य विषयो का प्रतिपादन किया गया है।

द्वितीय उद्देश का सार

इस उद्देश मे तीन प्रकार के लोक, देव-परिषद याम (पहर) वय (अवस्था) बोधि, प्रव्रज्या शक्षभूमि, स्थविरभूमि का निरूपण कर गत्वा अगत्वा आदि २० पदो के द्वारा पुरुषो की विभिन्न प्रकार की तीन-तीन मनोभावनाओ का बहुत सुदर वर्णन किया गया है। जैसे—कुछ लोग हित, मित सात्त्विक भोजन करने के बाद सुख का अनुभव करते हैं। कुछ लोग अहितकर और अपरिमित भोजन करने के बाद अजीर्ण, उदर पीडा आदि के हो जाने पर दु ख का अनुभव करते हैं। किन्तु हित मित भोजी सयमी पुरुष खाने के बाद न सुख का अनुभव करता है और न दु ख का ही अनुभव करता है, किन्तु मध्यस्थ रहता है। इस सन्दर्भ के पढने से मनुष्यो की मनोवृत्तियो का बहुत विशद परिज्ञान होता है।

तदनन्तर गर्हित, प्रशस्त, लोकस्थिति, दिशा, त्रस स्थावर और अच्छेद्य आदि पदो के द्वारा तीन-तीन विषयो का वर्णन किया गया है।

अन्त मे दु ख पद के द्वारा भगवान् महावीर और गौतम के प्रश्न-उत्तरो मे दु ख, दु ख होने के कारण, एव अन्य तीर्थिको के मन्तव्यो का निराकरण किया गया है।

तृतीय उद्देश का सार

इस उद्देश मे सर्वप्रथम आलोचना पद के द्वारा तीन प्रकार की आलोचना का विस्तृत विवेचन कर श्रुतधर, उपधि, आत्मरक्ष, विकटदत्ति, विसम्भोग, वचन, मन और वृष्टि पदों द्वारा तत्-तत्-विषयक तीन तीन प्रकारो का निरूपण किया गया है। यह भी बताया गया है कि किन तीन कारणो से देव वहा जन्म लेने के पश्चात् मध्यलोक मे अपने स्वजनो के पास चाहते हुए भी नही आता ? देवमन स्थिति पद मे देवो की मानसिक स्थिति का बहुत सुन्दर चित्रण है। विमान, वृष्टि और सुगति दुर्गति पद म उससे सबद्ध तीन तीन विषयो का वर्णन है।

तदनन्तर तप पावक, पिण्डैषणा, अवमोदरिका, निर्ग्रन्थचर्या, शल्य, तेजोलेश्या, भिक्षु-प्रतिमा, कर्मभूमि, दर्शन, प्रयोग, व्यवसाय, अर्थयोनि, पुदगल, नरक, मिथ्यात्व, धर्म, और उपक्रम, तीन-तीन प्रकारो का निरूपण किया गया है।

अन्तिम त्रिवर्ग पद मे तीन प्रकार की कथाओ और विनिश्चयो को बताकर गौतम द्वारा पूछे गये और भगवान् महावीर द्वारा दिये गये साधु पर्युपासना सम्बन्धी प्रश्नोत्तरो का बहुत सुदर निरूपण किया गया है।

चतुर्थ उद्देश का सार

इस उद्देश मे सर्वप्रथम प्रतिमापद के द्वारा प्रतिमाधारी अनगार के लिए तीन तीन कर्तव्यो का विवेचन किया गया है। पुन काल, वचन, प्रज्ञापना, उपघात विशोधि आराधना, सक्लेश-असक्लेश, और अतिक्रमादि पदो के द्वारा तत्सबद्ध तीन-तीन विषयो का वर्णन किया गया है।

तदनन्तर प्रायश्चित्त, अकर्मभूमि, जम्बूद्वीपस्थ वर्ष (क्षेत्र) वर्षधर पर्वत, महाद्रह, महा-नदी आदि का वर्णन कर धातकीखण्ड और पुष्करवर द्वीप सम्बन्धी क्षेत्रादि के जानने की सूचना करते हुए भूकम्प पद के द्वारा भूकम्प होने के तीन कारणा का निरूपण किया गया है।

तत्पश्चात् देवकिल्विषिक, देवस्थिति, प्रायश्चित्त और प्रव्रज्यादि अयोग्य तीन प्रकार के व्यक्तियो का वर्णन कर वाचनीय-अवाचनीय और दु सज्ञाप्य सुसज्ञाप्य व्यक्तिया का निरूपण किया गया है। पुन माण्डलिक पर्वत, महामहत् कल्पस्थिति, और शरीर पदो के द्वारा तीन तीन विषयो का वर्णन कर प्रत्यनीक पद मे तीन प्रकार के प्रतिकूल आचरण करने वाला का सुदर चित्रण किया गया है।

पुन अग, मनोरथ, पुद्गल-प्रतिघात, चक्षु, अभिसमागम, ऋद्धि, गौरव, करण, स्वाख्यातधर्म ज्ञ-अन्त, अन्त, जिन, लेश्या, और मरण, पदो के द्वारा वर्ण्य विषया का वर्णन कर श्रद्धानी की विजय और अश्रद्धानी के पराभव के तीन तीन कारणो का निरूपण किया गया है।

अन्त मे पृथ्वीवलय, विग्रहगति, क्षीणमोह, नक्षत्र, तीर्थंकर, ग्रैवेयकविमान, पापकर्म और पुद्गल पदो के द्वारा तत्तद्विषयक विषया का निरूपण किया गया है।

प्रथम उद्देश

इन्द्र पद

१—तओ इंदा पण्णत्ता, तं जहा—णामिंदे, ठवणिंदे, दव्विंदे। २—तओ इंदा पण्णत्ता, तं जहा—णाणिंदे, दसणिंदे, चरित्तिंदे। ३—तओ इंदा पण्णत्ता, तं जहा—देविंदे, असुरिंदे मणुस्सिंदे।

इन्द्र तीन प्रकार के कहे गये है—नाम-इन्द्र (केवल नाम से इन्द्र) स्थापना-इन्द्र (किसी मूर्ति आदि मे इन्द्र का आरोपण) और द्रव्य-इन्द्र (जो भूतकाल मे इन्द्र था अथवा आगे होगा) (१)। पुन इन्द्र तीन प्रकार के कहे गये है—ज्ञान-इन्द्र (विशिष्ट श्रुतज्ञानी या केवली), दर्शन-इन्द्र (क्षायिकसम्यग्दृष्टि) और चारित्र-इन्द्र (यथाख्यातचारित्रवान) (२)। पुन इन्द्र तीन प्रकार के कहे गये है—देव-इन्द्र, असुर इन्द्र और मनुष्य-इन्द्र (चक्रवर्ती आदि) (३)।

विवेचन—निक्षेपपद्धति के अनुसार यहा चौथे भाव-इन्द्र का उल्लेख होना चाहिए, किन्तु त्रिस्थानक का प्रकरण होने से उसकी गणना नही की गई। टीकाकार के अनुसार दूसरे सूत्र मे ज्ञानेन्द्र आदि का जो उल्लेख है, वे पारमार्थिक दृष्टि से भावेन्द्र है। अत भावेन्द्र का निरूपण दूसरे सूत्र मे समझना चाहिए। द्रव्य-ऐश्वर्य की दृष्टि से देवेन्द्र आदि को इन्द्र कहा है।

विक्रिया पद

४—तिविहा विकुव्वणा पण्णत्ता, तं जहा—बाहिरए पोग्गलए परियादित्ता—एगा विकुव्वणा, बाहिरए पोग्गले अपरियादित्ता—एगा विकुव्वणा, बाहिरए पोग्गले परियादित्तावि अपरियादित्तावि—एगा विकुव्वणा। ५—तिविहा विकुव्वणा पण्णत्ता, तं जहा—अब्भतरए पोग्गले परियादित्ता—एगा विकुव्वणा, अब्भतरए पोग्गले अपरियादित्ता—एगा विकुव्वणा, अब्भतरए पोग्गले परियादित्तावि अपरियादित्तावि—एगा विकुव्वणा। ६—तिविहा विकुव्वणा पण्णत्ता, तं जहा—बाहिरब्भतरए पोग्गले परियादित्ता—एगा विकुव्वणा, बाहिरब्भतरए पोग्गले अपरियादित्ता—एगा विकुव्वणा, बाहिरब्भतरए पोग्गले परियादित्तावि अपरियादित्तावि—एगा विकुव्वणा।

विक्रिया तीन प्रकार की कही गई है—१ बाह्य पुद्गलो को ग्रहण करके की जाने वाली विक्रिया। २ बाह्य पुद्गलो को ग्रहण किये बिना की जाने वाली विक्रिया। ३ बाह्य पुद्गलो के ग्रहण और अग्रहण दोनो के द्वारा की जाने वाली विक्रिया (भवधारणीय शरीर मे किञ्चित् विशेषता उत्पन्न करना) (४)। पुन विक्रिया तीन प्रकार की कही गई है—१ आन्तरिक पुद्गलो को ग्रहण कर की जाने वाली विक्रिया। २ आन्तरिक पुद्गलो को ग्रहण किये बिना की जानेवाली विक्रिया। ३ आन्तरिक पुद्गलो के ग्रहण और अग्रहण दोनो के द्वारा की जानेवाली विक्रिया (५)। पुन विक्रिया तीन प्रकार की कही गई है—१ बाह्य और आन्तरिक दानो प्रकार के पुद्गलो को ग्रहण कर की जाने वाली विक्रिया। २ बाह्य और आन्तरिक दोनो प्रकार के पुद्गलो को ग्रहण किये बिना

की जाने वाली विक्रिया । ३ बाह्य और आन्तरिक दोनो प्रकार के पुद्गलो के ग्रहण और अग्रहण के द्वारा की जाने वाली विक्रिया (६) ।

सचित पद

७—तिविहा णेरइया पण्णत्ता, त जहा—कतिसचिता, अकतिसचिता, अवत्तव्वगसचिता। ८—एवमेगिदियवज्जा जाव वेमाणिया।

नारक तीन प्रकार के कहे गये हैं— १ कतिसचित, २ अकतिसचित, ३ अवक्तव्यसचित (७) । इसी प्रकार एकेन्द्रियो को छोडकर वैमानिक देवो तक के सभी दण्डक तीन तीन प्रकार के कहे गये हैं (८) ।

विवेचन—'कति' शब्द सख्यावाचक है। दो से लेकर सख्यात तक की सख्या को कति कहा जाता है। अकति का अर्थ असख्यात और अनन्त है। अवक्तव्य का अर्थ 'एक' है, क्योकि 'एक' की गणना सख्या मे नही की जाती है। क्योकि किसी सख्या के साथ एक का गुणाकार या भागाकार करने पर वृद्धि-हानि नही होती। अत 'एक' सख्या नही, सख्या का मूल है। नरक गति मे नारक एक साथ सख्यात उत्पन्न होते हैं। उत्पत्ति की इस समानता से उन्हे कति-सचित कहा गया है। तथा नारक एक साथ असख्यात भी उत्पन्न होते हैं, अत उन्हें अकति-सचित भी कहा गया है। कभी-कभी जघन्य रूप से एक ही नारक नरकगति मे उत्पन्न होता है अत उसे अवक्तव्य सचित कहा गया है, क्योकि उसकी गणना न तो कति-सचित मे की जा सकती है और न अकति-सचित मे ही की जा सकती है। एकेन्द्रिय जीव प्रतिसमय या साधारण वनस्पति मे अनन्त उत्पन्न होते हैं, वे केवल अकति सचित ही होते हैं, अत सूत्र मे उनको छोडने का निर्देश किया गया है।

परिचारणा सूत्र

९—तिविहा परियारणा पण्णत्ता, त जहा—

१ एगे देवे अण्णे देवे, अण्णेसि देवाण देवीओ य अभिजु जिय अभिजु जिय परियारेति, अप्पणिज्जिआओ देवीओ अभिजु जिय-अभिजु जिय परियारेति, अप्पाणमेव अप्पणा विउव्विय विउव्विय परियारेति।

२ एगे देवे णो अण्णे देवे, णो अण्णेसि देवाण देवीओ अभिजु जिय अभिजु जिय परियारेति, अप्पणिज्जिआओ देवीओ अभिजु जिय-अभिजु जिय परियारेति, अप्पाणमेव अप्पणा विउव्विय-विउव्विय परियारेति।

३ एगे देवे णो अण्णे देवे, णो अण्णेसि देवाण देवीओ अभिजु जिय-अभिजु जिय परियारेति णो अप्पणिज्जिताओ देवीओ अभिजु जिय अभिजु जिय परियारेति, अप्पाणमेव अप्पाण विउव्विय विउव्विय परियारेति।

परिचारणा तीन प्रकार की कही गई है—१ कुछ देव अन्य देवो तथा अन्य देवो की देवियो का आलिगन कर-कर परिचारणा करते हैं, कुछ देव अपनी देवियो का बार-बार आलिगन करके परिचारणा करते हैं और कुछ देव अपने ही शरीर से बनाये हुए विभिन्न रूपो से परिचारणा करते हैं। परिचार का अर्थ मैथुन-सेवन है (९) ।

२ कुछ देव अन्य देवो तथा अन्य देवो की देवियो का वारवार आलिंगन करके परिचारणा नही करते, किन्तु अपनी देवियो का आलिंगन कर-कर के परिचारणा करते हैं, तथा अपने ही शरीर से बनाये हुए विभिन्न रूपो से परिचारणा करते हैं।

३, कुछ देव अन्य देवो तथा अन्य देवो की देवियो से आलिंगन कर-कर परिचारणा नही करते, अपनी देवियो का भी आलिंगन कर-करके परिचारणा नही करते। केवल अपने ही शरीर से बनाये हुए विभिन्न रूपो से परिचारणा करते है (९)।

मैथुन-प्रकार सूत्र

१०—तिविहे मेहुणे पण्णत्ते, त जहा—दिव्वे, माणुस्सए, तिरिक्खजोणिए। ११—तओ मेहुण गच्छति, त जहा—देवा, मणुस्सा, तिरिक्खजोणिया। १२—तओ मेहुण सेवति, त जहा—इत्थी, पुरिसा, णपु सगा।

मैथुन तीन प्रकार का कहा गया है—दिव्य, मानुष्य और तिर्यग्-योनिक (१०)। तीन प्रकार के जीव मैथुन करते हैं—देव, मनुष्य और तिर्यंच (११)। तीन प्रकार के जीव मैथुन का सेवन करते हैं—स्त्री, पुरुष और नपु सक (१२)।

योग सूत्र

१३—तिविहे जोगे पण्णत्ते, त जहा—मणजोगे, वइजोगे कायजोगे। एव—णेरइयाण विगलिदियवज्जाण जाव वेमाणियाण। १४—तिविहे पओगे पण्णत्ते, त जहा—मणपओगे, वइपओगे कायपओगे। जहा जोगो विगलिदियवज्जाण जाव तहा पओगोवि।

योग तीन प्रकार का कहा गया है—मनोयोग, वचनयोग और काययोग। इसी प्रकार विकलेन्द्रियो (एकेन्द्रियो से लेकर चतुरिन्द्रियो तक के जीवो) को छोडकर वैमानिक देवो तक के सभी दण्डको मे तीन-तीन योग होते हैं (१३)। प्रयोग तीन प्रकार का कहा गया है—मन प्रयोग, वचन-प्रयोग और काय-प्रयोग। जैसा योग का वर्णन किया, उसी प्रकार विकलेन्द्रियो को छोड कर शेष सभी दण्डको मे तीनो ही प्रयोग जानना चाहिए (१४)।

करण सूत्र

१५—तिविहे करणे पण्णत्ते, त जहा—मणकरणे, वइकरणे, कायकरणे, एव—विगलिदियवज्ज जाव वेमाणियाण। १६—तिविहे करणे पण्णत्ते, त जहा—आरभकरणे, सरभकरणे, समारभकरणे। णिरतर जाव वेमाणियाण।

करण तीन प्रकार का कहा गया है—मन करण, वचन-करण और काय करण। इसी प्रकार विकलेन्द्रियो को छोडकर शेष सभी दण्डको मे तीनो ही करण होते हैं (१५) पुन करण तीन प्रकार का कहा गया है—आरम्भकरण, सरम्भकरण और समारम्भकरण। ये तीनो ही करण वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको मे पाये जाते हैं (१६)।

विवेचन—वीर्यान्तराय कर्म के क्षय या क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाली जीव की शक्ति या

वीय को योग कहते हैं। तत्त्वार्थसूत्रकार ने मन, वचन और काय की क्रिया का योग कहा है। योग के निमित्त से ही कर्मों का आस्रव और बन्ध होता है। मन से युक्त जीव के योग को मनोयोग कहते हैं। अथवा मन के कृत, कारित और अनुमतिरूप व्यापार को मनोयोग कहते हैं। इसी प्रकार वचन योग और काययोग का भी अर्थ जानना चाहिए। प्रयोजन-विशेष से किये जाने वाले मन वचन-काय के व्यापार-विशेष को प्रयोग कहते हैं। योग के समान प्रयोग के भी तीन भेद होते हैं और उनसे कर्मों का विशेष आस्रव और बंध होता है। योगों के सरम्भ-समारम्भादि रूप परिणमन को करण कहते हैं। पृथ्वीकायिकादि जीवों के घात का मनमें संकल्प करना सरम्भ कहलाता है। उक्त जीवों को सन्ताप पहुचाना समारम्भ कहलाता है और उनका घात करना आरम्भ कहलाता है। इस प्रकार योग, प्रयोग और करण इन तीनों के द्वारा जीव, कर्मों का आस्रव और बंध करते रहते हैं। साधारणत योग, प्रयोग और करण को एकार्थक भी कहा गया है।

आयुष्य सूत्र

१७—तिहिं ठाणेहिं जीवा अप्पाउयत्ताए कम्म पगरेंति, त जहा—पाणे अतिवातित्ता भवति, मुस वइत्ता भवति, तहारूव समण वा माहण वा अफासुएण अणेसणिज्जेण असणपाणखाइमसाइमेण पडिलाभेत्ता भवति—इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा अप्पाउयत्ताए कम्म पगरेंति।

तीन प्रकार स जीव अल्पआयुष्य कर्म का बंध करते हैं—प्राणो का अतिपात (घात) करने से, मृषावाद बोलने से और तथारूप श्रमण माहन को अप्रासुक, अनएषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार का प्रतिलाभ (दान) करने से। इन तीन प्रकारो से जीव अल्प आयुष्य कर्म का बंध करते हैं (१७)।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र म आये विशिष्ट पदो का अर्थ इस प्रकार है—सयम साधना के अनुरूप वेष के धारक को तथारूप कहते हैं। अहिंसा के उपदेश देनेवाले को माहन कहते हैं। सजीव खान पान की वस्तुओ का अप्रासुक कहते है। साधु के लिए अग्राह्य भोज्य पदार्थों को अनएषणीय कहते हैं। दाल, भात, रोटी आदि अशन कहलाते है। पीने के योग्य पदार्थ पान कहे जाते हैं। फल मेवा आदि को खाद्य और लौंग, इलायची आदि स्वाद लेने योग्य पदार्थों को स्वाद्य कहते हैं।

१८—तिहिं ठाणेहिं जीवा दीहाउयत्ताए कम्म पगरेंति, त जहा—णो पाणे अतिवातित्ता भवइ, णो मुस वइत्ता भवइ, तहारूव समण वा माहण वा 'फासुएण एसणिज्जेण' असणपाणखाइमसाइमेण पडिलाभेत्ता भवइ—इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा दीहाउयत्ताए कम्म पगरेंति।

तीन प्रकार से जीव दीर्घायुष्य कर्म का बंध करते हैं—प्राणो का अतिपात न करने से, मृषावाद न बोलने से, और तथारूप श्रमण माहन को प्रासुक एषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार का प्रतिलाभ करने से। इन तीन प्रकारो से जीव दीर्घआयुष्य कर्म का बन्ध करते हैं (१८)।

१९—तिहिं ठाणेहिं जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्म पगरेंति, त जहा—पाणे अतिवातित्ता भवइ, मुस वइत्ता भवइ, तहारूव समण वा माहण वा हीलित्ता णिंदित्ता खिसित्ता गरहित्ता अवमाणित्ता अण्णयरेण अमणुण्णेण अपीतिकारएण असणपाणखाइमसाइमेण पडिलाभेत्ता भवइ—इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्म पगरेंति।

तीन प्रकार से जीव अशुभ दीर्घायुष्य कर्म का बन्ध करते हैं—प्राणो का घात करने से, मृषावाद बोलने से और तथारूप श्रमण माहन की अवहेलना, निन्दा, अवज्ञा, गर्हा और अपमान कर कोई अमनोज्ञ तथा अप्रीतिकर अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य का प्रतिलाभ करने से। इन तीन प्रकारो से जीव अशुभ दीर्घ आयुष्य कर्म का बन्ध करते है (१९)।

२०—तिहिं ठाणेहिं जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति, त जहा—णो पाणे अतिवातित्ता भवइ, णो मुसं वदित्ता भवइ, तहारूवं समणं वा माहणं वा वदित्ता णमंसित्ता सक्कारित्ता सम्माणित्ता कल्लाणं मगलं देवतं चेतितं पज्जुवासेत्ता मणुण्णेणं पीतिकारएणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेत्ता भवइ—इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा सुहदीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति।

तीन प्रकार से जीव शुभ दीर्घायुष्य कर्म का बन्ध करते है—प्राणो का घात न करने से, मृषावाद न बोलने से और तथारूप श्रमण माहन को वन्दन-नमस्कार कर, उनका सत्कार सम्मान कर, कल्याणकर, मगल देवरूप तथा चैत्यरूप मानकर उनकी पर्युपासना कर उन्हे मनोज्ञ एव प्रीतिकर अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार का प्रतिलाभ करने से। तीन प्रकारो से जीव शुभ दीर्घायुष्य कर्म का बन्ध करते है (२०)।

गुप्ति अगुप्ति सूत्र

२१—तओ गुत्तीओ पण्णत्ताओ, त जहा—मणगुत्ती, वइगुत्ती, कायगुत्ती। २२—सजयमणुस्साण तओ गुत्तीओ पण्णत्ताओ, त जहा—मणगुत्ती, वइगुत्ती, कायगुत्ती। २३—तओ अगुत्तीओ पण्णत्ताओ, त जहा—मणअगुत्ती, वइअगुत्ती, कायअगुत्ती। एव—णेरइयाण जाव थणियकुमाराण पंचिदियतिरिक्खजोणियाण असजतमणुस्साण वाणमतराण जोइसियाण वेमाणियाण।

गुप्ति तीन प्रकार की कही गई है—मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति (२१)। सयत मनुष्यो के तीनो गुप्तिया कही गई हैं—मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति (२२)। अगुप्ति तीन प्रकार की कही गई है—मन अगुप्ति, वचन-अगुप्ति और काय-अगुप्ति। इसी प्रकार नारको से लेकर यावत स्तनित कुमारो के, पचेन्द्रियतिर्यग्योनिको के, असयत मनुष्यो के, वान-व्यन्तर देवो के, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के तीनो ही अगुप्तिया कही गई हैं (मन, वचन, काय के नियत्रण को गुप्ति और नियत्रण न रखने को अगुप्ति कहते हैं)। (२३)

दण्ड सूत्र

२४—तओ दडा पण्णत्ता, त जहा—मणदडे, वइदडे, कायदडे। २५—णेरइयाण तओ दडा पण्णत्ता, त जहा—मणदडे वइदडे, कायदडे। विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाण।

दण्ड तीन प्रकार के कहे गये हैं—मनोदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड (२४)। नारको के तीन दण्ड कहे गये है—मनोदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड। इसी प्रकार विकलेन्द्रिय जीवो को छोडकर वैमानिक-पर्यन्त सभी दण्डको मे तीनो ही दण्ड कहे गये हैं। (योगो की दुष्ट प्रवृत्ति को दण्ड कहते है) (२५)।

गर्हा-सूत्र

२६—तिविहा गरहा पण्णत्ता, त जहा—मणसा वेगे गरहति, वयसा वेगे गरहति, कायसा वेगे गरहति—पावाण कम्माण अकरणयाए।

अहवा—गरहा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—दीहपेगे अद्ध गरहति, रहस्सपेगे अद्ध गरहति, कायपेगे पडिसाहरति—पावाण कम्माण अकरणयाए।

गर्हा तीन प्रकार की कही गई है—कुछ लोग मन से गर्हा करते हैं, कुछ लोग वचन से गर्हा करते है और कुछ लोग काया से गर्हा करते हैं—पाप कर्मों को नही करने के रूप से। अथवा गर्हा तीन प्रकार की कही गई है—कुछ लोग दीघकाल तक पाप-कर्मों को गर्हा करते है, कुछ लोग अल्प काल तक पाप-कर्मों की गर्हा करते हैं और कुछ लोग काया का निरोध कर गर्हा करते हैं - पाप कर्मो का नही करने के रूप से (भूतकाल मे किये गये पापो की निन्दा करने को गर्हा कहते हैं।) (२६)।

प्रत्याख्यान सूत्र

२७—तिविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, त जहा—मणसा वेगे पच्चक्खाति, वयसा वेगे पच्चक्खाति, कायसा वेगे पच्चक्खाति—[पावाण कम्माण अकरणयाए।

अहवा—पच्चक्खाणे तिविहे पण्णत्ते, त जहा—दीहपेगे अद्ध पच्चक्खाति, रहस्सपेगे अद्ध पच्चक्खाति, कायपेगे पडिसाहरति—पावाण कम्माण अकरणयाए]।

प्रत्याख्यान तीन प्रकार का कहा गया है—कुछ लोग मन से प्रत्याख्यान करते हैं, कुछ लोग वचन से प्रत्याख्यान करते हैं और कुछ लोग काया से प्रत्याख्यान करते हैं (पाप-कर्मों को आगे नही करने के रूप से।

अथवा प्रत्याख्यान तीन प्रकार का कहा गया है—कुछ लोग दीघकाल तक पापकर्मों का प्रत्याख्यान करते है, कुछ लोग अल्पकाल तक पाप कर्मों का प्रत्याख्यान करते हैं और कुछ लोग काया का निरोध कर प्रत्याख्यान करत हैं पाप-कर्मों को आगे नही करने के रूप स (भविष्य म पाप कर्मों के त्याग का प्रत्याख्यान कहते हैं।) (२७)।

उपकार सूत्र

२८—तओ रुक्खा पण्णत्ता, त जहा—पत्तोवगे, पुप्फोवगे, फलोवगे।

एवामेव तओ पुरिसजाता पण्णत्ता, त जहा—पत्तोवारुक्खसमाणे, पुप्फोवारुक्खसमाण, फलोवारुक्खसमाणे।

वृक्ष तीन प्रकार के कहे गये हैं—पत्रो वाले, पुष्पो वाले और फलो वाले। इसी प्रकार पुरुष भी तीन प्रकार के कहे गये हैं—पत्रोवाले वृक्ष के समान अल्प उपकारी, पुष्पावाले वृक्ष के समान विशिष्ट उपकारी और फलोवाले वृक्ष के समान विशिष्टतर उपकारी (२८)।

विवेचन—केवल पत्ते वाले वृक्षो से पुष्पो वाले और उनसे भी अधिक फलवाले वृक्ष लाक म उत्तम माने जाते हैं। जो पुरुष दु खी पुरुष को आश्रय देते हैं वे पत्रयुक्त वृक्ष के समान है। जो आश्रय के साथ उसके दु ख दूर करने का आश्वासन भी देते हैं, वे पुष्पयुक्त वृक्ष के समान हैं और उसका भारण-पोषण भी करते हैं वे फलयुक्त वृक्ष के समान है।

पुरुषजात सूत्र

२६—तम्रो पुरिसज्जाया पण्णत्ता, त जहा—णामपुरिसे, ठवणपुरिसे, दव्वपुरिसे । ३०—तम्रो पुरिसज्जाया पण्णत्ता, त जहा—णाणपुरिसे, दसणपुरिसे, चरित्तपुरिसे । ३१—तम्रो पुरिसज्जाया पण्णत्ता, त जहा—वेदपुरिसे, चिंधपुरिसे, अभिलावपुरिसे । ३२—तिविहा पुरिसा पण्णत्ता, त जहा—उत्तमपुरिसा, मज्झिमपुरिसा, जहण्णपुरिसा । ३३—उत्तमपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—धम्मपुरिसा, भोगपुरिसा, कम्मपुरिसा । धम्मपुरिसा अरहता, भोगपुरिसा चक्कवट्टी, कम्मपुरिसा वासुदेवा । ३४—मज्झिमपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—उग्गा, भोगा, राइण्णा । ३५—जहण्ण-पुरिसा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—दासा भयगा, भाइल्लगा ।

पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—नामपुरुष, स्थापनापुरुष और द्रव्यपुरुष (२६) । पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—ज्ञानपुरुष दर्शनपुरुष और चारित्रपुरुष (३०) । पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—वेदपुरुष, चिह्नपुरुष और अभिलापपुरुष (३१) । पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं— उत्तमपुरुष, मध्यम पुरुष और जघन्य पुरुष (३२) उत्तम पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—धमपुरुष (अरहन्त) भोगपुरुष (चक्रवर्ती) और कर्मपुरुष (वासुदेव) (३३) । मध्यम पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—उग्र, भोग और राजन्य (३४) जघन्य पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—दास, भृतक और भागीदार (३५) ।

विवेचन—उक्त सूत्रो मे कहे गये विविध प्रकार के पुरुषो का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

नामपुरुष—जिस चेतन या अचेतन वस्तु का 'पुरुष' नाम हो वह ।

स्थापनापुरुष—पुरुष की मूर्ति या जिस किसी अन्य वस्तु मे 'पुरुष' का सकल्प किया हो वह ।

द्रव्यपुरुष—पुरुष रूप मे भविष्य मे उत्पन्न होने वाला जीव या पुरुष का मृत शरीर ।

दर्शनपुरुष—विशिष्ट सम्यग्दर्शन वाला पुरुष ।

चारित्रपुरुष—विशिष्ट चारित्र से सपन्न पुरुष ।

वेदपुरुष—पुरुष वेद का अनुभव करने वाला जीव ।

चिह्नपुरुष—दाढी-मूछ आदि चिह्नो से युक्त पुरुष ।

अभिलापपुरुष—लिंगानुशासन के अनुसार पुल्लिंग द्वारा कहा जाने वाला शब्द ।

उत्तम प्रकार के पुरुषो मे भी उत्तम धमपुरुष तीर्थंकर अरहन्त देव होते हैं । उत्तम प्रकार के मध्यम पुरुषो मे भोगपुरुष चक्रवर्ती माने जाते है और उत्तम प्रकार के जघन्यपुरुषो मे कर्मपुरुष वासुदेव नारायण कहे गये है ।

मध्यम प्रकार के तीन पुरुष उग्र, भोग या भोज और राजन्य है । उग्रवशी या प्रजा सरक्षण का कार्य करने वालो को उग्रपुरुष कहा जाता है । भोग या भोजवशी एव गुरु, पुरोहित स्थानीय पुरुषो को भोग या भोज पुरुष कहा जाता है । राजा के मित्र स्थानीय पुरुषो को राजन्य पुरुष कहते हैं ।

जघन्य प्रकार के पुरुषो मे दास, भृतक और भागीदार कमश परिगणित हैं । मूल्य से खरीदे गये सेवक को दास कहा जाता है । प्रतिदिन मजदूरी लेकर काम करने वाले मजदूर को या मासिक वेतन लेकर काम करने वाले को भृतक कहते है । तथा जो खेती, व्यापार आदि मे तीसरे,

चोथे आदि भाग को लेकर काय करते हैं, उन्हें भाइल्लक, भागी या भागीदार कहते हैं। वतमान मे दासप्रथा समाप्तप्राय है, दैनिक या मासिक वेतन पर काम करन वाले या खेती व्यापार मे भागीदार बनकर काम करने वाले ही पुरुष अधिकतर पाये जाते हैं।

मत्स्य-सूत्र

३६—तिविहा मच्छा पण्णत्ता, त जहा—अडया, पोयया, समुच्छिमा। ३७—अडया मच्छा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—इत्थी, पुरिसा, णपु सगा। ३८—पोतया मच्छा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—इत्थी, पुरिसा, णपु सगा।

मत्स्य तीन प्रकार के कहे गये हैं—अण्डज (अडे मे उत्पन्न होने वाले) पोतज (विना आवरण के उत्पन्न होने वाले) और सम्मूच्छिम (इधर उधर के पुद्गल सयोगो से उत्पन्न होने वाले) (३६)। अण्डज मत्स्य तीन प्रकार के कहे गये हैं—स्त्री, पुरुष और नपु सक वेद वाले (३७)। पोतज मत्स्य तीन प्रकार के कहे गये हैं—स्त्री, पुरुष और नपु सक वेदवाले। (सम्मूर्छिम मत्स्य नपु सक ही होते है) (३८)।

पक्षि सूत्र

३९—तिविहा पक्खी पण्णत्ता, त जहा—अडया, पोयया, समुच्छिमा। ४०—अडया पक्खी तिविहा पण्णत्ता, त जहा—इत्थी, पुरिसा, णपु सगा। ४१—पोयया पक्खी तिविहा पण्णत्ता, त जहा—इत्थी, पुरिसा, णपु सगा।

पक्षी तीन प्रकार के कहे गये है—अण्डज, पोतज और सम्मूच्छिम (३९)। अण्डज पक्षी तीन प्रकार के कहे गये है—स्त्री, पुरुष और नपु सक वेदवाले (४०)। पोतज पक्षी तीन प्रकार के कहे गये है—स्त्री, पुरुष और नपु सक वेदवाले (४१)।

परिसप सूत्र

४२—एवमेतेण अभिलावेण उरपरिसप्पा वि भाणियव्वा, भुजपरिसप्पा वि [तिविहा उरपरिसप्पा पण्णत्ता, त जहा—अडया, पोयया, समुच्छिमा। ४३—अडया उरपरिसप्पा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—इत्थी, पुरिसा, णपु सगा। ४४—पोयया उरपरिसप्पा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—इत्थी, पुरिसा, णपु सगा। ४५—तिविहा भुजपरिसप्पा पण्णत्ता, त जहा—अडया, पोयया, समुच्छिमा। ४६—अडया भुजपरिसप्पा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—इत्थी, पुरिसा, णपु सगा। ४७—पोयया भुजपरिसप्पा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—इत्थी, पुरिसा, णपु सगा]।

इसी प्रकार उरपरिसप और भुजपरिसप का भी कथन जानना चाहिए। [उर परिसर्प तीन प्रकार के कहे गये है—अण्डज, पोतज और सम्मूच्छिम (४२)। अण्डज उर-परिसर्प तीन प्रकार के कहे गये हैं—स्त्री, पुरुष और नपु सक वेदवाले (४३)। पोतज उरपरिसप तीन प्रकार के कहे गये हैं—स्त्री, पुरुष और नपु सक वेदवाले (४४)। भुजपरिसप तीन प्रकार के कहे गये हैं—अण्डज, पोतज और सम्मूच्छिम (४५)। अण्डज भुजपरिसप तीन प्रकार के कहे गये हैं—स्त्री, पुरुष और नपु सक वेद वाले (४६)। पोतज भुजपरिसप तीन प्रकार के कहे गये हैं—स्त्री, पुरुष और नपु सक वेदवाले (४७)।]

विवेचन—उदर, वक्ष स्थल अथवा भुजाओं आदि के बलपर सरकने या चलने वाले जीवों को परिसर्प कहा जाता है। इन की जातिया मुख्य रूप से दो प्रकार की होती हैं—उर परिसप और भुज-परिसप। पेट और छाती के बलपर रेंगने या सरकने वाले साप आदि को उर परिसप कहते हैं और भुजाओं के बल पर चलने वाले नेउले, गोह आदि को भुजपरिसप कहते है। इन दोनो जातियो के अण्डज और पोतज जीव तो तीनो ही वेदवाले होते है। किन्तु सम्मूच्छिम जाति वाले केवल नपु सक वेदी ही होते हैं।

स्त्री सूत्र

४८—तिविहाओ इत्थीओ पण्णत्ताओ, त जहा—तिरिक्खजोणित्थीओ, मणुस्सित्थीओ देवित्थीओ। ४९—तिरिक्खजोणीओ इत्थीओ तिविहाओ पण्णत्ताओ, त जहा—जलचरीओ थलचरीओ, खहचरीओ। ५०—मणुस्सित्थीओ तिविहाओ पण्णत्ताओ, त जहा—कम्मभूमियाओ, अकम्मभूमियाओ अतरदीविगाओ।

स्त्रिया तीन प्रकार की कही गई है—तिर्यग्योनिकस्त्री, मनुष्यस्त्री और देवस्त्री (४८)। तिर्यग्योनिक स्त्रिया तीन प्रकार की कही गई हैं—जलचरी स्थलचरी और खेचरी (नभश्चरी) (४९)। मनुष्य स्त्रिया तीन प्रकार की कही गई है—कमभूमिजा, अकमभूमिजा और अन्तर्द्वीपजा (५०)।

विवेचन—नरक गति मे नारक केवल एक नपु सक वेद वाले होते हैं अत शेष तीन गतिवाले जीवा मे स्त्रियो का होना कहा गया है। तिर्यग्योनि के जीव तीन प्रकार के होते है, जलचर—मत्स्य, मेंढक आदि। स्थलचर—बैल भैंसा आदि। खेचर या नभश्चर—कबूतर, बगुला, आदि। इन तीनो जातियो की अपेक्षा उन की स्त्रिया भी तीन प्रकार की कही गई है। मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं—कर्मभूमिज, अकमभूमिज और अन्तर्द्वीपज। जहा पर मषि, असि, कृषि आदि कर्मों के द्वारा जीवन-निर्वाह किया जाता है, उसे कमभूमि कहते हैं। भरत, ऐरवत क्षेत्र मे अवसर्पिणी आरे के अन्तिम तीन कालो मे, तथा उत्सर्पिणी के प्रारम्भिक तीन कालो मे कृषि आदि से जीविका चलाई जाती है, अत उस समय वहा उत्पन्न होने वाले मनुष्य-तिर्यंचो को कर्मभूमिज कहा जाता है। विदेह क्षेत्र के देवकुरु और उत्तरकुरु को छोडकर पूर्व और अपर विदेह मे उत्पन्न होने वाले मनुष्य तिर्यंच कम-भूमिज ही कहलाते है। शेष हैमवत आदि क्षेत्रो मे तथा सुषमासुषमा आदि तीन कालो मे उत्पन्न हुए मनुष्य-तिर्यंचो को अकमभूमिज या भोगभूमिज कहा जाता है, क्योकि वहा के मनुष्य और तियच प्रकृति जन्य कल्पवृक्षो द्वारा प्रदत्त भोगो को भोगते है। उक्त दो जाति के अतिरिक्त लवण आदि समुद्रो के भीतर स्थित द्वीपो मे उत्पन्न होने वाले मनुष्यो को अन्तर्द्वीपज कहते हैं। इस प्रकार मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं, अत उनकी स्त्रिया भी तीन प्रकार की कही गई हैं।

पुरुष सूत्र

५१—तिविहा पुरिसा पण्णत्ता, त जहा—तिरिक्खजोणियपुरिसा, मणुस्सपुरिसा, देवपुरिसा। ५२—तिरिक्खजोणियपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—जलचरा, थलचरा, खहचरा। ५३—मणुस्स-पुरिसा तिविहा पण्णत्ता, त जहा—कम्मभूमिया, अकम्मभूमिया, अतरदीवगा।

पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—तिर्यग्योनिक पुरुष, मनुष्य-पुरुष और देव पुरुष (५१)।

तिर्यग्योनिक पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—जलचर, स्थलचर और खेचर (५२)। मनुष्य पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज और अन्तर्द्वीपज (५३)।

नपुंसक सूत्र

५४— तिविहा णपुंसगा पण्णत्ता, तं जहा—णेरइयणपुंसगा, तिरिक्खजोणियणपुंसगा, मणुस्सणपुंसगा। ५५—तिरिक्खजोणियणपुंसगा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—जलयरा, थलयरा, खहयरा। ५६—मणुस्सणपुंसगा तिविधा पण्णत्ता, तं जहा—कम्मभूमिगा, अकम्मभूमिगा, अंतरदीवगा।

नपुंसक तीन प्रकार के कहे गये है—नारक नपुंसक, तिर्यग्योनिक-नपुंसक और मनुष्य-नपुंसक (५४)। तिर्यग्योनिक नपुंसक तीन प्रकार के कहे गये हैं—जलचर, स्थलचर और खेचर (५५)। मनुष्य नपुंसक तीन प्रकार के कहे गये हैं—कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज और अन्तर्द्वीपज (देवगति में नपुंसक नहीं होते) (५६)।

तिर्यग्योनिक-सूत्र

५७—तिविहा तिरिक्खजोणिया पण्णत्ता, तं जहा—इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।

तिर्यग्योनिक जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं-स्त्रीतिर्यंच, पुरुषतिर्यंच और नपुंसकतिर्यंच(५७)।

लेश्या सूत्र

५८—णेरइयाणं तओ लेसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा। ५९—असुरकुमाराणं तओ लेसाओ संकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा। ६०—एवं जाव थणियकुमाराणं। ६१—एवं—पुढविकाइयाणं आउ वणस्सतिकाइयाणवि। ६२—तेउकाइयाणं वाउकाइयाणं बेंदियाणं तेंदियाणं चउरिंदिआणवि तओ लेस्सा, जहा णेरइयाणं। ६३—पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तओ लेसाओ संकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा। ६४—पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तओ लेसाओ असंकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तेउलेसा, पम्हलेसा, सुक्कलेसा। ६५—एवं मणुस्साण वि [मणुस्साणं तओ लेसाओ संकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा। ६६—मणुस्साणं तओ लेसाओ असंकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तेउलेसा, पम्हलेसा, सुक्कलेसा]। ६७—वाणमंतराणं जहा असुरकुमाराणं। ६८—वेमाणियाणं तओ लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तेउलेसा, पम्हलेसा, सुक्कलेसा।

नारकों में तीन लेश्याएं कही गई हैं—कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या (५८)। असुरकुमारों में तीन अशुभ लेश्याएं कही गई हैं—कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या (५९)। इसी प्रकार स्तनितकुमार तक के सभी भवनवासी देवों में तीनों अशुभ लेश्याएं कही गई हैं (६०)। पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवों में भी तीनों अशुभ लेश्याएं होती हैं—कृष्ण-लेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या (६१)। तेजस्कायिक, वायुकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में भी नारकों के समान तीनों अशुभ लेश्याएं होती हैं (६२)। पञ्चेन्द्रियतिर्यग्-योनिक जीवों में तीन अशुभलेश्याएं कही गई हैं—कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या (६३)।

पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवो मे तीन शुभ लेश्याए कही गई हैं—तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या (६४)। इसी प्रकार मनुष्यो मे भी तीन अशुभ लेश्याए कही गई हैं—कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या (६५)। मनुष्यो मे तीन शुभ लेश्याए भी कही गई है—तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, और शुक्ल-लेश्या (६६)।) वान व्यन्तरो म असुरकुमारो के समान तीन अशुभ लेश्याए कही गई है (६७)। वैमानिक देवा मे तीन शुभ लेश्याए कही गई है—तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या (६८)।

विवेचन—यद्यपि तत्त्वार्थसूत्र आदि मे असुरकुमार आदि भवनवासी और व्यन्तरदेवो के तेजो-लेश्या भी बतलाई गई है, परन्तु इस स्थान मे तीन तीन का सकलन विवक्षित है, अत उनमे केवल तीन अशुभ लेश्याओ का ही कथन किया गया है। लेश्याओ के स्वरूप का विवेचन प्रथम स्थान के लेश्यापद मे किया जा चुका है।

तारारूप चलन सूत्र

६९—तिहि ठाणेहि ताराख्वे चलेज्जा, त जहा—विकुव्वमाणे वा, परियारेमाणे वा, ठाणाओ वा ठाण सकममाणे ताराख्वे चलेज्जा।

तीन कारणो से तारा चलित होता है—विक्रिया करते हुए, परिचारणा करते हुए और एक स्थान से दूसरे स्थान म सक्रमण करते हुए।

देवविक्रिया सूत्र

७०—तिहि ठाणेहि देवे विज्जुयार करेज्जा, त जहा—विकुव्वमाणे वा, परियारेमाणे वा, तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा इड्ढि जुति जस बल वीरिय पुरिसक्कार परक्कम उवदसेमाणे—देवे विज्जुयार करेज्जा। ७१—तिहि ठाणेहि देवे थणियसद्द करेज्जा, त जहा—विकुव्वमाणे वा, [परियारेमाणे वा, तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा इड्ढि जुत्ति जस बल वीरिय पुरिसक्कार-परक्कम उवदसेमाणे—देवे थणियसद्द करेज्जा]।

तीन कारणो स देव विद्युत्कार (विद्युत्प्रकाश) करते है—वैक्रियरूप करते हुए, परिचारणा करते हुए और तथारूप श्रमण माहन के सामने अपनी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीय, पुरुषकार तथा पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए (७०)। तीन कारणो से देव मेघ जसी गर्जना करते हैं—वैक्रिय रूप करते हुए, (परिचारणा करते हुए, और तथारूप श्रमण माहन के सामने अपनी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषकार तथा पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए।) (७१)।

विवेचन—देवो के विद्युत् जसा प्रकाश करने और मेघ जैसी गजना करने के तीसरे कारण मे उल्लिखित ऋद्धि आदि शब्दो का अर्थ इस प्रकार है—विमान एव परिवार आदि के वैभव को ऋद्धि कहते हैं। शरीर और आभूषण आदि की कान्ति को द्युति कहते हैं। प्रख्याति या प्रसिद्धि को यश कहते है। शारीरिक शक्ति को बल और आत्मिक शक्ति को वीय कहते हैं। पुरुषार्थ करने के अभिमान को पुरुषकार कहते हैं, तथा पुरुषार्थजनित अहकार को पराक्रम कहते हैं। किसी सयमी साधु के समक्ष अपना वभव आदि दिखलाने के लिए भी बिजली जैसा प्रकाश और मेघ जसी गजना करते हैं।

अन्धकार-उद्योत-आदि सूत्र

७२—तिहिं ठाणेहिं लोगंधयारे सिया, तं जहा—अरहंतेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं, अरहंतपण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे, पुव्वगते वोच्छिज्जमाणे। ७३—तिहिं ठाणेहिं लोगुज्जोते सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।

तीन कारणों से मनुष्यलोक में अंधकार होता है—अरहंतों के विच्छेद (निर्वाण) होने पर, अर्हत्-प्रज्ञप्त धर्म के विच्छेद होने पर और चतुर्दश पूर्वगत श्रुत के विच्छेद होने पर (७२)। तीन कारणों से मनुष्यलोक में उद्योत (प्रकाश) होता है—अरहन्तों (तीर्थंकरों) के जन्म लेने के समय, अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहंतों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (७३)।

७४—तिहिं ठाणेहिं देवंधकारे सिया, तं जहा—अरहंतेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं, अरहंतपण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे, पुव्वगते वोच्छिज्जमाणे। ७५—तिहिं ठाणेहिं देवुज्जोते सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।

तीन कारणों से देवलोक में अंधकार होता है—अरहंतों के विच्छेद होने पर, अर्हत्-प्रज्ञप्त धर्म के विच्छेद होने पर और पूर्वगत श्रुत के विच्छेद होने पर (७४)। तीन कारणों से देवलोक के भवनों आदि में उद्योत होता है—अरहन्तों के जन्म लेने के समय, अरहंतों के प्रव्रजित होने के समय और अरहंतों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (७५)।

७६—तिहिं ठाणेहिं देवसण्णिवाए सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु। ७७—एवं देवुक्कलिया, देवकहकहए [तिहिं ठाणेहिं देवुक्कलिया सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु। ७८—तिहिं ठाणेहिं देवकहकहए सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु]। ७९—तिहिं ठाणेहिं देविंदा माणुसं लोगं हव्वमागच्छंति, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु। ८०—एवं—सामाणिया, तायत्तीसगा, लोगपाला देवा, अग्गमहिसीओ देवीओ, परिसोववण्णगा देवा, अणियाहिवई देवा, आयरक्खा देवा माणुसं लोगं हव्वमागच्छंति [तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु]।

तीन कारणों से देव-सन्निपात (देवों का मनुष्यलोक में आगमन) होता है—अरहंतों के जन्म होने पर, अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (७६)। इसी प्रकार देवोत्कलिका और देव कह-कह भी जानना चाहिए। तीन कारणों से देवोत्कलिका (देवताओं की सामूहिक उपस्थिति) होती है—अरहन्तों के जन्म होने पर, अरहंतों के प्रव्रजित होने के समय और अरहंतों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (७७)। तीन कारणों से देव कह-कह (देवों का कल-कल शब्द) होता है—अरहंतों के जन्म होने पर, अरहंतों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (७८)। तीन कारणों से देवेन्द्र शीघ्र मनुष्यलोक में आते हैं—अरहन्तों के जन्म होने पर, अरहंतों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (७९)। इसी प्रकार सामानिक,

त्रायस्त्रिंशक और लोकपाल देव, अग्रमहिषी देवियां, पारिषद्य देव, अनीकाधिपति, तथा आत्मरक्षक देव तीन कारणों से शीघ्र मनुष्य लोक में आते हैं। (अरहन्तों के जन्म होने पर, अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय।) (८०)।

विवेचन—जो आज्ञा ऐश्वर्य के को छोड कर स्थान, आयु, शक्ति, परिवार और भोगोपभोग आदि में इन्द्र के समान होते हैं, उन्हें सामानिक देव कहते हैं। इन्द्र के मन्त्री और पुरोहित स्थानीय देवों को त्रायस्त्रिंश देव कहते हैं। यतः इनकी संख्या ३३ होती है, अतः उन्हें त्रायस्त्रिंश कहा जाता है। देवलोक का पालन करने वाले देवों को लोकपाल कहते हैं। इन्द्रसभा के सदस्यों को पारिषद्य, देवसेना के स्वामी को अनीकाधिपति और इन्द्र के अंग-रक्षक को आत्म-रक्षक कहते हैं।

८१—तिहिं ठाणेहिं देवा अब्भुट्ठिज्जा, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं जाव तं चेव [अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु]। ८२—एवं आसणाइं चलेज्जा, सीहनायं करेज्जा, चेलुक्खेवं करेज्जा [तिहिं ठाणेहिं देवाणं आसणाइं चलेज्जा, तं जहा अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु। ८३—तिहिं ठाणेहिं देवा सीहणायं करेज्जा, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु। ८४—तिहिं ठाणेहिं देवा चेलुक्खेवं करेज्जा, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु]। ८५—तिहिं ठाणेहिं चेइयरुक्खा चलेज्जा तं जहा—अरहंतेहिं [जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु]। ८६—तिहिं ठाणेहिं लोगंतिया देवा माणुसं लोगं हव्वमागच्छेज्जा, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं अरहंताणं णाणुप्पाय-महिमासु।

तीन कारणों से देव अपने सिंहासन से तत्काल उठ खड़े होते हैं—अरहन्तों के जन्म होने पर, (अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय) (८१)। इसी प्रकार 'आसनों' का चलना, सिंहनाद करना और चेलोत्क्षेप करना भी जानना चाहिए। [तीन कारणों से देवों के आसन चलायमान होते हैं—अरहन्तों के जन्म होने पर, अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (८२)। तीन कारणों से देव सिंहनाद करते हैं—अरहन्तों के जन्म होने पर, अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (८३)। तीन कारणों से देव चेलोत्क्षेप (वस्त्रों का उछालना) करते हैं—अरहन्तों के जन्म होने पर, अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (८४)।] तीन कारणों से देवों के चैत्य वृक्ष चलायमान होते हैं—अरहन्तों के जन्म होने पर [अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (८५)।] तीन कारणों से लोकान्तिक देव तत्काल मनुष्य लोक में आते हैं—अरहन्तों के जन्म होने पर, अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (८६)।

दुष्प्रतीकार सूत्र

८७—तिण्हं दुप्पडियारं समणाउसो! तं जहा—अम्मापिउणो, भट्टिस्स, धम्मायरियस्स।

१ संपातोवि य णं केइ पुरिसे अम्मापियरं सयपागसहस्सपागेहिं तेल्लेहिं अब्भंगेत्ता, सुरभिणा

गघट्टएण उव्वट्टित्ता, तिहि उदगेहिं मज्जावेत्ता, सव्वालंकारविभूसियं करेत्ता, मणुण्णं थालीपागसुद्धं अट्ठारसवंजणाउलं भोयणं भोयावेत्ता जावज्जीवं पिट्ठिवडेंसियाए परिवहेज्जा, तेणावि तस्स अम्मापिउस्स दुप्पडियारं भवइ।

अहे णं से तं अम्मापियरं केवलिपण्णत्ते धम्मे आघवइत्ता पण्णवइत्ता परूवइत्ता ठावइत्ता भवति तेणामेव तस्स अम्मापिउस्स सुप्पडियारं भवति समणाउसो !

२ केइ महच्चे दरिद्दं समुक्कसेज्जा। तए णं से दरिद्दे समुक्किट्ठे समाणे पच्छा पुरं च णं विउलभोगसमितिसमण्णागते यावि विहरेज्जा।

तए णं से महच्चे अण्णया कयाइ दरिद्दीहूए समाणे तस्स दरिद्दस्स अंतिए हव्वमागच्छेज्जा।

तए णं से दरिद्दे तस्स भट्टिस्स सव्वस्समवि दलयमाणे तेणावि तस्स दुप्पडियारं भवति।

अहे णं से तं भट्टिं केवलिपण्णत्ते धम्मे आघवइत्ता पण्णवइत्ता परूवइत्ता ठावइत्ता भवति, तेणामेव तस्स भट्टिस्स सुप्पडियारं भवति [समणाउसो ! ?]।

३ केइ तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा णिसम्म कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववण्णे।

तए णं से देवे तं धम्मायरियं दुब्भिक्खाओ वा देसाओ सुभिक्खं देसं साहरेज्जा, कंताराओ वा णिक्कंतारं करेज्जा, दीहकालिएण वा रोगातंकेणं अभिभूतं समाणं विमोएज्जा, तेणावि तस्स धम्मायरियस्स दुप्पडियारं भवति।

अहे णं से तं धम्मायरियं केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भट्ठं समाणं भुज्जोवि केवलिपण्णत्ते धम्मे आघवइत्ता पण्णवइत्ता परूवइत्ता ठावइत्ता भवति, तेणामेव तस्स धम्मायरियस्स सुप्पडियारं भवति [समणाउसो ! ?]।

हे आयुष्मान् श्रमणो ! ये तीन दुष्प्रतीकार हैं—इनसे उऋण होना दुःशक्य है—माता-पिता, भर्ता (पालन-पोषण करने वाला स्वामी) और धर्माचार्य।

१ कोई पुरुष (पुत्र) अपने माता पिता का प्रातःकाल होते ही शतपाक और सहस्रपाक तैलों से मर्दन कर, सुगन्धित चूर्ण से उबटन कर, सुगन्धित जल, शीतल जल एवं उष्ण जल से स्नान कराकर, सर्व अलंकारों से उन्हें विभूषित कर, अठारह प्रकार के स्थाली-पाक शुद्ध व्यंजनों से युक्त भोजन कराकर, जीवन-पर्यन्त पृष्ठ्यवतंसिका से (पीठ पर बैठाकर, या कावड़ में बिठाकर कन्धे से) उनका परिवहन करे, तो भी वह उनके (माता पिता के) उपकारों से उऋण नहीं हो सकता। हे आयुष्मान् श्रमणो ! वह उनसे तभी उऋण हो सकता है जब कि उन माता पिता को संबोधित कर, धर्म का स्वरूप और उसके भेद प्रभेद बताकर केवलि-प्रज्ञप्त धर्म में स्थापित करता है।

२ कोई धनिक व्यक्ति किसी दरिद्र पुरुष का धनादि से समुत्कर्ष करता है। संयोगवश कुछ समय के बाद या शीघ्र ही वह दरिद्र, विपुल भोग-सामग्री से सम्पन्न हो जाता है और वह उपकारक धनिक व्यक्ति किसी समय दरिद्र होकर सहायता की इच्छा से उसके समीप आता है। उस समय वह भूतपूर्व दरिद्र अपने पहले वाले स्वामी को सब कुछ अर्पण करके भी उसके उपकारों से उऋण

नही हो सकता । हे आयुष्मान् श्रमणो ! वह उसके उपकार से तभी उऋण हो सकता है जबकि उसे सबोधित कर, धर्म का स्वरूप और उसके भेद-प्रभेद बताकर केवलि प्रज्ञप्त धर्म मे स्थापित करता है ।

३ कोई व्यक्ति तथारूप श्रमण माहन के (धर्माचार्य के) पास एक भी आर्य धार्मिक सुवचन सुनकर, हृदय मे धारण कर मृत्युकाल मे मरकर, किसी देवलोक मे देव रूप से उत्पन्न होता है। किसी समय वह देव अपने धर्माचार्य को दुर्भिक्ष वाले देश से सुभिक्ष वाले देश मे लाकर रख दे, जगल से बस्ती मे ले आवे, या दीर्घकालीन रोगातङ्क से पीडित होने पर उन्हे उससे विमुक्त कर दे, तो भी वह देव उस धर्माचार्य के उपकार से उऋण नही हो सकता है। हे आयुष्मान् श्रमणो ! वह उनसे तभी उऋण हो सकता है जब कदाचित् उस धर्माचार्य के केवलि प्रज्ञप्त धर्म से भ्रष्ट हो जाने पर उसे सबोधित कर, धर्मका स्वरूप और उसके भेद-प्रभेद बताकर केवलि-प्रज्ञप्त धर्म मे स्थापित करता है ।

विवेचन—टीकाकार अभयदेवसूरि ने शतपाक के चार अर्थ किये हैं—१ सौ औषधियो के क्वाथ से पकाया गया, २ सौ औषधियो के साथ पकाया गया, ३ सौ बार पकाया गया और ४ सौ रुपयो के मूल्य से पकाया गया तेल । इसी प्रकार सहस्रपाक तेल के चार अर्थ किये है। स्थाली-पाक का अर्थ है—हाडी,कुडी या बटलोई, भगौनी आदि मे पकाया गया भोजन । सूत्र-पठित अष्टादश पद को उपलक्षण मानकर जितने भी खान पान के प्रकार हो सकते हैं, उन सबको यहा इस पद से ग्रहण करना चाहिए ।

व्यतिव्रजन सूत्र

८८—तिहिं ठाणेहिं सपण्णे अणगारे अणादीय अणवदग्ग दीहमद्ध चाउरत-ससारकतार वीईवएज्जा, त जहा—अणिदाणयाए, दिट्ठिसपण्णयाए, जोगवाहियाए ।

तीन स्थानो से सम्पन्न अनगार (साधु) इस अनादि अनन्त, अतिविस्तीर्ण चातुर्गतिक ससार कान्तार से पार हो जाता है—अनिदानता से (भोग प्राप्ति के लिए निदान नही करने से) दृष्टि-सम्पन्नता से (सम्यग्दर्शन की प्राप्ति से) और योगवाहिता से (८८) ।

विवेचन—अभयदेव सूरिने योगवाहिता के दो अर्थ किये हैं—१ श्रुतोपधानकारिता, अर्थात् शास्त्राभ्यास के लिए आवश्यक अल्पनिद्रा लेना, अल्प भोजन करना, मित-भाषण करना, विकथा, हास्यादि का त्याग करना । २ समाधिस्थायिता अर्थात् काम क्रोध आदि का त्याग कर चित्त मे शाति और समाधि रखना । इस प्रकार की योगवाहिता के साथ निदान रहित एव सम्यक्त्व सम्पन्न साधु इस अनादि-अनन्त ससार से पार हो जाता है ।

कालचक्र सूत्र

८९—तिविहा ओसप्पिणी पण्णत्ता, त जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा । ९०—एव छप्पि समाओ भाणियव्वाओ, जाव दूसमदूसमा [तिविहा सुसम सुसमा, तिविहा सुसमा, तिविहा सुसम दूसमा, तिविहा दूसम-सुसमा, तिविहा दूसमा, तिविहा दूसम दूसमा पण्णत्ता, त जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा] । ९१—तिविहा उस्सप्पिणी पण्णत्ता, त जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा । ९२—एव छप्पि समाओ भाणियव्वाओ [तिविहा दुस्सम दुस्समा, तिविहा दुस्समा, तिविहा दुस्सम सुसमा, तिविहा सुसम दुस्समा, तिविहा सुसमा, तिविहा सुसम सुसमा पण्णत्ता, त जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा] ।

अवसर्पिणी तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य (८९)। इसी प्रकार दुषम दुषमा तक छहों आरा जानना चाहिए, यथा [सुषमसुषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। सुषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। सुषमा-दुषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। दुषम-सुषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। दुषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। दुषम-दुषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। (९०)।]

उत्सर्पिणी तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य (९१)। इसी प्रकार छहों आरा जानना चाहिए यथा—[दुषम-दुषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। दुषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। दुषम-सुषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। सुषम दुषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। सुषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। *सुषम सुषमा तीन प्रकार की कही गइ है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य (९२)।]*

अच्छिन्न पुद्गल चलन सूत्र

९३—तिहिं ठाणेहिं अच्छिण्णे पोग्गले चलेज्जा, तं जहा—आहारिज्जमाणे वा पोग्गले चलेज्जा, विकुव्वमाणे वा पोग्गले चलेज्जा, ठाणाओ वा ठाणं सकामिज्जमाणे पोग्गले चलेज्जा।

अच्छिन्न पुद्गल (स्कन्ध के साथ सलग्न पुद्गल परमाणु) तीन कारणों से चलित होता है—जीवों के द्वारा आकृष्ट होने पर चलित होता है, विक्रियमाण (विक्रियावशवर्त्ती) होने पर चलित होता है और एक स्थान से दूसरे स्थान पर संक्रमित होने पर (हाथ आदि द्वारा हटाने पर) चलित होता है।

उपधि सूत्र

***९४—तिविहे उवधी पण्णत्ते, तं जहा—कम्मोवही, सरीरोवही, बाहिरभंडमत्तोवही।* एवं असुरकुमाराणं भाणियव्वं। एवं—एगिंदियणेरइयवज्जं जाव वेमाणियाणं।**

अहवा—तिविहे उवधी पण्णत्ते, तं जहा—सचित्ते, अचित्ते, मीसए। एवं—णेरइयाणं णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।

उपधि तीन प्रकार की कही गई है—कर्म-उपधि, शरीर-उपधि और वस्त्र-पात्र आदि बाह्य-उपधि। यह तीनों प्रकार की उपधि एकेन्द्रियों और नारकों को छोड़कर असुरकुमारों से लेकर वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों में कहना चाहिए।

विवेचन—जिस के द्वारा जीव और उसके शरीर आदि का पोषण हो उसे उपधि कहते हैं। नारकों और एकेन्द्रिय जीव बाह्य उपकरणरूप उपधि से रहित होते हैं, अतः यहां उन्हें छोड़ दिया गया है। आगे परिग्रह के विषय में भी यही समझना चाहिए।

परिग्रह सूत्र

९५—तिविहे परिग्गहे पण्णत्ते, त जहा—कम्मपरिग्गहे, सरीरपरिग्गहे, बाहिरभडमत्त-परिग्गहे। एव—असुरकुमाराण। एव—एगिंदियणेरइयवज्ज जाव वेमाणियाण।

अहवा—तिविहे परिग्गहे पण्णत्ते त जहा—सचित्ते, अचित्ते मीसए। एव—णेरइयाण णिरतर जाव वेमाणियाण।

परिग्रह तीन प्रकार का कहा गया है—कमपरिग्रह, शरीरपरिग्रह और वस्त्र पात्र आदि बाह्य परिग्रह। यह तीनो प्रकार का परिग्रह एकेन्द्रिय और नारको को छोडकर सभी दण्डकवाले जीवो के होता है। अथवा तीन प्रकार का परिग्रह कहा गया है—सचित्त, अचित्त और मिश्र। यह तीनो प्रकार का परिग्रह सभी दण्डकवाले जीवो के होता है।

प्रणिधान-सूत्र

९६—तिविहे पणिहाणे पण्णत्ते, त जहा—मणपणिहाणे, वयपणिहाणे, कायपणिहाणे। एव—पचिंदियाण जाव वेमाणियाण। ९७—तिविहे सुप्पणिहाणे पण्णत्ते त जहा—मणसुप्पणिहाणे, वयसुप्पणिहाणे कायसुप्पणिहाणे। ९८—सजयमणुस्साण तिविहे सुप्पणिहाणे पण्णत्ते, त जहा—मणसुप्पणिहाणे, वयसुप्पणिहाणे, कायसुप्पणिहाणे। ९९—तिविहे दुप्पणिहाणे पण्णत्ते, त जहा—मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे। एव—पचिंदियाण जाव वेमाणियाण।

प्रणिधान तीन प्रकार का कहा गया है—मन प्रणिधान, वचनप्रणिधान और कायप्रणिधान (९६)। ये तीनो प्रणिधान पचेन्द्रियो से लेकर वैमानिक देवो तक सभी दण्डको मे जानना चाहिए। सुप्रणिधान तीन प्रकार का कहा गया है—मन सुप्रणिधान, वचनसुप्रणिधान और कायसुप्रणिधान (९७)। सयत मनुष्यो के तीन सुप्रणिधान कहे गये हैं—मन सुप्रणिधान, वचनसुप्रणिधान और कायसुप्रणिधान (९८)। दुष्प्रणिधान तीन प्रकार का कहा गया है—मन दुष्प्रणिधान, वचनदुष्प्रणिधान और कायदुष्प्रणिधान। ये तीनो दुष्प्रणिधान सभी पचेन्द्रियो मे यावत् वैमानिक देवो मे पाये जाते हैं (९९)।

विवेचन—उपयोग की एकाग्रता को प्रणिधान कहते है। यह एकाग्रता जब जीव-सरक्षण आदि शुभ व्यापार रूप होती है, तब उसे सुप्रणिधान कहा जाता है और जीव-घात आदि अशुभ व्यापार रूप होती है, तब उसे दुष्प्रणिधान कहा जाता है। यह एकाग्रता केवल मानसिक ही नही होती, वल्कि वाचनिक और कायिक भी होती है, इसीलिए उसके भेद बतलाये गये हैं।

योनि सूत्र

१००—तिविहा जोणी पण्णत्ता, त जहा—सीता, उसिणा, सीओसिणा। एव—एगिंदियाण विगलिंदियाण तेउकाइयवज्जाण समुच्छिमपचिंदियतिरिक्खजोणियाण समुच्छिममणुस्साण य। १०१—तिविहा जोणी पण्णत्ता, त जहा—सचित्ता, अचित्ता, मीसिया। एव—एगिंदियाण विगलिंदियाण समुच्छिमपचिंदियतिरिक्खजोणियाण समुच्छिममणुस्साण य। १०२—तिविहा जोणी पण्णत्ता, त जहा—सवुडा, वियडा, सवुड वियडा।

योनि (जीव की उत्पत्ति का स्थान) तीन प्रकार की कही गई है—शीतयोनि, उष्णयोनि और शीतोष्ण (मिश्र) योनि। तेजस्कायिक जीवों को छोड़कर एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रिय तिर्यंच और सम्मूर्च्छिम मनुष्यो के तीनों ही प्रकार की योनिया कही गई हैं (१००)। पुन योनि तीन प्रकार की कही गई है—सचित्त, अचित्त और मिश्र (सचित्ताचित्त)। एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सम्मूर्च्छिमपचेन्द्रिय तिर्यंच तथा सम्मूर्च्छिम मनुष्यो के तीनों ही प्रकार की योनिया कही गई हैं (१०१)। पुन योनि तीन प्रकार की होती है—सवृत, विवृत और सवृतविवृत (१०२)।

विवेचन—सस्कृत टीकाकार ने सवृत का अर्थ 'घटिकालयवत सक्टा' किया है और उसका हिन्दी अर्थ सकडी किया गया है। किन्तु आचार्य पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि मे सवृत का अर्थ 'सम्यग्वृत सवृत, दुरुपलक्ष्य प्रदेश' किया है जिसका अर्थ अच्छी तरह से आवृत या ढका हुआ स्थान होता है। इसी प्रकार विवृत का अर्थ खुला हुआ स्थान और सवृतविवृत का अर्थ कुछ खुला, कुछ ढका अर्थात् अधखुला स्थान किया है। लाडनू वाली प्रति मे सवृत का अर्थ सकडी, विवृत का अर्थ चौडी और सवृतविवृत का अर्थ कुछ सकडी कुछ चौडी योनि किया है।

१०३—तिविहा जोणी पण्णत्ता, त जहा—कुम्मुण्णया, सखावत्ता, वसीवत्तिया।

१ कुम्मुण्णया ण जोणी उत्तमपुरिसमाऊण। कुम्मुण्णयाए ण जोणिए तिविहा उत्तमपुरिसा गब्भ वक्कमति, त जहा—अरहता, चक्कवट्टी, बलदेववासुदेवा।

२ सखावत्ता ण जोणी इत्थीरयणस्स। सखावत्ताए ण जोणीए बहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमति विउक्कमति, चयति, उववज्जति, णो चेव ण णिप्फज्जति।

३ वसीवत्तिता ण जोणी पिहुज्जणस्स। वसीवत्तिताए ण जोणिए बहवे पिहुज्जणा गब्भ वक्कमति।

पुन योनि तीन प्रकार की कही गई है—कूर्मोन्नत (कछुए के समान उन्नत) योनि, शखावत (शख के समान आवतवाली) योनि, और वशीपत्रिका (बास के पत्ते के समान आकार वाली) योनि।

१ कूर्मोन्नत योनि उत्तम पुरुषो की माताओ के होती है। कूर्मोन्नत योनि मे तीन प्रकार के उत्तम पुरुष गभ मे आते हैं—अरहन्त (तीर्थंकर), चक्रवर्ती और बलदेव वासुदेव।

२ शखावतयोनि (चक्रवर्ती के) स्त्रीरत्न की होती है। शखावर्तयोनि मे बहुत से जीव और पुद्गल उत्पन्न और विनष्ट होते हैं, किन्तु निष्पन्न नहीं होते।

३ वशीपत्रिकायोनि सामान्य जनो की माताओ के होती है। वशीपत्रिका योनि मे अनत सामान्य जन गभ मे आते हैं।

तृणवनस्पति-सूत्र

१०४—तिविहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता, त जहा—सखेज्जजीविका, असखेज्जजीविका, अणतजीविका।

तृणवनस्पतिकायिक जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं—१ सख्यात जीव वाले (नाल से बधे हुए पुष्प) २ असख्यात जीव वाले (वृक्ष के मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वक छाल, शाखा और प्रवाल,) ३ अनन्त जीव वाले (पनक, फफूदी, लीलन फूलन आदि)।

तीर्थ सूत्र

१०५—जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे तम्रो तित्था पण्णत्ता, त जहा—मागहे, वरदामे, पभासे। १०६—एव एरवएवि। १०७—जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे एगमेगे चक्कवट्टिविजये तम्रो तित्था पण्णत्ता, त जहा—मागहे, वरदामे, पभासे। १०८—एव—धायइसडे दीवे पुरत्थिमद्धे वि पच्चत्थिमद्धे वि। पुक्खरवरदीवड्ढे पुरत्थिमद्धे वि, पच्चत्थिमद्धे वि।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भारतवर्ष मे तीन तीर्थ कहे गये हैं—मागध, वरदाम और प्रभास (१०५)। इसी प्रकार ऐरवत क्षेत्र मे भी तीन तीर्थ कहे गये है (१०६)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप के महाविदेह क्षेत्र मे एक-एक चक्रवर्ती के विजयखण्ड मे तीन तीन तीर्थ कहे गये है—मागध, वरदाम और प्रभास (१०७)। इसी प्रकार धातकीखण्ड तथा पुष्कराध द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध मे भी तीन तीन तीर्थ जानना चाहिए (१०८)।

कालचक्र सूत्र

१०९—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमाए समाए तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीम्रो काले होत्था। ११०—एव म्रोसप्पिणीए नवर पण्णत्ते [जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु इमीसे म्रोसप्पिणीए सुसमाए समाए तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीम्रो काले पण्णत्ते। १११—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु म्रागमिस्साए उस्सप्पिणीए सुसमाए समाए तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीम्रो काले भविस्सति]। ११२—एव—धायइसडे पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे वि। एव—पुक्खरवरदीवड्ढे पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे वि कालो भाणियव्वो।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे अतीत उत्सर्पिणी के सुषमा नामक आरे का काल तीन कोडाकोडी सागरोपम था (१०९)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे वर्तमान अवसर्पिणी के सुषमा नामक आरे का काल तीन कोडाकोडी सागरोपम कहा गया है (११०)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे आगामी उत्सर्पिणी के सुषमा नामक आरे का काल तीन कोडाकोडी सागरोपम होगा (१११)। इसी प्रकार धातकीखण्ड के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध मे भी और इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध मे भी काल कहना चाहिए (११२)।

११३—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए मणुया तिण्णि गाउयाइ उड्ढ उच्चत्तेण होत्था, तिण्णि पलिम्रोवमाइ परमाउ पालइत्था। ११४—एव—इमीसे म्रोसप्पिणीए म्रागमिस्साए उस्सप्पिणीए। ११५—जंबुद्दीवे दीवे देवकुरुउत्तरकुरासु मणुया तिण्णि गाउम्राइ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता, तिण्णि पलिम्रोवमाइ परमाउ पालयति। ११६—एव जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र मे अतीत उत्सर्पिणी के सुषमसुषमा नामक आरे मे मनुष्यो की ऊंचाई तीन गव्यूति (कोश) की थी और उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम की थी (११३)। इसी प्रकार इस वर्तमान अवसर्पिणी तथा आगामी उत्सर्पिणी मे भी ऐसा ही जानना चाहिए (११४)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप के देवकुरु और उत्तरकुरु मे मनुष्यो की ऊंचाई तीन

गव्यूति की कही गई है और उनकी तीन पल्योपम की उत्कृष्ट आयु होती है (११५)। इसी प्रकार धातकीषण्ड तथा पुष्करद्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी जानना चाहिए (११६)।

शलाकापुरुष वंश-सूत्र

११७—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणि उस्सप्पिणीए तओ वंसाओ उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा, तं जहा—अरहंतवंसे, चक्कवट्टिवंसे, दसारवंसे। ११८—एवं जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में प्रत्येक अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी काल में तीन वंश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे—अरहन्त वंश, चक्रवर्ती वंश और दसार वंश (११७)। इसी प्रकार धातकीषण्ड तथा पुष्करवर द्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में तीन वंश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं, तथा उत्पन्न होंगे (११८)।

शलाका-पुरुष-सूत्र

११९—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणी उस्सप्पिणीए तओ उत्तम पुरिसा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा, तं जहा—अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेव वासुदेवा। १२०—एवं जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में प्रत्येक अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी में तीन प्रकार के उत्तम पुरुष उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे—अरहन्त, चक्रवर्ती और बलदेव-वासुदेव (११९)। इसी प्रकार धातकीषण्ड तथा पुष्करवर द्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी जानना चाहिए (१२०)।

आयुष्य सूत्र

१२१—तओ अहाउयं पालयंति, तं जहा—अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेववासुदेवा। १२२—तओ मज्झिममाउयं पालयंति, तं जहा—अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेववासुदेवा।

तीन प्रकार के पुरुष अपनी पूरी आयु का उपभोग करते हैं—अरहन्त, चक्रवर्ती और बलदेव वासुदेव (१२१)। तीनों अपने समय की मध्यम आयु का पालन करते हैं—अरहन्त, चक्रवर्ती और बलदेव-वासुदेव (१२२)।

१२३—बायरतेउकाइयाणं उक्कोसेणं तिण्णि राइंदियाइं ठिती पण्णत्ता। १२४—बायरवाउ काइयाणं उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता।

बादर तेजस्कायिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन रात-दिन की कही गई है (१२३)। बादर वायुकायिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन हजार वर्ष की कही गई है (१२४)।

योनिस्थिति सूत्र

१२५—अह भंते! सालीणं वीहीणं गोधूमाणं जवाणं जवजवाणं—एतेसि णं धण्णाणं

कोट्ठाउत्ताण पल्लाउत्ताण मचाउत्ताण मालाउत्ताण ओलित्ताण लित्ताण लछियाण मुद्दियाण पिहिताण केवइय काल जोणी सचिट्ठति ?

जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण तिण्णि सवच्छराइ। तेण पर जोणी पमिलायति। तेण पर जोणी पविद्ध सति। तेण पर जोणी विद्ध सति। तेण पर बीए अबीए भवति। तेण पर जोणीवोच्छेदे पण्णत्ते।

हे भगवन्! शालि, व्रीहि, गेहू, जौ और यवयव (जौ विशेष) इन धान्यो को कोठे मे सुरक्षित रखने पर, पल्य (धान्य भरने के पात्र-विशेष) मे सुरक्षित रखने पर, मचान और माले मे डालकर, उनके द्वार-देश को ढक्कन ढक देने पर, उसे लीप देने पर, सब ओर से लीप देने पर, रेखादि से चिह्नित कर देने पर, मुद्रा (मोहर) लगा देने पर, अच्छी तरह बन्द रखने पर उनकी योनि (उत्पादक शक्ति) कितने काल तक रहती है ?

(हे आयुष्मन्) जघन्य अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट तीन वर्ष तक उनकी योनि रहती है। तत्पश्चात् योनि म्लान हो जाती है, तत्पश्चात् योनि विध्वस्त हो जाती है, तत्पश्चात् योनि विनष्ट हो जाती है, तत्पश्चात् बीज अबीज हो जाता है, तत्पश्चात् योनि का विच्छेद हो जाता है, अर्थात् वे बोने पर उगने योग्य नही रहते (१२५)।

नरक सूत्र

१२६—दोच्चाए ण सक्करप्पभाए पुढवीए णेरइयाण उक्कोसेण तिण्णि सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता। १२७—तच्चाए ण वालुयप्पभाए पुढवीए जहण्णेण णेरइयाण तिण्णि सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता। १२८—पचमाए ण धूमप्पभाए पुढवीए तिण्णि णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता। १२९—तिसु ण पुढवीसु णेरइयाण उसिणवेयणा पण्णत्ता, त जहा—पढमाए दोच्चाए, तच्चाए। १३०—तिसु ण पुढवीसु णेरइया उसिणवेयण पच्चणुभवमाणा विहरति, त जहा—पढमाए, दोच्चाए, तच्चाए।

दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी मे नारको की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम कही गई है (१२६)। तीसरी वालुकाप्रभा पृथ्वी मे नारको की जघन्य स्थिति तीन सागरोपम कही गई है (१२७)। पाचवी धूमप्रभा पृथ्वी मे तीन लाख नरकावास कहे गये है (१२८)। आदि की तीन पृथिविया म नारको के उष्ण वेदना कही गई है (१२९)। प्रथम, द्वितीय और ततीय इन तीन पृथिवियो म नारक जीव उष्ण वेदना का अनुभव करते रहते हैं (१३०)।

सम-सूत्र

१३१—तओ लोगे समा सपक्खि सपडिदिसि पण्णत्ता, त जहा—अप्पइट्ठाणे णरए, जबुद्दीवे दीवे, सव्वट्ठसिद्धे विमाणे।

लोक मे तीन समान (प्रमाण की दृष्टि से एक लाख योजन विस्तीर्ण) सपक्ष (समश्रेणी की दृष्टि से उत्तर-दक्षिण समान पार्श्व वाले) और सप्रतिदिश (विदिशाओ मे समान) कहे गये हैं— सातवी पृथ्वी का अप्रतिष्ठान नामक नारकावास, जम्बूद्वीपनामक द्वीप और सर्वार्थसिद्धनामक अनुत्तर विमान (१३१)।

गव्यूति की कही गई है और उनकी तीन पल्योपम की उत्कृष्ट आयु होती है (११५)। इसी प्रकार धातकीषण्ड तथा पुष्करद्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी जानना चाहिए (११६)।

शलाकापुरुष वंश सूत्र

११७—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणि उस्सप्पिणीए तओ वंसाओ उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा, तं जहा—अरहंतवंसे, चक्कवट्टिवंसे, दसारवंसे। ११८—एवं जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में प्रत्येक अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी काल में तीन वंश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे—अरहंत-वंश, चक्रवर्ती वंश और दशार वंश (११७)। इसी प्रकार धातकीखण्ड तथा पुष्करवर द्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में तीन वंश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं, तथा उत्पन्न होंगे (११८)।

शलाका-पुरुष-सूत्र

११९—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणी उस्सप्पिणीए तओ उत्तम पुरिसा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा, तं जहा—अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेव-वासुदेवा। १२०—एवं जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में प्रत्येक अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी में तीन प्रकार के उत्तम पुरुष उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे—अरहन्त, चक्रवर्ती और बलदेव-वासुदेव (११९)। इसी प्रकार धातकीखण्ड तथा पुष्करवर द्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी जानना चाहिए (१२०)।

आयुष्य सूत्र

१२१—तओ अहाउयं पालयंति, तं जहा—अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेववासुदेवा। १२२—तओ मज्झिममाउयं पालयंति, तं जहा—अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेववासुदेवा।

तीन प्रकार के पुरुष अपनी पूरी आयु का उपभोग करते हैं—अरहन्त, चक्रवर्ती और बलदेव वासुदेव (१२१)। तीनों अपने समय की मध्यम आयु का पालन करते हैं—अरहंत, चक्रवर्ती और बलदेव वासुदेव (१२२)।

१२३—बायरतेउकाइयाणं उक्कोसेणं तिण्णि राइंदियाइं ठिती पण्णत्ता। १२४—बायरवाउकाइयाणं उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता।

बादर तेजस्कायिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन रात-दिन की कही गई है (१२३)। बादर वायुकायिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन हजार वर्ष की कही गई है (१२४)।

योनिस्थिति सूत्र

१२५—अह भंते! सालीणं वीहीणं गोधूमाणं जवाणं जवजवाणं—एतेसि णं धण्णाणं

कोट्ठाउत्ताण पल्लाउत्ताण मचाउत्ताण मालाउत्ताण ओलित्ताण लित्ताण लछियाण मुद्दियाण पिहिताण केवइय काल जोणी सचिट्ठति ?

जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण तिण्णि सवच्छराइ । तेण पर जोणी पमिलायति । तेण पर जोणी पविद्ध सति । तेण पर जोणी विद्ध सति । तेण पर बीए अबीए भवति । तेण पर जोणीवोच्छेदे पण्णत्ते ।

हे भगवन ! शालि, व्रीहि, गेहू, जौ और यवयव (जौ विशेष) इन धान्यों को कोठे मे सुरक्षित रखने पर, पल्य (धान्य भरने के पात्र-विशेष) मे सुरक्षित रखने पर, मचान और माले मे डालकर, उनके द्वार देश को ढक्कन ढक देने पर, उसे लीप देने पर, सब ओर से लीप देने पर, रेखादि से चिह्नित कर देने पर, मुद्रा (मोहर) लगा देने पर, अच्छी तरह बन्द रखने पर उनकी योनि (उत्पादक शक्ति) कितने काल तक रहती है ?

(हे आयुष्मन्) जघन्य अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट तीन वर्ष तक उनकी योनि रहती है। तत्पश्चात् योनि म्लान हो जाती है, तत्पश्चात् योनि विध्वस्त हो जाती है, तत्पश्चात् योनि विनष्ट हो जाती है, तत्पश्चात् बीज अबीज हो जाता है, तत्पश्चात् योनि का विच्छेद हो जाता है, अर्थात् वे बोने पर उगने योग्य नही रहते (१२५)।

नरक सूत्र

१२६—दोच्चाए ण सक्करप्पभाए पुढवीए णेरइयाण उक्कोसेण तिण्णि सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता । १२७—तच्चाए ण वालुयप्पभाए पुढवीए जहण्णेण णेरइयाण तिण्णि सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता । १२८—पचमाए ण धूमप्पभाए पुढवीए तिण्णि णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता । १२९—तिसु ण पुढवीसु णेरइयाण उसिणवेयणा पण्णत्ता, त जहा—पढमाए दोच्चाए, तच्चाए । १३०—तिसु ण पुढवीसु णेरइया उसिणवेयण पच्चणुभवमाणा विहरति, त जहा—पढमाए, दोच्चाए, तच्चाए ।

दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी मे नारको की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम कही गई है (१२६)। तीसरी वालुकाप्रभा पृथ्वी मे नारको की जघन्य स्थिति तीन सागरोपम कही गई है (१२७)। पाचवी धूमप्रभा पृथ्वी मे तीन लाख नरकावास कहे गये है (१२८)। आदि की तीन पृथिवियो मे नारको के उष्ण वेदना कही गई है (१२९)। प्रथम, द्वितीय और तृतीय इन तीन पृथिवियो मे नारक जीव उष्ण वेदना का अनुभव करते रहते है (१३०)।

सम सूत्र

१३१—तओ लोगे समा सपक्खि सपडिदिसि पण्णत्ता, त जहा—अप्पइट्ठाणे णरए, जबुद्दीवे दीवे, सव्वट्ठसिद्धे विमाणे ।

लोक मे तीन समान (प्रमाण की दृष्टि से एक लाख योजन विस्तीर्ण) सपक्ष (समश्रेणी की दृष्टि से उत्तर-दक्षिण समान पार्श्व वाले) और सप्रतिदिश (विदिशाओ मे समान) कहे गये हैं— सातवी पृथ्वी का अप्रतिष्ठान नामक नारकावास, जम्बूद्वीपनामक द्वीप और सर्वार्थसिद्धनामा अनुत्तर विमान (१३१)।

१३२—तओ लोगे समा सपक्खिं सपडिदिसिं पण्णत्ता, त जहा—सीमतए ण णरए, समयक्खेत्ते, ईसीपब्भारा पुढवी ।

पुन लोक मे तीन समान (प्रमाण की दृष्टि से पतालीस लाख योजन विस्तीर्ण) सपक्ष और सप्रतिदिश कहे गये है—सीमन्तक (नामक प्रथम पृथिवी मे प्रथम प्रस्तर का) नारकावास, समयक्षेत्र (मनुष्यक्षेत्र-अढाई द्वीप) और ईपत्प्राग्भारपृथ्वी (सिद्धशिला) (१३२)।

समुद्र-सूत्र

१३३—तओ समुद्दा पगईए उदगरसा पण्णत्ता, त जहा—कालोदे, पुक्खरोदे, सयभुरमणे। १३४—तओ समुद्दा बहुमच्छकच्छभाइण्णा पण्णत्ता, त जहा—लवणे, कालोदे, सयभुरमणे ।

तीन समुद्र प्रकृति से उदक रसवाले (पानी जैसे स्वाद वाले) कहे गये हैं—कालोद, पुष्करोद और स्वयम्भूरमण समुद्र (१३३)। तीन समुद्र बहुत मत्स्यो और कछुआ आदि जलचरजीवो से व्याप्त कहे गये हैं—लवणोद, कालोद और स्वयम्भूरमण समुद्र (अन्य समुद्रो मे जलचर जीव थोडे हैं) (१३४)।

उपपात सूत्र

१३५—तओ लोगे णिस्सीला णिव्वता णिग्गुणा णिम्मेरा णिप्पच्चक्खाणपोसहोववासा काल मासे काल किच्चा अहेसत्तमाए पुढवीए अप्पतिट्ठाणे णरए णेरइयत्ताए उववज्जति, त जहा—रायाणो, मडलीया, जे य महारभा कोडु बी । १३६—तओ लोए सुसीला सुव्वया सग्गुणा समेरा सपच्चक्खाण पोसहोववासा कालमासे काल किच्चा सव्वट्ठसिद्धे विमाणे देवत्ताए उववत्तारो भवति, त जहा—रायाणो परिचत्तकामभोगा, सेणावती, पसत्थारो ।

लोक मे ये तीन पुरुष—यदि शील-रहित, व्रत रहित, निर्गुणी, मर्यादाहीन, प्रत्याख्यान और पोषधोपवास से रहित होते है तो काल मास मे काल करके नीचे सातवी पृथ्वी के अप्रतिष्ठान नारकावास में नारक के रूप से उत्पन्न होते है—राजा लोग (चक्रवर्ती और वासुदेव) माण्डलिक राजा और महारम्भी गृहस्थ जन (१३५)। लोक मे ये तीन पुरुष जो सुशील, सुव्रती, सगुण, मर्यादावाले, प्रत्याख्यान और पोषधोपवास करने वाले हैं—वे काल मास मे काल करके सर्वार्थसिद्ध नामक अनुत्तर विमान मे देवता के रूप से उत्पन्न होते हैं—काम-भोगो को त्यागने वाले (सर्वविरत) जन, राजा, सेनापति और प्रशास्ता (जनशासक मत्री आदि या धर्मशास्त्रपाठक) जन (१३६)।

विमान-सूत्र

१३७—बभलोग-लतएसु ण कप्पेसु विमाणा तिवण्णा पण्णत्ता, त जहा—किण्णा, णीला, लोहिया ।

ब्रह्मलोक और लान्तक देवलोक मे विमान तीन वर्णवाले कहे गये हैं—कृष्ण, नील और लोहित (लाल)।

देव सूत्र

१३८—आणयपाणयारणच्चुतेसु ण कप्पेसु देवाण भवधारणिज्जसरीरगा उक्कोसेण तिण्णि रयणीओ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता।

आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पो मे देवो के भव-धारणीय शरीर उत्कृष्ट तीन रत्नि-प्रमाण ऊचे कहे गये हैं।

प्रज्ञप्ति सूत्र

१३९—तओ पण्णत्तीओ कालेण अहिज्जति, त जहा—चदपण्णत्ती, सूरपण्णत्ती, दीवसागर-पण्णत्ती।

तीन प्रज्ञप्तिया यथाकाल (प्रथम और अतिम पौरुषी मे) पढी जाती है—चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्य-प्रज्ञप्ति और द्वीपसागर प्रज्ञप्ति। (त्रिस्थानक होने से व्याख्याप्रज्ञप्ति तथा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति की विवक्षा नही की गई है।)

॥ तृतीय स्थान का प्रथम उद्देश समाप्त ॥

तृतीय स्थान

द्वितीय उद्देश

लोक-सूत्र

१४०—तिविहे लोगे पण्णत्ते, त जहा—णामलोगे, ठवणलोगे, दव्वलोगे। १४१—तिविहे लोगे पण्णत्ते, त जहा—णाणलोगे, दसणलोगे, चरित्तलोगे। १४२—तिविहे लोगे पण्णत्ते, त जहा—उड्ढलोगे, ग्रहोलोगे, तिरियलोगे।

लोक तीन प्रकार के कहे गये हैं—नामलोक स्थापनालोक और द्रव्यलोक (१४०)। पुन लोक तीन प्रकार के कहे गये है—ज्ञानलोक, दर्शनलोक और चारित्रलोक (ये तीनो भावलोक हैं) (१४१)। पुन लोक तीन प्रकार के कहे गये है—ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोक (१४२)।

परिषद्-सूत्र

१४३—चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, त जहा—समिता, चडा, जाया। अब्भितरिया समिता, मज्झिमिया चडा, बाहिरिया जाया। १४४—चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सामाणियाण देवाण तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, त जहा—समिता जहेव चमरस्स। १४५—एव—तायत्तीसगाणवि। १४६—लोगपालाण—तु बा तुडिया पव्वा। १४७—एव—अग्गमहिसीणवि। १४८—बलिस्सवि एव चेव जाव अग्गमहिसीण।

असुरकुमारो के राजा चमर असुरेन्द्र की तीन परिषद् (सभा) कही गई हैं—समिता, चण्डा और जाता। आभ्यन्तर परिषद् का नाम समिता है, मध्य की परिषद् का नाम चण्डा है और बाहिरी परिषद् का नाम जाता है (१४३)। असुरकुमारो के राजा चमर असुरेन्द्र के सामानिक देवो की तीन परिषद् कही गई है—समिता, चण्डा और जाता (१४४)। इसी प्रकार चमर असुरेन्द्र के त्रायस्त्रिशको की तीन परिषद् कही गई है (१४५)। चमर असुरेन्द्र के लोकपालों की तीन परिषद् कही गई है—तुम्बा, त्रुटिता और पर्वा (१४६)। इसी प्रकार चमर असुरेन्द्र की अग्रमहिषियो की तीन परिषद् कही गई है—तुम्बा त्रुटिता और पर्वा (१४७)। वरोचनेन्द्र बली की तथा उनके सामानिको और त्रायस्त्रिशको की तीन-तीन परिषद् कही गई है—समिता चण्डा और जाता। उसके लोकपालो और अग्रमहिषियो की भी तीन-तीन परिषद् कही गई हैं—तुम्बा, त्रुटिता और पर्वा (१४८)।

१४९—धरणस्स य सामाणिय तायत्तीसगाण च—समिता चडा जाता। १५०—'लोगपालाण अग्गमहिसीण'—ईसा तुडिया दढरहा। १५१—जहा धरणस्स तहा सेसाण भवणवासीण।

नागकुमारो के राजा धरण नागेन्द्र, तथा उसके सामानिको एव त्रायस्त्रिशको की तीन तीन परिषद कही गई हैं—समिता, चण्डा और जाता (१४९)। धरण नागेन्द्र के लोकपालो और अग्र

महिषिया की तीन-तीन परिषद् कही गई हैं—ईषा, त्रुटिता और दृढरथा (१५०)। जसा धरण की परिषदो का वणन किया गया है, वैसा ही शेष भवनवासी देवों की परिषदो का भी जानना चाहिए (१५१)।

१५२—कालस्स ण पिसाइदस्स पिसायरण्णो तम्रो परिसाम्रो पण्णत्ताम्रो, त जहा—ईसा तुडिया दढरहा। १५३—एव—सामाणिय म्रग्गमहिसीण। १५४—एव जाव गीयरतिगीयजसाण।

पिशाचो के राजा काल पिशाचेन्द्र की तीन परिषद कही गई है—ईशा, त्रुटिता और दृढरथा (१५२)। इसी प्रकार उसके सामानिको और अग्रमहिषिया की भी तीन-तीन परिषद जाननी चाहिए (१५३)। इसी प्रकार गन्धर्वेन्द्र गीतरति और गीतयश तक के सभी वाण-व्यन्तर देवेन्द्रो की तीन तीन परिषद कही गई हैं (१५४)।

१५५—चदस्स ण जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो तओ परिसाम्रो पण्णत्ताम्रो, त जहा—तुबा तुडिया पव्वा। १५६—एव सामाणिय म्रग्गमहिसीण। १५७—एव—सूरस्सवि।

ज्योतिष्क देवा के राजा चन्द्र ज्योतिष्केन्द्र की तीन परिषद् कही गई हैं—तुम्बा, त्रुटिता और पर्वा (१५५)। इसी प्रकार उसके सामानिका और अग्रमहिषियो की भी तीन-तीन परिषद् कही गई है (१५६)। इसी प्रकार सूय इन्द्र को और उसके सामानिका तथा अग्रमहिषियो की तीन तीन परिषद् जाननी चाहिए (१५७)।

१५८—सक्कस्स ण देविदस्स देवरण्णो तम्रो परिसाम्रो पण्णत्ताम्रो, त जहा—समिता, चडा जाया। १५९—एव—जहा चमरस्स जाव म्रग्गमहिसीण। १६०—एव जाव म्रच्चुतस्स लोगपालाण।

देवा के राजा शक्र देवेन्द्र की तीन परिषद कही गई है—समिता, चण्डा और जाता (१५८)। इसी प्रकार जैसे चमर की यावत उसकी अग्रमहिषियो की परिषदो का वणन किया गया है, उसी प्रकार शक्र देवेन्द्र के सामानिको और त्रायस्त्रिशको की तीन-तीन परिषद् जाननी चाहिए (१५९)। इसी प्रकार ईशानेन्द्र स लेकर अच्युतेन्द्र तक के सभी इन्द्रा, उनकी अग्रमहिषिया सामानिक, लोक-पाल और त्रायस्त्रिशक देवा की भी तीन-तीन परिषद् जाननी चाहिए (१६०)।

याम-सूत्र

१६१—तओ जामा पण्णत्ता, त जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे। १६२—तिहिं जामेहिं आया केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्ज सवणयाए, त जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे। १६३—एव जाव [तिहिं जामेहिं आया केवल बोधि बुज्झेज्जा त जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे पच्छिमे जामे। १६४—तिहिं जामेहिं आया केवल मु डे भवित्ता अगाराम्रो अणगारिय पव्वइज्जा त जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे। १६५—तिहिं जामेहिं आया केवल बम्भचेरवासमावसेज्जा, त जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे। १६६—तिहिं जामेहिं आया केवलेण सजमेण सजमेज्जा, त जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे। १६७—तिहिं जामेहिं आया केवलेण सवरेण सवरेज्जा, त जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे। १६८—तिहिं जामेहिं आया केवलमाभिणिबोहियणाण उप्पाडेज्जा, त जहा—पढमे जामे, मज्झिमे

जामे, पच्छिमे जामे। १६९—तिहिं जामेहिं आया केवलं सुयणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे। १७०—तिहिं जामेहिं आया केवलं ओहिणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे। १७१—तिहिं जामेहिं आया केवलं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे। १७२—तिहिं जामेहिं आया] केवलणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे।

तीन याम (प्रहर) कहे गये हैं—प्रथम याम, मध्यम याम और पश्चिम याम (१६१)। तीनों ही यामों में आत्मा केवलि-प्रज्ञप्त धर्म-श्रवण का लाभ पाता है—प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में (१६२)। [तीनों ही यामों में आत्मा विशुद्ध बोधि को प्राप्त करता है—प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में (१६३)। तीनों ही यामों में आत्मा मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होता है—प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में (१६४)। तीनों ही यामों में आत्मा विशुद्ध ब्रह्मचर्यवास में निवास करता है—प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में (१६५)। तीनों ही यामों में आत्मा विशुद्ध संयम से संयत होता है—प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में (१६६)। तीनों ही यामों में, आत्मा विशुद्ध संवर से संवृत होता है—प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में (१६७)। तीनों ही यामों में आत्मा विशुद्ध आभिनिबोधिक ज्ञान को प्राप्त करता है—प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में (१६८)। तीनों ही यामों में आत्मा विशुद्ध श्रुतज्ञान को प्राप्त करता है—प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में (१६९)। तीनों ही यामों में आत्मा विशुद्ध अवधिज्ञान को प्राप्त करता है—प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में (१७०)। तीनों ही यामों में आत्मा विशुद्ध मनःपर्यवज्ञान को प्राप्त करता है—प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में (१७१)। तीनों ही यामों में आत्मा विशुद्ध केवलज्ञान को प्राप्त करता है]—प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में (१७२)।

विवेचन—साधारणतः याम का प्रसिद्ध अर्थ प्रहर, दिन या रात का चौथा भाग है। किन्तु यहाँ त्रिस्थान का प्रकरण होने से रात्रि को तथा दिन को तीन यामों में विभक्त करके वर्णन किया गया है। अर्थात् दिन और रात्रि के तीसरे भाग को याम कहा गया है। इस सूत्र का आशय यह है कि दिन रात का ऐसा कोई समय नहीं है, जिसमें कि आत्मा धर्म-श्रवण और विशुद्ध बोधि आदि को न प्राप्त कर सके। अर्थात् सभी समयों में प्राप्त कर सकता है।

वय-सूत्र

१७३—तओ वया पण्णत्ता, तं जहा—पढमे वए, मज्झिमे वए, पच्छिमे वए। १७४—तिहिं वएहिं आया केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, तं जहा—पढमे वए, मज्झिमे वए, पच्छिमे वए। १७५—[एसो चेव गमो णेयव्वो जाव केवलनाणं ति तिहिं वएहिं आया—केवलं बोधिं बुज्झेज्जा, केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा, केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा, केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं सुयणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं ओहिणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं केवलणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—पढमे वए, मज्झिमे वए पच्छिमे वए]।

वय (काल-कृत अवस्था भेद) तीन कहे गये हैं—प्रथमवय, मध्यमवय और पश्चिमवय (१७३)। तीनो ही वयो मे आत्मा केवलि-प्रज्ञप्त धर्म-श्रवण का लाभ पाता है—प्रथमवय मे, मध्यम वय मे और पश्चिमवय मे (१७४)। तीनो ही वयो मे आत्मा विशुद्ध बोधि को प्राप्त होता है—प्रथमवय मे, मध्यमवय मे और पश्चिमवय मे। इसी प्रकार तीनो ही वयो मे आत्मा मुण्डित होकर अगार से विशुद्ध अनगारिता को पाता है, विशुद्ध ब्रह्मचर्यवास मे निवास करता है, विशुद्ध सयम के द्वारा सयत होता है, विशुद्ध सवर के द्वारा सवृत होता है, विशुद्ध आभिनिबोधिक ज्ञान को प्राप्त करता है, विशुद्ध श्रुतज्ञान को प्राप्त करता है, विशुद्ध अवधिज्ञान को प्राप्त करता है, विशुद्ध मन पर्यवज्ञान को प्राप्त करता है और विशुद्ध केवलज्ञान को प्राप्त करता है—प्रथमवय मे, मध्यमवय मे और पश्चिमवय मे (१७५)।

विवेचन—सस्कृत टीकाकार ने सोलह वर्ष तक बाल काल, सत्तर वर्ष तक मध्यमकाल और इससे परे वृद्धकाल का निर्देश एक प्राचीन श्लोक को उद्धृत करके किया है। साधुदीक्षा आठ वर्ष के पूर्व नही होने का विधान है, अत प्रकृत मे प्रथमवय का अर्थ आठ वर्ष से लेकर तीस वर्ष तक का कुमार काल लेना चाहिए। इकतीस वर्ष से लेकर साठ वर्ष तक के समय को युवावस्था या मध्यम-वय और उससे आगे की वृद्धावस्था को पश्चिमवय जानना चाहिए। वस्तुत वयों का विभाजन आयुष्य की अपेक्षा रखता है और आयुष्य कालसापेक्ष है अतएव सदा-सर्वदा के लिए कोई भी एक प्रकार का विभाजन नही हो सकता।

बोधि-सूत्र

१७६—तिविधा बोधी पण्णत्ता, त जहा—णाणबोधी, दसणबोधी, चरित्तबोधी। १७७—तिविहा बुद्धा पण्णत्ता, त जहा—णाणबुद्धा, दसणबुद्धा, चरित्तबुद्धा।

बोधि तीन प्रकार की कही गई है—ज्ञानबोधि, दर्शनबोधि और चारित्रबोधि (१७६)। बुद्ध तीन प्रकार के कहे गये हैं—ज्ञानबुद्ध, दर्शनबुद्ध और चारित्रबुद्ध (१७७)।

मोह-सूत्र

१७८—एव मोहे, मूढा [तिविहे मोहे पण्णत्ते, त जहा—णाणमोहे, दसणमोहे, चरित्तमोहे। १७९—तिविहा मूढा पण्णत्ता, त जहा—णाणमूढा, दसणमूढा, चरित्तमूढा]।

मोह तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञानमोह, दर्शनमोह और चारित्रमोह (१७८)। मूढ तीन प्रकार के कहे गये हैं—ज्ञानमूढ, दर्शनमूढ और चारित्रमूढ (१७९)।

विवेचन—यहा 'मोह' का अर्थ विपर्यास या विपरीतता है। ज्ञान का मोह होने पर ज्ञान अयथार्थ हो जाता है। दर्शन का मोह होने पर वह मिथ्या हो जाता है। इसी प्रकार चारित्र का मोह होने पर सदाचार असदाचार हो जाता है।

प्रव्रज्या सूत्र

१८०—तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता, त जहा—इहलोगपडिबद्धा, परलोगपडिबद्धा, दुहतो [लोग ?] पडिबद्धा। १८१—तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता, त जहा—पुरतो पडिबद्धा, मग्गतो पडिबद्धा,

दुहओ पडिबद्धा । १८२—तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता, त जहा—तुयावइत्ता, पुयावइत्ता, बुआवइत्ता । १८३—तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता, त जहा—ओवातपव्वज्जा, अक्खातपव्वज्जा, सगारपव्वज्जा ।

प्रव्रज्या तीन प्रकार की कही गई है—इहलोक प्रतिबद्धा (इस लोक सम्बन्धी सुखो की प्राप्ति के लिए अगीकार की जाने वाली) प्रव्रज्या, परलोक-प्रतिबद्धा (परलोक मे सुखो की प्राप्ति के लिए स्वीकार की जाने वाली) प्रव्रज्या, और द्वयलोक-प्रतिबद्धा (दोनों लोको मे सुखो की प्राप्ति के लिए ग्रहण की जाने वाली) प्रव्रज्या (१८०) । पुन प्रव्रज्या तीन प्रकार की कही गई है—पुरत प्रतिबद्धा, (आगे होने वाले शिष्यादि से प्रतिबद्ध) प्रव्रज्या, पृष्ठत प्रतिबद्धा (पीछे के स्वजनादि के साथ स्नेह-सम्बन्ध विच्छेद होने से प्रतिबद्ध) प्रव्रज्या और उभयत प्रतिबद्धा (आगे के शिष्य-आदि और पीछे के स्वजन आदि के स्नेह आदि से प्रतिबद्ध) प्रव्रज्या (१८१) । पुन प्रव्रज्या तीन प्रकार की कही गई है—तोदयित्वा (कष्ट देकर दी जाने वाली) प्रव्रज्या, प्लावयित्वा (दूसरे स्थान मे ले जाकर दी जाने वाली) प्रव्रज्या, और वाचयित्वा (बातचीत करके दो जाने वाली) प्रव्रज्या (१८२) । पुन प्रव्रज्या तीन प्रकार की कही गई है—अवपात (गुरु सेवा से प्राप्त) प्रव्रज्या, आख्यात (उपदेश से प्राप्त) प्रव्रज्या, और सगार (परस्पर प्रतिज्ञा-बद्ध होकर ली जाने वाली) प्रव्रज्या (१८३) ।

विवेचन—सस्कृत टीकाकार ने तोदयित्वा प्रव्रज्या के लिए 'सागरचन्द्र' का, प्लावयित्वा दीक्षा के लिए आर्यरक्षित का, और वाचयित्वा दीक्षा के लिए गौतमस्वामी से वार्तालाप कर एक किसान का उल्लेख किया है । इसी प्रकार आख्यातप्रव्रज्या के लिए फल्गुरक्षित का और सगारप्रव्रज्या के लिए मेतार्य के नाम का उल्लेख किया है । इनकी कथाए कथानुयोग से जानना चाहिए ।

निग्र न्थ-सूत्र

१८४—तओ णियठा णोसण्णोवउत्ता पण्णत्ता, त जहा—पुलाए, णियठे, सिणाए । १८५—तओ णियठा सण्ण णोसण्णोवउत्ता पणत्ता, त जहा—बउसे, पडिसेवणाकुसीले, कसायकुसीले ।

तीन प्रकार के निग्रन्थ नोसज्ञा से उपयुक्त कहे गये हैं—पुलाक, निग्र न्थ और स्नातक (१८४) । तीन प्रकार के निर्ग्रन्थ सज्ञा और नोसज्ञा इन दोनो से उपयुक्त होते है—बकुश, प्रति-सेवना कुशील और कषायकुशील (१८५) ।

विवेचन—ग्रन्थ या ग्रथ परिग्रह है । जो बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह से रहित होते हैं, उन्हे निग्रन्थ कहा जाता है । आहार आदि की अभिलाषा को सज्ञा कहते हैं । जो इस प्रकार की सज्ञा से उपयुक्त होते है उन्हे सज्ञोपयुक्त कहते है और जो इस प्रकार की सज्ञा से उपयुक्त नही होते है, उन्हे नो सज्ञोपयुक्त कहते हैं । इन दोनो प्रकार के निर्ग्रन्थो के जो तीन-तीन नाम गिनाये गये हैं, उनका स्वरूप इस प्रकार है—

१ पुलाक—तपस्या-विशेष से लब्धि विशेष को पाकर उसका उपयोग करके अपने सयम को असार करने वाले साधु को पुलाक कहते है ।

२ निग्रन्थ—जिसके मोह-कर्म उपशान्त हो गया है, ऐसे ग्यारहवे गुणस्थानवर्ती और जिसका मोहकर्म क्षय हो गया है ऐसे बारहवे गुणस्थानवर्ती मुनियो को निग्र न्थ कहते हैं ।

३ स्नातक—घन घाति चारो कर्मों का क्षय करने वाले तेरहवें और चौदहवे गुणस्थानवर्ती अरहन्तो को स्नातक कहते हैं ।

इन तीनो को नोसज्ञोपयुक्त कहा गया है—

१ बकुश—शरीर और उपकरण की विभूषा द्वारा अपने चारित्ररूपी वस्त्र में धब्बे लगाने वाले साधु को बकुश कहते हैं।

२ प्रतिसेवनाकुशील—किसी मूल गुण की विराधना करने वाले साधु को प्रतिसेवना-कुशील कहते है।

३ कषायकुशील—क्रोधादि कषायो के आवेश मे आकर अपने शील को कुत्सित करने वाले साधु को कषायकुशील कहते है।

इन तीनो प्रकार के साधुओ को सज्ञोपयुक्त और नो-सज्ञोपयुक्त कहा गया है। साधारण रूप मे तो ये आहारादि की अभिलाषा से रहित होते है, किन्तु किसी निमित्त विशेष के मिलने पर आहार, भय आदि सज्ञाओ से उपयुक्त भी हो जाते हैं।

शैक्षभूमिसूत्र

१८६—तओ सेहभूमीओ पण्णत्ताओ, त जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा। उक्कोसा छम्मासा मज्झिमा चउमासा, जहण्णा सत्तराइदिया।

तीन शैक्षभूमिया कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। उत्कृष्ट छह मास की, मध्यम चार मास की और जघन्य सात दिन-रात की (१८६)।

विवेचन—सामायिक चारित्र के ग्रहण करने वाले नवदीक्षित साधुको शैक्ष कहते हैं और उसके अभ्यास-काल को शैक्षभूमि कहते हैं। दीक्षा ग्रहण करने के समय सब सावद्य प्रवृत्ति का त्याग रूप सामयिक चारित्र अगीकार किया जाता है। उसमे निपुणता प्राप्त कर लने पर छेदोपस्थापनीय चारित्र को स्वीकार किया जाता है, उसमे पाच महाव्रतो और छठे रात्रि-भोजन विरमण व्रत को धारण किया जाता है। प्रस्तुत सूत्र मे सामायिकचारित्र की तीन भूमिया बतलाई गई हैं। छह मास की उत्कृष्ट शैक्षभूमि के पश्चात् निश्चित रूप से छेदोपस्थापनीय चारित्र स्वीकार करना आवश्यक होता है। यह मन्दबुद्धि शिष्य की भूमिका है। उसे दीक्षित होने के छह मास के भीतर सब सावद्य-योग के प्रत्याख्यान का, इन्द्रियो के विषयो पर विजय पाने का एव साधु-समाचारी का भली-भाति से अभ्यास कर लेना चाहिए। जो इससे अधिक बुद्धिमान शिष्य होता है, वह उक्त कर्त्तव्यो का चार मास मे अभ्यास कर लेता है और उसके पश्चात छेदोपस्थापनीय चारित्र को अगीकार करता है। यह शैक्ष की मध्यम भूमिका है। जो नव दीक्षित प्रबल बुद्धि एव प्रतिभावान् होता है और जिसकी पूर्वभूमिका तैयार होती है वह उक्त कार्यो को सात दिन मे ही सीखकर छेदोपस्थापनीय चारित्र को धारण कर लेता है, यह शैक्ष की जघन्य भूमिका है[1]।

व्यवहारभाष्य के अनुसार यदि कोई मुनि दीक्षा से भ्रष्ट होकर पुन दीक्षा ले तो वह विस्मृत सामाचारी आदि को सात दिन मे ही अभ्यास कर लेता है, अत उसे सातवें दिन ही महाव्रतो मे उप-स्थापित कर दिया जाता है। इस अपेक्षा से भी शैक्षभूमि में जघन्य काल का विधान सभव है।

---

१ व्यवहारभाष्य उ० २, गा० ५३-५४।

थेरभूमि सूत्र

१८७—तम्रो थेरभूमीम्रो पण्णत्ताम्रो, त जहा—जातिथेरे, सुयथेरे, परियायथेरे। सट्ठिवासजाए समणे णिग्गथे जातिथेरे, ठाणसमवायधरे ण समणे णिग्गथे सुयथेरे, वीसवासपरियाए ण समणे णिग्गथे परियायथेरे।

तीन स्थविरभूमिया कही गई हैं—जातिस्थविर, श्रुतस्थविर और पर्यायस्थविर। साठ वर्ष का श्रमण निर्ग्रन्थ जातिस्थविर (जन्म की अपेक्षा) है। स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग का ज्ञाता श्रमण निर्ग्रन्थ श्रुतस्थविर है और बीस वर्ष की दीक्षापर्यायवाला श्रमण निर्ग्रन्थ पर्यायस्थविर है।

सुमन-दुमनादिसूत्र विभिन्न अपेक्षाओ से

१८८—तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुमणे, दुम्मणे, णोसुमणे णोदुम्मणे। १८९—तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—गता णामेगे सुमणे भवति, गता णामेगे दुम्मणे भवति, गता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। १९०—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जामीतेगे सुमणे भवति, जामीतेगे दुम्मणे भवति, जामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। १९१—एव [तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—] जाइस्सामीतेगे सुमणे भवति, [जाइस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, जाइस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]। १९२—तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—अगता णामेगे सुमणे भवति, [अगता णामेगे दुम्मणे भवति, अगता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]। १९३—तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण जामि एगे सुमणे भवति, [ण जामि एगे दुम्मणे भवति, ण जामि एगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]। १९४—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण जाइस्सामि एगे सुमणे भवति, एव [ण जाइस्सामि एगे दुम्मणे भवति, ण जाइस्सामि एगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—सुमनस्क (मानसिक हर्ष वाले), दुमनस्क (मानसिक विषाद-वाले) और नो सुमनस्क-नोदुमनस्क (न हर्ष वाले, न विषादवाले, किन्तु मध्यस्थ) (१८८)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष (कहीं बाहर) जाकर सुमनस्क होता है। कोई पुरुष जाकर दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष जाकर न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है। (१८९)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'मैं जाता हू' इसलिए—ऐसा विचार करके सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'मैं जाता हू' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'मैं जाता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (१९०)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'मैं जाऊगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'मैं जाऊगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है तथा कोई पुरुष 'मैं जाऊगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (१९१)।

[पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'न जाने' पर सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'न जाने पर दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'न जाने पर' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (१९२)। पुन पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—कोई पुरुष 'नही जाता हू' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नही जाता हू' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं जाता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (१९३)। पुन पुरुष तीन प्रकार के होते है—'नही जाऊगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नही जाऊगा इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नही जाऊगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (१९४)।]

१९५—एव [तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—] भ्रागता णामेगे सुमणे भवति, भ्रागता णामेगे दुम्मणे भवति, भ्रागता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति । १९६—तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—एमीतेगे सुमणे भवति, एमीतेगे दुम्मणे भवति, एमीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति । १९७—तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—एस्सामीतेगे सुमणे भवति, एस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, एस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे] भवति । १९८—तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—भ्रणागता णामेगे सुमणे भवति, भ्रणागता णामेगे दुम्मणे भवति, भ्रणागता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति ।

एव एएण भ्रभिलावेण—

गता य अगता य, भ्रागता खलु तहा भ्रणागता ।
चिट्ठित्तमचिट्ठित्ता, णिसितित्ता चेव णो चेव ॥१॥

हता य भ्रहता य, छिंदित्ता खलु तहा अछिंदित्ता ।
बूतित्ता अबूतित्ता, भासित्ता चेव णो चेव ॥२॥

दच्चा य भ्रदच्चा य, भुजित्ता खलु तहा भ्रभुजित्ता ।
लभित्ता भ्रलभित्ता, पिबइत्ता चेव णो चेव ॥३॥

सुतित्ता भ्रसुतित्ता, जुज्झित्ता खलु तहा भ्रजुज्झित्ता ।
जतित्ता भ्रजयित्ता, पराजिणित्ता चेव णो चेव ॥४॥

सद्दा रूवा गधा, रसा य फासा तहेव ठाणा य ।
णिस्सीलस्स गरहिता, पसत्था पुण सीलवतस्स ॥५॥

एवमिक्केक्के तिण्णि उ तिण्णि उ भ्रालावगा भाणियव्वा ।

१९९—तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण एमीतेगे सुमणे भवति, ण एमीतेगे दुम्मण भवति, ण एमीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति । २००—तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण एस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण एस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण एस्सामीतेगे णोसुमण णोदुम्मणे भवति ।

[पुरुप तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुप 'भ्राकर के' सुमनस्क होता है । कोई पुरुप 'भ्राकर के' दुमनस्क होता है तथा कोई पुरुप 'भ्राकर के' न सुमनस्क होता है भ्रौर न दुमनस्क होता है—सम भाव मे रहता है (१९५) । पुन पुरुप तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुप 'भ्राता हू' इसलिए सुमनस्क होता है । कोई पुरुप 'भ्राता हू' इसलिए दुमनस्क होता है तथा कोई पुरुप 'भ्राता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है भ्रौर न दुमनस्क होता है (१९६) । पुन पुरुप तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुप 'भ्राऊगा' इसलिए सुमनस्क होता है । कोई पुरुप 'भ्राऊगा' इसलिए दुमनस्क होता है तथा कोई पुरुप 'भ्राऊगा' इसलिए न सुमनस्क होता है भ्रौर न दुमनस्क होता है (१९७) । पुन पुरुप तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुप 'नही भ्राकर' सुमनस्क होता है । कोई पुरुप 'नही भ्राकर' दुमनस्क होता है तथा कोई पुरुप 'नही भ्राकर' न सुमनस्क होता है भ्रौर न दुर्मनस्क होता है (१९८) । पुन पुरुप तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुप 'नही भ्राता हू' इसलिए सुमनस्क होता है । कोई पुरुप 'नही भ्राता हू' इसलिए दुर्मनस्क होता है । तथा कोई पुरुप 'नही भ्राता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है भ्रौर न दुमनस्क होता है (१९९) । पुन पुरुप तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुप 'नही भ्राऊगा' इसलिए

जहा—ण हणामीतेगे सुमणे भवति, ण हणामीतेगे दुम्मणे भवति, ण हणामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २१८—तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण हणिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण हणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण हणिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति।]

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नही मारकर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नही मारकर' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नही मारकर' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२१६)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नही मारता हू' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नही मारता हू' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नही मारता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२१७)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नही मारूगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नही मारूगा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नही मारूगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२१८)।]

२१९—[तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—छिंदित्ता णामेगे सुमणे भवति, छिंदित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, छिंदित्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २२०—तम्रो—पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—छिंदामीतेगे सुमणे भवति, छिंदामीतेगे दुम्मणे भवति, छिंदामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २२१—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—छिंदिस्सामीतेगे सुमणे भवति, छिंदिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, छिंदिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष छेदन करके सुमनस्क होता है। कोई पुरुष छेदन करके दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष छेदन करके न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२१९)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'मैं छेदन करता हू' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'मैं छेदन करता हू' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'मै छेदन करता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२२०)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'मैं छेदन करूगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'मैं छेदन करूगा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'मै छेदन करूगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२२१)।]

२२२—[तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अछिंदित्ता णामेगे सुमणे भवति, अछिंदित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, अछिंदित्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २२३—तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण छिंदिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण छिंदिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण छिंदिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २२४—तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण छिंदिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण छिंदिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण छिंदिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'छेदन नही कर' सुमनस्क होता है, कोई पुरुष 'छेदन नही कर' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'छेदन नही कर' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२२२)। पुन पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—कोई पुरुष 'छेदन नही करता हू'

इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'छेदन नही करता हू' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'छेदन नही करता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२२३)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'नही छेदन करूगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नही छेदन करूगा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नही छेदन करूगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२२४)।]

२२५—[तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—बूइत्ता णामेगे सुमणे भवति, बूइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, बूइत्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २२६—तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—बेमीतेगे सुमणे भवति, बेमीतेगे दुम्मणे भवति, बेमीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २२७—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—वोच्छामीतेगे सुमणे भवति वोच्छामीतेगे दुम्मणे भवति, वोच्छामीतेगे णोसुमण णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'बोलकर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'बोलकर' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'बोलकर' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२२५)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'मै बोलता हू' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'मै बोलता हू' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'मैं बोलता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२२६)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'बोलूगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'बोलूगा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'बोलूगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२२७)।]

२२८—[तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—अबूइत्ता णामेगे सुमणे भवति, अबूइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, अबूइत्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २२९—तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण बेमीतेगे सुमणे भवति, ण बेमीतेगे दुम्मणे भवति, ण बेमीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २३०—तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण वोच्छामीतेगे सुमणे भवति, ण वोच्छामीतेगे दुम्मणे भवति, ण वोच्छामीतेगे णोसुमणे णो दुम्मणे भवति।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नही बोलकर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नही बोलकर' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नही बोलकर' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२२८)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'नही बोलता हू' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नही बोलता हू' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नही-बोलता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२२९)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'नही बोलूगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नही बोलूगा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नही बोलूगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२३०)।

२३१—[तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—भासित्ता णामेगे सुमणे भवति, भासित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, भासित्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २३२—तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—भासामीतेगे सुमणे भवति, भासामीतेगे दुम्मणे भवति, भासामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे

भवति । २३३—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—भासिस्सामीतेगे सुमणे भवति, भासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, भासिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति] ।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'सभाषण कर' सुमनस्क होता है । कोई पुरुष 'सभाषण कर' दुमनस्क होता है । तथा कोई पुरुष 'सभाषण कर' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२३१) । पुन पुरुष तीन प्रकार के होते है—कोई पुरुष 'मैं सभाषण करता हू' इसलिए सुमनस्क होता है । कोई पुरुष 'मैं सभाषण करता हू' इसलिए दुमनस्क होता है । तथा कोई पुरुष 'मैं सभाषण करता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२३२) । पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'मैं सभाषण करूगा' इसलिए सुमनस्क होता है । कोई पुरुष 'मैं सभाषण करूगा' इसलिए दुमनस्क होता है । तथा कोई पुरुष 'मैं सभाषण करूगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२३३) ।

२३४—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—अभासित्ता णामेगे सुमणे भवति, अभासित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, अभासित्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति । २३५—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण भासामीतेगे सुमणे भवति, ण भासामीतेगे दुम्मणे भवति, ण भासामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति । २३६—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण भासिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण भासिस्सामीते दुम्मणे भवति, ण भासिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति ।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नही सभाषण कर' सुमनस्क होता है । कोई पुरुष 'नही सभाषण कर' दुर्मनस्क होता है । तथा कोई पुरुष 'नही सभाषण कर' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२३४) । पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नही सभाषण करता हू' इसलिए सुमनस्क होता है । कोई पुरुष 'नही सभाषण करता हू' इसलिए दुमनस्क होता है । तथा कोई पुरुष 'नही सभाषण करता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२३५) । पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नही सभाषण करूगा' इसलिए सुमनस्क होता है । कोई पुरुष 'नही सभाषण करूगा' इसलिए दुमनस्क होता है । तथा कोई पुरुष 'नही सभाषण करूगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२३६) ।]

दच्चा अदच्चा पद

२३७—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—दच्चा णामेगे सुमणे भवति, दच्चा णामेगे दुम्मणे भवति, दच्चा णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति । २३८—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—देमीतेगे सुमणे भवति, देमीतेगे दुम्मणे भवति, देमीतेगे णोसमणे णोदुम्मणे भवति । २३९—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—दासामीतेगे सुमणे भवति, दासामीतेगे दुम्मणे भवति दासामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति ।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'देकर' सुमनस्क होता है । कोई पुरुष 'देकर' दुमनस्क होता है । तथा कोई पुरुष 'देकर' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क (२३७) । पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'देता हू' इसलिए सुमनस्क होता है । कोई पुरुष 'देता हू' इसलिए दुमनस्क होता है । तथा कोई पुरुष 'देता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुम-

नस्क होता है (२३८)। पुन पुरुप तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुप 'दूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुप 'दूंगा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुप 'दूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२३९)।]

२४०—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—अदच्चा णामेगे सुमणे भवति, अदच्चा णामेगे दुम्मणे भवति, अदच्चा णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २४१—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण देमीतेगे सुमणे भवति, ण देमीतेगे दुम्मणे भवति, ण देमीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २४२—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण दासामीतेगे सुमणे भवति, ण दासामीतेगे दुम्मणे भवति, ण दासामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुप तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुप नही देकर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुप 'नही देकर' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुप 'नही देकर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२४०)। पुन पुरुप तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुप 'नही देता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुप 'नही देता हूं' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुप 'नही देता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२४१)। कोई पुरुप 'नही दूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुप 'नही दूंगा इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुप 'नही दूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२४२)।

[२४३—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—भुंजित्ता णामेगे सुमणे भवति, भुंजित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, भुंजित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २४४—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—भुंजामीतेगे सुमणे भवति, भुंजामीतेगे दुम्मणे भवति भुंजामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २४५—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—भुंजिस्सामीतेगे सुमणे भवति, भुंजिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, भुंजिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मण भवति]।

[पुरुप तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुप 'भोजन कर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुप 'भोजन कर' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुप 'भोजन कर' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२४३)। पुन पुरुप तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुप 'भोजन करता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुप 'भोजन करता हूं' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुप 'भोजन करता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२४४)। पुन पुरुप तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुप 'भोजन करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुप 'भोजन करूंगा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुप 'भोजन करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२४५)।]

२४६—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—अभुंजित्ता णामेगे सुमणे भवति, अभुंजित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, अभुंजित्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २४७—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण भुंजामीतेगे सुमणे भवति, ण भुंजामीतेगे दुम्मणे भवति, ण भुंजामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २४८—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण भुंजिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण भुंजिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण भुंजिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है -कोई पुरुष 'भोजन न करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'भोजन न करके' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'भोजन न करके' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२४६)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'भोजन नही करता हू' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'भोजन नही करता हू' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'भोजन नही करता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२४७)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'भोजन नही करू गा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'भोजन नही करू गा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'भोजन नही करू गा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२४८)।

२४९—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—लभित्ता णामेगे सुमणे भवति, लभित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, लभित्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २५०—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—लभामीतेगे सुमणे भवति, लभामीतेगे दुम्मणे भवति, लभामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २५१—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—लभिस्सामीतेगे सुमणे भवति, लभिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, लभिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'प्राप्त कर के' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'प्राप्त करके' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'प्राप्त करके' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२४९)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'प्राप्त करता हू' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'प्राप्त करता हू' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'प्राप्त करता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२५०)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'प्राप्त करू गा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'प्राप्त करू गा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'प्राप्त करू गा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२५१)।

२५२—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—अलभित्ता णामेगे सुमणे भवति, अलभित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, अलभित्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २५३—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण लभामीतेगे सुमणे भवति, ण लभामीतेगे दुम्मणे भवति, ण लभामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २५४—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण लभिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण लभिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति ण लभिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'प्राप्त न करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'प्राप्त न करके' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'प्राप्त न करके' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२५२)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'प्राप्त नही करता हू' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'प्राप्त नही करता हू' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'प्राप्त नही करता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२५३)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'प्राप्त नही करू गा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'प्राप्त नही करू गा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'प्राप्त नही करू गा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२५४)।]

२५५—[तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—पिबित्ता णामेगे सुमणे भवति, पिबित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, पिबित्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २५६—तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—पिबामीतेगे सुमणे भवति, पिबामीतेगे दुम्मणे भवति, पिबामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २५७—तम्रों पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—पिबिस्सामीतेगे सुमणे भवति, पिबिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, पिबिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुप तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुप 'पीकर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुप 'पीकर' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुप 'पीकर' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२५५)। पुन पुरुप तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुप 'पीता हू' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुप 'पीता हू' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुप 'पीता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२५६)। पुन पुरुप तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुप 'पीऊगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुप 'पीऊगा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुप 'पीऊगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२५७)।]

२५८—[तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—म्रपिबित्ता णामेगे सुमणे भवति, म्रपिबित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, म्रपिबित्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २५९—तम्रों पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण पिबामीतेगे सुमणे भवति, ण पिबामीतेगे दुम्मणे भवति, ण पिबामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २६०—तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण पिबिस्सामितेगे सुमणे भवति, ण पिबिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण पिबिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुप तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुप 'नही पीकर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुप 'नही पीकर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुप 'नही पीकर' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२५८)। पुन पुरुप तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुप 'नही पीता हू' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुप 'नही पीता हू' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुप 'नही पीकर' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२५९)। पुन पुरुप तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुप 'नही पीऊगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुप 'नही पीऊगा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुप 'नही पीऊगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२६०)।]

२६१—[तम्रो पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुइत्ता णामेगे सुमणे भवति, सुइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, सुइत्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २६२—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुम्रामीतेगे सुमणे भवति, सुम्रामीतेगे दुम्मणे भवति, सुआमीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २६३—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुइस्सामीतेगे सुमणे भवति, सुइस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, सुइस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुप तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुप 'सोकर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुप 'सोकर' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुप 'सोकर' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२६१)। पुन पुरुप तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुप 'सोता हू' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुप

'सोता हू' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'साता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२६२)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'सोऊगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'साऊगा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'सोऊगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२६३)।

२६४—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—असुइत्ता णामेगे सुमणे भवति, असुइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, असुइत्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २६५—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण सुआमीतेगे सुमणे भवति, ण सुआमीतेगे दुम्मणे भवति, ण सुआमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २६६—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण सुइस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण सुइस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण सुइस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कुछ पुरुष 'न साने पर' सुमनस्क होते है। कुछ पुरुष 'न सोने पर' दुमनस्क होते हैं। तथा कुछ पुरुष 'न सोने पर' न सुमनस्क होते हैं और न दुमनस्क हाते है (२६४)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नही सोता हूँ' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नही सोता हू' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नही सोता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२६५) पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'नही साऊगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नही सोऊगा' इसलिए दुर्मनस्क हाता है। तथा कोई पुरुष 'नही सोऊगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क हाता है (२६६)।]

२६७—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जुज्झित्ता णामेगे सुमणे भवति, जुज्झित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, जुज्झित्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २६८—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जुज्झामीतेगे सुमणे भवति, जुज्झामीतेगे दुम्मणे भवति, जुज्झामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २६९—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जुज्झिस्सामीतेगे सुमणे भवति, जुज्झिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, जुज्झिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'युद्ध करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'युद्ध करके' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'युद्ध करके' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२६७)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'युद्ध करता हू' इसलिए सुमनस्क हाता है। कोई पुरुष 'युद्ध करता हू' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'युद्ध करता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क हता है (२६८)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'युद्ध करूगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'युद्ध करूगा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष युद्ध करूगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२६९)।

२७०—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—अजुज्झित्ता णामेगे सुमणे भवति, अजुज्झित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, अजुज्झित्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २७१—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण जुज्झमीतेगे सुमणे भवति, ण जुज्झामीतेग दुम्मणे भवति, ण जुज्झामीतेगे

णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २७२—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण जुज्झिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण जुज्झिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण जुज्झिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'युद्ध नही करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'युद्ध नही करके' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'युद्ध नही करके' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२७०)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'युद्ध नही करता हू' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'युद्ध नही करता हू' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'युद्ध नही करता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२७१)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'युद्ध नही करूगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'युद्ध नही करूगा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'युद्ध नही करूगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२७२)।]

२७३—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जइत्ता णामेगे सुमणे भवति, जइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, जइत्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २७४—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जिणामीतेगे सुमणे भवति, जिणामीतेगे दुम्मणे भवति, जिणामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २७५—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जिणिस्सामीतेगे सुमणे भवति, जिणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, जिणिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'जीत कर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'जीतकर' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'जीत कर' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२७३)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'जीतता हू' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'जीतता हू' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'जीतता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२७४)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'जीतूगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'जीतूगा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'जीतूगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२७५)।

२७६—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—अजइत्ता णामेगे सुमणे भवति, अजइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, अजइत्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २७७—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण जिणामीतेगे सुमणे भवति, ण जिणामीतेगे दुम्मणे भवति, ण जिणामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २७८—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—ण जिणिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण जिणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण जिणिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नही जीत कर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नही जीत कर' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नही जीत कर' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२७६)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नही जीतता हू' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नही जीतता हू' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नही जीतता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२७७)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'नही जीतूगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नही जीतूगा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नही जीतूगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२७८)।]

२७९—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पराजिणित्ता णामेगे सुमणे भवति, पराजिणित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, पराजिणित्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २८०—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पराजिणामीतेगे सुमणे भवति, पराजिणामीतेगे दुम्मणे भवति, पराजिणामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २८१—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पराजिणिस्सामीतेगे सुमणे भवति, पराजिणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, पराजिणिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष (किसी को) 'पराजित करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'पराजित करके' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'पराजित करके' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२७९)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'पराजित करता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'पराजित करता हूं' इसलिए दुमनस्क होता है और कोई पुरुष 'पराजित करता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२८०)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'पराजित करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'पराजित करूंगा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'पराजित करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२८१)।

२८२—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अपराजिणित्ता णामेगे सुमणे भवति, अपराजिणित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, अपराजिणित्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २८३—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण पराजिणामीतेगे सुमणे भवति, ण पराजिणामीतेगे दुम्मणे भवति, ण पराजिणामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २८४—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण पराजिणिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण पराजिणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण पराजिणिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'पराजित नहीं करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'पराजित नहीं करके' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'पराजित नहीं करके' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२८२)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'पराजित नहीं करता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'पराजित नहीं करता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'पराजित नहीं करता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२८३)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'पराजित नहीं करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'पराजित नहीं करूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'पराजित नहीं करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२८४)।

२८५—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सद्दं सुणेत्ता णामेगे सुमणे भवति, सद्दं सुणेत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, सद्दं सुणेत्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २८६—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सद्दं सुणामीतेगे सुमणे भवति, सद्दं सुणामीतेगे दुम्मणे भवति, सद्दं सुणामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २८७—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सद्दं सुणिस्सामीतेगे सुमणे भवति, सद्दं सुणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, सद्दं सुणिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'शब्द सुन करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष

'शब्द सुन करके' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'शब्द सुन करके' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२८५)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'शब्द सुनता हू इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'शब्द सुनता हू' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'शब्द सुनता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२८६)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'शब्द सुनू गा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'शब्द सुनू गा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'शब्द सुनू गा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२८७)।]

२८८—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सद्द असुणेत्ता णामेगे सुमणे भवति, सद्द असुणेत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, सद्द असुणेत्ता णामेगे णोसुमण णोदुम्मणे भवति। २८९—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सद्द ण सुणामीतेगे सुमणे भवति, सद्द ण सुणामीतेगे दुम्मणे भवति, सद्द ण सुणामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २९०—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सद्द ण सुणिस्सामीतेगे सुमणे भवति, सद्द ण सुणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, सद्द ण सुणिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'शब्द नही सुन करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'शब्द नही सुन करके' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'शब्द नही सुन करके' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२८८)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'शब्द नही सुनता हू' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'शब्द सुनता हू' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'शब्द सुनता हू इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२८९)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'शब्द नही सुन गा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'शब्द नही सुनू गा' इसलिए दुमनस्क होता है और कोई पुरुष 'शब्द नही सुनू गा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२९०)।]

२९१—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—रूव पासित्ता णामेगे सुमणे भवति, रूव पासित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, रूव पासित्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २९२—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—रूव पासामीतेगे सुमणे भवति, रूव पासामीतेगे दुम्मणे भवति, रूव पासामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २९३ - तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—रूव पासिस्सामीतेगे सुमणे भवति, रूव पासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, रूव पासिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'रूप देखकर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रूप देखकर' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रूप देखकर' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२९१)। पुन पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—कोई पुरुष 'रूप देखता हू' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रूप देखता हू' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रूप देखता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२९२)। पुन पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—कोई पुरुष 'रूप देखू गा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रूप देखू गा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रूप देखू गा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२९३)।

२९४—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—रूव अपासित्ता णामेगे सुमणे भवति, रूव अपासित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, रूव अपासित्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २९५—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—रूव ण पासामीतेगे सुमणे भवति, रूव ण पासामीतेगे दुम्मणे भवति, रूव ण पासामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २९६—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—रूव ण पासिस्सामीतेगे सुमण भवति, रूव ण पासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, रूव ण पासिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के होते है—कोई पुरुष 'रूप नही देखकर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रूप नही देखकर' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रूप न देखकर' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२९४)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'रूप नही देखता हू' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रूप नही देखता हू' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रूप नही देखता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२९५)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'रूप नही देखू गा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रूप नही देखू गा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रूप नही देखू गा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२९६)।]

२९७—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—गध अग्घाइत्ता णामेगे सुमणे भवति, गध अग्घाइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, गध अग्घाइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २९८—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—गध अग्घामीतेगे सुमणे भवति, गध अग्घामीतेगे दुम्मणे भवति, गध अग्घामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। २९९—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—गध अग्घाइस्सामीतेगे सुमणे भवति, गध अग्घाइस्सामीतेगे दुम्मण भवति, गध अग्घाइस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'गन्ध सू घकर के' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'गन्ध सू घ करके' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'गन्ध सू घकर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२९७)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'गन्ध सू घता हू' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'गन्ध सू घता हू' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'गन्ध सू घता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२९८)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'गन्ध सू घू गा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'गन्ध सू घू गा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा पुरुष 'गन्ध सू घू गा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२९९)।]

३००—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—गध अणग्घाइत्ता णामेगे सुमणे भवति, गध अणग्घाइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, गध अणग्घाइत्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। ३०१—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—गध ण अग्घामीतेगे सुमणे भवति, गध ण अग्घामीतेगे दुम्मणे भवति, गध ण अग्घामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। ३०२—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—गध ण अग्घाइस्सामीतेगे सुमणे भवति, गध ण अग्घाइस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, गध ण अग्घाइस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'गन्ध नही सूंघकर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'गन्ध नही सूंघ कर' दुमनस्क होता है तथा कोई पुरुष 'गन्ध नही सूंघकर' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (३००)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'गन्ध नही सूंघता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'गन्ध नही सूंघता हूं' इसलिए दुमनस्क होता है तथा कोई पुरुष 'गन्ध नही सूंघता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (३०१)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'गन्ध नही सूंघूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'गन्ध नही सूंघूंगा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'गन्ध नही सूंघूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है, और न दुमनस्क होता है (३०२)।

३०३—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—रस आसाइत्ता णामेगे सुमणे भवति, रस आसाइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, रस आसाइत्ता णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। ३०४—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—रस आसादेमीतेगे सुमणे भवति, रस आसादेमीतेगे दुम्मणे भवति, रस आसादेमीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। ३०५—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—रस आसादिस्सामीतेगे सुमणे भवति, रस आसादिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, रस आसादिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'रस आस्वादन कर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रस आस्वादन कर' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रस आस्वादन कर' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (३०३)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'रस आस्वादन करता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रस आस्वादन करता हूं' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रस आस्वादन करता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (३०४)। पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'रस आस्वादन करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रस आस्वादन करूंगा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रस आस्वादन करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (३०५)।]

३०६—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—रस अणासाइत्ता णामेगे सुमणे भवति, रस अणासाइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, रस अणासाइत्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। ३०७—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—रस ण आसादेमीतेगे सुमणे भवति, रस ण आसादेमीतेगे दुम्मणे भवति, रस ण आसादेमीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। ३०८—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—रस ण आसादिस्सामीतेगे सुमणे भवति, रस ण आसादिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, रस ण आसादिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'रस आस्वादन नही करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रस आस्वादन नही करके' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रस आस्वादन नही करके' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (३०६)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'रस आस्वादन नही करता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रस आस्वादन नही करता हूं' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रस आस्वादन नही करता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (३०७)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई

पुरुष 'रस आस्वादन नही करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रस आस्वादन नहीं करूंगा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रस आस्वादन नही करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (३०८)।

३०९—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—फास फासेत्ता णामेगे सुमणे भवति, फास फासेत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, फास फासेत्ता णामेगे णोसुमण णोदुम्मणे भवति। ३१०—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—फास फासेमीतेगे सुमणे भवति, फास फासेमीतेगे दुम्मणे भवति, फास फासेमीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। ३११—तओ पुरिसजया पण्णत्ता, त जहा—फास फासिस्सामीतेगे सुमणे भवति, फास फासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, फास फासिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'स्पश का स्पश करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष स्पश को स्पश करके' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'स्पश को स्पश करके' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होना है (३०९)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'स्पश को स्पश करता हू' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'स्पश को स्पश करता हू' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'स्पश को स्पश करता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (३१०)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'स्पश का स्पश करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'स्पश को स्पश करूंगा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'स्पश को स्पश करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (३११)।]

३१२—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—फास अफासेत्ता णामेगे सुमणे भवति, फास अफासेत्ता णामेगे दुम्मण भवति, फास अफासेत्ता णामेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। ३१३—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—फास ण फासेमीतेगे सुमणे भवति, फास ण फासेमीतेगे दुम्मण भवति, फास ण फासेमीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति। ३१४—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—फास ण फासिस्सामीतेगे सुमणे भवति, फास ण फासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, फास ण फासिस्सामीतेगे णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'स्पश को स्पश नही करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'स्पर्श को स्पश नही करके' दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'स्पश को स्पर्श नहीं करके' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (३१२)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'स्पश को स्पश नही करता हू' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'स्पश को स्पश नही करता हू' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'स्पर्श को स्पश नहीं करता हू' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (३१३)। पुन पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'स्पर्श को स्पश नही करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'स्पश को स्पश नही करूंगा' इसलिए दुमनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'स्पश को स्पश नहीं करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (३१४)।]

विवेचन—उपयुक्त १८८ से ३१४ तक के सूत्रो मे पुरुषो की मानसिक दशाओ का विश्लेषण किया गया है। कोई पुरुष उसी काय का करते हुए हर्ष का अनुभव करता है, यह व्यक्ति की राग

परिणति है। दूसरा व्यक्ति उसी कार्य को करते हुए विषाद का अनुभव करता है यह उसकी द्वेष-परिणति का सूचक है। तीसरा व्यक्ति उसी कार्य को करते हुए न हर्ष का अनुभव करता है और न विषाद का ही किन्तु मध्यस्थता का अनुभव करता है या मध्यस्थ रहता है। यह उसकी वीतरागता का द्योतक है। इस प्रकार संसारी जीवों की परिणति कभी रागमूलक और कभी द्वेष-मूलक होती रहती है। किन्तु जिनके हृदय में विवेक रूपी सूर्य का प्रकाश विद्यमान है उनकी परिणति सदा वीतरागभावमय ही रहती है। इसी बात को उक्त १२६ सूत्रों के द्वारा विभिन्न क्रियाओं के माध्यम से बहुत स्पष्ट एवं सरल शब्दों में व्यक्त किया गया है।

गर्हित स्थान सूत्र

३१५—तओ ठाणा णिस्सीलस्स णिग्गुणस्स णिम्मेरस्स णिप्पच्चक्खाणपोसहोववासस्स गरहिता भवंति, तं जहा—अस्सिं लोगे गरहिते भवति, उववाते गरहिते भवति, आयाती गरहिता भवति।

शील-रहित, व्रत रहित, मर्यादा-हीन एवं प्रत्याख्यान तथा पोषधोपवास-विहीन पुरुष के तीन स्थान गर्हित होते हैं—इहलोक (वर्तमान भव) गर्हित होता है। उपपात (देव और नारक जन्म) गर्हित होता है। (क्योंकि अकामनिर्जरा आदि किसी कारण से देवभव पाकर भी वह किल्विषिक जैसे निम्न देवों में उत्पन्न होता है।) तथा आगामी जन्म (देव या नरक के पश्चात् होने वाला मनुष्य या तिर्यंचभव) भी गर्हित होता है—वहां भी उसे अधोदशा प्राप्त होती है।

प्रशस्त-स्थान-सूत्र

३१६—तओ ठाणा सुसीलस्स सुव्वयस्स सगुणस्स समेरस्स सपच्चक्खाणपोसहोववासस्स पसत्था भवंति, तं जहा—अस्सिं लोगे पसत्थे भवति, उववाए पसत्थे भवति, आजाती पसत्था भवति।

सुशील, सुव्रती, सद्-गुणी, मर्यादा युक्त एवं प्रत्याख्यान पोषधोपवास से युक्त पुरुष के तीन स्थान प्रशस्त होते हैं—इहलोक प्रशस्त होता है, उपपात प्रशस्त होता है एवं उससे भी आगे का जन्म प्रशस्त होता है।

जीव सूत्र

३१७—तिविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थी, पुरिसा णपुंसगा। ३१८—तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मद्दिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, सम्मामिच्छद्दिट्ठी। अहवा—तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा, अपज्जत्तगा, णोपज्जत्तगा णोऽपज्जत्तगा एवं सम्मद्दिट्ठी परित्ता पज्जत्तग सुहुम सण्णि भविया य [परित्ता, अपरित्ता, णोपरित्ता णोऽपरित्ता। सुहुमा, बायरा, णोसुहुमा णोबायरा। सण्णी, असण्णी, णोसण्णी णोअसण्णी। भवी, अभवी, णोभवी णोऽभवी]।

संसारी जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं—स्त्री, पुरुष और नपुंसक (३१७)। अथवा सब जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि। अथवा सब जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं—पर्याप्त, अपर्याप्त एवं न पर्याप्त और न अपर्याप्त (सिद्ध) (३१८)। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि, परीत, अपरीत, नोपरीत नोअपरीत, सूक्ष्म, बादर, नोसूक्ष्म नोबादर, संज्ञी, असंज्ञी, नो संज्ञी नो असंज्ञी, भव्य, अभव्य, नो भव्य नो अभव्य भी जानना चाहिए। तथा सब

जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं—प्रत्येकशरीरी (एक शरीर का स्वामी एक जीव) साधारणशरीरी (एक शरीर के स्वामी अनन्त जीव) और न प्रत्येकशरीरी न साधारणशरीरी (सिद्ध)। अथवा सब जीव तीन प्रकार के कहे गये है—सूक्ष्म, बादर और न सूक्ष्म न बादर (सिद्ध)। अथवा सब जीव तीन प्रकार के कहे गये है—सज्ञी (समनस्क) असज्ञी (अमनस्क) और न सज्ञी, न असज्ञी (सिद्ध)। अथवा सर्व जीव तीन प्रकार कहे गये हैं—भव्य, अभव्य और न भव्य, न अभव्य (सिद्ध) (३१८)।

लोकस्थिति-सूत्र

३१९—तिविधा लोगठिती पण्णत्ता, त जहा—आगासपइट्ठिए वाते, वातपइट्ठिए उदही, उदहीपइट्ठिया पुढवी।

लोक स्थिति तीन प्रकार की कही गई है—आकाश पर घनवात तथा तनुवात प्रतिष्ठित है। घनवात और तनुवात पर घनोद प्रतिष्ठित है और घनोदधि पृथ्वी (तमस्तम प्रभा आदि) पर प्रतिष्ठित-स्थित है।

दिशा-सूत्र

३२०—तओ दिसाओ पण्णत्ताओ, त जहा—उड्ढा, अहा, तिरिया। ३२१—तिहिं दिसाहिं जीवाण गती पवत्तति—उड्ढाए, अहाए, तिरियाए। ३२२—एव तिहिं दिसाहिं जीवाण—आगती, वक्कती, आहारे, वुड्ढी, णिवुड्ढी, गतिपरियाए, समुग्घाते, कालसजोगे, दसणाभिगमे, णाणाभिगमे जीवाभिगमे [पण्णत्ते, त जहा—उड्ढाए, अहाए, तिरियाए]। ३२३—तिहिं दिसाहिं जीवाण अजीवाभिगमे पण्णत्ते, त जहा—उड्ढाए, अहाए, तिरियाए। ३२४—एव—पचिदियतिरिक्ख जोणियाण। ३२५—एव मणुस्साणवि।

दिशाए तीन कही गई हैं—ऊर्ध्वदिशा, अधोदिशा और तिर्यग्दिशा (३२०)। तीन दिशाओ मे जीवो की गति (गमन) होती है—ऊर्ध्वदिशा मे, अधोदिशा मे और तिर्यग्दिशा मे (३२१)। इसी प्रकार तीन दिशाओ से जीवो की आगति (आगमन) अवक्रान्ति (उत्पत्ति) आहार, वृद्धि निवृद्धि (हानि) गति-पर्याय, समुद्घात, कालसयोग, दर्शनाभिगम (प्रत्यक्ष दर्शन से होने वाला बोध) ज्ञानाभिगम (प्रत्यक्षज्ञान के द्वारा होने वाला बोध) और जीवाभिगम (जीव विषयक बोध) कहा गया है (३२२)। तीन दिशाओ मे जीवो का अजीवाभिगम कहा गया है—ऊर्ध्वदिशा मे, अधोदिशा मे और तिर्यग्दिशा मे (३२३)। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिवाले जीवो की गति, आगति आदि तीनो दिशाओ मे कही गई है (३२४)। इसी प्रकार मनुष्यो की भी गति, आगति आदि तीनो ही दिशाओ मे कही गई है (३२५)।

त्रस स्थावर-सूत्र

३२६—तिविहा तसा पण्णत्ता, त जहा—तेउकाइया, वाउकाइया, उराला तसा पाणा। ३२७—तिविहा थावरा पण्णत्ता, त जहा—पुढविकाइया, आउकाइया, वणस्सइकाइया।

त्रसजीव तीन प्रकार के कहे गये हैं तेजस्कायिक, वायुकायिक और उदार (स्थूल) त्रसप्राणी

(द्वीन्द्रियादि) (३२६)। स्थावर जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं—पृथिवीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक (३२७)।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे तेजस्कायिक और वायुकायिक को गति की अपेक्षा त्रस कहा गया है। पर उनके स्थावर नामकर्म का उदय है अत वे वास्तव मे स्थावर ही है।

अच्छेद्य आदि सूत्र

३२८—तओ अच्छेज्जा पण्णत्ता, त जहा—समए, पदेसे, परमाणू। ३२९—एवमभेज्जा अडज्झा अगिज्झा अणड्ढा अमज्झा अपएसा [तओ अभेज्जा पण्णत्ता, त जहा—समए, पदेसे, परमाणू। ३३०—तओ अणज्झा पण्णत्ता, त जहा—समए, पदेसे, परमाणू। ३३१—तओ अगिज्झा पण्णत्ता, त जहा—समए, पदेसे, परमाणू। ३३२—तओ अणड्ढा पण्णत्ता, त जहा—समए पदेसे, परमाणू। ३३३—तओ अमज्झा पण्णत्ता, त जहा—समए, पदेसे, परमाणू। ३३४—तओ अपएसा पण्णत्ता, त जहा—समए, पदेसे, परमाणू]। ३३५—तओ अविभाइमा पण्णत्ता, त जहा—समए, पदेसे, परमाणू।

तीन अच्छेद्य (छेदन करने के अयोग्य) कहे गये हैं—समय (काल का सबसे छोटा भाग) प्रदेश (आकाश आदि द्रव्यो का सबसे छोटा भाग) और परमाणु (पुद्गल का सबसे छोटा भाग) (३२८)। इसी प्रकार अभेद्य, अदाह्य, अग्राह्य, अनध, अमध्य, और अप्रदेशी। यथा-तीन अभेद्य (भेदन करने के अयोग्य) कहे गये हैं—समय प्रदेश और परमाणु (३२९)। तीन अदाह्य (दाह करने के अयोग्य) कहे गये हैं—समय, प्रदेश और परमाण (३३०)। तीन अग्राह्य (ग्रहण करने के अयोग्य) कहे गये हैं—समय, प्रदेश और परमाणु (३३१)। तीन अनध (अध भाग मे रहित) कहे गये हैं—समय, प्रदेश और परमाणु (३३२)। तीन अमध्य (मध्य भाग से रहित) कहे गये है—समय, प्रदेश और परमाणु (३३३)। तीन अप्रदेशी (प्रदेशों से रहित) कहे गये ह—समय, प्रदेश और परमाणु (३३४)। तीन अविभाज्य (विभाजन के अयोग्य) कहे गये हैं—समय, प्रदेश और परमाणु (३३५)।

दु ख-सूत्र

३३६—अज्जोति ! समणे भगव महावीरे गोतमादी समणे निग्गथे आमतेत्ता एव वयासी—किंभया पाणा समणाउसो ?

गोतमादी समणा णिग्गथा समण भगव महावीर उवसकमति, उवसकमित्ता वदति णमसति, वदित्ता णमसित्ता एव वयासी—णो खलु वय देवाणुप्पिया ! एयमट्ठ जाणामो वा पासामो वा। त जदि ण देवाणुप्पिया ! एयमट्ठ णो गिलायति परिकहित्तए, तमिच्छामो ण देवाणुप्पियाण अतिए एयमट्ठ जाणित्तए।

अज्जोति ! समणे भगव महावीरे गोतमादी समणे निग्गथे आमतेत्ता एव वयासी—दुक्खभया पाणा समणाउसो !

से ण भते ! दुक्खे केण कडे ?
जीवेण कडे पमादेण।
से ण भते ! दुक्खे कह वेइज्जति ?
अप्पमाएण।

आर्यो ! श्रमण भगवान महावीर ने गौतम आदि श्रमण निग्रन्थो को आमन्त्रित कर कहा—
'आयुष्मन्त श्रमणो ! जीव किससे भय खाते हैं ?'

गौतम आदि श्रमण निग्रन्थ भगवान् महावीर के समीप आये, समीप आकर वन्दन नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार कर इस प्रकार बोले—

देवानुप्रिय ! हम इस अर्थ को नही जान रहे हैं, नही देख रहे हैं। यदि देवानुप्रिय को इस अर्थ का परिकथन करने मे कष्ट न हो, तो हम आप देवानुप्रिय से इसे जानने की इच्छा करते है।'

'आर्यो !' श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम आदि श्रमण निग्रन्थो को सबोधित करके कहा—
'आयुष्मन्त श्रमणो ! जीव दुख से भय खाते है।'

प्रश्न—तो भगवन् ! दुख किसके द्वारा उत्पन्न किया गया है ?
उत्तर—जीवों के द्वारा, अपने प्रमाद[1] से उत्पन्न किया गया है।
प्रश्न—तो भगवन् ! दुखो का वेदन (क्षय) कैसे किया जाता है ?
उत्तर—जीवो के द्वारा, अपने ही अप्रमाद से किया जाता है।

३३७—अण्णउत्थिया ण भते ! एव आइक्खति एव भासति एव पण्णवेंति एव परूवेंति कहण्ण समणाण णिग्गथाण किरिया कज्जति ?

तत्थ जा सा कडा कज्जइ, णो त पुच्छति। तत्थ जा सा कडा णो कज्जति, णो त पुच्छति। तत्थ जा सा अकडा णो कज्जति, णो त पुच्छति। तत्थ जा सा अकडा कज्जति, णो त पुच्छति। से एव वत्तव्व सिया ?

अकिच्च दुक्ख, अफुस दुक्ख, अकज्जमाणकड दुक्ख। अकट्टु अकट्टु पाणा भूया जीवा सत्ता वेयण वेदेंतित्ति वत्तव्व।

जे ते एवमाहसु, ते मिच्छा एवमाहसु। अह पुण एवमाइक्खामि एव भासामि एव पण्णवेमि एव परूवेमि—किच्च दुक्ख, फुस दुक्ख, कज्जमाणकड दुक्ख। कट्टु-कट्टु पाणा भूया जीवा सत्ता वेयण वेयतित्ति वत्तव्वय सिया।

भदन्त ! कुछ अन्य यूथिक (दूसरे मत वाले) ऐसा आख्यान करते हैं, ऐसा भाषण करते हैं, ऐसा प्रज्ञापन करते हैं, ऐसा प्ररूपण करते हैं कि जो क्रिया की जाती है, उसके विषय मे श्रमण निग्रन्थो का क्या अभिमत है ? उनमे जो कृत क्रिया की जाती है, वे उसे नही पूछते हैं। उनमे जो कृत क्रिया नही की जाती है, वे उसे भी नहीं पूछते हैं। उनमे जो अकृत क्रिया नही की जाती है, वे उसे भी नही पूछते हैं। किन्तु जो अकृत क्रिया की जाती है, वे उसे पूछते हैं। उनका वक्तव्य इस प्रकार है—

१ दुखरूप कर्म (क्रिया) अकृत्य है (आत्मा के द्वारा नही किया जाता)।
२ दुख अस्पृश्य है (आत्मा से उसका स्पर्श नहीं होता)।
३ दुख अक्रियमाण कृत है (वह आत्मा के द्वारा नही किये जाने पर होता है।)

---

१ प्रमाद का अर्थ यहां आलस्य नही किन्तु अज्ञान, सशय, मिथ्याज्ञान, राग, द्वेष, मतिभ्रम, धर्म का अनाचरण करना और योगों की अशुभ प्रवृत्ति है।—संस्कृतटीका

उसे विना किये ही प्राण, भूत, जीव, सत्त्व वेदना का वेदन करते हैं।)

उत्तर—आयुष्मन्त श्रमणो! जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते है। किन्तु मैं ऐसा आख्यान करता हू, भाषण करता हू, प्रज्ञापन करता हू और प्ररूपण करता हू कि—

१ दु ख कृत्य है—(आत्मा के द्वारा उपार्जित किया जाता है।)

२ दु ख स्पृश्य है—(आत्मा से उसका स्पर्श होता है।)

३ दु ख क्रियमाण कृत है—(वह आत्मा के द्वारा किये जाने पर होता है।) उसे करके ही प्राण, भूत, जीव, सत्त्व उसकी वेदना का वेदन करते है। ऐसा मेरा वक्तव्य है।

विवेचन—आगम-साहित्य मे अन्य दार्शनिको या मत-मतान्तरो का उल्लेख 'अन्ययूथिक' या 'अन्यतीर्थिक' शब्द के द्वारा किया गया है। 'यूथिक' शब्द का अर्थ 'समुदाय वाला' और 'तीर्थिक' शब्द का अर्थ 'सम्प्रदाय वाला' है। यद्यपि प्रस्तुत सूत्र मे किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय का नाम-निर्देश नही है, तथापि बौद्ध-साहित्य से ज्ञात होता है कि जिस 'अकृततावाद' या 'अहेतुवाद' का निरूपण पूर्वपक्ष के रूप मे किया गया है, उसके प्रवर्तक या समर्थक प्रक्रुध कात्यायन (पकुधकच्चायण) थे। उनका मन्तव्य था कि प्राणी जो भी सुख दु ख, या अदु ख-असुख का अनुभव करता है वह सब विना हेतु के या विना कारण के ही करता है। मनुष्य जो जीवहिंसा, मिथ्या-भाषण, पर-धन हरण, पर-दारा-सेवन आदि अनैतिक कार्य करता है, वह सब विना हेतु या कारण के ही करता है। उनके इस मन्तव्य के विषय मे किसी शिष्य ने भगवान् महावीर से पूछा—भगवन्! दु ख रूप क्रिया या कर्म क्या अहेतुक या अकारण ही होता है? इसके उत्तर मे भगवान् महावीर ने कहा—सुख-दु ख रूप कोई भी कार्य अहेतुक या अकारण नही होता। जो अकारणक मानते है, वे मिथ्या-दृष्टि हैं और उनका कथन मिथ्या है। आत्मा स्वय कृत या उपार्जित एव क्रियमाण कर्मों का कर्ता है और उनके सुख-दु ख रूप फल का भोक्ता है। सभी प्राणी, भूत, सत्त्व या जीव अपने किये हुए कर्मों का फल भोगते हैं। इस प्रकार भगवान् महावीर ने प्रक्रुध कात्यायन के मत का इस सूत्र मे उल्लेख कर और उसका खण्डन करके अपना मन्तव्य प्रस्तुत किया है।

॥ तृतीय स्थान का द्वितीय उद्देश समाप्त ॥

तृतीय स्थान

तृतीय उद्देश

आलोचना-सूत्र

३३८—तिहिं ठाणेहिं मायी माय कट्टु णो आलोएज्जा, णो पडिक्कमेज्जा, णो णिंदेज्जा, णो गरिहेज्जा, णो विउट्टेज्जा, णो विसोहेज्जा, णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, णो अहारिहं पायच्छित्त तवोकम्म पडिवज्जेज्जा, त जहा—अकरिसु वाह, करेमि वाह, करिस्सामि वाह।

तीन कारणो से मायावी माया करके भी उसकी आलोचना नही करता, प्रतिक्रमण नही करता, आत्मसाक्षी से निन्दा नही करता, गुरुसाक्षी से गर्हा नही करता, व्यावर्तन (उस सम्बन्धी अध्यवसाय को बदलना) नही करता, उसकी शुद्धि नही करता, उसे पुन नही करने के लिए अभ्युद्यत नही होता और यथायोग्य प्रायश्चित एव तप कर्म अगीकार नही करता —

१ मैने अकरणीय किया है। (अब कैसे उसकी निन्दादि करू ?)
२ मैं अकरणीय कर रहा हू। (जब वर्तमान मे भी कर रहा हूं तो कैसे उसकी निंदा करू ?)
३ मैं अकरणीय करूगा। (आगे भी करूगा तो फिर कैसे निन्दा करू ?)

३३९—तिहिं ठाणेहिं मायी माय कट्टु णो आलोएज्जा, णो पडिक्कमेज्जा, णो णिंदेज्जा, णो गरिहेज्जा, णो विउट्टेज्जा, णो विसोहेज्जा, णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, णो अहारिहं पायच्छित्त तवोकम्म पडिवज्जेज्जा, त जहा—अकित्ती वा मे सिया, अवण्णे वा मे सिया, अविणए वा मे सिया।

तीन कारणो से मायावी माया करके भी उसकी आलोचना नही करता, प्रतिक्रमण नही करता, निन्दा नही करता, गर्हा नही करता, व्यावर्तन नही करता, उसकी शुद्धि नही करता, उसे पुन नहीं करने के लिए अभ्युद्यत नही होता और यथायोग्य प्रायश्चित्त एव तप कर्म अगीकार नही करता—

१ मेरी अकीर्त्ति होगी।
२ मेरा अवर्णवाद होगा।
३ दूसरो के द्वारा मेरा अविनय होगा।

३४०—तिहिं ठाणेहिं मायी माय कट्टु णो आलोएज्जा, [णो पडिक्कमेज्जा, णो णिंदेज्जा, णो गरिहेज्जा, णो विउट्टेज्जा, णो विसोहेज्जा, णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, णो अहारिहं पायच्छित्त तवोकम्म] पडिवज्जेज्जा, त जहा—कित्ती वा मे परिहाइस्सति, जसे वा मे परिहाइस्सति पूयासक्कारे वा मे परिहाइस्सति।

तीन कारणो से मायावी माया करके भी उसकी आलोचना नही करता, (प्रतिक्रमण नही करता, निन्दा नही करता, गर्हा नही करता, व्यावर्तन नही करता, उसकी शुद्धि नहीं करता, उसे

पुन नही करने के लिए अभ्युद्यत नही होता और यथायोग्य प्रायश्चित्त एव तप कर्म अगीकार नही करता—

१ मेरी कीर्ति (एक दिशा मे प्रसिद्धि) कम होगी।
२ मेरा यश (सब दिशाओ मे व्याप्त प्रसिद्धि) कम होगा।
३ मेरा पूजा-सत्कार कम होगा।

३४१—तिहि ठाणेहि मायी माय कट्टु आलोएज्जा, पडिक्कमेज्जा, [णिदेज्जा, गरिहेज्जा, विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिह पायच्छित्त तवोकम्म] पडिवज्जेज्जा, त जहा—माइस्स ण अस्सि लोगे गरहिए भवति, उववाए गरहिए भवति, आयाती गरहिया भवति।

तीन कारणो से मायावी माया करके उसकी आलोचना करता है, प्रतिक्रमण करता है, (निन्दा करता है, गर्हा करता है, व्यावर्तन करता है, उसकी शुद्धि करता है, उसे पुन नही करने के लिए अभ्युद्यत होता है और यथायोग्य प्रायश्चित्त एव तप कर्म) अगीकार करता है—

१ मायावी का यह लोक (वर्तमान भव) गर्हित हो जाता है।
२ मायावी का उपपात (अग्रिम भव) गर्हित हो जाता है।
३ मायावी की आजाति (अग्रिम भव से आगे का भव) गर्हित हो जाता है।

३४२—तिहि ठाणेहि मायी माय कट्टु आलोएज्जा, [पडिक्कमेज्जा णिदेज्जा, गरिहेज्जा, विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिह पायच्छित्त तवोकम्म] पडिवज्जेज्जा, त जहा—अमाइस्स ण अस्सि लोगे पसत्थे भवति, उववाते पसत्थे भवति, आयाती पसत्था भवति।

तीन कारणो से मायावी माया करके उसकी आलोचना करता है, (प्रतिक्रमण करता है, निन्दा करता है, गर्हा करता है, व्यावर्तन करता है, उसकी शुद्धि करता है, उसे पुन नही करने के लिए अभ्युद्यत होता है और यथायोग्य प्रायश्चित्त एव तप कर्म) अगीकार करता है—

१ अमायावी (मायाचार नही करने वाले) का यह लोक प्रशस्त होता है।
२ अमायावी का उपपात प्रशस्त होता है।
३ अमायावी की आजाति प्रशस्त होती है।

३४३—तिहि ठाणेहि मायी माय कट्टु आलोएज्जा, [पडिक्कमेज्जा, णिदेज्जा गरिहेज्जा, विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिह पायच्छित्त तवोकम्म] पडिवज्जेज्जा, त जहा—णाणट्ठयाए, दसणट्ठयाए, चरित्तट्ठयाए।

तीन कारणो से मायावी माया करके उसकी आलोचना करता है, (प्रतिक्रमण करता है, निन्दा करता है, गर्हा करता है, व्यावर्तन करता है, उसकी शुद्धि करता है, उसे पुन नही करने के लिए अभ्युद्यत होता है और यथायोग्य प्रायश्चित्त एव तप कर्म) अगीकार करता है—

१ ज्ञान की प्राप्ति के लिए।
२ दर्शन की प्राप्ति के लिए।
३ चारित्र की प्राप्ति के लिए।

श्रुतधर सूत्र

३४४—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुत्तधरे, अत्थधरे, तदुभयधरे ।

श्रुतधर पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—सूत्रधर, अर्थधर और तदुभयधर (सूत्र और अर्थ दोनो के धारक) (३४४) ।

उपधि-सूत्र

३४५—कप्पति णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा तओ वत्थाइ धारित्तए वा परिहरित्तए वा, त जहा—जगिए, भगिए, खोमिए ।

निर्ग्रन्थ साधुओ को तथा निग्रन्थिनी साध्वियो को तीन प्रकार के वस्त्र रखना और पहिनना कल्पता है—जाङ्गिक (ऊनी) भाङ्गिक (सन-निर्मित) और क्षौमिक (कपास-रूई निर्मित) (३४५) ।

३४६—कप्पति णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा तओ पायाइ धारित्तए वा परिहरित्तए वा, त जहा—लाउयपादे वा, दारुपादे वा, मट्टियापादे वा ।

निग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियो को तीन प्रकार के पात्र धरना और उपयोग करना कल्पता है—अलाबु- (तुम्बा) पात्र, दारु-(काष्ठ-)पात्र और मृत्तिका-(मिट्टी का)पात्र (३४६) ।

३४७—तिहि ठाणेहि वत्थ धरेज्जा, त जहा—हिरिपत्तिय, दुगु छापत्तिय परीसहवत्तिय ।

निग्रन्थ और निग्रन्थिनिया तीन कारणो से वस्त्र धारण कर सकती हैं—

१ ह्रीप्रत्यय से (लज्जा-निवारण के लिए) ।
२ जुगुप्साप्रत्यय से (घृणा निवारण के लिए) ।
६ परीषहप्रत्यय से (शीतादि परीषह के निवारण के लिए) (३४७) ।

आत्म-रक्ष सूत्र

तओ आयरक्खा पण्णत्ता, त जहा—धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएत्ता भवति, तुसिणीए वा सिया, उट्ठित्ता वा आताए एगतमतमवक्कमेज्जा ।

तीन प्रकार के आत्मरक्षक कहे गये हैं—

१ अकरणीय कार्य मे प्रवृत्त व्यक्ति को धार्मिक प्रेरणा से प्रेरित करने वाला ।
२ प्रेरणा न देने की स्थिति मे मौन-धारण करने वाला ।
३ मौन और उपेक्षा न करने की स्थिति मे वहाँ से उठकर एकान्त मे चला जाने वाला (३४८) ।

विकट-दत्ति सूत्र

३४९—णिग्गथस्स ण गिलायमाणस्स कप्पति तओ वियडदत्तीओ पडिग्गाहित्तते, त जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा ।

ग्लान (रुग्ण) निर्ग्रन्थ साधु को तीन प्रकार की दत्तिया लेनी कल्पती है—

१ उत्कृष्ट दत्ति—पर्याप्त जल या कलमी चावल की काजी ।
२ मध्यम दत्ति—अनेक वार किन्तु अपर्याप्त जल और साठी चावल की काजी ।
३ जघन्य दत्ति—एक वार पी सके उतना जल, तृण धान्य की काजी या उष्ण जल (३४६) ।

विवेचन—धारा टूट विना एक वार मे जितना जल आदि मिले, उसे एक दत्ति कहते हैं। जितने जल मे सारा दिन निकल जाय, उतना जल लेने को उत्कृष्ट दत्ति कहते हैं। उससे कम लेना मध्यम दत्ति है। तथा एक वार ही प्यास बुझ सके, इतना जल लेना जघन्य दत्ति है।

विसभोग सूत्र

३५०—तिहिं ठाणेहिं समणे णिग्गथे साहम्मिय सभोगिय विसभोगिय करेमाणे णातिक्कमति, त जहा—सय वा दट्ठु, सड्ढयस्स वा णिसम्म, तच्च मोस ग्राउट्टति, चउत्थ णो आउट्टति ।

तीन कारणो से श्रमण निर्ग्रन्थ अपने साधर्मिक, साम्भोगिक साधु को विसम्भोगिक करता हुआ (भगवान् की) आज्ञा का अतिक्रमण नही करता है—

१ स्वय किसी को सामाचारी के प्रतिकूल आचरण करता देखकर ।
२ श्राद्ध (विश्राम पात्र साधु) से सुनकर ।
३ तीन वार मृषा (अनाचार) का प्रायश्चित्त देने के बाद चौथी वार प्रायश्चित्त विहित नहीं होने के कारण ।

विवेचन—जिन साधुओ का परस्पर आहारादि के आदान प्रदान का व्यवहार होता है, उन्हे साम्भोगिक कहा जाता है। कोई साम्भोगिक साधु यदि साधु-सामाचारी के विरुद्ध आचरण करता है, उसके उस कार्य को सघ का नेता साधु स्वय देखले, या किसी विश्वस्त साधु से सुनले, तथा उसको उसी अपराध की शुद्धि के लिए तीन वार प्रायश्चित्त भी दिया जा चुका हो, फिर भी यदि वह चौथी वार उसी अपराध को करे तो सघ का नेता आचार्य आदि अपनी साम्भोगिक साधु-मण्डली से पृथक् कर सकता है। और ऐसा करते हुए वह भगवद् आज्ञा का उल्लघन नही करता, प्रत्युत पालन ही करता है। पृथक् किये गये साधु को विसम्भोगिक कहते हैं।

अनुज्ञादि-सूत्र

३५१—तिविधा अणुण्णा पण्णत्ता, त जहा—आयरियत्ताए, उवज्झायत्ताए, गणित्ताए । ३५२—तिविधा समणुण्णा पण्णत्ता, त जहा—आयरियत्ताए, उवज्झायत्ताए, गणित्ताए । ३५३—एव उवसपया एव विजहणा [तिविधा उवसपया पण्णत्ता, त जहा—आयरियत्ताए, उवज्झायत्ताए, गणित्ताए । ३५४—तिविधा विजहणा पण्णत्ता, त जहा—आयरियत्ताए, उवज्झायत्ताए, गणित्ताए] ।

अनुज्ञा तीन प्रकार की कही गई है—आचार्यत्व की, उपाध्यायत्व की और गणित्व की (३५१) । समनुज्ञा तीन प्रकार की कही गई है—आचार्यत्व की, उपाध्यायत्व की और गणित्व की (३५२) । (उपसम्पदा तीन प्रकार की कही गई है—आचार्यत्व की, उपाध्यायत्व की और गणित्व की (३५३) । विहान (परित्याग) तीन प्रकार का कहा गया है—आचार्यत्व का, उपाध्यायत्व का और गणित्व का (३५४) ।

विवेचन—भगवान् महावीर के श्रमण-संघ में आचार्य, उपाध्याय और गणी ये तीन महत्त्वपूर्ण पद माने गये हैं। जो ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार तपाचार और वीर्याचार इन पांच प्रकार के आचारों का स्वयं आचरण करते हैं, तथा अपने अधीनस्थ साधुओं से इनका आचरण कराते हैं, जो आगम सूत्रार्थ के वेत्ता और गच्छ के मेढीभूत होते हैं तथा दीक्षा शिक्षा देने का जिन्हें अधिकार होता है, उन्हें आचार्य कहते हैं। जो आगम-सूत्र की शिष्यों को वाचना प्रदान करते हैं, उनका अर्थ पढ़ाते हैं, ऐसे विद्यागुरु साधु को उपाध्याय कहते हैं। गण-नायक को गणी कहते हैं। प्राचीन परम्परा के अनुसार ये तीनों पद या तो आचार्यों के द्वारा दिये जाते थे, अथवा स्थविरों के अनुमोदन (अधिकार-प्रदान) से प्राप्त होते थे। यह अनुमोदन सामान्य और विशिष्ट दोनों प्रकार का होता था। सामान्य अनुमोदन को 'अनुज्ञा' और विशिष्ट अनुमोदन को समनुज्ञा कहते हैं। उक्त पद प्राप्त करने वाला व्यक्ति यदि उस पद के योग्य सम्पूर्ण गुणों से युक्त हो तो उसे दिये जाने वाले अधिकार को 'समनुज्ञा' कहा जाता है और यदि वह समग्र गुणों से युक्त नहीं है, तब उसे दिये जाने वाले अधिकार को 'अनुज्ञा' कहा जाता है। किसी साधु के ज्ञान दर्शन-चारित्र की विशेष प्राप्ति के लिए अपने गण के आचार्य, उपाध्याय, या गणी छोड़कर दूसरे गण के आचार्य, उपाध्याय या गणी के पास जाकर उसका शिष्यत्व स्वीकार करने को 'उपसम्पदा' कहते हैं। किसी प्रयोजन विशेष के उपस्थित होने पर आचार्य, उपाध्याय या गणी के अपने पद के त्याग करने को 'विहान' कहते हैं। (देखो ठाणं, पृ २७५)।

वचन सूत्र

३५५—तिविहे वयणे पण्णत्ते, त जहा—तव्वयणे, तदण्णवयणे, णोअवयणे। ३५६—तिविहे अवयणे पण्णत्ते, त जहा—णोतव्वयणे, णोतदण्णवयणे, अवयणे।

वचन तीन प्रकार का कहा गया है—

१ तद्वचन—विवक्षित वस्तु का कथन अथवा यथार्थ नाम, जैसे ज्वलन (अग्नि)।
२ तदन्यवचन—विवक्षित वस्तु से भिन्न वस्तु का कथन अथवा व्युत्पत्तिनिमित्त से भिन्न अर्थ वाला रूढ शब्द।
३ नो-अवचन—सार-हीन वचन-व्यापार (३५५)।

अवचन तीन प्रकार का कहा गया है—

१ नो तद्वचन—विवक्षित वस्तु का अकथन, जैसे घट की अपेक्षा से पट कहना।
२ नो-तदन्यवचन—विवक्षित वस्तु का कथन जैसे घट को घट कहना।
३ अवचन—वचन-निवृत्ति (३५६)।

मन-सूत्र

३५७—तिविहे मणे पण्णत्ते, त जहा—तम्मणे, तयण्णमणे, णोअमणे। ३५८—तिविहे अमणे पण्णत्ते, त जहा—णोतम्मणे, णोतयण्णमणे, अमणे।

मन तीन प्रकार का कहा गया है—

१ तन्मन—लक्ष्य में लगा हुआ मन।

२ तदन्यमन--अलक्ष्य मे लगा हुआ मन।

३ ना-अमन--मन का लक्ष्य-हीन व्यापार (३५७)।

अमन तीन प्रकार का कहा गया है—

१ नो तमन—लक्ष्य मे नही लगा हुआ मन।

२ नो-तदन्यमन--अलक्ष्य मे नही लगा अर्थात् लक्ष्य मे लगा हुआ मन।

३ अमन--मनकी अप्रवृत्ति (३५८)।

वृष्टि सूत्र

३५६—तिहि ठाणेहि अप्पवुट्ठीकाए सिया, त जहा—

१ तसि च ण देससि वा पदेससि वा णो बहवे उदगजोणिया जीवा य पोग्गला य उदगत्ताते वक्कमति विउक्कमति चयति उववज्जति।

२ देवा णागा जक्खा भूता णो सम्ममाराहिता भवति, तत्थ समुट्ठिय उदगपोग्गल परिणत वासितुकाम अण्ण देस साहरति।

३ अब्भवद्दलग च ण समुट्ठित परिणत वासितुकाम वाउकाए विधुणति।

इच्चेतेहि तिहि ठाणेहि अप्पवुट्ठिगाए सिया।

तीन कारणा से अल्पवृष्टि होती है—

१ किसी देश या प्रदेश मे (क्षेत्र स्वभाव मे) पर्याप्त मात्रा मे उदकयोनिक जीवा और पुदगलो के उदकरूप मे उत्पन्न या च्यवन न करने म।

२ देवो, नागा, यक्षो या भूतो का सम्यक् प्रकार मे आराधन न करने से, उस देश मे समुत्थित, वर्षा मे परिणत तथा बरसने ही वाले उदक-पुदगलो (मेघा) का उनके द्वारा अन्य देश मे सहरण कर लेने से।

३ समुत्थित, वर्षा मे परिणत तथा बरसने ही वाले बादला को प्रचड वायु नष्ट कर देती है।

इन तीन कारणो मे अल्पवृष्टि होती है (३५६)।

३६०—तिहि ठाणेहि महावुट्ठीकाए सिया, त जहा—

१ तसि च ण देससि वा पदेससि वा बहवे उदगजोणिया जीवा य पोग्गला य उदगत्ताए वक्कमति विउक्कमति चयति उववज्जति।

२ देवा णागा जक्खा भूता सम्ममाराहिता भवति, अण्णत्थ समुट्ठित उदगपोग्गल परिणय वासिउकाम त देस साहरति।

३ अब्भवद्दलग च ण समुट्ठित परिणय वासितुकाम णो वाउआए विधुणति।

इच्चेतेहि तिहि ठाणेहि महावुट्ठिकाए सिया।

तीन कारणो से महावृष्टि होती है—

१ किसी देश या प्रदेश मे (क्षेत्र स्वभाव से) पर्याप्त मात्रा म उदकयोनिक जीवो और पुद्गलो के उदक रूप मे उत्पन्न या च्यवन होने से।

२ देव, नाग, यक्ष या भूत सम्यक् प्रकार से आराधित होने पर अन्यत्र समुत्थित, वर्षा म परिणत तथा बरसने ही वाले उदक-पुद्गलो का उनके द्वारा उस देश मे संहरण होने से।

३ समुत्थित, वर्षा मे परिणत तथा बरसने ही वाले बादलो के वायु-द्वारा नष्ट न होने से। इन तीन कारणो से महावृष्टि होती है (३६०)।

अधुनोपपन्न-देव सूत्र

३६१—तिहि ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए, तं जहा—

१ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, से णं माणुस्सए कामभोगे णो आढाति, णो परियाणाति, णो अट्ठं बंधति, णो णियाणं पगरेति, णो ठिइपकप्पं पगरेति।

२ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे तस्स णं माणुस्सए पेम्मे वोच्छिण्णे दिव्वे संकते भवति।

३ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते [गिद्धे गढिते] अज्झोववण्णे, तस्स णं एवं भवति—इण्हिं गच्छं मुहुत्तं गच्छं, तेणं कालेणमप्पाउया मणुस्सा कालधम्मुणा संजुत्ता भवति।

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए।

देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्यलोक मे आना चाहता है, किन्तु तीन कारणो से आ नही सकता—

१ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव दिव्य काम भोगो मे मूर्छित, गृद्ध, बद्ध एव आसक्त होकर मानुषिक काम-भोगो को न आदर देता है, न उन्हे अच्छा जानता है, न उनसे प्रयोजन रखता है, न निदान (उन्हे पाने का संकल्प) करता है और न स्थिति प्रकल्प (उनके बीच मे रहने की इच्छा) करता है।

२ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य काम भोगो म मूर्च्छित, गृद्ध, बद्ध एव आसक्त देव का मानुषिक-प्रेम व्युच्छिन्न हो जाता है, तथा उसमे दिव्य प्रेम संक्रान्त हो जाता है।

३ दिव्यलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य काम भोगो मे मूर्च्छित, (गृद्ध, बद्ध) तथा आसक्त-देव सोचता है—मैं मनुष्य लोक मे अभी नही थोडी देर मे, एक मुहूर्त के बाद जाऊगा, इस प्रकार उसके सोचते रहने के समय मे ही अल्प आयु के धारक मनुष्य (जिनके लिए वह जाना चाहता था) कालधर्म से संयुक्त हो जाते है (मर जाते हैं)।

इन तीन कारणो से देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्यलोक मे आना चाहता है, किन्तु आ नही पाता।

३६२—तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुस लोग हव्वमागच्छित्तए, सचाएइ हव्वमागच्छित्तए—

१ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिते अगिद्धे अगढिते अणज्झोववण्णे, तस्स णमेव भवति—अत्थि ण मम माणुस्सए भवे आयरिएति वा उवज्झाएति वा पवत्तीति वा थेरेति वा गणीति वा गणधरेति वा गणावच्छेदेति वा, जेसि पभावेण मए इमा एतारूवा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवजुती दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागते, त गच्छामि ण ते भगवते वदामि णमस्सामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगल देवय चेइय पज्जुवासामि।

२ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिए [अगिद्धे अगढिते] अणज्झोववण्णे, तस्स ण एव भवति—एस ण माणुस्सए भवे णाणीति वा तवस्सीति वा अतिदुक्कर-दुक्करकारगे, त गच्छामि ण ते भगवते वदामि णमसामि [सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगल देवय चेइय] पज्जुवासामि।

३ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु [दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिए अगिद्धे अगढिते] अणज्झोववण्णे, तस्स णमेव भवति—अत्थि ण मम माणुस्सए भवे माताति वा [पियाति वा भायाति वा भगिणीति वा भज्जाति वा पुत्ताति वा धूयाति वा] सुण्हाति वा, त गच्छामि ण तेसिमतिय पाउब्भवामि, पासतु ता मे इम एतारूव दिव्व देविड्ढि दिव्व देवजुति दिव्व देवाणुभाव लद्ध पत्त अभिसमण्णागय।

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुस लोग हव्वमागच्छित्तए, सचाएति हव्वमागच्छित्तए॥

तीन कारणो से देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्यलोक मे आना चाहता है और आने मे समर्थ भी होता है—

१ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य काम-भोगो मे अमूच्छित, अगृद्ध, अबद्ध एव अनासक्त देव सोचता है—मनुष्यलोक मे मेरे मनुष्य भव के आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी, गणधर और गणावच्छेदक हैं, जिनके प्रभाव से मुझे यह इस प्रकार की दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देव-द्युति, और दिव्य देवानुभाव मिला है, प्राप्त हुआ है, अभिसमन्वागत (भोग्य अवस्था को प्राप्त) हुआ है। अत मैं जाऊ और उन भगवन्तो का वन्दन करू, नमस्कार करू, उनका सत्कार करू, सम्मान करू। तथा उन कल्याणकर, मगलमय, देव और चैत्य स्वरूप की पर्युपासना करू।

२ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य काम-भोगो मे अमूच्छित (अगृद्ध, अबद्ध) एव अनासक्त देव सोचता है कि—मनुष्य भव मे अनेक ज्ञानी, तपस्वी और अतिदुष्कर तपस्या करने वाले है। अत मैं जाऊ और उन भगवन्तो को वन्दन करू, नमस्कार करू (उनका सत्कार करू सम्मान करू। तथा उन कल्याणकर, मगलमय देवरूप तथा ज्ञानस्वरूप) भगवन्तो की पर्युपासना करू।

३ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न (दिव्य काम भोगो मे अमूच्छित, अगृद्ध, अबद्ध) एव अना-

तीन कारणों से महावृष्टि होती है—

१ किसी देश या प्रदेश मे (क्षेत्र स्वभाव से) पर्याप्त मात्रा मे उदकयोनिक जीवों और पुद्गलों के उदक रूप मे उत्पन्न या च्यवन होने से।

२ देव, नाग, यक्ष या भूत सम्यक् प्रकार से आराधित होने पर अन्यत्र समुत्थित, वर्षा मे परिणत तथा बरसने ही वाले उदक-पुद्गलों का उनके द्वारा उस देश मे संहरण होने से।

३ समुत्थित, वर्षा मे परिणत तथा बरसने ही वाले बादलों के वायु-द्वारा नष्ट न होने से। इन तीन कारणों से महावृष्टि होती है (३६०)।

अधुनोपपन्न देव सूत्र

३६१—तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए, तं जहा—

१ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, से णं माणुस्सए कामभोगे णो आढाति, णो परियाणाति, णो अट्ठं बंधति, णो णियाणं पगरेति, णो ठिइपकप्पं पगरेति।

२ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, तस्स णं माणुस्सए पेम्मे वोच्छिण्णे दिव्वे संकंते भवति।

३ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते [गिद्धे गढिते] अज्झोववण्णे, तस्स णं एवं भवति—इण्हिं गच्छं मुहुत्तं गच्छं, तेणं कालेणमप्पाउया मणुस्सा कालधम्मुणा संजुत्ता भवंति।

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए।

देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्यलोक मे आना चाहता है, किन्तु तीन कारणों से आ नहीं सकता—

१ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव दिव्य काम भोगों मे मूर्छित, गृद्ध, बद्ध एवं आसक्त होकर मानुषिक काम-भोगों को न आदर देता है, न उन्हें अच्छा जानता है, न उनसे प्रयोजन रखता है, न निदान (उन्हें पाने का संकल्प) करता है और न स्थिति-प्रकल्प (उनके बीच मे रहने की इच्छा) करता है।

२ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य काम-भोगों मे मूर्च्छित, गृद्ध, बद्ध एवं आसक्त देव का मानुषिक-प्रेम व्युच्छिन्न हो जाता है, तथा उसमे दिव्य प्रेम संक्रांत हो जाता है।

३ दिव्यलोक मे तत्काल उत्पन्न, दिव्य काम-भोगों मे मूर्च्छित (गृद्ध, बद्ध) तथा आसक्त देव सोचता है—मैं मनुष्य लोक मे अभी नहीं थोड़ी देर मे, एक मुहूर्त के बाद जाऊंगा, इस प्रकार उसके सोचते रहने के समय मे ही अल्प आयु के धारक मनुष्य (जिनके लिए वह जाना चाहता था) कालधर्म से संयुक्त हो जाते हैं (मर जाते हैं)।

इन तीन कारणों से देवलोक में तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्यलोक में आना चाहता है, किन्तु आ नहीं पाता।

३६२—तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, संचाएइ हव्वमागच्छित्तए—

१. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिते अगिद्धे अगढिते अणज्झोववण्णे, तस्स णमेवं भवति—अत्थि णं मम माणुस्सए भवे आयरिएति वा उवज्झाएति वा पवत्तीति वा थेरेति वा गणीति वा गणधरेति वा गणावच्छेदेति वा, जेसिं पभावेणं मए इमा एतारूवा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवजुती दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागते, तं गच्छामि णं ते भगवते वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि।

२. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिए [अगिद्धे अगढिते] अणज्झोववण्णे, तस्स णं एवं भवति—एस णं माणुस्सए भवे णाणीति वा तवस्सीति वा अतिदुक्करदुक्करकारगे, तं गच्छामि णं ते भगवते वंदामि णमंसामि [सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं] पज्जुवासामि।

३. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु [दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिए अगिद्धे अगढिते] अणज्झोववण्णे, तस्स णमेवं भवति—अत्थि णं मम माणुस्सए भवे माताति वा [पियाति वा भायाति वा भगिणीति वा भज्जाति वा पुत्ताति वा धूयाति वा] सुण्हाति वा, तं गच्छामि णं तेसिमंतियं पाउब्भवामि, पासंतु ता मे इमं एतारूवं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुतिं दिव्वं देवाणुभावं लद्धं पत्तं अभिसमण्णागयं।

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, संचाएति हव्वमागच्छित्तए॥

तीन कारणों से देवलोक में तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्यलोक में आना चाहता है और आने में समर्थ भी होता है—

१. देवलोक में तत्काल उत्पन्न, दिव्य काम-भोगों में अमूर्च्छित, अगृद्ध, अबद्ध एवं अनासक्त देव सोचता है—मनुष्यलोक में मेरे मनुष्य भव के आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी, गणधर और गणावच्छेदक हैं, जिनके प्रभाव से मुझे यह इस प्रकार की दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देव-द्युति, और दिव्य देवानुभाव मिला है, प्राप्त हुआ है, अभिसमन्वागत (भोग्य अवस्था को प्राप्त) हुआ है। अतः मैं जाऊं और उन भगवन्तों को वन्दन करूं, नमस्कार करूं, उनका सत्कार करूं, सन्मान करूं। तथा उन कल्याणकर, मंगलमय, देव और चैत्य स्वरूप की पर्युपासना करूं।

२. देवलोक में तत्काल उत्पन्न, दिव्य काम भोगों में अमूर्च्छित (अगृद्ध, अबद्ध) एवं अनासक्त देव सोचता है कि—मनुष्य भव में अनेक ज्ञानी, तपस्वी और अतिदुष्कर तपस्या करने वाले हैं। अतः मैं जाऊं और उन भगवन्तों को वन्दन करूं, नमस्कार करूं (उनका सत्कार करूं सन्मान करूं। तथा उन कल्याणकर, मंगलमय देवरूप तथा ज्ञानस्वरूप) भगवन्तों की पर्युपासना करूं।

३. देवलोक में तत्काल उत्पन्न (दिव्य काम भोगों में अमूर्च्छित, अगृद्ध, अबद्ध) एवं अना-

सक्त देव सोचता है—मेरे मनुष्य भव के माता, (पिता, भाई, बहिन, स्त्री, पुत्र, पुत्री) और पुत्र-वधू हैं, अत मैं उनके पास जाऊ और उनके सामने प्रकट होऊ, जिससे वे मेरी इस प्रकार की दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देव-द्युति और दिव्य देवानुभाव को—जो मुझे उपलब्ध हुई है, प्राप्त हुई है, अभि-समन्वागत हुई है, उसे देखें।

इन तीन कारणो से देवलोक मे तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्यलोक मे आना चाहता है और आने मे समर्थ भी होता है (३६२)।

विवेचन—आगम के अर्थ की वाचना देने वाले एव दीक्षागुरु को, तथा सघ के स्वामी को आचार्य कहते हैं। आगमसूत्रो की वाचना देने वाले को उपाध्याय कहते हैं। वैयावृत्य, तपस्या आदि मे साधुओ की नियुक्ति करने वाले को प्रवर्तक कहते है। सयम मे स्थिर करने वाले एव वृद्ध साधुओ को स्थविर कहते हैं। गण के नायक को गणी कहते हैं। तीर्थंकर के प्रमुख शिष्य गणधर कहलाते है। साध्वियो के विहार आदि की व्यवस्था करने वाले को भी गणधर कहते हैं। जो *आचार्य की अनुज्ञा लेकर गण के उपकार के लिए वस्त्र-पात्रादि के निमित्त कुछ साधुओ को साथ लेकर* गणसे अन्यत्र विहार करता है, उसे गणावच्छेदक कहते है।

देव मन स्थिति-सूत्र

३६३—तओ ठाणाइ देवे पीहेज्जा, त जहा—माणुस्सग भव, आरिए खेत्ते जम्म, सुकुलपच्चायाति ॥

देव तीन स्थानो की इच्छा करता है—मानुष भव की, आर्य क्षेत्र मे जन्म लेने की और सुकुल मे प्रत्याजाति (उत्पन्न होने) की (३६३)।

३६४—तिहि ठाणेहि देवे परितप्पेज्जा, त जहा—

१ अहो! ण मए सते बले सते वीरिए सते पुरिसक्कार परक्कमे खेमसि सुभिक्खसि आयरिय-उवज्झाएहि विज्जमाणेहि कल्लसरीरेण णो बहुए सुते अहीते।

२ अहो! ण मए इहलोगपडिबद्धेण परलोगपरमुहेण विसयतिसितेण णो दीहे सामण्णपरियाए अणुपालिते।

३ अहो! ण मए इड्ढि-रस साय गरुएण भोगाससगिद्धेण णो विसुद्धे चरित्ते फासिते।

इच्चेतेहि तिहि ठाणेहि देवे परितप्पेज्जा।

तीन कारणो से देव परितप्त होता है—

१ अहो! मैंने बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम, क्षेम सुभिक्ष, आचार्य और उपाध्याय की उपस्थिति तथा नीरोग शरीर के होते हुए भी श्रुत का अधिक अध्ययन नहीं किया।

२ अहो! मैंने इस लोक-सम्बन्धी विषयो मे प्रतिबद्ध होकर, तथा परलोक से पराङ्मुख होकर, दीर्घकाल तक श्रामण्य पर्याय का पालन नहीं किया।

३ अहो! मैंने ऋद्धि, रस एव साता गौरव से युक्त होकर, अप्राप्त भोगो की आकाक्षा कर और भोगो मे गृद्ध होकर विशुद्ध (निरतिचार-उत्कृष्ट) चारित्र का स्पर्श (पालन) नही किया।

इन तीन कारणो से देव परितप्त होता है (३६४)।

३६५—तिहिं ठाणेहिं देवे चइस्सामित्ति जाणइ, त जहा—विमाणाभरणाइ णिप्पभाइ पासित्ता, कप्परुक्खग मिलायमाण पासित्ता, अप्पणो तेयलेस्स परिहायमाणि जाणित्ता—इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं देवे चइस्सामित्ति जाणइ ।।

तीन कारणो से देव यह जान लेता है कि मैं च्युत होऊंगा—

१ विमान और आभूषणो को निष्प्रभ देखकर।
२ कल्पवृक्ष को मुझाया हुआ देखकर।
३ अपनी तेजोलेश्या (कान्ति) को क्षीण होती हुई देखकर।

इन तीन कारणो से देव यह जान लेता है कि मैं च्युत होऊगा (३६५)।

३६६—तिहिं ठाणेहिं देवे उव्वेगमागच्छेज्जा, त जहा—

१ अहो ! ण मए इमाओ एतारूवाओ दिव्वाओ देविड्ढीओ दिव्वाओ देवजुतीओ दिव्वाओ देवाणुभावाओ लद्धाओ पत्ताओ अभिसमण्णागताओ चइयव्व भविस्सति।

२ अहो ! ण मए माउओय पिउसुक्क त तदुभयससट्ठ तप्पढमयाए आहारो आहारेयव्वो भविस्सति।

३ अहो ! ण मए कलमल-जबालाए असुईए उव्वेयणियाए भीमाए गब्भवसहीए वसियव्व भविस्सइ।

इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं देवे उव्वेगमागच्छेज्जा ।।

तीन कारणो से देव उद्वेग को प्राप्त होता है—

१ अहो ! मुझे इस प्रकार की उपार्जित, प्राप्त, एव अभिसमन्वागत दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देव-द्युति और दिव्य देवानुभाव को छोडना पडेगा।

२ अहो ! मुझे सर्वप्रथम माता के ओज (रज) और पिता के शुक्र (वीर्य) का सम्मिश्रण रूप आहार लेना होगा।

३ अहो ! मुझे कलमल जम्बाल (कीचड) वाले अशुचि, उद्वेजनीय (उद्वेग उत्पन्न करने वाले) और भयानक गर्भाशय मे रहना होगा।

इन तीन कारणो से देव उद्वेग को प्राप्त होता है (३६६)।

विमान-सूत्र

तिसठिया विमाणा पण्णत्ता, त जहा—वट्टा, तसा, चउरसा।

१ तत्थ ण जे ते वट्टा विमाणा, ते ण पुक्खरकण्णियासठाणसठिया सव्वओ समता पागार-परिक्खित्ता एगदुवारा पण्णत्ता।

२ तत्थ ण जे ते तसा विमाणा, ते ण सिंघाडगसठाणसठिया दुहतोपागारपरिक्खित्ता एगतो वेइया-परिक्खित्ता तिदुवारा पण्णत्ता ।

३ तत्थ ण जे ते चउरसा विमाणा, ते ण अक्खाडगसठाणसठिया सव्वतो समता वेइया परिक्खित्ता चउदुवारा पण्णत्ता ।।

विमान तीन प्रकार के सस्थान (आकार) वाले कहे गये हैं—वृत्त, त्रिकोण और चतुष्कोण ।

१ जो विमान वृत्त होते हैं वे कमल की कर्णिका के आकार के गोलाकार होते हैं, सर्व दिशाओ और विदिशाओ मे प्राकार (परकोटा) से घिरे होते हैं, तथा वे एक द्वार वाले कहे गये हैं ।

२ जो विमान त्रिकोण होते हैं वे सिंघाडे के आकार के होते हैं, दो ओर से प्राकार से घिरे हुए तथा एक ओर से वेदिका से घिरे होते है तथा उनके तीन द्वार कहे गये हैं ।

३ जो विमान चतुष्कोण होते है वे अखाडे के आकार के होते है, सब दिशाओ और विदिशाओ मे वेदिकाओ से घिरे होते हैं, तथा उनके चार द्वार कहे गये हैं (३६७) ।

३६८—तिपतिट्ठिया विमाणा पण्णत्ता, त जहा—घणोदधिपतिट्ठिता, घणवातपइट्ठिता, ओवासतरपइट्ठिता ।।

विमान त्रिप्रतिष्ठित (तीन आधारो से अवस्थित) कहे गये है—घनोदधि प्रतिष्ठित, घनवात प्रतिष्ठित और अवकाशान्तर-(आकाश-) प्रतिष्ठित (३६८) ।

३६९—तिविधा विमाणा पण्णत्ता, त जहा—अवट्ठिता, वेउव्विता, पारिजाणिया ।।

विमान तीन प्रकार के कहे गये है—

१ अवस्थित—स्थायी निवास वाले ।
२ वैक्रिय—भोगादि के लिए बनाये गए ।
३ पारियानिक—मध्यलोक मे आने के लिए बनाए गए ।

दृष्टि सूत्र

३७०—तिविधा णेरइया पण्णत्ता, त जहा—सम्माद्दिट्ठी, मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ।
३७१—एव विगलिंदियवज्ज जाव वेमाणियाण ।।

नारकी जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्या (मिश्र) दृष्टि (३७०) । इसी प्रकार विकलेन्द्रियो को छोडकर सभी दण्डको मे तीनो प्रकार की दृष्टिवाले जीव जानना चाहिए (३७१) ।

दुर्गति सुगति-सूत्र

३७२—तओ दुग्गतीओ पण्णत्ताओ, त जहा—

— मणुयदुग्गती ।।

तीन दुर्गतियां कही गई हैं—नरकदुर्गति, तिर्यग्योनिक दुर्गति और मनुजदुर्गति (दीन-हीन दु:खी मनुष्यों की अपेक्षा से) (३७२)।

३७३—तम्रो सुगतीओ पण्णत्ताओ, त जहा—सिद्धसोगती, देवसोगती, मणुस्ससोगती।

तीन सुगतियां कही गई हैं—सिद्धसुगति, देवसुगत और मनुष्यसुगति (३७३)।

३७४—तओ दुग्गता पण्णत्ता, त जहा—णेरइयदुग्गता, तिरिक्खजोणियदुग्गता, मणुस्सदुग्गता।

दुर्गत (दुर्गति को प्राप्त जीव) तीन प्रकार के कहे गये हैं—नारकदुर्गत, तिर्यग्योनिकदुर्गत और मनुष्यदुर्गत (३७४)।

३७५—तम्रो सुगता पण्णत्ता, त जहा—सिद्धसोगता, देवसुगता, मणुस्ससुगता।

सुगत (सुगति को प्राप्त जीव) तीन प्रकार के कहे गये है—सिद्ध-सुगत, देव-सुगत और मनुष्य-सुगत (३७५)।

तप-पानक सूत्र

३७६—चउत्थभत्तियस्स ण भिक्खुस्स कप्पति तओ पाणगाइ पडिगाहित्तए, त जहा—उस्सेइमे, ससेइमे, चाउलधोवणे।

चतुर्थभक्त (एक उपवास) करने वाले भिक्षु को तीन प्रकार के पानक ग्रहण करना कल्पता है—

१ उत्स्वेदिम—आटे का धोवन।
२ संसेकिम—सिझाये हुए कैर आदि का धोवन।
३ तदुल-धोवन—चावलों का धोवन (३७६)।

३७७—छट्ठभत्तियस्स ण भिक्खुस्स कप्पति तम्रो पाणगाइ पडिगाहित्तए, त जहा—तिलोदए, तुसोदए जवोदए।

षष्ठ भक्त (दो उपवास) करने वाले भिक्षु को तीन प्रकार के पानक ग्रहण करना कल्पता है—

१ तिलोदक—तिलों के धोने का जल।
२ तुषोदक—तुष-भूसे के धोने का जल।
३ यवोदक—जौ के धोने का जल (३७७)।

३७८—अट्ठमभत्तियस्स ण भिक्खुस्स कप्पति तम्रो पाणगाइ पडिगाहित्तए, त जहा—आयामए, सोवीरए, सुद्धवियडे।

अष्टम भक्त (तीन उपवास) करने वाले भिक्षु को तीन प्रकार के पानक लेना कल्पता है—

१ आयामक (आचामक)—अवस्रावण अर्थात् उबाले हुए चावलों का मांड।
२ सौवीरक—कांजी, छाछ के ऊपर का पानी।

३ शुद्ध विकट—शुद्ध उष्ण जल (३७८)।

पिण्डैषणा सूत्र

३७९—तिविहे उवहडे पण्णत्ते, त जहा—फलिम्रोवहडे, सुद्धोवहडे, ससट्ठोवहडे।

उपहृत—(भिक्षु को दिया जाने वाला) भोजन—तीन प्रकार का कहा गया है—

१ फलिकोपहृत—खाने के लिए थाली आदि मे परोसा गया भोजन।
२ शुद्धोपहृत—खाने के लिए साथ मे लाया हुआ लेप-रहित भोजन।
३ संसृष्टोपहृत—खाने के लिए हाथ मे उठाया हुआ अनुच्छिष्ट भोजन (३७९)।

३८०—तिविहे ओग्गहिते पण्णत्ते, त जहा—ज च ओगिण्हति, ज च साहरति, ज च आसगसि पक्खिवति।

अवगृहीत भोजन तीन प्रकार का कहा गया है—

१ परोसने के लिए ग्रहण किया हुआ भोजन।
२ परोसा हुआ भोजन।
३ परोसने से बचा हुआ और पुन पाक पात्र मे डाला हुआ भोजन (३८०)।

अवमोदरिका-सूत्र

३८१—तिविधा ओमोयरिया पण्णत्ता, त जहा—उवगरणोमोयरिया, भत्तपाणोमोदरिया, भावोमोयरिया।

अवमोदरिका (भक्त पानादि को कम करने की वृत्ति ऊनोदरी) तीन प्रकार की कही गई है—

१ उपकरण-अवमोदरिका—उपकरणो को घटाना।
२ भक्त पान अवमोदरिका—खान-पान की वस्तुओ का घटाना।
३ भाव अवमोदरिका—राग-द्वेषादि दुर्भावो का घटाना (३८१)।

३८२—उवगरणोमोदरिया तिविहा पण्णत्ता, त जहा—एगे वत्थे, एगे पाते, चियत्तोवहि-साइज्जणया।

उपकरण—अवमोदरिका तीन प्रकार की कही गई है—

१ एक वस्त्र रखना।
२ एक पात्र रखना।
३ सयमोपकारी समझकर आगम-सम्मत उपकरण रखना (३८२)।

निर्ग्रन्थ चर्या-सूत्र

३८३—तम्रो ठाणा णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा अहियाए असुभाए अखमाए अणिस्सेसाए अणाणुगामियत्ताए भवति, त जहा—कूअणता, कक्करणता, अवज्झाणता।

तीन स्थान निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो के लिए अहितकर, अशुभ, अक्षम (अयुक्त) अनिःश्रेयस (अकल्याणकर) अनानुगामिक, अमुक्तिकारी और अशुभानुबन्धी होते है—

१ कूजनता—आर्तस्वर मे करुण क्रन्दन करना।
२ कर्करणता—शय्या, उपधि आदि के दोष प्रकट करने के लिए प्रलाप करना।
३ अपध्यानता—आर्त्त और रौद्रध्यान करना (३८३)।

३८४—तओ ठाणा णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा हिताए सुहाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामिअत्ताए भवति, त जहा—अकूअणता, अकक्करणता, अणवज्झाणता।

तीन स्थान निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो के लिए हितकर, शुभ, क्षम, निःश्रेयस एव आनुगामिता (मुक्ति-प्राप्ति) के लिए होते हैं—

१ अकूजनता—आर्तस्वर से करुण क्रन्दन नही करना।
२ अकर्करणता—शय्या आदि के दोषो को प्रकट करने के लिए प्रलाप नही करना।
३ अनपध्यानता—आर्त-रौद्ररूप दुर्ध्यान नही करना (३८४)।

शल्य-सूत्र

३८५—तओ सल्ला पण्णत्ता, त जहा—मायासल्ले, णियाणसल्ले, मिच्छादसणसल्ले।

शल्य तीन हैं—मायाशल्य, निदान शल्य और मिथ्यादर्शन शल्य (३८५)।

तेजोलेश्या-सूत्र

३८६—तिहिं ठाणेहिं समणे णिग्गथे सखित्त विउलतेउलेस्से भवति, त जहा—आयावणयाए, खतिखमाए, अपाणगेण तवोकम्मेण।

तीन स्थानो से श्रमण निर्ग्रन्थ सक्षिप्त की हुई विपुल तेजोलेश्यावाले होते हैं—

१ आतापना लेने से—सूर्य की प्रचण्ड किरणो द्वारा उष्णता सहन करने से।

२ क्षान्ति क्षमा धारण करने से—बदला लेने के लिए समर्थ होते हुए भी क्रोध पर विजय पाने से।

३ अपानक तप कर्म से—निर्जल—जल बिना पीये तपश्चरण करने से (३८६)।

भिक्षु प्रतिमा-सूत्र

३८७—तिमासिय ण भिक्खुपडिम पडिवण्णस्स अणगारस्स कप्पति तओ दत्तीओ भोअणस्स पडिगाहेत्तए, तओ पाणगस्स।

त्रैमासिक भिक्षु-प्रतिमा को स्वीकार करने वाले अनगार के लिए तीन दत्तिया भोजन की और तीन दत्तिया पानक की ग्रहण करना कल्पता है (३८७)।

३८८—एगरातिय भिक्खुपडिम सम्म अणणुपालेमाणस्स अणगारस्स इमे तओ ठाणा अहिताए

असुभाए अखमाए अणिस्सेयसाए अणाणुगामियत्ताए भवति, त जहा—उम्माय वा लभिज्जा दीहकालिय वा रोगातक पाउणेज्जा, केवलीपण्णत्ताओ वा धम्माओ भसेज्जा।

एक रात्रिकी भिक्षु प्रतिभा का सम्यक प्रकार से अनुपालन नही करने वाले अनगार के लिए तीन स्थान अहितकर, अशुभ, अक्षम, अनि श्रेयसकारी और अनानुगामिता के कारण होते हैं—

१ उक्त अनगार उन्माद को प्राप्त हो जाता है।
२ या दीर्घकालिक रोगातक स ग्रसित हो जाता है।
३ अथवा केवलि-प्रज्ञप्त धम मे भ्रष्ट हो जाता है (३८८)।

३८९—एगरातिय भिक्खुपडिम सम्म अणुपालेमाणस्स अणगारस्स तओ ठाणा हिताए सुभाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामियत्ताए भवति, त जहा—ओहिणाणे वा से समुप्पज्जेज्जा, मणपज्जवणाणे वा से समुप्पज्जेज्जा, केवलणाणे वा से समुप्पज्जेज्जा।

एकरात्रिकी भिक्षु-प्रतिमा का सम्यक् प्रकार से अनुपालन करने वाले अनगार के लिए तीन स्थान हितकर शुभ, क्षम, नि श्रेयसकारी और अनुगामिता के कारण होते हैं—

१ उक्त अनगार को अवधिज्ञान उत्पन्न होता है।
२ या मन पयवज्ञान प्राप्त होता है।
३ अथवा केवलनान प्राप्त हो जाता है (३८९)।

कमभूमि-सूत्र

३९०—जबुद्दीवे दीवे तओ कम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, त जहा—भरहे, एरवए, महाविदेहे।
३९१—एव—धायइसडे दीवे पुरित्थिमद्धे जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे तीन कमभूमिया कही गई हैं—भरत-कर्मभूमि, एरवत कमभूमि और महाविदेह-कर्मभूमि (३९०)। इसी प्रकार धातकीखण्ड के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध मे, तथा अधपुष्कर वरद्वीप के पूर्वाध और पश्चिमाध मे भी तीन तीन कर्मभूमिया जाननी चाहिए (३९१)।

दर्शन सूत्र

३९२—तिविहे दसणे पण्णत्ते, त जहा—सम्मद्दसणे, मिच्छद्दसणे, सम्मामिच्छद्दसणे।

दशन तीन प्रकार का कहा गया है—सम्यग्दशन, मिथ्यादशन और सम्यग्मिथ्यादशन(३९२)।

३९३—तिविहा रुई पण्णत्ता, त जहा—सम्मरुई, मिच्छरुई, सम्मामिच्छरुई।

रुचि तीन प्रकार की कही गई है—सम्यग् रुचि, मिथ्यारुचि और सम्यग्मिथ्यारुचि (३९३)।

प्रयोग-सूत्र

३९४—तिविधे पओगे पण्णत्ते, त जहा—सम्मपओगे, मिच्छपओगे, सम्मामिच्छपओगे।

प्रयोग तीन प्रकार का कहा गया है—सम्यक् प्रयोग, मिथ्या प्रयोग और सम्यग्मिथ्याप्रयोग (३९४)।

विवेचन—उक्त तीन सूत्रो मे जीवो के व्यवहार की क्रमिक भूमिकाओ का निर्देश किया गया है। सज्ञी जीव मे सवप्रथम दष्टिकोण का निर्माण होता है। तत्पश्चात् उसमे रुचि या श्रद्धा उत्पन्न होती है और तदनुसार वह काय करता है। इस कथन का अभिप्राय यह है कि यदि जीव मे सम्यग्दशन उत्पन्न हो गया है तो उसकी रुचि भी सम्यक् होगी और तदनुसार उसके मन वचन काय की प्रवृत्ति भी सम्यक् होगी। इसी प्रकार दशन के मिथ्या या मिश्रित होने पर उसकी रुचि एव प्रवृत्ति भी मिथ्या एव मिश्रित होगी।

व्यवसाय सूत्र

३९५—तिविहे ववसाए पण्णत्ते, त जहा—धम्मिए ववसाए, अधम्मिए ववसाए, धम्मियाधम्मिए ववसाए।

अहवा—तिविधे ववसाए पण्णत्ते, त जहा—पच्चक्खे, पच्चइए, आणुगामिए।

अहवा—तिविधे ववसाए पण्णत्ते, त जहा—इहलोइए, परलोइए, इहलोइय परलोइए।

व्यवसाय (वस्तुस्वरूप का निणय अथवा पुरुषाथ की सिद्धि के लिए किया जाने वाला अनुष्ठान) तीन प्रकार का कहा गया है—धार्मिक व्यवसाय, अधार्मिक व्यवसाय और धार्मिकाधार्मिक व्यवसाय। अथवा व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है—प्रत्यक्ष व्यवसाय, प्रात्ययिक (व्यवहार-प्रत्यक्ष) व्यवसाय और अनुगामिक (आनुमानिक व्यवसाय) अथवा व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है—ऐहलौकिक, पारलौकिक और ऐहलौकिक पारलौकिक (३९५)।

३९६—इहलोइए ववसाए तिविहे पण्णत्ते, त जहा—लोइए, वेइए, सामइए।

ऐहलौकिक व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है—लौकिक, वदिक और सामयिक—श्रमणो का व्यवसाय (३९६)।

३९७—लोइए ववसाए तिविधे पण्णत्ते, त जहा—अत्थे, धम्मे, कामे।

लौकिक व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है—अथव्यवसाय, धमव्यवसाय और काम-व्यवसाय (३९७)।

३९८—वेइए ववसाए तिविधे पण्णत्ते, त जहा—रिउव्वेदे, जउव्वेदे- सामवेदे।

वैदिक व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है—ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद व्यवसाय अर्थात् इन वेदो के अनुसार किया जाने वाला निणय या अनुष्ठान (३९८)।

३९९—सामइए ववसाए तिविधे पण्णत्ते त जहा—णाणे, दसणे, चरित्ते।

सामयिक व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञान, दशन और चरित्र व्यवसाय (३९९)।

विवेचन—उपयुक्त पाच सूत्रो मे विभिन्न व्यवसायो का निर्देश किया गया है। व्यवसाय का अथ है—निश्चय, निणय और अनुष्ठान। निश्चय करने के साधनभूत ग्रथो को भी कहा जाता है। उक्त पाच सूत्रो मे विभिन्न दृष्टिकोणो से व्यवसाय का वर्गीकरण किया गया है।

प्रथम वर्गीकरण धर्म के आधार पर किया गया है। दूसरा वर्गीकरण ज्ञान के आधार पर किया गया है। यह वैशेषिक एवं सांख्यदर्शन सम्मत तीन प्रमाणों की ओर संकेत करता है—

सूत्रोक्त वर्गीकरण	वैशेषिक एवं सांख्य-सम्मत प्रमाण
१ प्रत्यक्ष	१ प्रत्यक्ष
२ प्रात्ययिक-आगम	२ अनुमान
३ आनुगामिक—अनुमान	३ आगम

संस्कृत टीकाकार ने प्रत्यक्ष और प्रात्ययिक के दो-दो अर्थ किये हैं। प्रत्यक्ष के दो अर्थ—अवधि, मनःपर्याय और केवलज्ञान रूप मुख्य या पारमार्थिक प्रत्यक्ष और स्वयंदर्शन रूप स्वसंवेदन प्रत्यक्ष। प्रात्ययिक के दो अर्थ—१ इन्द्रिय और मन के निमित्त से होने वाला ज्ञान (सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष) और २ आप्तपुरुष के वचन से होने वाला ज्ञान (आगम ज्ञान)।

तीसरा वर्गीकरण वर्तमान और भावी जीवन के आधार पर किया गया है। मनुष्य के कुछ व्यवसाय वर्तमान जीवन की दृष्टि से होते हैं, कुछ भावी जीवन की दृष्टि से और कुछ दोनों की दृष्टि से। ये क्रमशः ऐहलौकिक, पारलौकिक और ऐहलौकिक पारलौकिक व्यवसाय कहलाते हैं।

चौथा वर्गीकरण विचार-धारा या शास्त्रों के आधार पर किया गया है। इसमें मुख्यतः तीन विचार-धाराएं वर्णित हैं—लौकिक, वैदिक और सामयिक।

लौकिक विचार-धारा के प्रतिपादक होते हैं—अर्थशास्त्री, धर्मशास्त्री और कामशास्त्री। ये लोग अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र और कामशास्त्र के माध्यम से अर्थ, धर्म और काम के औचित्य एवं अनौचित्य का निर्णय करते हैं। सूत्रकार ने इसे लौकिक व्यवसाय माना है। इस विचार-धारा का किसी धर्म या दर्शन से सम्बन्ध नहीं होता। इसका सम्बन्ध लोकमत से होता है।

वैदिक विचारधारा के आधारभूत ग्रन्थ तीन हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद। इस वर्गीकरण में व्यवसाय के निमित्तभूत ग्रन्थों को व्यवसाय ही कहा गया है।

संस्कृत टीकाकार ने सामयिक व्यवसाय का अर्थ सांख्य आदि दर्शनों के समय या सिद्धान्त से होने वाला व्यवसाय किया है। प्राचीनकाल में सांख्यदर्शन श्रमण परम्परा का ही एक अंग रहा है। उसी दृष्टि से टीकाकार ने यहां मुख्यता से सांख्य का उल्लेख किया है।

सामयिक व्यवसाय के तीनों प्रकारों का दो नयों से अर्थ किया जा सकता है। एक नय के अनुसार—

१ ज्ञान व्यवसाय—ज्ञान का निश्चय या ज्ञान के द्वारा होने वाला निश्चय।

२ दर्शन व्यवसाय—दर्शन का निश्चय या दर्शन के द्वारा होने वाला निश्चय।

३ चारित्र व्यवसाय—सदाचरण का निश्चय।

दूसरे नय के अनुसार ज्ञान, दर्शन और चारित्र, ये श्रमण परम्परा या जैनशासन के प्रधान व्यवसाय हैं और इनके समुदाय को ही रत्नत्रयात्मक धर्म व्यवसाय या मोक्ष-पुरुषार्थ का कारणभूत धर्मपुरुषार्थ कहा गया है।

अथ-योनि-सूत्र

४००—तिविधा अत्थजोणी पण्णत्ता, त जहा—सामे, दडे, भेदे।

अथ योनि तीन प्रकार कही गई है—सामयोनि, दण्डयोनि और भेदयोनि (४००)।

विवेचन—राज्यलक्ष्मी आदि की प्राप्ति के उपायभूत कारणो को अर्थयोनि कहते हैं। राजनीति मे इसके लिए साम, दान, दण्ड और भेद इन चार उपायो का उपयोग किया जाता है। प्रस्तुत सूत्र मे दान को छोड कर शेप तीन उपायो का उल्लेख किया गया है। यदि प्रतिपक्षी व्यक्ति अपने से अधिक बलवान्, समथ या सैन्यशक्ति वाला हो तो उसके साथ सामनीति का प्रयोग करना चाहिए। समभाव के साथ प्रिय वचन बोलकर, अपने पूवजा के कुलक्रमागत स्नेह-पूण सम्बन्धो की याद दिला कर, तथा भविष्य मे होने वाले मधुर सम्बन्धो की सम्भावनाए बतलाकर प्रतिपक्षी को अपने अनुकूल करना सामनीति कही जाती है। जब प्रतिपक्षी व्यक्ति सामनीति से अनुकूल न हो, तब दण्डनीति का प्रयोग किया जाता है। दण्ड के तीन भेदो का सस्कृत टीकाकार ने उल्लेख किया है—वध, परिक्लेश और धन हरण। यदि शत्रु उग्र हो तो उसका वध करना, यदि उससे हीन हो तो उसे विभिन्न उपायो से कष्ट पहुचाना और यदि उससे भी कमजोर हो तो उसके धन का अपहरण कर लेना दण्ड-नीति है। टीकाकार द्वारा उद्धृत श्लोक मे भेदनीति के तीन भेद कहे गये है—स्नेहरागापनयन—स्नेह या अनुराग का दूर करना, सहर्षोत्पादन—स्पर्धा उत्पन्न करना और सतर्जन—तर्जना या भत्सना करना। धमशास्त्र मे राजनीति को गर्हित ही बताया गया है। प्रस्तुत सूत्र मे केवल 'तीन वस्तुओ के सग्रह के अनुरोध से' उनका निर्देश किया गया है।

पुद्गल-सूत्र

४०१—तिविहा पोग्गला पण्णत्ता, त जहा—पओगपरिणता, मीसापरिणता, वीससापरिणता।

पुद्गल तीन प्रकार के कहे गये है—प्रयोग-परिणत—जीव के प्रयत्न से परिणमन पाये हुए पुद्गल, मिश्र-परिणत—जीव के प्रयोग तथा स्वाभाविक रूप से परिणत पुद्गल, और विस्रसा—स्वत -स्वभाव से परिणत पुद्गल (४०१)।

नरक-सूत्र

४०२—तिपतिट्ठिया णरगा पण्णत्ता, त जहा—पुढविपतिट्ठिया, आगासपतिट्ठिया, आयपइट्ठिया। णेगम-सगह-ववहाराण पुढविपतिट्ठिया, उज्जुसुतस्स आगासपतिट्ठिया, तिण्ह सद्दणयाण आयपतिट्ठिया।

नरक त्रिप्रतिष्ठित (तीन पर आश्रित) कहे गये हैं—पृथ्वी-प्रतिष्ठित, आकाश-प्रतिष्ठित और आत्म प्रतिष्ठित (४०२)।

१ नगम, सग्रह और व्यवहार नय की अपेक्षा से नरक पृथ्वी पर प्रतिष्ठित है।

२ ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा से वे आकाश प्रतिष्ठित हैं।

३ शब्द, समभिरूढ तथा एवम्भूत नय की अपेक्षा से आत्म प्रतिष्ठित है, क्योकि शुद्ध नय की दृष्टि से प्रत्येक वस्तु अपने स्व-भाव मे ही रहती है।

मिथ्यात्व-सूत्र

४०३—तिविधे मिच्छत्ते पण्णत्ते, तं जहा—अकिरिया, अविणए, अण्णाणे।

मिथ्यात्व तीन प्रकार का कहा गया है—अक्रियारूप, अविनयरूप और अज्ञानरूप (४०३)।

विवेचन—यहां मिथ्यात्व से अभिप्राय विपरीत श्रद्धान रूप मिथ्यादर्शन से नहीं है, किन्तु की जाने वाली क्रियाओं की असमीचीनता से है। जो क्रियाएं मोक्ष की साधक नहीं हैं उनका अनुष्ठान या आचरण करने को अक्रियारूप मिथ्यात्व जानना चाहिए। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और उनके धारक पुरुषों की विनय नहीं करना अविनय मिथ्यात्व है। मुक्ति के कारणभूत सम्यग्ज्ञान के सिवाय शेष समस्त प्रकार का लौकिक ज्ञान अज्ञान-मिथ्यात्व है।

४०४—अकिरिया तिविधा पण्णत्ता, तं जहा—पओगकिरिया, समुदाणकिरिया, अण्णाण-किरिया।

अक्रिया (दूषित क्रिया) तीन प्रकार की कही गई है—प्रयोग क्रिया, समुदान क्रिया और अज्ञान क्रिया (४०४)।

विवेचन—मन, वचन और काय योग के व्यापार द्वारा कर्म बन्ध कराने वाली क्रिया को प्रयोग-क्रियारूप अक्रिया कहते हैं। प्रयोगक्रिया के द्वारा गृहीत कर्म पुद्गलों का प्रकृतिबन्धादिरूप से तथा देशघाती और सर्व-घाती रूप से व्यवस्थापित करने को समुदानरूप-अक्रिया कहा गया है। अज्ञान से जाने वाली चेष्टा अज्ञान-क्रिया कहलाती है।

४०५—पओगकिरिया तिविधा पण्णत्ता, तं जहा—मणपओगकिरिया, वइपओगकिरिया, कायपओगकिरिया।

प्रयोगक्रिया तीन प्रकार की कही गई है—मन प्रयोग क्रिया, वाक्-प्रयोग क्रिया और काय-प्रयोग क्रिया (४०५)।

४०६—समुदाणकिरिया तिविधा पण्णत्ता, तं जहा—अणंतरसमुदाणकिरिया, परंपर-समुदाणकिरिया, तदुभयसमुदाणकिरिया।

समुदान-क्रिया तीन प्रकार की कही गई है—अनन्तर-समुदानक्रिया, परम्पर-समुदानक्रिया और तदुभय-समुदानक्रिया (४०६)।

विवेचन—प्रयोगक्रिया के द्वारा सामान्य रूप से कर्मवर्गणाओं को जीव ग्रहण करता है, फिर उन्हें प्रकृति, स्थिति आदि तथा सर्वघाती, देशघाती आदि रूप में ग्रहण करना समुदानक्रिया है। अन्तर अर्थात् व्यवधान। जिस समुदानक्रिया के करने में दूसरे का व्यवधान या अन्तर न हो ऐसी प्रथम समयवर्त्तिनी क्रिया अनन्तर-समुदानक्रिया है। द्वितीय तृतीय आदि समयों में की जाने वाली समुदान क्रिया को परम्परसमुदानक्रिया कहते हैं। प्रथम और अप्रथम दोनों समयों की अपेक्षा की जाने वाली समुदानक्रिया तदुभयसमुदान क्रिया कहलाती है।

४०७—अण्णाणकिरिया तिविधा पण्णत्ता, त जहा—मतिअण्णाणकिरिया, सुतअण्णाणकिरिया, विभगअण्णाणकिरिया ।

अज्ञानक्रिया तीन प्रकार की कही गई है—मति-अज्ञानक्रिया, श्रुत-अज्ञानक्रिया और विभग-अज्ञानक्रिया (४०७) ।

विवेचन—इन्द्रिय और मन से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को मतिज्ञान कहते है। आप्त वाक्यो के श्रवण-पठनादि से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। इन्द्रिय और मन की अपेक्षा के विना अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाले भूत भविष्यकालान्तरित एव देशान्तरित वस्तु के जानने वाले सीमित ज्ञान को अवधिज्ञान कहते हैं। मिथ्यादृष्टि जीव के होने वाले ये तीनो ज्ञान क्रमश मति-अज्ञान, श्रुत अज्ञान और विभग-अज्ञान कहे जाते है।

४०८—अविणए तिविहे पण्णत्ते, त जहा—देसच्चाई, णिरालबणता, णाणापेज्जदोसे ।

अविनय तीन प्रकार का कहा गया है—

१ देशत्यागी—स्वामी को गाली आदि देके देश को छोड कर चले जाना ।

२ निरालम्बन—गच्छ या कुटुम्ब को छोड देना या उससे अलग हो जाना ।

३ नानाप्रेयोद्वेषी—नाना प्रकारो से लोगो के साथ राग द्वेष करना (४०८) ।

४०९—अण्णाणे तिविधे पण्णत्ते, त जहा—देसण्णाणे, सव्वण्णाणे, भावण्णाणे ।

अज्ञान तीन प्रकार का कहा गया है—

१ देश-अज्ञान—ज्ञातव्य वस्तु के किसी एक अश को न जानना ।

२ सर्व-अज्ञान—ज्ञातव्य वस्तु को सर्वथा न जानना ।

३ भाव-अज्ञान—वस्तु के अमुक ज्ञातव्य पर्यायो को नही जानना (४०९) ।

धर्म-सूत्र

४१०—तिविहे धम्मे पण्णत्ते, त जहा—सुयधम्मे, चरित्तधम्मे, अत्थिकायधम्मे ।

धर्म तीन प्रकार का कहा गया है—

१ श्रुत धर्म—वीतराग भावना के साथ शास्त्रो का स्वाध्याय करना ।

२ चारित्र धर्म—मुनि और श्रावक के धर्म का परिपालन करना ।

३ अस्तिकाय-धर्म—प्रदेश वाले द्रव्यो को अस्तिकाय कहते हैं और उनके स्वभाव को अस्तिकाय-धर्म कहा जाता है (४१०) ।

उपक्रम सूत्र

४११—तिविधे उवक्कमे पण्णत्ते, त जहा—धम्मिए उवक्कमे, अधम्मिए उवक्कमे, धम्मियाधम्मिए उवक्कमे ।

अहवा—तिविधे उवक्कमे पण्णत्ते, त जहा—आओवक्कमे, परोवक्कमे, तदुभयोवक्कमे।

उपक्रम (उपाय-पूर्वक काय का आरम्भ) तीन प्रकार का कहा गया है—

१ धार्मिक-उपक्रम—श्रुत और चारित्र रूप धर्म की प्राप्ति के लिए प्रयास करना।

२ अधार्मिक उपक्रम—असयम-वर्धक आरम्भ-कार्य करना।

३ धार्मिकाधार्मिक-उपक्रम—सयम और असयमरूप कार्यों का करना।

अथवा उपक्रम तीन प्रकार का कहा गया है—

१ आत्मोपक्रम—अपने लिए काय-विशेष का उपक्रम करना।

२ परोपक्रम—दूसरो के लिए काय-विशेष का उपक्रम करना।

३ तदुभयोपक्रम—अपने और दूसरो के लिए काय-विशेष करना (४११)।

वैयावृत्यादि सूत्र

४१२—[तिविधे वेयावच्चे पण्णत्ते, त जहा—आयवेयावच्चे, परवेयावच्चे, तदुभयवेयावच्चे। ४१३—तिविधे अणुग्गहे पण्णत्ते, त जहा—आयअणुग्गहे, परअणुग्गहे, तदुभयअणुग्गहे। ४१४—तिविधा अणुसट्ठी पण्णत्ता, त जहा—आयअणुसट्ठी, परअणुसट्ठी, तदुभयअणुसट्ठी। ४१५—तिविधे उवालभे पण्णत्ते, त जहा—आओवालभे, परोवालभे, तदुभयोवालभे]।

वैयावृत्य (सेवा-टहल) तीन प्रकार का है—आत्मवैयावृत्य, पर-वैयावृत्य और तदुभय-वैयावृत्य (४१२)। अनुग्रह (उपकार) तीन प्रकार का कहा गया है—आत्मानुग्रह, परानुग्रह और तदुभयानुग्रह (४१३)। अनुशिष्टि (अनुशासन) तीन प्रकार की है—आत्मानुशिष्टि, परानुशिष्टि और तदुभयानुशिष्टि (४१४)। उपालम्भ (उलाहना) तीन प्रकार का कहा गया है—आत्मोपालम्भ, परोपालम्भ और तदुभयोपालम्भ (४१५)।

त्रिवर्ग-सूत्र

४१६—तिविहा कहा पण्णत्ता, त जहा—अत्थकहा, धम्मकहा, कामकहा। ४१७—तिविहे विणिच्छए पण्णत्ते, त जहा—अत्थविणिच्छए, धम्मविणिच्छए, कामविणिच्छए।

कथा तीन प्रकार की कही गई है—अर्थकथा, धर्मकथा और कामकथा (४१६)। विनिश्चय तीन प्रकार का कहा गया है—अर्थ-विनिश्चय, धर्म-विनिश्चय और काम विनिश्चय (४१७)।

४१८—तहारूव ण भते! समण वा माहण वा पज्जुवासमाणस्स किंफला पज्जुवासणया?

सवणफला।

से ण भते! सवणे किंफले?

णाणफले।

से ण भते! णाणे किंफले?

विण्णाणफले।

[से ण भते ! विण्णाणे किंफले ?
पच्चक्खाणफले ।
से ण भते ! पच्चक्खाणे किंफले ?
सजमफले ।
से ण भते ! सजमे किंफले ?
अणण्हयफले ।
से ण भते ! अणण्हए किंफले ?
तवफले ।
से ण भते ! तवे किंफले ?
वोदाणफले ।
से ण भते ! वोदाणे किंफले ?
अकिरियफले] ।
सा ण भते ! अकिरिया किंफला ?
णिव्वाणफला ।
से ण भते ! णिव्वाणे किंफले ?
सिद्धिगइ-गमण पज्जवसाण-फले समणाउसो !

प्रश्न—भदन्त ! तथारूप श्रमण-माहन की पर्युपासना करने का क्या फल है ?
उत्तर—आयुष्मन् ! पर्युपासना का फल धर्म-श्रवण है ।
प्रश्न—भदन्त ! धर्म-श्रवण का क्या फल है ?
उत्तर—आयुष्मन् ! धर्म श्रवण का फल ज्ञान प्राप्ति है ।
प्रश्न—भदन्त ! ज्ञान-प्राप्ति का क्या फल है ?
उत्तर—आयुष्मन् ! ज्ञान-प्राप्ति का फल विज्ञान (हेय-उपादेय के विवेक) की प्राप्ति है ।
[प्रश्न—भदन्त ! विज्ञान-प्राप्ति का क्या फल है ?
उत्तर—आयुष्मन् ! विज्ञान-प्राप्ति का फल प्रत्याख्यान (पाप का त्याग करना) है ।
प्रश्न—भदन्त ! प्रत्याख्यान का क्या फल है ?
उत्तर—आयुष्मन् ! प्रत्याख्यान का फल सयम है ।
प्रश्न—भदन्त ! सयम का क्या फल है ?
उत्तर—आयुष्मन् ! सयम-धारण का फल अनास्रव (कर्मों के आस्रव का निरोध) है ।
प्रश्न—भदन्त ! अनास्रव का क्या फल है ?
उत्तर—आयुष्मन् ! अनास्रव का फल तप है ।
प्रश्न—भदन्त ! तप का क्या फल है ?
उत्तर—आयुष्मन् ! तप का फल व्यवदान (कर्म-निर्जरा) है ।
प्रश्न—भदन्त ! व्यवदान का क्या फल है ?

उत्तर—आयुष्मन् ! व्यवदान का फल अक्रिया अर्थात् मन-वचन काय की हलन-चलन रूप क्रिया या प्रवृत्ति का पूर्ण निरोध है (४१८)।

प्रश्न—भदन्त ! अक्रिया का क्या फल है ?

उत्तर—आयुष्मन ! अक्रिया का फल निर्वाण है।

प्रश्न—भदन्त ! निर्वाण का क्या फल है ?

उत्तर—आयुष्मन् श्रमण ! निर्वाण का फल सिद्धगति को प्राप्त कर संसार-परिभ्रमण (जन्म मरण) का अन्त करना है।

। तृतीय उद्देश समाप्त ।

चतुर्थ उद्देश

प्रतिमा सूत्र

४१९—पडिमापडिवण्णस्स ण अणगारस्स कप्पति तओ उवस्सया पडिलेहित्तए, त जहा—अहे आगमणगिहसि वा, अहे वियडगिहसि वा, अहे रुक्खमूलगिहसि वा।

प्रतिमा-प्रतिपन्न (मासिकी आदि प्रतिमाओं को स्वीकार करने वाले) अनगार को तीन प्रकार के उपाश्रयो (आवासो) का प्रतिलेखन (निवास के लिए देखना) करना कल्पता है।

१ आगमन-गृह—यात्रियो के आकर ठहरने का स्थान सभा, प्रपा (प्याऊ), धर्मशाला, सराय आदि।

२ विवृत-गृह—अनाच्छादित (ऊपर से खुला) या एक दो ओर से खुला माला रहित घर, वाडा आदि।

३ वृक्षमूल गृह—वृक्ष का अधो भाग (४१९)।

४२०—[पडिमापडिवण्णस्स ण अणगारस्स कप्पति तओ उवस्सया अणुण्णवेत्तए, त जहा—अहे आगमणगिहसि वा, अहे वियडगिहसि वा, अहे रुक्खमूलगिहसि वा।

[प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को तीन प्रकार के उपाश्रयों की अनुज्ञा (उनके स्वामियो की आज्ञा या स्वीकृति लेना) लेनी चाहिए—

१ आगमन-गृह मे ठहरने के लिए।
२ अथवा विवृत-गृह मे ठहरने के लिए।
३ अथवा वृक्षमूल गृह मे ठहरने के लिए (४२०)।

४२१—पडिमापडिवण्णस्स ण अणगारस्स कप्पति तओ उवस्सया उवाइणित्तए, त जहा—अहे आगमणगिहसि वा, अहे वियडगिहसि वा, अहे रुक्खमूलगिहसि वा]।

प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार को तीन प्रकार के उपाश्रयो मे रहना कल्पता है—

१ आगमन गृह मे।
२ अथवा विवृत गृह मे।
३ अथवा वृक्षमूल गृह मे (४२१)।]

४२२—पडिमापडिवण्णस्स ण अणगारस्स कप्पति तओ सथारगा पडिलेहित्तए, त जहा—पुढविसिला, कट्ठसिला, अहासयडमेव।

प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को तीन प्रकार के सस्तारकों का प्रतिलेखन करना कल्पता है—

१ पृथ्वीशिला—समतल भूमि या पाषाण-शिला।

२ काष्ठशिला—सूखे वृक्ष का या काठ का समतल भाग, तख्ता आदि।

३ यथासमृत—घास, पलाल (पियार) आदि जो उपयोग के योग्य हो।

४२३—[पडिमापडिवण्णस्स ण अणगारस्स कप्पति तम्रो सथारगा अणुण्णवेत्तए, त जहा—पुढविसिला, कट्ठसिला, अहासथडमेव।

प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार को तीन प्रकार के सस्तारकों की अनुज्ञा लेना कल्पता है—पृथ्वी-शिला, काष्ठशिला और यथासमृत सस्तारक की (४२३)।

४२४—पडिमापडिवण्णस्स ण अणगारस्स कप्पति तम्रो सथारगा उवाइणित्तए, त जहा—पुढविसिला, कट्ठसिला अहासथडमेव]।

प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को तीन प्रकार के सस्तारकों का उपयोग करना कल्पता है—पृथ्वीशिला, काष्ठशिला और यथासमृत सस्तारक का (४२४)।]

काल-सूत्र

४२५—तिविहे काले पण्णत्ते, त जहा—तीए, पडुप्पण्णे, अणागए। ४२६—तिविहे समए पण्णत्ते, त जहा—तीए, पडुप्पण्णे, अणागए। ४२७—एव—आवलिया आणापाणू थोवे लवे मुहुत्ते अहोरत्ते जाव वाससतसहस्से पुव्वगे पुव्वे जाव ओसप्पिणी। ४२८—तिविधे पोग्गलपरियट्टे पण्णत्ते, त जहा—तीते, पडुप्पण्ण, अणागए।

काल तीन प्रकार का कहा गया है—अतीत (भूत-काल), प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) काल और अनागत (भविष्य) काल (४२५)। समय तीन प्रकार का कहा गया है—अतीत, प्रत्युत्पन्न और अनागतसमय (४२६)। इसी प्रकार आवलिका, आन-प्राण (श्वासोच्छ्वास) स्तोक, लव, मुहूर्त, अहोरात्र (दिन-रात) यावत लाख वर्ष, पूर्वाङ्ग, पूर्व, यावत् अवसर्पिणी तीन तीन प्रकार की जानना चाहिए (४२७)। पुद्गल-परावर्त तीन प्रकार का कहा गया है—अतीत-पुद्गल परावर्त, प्रत्युत्पन्न-पुद्गल परावर्त और अनागत-पुद्गल परावर्त (४२८)।

वचन-सूत्र

४२९—तिविहे वयणे पण्णत्ते, त जहा—एगवयणे, दुवयणे, बहुवयणे।

अहवा—तिविहे वयणे पण्णत्ते, त जहा—इत्थिवयणे, पुवयणे, णपुसगवयणे।

अहवा—तिविहे वयणे पण्णत्ते, त जहा—तीतवयण, पडुप्पण्णवयणे, अणागयवयणे।

वचन तीन प्रकार के कहे गये हैं—एकवचन, द्विवचन और बहुवचन। अथवा वचन तीन प्रकार के कहे गये हैं—स्त्रीवचन, पुरुषवचन और नपुसक वचन। अथवा वचन तीन प्रकार के कहे गये हैं—अतीत वचन, प्रत्युत्पन्न वचन और अनागत-वचन (४२९)।

ज्ञानादि-प्रज्ञापना-सम्यक सूत्र

४३०—तिविहा पण्णवणा पण्णत्ता, तं जहा—णाणपण्णवणा, दसणपण्णवणा, चरित्त-पण्णवणा।

प्रज्ञापना तीन प्रकार की कही गई है—ज्ञान की प्रज्ञापना (भेद प्रभेदो की प्ररूपणा) दर्शन की प्रज्ञापना और चारित्र की प्रज्ञापना (४३०)।

४३१—तिविधे सम्मे पण्णत्ते, तं जहा—णाणसम्मे, दसणसम्मे, चरित्तसम्मे।

सम्यक् (मोक्षप्राप्ति के अनुकूल) तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञान-सम्यक्, दर्शन सम्यक् और चारित्र-सम्यक् (४३१)।

विशोधि-सूत्र

४३२—तिविधे उवघाते पण्णत्ते, तं जहा—उग्गमोवघाते, उप्पायणोवघाते, एसणोवघाते।

उपघात (चारित्र का विराधन) तीन प्रकार का कहा गया है—

१ उद्गम उपघात—आहार की निष्पत्ति से सम्बन्धित भिक्षा-दोष, जो दाता-गृहस्थ के द्वारा किया जाता है।

२ उत्पादन-उपघात—आहार के ग्रहण करने से सम्बन्धित भिक्षा-दोष, जो साधु-द्वारा किया जाता है।

३ एषणा-उपघात—आहार को लेने के समय होने वाला भिक्षा-दोष, जो साधु और गृहस्थ दोनो के द्वारा किया जाता है (४३२)।

४३३—[तिविधा विसोही पण्णत्ता, तं जहा—उग्गमविसोही, उप्पायणविसोही, एसणा विसोही]।

विशोधि तीन प्रकार की कही गई है—

१ उद्गम-विशोधि—उद्गम-सम्बन्धी भिक्षा-दोषो की निवृत्ति।
२ उत्पादन-विशोधि—उत्पादन-सम्बन्धी भिक्षा-दोषो की निवृत्ति।
३ एषणा-विशोधि—गोचरी-सम्बन्धी दोषो की निवृत्ति (४३३)।

आराधना सूत्र

४३४—तिविहा आराहणा पण्णत्ता तं जहा—णाणाराहणा, दसणाराहणा, चरित्ताराहणा। ४३५—णाणाराहणा तिविहा पण्णत्ता तं जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा। ४३६—[दसणाराहणा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा। ४३७—चरित्ताराहणा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा]।

आराधना तीन प्रकार की कही गई है—ज्ञान आराधना, दर्शन आराधना और चारित्र-

आराधना (४३४)। ज्ञान-आराधना तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य (४३५)। [दर्शन-आराधना तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य (४३६)। चारित्र-आराधना तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य (४३७)।]

विवेचन—आराधना अर्थात् मुक्ति के कारणों की साधना। अकाल-श्रुताध्ययन को छोड़कर स्वाध्याय काल में ज्ञानाराधन के आठों अंगों का अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगपूर्वक निरतिचार परिपालन करना उत्कृष्ट ज्ञानाराधना है। किसी दो-एक अंग के बिना ज्ञानाभ्यास करना मध्यम ज्ञानाराधना है। सातिचार ज्ञानाभ्यास करना जघन्य ज्ञानाराधना है। सम्यक्त्व के निःशंकित आदि आठों अंगों के साथ निरतिचार सम्यग्दर्शन को धारण करना उत्कृष्ट दर्शनाराधना है। किसी दो एक अंग के बिना सम्यक्त्व को धारण करना मध्यम दर्शनाराधना है। सातिचार सम्यक्त्व को धारण करना जघन्य दर्शनाराधना है। पांच समिति और तीन गुप्ति आठों अंगों के साथ चारित्र का निरतिचार परिपालन करना उत्कृष्ट चारित्राराधना है। किसी एकादि अंग से हीन चारित्र का पालन करना मध्यम चारित्राराधना है और सातिचार चारित्र का पालन करना जघन्य चारित्राराधना है।

संक्लेश-असंक्लेश सूत्र

४३८—तिविधे संकिलेसे पण्णत्ते, तं जहा—णाणसंकिलेसे, दंसणसंकिलेसे, चरित्तसंकिलेसे। ४३९—[तिविधे असंकिलेसे पण्णत्ते, तं जहा—णाणअसंकिलेसे दंसणअसंकिलेसे, चरित्तअसंकिलेसे।

संक्लेश तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञान संक्लेश, दर्शन संक्लेश और चारित्र संक्लेश (४३८)। [असंक्लेश तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञान-असंक्लेश, दर्शन-असंक्लेश और चारित्र-असंक्लेश (४३९)]।

विवेचन—कषायों की तीव्रता से उत्पन्न होने वाली मन की मलिनता को संक्लेश कहते हैं। तथा कषायों की मन्दता से होने वाली मन की विशुद्धि को असंक्लेश कहते हैं। ये दोनों ही ज्ञान, दर्शन और चारित्र में हो सकते हैं, अतः उनके तीन तीन भेद कहे गये हैं। ज्ञान, दर्शन और चारित्र में प्रतिपतन रूप संक्लिश्यमान परिणाम ज्ञानादिका संक्लेश है और ज्ञानादि का विशुद्धिरूप विशुद्धयमान परिणाम ज्ञानादि का असंक्लेश है।

अतिक्रमादि सूत्र

४४०—तिविधे अतिक्कमे पण्णत्ते, तं जहा—णाणअतिक्कमे, दंसणअतिक्कमे, चरित्त-अतिक्कमे। ४४१—तिविधे वइक्कमे पण्णत्ते, तं जहा—णाणवइक्कमे, दंसणवइक्कमे चरित्तवइक्कमे। ४४२—तिविधे अइयारे पण्णत्ते, तं जहा—णाणअइयारे, दंसणअइयारे, चरित्तअइयारे। ४४३—तिविधे अणायारे पण्णत्ते तं जहा—णाणअणायारे, दंसणअणायारे, चरित्तअणायारे]।

[अतिक्रम तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञान अतिक्रम, दर्शन-अतिक्रम और चारित्र अतिक्रम (४४०)। व्यतिक्रम तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञान व्यतिक्रम, दर्शन-व्यतिक्रम और चारित्र-व्यतिक्रम (४४१)। अतिचार तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञान-अतिचार, दर्शन-अतिचार और चारित्र-अतिचार (४४२)। अनाचार तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञान-अनाचार, दर्शन अनाचार और चारित्र-अनाचार (४४३)।]

विवेचन—ज्ञान, दर्शन और चारित्र के आठ-आठ अग या आचार कहे गये हैं। उनके प्रतिकूल आचरण करने का मन मे विचार आना अतिक्रम कहा जाता है। इसके पश्चात् प्रतिकूल आचरण का प्रयास करना व्यतिक्रम कहलाता है। इससे भी आगे बढकर प्रतिकूल आशिक आचरण करना अतिचार है और पूर्ण रूप से प्रतिकूल आचरण करने को अनाचार कहते हैं।[1]

४४४—तिण्हमतिक्कमाण—आलोएज्जा, पडिक्कमेज्जा, णिंदेज्जा, गरहेज्जा, [विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिह पायच्छित्त तवोकम्म] पडिवज्जेज्जा, त जहा—णाणातिक्कमस्स, दसणातिक्कमस्स, चरित्तातिक्कमस्स।

ज्ञानातिक्रम, दर्शनातिक्रम और चारित्रातिक्रम इन तीनो प्रकारो के अतिक्रमो की आलोचना करनी चाहिए, प्रतिक्रमण करना चाहिए, निन्दा करनी चाहिए, गर्हा करनी चाहिए, (व्यावर्तन करना चाहिए, विशोधि करनी चाहिए, पुन वैसा नही करने का सकल्प करना चाहिए। तथा सेवन किये हुए अतिक्रम दोषो की निवृत्ति के लिए यथोचित प्रायश्चित्त एव तप कर्म) स्वीकार करना चाहिए (४४४)।

४४५—[तिण्ह वइक्कमाण—आलोएज्जा, पडिक्कमेज्जा णिंदेज्जा, गरहेज्जा, विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिह पायच्छित्त तवोकम्म पडिवज्जेज्जा, त जहा—णाणवइक्कमस्स, दसणवइक्कमस्स, चरित्तवइक्कमस्स।

[ज्ञान-व्यतिक्रम-दर्शन व्यतिक्रम, और चारित्र-व्यतिक्रम इन तीनो प्रकारो के व्यतिक्रमो की आलोचना करनी चाहिए, प्रतिक्रमण करना चाहिए, निन्दा करनी चाहिए, गर्हा करनी चाहिए, व्यावर्तन करना चाहिए, विशोधि करनी चाहिए, पुन वैसा न करने का सकल्प करना चाहिए। तथा यथोचित प्रायश्चित्त एव तप कर्म स्वीकार करना चाहिए (४४५)।]

४४६—तिण्हमतिचाराण—आलोएज्जा, पडिक्कमेज्जा, णिंदेज्जा, गरहेज्जा, विउट्टेज्जा विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा अहारिह पायच्छित्त तवोकम्म पडिवज्जेज्जा, त जहा—णाणातिचारस्स, दसणातिचारस्स, चरित्तातिचारस्स।

[ज्ञानातिचार, दर्शनातिचार और चारित्रातिचार इन तीनो प्रकारो के अतिचारो की आलोचना करनी चाहिए प्रतिक्रमण करना चाहिए, निन्दा करनी चाहिए, गर्हा करनी चाहिए, व्यावर्तन करना चाहिए, विशोधि करनी चाहिए, पुन वैसा नही करने का सकल्प करना चाहिए। तथा यथोचित प्रायश्चित्त एव तप कर्म स्वीकार करना चाहिए (४४६)।]

४४७—तिण्हमणायाराण—आलोएज्जा, पडिक्कमेज्जा, णिंदेज्जा, गरहेज्जा, विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिह पायच्छित्त तवोकम्म पडिवज्जेज्जा, त जहा—णाण-अणायारस्स, दसण अणायारस्स, चरित्त अणायारस्स] ।

---

१ क्षति मन शुद्धिविधेरतिक्रम व्यतिक्रम शीलव्रत विलघनम।
प्रभोऽतिचार विषयेषु वर्तन वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम॥
अमितगति-द्वात्रिंशिका श्लोक ९।

[ज्ञान-अनाचार, दर्शन-अनाचार और चारित्र-अनाचार इन तीनों प्रकारों के अनाचारों की आलोचना करनी चाहिए, प्रतिक्रमण करना चाहिए, निंदा करनी चाहिए गर्हा करनी चाहिए, व्यावर्तन करना चाहिए, विशोधि करनी चाहिए, पुन वैसा नही करने का सकल्प करना चाहिए। तथा यथोचित प्रायश्चित्त एव तप कर्म स्वीकार करना चाहिए (४४७)।]

प्रायश्चित्त सूत्र

४४८—तिविधे पायच्छित्ते पण्णत्ते, त जहा—आलोयणारिहे, पडिक्कमणारिहे, तदुभयारिहे।

प्रायश्चित्त तीन प्रकार का कहा गया है—आलोचना के योग्य, प्रतिक्रमण के योग्य और तदुभय (आलोचना और प्रतिक्रमण) के योग्य (४४८)।

विवेचन—जिसके करने से उपार्जित पाप का छेदन हो, उसे प्रायश्चित्त कहते है। उसके आगम मे यद्यपि दश भेद बतलाये गये हैं, तथापि यहा पर त्रिस्थानक के अनुरोध से आदि के तीन ही प्रायश्चित्तो का प्रस्तुत सूत्र मे निर्देश किया गया है। गुरु के सम्मुख अपने भिक्षाचर्या आदि मे लगे दोषो के निवेदन करने को आलोचना कहते हैं। मैंने जो दोष किये है वे मिथ्या हो, इस प्रकार 'मिच्छा मि दुक्कड' करने को प्रतिक्रमण कहते हैं। आलोचना और प्रतिक्रमण इन दोनो के करने को तदुभय कहते हैं। जो भिक्षादि जनित साधारण दोष होते हैं, उनकी शुद्धि केवल आलोचना से हो जाती है। जो सहसा अनाभोग से दुष्कृत हो जाते हैं, उनकी शुद्धि प्रतिक्रमण से होती है और जो राग-द्वेषादि-जनित दोष होते हैं, उनकी शुद्धि आलोचना और प्रतिक्रमण दोनो के करने से होती है।

अकर्मभूमि-सूत्र

४४९—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण तओ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, त जहा—हेमवते, हरिवासे, देवकुरा।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण भाग मे तीन अकर्मभूमिया कही गई हैं—हैमवत, हरिवर्ष और देवकुरु (४४९)।

४५०—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण तओ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, त जहा—उत्तरकुरा, रम्मगवासे, हेरण्णवए।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर भाग मे तीन अकर्मभूमिया कही गई हैं—उत्तर कुरु, रम्यकवर्ष और हैरण्यवत (४५०)।

वर्ष-(क्षेत्र)-सूत्र

४५१—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण तओ वासा पण्णत्ता, त जहा—भरहे, हेमवए, हरिवासे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण भाग मे तीन वर्ष (क्षेत्र) कहे गये हैं—भरत, हैमवत और हरिवर्ष (४५१)।

४५२—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण तम्रो वासा पण्णत्ता, त जहा—रम्मगवासे, हेरण्णवते, एरवए ।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर भाग मे तीन वर्ष कहे गये हैं—रम्यक वर्ष, हैरण्यवतवर्ष और ऐरवत वर्ष ।

वर्षधर पर्वत-सूत्र

४५३—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण तम्रो वासहरपव्वता पण्णत्ता, त जहा—चुल्लहिमवते, महाहिमवते, णिसढे ।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण भाग मे तीन वर्षधर पर्वत कहे गये है—क्षुल्ल हिमवान्, महाहिमवान् और निषधपर्वत ।

४५४—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण तम्रो वासहरपव्वत्ता पण्णत्ता, त जहा—णीलवते, रुप्पी, सिहरी ।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर भाग मे तीन वर्षधर पर्वत कहे गये हैं—नीलवान्, रुक्मी और शिखरी पर्वत ।

महाद्रह-सूत्र

४५५—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण तम्रो महादहा पण्णत्ता, त जहा—पउमदहे, महापउमदहे, तिगिछदहे ।

तत्थ ण तम्रो देवताम्रो महिड्डियाम्रो जाव पलिम्रोवमट्ठितीयाम्रो परिवसति, त जहा—सिरी, हिरी, धिती ।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण भाग मे तीन महाद्रह कहे गये हैं—पद्मद्रह, महापद्मद्रह और तिगिछद्रह । इन द्रहो पर एक पल्योपम की स्थितिवाली तीन देवियाँ निवास करती हैं—श्रीदेवी, ह्रीदेवी और धृतिदेवी ।

४५६—एव—उत्तरे ण वि, नवर—केसरिदहे, महापोडरीयदहे, पोंडरीयदहे । देवताम्रो—कित्ती, बुद्धी, लच्छी ।

इसी प्रकार मन्दर पर्वत के उत्तर भाग मे भी तीन महाद्रह कहे गये है—केशरीद्रह, महापुण्डरीकद्रह और पुण्डरीकद्रह । इन द्रहो पर भी एक पल्योपम की स्थितिवाली तीन देविया निवास करती है—कीर्तिदेवी, बुद्धिदेवी और लक्ष्मीदेवी ।

नदी सूत्र

४५७—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण चुल्लहिमवताम्रो वासधरपव्वताओ पउमदहाम्रो महादहाम्रो तम्रो महाणदीम्रो पवहति, त जहा—गगा, सिंधू, रोहितसा ।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण मे क्षुद्र हिमवान् वर्षधर पर्वत के पद्मद्रह नामक महाद्रह से तीन महानदियाँ प्रवाहित होती है—गगा, सिन्धु और रोहितांशा (४५७)।

४५८—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण सिहरीओ वासहरपव्वताओ पोंडरीयद्दहाओ महादहाओ तओ महाणदीओ पवहति, त जहा—सुवण्णकूला, रत्ता, रत्तवती।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर मे शिखरी वर्षधर पर्वत के पुण्डरीक महाद्रह से तीन महानदियाँ प्रवाहित होती है—सुवर्णकूला, रक्ता और रक्तवती (४५८)।

४५९—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणदीए उत्तरे ण तओ अतरणदीओ पण्णत्ताओ, त जहा—गाहावती दहवती, पकवती।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के पूर्वभाग मे सीता महानदी के उत्तर भाग म तीन अन्तर्नदियाँ कही गई है—ग्राहवती, द्रहवती और पकवती (४५९)।

४६०—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणदीए दाहिणे ण तओ अतरणदीओ पण्णत्ताओ, त जहा—तत्तजला, मत्तजला, उम्मत्तजला।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के पूर्व भाग मे सीता महानदी के दक्षिण भाग मे तीन अन्तनदिया कही गई है—तप्तजला, मत्तजला और उन्मत्तजला (४६०)।

४६१—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीतोदाए महाणदीए दाहिणे ण तओ अतरणदीओ पण्णत्ताओ, त जहा—खीरोदा, सीहसोता, अतोवाहिणी।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के पश्चिम मे सीतोदा महानदी के उत्तर भाग मे तीन अन्तर्नदिया कही गई हैं—क्षीरोदा, सिंहस्रोता और अन्तर्वाहिनी (४६१)।

४६२—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीतोदाए महाणदीए उत्तरे ण तओ अतरणदीओ पण्णत्ताओ, त जहा—उम्मिमालिणी, फेणमालिनी, गभीरमालिणी।

धातकीषड पुष्करवर-सूत्र

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के पश्चिम मे सीतोदा महानदी के दक्षिण भाग मे तीन अन्तर्नदियाँ कही गई हैं—ऊर्मिमालिनी, फेनमालिनी और गम्भीरमालिनी (४६२)।

४६३—एव—धायइसडे दीवे पुरत्थिमद्धे वि अकम्मभूमीओ आढवेत्ता जाव अतरणदीओत्ति णिरवसेस भाणियव्व जाव पुक्खरवरदीवड्डपच्चत्थिमद्धे तहेव णिरवसेस भाणियव्व।

इसी प्रकार धातकीषण्ड तथा अर्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध म जम्बूद्वीप के समान तीन तीन अकर्मभूमियाँ तथा अन्तनदिया आदि समस्त पद कहना चाहिए (४६३)।

भूकप सूत्र

४६४—तिहिं ठाणेहि देसे पुढवीए चलेज्जा, त जहा—

१ अहे ण इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उराला पोग्गला णिवतेज्जा। तते ण उराला पोग्गला णिवतमाणा देस पुढवीए चालेज्जा।

२ महोरगे वा महिड्ढीए जाव महेसक्खे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे उम्मज्ज णिमज्जिय करेमाणे देस पुढवीए चालेज्जा।

३ णागसुवण्णाण वा सगामसि वट्टमाणसि देस पुढवीए चलेज्जा।

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं देसे पुढवीए चलेज्जा।

तीन कारणा से पृथ्वी का एक देश (भाग) चलित (कम्पित) होता है—

१ इस रत्नप्रभा नाम की पृथ्वी के अधोभाग मे स्वभाव परिणत उदार (स्थूल) पुद्गल आकर टकराते है, उनके टकराने से पृथ्वी का एक देश चलित हो जाता है।

२ महर्द्धिक, महाद्युति, महाबल, तथा महानुभाव महेश नामक महोरग व्यतर देव रत्नप्रभा पृथ्वी के अधोभाग म उन्मज्जन-निमज्जन करता हुआ पृथ्वी के एक देश को चलायमान कर देता है।

३ नागकुमार और सुपणकुमार जाति के भवनवासी देवा का सग्राम होने पर पृथ्वी का एक देश चलायमान हो जाता है (४६४)।

४६५—तिहिं ठाणेहिं केवलकप्पा पुढवी चलेज्जा, त जहा—

१ अधे ण इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए घणवाते गुप्पेज्जा। तए ण से घणवाते गुविते समाणे घणोदहिमेएज्जा। तए ण से घणोदही एइए समाणे केवलकप्प पुढवि चालेज्जा।

२ देवे वा महिड्ढिए जाव महेसक्खे तहारूवस्स समणस्स माहणस्स वा इड्ढि जुति जस बल वीरिय पुरिसक्कार परक्कम उवदसेमाणे केवलकप्प पुढवि चालेज्जा।

३ दवासुरसगामसि वा वट्टमाणसि केवलकप्पा पुढवी चलेज्जा।

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं केवलकप्पा पुढवी चलेज्जा।

तीन कारणा से केवल कल्पा सम्पूण या प्राय सम्पूण पृथ्वी चलित होती है—

१ इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अधोभाग म घनवात क्षोभ को प्राप्त होता है। वह घनवात क्षुब्ध होता हुआ घनोदधिवात को क्षोभित करता है। तत्पश्चात् वह घनोदधिवात क्षोभित होता हुआ केवलकल्पा (सारी) पृथ्वी को चलायमान कर देता है।

२ कोई महर्धिक, महाद्युति, महाबल तथा महानुभाव महेश नामक देव तथारूप श्रमण माहन को अपनी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीय, पुरुषकार और पराक्रम दिखाता हुआ सम्पूण पृथ्वी को चलायमान कर देता है।

३ दवो तथा असुरो के परस्पर सग्राम होने पर सम्पूण पृथ्वी चलित हो जाती है।

इन तीन कारणो से सारी पृथ्वी चलित होती है (४६५)।

देवकिल्विषिक सूत्र

४६६—तिविधा देवकिब्बिसिया पण्णत्ता, त जहा—तिपलिओवमट्ठितीया, तिसागरोवमट्ठितीया तेरससागरोवमट्ठितीया।

१ कहि ण भंते ! तिपलिग्रोवमट्ठितीया देवकिब्बिसिया परिवसंति ?

उप्पिं जोइसियाणं, हिट्ठिं सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु, एत्थ णं तिपलिग्रोवमट्ठितीया देवकिब्बिसिया परिवसंति ।

२ कहि ण भंते ! तिसागरोवमट्ठितीया देवकिब्बिसिया परिवसंति ?

उप्पिं सोहम्मीसाणाणं कप्पाणं हेट्ठिं सणंकुमार माहिंदेसु कप्पेसु, एत्थ णं तिसागरोवमट्ठितीया देवकिब्बिसिया परिवसंति ।

३ कहि ण भंते ! तेरससागरोवमट्ठितीया देवकिब्बिसिया परिवसंति ?

उप्पिं बंभलोगस्स कप्पस्स, हेट्ठिं लंतगे कप्पे, एत्थ णं तेरससागरोवमट्ठितीया देवकिब्बिसिया परिवसंति ।

किल्विषिक देव तीन प्रकार के कहे गये है—तीन पल्योपम की स्थितिवाले, तीन सागरोपम की स्थितिवाले और तेरह सागरोपम की स्थितिवाले ।

१ प्रश्न भदन्त ! तीन पल्योपम की स्थितिवाले किल्विषिक देव कहा निवास करते हैं ?

उत्तर—आयुष्मन् ! ज्योतिष्क देवो के ऊपर तथा सौधम-ईशानकल्पा के नीचे, तीन पल्यापम की स्थितिवाले किल्विषिक देव निवास करते हैं ।

२ प्रश्न—भदन्त ! तीन सागरोपम की स्थितिवाले किल्विषिक देव कहाँ निवास करते ह ?

उत्तर—आयुष्मन् ! सौधर्म और ईशान कल्पो के ऊपर, तथा सनत्कुमार महेन्द्रकल्पा से नीचे, तीन सागरोपम की स्थितिवाले देव निवास करते हैं ।

३ प्रश्न—भदन्त ! तेरह सागरोपम की स्थितिवाले किल्विषिक देव कहाँ निवास करत हैं ?

उत्तर—आयुष्मन् ! ब्रह्मलोक कल्प के ऊपर तथा लान्तककल्प के नीचे तेरह सागरोपम की स्थितिवाले किल्विषिक देव निवास करते हैं ।

देवस्थिति सूत्र

४६७—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो बाहिरपरिसाए देवाणं तिण्णि पलिग्रोवमाइं ठिई पण्णत्ता । ४६८—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अब्भितरपरिसाए देवीणं तिण्णि पलिग्रोवमाइं ठिती पण्णत्ता । ४६९—ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो बाहिरपरिसाए देवीणं तिण्णि पलिग्रोवमाइं ठिती पण्णत्ता ।

देवेन्द्र, देवराज शक्र की बाह्य परिषद् के देवो की स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है (४६७) । देवेन्द्र, देवराज शक्र की आभ्यन्तर परिषद् की देवियो की स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है (४६८) । देवेन्द्र, देवराज ईशान की बाह्य परिषद की देवियो की स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है (४६९) ।

प्रायश्चित्त सूत्र

४७०—तिविहे पायच्छित्ते पण्णत्ते तं जहा—णाणपायच्छित्ते, दसणपायच्छित्ते, चरित्त पायच्छित्ते।

प्रायश्चित्त तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञानप्रायश्चित्त, दर्शनप्रायश्चित्त और चारित्र-प्रायश्चित्त (४७०)।

४७१—तओ अणुग्घातिमा पण्णत्ता, तं जहा—हत्थकम्मं करेमाणे, मेहुणं सेवेमाणे, राईभोयणं भुंजमाणे।

तीन अनुद्घात (गुरु) प्रायश्चित्त के योग्य कहे गये हैं—हस्त कर्म करने वाला, मैथुन सेवन करने वाला और रात्रिभोजन करने वाला (४७१)।

४७२—तओ पारंचिता पण्णत्ता, तं जहा—दुट्ठे पारंचिते, पमत्ते पारंचिते अण्णमण्णं करेमाणे पारंचिते।

तीन पारांचित प्रायश्चित्त के भागी कहे गये हैं—दुष्ट पारांचित, (तीव्रतम कषायदोष से दूषित तथा विषयदुष्ट साध्वीकामुक) प्रमत्त पारांचित (स्त्यानर्द्धिनिद्रावाला) और अन्योन्य मैथुन सेवन करने वाला (४७२)।

४७३—तओ अणवट्ठप्पा पण्णत्ता, तं जहा—साहम्मियाणं तेणियं करेमाणे, अण्णधम्मियाणं तेणियं करेमाणे, हत्थातालं दलयमाणे।

तीन अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त के योग्य कहे गये हैं—साधर्मिकों की चोरी करने वाला, अन्य-धार्मिकों की चोरी करने वाला और हस्तताल देने वाला (मारक प्रहार करने वाला) (४७३)।

विवेचन—लघु प्रायश्चित्त को उद्घातिम और गुरु प्रायश्चित्त को अनुद्घातिम कहते हैं। अर्थात् दिये गये प्रायश्चित्त में गुरु द्वारा कुछ कमी करना उद्घात कहलाता है। तथा जितना प्रायश्चित्त गुरु द्वारा दिया जावे उसे उतना ही पालन करना अनुद्घात कहा जाता है। जैसे १ मास के तप में अढाई दिन कम करना उद्घात प्रायश्चित्त है और पूरे मास भर तप करना अनुद्घात प्रायश्चित्त है। हस्तकर्म, मैथुनसेवन और रात्रि-भोजन करने वाले को अनुद्घात प्रायश्चित्त दिया जाता है। पारांचिक प्रायश्चित्त का आशय बहिष्कृत करना है। वह बहिष्कार लिंग (वेष) से, उपाश्रय ग्राम आदि क्षेत्र से नियतकाल से तथा तपश्चर्या से होता है। तत्पश्चात् पुनः दीक्षा दी जाती है। जो विषय सेवन से या कषायों की तीव्रता से दुष्ट है, स्त्यानर्द्धि निद्रावाला एवं परस्पर मैथुन-सेवी साधु है, उसे पारांचित प्रायश्चित्त दिया जाता है। तपस्या पूर्वक पुनः दीक्षा देने को अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त कहते हैं। जो साधर्मी जनों के या अन्य धार्मिक के वस्त्र-पात्रादि चुराता है या किसी साधु आदि को मारता-पीटता है, ऐसे साधु को यह अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त दिया जाता है। किस प्रकार के दोषसेवन से कौन सा प्रायश्चित्त दिया जाता है, इसका विशद विवेचन बृहत्कल्प आदि छेदसूत्रों में देखना चाहिए।

प्रव्रज्यादि अयोग्य सूत्र

४७४—तओ णो कप्पति पव्वावेत्तए, त जहा—पडए, वातिए, कीवे ।

तीन को प्रव्रजित करना नही कल्पता है—नपु सक, वातिक[1] (तीव्र वात रोग से पीडित) और क्लीव (वीर्य-धारण मे अशक्त) को (४७४)।

४७५—[तओ णो कप्पति]—मु डावित्तए, सिक्खावित्तए, उवट्ठावेत्तए, सभु जित्तए, सवासित्तए, त जहा—पडए, वातिए, कीवे ।

तीन को मुण्डित करना, शिक्षण देना,, महाव्रतो मे आरोपित करना, उनके साथ सभोग करना (आहार आदि का सबध रखना) और सहवास करना नही कल्पता है—नपु सक, वातिक और क्लीव को (४७५)।

अवाचनीय-वाचनीय सूत्र

४७६—तओ अवायणिज्जा पण्णत्ता, त जहा—अविणीए, विगतीपडिबद्धे, अविओसवितपाहुडे ।

तीन वाचना देने के अयोग्य कहे गये है—

१ अविनीत—विनय-रहित, उद्दण्ड ।

२ विकृति-प्रतिबद्ध—दूध, घी आदि रसो के सेवन मे आसक्त ।

३ अव्यवशमितप्राभृत—कलह को शान्त नही करने वाला (४७६)।

४७७—तओ कप्पति वाइत्तए, त जहा—विणीए, अविगतीपडिबद्धे, विओसवियपाहुडे ।

तीन को वाचना देना कल्पता है—विनीत, विकृति अप्रतिबद्ध और व्यवशमितप्राभृत (४७७)।

दु सज्ञाप्य सुसज्ञाप्य

४७८—तओ दुसण्णप्पा पण्णत्ता, त जहा—दुट्ठे, मूढे, वुग्गाहिते ।

तीन दु सज्ञाप्य (दुर्बोध्य) कहे गये हैं—दुष्ट, मूढ (विवेकशून्य) और व्युद्ग्राहित—कदाग्रही के द्वारा भडकाया हुआ (४७८)।

४७९—तओ सुसण्णप्पा पण्णत्ता, त जहा—अदुट्ठे, अमूढे, अवुग्गाहिते ।

तीन सुसज्ञाप्य (सुबोध्य) कहे गये है—अदुष्ट, अमूढ और अव्युद्ग्राहित (४७९)।

माण्डलिक पर्वत सूत्र

४८०—तओ मडलिया पव्वता पण्णत्ता, त जहा—माणुसुत्तरे, कु डलवरे, रुयगवरे ।

---

१ किसी निमित्त से वेदोदय होने पर जो मैथुनसेवन किए विना न रह सकता हो, उसे यहाँ वातिक समझना चाहिए। 'वातित' के स्थान पर पाठान्तर है—'वाहिय' जिसका अर्थ है रोगी ।

तीन माण्डलिक (वलयाकार वाले) पर्वत कहे गये हैं—मानुषोत्तर, कुण्डलवर और रुचकवर पर्वत (४८०)।

महतिमहालय-सूत्र

४८१—तओ महतिमहालया पण्णत्ता, त जहा—जबुद्दीवए मदरे मदरेसु, सयभूरमणे समुद्दे समुद्देसु, बभलोए कप्पे कप्पेसु।

तीन महतिमहालय (अपनी अपनी कोटि मे सबसे बडे) कहे गये हैं—मन्दर पर्वतो मे जम्बूद्वीप का सुमेरु पर्वत, समुद्रो मे स्वयम्भूरमण समुद्र और कल्पो मे ब्रह्मलोक कल्प (४८१)।

कल्पस्थिति सूत्र

४८२—तिविधा कप्पठिती पण्णत्ता, त जहा—सामाइयकप्पठिती, छेदोवट्ठावणियकप्पठिती, णिव्विसमाणकप्पठिती।

अहवा—तिविहा कप्पठिती पण्णत्ता, त जहा—णिव्विट्ठकप्पट्ठिती, जिणकप्पट्ठिती, थेरकप्पट्ठिती।

कल्पस्थिति तीन प्रकार की कही गई है—सामयिक कल्पस्थिति, छेदोपस्थापनीय कल्पस्थिति और निर्विशमान कल्पस्थिति।

अथवा कल्पस्थिति तीन प्रकार की कही गई है—निर्विष्टकल्पस्थिति, जिनकल्पस्थिति और स्थविरकल्पस्थिति।

विवेचन—साधुओ की आचार-मर्यादा को कल्पस्थिति कहते हैं। इस सूत्र के पूर्व भाग मे जिन तीन कल्पस्थितियो का नाम निर्देश किया गया है, उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

१ सामायिक कल्पस्थिति—सामायिक नामक सयम की कल्पस्थिति अर्थात् काल-मर्यादा को सामायिक कल्पस्थिति कहते हैं। यह कल्पस्थिति प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के समय मे अल्पकाल की होती है, क्योकि वहा छेदोपस्थापनीय कल्पस्थिति होती है। शेष बाईस तीर्थंकरो के समय मे तथा महाविदेह मे जीवन-पर्यन्त की होती है, क्योकि छेदोपस्थानीय-कल्पस्थिति नही होती है।

इस कल्प के अनुसार शय्यातर-पिण्ड परिहार, चातुर्यामधर्म का पालन, पुरुषज्येष्ठत्व और कृतिकर्म, ये चार आवश्यक होते हैं। तथा अचेलकत्व (वस्त्र का अभाव या अल्प वस्त्र ग्रहण) औद्देशिकत्व (एक साधु के उद्देश्य से बनाये गये) आहार का दूसरे साम्भोगिक-द्वारा अग्रहण, राजपिण्ड का अग्रहण, नियमित प्रतिक्रमण, मास कल्प विहार और पर्युषणा कल्प ये छह वैकल्पिक होते हैं।

२ छेदोपस्थापनीय कल्पस्थिति प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के समय मे ही होती है। इस कल्प के अनुसार उपर्युक्त दश कल्पो का पालन करना अनिवार्य है।

३ निर्विशमान कल्पस्थिति—परिहारविशुद्धि सयम की साधना करने वाले तपस्यारत साधुओ की आचार मर्यादा को निर्विशमान कल्पस्थिति कहते है।

४ निर्विष्टकायिक स्थिति—जिन तीन प्रकार की कल्पस्थितियो का सूत्र के उत्तर भाग म निर्देश किया गया है उसमे पहिली निर्विष्ट कल्पस्थिति है। परिहारविशुद्धि समय की साधना सम्पन्न कर चुकने वाले साधुग्रो की स्थिति को निर्विष्ट कल्पस्थिति कहते हैं। इसका खुलासा इस प्रकार है—

परिहारविशुद्धि सयम की साधना मे नौ साधु एक साथ अवस्थित होते हैं। उनमे चार साधु पहिले तपस्या प्रारम्भ करते है, उन्हे निर्विशमान कल्पस्थितिक साधु कहा जाता है। चार साधु उनकी परिचर्या करते हैं, तथा एक साधु वाचनाचार्य होता है। निर्विशमान साधुओं की तपस्या का क्रम इस प्रकार से रहता है—वे साधु ग्रीष्म, शीत और वर्षा ऋतु मे जघन्य रूप से क्रमश चतुर्थ-भक्त, षष्ठ भक्त और अष्टमभक्त की तपस्या करते है। मध्यम रूप से उक्त ऋतुओं मे क्रमश षष्ठभक्त, अष्टमभक्त और दशमभक्त की तपस्या करते है। तथा उत्कृष्ट रूप से उक्त ऋतुओं मे क्रमश अष्टमभक्त, दशम भक्त और द्वादशभक्त की तपस्या करते है। पारणा मे साभिग्रह आयम्बिल की तपस्या करते हैं। शेष पाचो साधु भी इस साधना-काल मे आयम्बिल तप करते हैं।

पूर्व के चार साधुओ की तपस्या समाप्त हो जाने पर शेष चार तपस्या प्रारम्भ करते हैं तथा साधना समाप्त कर चुकने वाले चारो साधु उनकी परिचर्या करते है, उन्हे निर्विष्टकल्पस्थिति वाला कहा जाता है। इन चारो की साधना उक्त प्रकार से समाप्त हो जाने पर वाचनाचार्य साधना मे अवस्थित होते है और शेष साधु उनकी परिचर्या करते है।

उक्त नवो ही साधु जघन्य रूप से नवे प्रत्याख्यान पूर्व की तीसरी आचारनामक वस्तु (अधिकार-विशेष) के ज्ञाता होते है और उत्कृष्ट रूप से कुछ कम दश पूर्वों के ज्ञाता होते है।

दिगम्बर-परम्परा मे परिहारविशुद्धि सयम की साधना के विषय मे कहा गया है कि जो व्यक्ति जन्म से लेकर तीस वर्ष तक गृहस्थी के सुख भोग कर तीर्थंकर के समीप दीक्षित होकर वर्ष-पृथक्त्व (तीन से नौ वर्ष) तक उनके पादमूल मे रह कर प्रत्याख्यान पूर्व का अध्ययन करता है, उसके परिहार-विशुद्धि सयम की सिद्धि होती है। इस तपस्या से उसे इस प्रकार की ऋद्धि प्राप्त हो जाती है कि उसके गमन करते, उठते, बैठते और आहार पान ग्रहण करते हुए किसी भी समय किसी भी जीव को पीडा नही पहुचती है।[1]

१ परिहारप्रधान शुद्धिसयत परिहारशुद्धिसयत। त्रिंशद्वर्षाणि यथेच्छया भोगमनुभूय सामान्यरूपेण विशेषरूपेण वा सयममादाय द्रव्य-क्षेत्र काल-भावगत परिमितापरिमितप्रत्याख्यान प्रतिपादक प्रत्याख्यान पूर्णमहार्णव समधिगम्य व्यपगतसकलसशयस्तपोविशेषात् समुत्पन्नपरिहारर्द्धिरस्तीर्थकरपादमूले परिहार-सयममादत्ते। एवमादाय स्थान गमन चक्रमणाशन-पानासनादिषु व्यापारेष्वशेषप्राणिपरिहरणदक्ष परिहार शुद्धिसयतो भवति।

(धवला टीका पुस्तक १, पृ० ३७०-३७१)

तीस वासो जम्मे वासपुधत्त च तित्थयरमूले।
पच्चक्खाण पढिदो सझूणदुगाउयविहारो॥

(गो० जीवकाड, गाथा ४७२)

परिहारर्द्धिसमतो जीवो षट्कायसकुले विहरन्।
पयसेव पद्मपत्र न लिप्यते पापनिवहेन॥१॥

(गो० जीवकाड, जीवप्रबोधिका टीका उद्धृत)

५ जिनकल्पस्थिति—दीर्घकाल तक संघ मे रह कर संयम साधना करने के पश्चात् जो साधु और भी अधिक संयम की साधना करने के लिए गण गच्छ आदि से निकल कर एकाकी विचरते हुए एकान्तवास करते है उनकी आचार-मर्यादा को जिनकल्पस्थिति कहते है। वे प्रतिदिन आयबिल करते हैं, दश गुण वाले स्थण्डिल भूमि मे उच्चार-प्रस्रवण करते है, तीसरे प्रहर मे भिक्षा लेते हैं, मासकल्प विहार करते हैं, तथा एक गली मे छह दिनो से पहिले भिक्षा के लिए नही जाते है। वे वज्रऋषभनाराच संहनन के धारक और सभी प्रकार के घोरातिघोर उपसर्गों को सहन करने के सामर्थ्य वाले होते है।

६ स्थविरकल्पस्थिति—जो आचार्यादि के गण गच्छ से प्रतिबद्ध रह कर संयम की साधना करते है, ऐसे साधुओ की आचार-मर्यादा स्थविरकल्पस्थिति कहलाती है। स्थविरकल्पी साधु पठन-पाठन, शिक्षा, दीक्षा और व्रत ग्रहण आदि कार्यो मे सलग्न रहते है, अनियत वासी होते है, तथा साधु-समाचारी का सम्यक् प्रकार से परिपालन करते है।

यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि स्थविर कल्पस्थिति मे सामायिक चारित्र का पालन करते हुए छेदोपस्थापनीय चारित्र होता है। उसके सम्पन्न होने पर परिहारविशुद्धि चारित्र के भेद रूप निर्विशमान और तदनन्तर निर्विष्टकायिक संयम की साधना की जाती है और अन्त मे जिनकल्पस्थिति की योग्यता होने पर उसे अंगीकार किया जाता है।

शरीर-सूत्र

४८३—णेरइयाणं तओ सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—वेउव्विए तेयए, कम्मए। ४८४—असुरकुमाराणं तओ सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—वेउव्विए, तेयए, कम्मए। ४८५—एवं—सव्वेसिं देवाणं। ४८६—पुढविकाइयाणं तओ सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—ओरालिए, तेयए, कम्मए। ४८७—एवं—वाउकाइयवज्जाणं जाव चउरिंदियाणं।

नारक जीवो के तीन शरीर कहे गये हैं—वैक्रिय शरीर (नाना प्रकार की विक्रिया करने मे समर्थ शरीर) तैजस शरीर (तैजस वर्गणाओ मे निर्मित सूक्ष्म शरीर) और कार्मण शरीर (कर्म वर्गणात्मक सूक्ष्म शरीर)(४८३)। असुरकुमारो के तीन शरीर कहे गये हैं—वैक्रिय शरीर, तैजस शरीर और कार्मण शरीर (४८४)। इसी प्रकार सभी देवो के तीन शरीर जानना चाहिए (४८५)। पृथ्वी-कायिक जीवो के तीन शरीर कहे गये है—औदारिक शरीर (औदारिक पुद्गल वर्गणाओ से निर्मित अस्थि-मासमय शरीर) तैजस शरीर और कार्मण शरीर (४८६)। इसी प्रकार वायुकायिक जीवो को छोडकर चतुरिन्द्रिय तक के सभी जीवो के तीन शरीर जानना चाहिए (वायुकायिको के चार शरीर होने से उन्हे छोड दिया गया है) (४८७)।

प्रत्यनीक-सूत्र

४८८—गुरुं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—आयरियपडिणीए, उवज्झाय-पडिणीए, थेरपडिणीए।

गुरु की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक (प्रतिकूल व्यवहार करने वाले) कहे गये हैं—आचार्य-प्रत्यनीक, उपाध्याय प्रत्यनीक और स्थविर-प्रत्यनीक।

४८९—गतिं पडुच्च तम्रो पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—इहलोगपडिणीए, परलोगपडिणीए, दुहम्रोलोगपडिणीए ।

गति की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक कहे गये है—इहलोक-प्रत्यनीक (इन्द्रियार्थ से विरुद्ध करने वाला, यथा-पचाग्नि तपस्वी) परलोक प्रत्यनीक (इन्द्रियविषयो मे तल्लीन) और उभय-लोक प्रत्यनीक (चोरी आदि करके इन्द्रिय-विषयो मे तल्लीन) (४८९) ।

४९०—समूह पडुच्च तम्रो पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—कुलपडिणीए, गणपडिणीए, सघ पडिणीए ।

समूह की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक कहे गये है—कुल-प्रत्यनीक, गण-प्रत्यनीक और सघ-प्रत्यनीक (४९०) ।

४९१—अणुकम्प पडुच्च तम्रो पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—तवस्सिपडिणीए, गिलाणपडिणीए, सेहपडिणीए ।

अनुकम्पा की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं—तपस्वी-प्रत्यनीक, ग्लान प्रत्यनीक और शैक्ष-प्रत्यनीक (४९१) ।

४९२—भाव पडुच्च तम्रो पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—णाणपडिणीए, दसणपडिणीए चरित्तपडिणीए ।

भावकी अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं—ज्ञान-प्रत्यनीक, दर्शन-प्रत्यनीक और चारित्र-प्रत्यनीक (४९२) ।

४९३—सुय पडुच्च तम्रो पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—सुत्तपडिणीए, अत्थपडिणीए, तदुभय पडिणीए ।

श्रुत की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं—सूत्र-प्रत्यनीक, अर्थ-प्रत्यनीक और तदुभय-प्रत्यनीक (४९३) ।

विवेचन—प्रत्यनीक शब्द का अर्थ प्रतिकूल आचरण करने वाला व्यक्ति है । आचार्य और उपाध्याय दीक्षा और शिक्षा देने के कारण गुरु हैं, तथा स्थविर वयोवृद्ध, तपोवृद्ध एव ज्ञान-गरिमा की अपेक्षा गुरु तुल्य हैं । जो इन तीनो के प्रतिकूल आचरण करता है, उनकी यथोचित विनय नही करता, उनका अवर्णवाद करता और उनका छिद्रान्वेषण करता है वह गुरु-प्रत्यनीक कहलाता है ।

जो इस लोक सम्बन्धी प्रचलित व्यवहार के प्रतिकूल आचरण करता है वह इह-लोक प्रत्यनीक है। जो परलोक के योग्य सदाचरण न करके कदाचरण करता है, इन्द्रियो के विषयो मे आसक्त रहता और परलोक का निषेध करता है वह परलोक प्रत्यनीक कहलाता है । दोनो लोकों के प्रतिकूल आचरण करने वाला व्यक्ति उभयलोक-प्रत्यनीक कहा जाता है ।

साधु के लघु-समुदाय को कुल कहते है, अथवा एक आचार्य की शिष्य परम्परा को कुल कहते हैं । परस्पर-सापेक्ष तीन कुलों के समुदाय को गण कहते है । तथा सयम की साधना करने वाले सभी

माधुग्रो के समुदाय को सघ कहते है । कुल, गण या सघ का अवर्णवाद करने वाला, उन्हे स्नानादि न करने से म्लेच्छ, या अस्पृश्य कहने वाला व्यक्ति समूह की अपेक्षा प्रत्यनीक कहा जाता है ।

मासोपवास आदि प्रखर तपस्या करने वाले को तपस्वी कहते है । रोगादि से पीडित साधु को ग्लान कहते हैं और नव-दीक्षित साधु को शैक्ष कहते ह । ये तीना ही अनुकम्पा के पात्र कहे गये है । उनके ऊपर जा न स्वय अनुकम्पा करता है, न दूसरो को उनकी सेवा-सुश्रूषा करने देता है, प्रत्युत उनके प्रतिकूल आचरण करता है, उस अनुकम्पा की अपेक्षा प्रत्यनीक कहा जाता है ।

ज्ञान-दर्शन-चारित्रात्मक भाव, कर्म मुक्ति एव आत्मिक सुख-शान्ति के कारण है, उन्हे व्यर्थ बताना और उनकी विपरीत प्ररूपणा करने वाला व्यक्ति भाव-प्रत्यनीक कहलाता ह ।

श्रुत (शास्त्राभ्यास) के तीन अग है—मूल सूत्र, उसका अर्थ तथा दोनो का समन्वित अभ्यास । इनके प्रतिकूल श्रुत की अवना करने वाले और विपरीत अभ्यास करने वाले व्यक्ति को श्रुत-प्रत्यनीक कहते है ।

अग सूत्र

४६४—तम्रो पितियगा पण्णत्ता, त जहा—अट्ठी, अट्ठिमिजा, केसमसुरोमणहे ।

तीन पित-अग (पिता के वीर्य से बनने वाले) कहे गये हैं—अस्थि, मज्जा और केश-दाढी-मूँछ, रोम एव नख (४६४) ।

४६५—तम्रो माउयगा पण्णत्ता, त जहा—मसे, सोणिते, मत्थुलिगे ।

तीन मातृ अग (माता के रज से बनने वाले अग) कहे गये हैं—मास, शोणित (रक्त) और मस्तुलिग (मस्तिष्क) (४६५) ।

मनोरथ सूत्र

४६६—तिहि ठाणेहिं समणे णिग्गथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति, त जहा—

१ कया ण अह अप्प वा बहुय वा सुय अहिज्जिस्सामि ?

२ कया ण अह एकल्लविहारपडिम उवसपज्जित्ता ण विहरिस्सामि ?

३ कया ण अह अपच्छिममारणतियसलेहणा झूसणा झूसिते भत्तपाणपडियाइक्खिते पाओवगते काल अणवकखम णे विहरिस्सामि ?

एव समणसा सवयसा सकायसा पागडेमाणे समणे निग्गथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति ।

तीन कारणो से श्रमण निग्रन्थ महानिर्जरा और महापर्यवसान वाला होता है—

१ कब मैं अल्प या बहुत श्रुत का अध्ययन करूगा ?

२ कब मै एकल विहार प्रतिमा को स्वीकार कर विहार करूगा ?

३ कब मै अपश्चिम मारणान्तिक सलेखना की आराधना से युक्त होकर, भक्त-पान का परित्याग कर पादोपगमन सथारा स्वीकार कर मृत्यु की आकाक्षा नही करता हुआ विचरूगा ?

इस प्रकार उत्तम मन, वचन, काय से उक्त भावना करता हुआ श्रमण निग्र न्थ महानिजरा तथा महापयवसान वाला होता है।

४९७—*तिहिं ठाणेहिं समणोवासए महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति, त जहा—*

१ कया ण अह अप्प या बहुय वा परिग्गह परिचइस्सामि ?

२ कया ण अह मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारित पव्वइस्सामि ?

३ कया ण अह अपच्छिममारणतियसलेहणा-झूसणा झूसिते भत्तपाणपडियाइक्खिते पाओवगते काल अणवकखमाणे विहरिस्सामि ?

एव समणसा सवयसा सकायसा पागडेमाणे समणोवासए महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति।

तीन कारणो से श्रमणोपासक (गहस्थ श्रावक) महानिजरा और महापयवसान वाला होता है—

१ कब मैं अल्प या बहुत परिग्रह का परित्याग करूगा ?

२ कब मैं मुण्डित होकर अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित होऊगा ?

३ कब मैं अपश्चिम मारणान्तिक सलेखना की आराधना से युक्त होकर भक्त पान का परित्याग कर, प्रायोपगमन सथारा स्वीकार कर मृत्यु की आकाक्षा नही करता हुआ विचरूगा ?

इस प्रकार उत्तम मन, वचन, काय से उक्त भावना करता हुआ श्रमणोपासक महानिजरा और महापयवसान वाला होता है (४९७)।

विवेचन—सात तत्त्वो मे निजरा एक प्रधान तत्त्व है। बधे हुए कर्मों के झडने को निजरा कहते हैं। यह कम-निर्जरा जब विपुल प्रमाण मे असख्यात गुणित क्रम से होती है, तब वह महानिजरा कही जाती है। महापयवसान के दो अथ होते हैं—समाधिमरण और अपुनमरण। जिस व्यक्ति के कर्मों की महानिजरा होती है, वह समाधिमरण को प्राप्त हो या तो कम-मुक्त होकर अपुनमरण को प्राप्त होता है, अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से छूट कर सिद्ध हो जाता है। अथवा उत्तम जाति के देवो मे उत्पन्न होकर फिर क्रम से मोक्ष प्राप्त करता है।

उक्त दो सूत्रो मे से प्रथम सूत्र मे जो तीन कारण महानिजरा और महापयवसान के बताये गये हैं वे श्रमण (साधु) की अपेक्षा से और दूसरे सूत्र मे श्रमणोपासक (श्रावक) की अपेक्षा से कहे गये हैं। उन तीन कारणो मे मारणान्तिक सलेखना कारण दोनो के समान हैं। श्रमणोपासक का दूसरा कारण घर त्याग कर साधु बनने का भावना रूप है। तथा श्रमण का दूसरा कारण एकल विहार (प्रतिमा धारण) की भावना वाला है।

एकल विहार प्रतिमा का अर्थ है—अकेला रहकर आत्म-साधना करना। भगवान् ने तीन स्थितियो मे अकेले विचरने की अनुज्ञा दी है—

१ एकाकीविहार प्रतिमा-स्वीकार करने पर।

२ जिनकल्प-प्रतिमा स्वीकार करने पर।

३ मासिक आदि भिक्षु-प्रतिमाए स्वीकार करने पर।

एकाकीविहार-प्रतिमा वाले के लिए १ श्रद्धावान, २ सत्यवादी, ३ मेधावी, ४ बहुश्रुत, ५ शक्तिमान ६ अल्पाधिकरण, ७ धृतिमान् और ८ वीर्यसम्पन्न होना आवश्यक है। इन आठो गुणो का विवेचन आठवे स्थान के प्रथम सूत्र की व्याख्या मे किया जावेगा।

पुद्गल प्रतिघात सूत्र

४९८—तिविहे पोग्गलपडिघाते पण्णत्ते, त जहा—परमाणुपोग्गले परमाणुपोग्गल पप्प पडिहण्णिज्जा, लुक्खत्ताए वा पडिहण्णिज्जा, लोगते वा पडिहण्णिज्जा।

तीन कारणो से पुदगलो का प्रतिघात (गति स्खलन) कहा गया है—

१ एक पुद्गल-परमाणु दूसरे पुद्गल परमाणु से टकरा कर प्रतिघात को प्राप्त होता है।

२ अथवा रूक्षरूप से परिणत होकर प्रतिघात को प्राप्त होता है।

३ अथवा लोकान्त मे जाकर प्रतिघात को प्राप्त होता है क्योकि आगे गतिसहायक धर्मास्तिकाय का अभाव है (४९८)।

चक्षु-सूत्र

४९९—तिविहे चक्खू पण्णत्ते, त जहा—एगचक्खू, बिचक्खू, तिचक्खू।

छउमत्थे ण मणुस्से एगचक्खू, देवे बिचक्खू, तहारूवे समणे वा माहणे वा उप्पण्णणाणदसणधरे तिचक्खुत्ति वत्तव्व सिया।

चक्षुष्मान् (नेत्रवाले) तीन प्रकार के कहे गये हैं—एकचक्षु, द्विचक्षु और त्रिचक्षु।

१ छद्मस्थ (अल्पज्ञानी बारहवें गुणस्थान तक का) मनुष्य एक चक्षु होता है।

२ देव द्विचक्षु होता है, क्योकि उसके द्रव्य नेत्र के साथ अवधिज्ञान रूप दूसरा भी नेत्र होता है।

३ द्रव्यनेत्र के साथ केवलज्ञान और केवलदर्शन का धारक श्रमण-माहन त्रिचक्षु कहा गया है (४९९)।

अभिसमागम सूत्र

५००—तिविधे अभिसमागमे पण्णत्ते, त जहा—उड्ढ, अह, तिरिय।

जया ण तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अतिसेसे णाणदसणे समुप्पज्जति, से ण तप्पढमताए उड्ढमभिसमेति, ततो तिरिय, ततो पच्छा अहे। अहोलोगे ण दुरभिगमे पण्णत्ते समणाउसो!

अभिसमागम (वस्तु-स्वरूप का यथार्थज्ञान) तीन प्रकार का कहा गया है—ऊर्ध्व अभिसमागम, तिर्यक-अभिसमागम और अध -अभिसमागम।

जब तथारूप श्रमण-माहनको अतिशय-युक्त ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होता है, तब वह सर्वप्रथम ऊर्ध्वलोक को जानता है। तत्पश्चात् तिर्यक्लोक को जानता है और उसके पश्चात् अधोलोक को जानता है।

हे आयुष्मन् श्रमण ! अधोलोक सबसे अधिक दुरभिगम कहा गया है (५००)।

ऋद्धि सूत्र

५०१—तिविधा इड्ढी पण्णत्ता, त जहा—देविड्ढी, राइड्ढी, गणिड्ढी।

ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है—देव-ऋद्धि, राज्य-ऋद्धि और गणि(आचार्य)-ऋद्धि।

५०२—देविड्ढी तिविहा पण्णत्ता, त जहा—विमाणिड्ढी, विगुव्वणिड्ढी, परियारणिड्ढी।

अहवा—देविड्ढी तिविहा पण्णत्ता, त जहा—सचित्ता, अचित्ता, मीसिता।

देव-ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है—विमान-ऋद्धि, वैक्रिय-ऋद्धि और परिचारणा-ऋद्धि।

अथवा देव-ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है—सचित्त-ऋद्धि, (देवी-देवादिका परिवार) अचित्त-ऋद्धि वस्त्र आभूषणादि और मिश्र-ऋद्धि-वस्त्राभरणभूषित देवी आदि (५०२)।

५०३—राइड्ढी तिविधा पण्णत्ता, त जहा—रण्णो अतियाणिड्ढी, रण्णो णिज्जाणिड्ढी, रण्णो बल वाहण कोस-कोट्ठागारिड्ढी।

अहवा—राइड्ढी तिविहा पण्णत्ता, त जहा—सचित्ता, अचित्ता, मीसिता।

राज्य-ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है—

१ अतियान ऋद्धि—नगरप्रवेश के समय की जाने वाली तोरण द्वारादि रूप शोभा।

२ निर्याण-ऋद्धि—नगर से बाहर निकलने का ठाठ।

३ कोष-कोष्ठागार-ऋद्धि—खजाने और धान्य-भाण्डारादि रूप।

अथवा-राज्य-ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है—

१ सचित्त-ऋद्धि—रानी, सेवक, परिवारादि।

२ अचित्त-ऋद्धि—वस्त्र, आभूषण, अस्त्र-शस्त्रादि।

३ मिश्र-ऋद्धि—अस्त्र-शस्त्र धारक सेना आदि (५०३)।

विवेचन—जब कोई राजा युद्धादि को जीतकर नगर म प्रवेश करता है, या विशिष्ट अतिथि जब नगर मे आते हैं, उस समय की जाने वाली नगर-शोभा या सजावट अतियान ऋद्धि कही जाती है। जब राजा युद्ध के लिये या किसी मागलिक काय के लिए नगर से बाहर ठाठ-बाट के साथ निकलता है उस समय की जाने वाली शोभा-सजावट निर्याण-ऋद्धि कहलाती है।

५०४—गणिड्ढी तिविहा पण्णत्ता, त जहा—णाणिड्ढी, दसणिड्ढी, चरित्तिड्ढी।
अहवा—गणिड्ढी तिविहा पण्णत्ता, त जहा—सचित्ता, अचित्ता, मीसिता।
गणि-ऋद्धि तीन प्रकार की कही है—
१ ज्ञान-ऋद्धि—विशिष्ट श्रुत-सम्पदा की प्राप्ति।
२ दर्शन ऋद्धि—प्रवचन मे नि शकितादि, एव प्रभावक प्रवचनशक्ति आदि।
३ चारित्र-ऋद्धि—निरतिचार चारित्र प्रतिपालना आदि।
अथवा गणि-ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है—
१ सचित्त-ऋद्धि—शिष्य-परिवार आदि।
२ अचित्त-ऋद्धि—वस्त्र, पात्र, शास्त्र-सग्रहादि।
३ मिश्र-ऋद्धि—वस्त्र-पात्रादि से युक्त शिष्य-परिवारादि (५०४)।

गौरव सूत्र

५०५—तओ गारवा पण्णत्ता, त जहा—इड्ढीगारवे, रसगारवे, सातागारवे।
गौरव तीन प्रकार के कहे गये है—
१ ऋद्धि-गौरव—राजादि के द्वारा पूज्यता का अभिमान।
२ रस-गौरव—दूध, घृत, मिष्ट रसादि की प्राप्ति का अभिमान।
३ साता-गौरव—सुखशीलता, सुकुमारता सबधी गौरव (५०५)।

करण सूत्र

५०६—तिविहे करणे पण्णत्ते, त जहा—धम्मिए करणे, अधम्मिए करणे, धम्मियाधम्मिए करणे।

करण तीन प्रकार का कहा गया है—
१ धार्मिककरण—सयमधर्म के अनुकूल अनुष्ठान।
२ अधार्मिक-करण—सयमधर्म के प्रतिकूल आचरण।
३ धार्मिकाधार्मिक-करण—कुछ धर्माचरण और कुछ अधर्माचरणरूप प्रवृत्ति (५०६)।

स्वाख्यातधर्म-सूत्र

५०७—तिविहे भगवता धम्मे पण्णत्ते, त जहा—सुअधिज्झिते, सुज्झाइते, सुतवस्सिते। जया सुअधिज्झित भवति तदा सुज्झाइत भवति, जया सुज्झाइत भवति तदा सुतवस्सित भवति, से सुअधिज्झिते सुज्झाइते सुतवस्सिते सुयक्खाते ण भगवता धम्मे पण्णत्ते।

भगवान् ने तीन प्रकार का धर्म कहा है—सु-अधीत (समीचीन रूप से अध्ययन किया गया)। सु-ध्यात (समीचीन रूप से चिन्तन किया गया) और सु तपस्यित (सु-आचरित)।

जब धम सु-अधीत होता ह, तब वह सु-ध्यात होता है।

जब वह सु-ध्यात होता है, तब वह सु-तपस्यित होता है।

सु-अधीत, सु-ध्यात और सु तपस्यित धम को भगवान ने स्वाख्यात धम कहा है (५०७)।

ज्ञ अज्ञ सूत्र

५०८—तिविधा वावत्ती पण्णत्ता, त जहा—जाणू, अजाणू, वितिगिच्छा।

व्यावत्ति (पापरूप कार्यों से निवृत्ति) तीन प्रकार की कही गई है—ज्ञान पूवक, अज्ञान-पूवक और विचिकित्सा (सशयादि)-पूवक (५०८)।

५०९—[तिविधा अज्झोववज्जणा पण्णत्ता, त जहा—जाणू, अजाणू, वितिगिच्छा।

[अध्युपपादन (इद्रिय विषयानुसग) तीन प्रकार का कहा गया ह—ज्ञानपूवक, अज्ञान-पूवक और विचिकित्सा-पूवक (५०९)।

५१०—*तिविधा परियावज्जणा पण्णत्ता, त जहा—जाणू, अजाणू, वितिगिच्छा]*।

पर्यापादन (विषय सेवन) तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञानपूवक, अज्ञान-पूवक और विचिकित्सा-पूर्वक (५१०)।]

अन्त-सूत्र

५११—*तिविधे अते पण्णत्ते, त जहा—लोगते, वेयते, समयते*।

अत (रहस्य-निणय) तीन प्रकार का कहा गया है—

१ लोकान्त निणय—लौकिक शास्त्रा के रहस्य का निणय।

२ वेदान्त-निणय—वैदिक शास्त्रो के रहस्य का निणय।

३ समयान्त-निणय—जनसिद्धान्तो के रहस्य का निणय (५११)।

जिन-सूत्र

५१२—तओ जिणा पण्णत्ता, त जहा—ओहिणाणजिणे मणपज्जवणाणजिणे, केवलणाणजिणे।
५१३—तओ केवली पण्णत्ता, त जहा—ओहिणाणकेवली, मणपज्जवणाणकेवली, केवलणाणकेवली।
५१४—तओ अरहा पण्णत्ता, त जहा—ओहिणाणअरहा, मणपज्जवणाणअरहा, केवलणाणअरहा।

जिन तीन प्रकार के कहे गये हैं—अवधिज्ञानी जिन, मन पयवज्ञानी जिन और केवलज्ञानी जिन (५१२)। केवली तीन प्रकार के कहे गये हैं—अवधिज्ञान केवली, मन पयवज्ञान केवली और केवलज्ञान केवली (५१३)। अहन्त तीन प्रकार के कहे गये है—अवधिज्ञानी अहन्त, मन पयवज्ञानी अहन्त और केवलज्ञानी अर्हन्त (५१४)।

लेश्या-सूत्र

५१५—तओ लेसाओ दुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा। ५१६—तओ लेसाओ सुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तेउलेसा, पम्हलेसा, सुक्कलेसा। ५१७—[तओ लेसाओ—दोग्गतिगामिणीओ संकिलिट्ठाओ, अमणुण्णाओ, अविसुद्धाओ, अप्पसत्थाओ, सीत-लुक्खाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा। ५१८—तओ लेसाओ—सोगति-गामिणीओ, असंकिलिट्ठाओ मणुण्णाओ, विसुद्धाओ, पसत्थाओ णिद्धुण्हाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तेउलेसा, पम्हलेसा सुक्कलेसा।]

तीन लेश्याएँ दुरभि गंध (दुर्गन्ध) वाली कही गई हैं—कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोत-लेश्या (५१५)। तीन लेश्यायें सुरभिगंध (सुगन्ध) वाली कही गई हैं—तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या (५१६)। (तीन लेश्यायें दुर्गतिगामिनी, संक्लिष्ट, अमनोज्ञ, अविशुद्ध, अप्रशस्त और शीत-रूक्ष कही गई हैं—कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या (५१७)। तीन लेश्याएँ सुगतिगामिनी असंक्लिष्ट, मनोज्ञ, विशुद्ध, प्रशस्त और स्निग्ध-उष्ण कही गई हैं—तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या (५१८))।

मरण-सूत्र

५१९—तिविहे मरणे पण्णत्ते, तं जहा—बालमरणे, पंडियमरणे, बालपंडियमरणे। ५२०—बालमरणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—ठितलेस्से, संकिलिट्ठलेस्से, पज्जवजातलेस्से। ५२१—पंडियमरणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—ठितलेस्से, असंकिलिट्ठलेस्से पज्जवजातलेस्से। ५२२—बालपंडियमरणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—ठितलेस्से, असंकिलिट्ठलेस्से अपज्जवजातलेस्से।

मरण तीन प्रकार का कहा गया है—बाल-मरण (असंयमी का मरण) पंडित मरण (संयमी का मरण) और बाल-पंडित मरण (संयमासंयमी श्रावक का मरण) (५१९)। बाल-मरण तीन प्रकार का कहा गया है—स्थितलेश्य (स्थिर संक्लिष्ट लेश्या वाला) संक्लिष्टलेश्य (संक्लेश-वृद्धि से युक्त लेश्या वाला) और पर्यवजातलेश्य (विशुद्धि की वृद्धि से युक्त लेश्या वाला) (५२०)। पंडित-मरण तीन प्रकार का कहा गया है—स्थितलेश्य (स्थिर विशुद्ध लेश्या वाला) असंक्लिष्टलेश्य (संक्लेश से रहित लेश्या वाला) और पर्यवजात लेश्य (प्रवर्धमान विशुद्ध लेश्या वाला) (५२१)। बाल पंडित मरण तीन प्रकार का कहा गया है—स्थितलेश्य, असंक्लिष्टलेश्य, और अपर्यवजात-लेश्य (हानि वृद्धि से रहित लेश्या वाला) (५२२)।

विवेचन—मरण के तीन भेदों में पहला बालमरण है। बाल का अर्थ है अज्ञानी, असंयत या मिथ्यादृष्टि जीव। उसके मरण को बाल-मरण कहते हैं। उसके तीन प्रकारों में पहला भेद स्थितलेश्य है। जब जीव की लेश्या न विशुद्धि को प्राप्त हो और न संक्लेश को प्राप्त हो रही हो, ऐसी स्थितलेश्या वाली दशा को स्थितलेश्य कहते हैं। यह स्थितलेश्य मरण तब संभव है, जब कि कृष्णादि लेश्या वाला जीव कृष्णादि लेश्या वाले नरक में उत्पन्न होता है। बाल-मरण का दूसरा भेद संक्लिष्टलेश्य मरण है।

सक्लेश की वृद्धि होते हुए अज्ञानी जीव का जो मरण होता है, वह सक्लिष्टलेश्य मरण कहलाता है। यह तब सभव है, जबकि नीलादि लेश्यावाला जीव मरण कर कृष्णादि लेश्यावाले नारको मे उत्पन्न होता है। विशुद्धि की वृद्धि से युक्त लेश्या वाले अज्ञानी जीव के मरण को पर्यवजात लेश्य मरण कहते है। यह तब होता है जब कि कृष्णादि लेश्या वाला जीव मर कर नीलादि लेश्या वाले नारको मे उत्पन्न होता है। पडितमरण सयमी पुरुष का ही होता है, अत उसमे लेश्या की सक्लिश्यमानता नही है, अत वह वस्तुत दो ही प्रकार का होता है। बाल-पडित मरण सयतासयत श्रावक के होता है और वह स्थित लेश्या वाला होता है, अत उसके सक्लिश्यमान और पर्यवजात लेश्या सभव नही होने से स्थितलेश्य रूप एक ही मरण होता है। इसी कारण उसका मरण असक्लिष्टलेश्य और अपर्यवजातलेश्य कहा गया है।

अश्रद्धालु सूत्र

५२३—तओ ठाणा अव्ववसितस्स अहिताए असुभाए अखमाए अणिस्सेसाए अणाणुगामियत्ताए भवति, त जहा—

१ से ण मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइए णिग्गथे पावयणे सकिते कखिते वितिगिच्छिते भेदसमावण्णे कलुससमावण्णे णिग्गथ पावयण णो सद्दहति णो पत्तियति णो रोएति, त परिस्सहा अभिजु जिय अभिजु जिय अभिभवति, णो से परिस्सहे अभिजु जिय अभिजु जिय अभिभवइ।

२ से ण मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारित पव्वइए पचहि महव्वएहि सकिते [कखिते वितिगिच्छिते भेदसमावण्णे] कलुससमावण्णे पच महव्वताइ णो सद्दहति [णो पत्तियति णो रोएति, त परिस्सहा अभिजु जिय अभिजु जिय अभिभवति] णो से परिस्सहे अभिजु जिय अभिजु जिय अभिभवति।

३ से ण मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइए छहि जीवणिकाएहि [सकिते कखिते वितिगिच्छिते भेदसमावण्णे कलुससमावण्णे छ जीवणिकाए णो सद्दहति णो पत्तियति णो रोएति, त परिस्सहा अभिजु जिय अभिजु जिय अभिभवति, णो से परिस्सहे अभिजु जिय अभिजु जिय] अभिभवति।

अव्यवस्थित (अश्रद्धालु) निग्र न्थ के तीन स्थान अहित, अशुभ, अक्षम, अनि श्रेयस और अनानुगामिता के कारण होते हैं—

१ वह मुण्डित हो अगार से अनगार धर्म मे प्रव्रजित होकर निग्र न्थ प्रवचन मे शकित, काक्षित, विचिकित्सक, भेदसमापन्न और कलुष-समापन्न होकर निग्र न्थ प्रवचन पर श्रद्धा नही करता, प्रतीति नही करता, रुचि नही करता। उसे परीषह आकर अभिभूत कर देते हैं, वह परीषहो से जूझ-जूझ कर उन्हे अभिभूत नही कर पाता।

२ वह मुण्डित हो अगार से अनगार धर्म मे प्रव्रजित होकर पाँच-महाव्रतो मे शकित, (काक्षित, विचिकित्सिक, भेदसमापन्न) और कलुषसमापन्न होकर पाँच महाव्रतो पर श्रद्धा नही करता, प्रतीति नही करता, रुचि नही करता। उसे परीषह आकर अभिभूत कर देते हैं, वह परीषहो से जूझ-जूझ कर] उन्हे अभिभूत नही कर पाता (५२३)।

३ वह मुण्डित हो अगार से अनगार धर्म मे प्रव्रजित होकर छह जीव-निकायो मे [शकित, काक्षित, विचिकित्सित, भेदसमापन्न और कलुष-समापन्न होकर छह जीव-निकाय पर श्रद्धा नही करता, प्रतीति नही करता, रुचि नही करता। उसे परीषह प्राप्त होकर अभिभूत कर देते हैं, वह परीषहो से जूझ-जूझ कर] उन्हे अभिभूत नही कर पाता।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे जिन तीन स्थानो की श्रद्धा आदि नही करने पर अनगार परीषहो से अभिभूत होता है वे हैं—निर्ग्रन्थ प्रवचन, पच महाव्रत और छह जीव-निकाय। निर्ग्रन्थ साधु को इन तीनो स्थानो का श्रद्धालु होना अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा उसकी सारी प्रव्रज्या उसी के लिए दुःख-दायिनी हो जाती है। इस सम्बन्ध मे सूत्र-निर्दिष्ट विशिष्ट शब्दो का अर्थ इस प्रकार है—

अहित—अपथ्यकर। अशुभ—पापरूप। अक्षम—असगतता, असमर्थता। अनिःश्रेयस—अकल्याणकर, अशिवकारक। अनानुगामिकता—अशुभानुबन्धिता, अशुभ-शृखला। शकित—शकाशील या सशयवान। काक्षित—मतान्तर की आकाक्षा रखने वाला। विचिकित्सित—ग्लानि रखने वाला। भेदसमापन्न—फलप्राप्ति के प्रति दुविधाशील। कलुषसमापन्न—कलुषित मन वाला।

जो साधु-दीक्षा स्वीकार करने के पश्चात् उक्त तीन स्थानो पर शकित, काक्षित यावत् कलुषसमापन्न रहता है, उसके लिए वे तीनो ही स्थान अहितकर यावत् अनानुगामिता के लिए होते हैं और वह परीषहो पर विजय न पाकर उनसे पराभव को प्राप्त होता है।

श्रद्धालु विजय सूत्र

५२४—तओ ठाणा ववसियस्स हिताए [सुभाए खमाए णिस्सेसाए] आणुगामियत्ताए भवंति, त जहा—

१ से ण मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइए णिग्गथे पावयणे णिस्सकिते [णिक्कखिते णिव्वितिगिच्छिते णो भेदसमावण्णे] णो कलुससमावण्णे णिग्गथ पावयण सद्दहति पत्तियति रोएति, से परिस्सहे अभिजु जिय अभिजु जिय अभिभवति, णो त परिस्सहा अभिजु जिय-अभिजु जिय अभिभवति।

२ से ण मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइए समाणे पचहि महव्वएहि णिस्सकिए णिक्कखिए [णिव्वितिगिच्छिते णो भेदसमावण्णे णो कलुससमावण्ण पच महव्वताइ सद्दहति पत्तियति रोएति, से] परिस्सहे अभिजु जिय अभिजु जिय अभिभवइ, णो त परिस्सहा अभिजु जिय अभिजु जिय अभिभवति।

३ स ण मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइए छहि जीवणिकाएहि णिस्सकिते [णिक्कखिते णिव्वितिगिच्छिते णो भेदसमावण्णे णो कलुससमावण्णे छ जीवणिकाए सद्दहति पत्तियति रोएति, से] परिस्सहे अभिजु जिय अभिजु जिय अभिभवति, णो त परिस्सहा अभिजु जिय अभिजु जिय अभिभवति।

व्यवसित (श्रद्धालु) निर्ग्रन्थ के लिए तीन स्थान हित [शुभ, क्षम, निःश्रेयस] और अनुगामिता के कारण होते हैं।

१ जो मुण्डित हो अगार से अनगार धर्म मे प्रव्रजित होकर निर्ग्रन्थ-प्रवचन मे निःशकित

(नि काक्षित, निर्विचिकित्सिक, अभेदसमापन्न) और अकलुषसमापन्न होकर निर्ग्रन्थ-प्रवचन में श्रद्धा करता है, प्रीति करता है, रुचि करता है, वह परीषहों से जूझ-जूझ कर उन्हें अभिभूत कर देता है, उसे परीषह अभिभूत नहीं कर पाते।

२. जो मुण्डित हो अगार से अनगार धर्म में प्रव्रजित होकर पाँच महाव्रतों में नि शंकित, नि कांक्षित (निर्विचिकित्सिक, अभेदसमापन्न और अकलुषसमापन्न होकर पाँच महाव्रतों में श्रद्धा करता है, प्रीति करता है, रुचि करता है, वह) परीषहों से जूझ-जूझ कर उन्हें अभिभूत कर देता है, उसे परीषह अभिभूत नहीं कर पाते।

३. जो मुण्डित हो अगार से अनगार धर्म में प्रव्रजित होकर छह जीव निकायों में नि शंकित (नि कांक्षित, निर्विचिकित्सिक, अभेदसमापन्न और अकलुषसमापन्न होकर छह जीवनिकाय में श्रद्धा करता है, प्रीति करता है, रुचि करता है, वह) परीषहों से जूझ-जूझ कर उन्हें अभिभूत कर देता है, उसे परीषह जूझ-जूझ कर अभिभूत नहीं कर पाते (५२४)।

पृथ्वी वलय सूत्र

५२५—एगमेगा ण पुढवी तिहिं वलएहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता, तं जहा—घणोदधिवलएण, घणवातवलएण, तणुवायवलएण।

रत्नप्रभादि प्रत्येक पृथ्वी तीन-तीन वलयों के द्वारा सब ओर से परिक्षिप्त (घिरी हुई) है--घनोदधिवलय से, घनवात वलय से और तनुवात वलय से (५२५)।

विग्रहगति-सूत्र

५२६—णेरइया णं उक्कोसेण तिसमइएण विग्गहेण उववज्जंति। एगिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं।

नारकी जीव उत्कृष्ट तीन समय वाले विग्रह से उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार एकेन्द्रियों को छोडकर वैमानिक देवों तक के सभी जीव उत्कृष्ट तीन समय वाले विग्रह से उत्पन्न होते हैं (५२६)।

विवेचन—विग्रह नाम शरीर का है। जब जीव मर कर नवीन जन्म के शरीर-धारण करने के लिए जाता है, तब उसके गमन को विग्रह-गति कहते हैं। यह दो प्रकार की होती है, ऋजुगति और वक्रगति। ऋजुगति सीधी समश्रेणी वाले स्थान पर उत्पन्न होने वाले जीव की होती है और उसमें एक समय लगता है। वक्र नाम मोड का है। जब जीव मरकर विषम श्रेणी वाले स्थान पर उत्पन्न होता है तब उसे मुडकर के नियत स्थान पर जाना पडता है। इसलिए वह वक्रगति कही जाती है। वक्रगति के तीन भेद है—पाणिमुक्ता, लागलिका और गोमूत्रिकागति। ये तीनों संज्ञाएं दिगम्बर शास्त्रों के अनुसार दी गई हैं। जैसे पाणि (हाथ) से किसी वस्तु के फेंकने से एक मोड होता है, उसी प्रकार जिस विग्रह या वक्रगति में से एक मोड लेना पडता है, उसे पाणिमुक्ता गति कहते हैं। इस गति में दो समय लगते हैं। लागल नाम हल का है। जैसे हल में दो मोड होते हैं, उसी प्रकार जिस वक्रगति में दो मोड लेने पड़ते हैं, उसे लांगलिका गति कहते हैं। इस गति में तीन समय लगते हैं। बैल चलते हुए जैसे मूत्र (पेशाब) करता जाता है तब भूमि पर पतित मूत्र धारा में अनेक मोड पड जाते हैं। इसी

प्रकार तीन मोड वाली गति को गोमूत्रिका गति कहते है। इस गति मे तीन मोड और चार समय लगते है।

प्रस्तुत सूत्र मे तीन समय वाली दो मोड की गति का वर्णन किया गया है। एकेन्द्रिय जीवो के सिवाय सभी दण्डका के जीव किसी भी स्थान से मर कर किसी भी स्थान मे दो मोड लेकर के तीसरे समय मे नियत स्थान पर उत्पन्न हो जाते हैं, क्योकि सभी त्रस जीव त्रसनाडी के भीतर ही उत्पन्न होते और मरते हैं। किन्तु स्थावर एकेन्द्रिय-जीव त्रसनाडी से बाहर भी समस्त लोकाकाश मे कही से भी मर कर कही भी उत्पन्न हो सकते हैं। अत जब कोई एकेन्द्रिय जीव निष्कुट (लोक का कोणप्रदेश) क्षेत्र से मर निष्कुट क्षेत्र मे उत्पन्न होता है, तब उसे तीन मोड लेने पडते है और उसमे चार समय लगते है। अत 'एकेन्द्रिय को छोडकर' ऐसा सूत्र मे कहा गया है।

क्षीणमोह सूत्र

५२७—खीणमोहस्स ण अरहओ तओ कम्मसा जुगव खिज्जति, त जहा—णाणावरणिज्ज, दसणावरणिज्ज, अतराइय।

क्षीणमोहवाले अर्हत के तीन सत्कर्म (सत्ता रूप मे विद्यमान कर्म) एक साथ नष्ट होते हैं—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्म (५२७)।

नक्षत्र-सूत्र

५२८—अभिईणक्खत्ते तितारे पण्णत्ते। ५२९—एव—सवणे, अस्सिणी, भरणी, मगसिरे, पूसे, जेट्ठा।

अभिजित नक्षत्र तीन तारावाला कहा गया है इसी प्रकार श्रवण, अश्विनी, भरणी, मृगशिर पुष्य और ज्येष्ठा भी तीन-तीन तारा वाले कहे गये हैं (५२८-५२९)।

तीर्थकर-सूत्र

५३०—धम्माओ ण अरहाओ सती अरहा तिहिं सागरोवमेहिं तिचउब्भागपलिओवमऊणएहिं वीतिक्कतेहिं समुप्पण्णे।

धर्मनाथ तीर्थंकर के पश्चात शान्तिनाथ तीर्थंकर त्रि चतुर्भाग (¾) पल्योपम न्यून तीन सागरोपमो के व्यतीत होने पर समुत्पन्न हुए (५३०)।

५३१—समणस्स ण भगवओ महावीरस्स जाव तच्चाओ पुरिसजुगाओ जुगतकरभूमी।

श्रमण भगवान् महावीर के पश्चात् तीसरे पुरुषयुग जम्बूस्वामी तक युगान्तकर भूमि रही है, अर्थात् निर्वाण-गमन का क्रम चलता रहा है (५३१)।

५३२—मल्ली ण अरहा तिहिं पुरिससएहिं सद्धि मुडे भवित्ता [अगाराओ अणगारिय] पव्वइए।

मल्ली अर्हत् तीन सौ पुरुषों के साथ मुण्डित होकर (अगार से अनगार धर्म में) प्रव्रजित हुए (५३२)।

५३३—[पासे णं अरहा तिहिं पुरिससएहिं सद्धिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए]।

(पार्श्व अर्हत् तीन सौ पुरुषों के साथ मुण्डित होकर अगार से अनगार धर्म में प्रव्रजित हुए (५३३)।

५३४—समणस्स णं भगवतो महावीरस्स तिण्णि सया चउद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसण्णिवातीणं जिणा [जिणाणं ?] इव अवितहं वागरमाणाणं उक्कोसिया चउद्दसपुव्विसंपया हुत्था।

श्रमण भगवान् महावीर के तीन सौ शिष्य चौदह पूर्वधर थे, वे जिन नहीं होते हुए भी जिन के समान थे, सर्वाक्षर-सन्निपाती, तथा जिन भगवान के समान अवितथ व्याख्यान करने वाले थे। यह भगवान महावीर की चतुर्दशपूर्वी उत्कृष्ट शिष्य-सम्पदा थी (५३४)।

विवेचन—अनादिनिधन वर्णमाला के अक्षर चौसठ (६४) माने गये हैं। उनके दो तीन आदि अक्षरों से लेकर चौसठ अक्षरों तक के संयोग से उत्पन्न होने वाले पद असंख्यात होते हैं। असंख्यात भेदों को जाननेवाला ज्ञानी सर्वाक्षर-सन्निपाती श्रुतधर कहलाता है। सन्निपात का अर्थ संयोग है। सर्व अक्षरों के संयोग से होने वाले ज्ञान को सर्वाक्षर-सन्निपाती कहते हैं।

५३५—तओ तित्थयरा चक्कवट्टी होत्था, तं जहा—संती, कुंथू, अरो।

तीन तीर्थंकर चक्रवर्ती हुए—शान्ति, कुन्थु और अरनाथ (५३५)।

ग्रैवेयक-विमान सूत्र

५३६—तओ गेविज्ज-विमाण-पत्थडा पण्णत्ता, तं जहा—हेट्ठिम गेविज्ज विमाण-पत्थडे, मज्झिम गेविज्ज विमाण पत्थडे, उवरिम-गेविज्ज-विमाण पत्थडे।

ग्रैवेयक विमान के तीन प्रस्तर कहे गये हैं—अधस्तन (नीचे का) ग्रैवेयक विमान प्रस्तर, मध्यम (बीच का) ग्रैवेयक विमान प्रस्तर, और उपरिम (ऊपर का) ग्रैवेयक विमान प्रस्तर (५३६)।

५३७—हिट्ठिम-गेविज्ज विमाण-पत्थडे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—हेट्ठिम हेट्ठिम गेविज्ज-विमाण-पत्थडे, हेट्ठिम-मज्झिम गेविज्ज विमाण-पत्थडे, हेट्ठिम उवरिम गेविज्ज विमाण पत्थडे।

अधस्तन ग्रैवेयकविमानप्रस्तर तीन प्रकार का कहा गया है—अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक विमान-प्रस्तर, अधस्तन मध्यमविमान-प्रस्तर और अधस्तन-उपरिमग्रैवेयक विमान-प्रस्तर (५३७)।

५३८—मज्झिम-गेविज्ज विमाण पत्थडे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—मज्झिम हेट्ठिम गेविज्ज विमाण पत्थडे, मज्झिम मज्झिम गेविज्ज विमाण-पत्थडे, मज्झिम उवरिम गेविज्ज-विमाण पत्थडे।

मध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तर तीन प्रकार का कहा गया है—मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक

विमान प्रस्तर, मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तर और मध्यम-उपरिम ग्रैवेयक विमान प्रस्तर (५३८)।

५३६—उवरिम गेविज्ज विमाण पत्थडे तिविहे पण्णत्ते, त जहा—उवरिम-हेट्ठिम गविज्ज-विमाण-पत्थडे उवरिम मज्झिम गेविज्ज विमाण-पत्थडे, उवरिम उवरिम गेविज्ज विमाण पत्थडे।

उपरिम ग्रैवेयक-विमान प्रस्तर तीन प्रकार का कहा गया है—उपरिम-अधस्तन ग्रैवेयक-विमान प्रस्तर उपरिम मध्यम ग्रैवेयक-विमान प्रस्तर और उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक विमान प्रस्तर (५३६)।

विवेचन—ग्रैवेयकविमान सब मिलकर नौ है और वे एक-दूसरे के ऊपर अवस्थित हैं। उन्हे पहले तीन विभागो मे कहा गया है—नीचे का त्रिक, बीच का त्रिक और ऊपर का त्रिक। तत्पश्चात एक-एक त्रिक के तीन तीन विकल्प किए गए हैं। सब मिलकर नौ विमान होते है।

पापकर्म-सूत्र

५४०—जीवाण तिट्ठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिसु वा चिणति वा चिणिस्सति वा, त जहा—इत्थिणिव्वत्तिते, पुरिसणिव्वत्तिते, णपु सगणिव्वत्तिते।

एव—चिण उवचिण बध उदीर वेद तह णिज्जरा चेव।

जीवो ने त्रिस्थान-निर्वर्तित पुद्गलो का कर्मरूप से सचय किया है, सचय करते है और सचय करेंगे—

१ स्त्रीनिर्वर्तित (स्त्रीवेद द्वारा उपार्जित) पुद्गलो का कर्मरूप से सचय।
२ पुरुषनिर्वर्तित (पुरुषवेद द्वारा उपार्जित) पुद्गलो का कर्मरूप से सचय।
३ नपु सकनिर्वर्तित (नपु सकवेद द्वारा उपार्जित) पुद्गलो का कर्मरूप से सचय।

इसी प्रकार जीवो ने त्रिस्थान निर्वर्तित पुद्गलो का कर्मरूप से उपचय, बन्ध, उदीरण, वेदन तथा निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे।

पुद्गल सूत्र

५४१—तिपदेसिया खधा अणता पण्णत्ता।

त्रि प्रदेशी (तीन प्रदेश वाले) पुद्गल स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं (५४१)।

५४२—एव जाव तिगुणलुक्खा पोग्गला अणता पण्णत्ता।

इसी प्रकार तीन प्रदेशावगाढ, तीन समय की स्थितिवाले और तीन गुणवाले पुद्गल-स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं। तथा शेष सभी वर्ण, गन्ध रस और स्पर्श के तीन तीन गुणवाले पुद्गल-स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं।

॥ तृतीय स्थानक समाप्त ॥

चतुर्थ स्थान

सार सक्षेप

प्रस्तुत चतुथ स्थान मे चार की सख्या से सम्बन्ध रखने वाले अनेक प्रकार के विषय सकलित हैं। यद्यपि इस स्थान मे सैद्धान्तिक, भौगोलिक और प्राकृतिक आदि अनेक विषयो के चार-चार प्रकार वर्णित है, तथापि सबसे अधिक वृक्ष, फल, वस्त्र, गज, अश्व, मेघ आदि के माध्यम से पुरुषो की मनोवृत्तियो का बहुत सूक्ष्म वर्णन किया गया है।

जीवन के अन्त म की जाने वाली क्रिया को अन्तक्रिया कहत है। उसके चार प्रकारो का सवप्रथम वणन करते हुए प्रथम अन्तक्रिया मे भरत चक्री का, द्वितीय अन्तक्रिया मे गजसुकुमाल का, तीसरी मे सनत्कुमार चक्री का और चौथी मे मरुदेवी का दृष्टान्त दिया गया है।

उन्नत प्रणत वृक्ष के माध्यम से पुरुष की उन्नत-प्रणतदशा का वणन करते हुए उन्नत-प्रणत-रूप, उन्नत-प्रणतमन, उन्नत प्रणत-सकल्प, उन्नत-प्रणत-प्रज्ञ, उन्नत-प्रणत दृष्टि, उन्नत प्रणत शीलाचार, उन्नत-प्रणत व्यवहार और उन्नत-प्रणत पराक्रम की चतुर्भगियो के द्वारा पुरुष की मनोवृत्ति के उतार-चढाव का चित्रण किया गया है, उसी प्रकार उतनी ही चतुर्भगिया के द्वारा जाति, कुल पद, दीन-अदीन पद आदि का भी वर्णन किया गया है।

विकथा और कथापद मे उनके अनेक प्रकारो का, कषाय पद म अनन्तानुबन्धी आदि चार प्रकार की कषायो का सदृष्टान्त वणन कर उनमे वतमान जीवो के दुगति सुगतिगमन का वणन बडा उद्बोधक है।

भौगोलिक वणन मे जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और पुष्करवरद्वीप का, उनके क्षेत्र पवत, आदि का वणन है। नन्दीश्वरद्वीप का विस्तृत वणन तो चित्त को चमत्कृत करने वाला है। इसी प्रकार आर्य-अनार्य और म्लेच्छ पुरुषो का तथा अन्तर्द्वीपज मनुष्यो का वणन भी अपूव है।

सैद्धान्तिक वणन मे महाकर्म—अल्पकर्म वाले निग्रन्थ निग्रन्थी एव श्रमणोपासक-श्रमणो-पासिका का, ध्यान पद मे चारो ध्यानो के भेद-प्रभेदो का, और गति आगति-पद मे जीवो के गति-आगति का वणन जानने योग्य है।

साधुओ की दुखशय्या और सुखशय्या के चार चार प्रकार उनके लिए बडे उद्बोधनीय हैं। आचार्य और अन्तेवासी के प्रकार भी उनकी मनोवृत्तियो के परिचायक है।

ध्यान के चारो भेदो तथा उनके प्रभेदो का वर्णन दुर्ध्याना का त्यागन और सद्-ध्यानो को ध्याने की प्रेरणा देता है।

अधुनोपपन्न देवो और नारको का वणन मनोवृत्ति और परिस्थिति का परिचायक है। अन्धकार उद्योतादि पद धम अधर्म की महिमा के द्योतक हैं।

इसके अतिरिक्त तृण-वनस्पति पद, सवास पद, कम पद, अस्तिकाय-पद स्वाध्याय पद, प्रायश्चित्त पद, काल, पुद्गल, सत्यम, प्रतिसेवि-पद आदि भी जन सिद्धान्त के विविध विषयो का ज्ञान कराते हैं।

यदि सक्षेप मे कहा जाय तो यह स्थानक ज्ञान-सम्पदा का विशाल भण्डार है। □□

प्रथम उद्देश

अंतक्रिया सूत्र

१—चत्तारि अंतकिरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१ तत्थ खलु इमा पढमा अंतकिरिया—अप्पकम्मपच्चायाते यावि भवति। से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए संजमबहुले संवरबहुले समाहिबहुले लूहे तीरट्ठी उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी। तस्स णं णो तहप्पगारे तवे भवति, णो तहप्पगारा वेयणा भवति। तहप्पगारे पुरिसज्जाते दीहेणं परियाएणं सिज्झति बुज्झति मुच्चति परिणिव्वाति सव्वदुक्खाणमंतं करेइ, जहा—से भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी—पढमा अंतकिरिया।

२ अहावरा दोच्चा अंतकिरिया—महाकम्मपच्चायाते यावि भवति। से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए संजमबहुले संवरबहुले (समाहिबहुले लूहे तीरट्ठी) उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी। तस्स णं तहप्पगारे तवे भवति, तहप्पगारा वेयणा भवति। तहप्पगारे पुरिसजाते णिरुद्धेणं परियाएणं सिज्झति (बुज्झति मुच्चति परिणिव्वाति सव्वदुक्खाणं) मंतं करेति, जहा—से गयसूमाले अणगारे—दोच्चा अंतकिरिया।

३ अहावरा तच्चा अंतकिरिया—महाकम्मपच्चायाते यावि भवति। से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए (संजमबहुले संवरबहुले समाहिबहुले लूहे तीरट्ठी उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी। तस्स णं तहप्पगारे तवे भवति, तहप्पगारा वेयणा भवति। तहप्पगारे पुरिसजाते) दीहेणं परियाएणं सिज्झति [बुज्झति मुच्चति परिणिव्वाति) सव्वदुक्खाणमंतं करेति, जहा—से सणंकुमारे राया चाउरंतचक्कवट्टी—तच्चा अंतकिरिया।

४ अहावरा चउत्था अंतकिरिया—अप्पकम्मपच्चायाते यावि भवति। से णं मुंडे भवित्ता (अगाराओ अणगारियं) पव्वइए संजमबहुले (संवरबहुले समाहिबहुले लूहे तीरट्ठी उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी) तस्स णं णो तहप्पगारे तवे भवति, णो तहप्पगारा वेयणा भवति। तहप्पगारे पुरिसजाते णिरुद्धेणं परियाएणं सिज्झति (बुज्झति मुच्चति परिणिव्वाति) सव्वदुक्खाणमंतं करेति, जहा—सा मरुदेवा भगवती—चउत्था अंतकिरिया।

अंतक्रिया चार प्रकार की कही गई है—उनमें यह प्रथम अंतक्रिया है—

१ प्रथम अंतक्रिया—कोई पुरुष अल्प कर्मों के साथ मनुष्यभव को प्राप्त हुआ। पुन वह मुण्डित होकर, घर त्याग कर, अनगारिता को धारण कर प्रव्रजित हो सयम बहुल, सवर-बहुल और समाधि बहुल होकर रूक्ष (भोजन करता हुआ) तीर का अर्थी, उपधान करने वाला, दु ख को खपाने वाला तपस्वी होता है।

उसके न तो उस प्रकार का घोर तप होता है और न उस प्रकार की घोर वेदना होती है।

इस प्रकार का पुरुष दीर्घ-कालिक साधु पर्याय के द्वारा सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परि-निर्वाण को प्राप्त होता है और सब दु खो का अन्त करता है। जैसे कि चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा हुआ। यह प्रथम अन्तक्रिया है।

२ दूसरी अन्तक्रिया इस प्रकार है—कोई पुरुष बहुत-भारी कर्मों के साथ मनुष्य-भव को प्राप्त हुआ। पुन वह मुण्डित होकर, घर त्याग कर, अनगारिता को धारण कर प्रव्रजित हो, सयम वहुल, सवर-वहुल और (समाधि बहुल होकर रूक्ष भोजन करता हुआ तीर का अर्थी) उपधान करने वाला, दु ख को खपाने वाला तपस्वी होता है।

उसके विशेष प्रकार का घोर तप होता है और विशेष प्रकार की घोर वेदना होती है। इस प्रकार का पुरुष अल्पकालिक साधु पर्याय के द्वारा सिद्ध होता है, (बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है और सर्व दु खो का) अन्त करता है। जैसे कि गजसुकुमाल अनगार। यह दूसरी अन्तक्रिया है।

३ तीसरी अन्तक्रिया इस प्रकार है—कोई पुरुष बहुत कर्मों के साथ मनुष्य भव को प्राप्त हुआ। पुन वह मुण्डित होकर घर त्याग कर, अनगारिता को धारण कर प्रव्रजित हो (सयम-बहुल, सवर-बहुल और समाधि-बहुल होकर रूक्ष भोजत करता हुआ तीर का अर्थी) उपधान करने वाला, दु ख को खपाने वाला तपस्वी होता है।

उसके उस प्रकार का घोर तप होता है, और उस प्रकार की घोर वेदना होती है। इस प्रकार का पुरुष दीर्घ-कालिक साधु-पर्याय के द्वारा सिद्ध [होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है] और सब दु खो का अन्त करता है। जैसे कि चातुरन्त चक्रवर्ती सनत्कुमार राजा। यह तीसरी अन्तक्रिया है।

४ चौथी अन्तक्रिया इस प्रकार है—कोई पुरुष अल्प कर्मों के साथ मनुष्य भव को प्राप्त हुआ। पुन वह मुण्डित होकर [घर त्याग कर, अनगारिता को धारण कर] प्रव्रजित हो सयम-बहुल, (सवर-बहुल, और समाधि-बहुल होकर रूक्ष भोजन करता हुआ) तीर का अर्थी, उपधान करने वाला, दु ख को खपाने वाला] तपस्वी होता है।

उसके न उस प्रकार का घोर तप होता है और न उस प्रकार की घोर वेदना होती है। इस प्रकार का पुरुष अल्पकालिक साधु-पर्याय के द्वारा सिद्ध होता है, [बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है] और सब दु खो का अन्त करता है। जैसे कि भगवती मरुदेवी। यह चौथी अन्तक्रिया है (१)।

विवेचन—जन्म-मरण की परम्परा का अन्त करने वाली और सब कर्मों का क्षय करने वाली योग निरोध क्रिया को अन्तक्रिया कहते हैं। उपयु क्त चारो क्रियाओ मे पहली अन्तक्रिया अल्पकर्म के साथ आये तथा दीर्घकाल तक साधु पर्याय पालने वाले पुरुष की कही गई है। दूसरी अन्तक्रिया भारी कर्मों के साथ आये तथा अल्पकाल साधु पर्याय पालने वाले व्यक्ति की कही गई है। तीसरी अन्तक्रिया गुरुतर कर्मों को साथ आये और दीर्घकाल तक साधु-पर्याय पालने वाल पुरुष की कही गई है। चौथी अन्तक्रिया अल्पकर्म के साथ आये और अल्पकाल साधु पर्याय पालने वाले व्यक्ति की कही गई है। जितने भी व्यक्ति आज तक कर्म मुक्त होकर सिद्ध बुद्ध हुए हैं, और आगे होंगे, वे सब उक्त चार

प्रकार की अन्तक्रियाओं मे से कोई एक अन्तक्रिया करके ही मुक्त हुए हैं और आगे होगे। भरत, गजसुकुमाल, सनत्कुमार चक्रवर्ती और मरुदेवी के कथानक कथानुयोग से जानना चाहिए।

उन्नत प्रणत-सूत्र

२—चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, त जहा—उण्णते णाममेगे उण्णते, उण्णते णाममेगे पणते, पणते णाममेगे उण्णते, पणते णाममेगे पणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाता पण्णत्ता, त जहा—उण्णते णाममेगे उण्णते, तहेव जाव [उण्णते नाममेगे पणते, पणते णाममेगे उण्णते] पणते णाममेगे पणते।]

वृक्ष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ कोई वृक्ष शरीर मे भी उन्नत होता है और जाति से भी उन्नत होता है। जसे—शाल वृक्ष।
२ कोई वृक्ष शरीर मे (द्रव्य) से उन्नत, किन्तु जाति (भाव) से प्रणत (हीन) होता है। जैसे—नीम।
३ कोई वृक्ष शरीर से प्रणत, किन्तु जाति से उन्नत होता है। जैसे—अशोक।
४ कोई वृक्ष शरीर से प्रणत और जाति से भी प्रणत होता है। जैसे—खैर।

इस प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ कोई पुरुष शरीर से भी उन्नत होता है और गुणो से भी उन्नत होता है।
२ [कोई पुरुष शरीर से उन्नत होता है किन्तु गुणो से प्रणत होता है।
३ कोई पुरुष शरीर से प्रणत और गुणो से उन्नत होता है]।
४ कोई पुरुष शरीर से भी प्रणत होता है और गुणो से भी प्रणत होता है (२)।

विवेचन—कोई वृक्ष शाल के समान शरीर रूप द्रव्य से उन्नत (ऊचे) होते है और जाति रूप भाव स उन्नत होते हैं। नीम वृक्ष शरीर रूप द्रव्य से तो उन्नत है, किन्तु मधुर रस आदि भाव से प्रणत (हीन) होता ह। अशोक वृक्ष शरीर से हीन या छोटा है, किन्तु जाति आदि भाव की अपेक्षा उन्नत (ऊचा) माना जाता है। खैर (खदिर, बबूल) वृक्ष जाति और शरीर दोनो से ही हीन होते हैं। इसी प्रकार कोई पुरुष कुल, जाति आदि की अपेक्षा मे भी ऊचा होता है और ज्ञान आदि गुणो से भी ऊचा होता है। अथवा वतमान भव में भी उच्चकुलीन है और आगामी भव मे भी उच्चगति को प्राप्त होने से उच्च है। कोई मनुष्य उच्च कुल मे जन्म लेकर भी ज्ञानादि गुणो से प्रणत (हीन) होता ह। कोई मनुष्य नीच कुल मे जन्म लेने पर भी ज्ञान, तपश्चरणादि गुणो से उन्नत (उच्च) होता है। तथा कोई पुरुप नीच कुल मे उत्पन्न एव ज्ञानादि गुणो से भी हीन होता है। इस सूत्र के द्वारा वृक्ष के समान पुरुषजाति के चार प्रकार बताये गये। वृक्ष चतुर्भगी के समान आगे कही जाने वाली चतुर्भगियो का स्वरूप भी जानना चाहिए।

३—चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, त जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतपरिणते, उण्णते णाममेगे पणतपरिणते पणते णाममेगे उण्णतपरिणते, पणते णाममेगे पणतपरिणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाता पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतपरिणते, चउभंगो [उण्णते णाममेगे पणतपरिणते, पणते णाममेगे उण्णतपरिणते, पणते णाममेगे पणतपरिणते]।

पुन वृक्ष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कोई वृक्ष शरीर से उन्नत और उन्नतपरिणत (अशुभ रसादि को छोड कर शुभ रसादि रूप मे परिणत) होता है।

२ कोई वृक्ष शरीर से उन्नत होकर भी प्रणतपरिणत (शुभ रसादि को छोड कर अशुभ रसादि रूप से परिणत) होता है।

३ कोई वृक्ष शरीर से प्रणत और उन्नत भाव से परिणत होता है।

४ कोई वृक्ष शरीर मे प्रणत और प्रणत भाव से परिणत होता है (३)।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ कोई पुरुष शरीर से उन्नत और उन्नत भाव से परिणत होता है।

२ [कोई पुरुष शरीर से उन्नत और प्रणत भाव से परिणत होता है।

३ कोई पुरुष शरीर से प्रणत और उन्नत भाव से परिणत होता है।

४ कोई पुरुष शरीर से प्रणत और प्रणत भाव से भी परिणत होता है।]

४—चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतरूवे, तहेव चउभंगो (उण्णते णाममेगे पणतरूवे, पणते णाममेगे उण्णतरूवे, पणते णाममेगे पणतरूवे)।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे (४) उण्णतरूवे, [उण्णते णाममेगे पणतरूवे, पणते णाममेगे उण्णतरूवे, पणते णाममेगे पणतरूवे]।

पुन वृक्ष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ कोई वृक्ष शरीर से उन्नत और उन्नत (उत्तम) रूप वाला होता है।

२ कोई वृक्ष शरीर से उन्नत किन्तु प्रणत रूप वाला (कुरूप) होता है।

३ कोई वृक्ष शरीर से प्रणत किंतु उन्नत रूप वाला होता है।

४ कोई वृक्ष शरीर से प्रणत और प्रणत रूप वाला होता है (४)।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कोई पुरुष शरीर से उन्नत और उन्नत रूप वाला होता है।

[२ कोइ पुरुष शरीर से उन्नत किन्तु प्रणत रूप वाला होता है।

३ कोइ पुरुष शरीर से प्रणत किन्तु उन्नत रूप वाला होता है।

४ कोइ पुरुष शरीर से प्रणत और प्रणत रूप वाला होता है।]

५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतमणे ४ (उण्णते णाममेगे पणतमणे पणते णाममेगे उण्णतमणे, पणते णाममेगे पणतमणे)।

एवं सकप्पे ८, पण्णे ९, दिट्ठी १०, सीलायारे ११, ववहारे १२, परक्कमे १३।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कोई पुरुष ऐश्वय से उन्नत और उन्नत मन वाला (उदार) होता है।
२ कोई पुरुष ऐश्वय से उन्नत किन्तु प्रणत मन वाला (कजूस) होता है।
३ कोई पुरुष ऐश्वय से प्रणत (हीन) किन्तु उन्नत मन वाला होता है।
४ कोई पुरुष ऐश्वय से प्रणत और मन से भी प्रणत होता है (५)।

६—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतसकप्पे, उण्णते णाममेगे पणतसकप्पे, पणते णाममेगे उण्णतसकप्पे, पणते णाममेगे पणतसकप्पे।]

[पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कोई पुरुष ऐश्वय से उन्नत और उन्नत सकल्प वाला होता है।
२ कोई पुरुष ऐश्वय से उन्नत किन्तु प्रणत (हीन) सकल्प वाला होता है।
३ कोई पुरुष ऐश्वय से प्रणत, किन्तु उन्नत सकल्प वाला होता है।
४ कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और सकल्प से भी प्रणत होता है (६)।]

७—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतपण्णे, उण्णते णाममेगे पणतपण्णे, पणते णाममेगे उण्णतपण्णे, पणते णाममेगे पणतपण्णे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ कोई पुरुष ऐश्वय से उन्नत और उन्नत प्रज्ञा वाला (बुद्धिमान्) होता है।
२ कोई पुरुष ऐश्वय से उन्नत, किन्तु प्रणत प्रज्ञा वाला (मूख) होता है।
३ कोई पुरुष ऐश्वय से प्रणत, किन्तु उन्नत प्रज्ञा वाला होता है।
४ कोई पुरुष ऐश्वय से प्रणत और प्रज्ञा से भी प्रणत होता है (७)।

८—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतदिट्ठी, उण्णते णाममगे पणतदिट्ठी, पणते णाममेगे उण्णतदिट्ठी, पणते णाममेगे पणतदिट्ठी।]

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कोई पुरुष ऐश्वय से उन्नत और उन्नत दृष्टि वाला होता है।
२ कोई पुरुष ऐश्वय मे उन्नत और प्रणत दृष्टि वाला होता है।
३ कोई पुरुष ऐश्वय से प्रणत, किन्तु उन्नत दृष्टि वाला होता है।
४ कोई पुरुष ऐश्वय से प्रणत और प्रणत दृष्टि वाला होता है (८)।

९—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतसीलाचारे, उण्णते णाममगे पणतसीलाचारे, पणते णाममेगे उण्णतसीलाचारे, पणते णाममेगे पणतसीलाचारे।]

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ कोई पुरुष ऐश्वय से उन्नत और उन्नत शील आचार वाला होता है।

२ कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत किन्तु प्रणत (हीन) शील-आचार वाला होता है।
३ कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नत शील-आचार वाला होता है।
४ कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणत शील आचार वाला होता है (९)।

१०—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतववहारे, उण्णते णाममेगे पणतववहारे, पणते णाममेगे उण्णतववहारे, पणते णाममेगे पणतववहारे।]

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—
१ कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नत व्यवहार वाला होता है।
२ कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणत व्यवहार वाला होता है।
३ कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नत व्यवहार वाला होता है।
४ कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणत व्यवहार वाला होता है (१०)।

११—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतपरक्कमे, उण्णते णाममेगे पणतपरक्कमे, पणते णाममेगे उण्णतपरक्कमे, पणते णाममेगे पणतपरक्कमे]।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—
१ कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नत पराक्रम वाला होता है।
२ कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणत पराक्रम वाला होता है।
३ कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नत पराक्रम वाला होता है।
४ कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणत पराक्रम वाला होता है (११)।

ऋजु वक्र सूत्र

१२—चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जू, उज्जू णाममेगे वंके, चउभंगो ४। एवं जहा उण्णतपणतेहिं गमो तहा उज्जू वंकेहिं विभाणियव्वो। जाव परक्कमे [वंके णाममेगे उज्जू, वंके णाममेगे वंके]।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जू ४, [उज्जू णाममेगे वंके, वंके णाममेगे उज्जू, वंके णाममेगे वंके]।

वृक्ष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ कोई वृक्ष शरीर से ऋजु (सरल-सीधा) होता है और (यथासमय फलादि देने रूप) कार्य से भी ऋजु होता है।

२ कोई वृक्ष शरीर से ऋजु होता है, किन्तु (यथासमय फलादि देने रूप) कार्य से वक्र होता है। (यथासमय फलादि नहीं देता है।)

३ कोई वृक्ष शरीर से वक्र (टेढा मेढा) होता है, किन्तु कार्य से ऋजु होता है।

४ कोई वृक्ष शरीर से भी वक्र होता है और कार्य से भी वक्र होता है।

इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जसे--

१ कोई पुरुप बाहर (शरीर, गति, चेष्टादि) से ऋजु होता है और अन्तरग से भी ऋजु (निश्छल व्यवहार वाला) होता है।

२ कोई पुरुप बाहर से ऋजु होता है, किन्तु अन्तरग से वक्र (कुटिल व्यवहार वाला) होता है।

३ कोई पुरुप बाहर से वक्र (कुटिल चेष्टा वाला) होता है, किन्तु अन्तरग से ऋजु होता है।

४ कोई पुरुप बाहर से भी वक्र और अतरग से भी वक्र होता है।

१३--चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, त जहा--उज्जू णाममेगे उज्जुपरिणते, उज्जू णाममेगे वकपरिणते, वके णाममेगे उज्जुपरिणते, वके णाममेगे वकपरिणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा--उज्जू णाममेगे उज्जुपरिणते, उज्जू णाममेगे वकपरिणते, वके णाममेगे उज्जुपरिणते, वके णाममेगे वकपरिणते।

पुन वृक्ष चार प्रकार के कहे गये हैं--

१ कोई वृक्ष शरीर से ऋजु और ऋजु-परिणत होता है।
२ कोई वृक्ष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र परिणत होता है।
३ कोई वृक्ष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-परिणत होता है।
४ कोई वृक्ष शरीर से वक्र और वक्र-परिणत होता है।

इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के कहे गये है, जसे--

१ कोई पुरुप शरीर से ऋजु और ऋजु परिणत होता है।
२ कोई पुरुप शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-परिणत होता है।
३ कोई पुरुप शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु परिणत होता है।
४ कोई पुरुप शरीर से वक्र और वक्र परिणत होता है (१४)।

१४--चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, त जहा--उज्जू णाममेगे उज्जुरूवे, उज्जू णाममेगे वकरूवे, वके णाममेगे उज्जुरूवे वके णाममेगे, वकरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा--उज्जू णाममेगे उज्जुरूवे, उज्जू णाममेगे वकरूवे, वके णाममेगे उज्जुरूवे, वके णाममेगे वकरूवे।

पुन वृक्ष चार प्रकार के कहे गये हैं--

१ कोई वृक्ष शरीर से ऋजु और ऋजु रूप वाला होता है।
२ कोई वृक्ष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र रूप वाला होता है।
३ कोई वृक्ष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु रूप वाला होता है।
४ कोई वृक्ष शरीर से वक्र और वक्र रूप वाला होता है।

इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के कहे गये है, जैसे--

१ कोई पुरुप शरीर से ऋजु और ऋजु रूप वाला होता है।

२ कोई पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र रूपवाला होता है।
३ कोई पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु रूपवाला होता है।
४ कोई पुरुष शरीर से वक्र और वक्र रूपवाला होता है (१४)।

१५—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जुमणे, उज्जू णाममेगे वंकमणे, वंके णाममेगे उज्जुमणे, वंके णाममेगे वंकमणे।]

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—
१ कोई पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु मनवाला होता है।
२ कोई पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र मनवाला होता है।
३ कोई पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु मनवाला होता है।
४ कोई पुरुष शरीर से वक्र और वक्र मनवाला होता है (१५)।

१६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जुसंकप्पे, उज्जू णाममेगे वंकसंकप्पे, वंके णाममेगे उज्जुसंकप्पे, वंके णाममेगे वंकसंकप्पे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—
१ कोई पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु संकल्पवाला होता है।
२ कोई पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र संकल्पवाला होता है।
३ कोई पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु संकल्पवाला होता है।
४ कोई पुरुष शरीर से वक्र और वक्र संकल्पवाला होता है (१६)।

१७—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जुपण्णे, उज्जू णाममेगे वंकपण्णे, वंके णाममेगे उज्जुपण्णे, वंके णाममेगे वंकपण्णे।]

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—
१ कोई पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु प्रज्ञ (तीक्ष्णबुद्धि) वाला होता है।
२ कोई पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र प्रज्ञावाला होता है।
३ कोई पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु प्रज्ञावाला होता है।
४ कोई पुरुष शरीर से वक्र और वक्र प्रज्ञावाला होता है (१७)।

१८—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जुदिट्ठी, उज्जू णाममेगे वंकदिट्ठी, वंके णाममेगे उज्जुदिट्ठी, वंके णाममेगे वंकदिट्ठी।]

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—
१ कोई पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु दृष्टिवाला होता है।
२ कोई पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र दृष्टिवाला होता है।
३ कोई पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु दृष्टिवाला होता है।
४ कोई पुरुष शरीर से वक्र और वक्र दृष्टिवाला होता है।

१९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—उज्जू णाममेगे उज्जुसीलाचारे, उज्जू णाममेगे वकसीलाचारे, वके णाममेगे उज्जुसीलाचारे, वके णाममेगे वकसीलाचारे।

पुन पुरुप चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ कोई पुरुप शरीर से ऋजु और ऋजु शील-आचार वाला होता है।
२ कोइ पुरुप शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र शील-आचार वाला होता है।
३ कोई पुरुप शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु शील आचार वाला होता है।
४ कोइ पुरुप शरीर से वक्र और वक्र शील-आचार वाला होता है (१९)।

२०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—उज्जू णाममेगे उज्जुववहारे, उज्जू णाममेगे वकववहारे, वके णाममेगे उज्जुववहारे, वके णाममेगे वकववहारे।

पुन पुरुप चार प्रकार के कहे गये हैं, जसे—

१ कोइ पुरुप शरीर से ऋजु और ऋजु व्यवहार वाला होता है।
२ कोइ पुरुप शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र व्यवहार वाला होता है।
३ कोइ पुरुप शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु व्यवहार वाला होता है।
४ कोइ पुरुप शरीर से वक्र और वक्र व्यवहार वाला होता है (२०)।

२१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—उज्जू णाममेगे उज्जुपरक्कमे, उज्जू णाममेगे वकपरक्कमे, वके णाममेगे उज्जुपरक्कमे, वके णाममेगे वकपरक्कमे।

पुन पुरुप चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ कोइ पुरुप शरीर से ऋजु और ऋजु पराक्रम वाला होता है।
२ कोइ पुरुप शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र पराक्रम वाला होता है।
३ कोई पुरुप शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु पराक्रम वाला होता है।
४ कोइ पुरुप शरीर से वक्र और वक्र पराक्रम वाला होता है (२१)।

भाषा-सूत्र

२२—पडिमापडिवण्णस्स ण अणगारस्स कप्पति चत्तारि भासाओ भासित्तए, त जहा—जायणी, पुच्छणी, अणुण्णवणी, पुट्ठस्स वागरणी।

भिक्षु प्रतिमाओ के धारक अनगार को चार भाषाएँ बोलना कल्पता है, जसे—

१ याचनी भाषा—वस्त्र पात्रादि की याचना के लिए बोलना।
२ प्रच्छनी भाषा—सूत्र का अर्थ और मार्ग आदि पूछने के लिए बोलना।
३ अनुज्ञापनी भाषा—स्थान आदि की आज्ञा लेने के लिए बोलना।
४ प्रश्नव्याकरणी भाषा—पूछे गये प्रश्न का उत्तर देने के लिए बोलना (२२)

२३—चत्तारि भासाजाता पण्णत्ता, त जहा—सच्चमेग भासज्जाय, बीय मोस, तइय सच्चमोस, चउत्थ असच्चमोस ।

भाषा चार प्रकार की कही गइ है, जैसे—

१ सत्य भाषा – यथाथ बोलना ।
२ मृषा भाषा—अयथाथ या असत्य बोलना ।
३ सत्य-मृषा भाषा—सत्य-असत्य मिश्रित भाषा बोलना ।
४ असत्यामृषा भाषा—व्यवहार भाषा (जिसमे सत्य-असत्य का व्यवहार न हो) बोलना (२३) ।

शुद्ध-अशुद्ध-सूत्र

२४—चत्तारि वत्था पण्णत्ता, त जहा—सुद्धे णाम एगे सुद्धे, सुद्धे णाम एगे असुद्धे, असुद्धे णाम एगे सुद्धे, असुद्धे णाम एगे असुद्धे ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुद्धे णाम एगे सुद्धे, [सुद्धे णाम एगे असुद्धे, असुद्धे णाम एगे सुद्धे, असुद्धे णाम एगे असुद्धे ।

चार प्रकार के वस्त्र कहे गये हैं, जैसे—

१ कोइ वस्त्र प्रकृति से (शुद्ध तन्तु आदि के द्वारा निर्मित होने से) शुद्ध होता है और (ऊपरी मलादि से रहित होने के कारण वतमान) स्थिति से भी शुद्ध होता है ।
२ कोइ वस्त्र प्रकृति से शुद्ध, किन्तु स्थिति से अशुद्ध होता है ।
३ कोइ वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध, किन्तु स्थिति से शुद्ध होता है ।
४ कोइ वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध और स्थिति से भी अशुद्ध होता है ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ कोइ पुरुष जाति से भी शुद्ध होता है और गुण से भी शुद्ध होता है ।
२ कोइ पुरुष जाति से तो शुद्ध होता है किन्तु गुण से अशुद्ध होता है ।
३ कोइ पुरुष जाति से अशुद्ध होता है, किन्तु गुण से शुद्ध होता है ।
४ कोई पुरुष जाति से भी अशुद्ध और गुण से भी अशुद्ध होता है (२४) ।

२५—चत्तारि वत्था पण्णत्ता, त जहा—सुद्धे णाम एगे सुद्धपरिणए, सुद्धे णाम एगे असुद्धपरिणए, असुद्धे णाम एगे सुद्धपरिणए, असुद्धे णाम एगे असुद्धपरिणए ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुद्धे णाम एगे सुद्धपरिणए, सुद्धे णाम एगे असुद्धपरिणए, असुद्धे णाम एगे सुद्धपरिणए, असुद्धे णाम एगे असुद्धपरिणए ।

पुन वस्त्र चार प्रकार के कहे गये हैं, जसे—

१ कोई वस्त्र प्रकृति से शुद्ध और शुद्ध परिणत होता है ।

२ कोइ वस्त्र प्रकृति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध परिणत होता है।
३ कोइ वस्त्र प्रकृति मे अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-परिणत होता है।
४ कोइ वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध और अशुद्ध-परिणत होता है।

इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—
१ कोइ पुरुप जाति से शुद्ध और शुद्ध-परिणत होता है।
२ कोइ पुरुप जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-परिणत होता है।
३ कोइ पुरुप जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध परिणत होता है।
४ कोइ पुरुप जाति से भी अशुद्ध और परिणति मे भी अशुद्ध होता है (२५)।

२६—चत्तारि वत्था पण्णत्ता, त जहा—सुद्धे णाम एगे सुद्धरूवे, सुद्धे णाम एगे असुद्धरूवे, असुद्धे णाम एगे सुद्धरूवे, असुद्धे णाम एगे असुद्धरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुद्धे णाम एगे सुद्धरूवे, सुद्धे णाम एगे असुद्धरूवे, असुद्धे णाम एगे सुद्धरूवे, असुद्धे णाम एगे असुद्धरूवे]।

पुन वस्त्र चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ कोइ वस्त्र प्रकृति से शुद्ध और शुद्ध रूपवाला होता है।
२ कोइ वस्त्र प्रकृति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध रूपवाला होता है।
३ कोइ वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध रूपवाला होता है।
४ कोइ वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध और अशुद्ध रूपवाला होता है।

इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ कोइ पुरुप प्रकृति से शुद्ध और शुद्ध रूपवाला होता है।
२ कोइ पुरुप प्रकृति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध रूपवाला होता है।
३ कोइ पुरुप प्रकृति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध रूपवाला होता है।
४ कोइ पुरुप प्रकृति से अशुद्ध और अशुद्ध रूपवाला होता है (२६)।

२७—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुद्धे णाम एगे सुद्धमणे, [सुद्धे णाम एगे असुद्धमणे, असुद्धे णाम एगे सुद्धमणे, असुद्धे णाम एगे असुद्धमणे।

पुन पुरुप चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ कोइ पुरुप जाति से शुद्ध और शुद्ध मनवाला होता है।
२ कोइ पुरुप जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध मनवाला होता है।
३ कोइ पुरुप जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध मनवाला होता है।
४ कोइ पुरुप जाति से अशुद्ध और अशुद्ध मनवाला होता है (२७)।

२८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुद्धे णाम एगे सुद्धसकप्पे, सुद्धे णाम एगे असुद्धसकप्पे, असुद्धे णाम एगे सुद्धसकप्पे, असुद्धे णाम एगे असुद्धसकप्पे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ कोइ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध सकल्प वाला होता है।
२ कोइ पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध सकल्प वाला होता है।
३ कोइ पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध सकल्प वाला होता है।
४ कोइ पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध सकल्प वाला होता है (२८)।

२६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुद्धे णाम एगे सुद्धपण्णे, सुद्धे णाम एगे असुद्धपण्णे, असुद्धे णाम एगे सुद्धपण्णे, असुद्धे णाम एगे असुद्धपण्णे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ कोइ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध प्रज्ञा वाला होता है।
२ कोइ पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध प्रज्ञा वाला होता है।
३ कोइ पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध प्रज्ञा वाला होता है।
४ कोइ पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध प्रज्ञा वाला होता है (२६)।

३०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुद्धे णाम एगे सुद्धदिट्ठी, सुद्धे णाम एगे असुद्धदिट्ठी, असुद्धे णाम एगे सुद्धदिट्ठी, असुद्धे णाम एगे असुद्धदिट्ठी।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ कोइ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध दृष्टिवाला होता है।
२ कोई पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध दृष्टिवाला होता है।
३ कोइ पुरुष जाति से अशुद्ध किन्तु शुद्ध दृष्टिवाला होता है।
४ कोइ पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध दृष्टिवाला होता है (३०)।

३१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुद्धे णाम एगे सुद्धसीलाचारे, सुद्धे णाम एगे असुद्धसीलाचारे, असुद्धे णाम एगे सुद्धसीलाचारे, असुद्धे णाम एगे असुद्धसीलाचारे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ कोइ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध शील-आचार वाला होता है।
२ कोइ पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध शील आचार वाला होता है।
३ कोइ पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध शील आचार वाला होता है।
४ कोई पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध शील-आचार वाला होता है (३१)।

३२—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुद्धे णाम एगे सुद्धववहारे, सुद्धे णाम एगे असुद्धववहारे, असुद्धे णाम एगे सुद्धववहारे, असुद्धे णाम एगे असुद्धववहारे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ कोइ पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध व्यवहारवाला होता है।

२ कोई पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध व्यवहार वाला होता है।
३ कोई पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध व्यवहार वाला होता है।
४ कोई पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध व्यवहार वाला होता है (३२)।

३३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुद्धे णाम एगे सुद्धपरक्कमे, सुद्धे णाम एगे असुद्धपरक्कमे, असुद्धे णाम एगे सुद्धपरक्कमे, असुद्धे णाम एगे असुद्धपरक्कमे]।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जसे—
१ कोई पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध पराक्रम वाला होता है।
२ कोई पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध पराक्रम वाला होता है।
३ कोई पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध पराक्रम वाला होता है।
४ कोई पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध पराक्रम वाला होता है (३३)।

सुत-सूत्र

३४—चत्तारि सुता पण्णत्ता, त जहा—अतिजाते, अणुजाते, अवजाते, कुलिंगाले।

सुत (पुत्र) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ कोई सुत अतिजात—पिता से भी अधिक समृद्ध और श्रेष्ठ होता है।
२ कोई सुत अनुजात—पिता के समान समृद्धिवाला होता है।
३ कोई सुत अपजात—पिता से हीन समृद्धि वाला होता है।
४ कोई सुत कुलाङ्गार—कुल मे अगार के समान—कुल को दूषित करने वाला होता है।

सत्य असत्य सूत्र

३५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सच्चे णाम एगे सच्चे, सच्चे णाम एगे असच्चे, असच्चे णाम एगे सच्चे, असच्चे णाम एगे असच्चे। एव परिणते जाव परक्कमे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ कोई पुरुष पहले भी सत्य (वादी) और पीछे भी सत्य (वादी) होता है।
२ कोई पुरुष पहले सत्य (वादी) किन्तु पीछे असत्य (वादी) होता है।
३ कोई पुरुष पहले असत्य (वादी) किन्तु पीछे सत्य (वादी) होता है।
४ कोई पुरुष पहले भी असत्य (वादी) और पीछे भी असत्य (वादी) होता है (३५)।

३६—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सच्चे णाम एगे सच्चपरिणते, सच्चे णाम एगे असच्चपरिणते, असच्चे णाम एगे सच्चपरिणते, असच्चे णाम एगे असच्चपरिणते।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—
१ कोई पुरुष सत्य (सत्यवादी प्रतिज्ञापालक) और सत्य परिणत होता है।
२ कोई पुरुष सत्य, किन्तु असत्य परिणत होता है।

३ कोई पुरुष असत्य (असत्यभाषी) किन्तु सत्य परिणत होता है।
४ कोई पुरुष असत्य और असत्य परिणत होता है (३६)।

३७ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सच्चे णाम एगे सच्चरूवे, सच्चे णाम एगे असच्चरूवे, असच्चे णाम एगे सच्चरूवे, असच्चे णाम एगे असच्चरूवे।

पुन पुरुष चार प्रकार के होते है। जसे—

१ कोई पुरुष सत्य और सत्य रूप वाला होता है।
२ कोई पुरुष सत्य, किन्तु असत्य रूप वाला होता है।
३ कोई पुरुष असत्य, किन्तु सत्य रूप वाला होता है।
४ कोई पुरुष असत्य और असत्य रूप वाला होता है (३७)।

३८—चत्तारि पुरिसजाया त जहा—सच्चे णाम एगे सच्चमणे, सच्चे णाम एगे असच्चमणे, असच्चे णाम एगे सच्चमणे, असच्चे णाम एगे असच्चमणे।

पुन पुरुष चार प्रकार के होते हैं। जैसे—

१ कोई पुरुष सत्य और सत्य मनवाला होता है।
२ कोई पुरुष सत्य, किन्तु असत्य मनवाला होता है।
३ कोई पुरुष असत्य, किन्तु सत्य मनवाला होता है।
४ कोइ पुरुष असत्य और असत्य मनवाला होता है (३८)।

३६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सच्चे णाम एगे सच्चसकप्पे, सच्चे णामं एगे असच्चसंकप्पे, असच्चे णाम एगे सच्चसकप्पे, असच्चे णाम एगे असच्चसकप्पे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ कोइ पुरुष सत्य और सत्य सकल्प वाला होता है।
२ कोइ पुरुष सत्य किन्तु असत्य सकल्प वाला होता ह।
३ कोइ पुरुष असत्य किन्तु सत्य सकल्प वाला होता है।
४ कोई पुरुष असत्य और असत्य सकल्प वाला होता है (३६)।

४०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सच्चे णाम एगे सच्चपण्णे, सच्चे णाम एगे असच्चपण्णे, असच्चे णाम एगे सच्चपण्णे, असच्चे णाम एगे असच्चपण्णे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जसे—

१ कोइ पुरुष सत्य और सत्य प्रज्ञा वाला होता है।
२ कोई पुरुष सत्य, किन्तु असत्य प्रज्ञा वाला होता है।
३ कोइ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य प्रज्ञा वाला होता है।
४ कोई पुरुष असत्य और असत्य प्रज्ञावाला होता है (४०)।

४१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सच्चे णाम एगे सच्चदिट्ठी, सच्चे णाम एगे असच्चदिट्ठी, असच्चे णाम एगे सच्चदिट्ठी, असच्चे णाम एगे असच्चदिट्ठी।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ कोइ पुरुष सत्य और सत्य दृष्टि वाला होता है।
२ कोइ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य दृष्टि वाला होता है।
३ कोइ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य दृष्टि वाला होता है।
४ कोई पुरुष असत्य और असत्य दृष्टिवाला होता है (४१)।

४२—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सच्चे णाम एगे सच्चसीलाचारे, सच्चे णाम एगे असच्चसीलाचारे, असच्चे णाम एगे सच्चसीलाचारे, असच्चे णाम एगे असच्चसीलाचारे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जसे—
१ कोइ पुरुष सत्य और सत्य शील आचार वाला होता है।
२ कोइ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य शील-आचार वाला होता है।
३ कोइ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य शील-आचार वाला होता है।
४ कोइ पुरुष असत्य और असत्य शील-आचार वाला होता है (४२)।

४३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सच्चे णाम एगे सच्चववहारे, सच्चे णाम एगे असच्चववहारे, असच्चे णाम एगे सच्चववहारे, असच्चे णाम एगे असच्चववहारे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जसे—
१ काइ पुरुष सत्य और सत्य व्यवहार वाला होता है।
२ कोइ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य व्यवहार वाला होता है।
३ कोइ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य व्यवहार वाला होता है।
४ कोई पुरुष असत्य और असत्य व्यवहार वाला होता है (४३)।

४४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—सच्चे णाम एगे सच्चपरक्कमे, सच्चे णाम एगे असच्चपरक्कमे, असच्चे णाम एगे सच्चपरक्कमे, असच्चे णाम एगे असच्चपरक्कमे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—
१ कोइ पुरुष सत्य और सत्य पराक्रम वाला होता है।
२ कोइ पुरुष सत्य, किन्तु असत्य पराक्रम वाला हाता है।
३ कोइ पुरुष असत्य, किन्तु सत्य पराक्रम वाला होना है।
४ कोइ पुरुष असत्य और असत्य पराक्रम वाला होता है (४४)।

शुचि अशुचि सूत्र

४५—चत्तारि वत्था पण्णत्ता, त जहा—सुद्द णाम एगे सुई, सुई णाम एगे असुइ, चउभगो ४। [असुई णाम एगे सुई, असुई णाम एगे असुई]।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुई णाम एगे सुई, चउभगो। एय जहेव सुद्धेण वत्थेण भणित तहेव सुईणा जाव परक्कमे। [सुई णाम एगे असुइ, असुई णाम एगे सुई, असुई णाम एगे असुई।

वस्त्र चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ कोइ वस्त्र प्रकृति मे शुचि (स्वच्छ) और परिष्कार-सफाइ से शुचि होता है।
२ कोइ वस्त्र प्रकृति से शुचि, किन्तु अपरिष्कार सफाई न होने से अशुचि होता है।
३ काइ वस्त्र प्रकृति से अशुचि, किन्तु परिष्कार से शुचि होता है।
४ कोइ वस्त्र प्रकृति से अशुचि और अपरिष्कार मे भी अशुचि होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कोइ पुरुप शरीर मे शुचि और स्वभाव से शुचि होता ह।
२ काइ पुरुप शरीर मे शुचि, किन्तु स्वभाव मे अशुचि होता है।
३ काइ पुरुप शरीर मे अशुचि, किन्तु स्वभाव से शुचि होता है।
४ कोइ पुरुप शरीर मे अशुचि और स्वभाव से भी अशुचि होता ह (४५)।

४६—चत्तारि वत्था पण्णत्ता, त जहा—सुई णाम एगे सुइपरिणते, सुई णाम एगे असुइपरिणते, असुई णाम एगे सुइपरिणते, असुई णाम एगे असुइपरिणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुई णाम एगे सुइपरिणते, सुई णाम एगे असुइपरिणते, असुई णाम एगे सुइपरिणते, असुई णाम एगे असुइपरिणते।

पुन वस्त्र चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कोई वस्त्र प्रकृति से शुचि और शुचि-परिणत होना है।
२ कोइ वस्त्र प्रकृति मे शुचि, किन्तु अशुचि परिणत होना है।
३ कोइ वस्त्र प्रकृति से अशुचि, किन्तु शुचि परिणत होता है।
४ कोइ वस्त्र प्रकृति से अशुचि और अशुचि परिणत होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कोइ पुरुप शरीर मे शुचि और शुचि परिणत होता है।
१ कोइ पुरुप शरीर से शुचि किन्तु अशुचि-परिणत होता है।
३ कोइ पुरुप शरीर मे अशुचि, किन्तु शुचि-परिणत होता है।
४ कोई पुरुप शरीर से अशुचि और अशुचि-परिणत होना ह (४६)।

४७—चत्तारि वत्था पण्णत्ता, त जहा—सुई णाम एगे सुइरूवे, सुई णाम एगे असुइरूवे, असुई णाम एगे सुइरूवे, असुई णाम एगे असुइरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—सुई णाम एगे सुइरूवे, सुई णाम एगे असुइरूवे, असुई णाम एगे सुइरूवे, असुई णाम एगे असुइरूवे।

पुन वस्त्र चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ कोई वस्त्र प्रकृति मे शुचि और शुचि रूप वाला होता है।
२ कोइ वस्त्र प्रकृति से शुचि, किन्तु अशुचि रूप वाला होता है।
३ कोइ वस्त्र प्रकृति से अशुचि, किन्तु शुचि रूप वाला होता है।
४ कोई वस्त्र प्रकृति से अशुचि और अशुचि रूप वाला होता है (४७)।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ कोइ पुरुष शरीर से शुचि (पवित्र) और शुचि रूप वाला होता है।
२ कोइ पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि रूप वाला होता है।
३ कोइ पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि रूप वाला होता है।
४ कोइ पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि रूप वाला होता है।

४८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुई णाम एगे सुइमणे, सुई णाम एगे असुइमणे, असुई णाम एगे सुइमणे, असुई णाम एगे असुइमणे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कोइ पुरुष शरीर से शुचि और मन से भी शुचि होता है।
२ कोइ पुरुष शरीर मे शुचि, किन्तु अशुचि मन वाला होता है।
३ कोइ पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि मन वाला होता है।
४ कोई पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि मन वाला होता है (४८)।

४९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुई णाम एगे सुइसकप्पे, सुई णाम एगे असुइसकप्पे, असुई णाम एगे सुइसकप्पे, असुई णाम एगे असुइसकप्पे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ कोइ पुरुष शरीर मे शुचि और शुचि सकल्पवाला होता है।
२ कोइ पुरुष शरीर मे शुचि, किन्तु अशुचि सकल्पवाला होता है।
३ कोइ पुरुष शरीर मे अशुचि, किन्तु शुचि सकल्पवाला होता है।
४ कोइ पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि सकल्पवाला होता है (४९)।

५०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुई णाम एगे सुइपण्णे सुई णाम एगे असुइपण्णे, असुई णाम एगे सुइपण्णे, असुई णाम एगे असुइपण्णे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कोइ पुरुष शरीर मे शुचि और प्रज्ञा से भी शुचि होता है।
२ कोइ पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि प्रज्ञावाला होता है।
३ कोइ पुरुष शरीर मे अशुचि, किन्तु शुचि प्रज्ञावाला होता है।
४ कोइ पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि प्रज्ञावाला होता है (५०)

५१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुई णाम एगे सुइदिट्ठी सुई णाम एगे असुइदिट्ठी, असुई णाम एगे सुइदिट्ठी, असुई णाम एगे असुइदिट्ठी।

पुन पुरुप चार प्रकार के कहे गये हैं। जसे—
१ कोइ पुरुप शरीर से शुचि और शुचि दृष्टि वाला होता है।
२ कोइ पुरुप शरीर मे शुचि, कि तु अशुचि दृष्टि वाला होता है।
३ कोई पुरुप शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि दृष्टि वाला होता है।
४ कोइ पुरुप शरीर से अशुचि और अशुचि दृष्टि वाला होता है (५१)।

५२—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुई णाम एगे सुइसीलाचारे, सुई णाम एगे असुइसीलाचारे, असुई णाम एगे सुइसीलाचारे, असुई णाम एगे असुइसीलाचारे।

पुन पुरुप चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—
१ कोइ पुरुप शरीर से शुचि और शुचि शील-आचार वाला होता है।
२ कोइ पुरुप शरीर से शुचि, कि तु अशुचि शील-आचार वाला होता है।
३ कोइ पुरुप शरीर से अशुचि, कि तु शुचि शील-आचार वाला होता है।
४ कोइ पुरुप शरीर से अशुचि और अशुचि शील-आचार वाला होता है (५२)।

५३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुई णाम सुइववहारे, सुई णाम एगे असुइववहारे, असुई णाम एगे सुइववहारे, असुई णाम एगे असुइववहारे।

पुन पुरुप चार प्रकार के कहे गये हैं। जसे—
१ कोइ पुरुप शरीर से शुचि और शुचि व्यवहार वाला होता है।
२ कोइ पुरुप शरीर से शुचि, कि तु अशुचि व्यवहार वाला होता है।
३ कोई पुरुप शरीर से अशुचि, कि तु शुचि व्यवहार वाला होता है।
४ कोइ पुरुप शरीर से अशुचि और अशुचि व्यवहार वाला होता है (५३)।

५४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुइ णाम एगे सुइपरक्कमे, सुई णाम एगे असुइपरक्कमे, असुई णाम एगे सुइपरक्कमे, असुइ णाम एगे असुइपरक्कमे]।

पुन पुरुप चार प्रकार के कहे गये है। जसे—
१ कोइ पुरुप शरीर से शुचि और शुचि पराक्रमवाला होता है।
२ कोइ पुरुप शरीर से शुचि, कि तु अशुचि पराक्रमवाला होता है।
३ कोइ पुरुप शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि पराक्रमवाला होता है।
४ कोइ पुरुप शरीर से अशुचि और अशुचि पराक्रमवाला होता । (५४)

कोरक-सूत्र

५५—चत्तारि कोरवा पण्णत्ता, त जहा—अवपलवकोरवे, तालपलवकोरवे, वल्लिपलवकोरवे, मेढविसाणकोरवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अंबपलबकोरवसमाणे, तालपलबकोरव समाणे, वल्लिपलबकोरवसमाणे, मेढविसाणकोरवसमाणे।

कोरक (कलिका) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ आम्रप्रलम्बकोरक—आम के फल की कलिका।
२ तालप्रलम्ब कोरक—ताड के फल की कलिका।
३ वल्लीप्रलम्ब कोरक—वल्ली (लता) के फल की कलिका।
४ मेढविषाणकोरक—मेढे के सींग के समान फल वाली वनस्पति-विशेष की कलिका।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ आम्रप्रलम्ब-कोरक समान—जो सेवा करने पर उचित अवसर पर उचित उपकार रूप फल प्रदान करे (प्रत्युपकार करे)।

२ तालप्रलम्ब-कोरक समान—जो दीर्घकाल तक खूब सेवा करने पर उपकाररूप फल प्रदान करे।

३ वल्ली प्रलम्ब-कोरक समान—जो सेवा करने पर शीघ्र और कठिनाइ बिना फल प्रदान करे।

४ मेढ विषाण-कोरक समान—जो सेवा करने पर भी केवल मीठे वचन ही बोले, किन्तु कोइ उपकार न करे (५५)।

भिक्षाक-सूत्र

५६—चत्तारि घुणा पण्णत्ता, तं जहा—तयक्खाए, छल्लिक्खाए, कट्ठक्खाए, सारक्खाए।

एवामेव चत्तारि भिक्खागा पण्णत्ता, तं जहा—तयक्खायसमाणे, जाव [छल्लिक्खायसमाणे कट्ठक्खायसमाणे] सारक्खायसमाणे।

१ तयक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स सारक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते।
२ सारक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स तयक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते।
३ छल्लिक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स कट्ठक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते।
४ कट्ठक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स छल्लिक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते।

घुण (काष्ठ भक्षक कीडे) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ त्वक्-खाद—वृक्ष की ऊपरी छाल को खानेवाला।
२ छल्ली-खाद—छाल के भीतरी भाग को खानेवाला।
३ काष्ठ खाद—काठ को खानेवाला।
४ सार-खाद—काठ के मध्यवर्ती सार को खानेवाला।

इसी प्रकार भिक्षाक (भिक्षा-भोजी साधु) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ त्वक्-खाद समान—नीरस, रूक्ष अन्त प्रान्त आहार-भोजी साधु।

२ छल्ली-खाद-समान—अलेप आहार-भोजी साधु।
३ काष्ठ-खाद-समान—दूध, दही, घृतादि से रहित (विगयरहित) आहार-भोजी साधु।
४ सार-खाद समान—दूध, दही, घृतादि से परिपूर्ण आहार-भोजी साधु।

१ त्वक खाद समान भिक्षाक का तप सार खाद-घुण के समान कहा गया है।
२ सार-खाद-समान भिक्षाक का तप त्वक्-खाद घुण के समान कहा गया है।
३ छल्ली खाद-समान भिक्षाक का तप काष्ठ खाद घुण के समान कहा गया है।
४ काष्ठ खाद-समान भिक्षाक का तप छल्ली-खाद घुण के समान कहा गया है।

विवेचन—जिस घुण कीट के मुख की भेदन शक्ति जितनी अल्प या अधिक होती है, उसी के अनुसार वह त्वचा, छाल, काठ या सार को खाता है। जो भिक्षु प्रान्तवर्ती (बचा खुचा) स्वल्प रूखा सूखा आहार करता है, उसके कर्म-क्षपण करनेवाले तप की शक्ति सार को खानेवाले घुण के समान सबसे अधिक होती है। जो भिक्षु दूध, दही आदि विकृतियों से परिपूर्ण आहार करता है, उसके कर्म क्षपण (तप) की शक्ति त्वचा को खाने वाले घुण के समान अत्यल्प होती है। जो भिक्षु विकृति रहित आहार करता है, उसकी कर्म क्षपण-शक्ति काठ को खाने वाले घुण के समान अधिक होती है। जो भिक्षु दूध, दही आदि विकृतियों को नहीं खाता है, उसकी कर्म-क्षपण शक्ति छाल को खाने वाले घुण के समान अल्प होती है। उक्त चारों में त्वक्-खाद-समान भिक्षु सर्वश्रेष्ठ उत्तम है। छल्ली खाद समान भिक्षु मध्यम है। काष्ठ-खाद-समान भिक्षु जघन्य है और सार-खाद समान भिक्षु जघन्यतर श्रेणी का है। श्रेणी के समान ही उनके तप में भी तारतम्य हीनाधिकता जाननी चाहिए। पहले का तप प्रधानतर, दूसरे का अप्रधानतर, तीसरे का प्रधान और चौथे का अप्रधान तप है, ऐसा टीकाकार का कथन है।

तृणवनस्पति-सूत्र

५७—चउव्विहा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, तं जहा—अग्गबीया, मूलबीया, पोरबीया, खंधबीया।

तृणवनस्पतिकायिक जीव चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ अग्रबीज—जिस वनस्पति का अग्रभाग बीज हो जैसे—कोरण्ट आदि।
२ मूलबीज—जिस वनस्पति का मूल बीज हो। जैसे—कमल, जमीकन्द आदि।
३ पर्वबीज—जिस वनस्पति का पर्व बीज हो। जैसे—ईख-गन्ना आदि।
४ स्कन्धबीज—जिस वनस्पति का स्कन्ध बीज हो। जैसे—सल्लकी वृक्ष आदि (५७)।

अधुनोपपन्न नैरयिक-सूत्र

५८—चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे णेरइए णिरयलोगंसि इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए—

१ अहुणोववण्णे णेरइए णिरयलोगंसि समुब्भूयं वेयणं वेयमाणे इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए।

२ अहुणोववण्णे णेरइए णिरयलोगंसि णिरयपालेहिं भुज्जो भुज्जो अहिट्ठिज्जमाणे इच्छेज्जा माणुस लोग हव्वमागच्छित्तए, णो चेव ण सचाएति हव्वमागच्छित्तए ।

३ अहुणोववण्णे णेरइए णिरयवेयणिज्जंसि कम्मंसि अक्खीणंसि अवेइयंसि अणिज्जिण्णंसि इच्छेज्जा माणुस लोग हव्वमागच्छित्तए, णो चेव ण सचाएति हव्वमागच्छित्तए ।

४ [अहुणोववण्णे णेरइए णिरयाउअंसि कम्मंसि जाव अक्खीणंसि जाव अवेइयंसि अणिज्जिण्णंसि इच्छेज्जा माणुस लोग हव्वमागच्छित्तए] णो चेव ण सचाएति हव्वमागच्छित्तए ।

इच्चेतेहिं चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे णेरइए [णिरयलोगंसि इच्छेज्जा माणुसलोग हव्वमागच्छित्तए] णो चेव ण सचाएति हव्वमागच्छित्तए ।

नरकलोक मे तत्काल उत्पन्न हुआ नैरयिक चार कारणो से शीघ्र ही मनुष्यलोक मे आने की इच्छा करता है, किन्तु आ नही सकता—

१ तत्काल उत्पन्न नरयिक नरकलोक मे होने वाली वेदना का वेदन करता हुआ शीघ्र ही मनुष्यलोक मे आने की इच्छा करता है, किन्तु आ नही सकता ।

२ तत्काल उत्पन्न नरयिक नरकलोक मे नरक पालो के द्वारा समाक्रान्त—पीडित होता हुआ शीघ्र ही मनुष्यलोक मे आने की इच्छा करता है, किन्तु आ नही सकता ।

३ तत्काल उत्पन्न नैरयिक शीघ्र ही मनुष्यलोक मे आने की इच्छा करता है, किन्तु नरकलोक मे वेदन करने योग्य कर्मों के क्षीण हुए विना, उनको भोगे विना, उनके निर्जीण हुए विना आ नही सकता ।

४ तत्काल उत्पन्न नरयिक शीघ्र ही मनुष्यलोक मे आने की इच्छा करता है, किन्तु नारकायुकर्म के क्षीण हुए विना, उसको भोगे विना, उसके निर्जीण हुए विना आ नही सकता ।

इन उक्त चार कारणो से नरकलोक मे तत्काल उत्पन्न नैरयिक शीघ्र मनुष्यलोक मे आने की इच्छा करता है, किन्तु आ नही सकता (५८) ।

सघाटी-सूत्र

५९—कप्पति णिग्गथीण चत्तारि सघाडीओ धारित्तए वा परिहरित्तए वा, त जहा—एगं दुहत्थवित्थार, दो तिहत्थवित्थारा, एग चउहत्थवित्थार ।

निग्रन्थी साध्वियो को चार सघाटिया (साडिया) रखने और पहिनने के लिए कल्पती है—

१ दो हाथ विस्तारवाली एक सघाटी—जो उपाश्रय मे ओढने के काम आती है ।

२ तीन हाथ विस्तारवाली दो सघाटी—उनमे से एक भिक्षा लेने को जाते समय ओढने के लिए ।

३ दूसरी शौच जाते समय ओढने के लिए ।

४ चार हाथ विस्तारवाली एक सघाटी—व्याख्यान-परिषद् मे जाते समय ओढने के लिए (५९) ।

ध्यान सूत्र

६०—चत्तारि झाणा पण्णत्ता, त जहा—अट्टे झाणे, रोद्दे झाणे, धम्मे झाणे, सुक्के झाणे ।

ध्यान चार प्रकार के कहे गये हैं, जसे—

१ आर्त्त ध्यान—किसी भी प्रकार के दु ख आने पर शोक तथा चि तामय मन की एकाग्रता।
२ रौद्रध्यान—हिंसादि पापमयी क्रूर मानसिक परिणति की एकाग्रता ।
३ धर्म्यध्यान—श्रुतधर्म और चारित्रधर्म के चिन्तन की एकागता ।
४ शुक्लध्यान—कर्मक्षय के कारणभूत शुद्धोपयोग मे लीन रहना (६०) ।

६१—अट्टझाणे चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा —

१ अमणुण्ण सपओग सपउत्ते, तस्स विप्पओग सति समण्णागते यावि भवति ।
२ मणुण्ण सपओग सपउत्त, तस्स अविप्पओग सति समण्णागते यावि भवति ।
३ आतक-सपओग सपउत्ते, तस्स विप्पओग सति समण्णागते यावि भवति ।
४ परिजुसित काम भोग सपओग सपउत्ते, तस्स अविप्पओग सति समण्णागते यावि भवति ।

आर्त्त ध्यान चार प्रकार का कहा गया है, जैसे —

१ अमनाज्ञ (अप्रिय) वस्तु का सयोग होने पर उसके दूर करने का वार-वार चि तन करना।
२ मनोज्ञ (प्रिय) वस्तु का सयोग होने पर उसका वियोग न हो, ऐसा वार-वार चि तन करना ।
३ आतक (घातक रोग) होने पर उसके दूर करने का वार-वार चि तन करना ।
४ प्रीति-कारक काम-भोग का सयोग होने पर उसका वियोग न हो, ऐसा वार-वार चितन करना (६१) ।

६२—अट्टस्स ण झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, त जहा—कदणता, सोयणता, तिप्पणता परिदेवणता ।

आर्त्त ध्यान के चार लक्षण कहे गये है, जैसे—

१ क्रन्दनता—उच्च स्वर से बोलते हुए रोना ।
२ शोचनता—दीनता प्रकट करते हुए शोक करना ।
३ तेपनता—आसू वहाना ।
४ परिदेवनता— करुणा-जनक विलाप करना (६२) ।

विवेचन—अमनोज्ञ, अप्रिय और अनिष्ट ये तीनो एकार्थक शब्द हैं । इसी प्रकार मनोज्ञ, प्रिय और इष्ट ये तीनो एकार्थवाची है । अनिष्ट वस्तु का सयोग या इष्ट का वियोग होने पर मनुष्य जो दु ख, शोक, सन्ताप, आक्रन्दन और परिदेवन करता है, वह सब आर्त्त ध्यान है । रोग को दूर करने के लिए चि तातुर रहना और प्राप्त भोग नष्ट न हो जावें, इसके लिए चिंतित रहना भी

आर्त्त ध्यान है। तत्त्वार्थसूत्र आदि ग्रन्थो मे निदान को भी आर्त्त ध्यान के भेदो मे गिना है। यहा वर्णित चौथे भेद को वहा दूसरे भेद मे ले लिया है।

जब दुख आदि के चिन्तन मे एकाग्रता आ जाती है तभी वह ध्यान की कोटि मे आता है।

६३—रोद्दे झाणे चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—हिंसाणुबंधि, मोसाणुबंधि, तेणाणुबंधि, सारक्खणाणुबंधि।

रौद्रध्यान चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१ हिंसानुबन्धी—निरन्तर हिंसक प्रवृत्ति मे तन्मयता कराने वाली चित्त की एकाग्रता।
२ मृषानुबन्धी—असत्य भाषण सम्बन्धी एकाग्रता।
३ स्तेनानुबन्धी—निरन्तर चोरी करने-कराने की प्रवृत्ति सम्बन्धी एकाग्रता।
४ सरक्षणानुबन्धी—परिग्रह के अर्जन और सरक्षण सम्बन्धी तन्मयता (६३)।

६४—रुद्दस्स ण झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, त जहा—ओसण्णदोसे, बहुदोसे, अण्णाणदोसे, आमरणतदोसे।

रौद्रध्यान के चार लक्षण कहे गये हैं, जैसे—

१ उत्सन्नदोष—हिंसादि किसी एक पाप मे निरन्तर प्रवृत्ति करना।
२ बहुदोष—हिंसादि सभी पापो के करने मे सलग्न रहना।
३ अज्ञानदोष—कुशास्त्रों के सस्कार से हिंसादि अधार्मिक कार्यो को धर्म मानना।
४ आमरणान्त दोष—मरणकाल तक भी हिंसादि करने का अनुताप न होना (६४)।

विवेचन—निरन्तर रुद्र या क्रूर कार्यो को करना, आरम्भ समारम्भ मे लगे रहना, उनको करते हुए जीव-रक्षा का विचार न करना, झूठ बोलते और चोरी करते हुए भी पर-पीडा का विचार न करके आनन्दित होना, ये सब रौद्रध्यान के कार्य कहे गये है। शास्त्रो मे आर्त्तध्यान को तिर्यग्गति का कारण और रौद्रध्यान को नरकगति का कारण कहा गया है। ये दोनो ही अप्रशस्त या अशुभध्यान हैं।

६५—धम्मे झाणे चउव्विहे चउप्पडोयारे पण्णत्ते, त जहा—आणाविजए, अवायविजए, विवागविजए, सठाणविजए।

(स्वरूप, लक्षण, आलम्बन और अनुप्रेक्षा इन) चार पदो मे अवतरित धर्म्यध्यान चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१ आज्ञाविचय—जिन-आज्ञा रूप प्रवचन के चिन्तन मे सलग्न रहना।
२ अपायविचय—ससार पतन के कारणो का विचार करते हुए उनसे बचने का उपाय करना।
३ विपाकविचय—कर्मों के फल का विचार करना।
४ सस्थानविचय—जन्म मरण के आधारभूत पुरुषाकार लोक के स्वरूप का चिन्तन करना (६५)।

६६—धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, त जहा—आणारुई, णिसग्गरुई, सुत्तरुई, ओगाढरुई ।

धम्यध्यान के चार लक्षण कहे गये हैं, जैसे—

१ आज्ञारुचि—जिन आज्ञा के मनन-चिन्तन मे रुचि, श्रद्धा एव भक्ति होना ।
२ निसर्ग रुचि—धर्मकार्यों के करने मे स्वाभाविक रुचि होना ।
३ सूत्ररुचि—आगम-शास्त्रो के पठन-पाठन मे रुचि होना ।
४ अवगाढरुचि—द्वादशाङ्गवाणी के अवगाहन मे प्रगाढ रुचि होना (६६) ।

६७—धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि आलबणा पण्णत्ता, त जहा—वायणा, पडिपुच्छणा परियट्टणा, अणुप्पेहा ।

धम्यध्यान के चार आलम्बन कहे गये है, जसे—

१ वाचना—आगम सूत्र आदि का पठन करना ।
२ प्रतिप्रच्छना—शका-निवारणाथ गुरुजनों से पूछना ।
३ परिवर्तन—पठित सूत्रो का पुनरावतन करना ।
४ अनुप्रेक्षा—अथ का चिन्तन करना (६७) ।

६८—धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ, त जहा—एगाणुप्पेहा, अणिच्चाणुप्पेहा, असरणाणुप्पेहा, ससाराणुप्पेहा ।

धम्यध्यान की चार अनुप्रेक्षाए कही गई है, जसे—

१ एकात्वानुप्रेक्षा—जीव के सदा अकेले परिभ्रमण और सुख-दु ख भोगने का चिन्तन करना ।
२ अनित्यानुप्रेक्षा—सासारिक वस्तुओ की अनित्यता का चिन्तन करना ।
३ अशरणानुप्रेक्षा जीव को कोई दूसरा-धन परिवार आदि शरण नही, ऐसा चिन्तन करना ।
४ ससारानुप्रेक्षा—चतुगति रूप ससार की दशा का चिन्तन करना (६८) ।

विवेचन—शास्त्रो मे धम के स्वरूप के पाच प्रकार प्रतिपादन किये गये हैं—१ अहिंसालक्षण धर्म २ क्षमादि दशलक्षण धम ३ मोह तथा क्षोभ से विहीन परिणामरूप धम ४ सम्यग्दशन ज्ञान चारित्ररूप रत्नत्रय धम और ५ वस्तुस्वभाव धम । उक्त प्रकार के धर्मों के अनुकूल प्रवतन करने को धम्य कहते हैं । धम्यध्यान की सिद्धि के लिए वाचना आदि चार आलम्बन या आधार बताये गये हैं और उसकी स्थिरता के लिए एकत्व आदि चार अनुप्रेक्षाए कही गई हैं । उस धम्यध्यान के आज्ञाविचय आदि चार भेद हैं । और आज्ञारुचि आदि उसके चार लक्षण कहे गये हैं । आत्त और रौद्र इन दोनो दुर्ध्यानो से उपरत होकर कषायो की मन्दता से शुभ अध्यवसाय या शुभ उपयोगरूप पुण्य कम सम्पादक जितने भी काय हैं, उन सब को करना, कराना और अनुमोदन करना, शास्त्रों का

पठन-पाठन करना, व्रत, शील और समय का परिपालन करना और करने के लिए चिन्तन करना धर्म्यध्यान है। किन्तु यह नही भूलना चाहिए कि इन सब कर्त्तव्यों का अनुष्ठान करते समय जितनी देर चित्त एकाग्र रहता है, उतनी देर ही ध्यान होता है। छद्मस्थ का ध्यान अन्तर्मुहूर्त तक ही टिकता है, अधिक नही।

६९—सुक्के झाणे चउव्विहे चउप्पडोआरे पण्णत्ते, त जहा—पुहुत्तवितक्के सवियारी, एगत्तवितक्के अवियारी, सुहुमकिरिए अणियट्टी, समुच्छिण्णकिरिए अप्पडिवाती।

(स्वरूप, लक्षण, आलम्बन और अनुप्रेक्षा इन) चार पदो मे अवतरित शुक्लध्यान चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१ पृथक्त्ववितर्क सविचार, २ एकत्ववितर्क अविचार, ३ सूक्ष्मक्रिय-अनिवृत्ति और ४ समुच्छिन्नक्रिय-अप्रतिपाति (६९)।

विवेचन—जब कोई उत्तम सहनन का धारक सप्तम गुणस्थानवर्ती अप्रमत्त सयत मोहनीय कर्म के उपशमन या क्षपण करने के लिए उद्यत होता है और प्रति समय अनन्त गुणी विशुद्धि से प्रवर्धमान परिणाम वाला होता है, तब वह अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थान मे प्रवेश करता है। वहा पर शुभोपयोग की प्रवृत्ति दूर होकर शुद्धोपयोगरूप वीतराग परिणति और प्रथम शुक्लध्यान प्रारम्भ होता है, जिसका नाम पृथक्त्ववितर्क सविचार है। वितर्क का अर्थ है—भावश्रुत के आधार से द्रव्य, गुण और पर्याय का विचार करना। विचार का अर्थ है—अर्थ व्यजन और योग का परिवर्तन। जब ध्यानस्थित साधु किसी एक द्रव्य का चिन्तन करता-करता उसके किसी एक गुण का चिन्तन करने लगता है और फिर उसी की किसी एक पर्याय का चिन्तन करने लगता है, तब उसके इस प्रकार पृथक्-पृथक् चिन्तन को पृथक्त्ववितर्क कहते हैं। जब वही सयत अर्थ से शब्द मे और शब्द से अर्थ के चिन्तन मे सक्रमण करता है और मनोयोग से वचनयोग का और वचनयोग से काययोग का आलम्बन लेता है, तब वह सविचार कहलाता है। इस प्रकार वितर्क और विचार के परिवर्तन और सक्रमण की विभिन्नता के कारण इस ध्यान को पृथक्त्ववितर्क सविचार कहते हैं। यह प्रथम शुक्लध्यान चतुर्दश पूर्वधर के होता है और इसके स्वामी आठवें गुणस्थान से लेकर ग्यारहवें गुणस्थानवर्त्ती सयत है। इस ध्यान के द्वारा उपशम श्रेणी पर आरूढ सयत दशवे गुणस्थान मे पहुँच कर मोहनीय कर्म के शेष रहे सूक्ष्म लोभ का भी उपशम कर देता है, तब वह ग्यारहवें उपशान्तमोह गुणस्थान को प्राप्त होता है और जब क्षपकश्रेणी पर आरूढ सयत दशवें गुणस्थान मे अवशिष्ट सूक्ष्म लोभ का क्षय करके बारहवें गुणस्थान मे पहुँचता है तब वह क्षीणमोह क्षपक कहलाता है।

२ एकत्व-वितर्क अविचार शुक्लध्यान—बारहवें गुणस्थानवर्ती क्षीणमोही क्षपक-साधक की मनोवृत्ति इतनी स्थिर हो जाती है कि वहाँ न द्रव्य, गुण, पर्याय के चिन्तन का परिवर्तन होता है और न अर्थ, व्यञ्जन (शब्द) और योगो का ही सक्रमण होता है। किन्तु वह द्रव्य, गुण या पर्याय मे से किसी एक के गम्भीर एव सूक्ष्म चिन्तन मे सलग्न रहता है और उसका वह चिन्तन किसी एक अर्थ, शब्द या योग के आलम्बन मे होता है। उस समय वह एकाग्रता की चरम कोटि पर पहुँच जाता है और इसी दूसरे शुक्लध्यान की प्रज्वलित अग्नि मे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणी

अन्तराय कर्म की सब प्रकृतियो को भस्म कर अनन्त ज्ञान, दर्शन और बल-वीर्य का धारक सयोगी जिन बन कर तेरहवें गुणस्थान मे प्रवेश करता है।

३ तीसरे शुक्लध्यान का नाम सूक्ष्मक्रिय-अनिवृत्ति है। तेरहवे गुणस्थानवर्ती सयोगी जिन का आयुष्य जब अन्तमुहूर्त प्रमाणमात्र शेष रहता है और उसी की बराबर स्थितिवाले वेदनीय, नाम और गोत्रकर्म रह जाते हैं, तब वे सयोगी जिन-बादर तथा सूक्ष्म सब मनोयोग और वचनयोग का निरोध कर सूक्ष्म काययोग का आलम्बन लेकर सूक्ष्मक्रिय अनिवृत्ति ध्यान ध्याते है। इस समय श्वासो च्छ्वास जैसी सूक्ष्म क्रिया शेष रहती है और इस अवस्था से निवृत्ति या वापिस लौटना नही होता है, अत इसे सूक्ष्मक्रिय-अनिवृत्ति कहते हैं।

४ चौथे शुक्लध्यान का नाम समुच्छिन्नक्रिय-अप्रतिपाती है। यह शुक्लध्यान सूक्ष्म काययोग का निरोध होने पर चौदहवें गुणस्थान मे होता है और योगो की प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव हो जाने से आत्मा अयोगी जिन हो जाता है। इस चौथे शुक्लध्यान के द्वारा वे अयोगी जिन अघातिया कर्मो की शेष रही ८५ प्रकृतियों की प्रतिक्षण असख्यात गुणितक्रम से निर्जरा करते हुए अन्तिम क्षण मे कर्म लेप से सर्वथा विमुक्त होकर सिद्ध परमात्मा बन कर सिद्धालय मे जा विराजते हैं। अत इस शुक्लध्यान से योग-क्रिया समुच्छिन्न (सर्वथा विनष्ट) हो जाती है और उससे नीचे पतन नही होता, अत इसका समुच्छिन्नक्रिय अप्रतिपाती यह सार्थक नाम है।

७०—सुक्कस्स ण झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, त जहा—अव्वहे, असम्मोहे, विवेगे, विउस्सग्गे।

शुक्लध्यान के चार लक्षण कहे गये हैं। जैसे—

१ अव्यथ—व्यथा से परिषह या उपसर्गादि से पीडित होने पर भी क्षोभित नही होना।
२ असम्मोह—देवादिकृत माया से मोहित नही होना।
३ विवेक—सभी सयोगो को आत्मा से भिन्न मानना।
४ व्युत्सर्ग—शरीर और उपधि मे ममत्व का त्याग कर पूर्ण नि सग होना।

७१—सुक्कस्स ण झाणस्स चत्तारि आलबणा पण्णत्ता, त जहा—खती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे।

शुक्लध्यान के चार आलम्बन कहे गये हैं। जैसे—

१ क्षान्ति (क्षमा) २ मुक्ति (निर्लोभता) ३ आर्जव (सरलता) ४ मार्दव (मृदुता)।

७२—सुक्कस्स ण झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ, त जहा—अणतवत्तियाणुप्पेहा, विप्परिणामाणुप्पेहा, असुभाणुप्पेहा, अवायाणुप्पेहा।

शुक्लध्यान की चार अनुप्रेक्षाए कही गई हैं। जैसे—

१ अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा—ससार मे परिभ्रमण की अनन्तता का विचार करना।
२ विपरिणामानुप्रेक्षा—वस्तुओ के विविध परिणमनो का विचार करना।

३ अशुभानुप्रेक्षा—ससार, देह और भोगो की अशुभता का विचार करना ।
४ अपायानुप्रेक्षा—राग द्वेष से होने वाले दोषो का विचार करना (७२) ।

देव स्थिति सूत्र

७३—चउव्विहा देवाण ठिती पण्णत्ता, त जहा—देवे णाममेगे, देवसिणाते णाममेगे, देवपुरोहिते णाममेगे, देवपज्जलणे णाममेगे ।

देवो की स्थिति (पद मर्यादा) चार प्रकार की कही गई है । जसे—

१ देव—सामान्य देव ।
२ देव-स्नातक—प्रधान देव । अथवा मन्त्री-स्थानीय देव ।
३ देव पुरोहित—शान्तिकर्म करने वाले पुरोहित स्थानीय देव ।
४ देव-प्रज्वलन—मगल पाठक चारण-स्थानीय मागध देव (७३) ।

सवास सूत्र

७४—चउव्विहे सवासे पण्णत्ते, त जहा—देवे णाममेगे देवीए सद्धि सवास गच्छेज्जा, देवे णाममेगे छवीए सद्धि सवास गच्छेज्जा, छवी णाममेगे देवीए सद्धि सवास गच्छेज्जा, छवी णाममेगे छवीए सद्धि सवास गच्छेज्जा ।

सवास चार प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ कोई देव देवी के साथ सवास (सम्भोग) करता है ।
२ कोई देव छवि (औदारिक शरीरी मनुष्यनी या तिर्यचनी) के साथ सवास करता है ।
३ कोई छवि (मनुष्य या तिर्यच) देवी के साथ सवास करता है ।
४ कोई छवि (मनुष्य या तिर्यच) छवी (मनुष्यनी या तिर्यचनी) के साथ सवास करता है ।

कषाय-सूत्र

७५—चत्तारि कसाया पण्णत्ता त जहा—कोहकसाए, माणकसाए, मायाकसाए, लोभकसाए । एव—णेरइयाण जाव वेमाणियाण ।

कषाय चार प्रकार के कहे गये है । जैसे—

१ क्रोधकषाय, २ मानकषाय, ३ मायाकषाय और ४ लोभकषाय ।
नारको से लेकर वैमानिको तक के सभी दण्डको मे ये चारो कषाय होते है ।

७६—चउ पतिट्ठिते कोहे पण्णत्ते, त जहा—आत-पतिट्ठिते, पर पतिट्ठिते, तदुभय-पतिट्ठिते, अपतिट्ठिते । एव—णेरइयाण जाव वेमाणियाण ।

क्रोधकषाय चतु प्रतिष्ठित कहा गया है । जैसे—

१ आत्म प्रतिष्ठित—अपने ही दोष से सकट उत्पन्न होने पर अपने ही ऊपर क्रोध होना ।
२ पर-प्रतिष्ठित—पर के निमित्त से उत्पन्न अथवा पर-विषयक क्रोध ।

३ तदुभय-प्रतिष्ठित—स्व और पर के निमित्त से उत्पन्न उभय-विषयक क्रोध।
४ अप्रतिष्ठित—बाह्य निमित्त के बिना क्रोध कषाय के उदय से उत्पन्न होने वाला क्रोध, जो जीवप्रतिष्ठित होकर भी आत्मप्रतिष्ठित आदि न होने से अप्रतिष्ठित कहलाता है।
इसी प्रकार नारकों से लेकर वैमानिकों तक के सभी दण्डकों मे जानना चाहिए।

७७—[चउपतिट्ठिते माणे पण्णत्ते, त जहा—आतपतिट्ठिते, परपतिट्ठिते, तदुभयपतिट्ठिते, अपतिट्ठिते। एव—णेरइयाण जाव वेमाणियाण।

मानकषाय चतु प्रतिष्ठित कहा गया है। जैसे—

१ आत्मप्रतिष्ठित, २ परप्रतिष्ठित, ३ तदुभयप्रतिष्ठित और ४ अप्रतिष्ठित।
यह चारो प्रकार का मान नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे होता है।

७८—चउपतिट्ठिता माया पण्णत्ता, त जहा—आतपतिट्ठिता, परपतिट्ठिता, तदुभयपतिट्ठिता, अपतिट्ठिता। एव—णेरइयाण जाव वेमाणियाण।

मायाकषाय चतु प्रतिष्ठित कहा गया है। जैसे—

१ आत्मप्रतिष्ठित, २ परप्रतिष्ठित, ३ तदुभयप्रतिष्ठित और ४ अप्रतिष्ठित।
यह चारो प्रकार की माया नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे होती है।

७९—चउपतिट्ठिते लोभे पण्णत्ते, त जहा—आतपतिट्ठिते, परपतिट्ठिते, तदुभयपतिट्ठिते, अपतिट्ठिते। एव—णेरइयाण जाव वेमाणियाण]।

लोभकषाय चतु प्रतिष्ठित कहा गया है। जैसे—

१ आत्मप्रतिष्ठित २ परप्रतिष्ठित, ३ तदुभयप्रतिष्ठित और ४ अप्रतिष्ठित।
यह चारो प्रकार का लोभ नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे होता है।

८०—चउहि ठाणेहि कोधुप्पत्ती सिता, त जहा—खेत्त पडुच्चा, वत्थु पडुच्चा, सरीर पडुच्चा, उवहि पडुच्चा। एव—णेरइयाण जाव वेमाणियाण।

चार कारणो से क्रोध की उत्पत्ति होती है। जैसे—

१ क्षेत्र (खेत-भूमि) के कारण २ वास्तु (घर आदि) के कारण,
३ शरीर (कुरूप आदि होने) के कारण, ४ उपधि (उपकरणादि) के कारण।
नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे उक्त चार कारणो से क्रोध की उत्पत्ति होती है।

८१—[चउहि ठाणेहि माणुप्पत्ती सिता, त जहा—खेत्त पडुच्चा, वत्थु पडुच्चा, सरीर पडुच्चा, उवहि पडुच्चा। एव—णेरइयाण जाव वेमाणियाण।

चार कारणों से मान की उत्पत्ति होती है। जैसे—

१ क्षेत्र के कारण, २ वास्तु के कारण, ३ शरीर के कारण, ४ उपधि के कारण। नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में उक्त चार कारणों से मान की उत्पत्ति होती है।

८२—चउहिं ठाणेहिं मायुप्पत्ती सिता, तं जहा—खेत्तं पडुच्चा, वत्थुं पडुच्चा, सरीरं पडुच्चा, उवहिं पडुच्चा। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

चार कारणों से माया की उत्पत्ति होती है। जैसे—

१ क्षेत्र के कारण, २ वास्तु के कारण ३ शरीर के कारण, ४ उपधि के कारण। नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में उक्त चार कारणों से माया की उत्पत्ति होती है।

८३—चउहिं ठाणेहिं लोभुप्पत्ती सिता, तं जहा—खेत्तं पडुच्चा, वत्थुं पडुच्चा, सरीरं पडुच्चा, उवहिं पडुच्चा। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं]।

चार कारणों से लोभ की उत्पत्ति होती है। जैसे—

१ क्षेत्र के कारण, २ वास्तु के कारण, ३ शरीर के कारण, ४ उपधि के कारण। नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में उक्त चार कारणों से लोभ की उत्पत्ति होती है।

८४—चउव्विधे कोहे पण्णत्ते, तं जहा—अणंताणुबंधी कोहे, अपच्चक्खाणकसाए कोहे, पच्चक्खाणावरणे कोहे, संजलणे कोहे। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

क्रोध चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ अनन्तानुबन्धी क्रोध—संसार की अनन्त परम्परा का अनुबन्ध करने वाला।
२ अप्रत्याख्यानकषाय क्रोध—देशविरति का अवरोध करने वाला।
३ प्रत्याख्यानावरण क्रोध—सर्वविरति का अवरोध करने वाला।
४ संज्वलन क्रोध—यथाख्यात चारित्र का अवरोध करने वाला।

यह चारों प्रकार का क्रोध नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में पाया जाता है।

८५—[चउव्विधे माणे पण्णत्ते, तं जहा—अणंताणुबंधी माणे, अपच्चक्खाणकसाए माणे, पच्चक्खाणावरणे माणे, संजलणे माणे। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं॥

मान चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ अनन्तानुबन्धी मान, २ अप्रत्याख्यानकषाय मान,
३ प्रत्याख्यानावरण मान, ४ संज्वलन मान।

यह चारों प्रकार का मान नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में पाया जाता है।

८६—चउव्विधा माया पण्णत्ता, तं जहा—अणंताणुबंधी माया, अपच्चक्खाणकसाया माया, पच्चक्खाणावरणा माया, संजलणा माया। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

माया चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ अनन्तानुबन्धी माया, २ अप्रत्याख्यानकषाय माया,
३ प्रत्याख्यानावरण माया, ४ सज्वलन माया।

यह चारों प्रकार की माया नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में पाई जाती है।

८७—चउव्विधे लोभे पण्णत्ते, तं जहा—अणंताणुबंधी लोभे, अपच्चक्खाणकसाए लोभे, पच्चक्खाणावरणे लोभे, संजलणे लोभे। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं]।

लोभ चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ अनन्तानुबन्धी लोभ, २ अप्रत्याख्यान कषाय लोभ,
३ प्रत्याख्यानावरण लोभ, ४ सज्वलन लोभ।

यह चारों प्रकार का लोभ नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में पाया जाता है।

८८—चउव्विहे कोहे पण्णत्ते, तं जहा—आभोगणिव्वत्तिते, अणाभोगणिव्वत्तिते, उवसंते, अणुवसंते। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

पुनः क्रोध चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ आभोगनिर्वर्तित क्रोध, २ अनाभोगनिर्वर्तित क्रोध,
३ उपशान्त क्रोध, ४ अनुपशान्त क्रोध।

यह चारों प्रकार का क्रोध नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में पाया जाता है।

विवेचन—बुद्धिपूर्वक किये गये क्रोध को आभोग-निर्वर्तित और अबुद्धिपूर्वक होने वाले क्रोध को अनाभोग-निर्वर्तित कहा जाता है। यह साधारण व्याख्या है। संस्कृत टीकाकार अभयदेव सूरि ने आभोग का अर्थ ज्ञान किया है। जो व्यक्ति क्रोध के दुष्फल को जानते हुए भी क्रोध करता है, उसके क्रोध को आभोगनिर्वर्तित कहा है। मलयगिरि सूरि ने प्रज्ञापनासूत्र की टीका में इसकी व्याख्या भिन्न प्रकार से की है। वे लिखते हैं कि जब मनुष्य दूसरे के द्वारा किये गये अपराध को भली भांति से जान लेता है और विचारता है कि अपराधी व्यक्ति सीधी तरह से नहीं मानेगा, इसे अच्छी सीख देना चाहिए। ऐसा विचार कर रोष युक्त मुद्रा से उस पर क्रोध करता है, तब उसे आभोगनिर्वर्तित क्रोध कहते हैं। क्रोध के गुण दोष का विचार किये बिना सहसा उत्पन्न हुए क्रोध को अनाभोगनिर्वर्तित कहते हैं। उदय को नहीं प्राप्त, किन्तु सत्ता में अवस्थित क्रोध को उपशान्त क्रोध कहते हैं। उदय को प्राप्त क्रोध अनुपशान्त क्रोध कहलाता है। इसी प्रकार आगे कहे जाने वाले चारों प्रकार के मान, माया और लोभ का अर्थ जानना चाहिए।

८९—[चउव्विहे माणे पण्णत्ते, तं जहा—आभोगणिव्वत्तिते, अणाभोगणिव्वत्तिते, उवसंते, अणुवसंते। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

मान चार प्रकार का कहा गया है । जैसे--

१ आभोगनिर्वर्तित--बुद्धिपूर्वक किया गया मान ।
२ अनाभोगनिर्वर्तित--अबुद्धिपूर्वक किया गया मान ।
३ उपशान्त मान--उदय को अप्राप्त, किन्तु सत्ता मे स्थित मान ।
४ अनुपशान्त मान--उदय को प्राप्त मान ।

यह चारो प्रकार का मान नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे पाया जाता है (८९) ।

९०--चउव्विहा माया पण्णत्ता, त जहा--आभोगणिव्वत्तिता, अणाभोगणिव्वत्तिता, उवसता, अणुवसता । एव--णेरइयाण जाव वेमाणियाण ।

माया चार प्रकार की कही गई है । जैसे--

१ आभोगनिर्वर्तित--बुद्धिपूर्वक की गई माया ।
२ अनाभोगनिर्वर्तित--अबुद्धिपूर्वक की गई माया ।
३ उपशान्त माया--उदय को अप्राप्त, किन्तु सत्ता मे स्थित माया ।
४ अनुपशान्त माया--उदय को प्राप्त माया ।

यह चारो प्रकार की माया नारको से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डको मे पाई जाती है (९०) ।

९१--चउव्विहे लोभे पण्णत्ते, त जहा--आभोगणिव्वत्तिते, अणाभोगणिव्वत्तिते, उवसते, अणुवसते । एव--णेरइयाण जाव वेमाणियाण ।]

लोभ चार प्रकार का गया है । जैसे--

१ आभोगनिर्वर्तित--बुद्धिपूर्वक किया गया लोभ ।
२ अनाभोगनिर्वर्तित--अबुद्धिपूर्वक उत्पन्न हुआ लोभ ।
३ उपशान्त लोभ--उदय को अप्राप्त, किन्तु सत्ता मे स्थित लोभ ।
४ अनुपशान्त लोभ--उदय को प्राप्त लोभ (९१) ।

कर्म प्रकृति-सूत्र

९२--जीवा ण चउहि ठाणेहि अट्ठकम्मपगडीओ चिणिसु त जहा--कोहेण, माणेण, मायाए, लोभेण । एव जाव वेमाणियाण ।

एव चिणति, एस दडओ, एव चिणिस्सति एस दडओ, एवमेतेण तिण्णि दडगा ।

जीवो ने चार कारणो से आठो कर्मप्रकृतियो का भूतकाल मे सचय किया है । जैसे--

१ क्रोध से, २ मान से, ३ माया से और ४ लोभ से ।

इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डक वाले जीवो ने भूतकाल मे आठो कर्मप्रकृतियो का सचय किया है (९२) ।

९३—[जीवा ण चउहि ठाणेहि अट्ठकम्मपगडीओ चिणति, त जहा—कोहेण, माणेण, मायाए, लोभेण । एव जाव वेमाणियाण ।

जीव चार कारणो से आठो कर्मप्रकृतियो का वर्तमान मे सचय कर रहे हैं । जैसे—

१ क्रोध से, २ मान से, ३ माया से और ४ लोभ से ।

इसी प्रकार वैमानिको तक के सभी दण्डक वाले जीव वर्तमान मे आठो कर्मप्रकृतियो का सचय कर रहे हैं (९३) ।

९४—जीवा ण चउहि ठाणेहि अट्ठकम्मपगडीओ चिणिस्सति, त जहा—कोहेण, माणेण, मायाए, लोभेण । एव जाव वेमाणियाण ।]

जीव चार कारणो से भविष्य मे आठो कर्मप्रकृतियो का सचय करेंगे । जैसे—

१ क्रोध से, २ मान से, ३ माया से, ४ लोभ से ।

इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डक वाले जीव भविष्य मे चारो कारणो से आठो प्रकार की कर्म-प्रकृतियो का सचय करेंगे (९४) ।

९५—एव—उवचिणिसु उवचिणति उवचिणिस्सति, बधिसु बधति बधिस्सति, उदीरिसु उदीरिति उदीरिस्सति, वेदेंसु वेदेंति वेदिस्सति, णिज्जरेंसु णिज्जरेंति णिज्जरिस्सति जाव वेमाणियाण । [एवमेक्केक्कपदे तिन्नि तिन्नि दडगा भाणियव्वा] ।

इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डक वाले जीवो ने आठो कर्म-प्रकृतियो का उपचय किया है, कर रहे हैं और करेंगे । आठो कर्म-प्रकृतियो का बन्ध किया है, कर रहे हैं और करेंगे । आठो कर्म-प्रकृतियो की उदीरणा की है, कर रहे हैं, और करेंगे । आठो कर्म-प्रकृतियो को वेदा (भोगा) है, वेद रहे हैं और वेदन करेंगे । तथा आठो कर्म-प्रकृतियो की निर्जरा की है, कर रहे हैं और करेंगे (९५) ।

प्रतिमा सूत्र

९६—चत्तारि पडिमाओ पण्णत्ताओ, त जहा—समाहिपडिमा, उवहाणपडिमा, विवेगपडिमा, विउस्सग्गपडिमा ।

प्रतिमा चार प्रकार की कही गई है । जैसे—

१ समाधिप्रतिमा, २ उपधान-प्रतिमा, ३ विवेक प्रतिमा, ४ व्युत्सर्ग-प्रतिमा (९६) ।

९७—चत्तारि पडिमाओ पण्णत्ताओ, त जहा—भद्दा, सुभद्दा महाभद्दा, सव्वतोभद्दा ।

पुन प्रतिमा चार प्रकार की कही गई है । जैसे—

१ भद्रा, २ सुभद्रा, ३ महाभद्रा, ४ सर्वतोभद्रा (९७) ।

९८—चत्तारि पडिमाओ पण्णत्ताओ, त जहा—खुड्डिया मोयपडिमा, महल्लिया मोयपडिमा, जवमज्झा, वइरमज्झा ।

पुन प्रतिमा चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ छोटी मोकप्रतिमा, २ बडी मोकप्रतिमा, ३ यवमध्या, ४ वज्रमध्या।

इन सभी प्रतिमाओ का विवेचन दूसरे स्थान के प्रतिमापद मे किया जा चुका है (९८)।

अस्तिकाय सूत्र

९९—चत्तारि अत्थिकाया अजीवकाया पण्णत्ता, त जहा—धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए।

चार अस्तिकाय द्रव्य अजीवकाय कहे गये है। जैसे—

१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ पुदगलास्तिकाय (९९)।

विवेचन—ये चारो द्रव्य तीनो कालो मे पाये जाने से 'अस्ति' कहलाते हैं। और बहुप्रदेशी होने से 'काय' कहे जाते है। अथवा अस्तिकाय अर्थात प्रदेशो का समूहरूप द्रव्य। इन चारो द्रव्यो मे दोनो धर्म पाये जाने से वे अस्तिकाय कहे गये ह।

१००—चत्तारि अत्थिकाया अरूविकाया पण्णत्ता, त जहा—धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए।

चार अस्तिकाय द्रव्य अरूपीकाय कहे गये हैं। जैसे—

१ *धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ जीवास्तिकाय* (१००)।

विवेचन—जिसमे रूप, रसादि पाये जाते ह, एसे पुद्गल द्रव्य को रूपी कहते हैं। इन धर्मास्तिकाय आदि चारो द्रव्यो मे रूपादि नही पाये जाते हैं, अत ये अरूपी काय कहे गये हैं।

आम पक्व सूत्र

१०१—चत्तारि फला पण्णत्ता, त जहा—आमे णाममेगे आममहुरे, आमे णाममेगे पक्कमहुरे, पक्के णाममेगे आममहुरे, पक्के णाममेगे पक्कमहुरे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—आमे णाममेगे आममहुरफलसमाणे, आमे णाममेगे पक्कमहुरफलसमाणे पक्के णाममेगे आममहुरफलसमाणे, पक्के णाममेगे पक्कमहुरफलसमाणे।

फल चार प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ कोई फल आम (अपक्व) होकर भी आम-मधुर (अल्प मिष्ट) होता है।

२ कोई फल आम होकर के भी पक्व-मधुर (पके फल के समान अत्यन्त मिष्ट) होता है।

३ कोई फल पक्व होकर के भी आम-मधुर (अल्प मिष्ट) होता है।

४ कोई फल पक्व होकर के पक्व-मधुर (अत्यन्त मिष्ट) होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ कोई पुरुष आम (आयु और श्रुताभ्यास से अपक्व) होने पर भी आम-मधुर फल के समान उपशम भावादि रूप अल्प-मधुर स्वभाववाला होता है।

२ कोई पुरुष आम (आयु और श्रुताभ्यास से अपक्व) होने पर भी पक्व-मधुर फल के समान प्रकृष्ट उपशम भाववाला और अत्यन्त मधुर स्वभावी होता है।

३ कोई पुरुष पक्व (आयु और श्रुताभ्यास से परिपुष्ट) होने पर भी आम-मधुर फल के समान अल्प-उपशम भाववाला और अल्प-मधुर स्वभावी होता है।

४ कोई पुरुष पक्व (आयु और श्रुताभ्यास से परिपुष्ट) होकर पक्व मधुर-फल के समान प्रकृष्ट उपशम वाला और अत्यन्त मधुर स्वभावी होता है (१०१)।

सत्य-मृषा-सूत्र

१०२—चउव्विहे सच्चे पण्णत्ते, तं जहा—काउज्जुयया, भासुज्जुयया, भावुज्जुयया, अविसंवायणाजोगे।

सत्य चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ काय-ऋजुता-सत्य—काय के द्वारा सरल सत्य वस्तु का संकेत करना।

२ भाषा-ऋजुता सत्य—वचन के द्वारा यथार्थ वस्तु का प्रतिपादन करना।

३ भाव-ऋजुता सत्य—मन मे सरल सत्य कहने का भाव रखना।

४ अविसंवादना-योग-सत्य—विसंवाद-रहित, किसी को धोखा न देने वाली मन, वचन, काय की प्रवृत्ति रखना (१०२)।

१०३—चउव्विहे मोसे पण्णत्ते, तं जहा—कायअणुज्जुयया, भासअणुज्जुयया, भावअणुज्जुयया, विसंवादणाजोगे।

मृषा (असत्य) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ काय अनृजुकता-मृषा—काय के द्वारा असत्य (सत्य को छिपाने वाला) संकेत करना।

२ भाषा-अनृजुकता-मृषा—वचन के द्वारा अयथार्थ वस्तु का प्रतिपादन करना।

३ भाव-अनृजुकता-मृषा—मन मे कुटिलता रख कर असत्य कहने का भाव रखना।

४ विसंवादना-योग-मृषा—विसंवाद-युक्त, दूसरों को धोखा देने वाली मन, वचन, काय की प्रवृत्ति रखना (१०३)।

प्रणिधान सूत्र

१०४—चउव्विहे पणिधाणे पण्णत्ते, तं जहा—मणपणिधाणे, वइपणिधाणे, कायपणिधाणे, उवकरणपणिधाणे। एवं—णेरइयाणं पंचिंदियाणं जाव वेमाणियाणं।

प्रणिधान (मन आदि का प्रयोग) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ मन-प्रणिधान २ वाक्-प्रणिधान, ३ काय प्रणिधान, ४ उपकरण प्रणिधान (लौकिक तथा लोकोत्तर वस्त्र पात्र आदि उपकरणों का प्रयोग) ये चारों प्रणिधान नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी पंचेन्द्रिय दण्डकों मे कहे गये हैं (१०४)।

१०५—चउव्विहे सुप्पणिहाणे पण्णत्ते, तं जहा—मणसुप्पणिहाणे, जाव [वइसुप्पणिहाणे, कायसुप्पणिहाणे], उवगरणसुप्पणिहाणे। एवं—संजयमणुस्साणवि।

सुप्रणिधान (मन आदि का शुभ प्रवर्तन) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ मन-सुप्रणिधान,   २ वाक्-सुप्रणिधान,   ३ काय-सुप्रणिधान,
४ उपकरण-सुप्रणिधान।
ये चारो सुप्रणिधान सयम के धारक मनुष्यो के कहे गये हैं (१०५)।

१०६—चउव्विहे दुप्पणिहाणे पण्णत्ते, त जहा—मणदुप्पणिहाणे, जाव [वइदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे], उवकरणदुप्पणिहाणे। एव—पंचिदियाण जाव वेमाणियाणे।

दुष्प्रणिधान (असयम के लिए मन आदि का प्रवतन) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ मन दुष्प्रणिधान, २ वाक्-दुष्प्रणिधान, ३ काय दुष्प्रणिधान, ४ उपकरण-दुष्प्रणिधान।
ये चारो दुष्प्रणिधान नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी पचेन्द्रिय दण्डकों मे कहे गये है (१०६)।

आपात सवास सूत्र

१०७—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—आवातभद्दए णाममेगे णो सवासभद्दए, सवासभद्दए णाममेगे णो आवातभद्दए, एगे आवातभद्दएवि सवासभद्दएवि, एगे णो आवातभद्दए णो सवासभद्दए।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कोई पुरुष आपात भद्रक होता है, सवास-भद्रक नही। (प्रारम्भ मे मिलने पर भला दिखता है, किन्तु साथ रहने पर भला नही लगता)।

२ कोई पुरुष सवास-भद्रक होता है, आपात-भद्रक नही। (प्रारम्भ मे मिलने पर भला नही दिखता, किन्तु साथ रहने पर भला लगता हैं।)

३ कोई पुरुष आपात-भद्रक भी होता है और सवास-भद्रक भी होता है।

४ कोई पुरुष न आपात-भद्रक होता है और न सवास-भद्रक ही होता है (१०७)।

वज्य सूत्र

१०८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—अप्पणो णाममेगे वज्ज पासति णो परस्स, परस्स णाममेगे वज्ज पासति णो अप्पणो, एगे अप्पणोवि वज्ज पासति परस्सवि, एगे णो अप्पणो वज्ज पासति णो परस्स।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ कोई पुरुष (पश्चात्तापयुक्त होने से) अपना वज्य देखता है, दूसरे का नही।
२ कोई पुरुष दूसरे का वज्य देखता है, (अहंकारी होने से) अपना नही।
३ कोई पुरुष अपना भी वर्ज्य देखता है और दूसरे का भी।
४ कोई पुरुष न अपना वज्य देखता है और न दूसरे का ही देखता है (१०८)।

विवेचन—सस्कृत टीकाकार ने 'वज्ज' इस प्राकृत पद के तीन सम्कृत रूप लिखे हैं—**१ वर्ज्य**—त्याग करने के योग्य पाप, २ वज्रवद् वा वज्र—वज्र के समान भारी हिंसादि महापाप। **तथा**

'वज्ज' पद मे अकारका लोप मान कर उसका सस्कृत रूप 'अवद्य' भी किया है। जिसका अर्थ पाप या निन्द्य कार्य होता है। 'वज्य' पद मे उक्त सभी अर्थ आ जाते है।

१०९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—अप्पणो णाममेगे वज्ज उदीरेइणो परस्स, परस्स णाममेगे वज्ज उदीरेइ णो अप्पणो, एगे अप्पणोवि वज्ज उदीरेइ परस्सवि, एगे णो अप्पणो वज्ज उदीरेइ णो परस्स।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये ह। जैसे—

१ कोई पुरुष अपने अवद्य की उदीरणा करता है (कष्ट सहन करके उदय मे लाता है अथवा मैंने यह किया, ऐसा कहता है) दूसरे के अवद्य की नही।

२ कोई पुरुष दूसरे के अवद्य की उदीरणा करता है, अपने अवद्य की नही।

३ कोई पुरुष अपने अवद्य की उदीरणा करता है और दूसरे के अवद्य की भी।

४ कोई पुरुष न अपने अवद्य की उदीरणा करता है और न दूसरे के अवद्य की (१०९)।

११०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—अप्पणो णाममेगे वज्ज उवसामेति णो परस्स, परस्स णाममेगे वज्ज उवसामेति णो अप्पणो, एगे अप्पणोवि वज्ज उवसामेति परस्सवि, एगे णो अप्पणो वज्ज उवसामेति णो परस्स।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कोई पुरुष अपने अवज्य को उपशान्त करता है, दूसरे के अवज्य को नहीं।

२ कोई पुरुष दूसरे के अवर्ज्य को उपशान्त करता है, अपने अवज्य का नहीं।

३ कोई पुरुष अपने भी अवर्ज्य को उपशान्त करता है और दूसरे के अवर्ज्य को भी।

४ कोई पुरुष न अपने अवज्य को उपशान्त करता है और न दूसरे के अवर्ज्य को उपशान्त करता है (११०)।

लोकोपचार-विनय सूत्र

१११—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—अब्भुट्ठेति णाममेगे णो अब्भुट्ठावेति, अब्भुट्ठावेति णाममेगे णो अब्भुट्ठेति, एगे अब्भुट्ठेति वि अब्भुट्ठावेति वि, एगे णो अब्भुट्ठेति णो अब्भुट्ठावेति।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कोई पुरुष (गुरुजनादि को देख कर) अभ्युत्थान करता ह, किन्तु (दूसरा से) अभ्युत्थान करवाता नहीं।

२ कोई पुरुष (दूसरा से) अभ्युत्थान करवाता है, किन्तु (स्वय) अभ्युत्थान नही करता।

३ कोई पुरुष स्वय भी अभ्युत्थान करता है और दूसरों से भी अभ्युत्थान करवाता है।

४ कोई पुरुष न स्वय अभ्युत्थान करता है और न दूसरो से भी अभ्युत्थान करवाता है(१११)।

विवेचन—प्रथम भग मे सविग्नपाक्षिक या लघुपर्याय वाला साधु गिना गया है, दूसरे भग

मे गुरु, तीसरे भग मे वपभादि और चौथे भग मे जिन कल्पी आदि। आगे भी इसी प्रकार यथायोग्य उदाहरण स्वय समझ लेना चाहिए।

११२—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—वदति णाममेगे णो वदावेति, वदावेति णाममेगे णो वदति, एगे वदति वि वदावेति वि, एगे णो वदति णो वदावेति]।

एव सक्कारेइ, सम्माणेति पूएइ, वाएइ, पडिपुच्छति पुच्छइ, वागरेति।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ कोई पुरुष (गुरुजनादि को) वन्दना करता है, किन्तु (दूसरो से) वन्दना करवाता नही।
२ कोई पुरुष (दूसरो से) वन्दना करवाता है, किन्तु (स्वय) वन्दना नही करता।
३ कोई पुरुष स्वय भी वन्दना करता है और दूसरो से भी वन्दना करवाता है।
४ कोई पुरुष न स्वय वन्दना करता है और न दूसरो से वन्दना करवाता है (११२)।

११३—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सक्कारेइ णाममेगे णो सक्कारावेइ, सक्कारावेइ णाममेगे णो सक्कारेइ, एगे सक्कारेइ वि सक्कारावेइ वि, एगे णो सक्कारेइ णो सक्कारावेइ।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कोई पुरुष (गुरुजनादि का) सत्कार करता है, किन्तु (दूसरो से) सत्कार करवाता नही।
२ कोई पुरुष दूसरो से सत्कार करवाता है, किन्तु स्वय सत्कार नही करता।
३ कोई पुरुष स्वय भी सत्कार करता है और दूसरो से भी सत्कार करवाता है।
४ कोई पुरुष न स्वय सत्कार करता है और न दूसरो से सत्कार करवाता है (११३)।

११४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सम्माणेति णाममेगे णो सम्माणावेति, सम्माणावेति णाममेगे णो सम्माणेति, एगे सम्माणेति वि सम्माणावेति वि, एगे णो सम्माणेति णो सम्माणावेति।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जसे—

१ कोई पुरुष (गुरुजनादि का) सम्मान करता है, किन्तु (दूसरो से) सम्मान नही करवाता।
२ कोई पुरुष दूसरो से सम्मान करवाता है, किन्तु स्वय सम्मान नही करता।
३ कोई पुरुष स्वय भी सम्मान करता है और दूसरो से भी सम्मान करवाता है।
४ कोई पुरुष न स्वय सन्मान करता है और न दूसरो से सम्मान करवाता है (११४)।

११५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—पूएइ णाममेगे णो पूयावेति, पूयावेति णाममेगे णो पूएइ, एगे पूएइ वि पूयावेति वि एगे णो पूएइ णो पूयावेति।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ कोई पुरुष (गुरुजनादि की) पूजा करता है, किन्तु (दूसरा से) पूजा नही करवाता।

२ कोई पुरुष दूसरो से पूजा करवाता है, किन्तु स्वय पूजा नही करता ।
३ कोई पुरुष स्वय भी पूजा करता है और दूसरो से भी पूजा करवाता है ।
४ कोई पुरुष न स्वय पूजा करता है और न दूसरो से पूजा करवाता है (११५) ।

स्वाध्याय सूत्र

११६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—वाएइ णाममेगे णो वायावेइ, वायावेइ णाममेगे णो वाएइ, एगे वाएइ वि वायावेइ वि, एगे णो वाएइ णो वायावेइ ।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—
१ कोई पुरुष दूसरो को वाचना देता है, किन्तु दूसरो से वाचना नही लेता ।
२ कोई पुरुष दूसरो से वाचना लेता है, किन्तु दूसरो को वाचना नही देता ।
३ कोई पुरुष दूसरो को वाचना देता है और दूसरो से वाचना लेता भी है ।
४ कोई पुरुष न दूसरा को वाचना देता है और न दूसरो से वाचना लेता है (११६) ।

११७—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—पडिच्छति णाममेगे णो पडिच्छावेति, पडिच्छावेति णाममेगे णो पडिच्छति, एगे पडिच्छति वि पडिच्छावेति वि, एगे णो पडिच्छति णो पडिच्छावेति ।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं जैसे—
१ कोई पुरुष प्रतीच्छा (सूत्र और अर्थ का ग्रहण) करता है, किन्तु प्रतीच्छा करवाता नही है ।
२ कोई पुरुष प्रतीच्छा करवाता है, किन्तु प्रतीच्छा करता नही है ।
३ कोई पुरुष प्रतीच्छा करता भी है और प्रतीच्छा करवाता भी है ।
४ कोई पुरुष प्रतीच्छा न करता है और न प्रतीच्छा करवाता है (११७) ।

११८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—पुच्छइ णाममेगे णो पुच्छावेइ, पुच्छावेइ णाममेगे णो पुच्छइ, एगे पुच्छइ वि पुच्छावेइ वि, एगे णो पुच्छइ णो पुच्छावेइ ।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं । जसे—
१ कोई पुरुष प्रश्न करता है, किन्तु प्रश्न करवाता नही है ।
२ कोई पुरुष प्रश्न करवाता है, किन्तु स्वय प्रश्न करता नही है ।
३ कोई पुरुष प्रश्न करता भी है और प्रश्न करवाता भी है ।
४ कोई पुरुष न प्रश्न करता है न प्रश्न करवाता है (११८) ।

११९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—वागरेति णाममेगे णो वागरावेति, वागरावेति णाममेगे णो वागरेति, एगे वागरेति वि वागरावेति वि, एगे णो वागरेति णो वागरावेति] ।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं जसे—
१ कोई पुरुष सूत्रादि का व्याख्यान करता है, किन्तु अन्य से व्याख्यान करवाता नही है ।

२ कोई पुरुष व्याख्यान करवाता है, किन्तु स्वय व्याख्यान नही करता है।
३ कोई पुरुष स्वय व्याख्यान करता है और अन्य से व्याख्यान करवाता भी है।
४ कोई पुरुष न स्वय व्याख्यान करता है और न अन्य से व्याख्यान करवाता है (११९)।

१२०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सुत्तधरे णाममेगे णो अत्थधरे, अत्थधरे णाममेगे णो सुत्तधरे, एगे सुत्तधरे वि अत्थधरे वि, एगे णो सुत्तधरे णो अत्थधरे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है—जैसे—
१ कोई पुरुष सूत्रधर (सूत्र का ज्ञाता) होता है, किन्तु अर्थधर (अर्थ का ज्ञाता) नही होता।
२ कोई पुरुष अर्थधर होता है, किन्तु सूत्रधर नही होता।
३ कोई पुरुष सूत्रधर भी होता है और अर्थधर भी होता है।
४ कोई पुरुष न सूत्रधर होता है और न अर्थधर होता है (१२०)।

लोकपाल सूत्र

१२१—चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चत्तारि लोगपाला पण्णत्ता, त जहा—सोमे, जमे, वरुणे, वसमणे।

असुरकुमार-राज असुरेन्द्र चमर के चार लोकपाल कहे गये है। जैसे—
१ सोम, २ यम, ३ वरुण, ४ वैश्रवण। (१२१)

१२२—एव—बलिस्सवि—सोमे, जमे, वेसमणे, वरुणे। धरणस्स—कालपाले, कोलपाले, सेलपाले, सखपाले। भूयाणदस्स—कालपाले, कोलपाले, सखपाले, सेलपाले। वेणुदेवस्स—चित्ते, विचित्ते, चित्तपक्खे, विचित्तपक्खे। वेणुदालिस्स—चित्ते, विचित्ते, विचित्तपक्खे, चित्तपक्खे। हरिकतस्स—पभे, सुप्पभे, पभकते सुप्पभकते। हरिस्सहस्स—पभे, सुप्पभे, सुप्पभकते, पभकते। अग्गिसिहस्स—तेऊ, तेउसिहे, तेउकते, तेउप्पभे। अग्गिमाणवस्स—तेऊ, तेउसिहे, तेउप्पभे, तेउकते। पुण्णस्स—रुवे, रुवसे, रुवकते, रुवप्पभे। विसिट्ठस्स—रुवे, रुवसे, रूवप्पभे रूवकते। जलकतस्स—जले, जलरते, जलकते, जलप्पभे। जलप्पहस्स—जले, जलरते, जलप्पहे, जलकते। अमितगतिस्स—तुरियगती, खिप्पगती, सीहगती, सीहविक्कमगती। अमितवाहणस्स—तुरियगती, खिप्पगती, सीहविक्कमगती, सीहगती। वेलबस्स—काले, महाकाले, अजणे, रिट्ठे। पभजणस्स—काले, महाकाले, रिट्ठे, अजणे। घोसस्स—आवत्ते, वियावत्ते, णदियावत्ते, महाणदियावत्ते। महाघोसस्स—आवत्ते, वियावत्ते, महाणदियावत्ते, णदियावत्ते। सक्कस्स—सोमे, जमे, वरुणे, वेसमणे। ईसाणस्स—सोमे, जमे, वेसमणे, वरुणे। एव—एगतरिता जाव अच्चुतस्स।

इसी प्रकार बलि आदि के भी चार-चार लोकपाल कहे गये हैं। जैसे—
बलि के—१ सोम, २ यम, ३ वरुण, ४ वैश्रवण।
धरण के—१ कालपाल, २ कोलपाल, ३ सेलपाल, ४ शखपाल।
भूतानन्द के—१ कालपाल, २ कोलपाल, ३ शखपाल, ४ सेलपाल।
वेणुदेव के—१ चित्र, २ विचित्र, ३ चित्रपक्ष, ४ विचित्रपक्ष।
वेणुदालि के—१ चित्र, २ विचित्र, ३ विचित्रपक्ष, ४ चित्रपक्ष।

हरिकान्त के—१ प्रभ, २ सुप्रभ, ३ प्रभकान्त, ४ सुप्रभकान्त।
हरिस्सह के—१ प्रभ, २ सुप्रभ, ३ सुप्रभकान्त, ४ प्रभकान्त।
अग्निशिख के—१ तेज, २ तेजशिख, ३ तेजस्कान्त, ४ तेजप्रभ।
अग्निमाणव के—१ तेज, २ तेजशिख, ३ तेजप्रभ, ४ तेजस्कान्त।
पूर्ण के—१ रूप, २ रूपांश, ३ रूपकान्त, ४ रूपप्रभ।
विशिष्ट के—१ रूप, २ रूपांश, ३ रूपप्रभ, ४ रूपकान्त।
जलकान्त के—१ जल, २ जलरत, ३ जलप्रभ, ४ जलकान्त।
जलप्रभ के—१ जल, २ जलरत, ३ जलकान्त, ४ जलप्रभ।
अमितगति के—१ त्वरितगति, २ क्षिप्रगति, ३ सिंहगति, ४ सिंहविक्रमगति।
अमितवाहन के—१ त्वरितगति, २ क्षिप्रगति, ३ सिंहविक्रमगति, ४ सिंहगति।
वेलम्ब के—१ काल, २ महाकाल, ३ अंजन, ४ रिष्ट।
प्रभंजन के—१ काल, २ महाकाल, ३ रिष्ट ४ अंजन।
घोष के—१ आवर्त २ व्यावर्त ३ नन्दिकावर्त, ४ महानन्दिकावर्त।
महाघोष के—१ आवर्त, २ व्यावर्त, ३ महानन्दिकावर्त, ४ नन्दिकावर्त।
इसी प्रकार शक्रेन्द्र के—१ सोम, २ यम, ३ वरुण, ४ वैश्रवण।
ईशानेन्द्र के—१ सोम, २ यम, ३ वरुण, ४ वैश्रवण।

तथा आगे एकान्तरित यावत् अच्युतेन्द्र के चार-चार लोकपाल कहे गये हैं। अर्थात्—माहेन्द्र, लान्तक, सहस्रार, आरण और अच्युत के—१ सोम, २ यम, ३ वरुण, ४ वैश्रवण ये चार-चार लोकपाल हैं (१२२)।

विवेचन—यहां इतना विशेष ज्ञातव्य है कि दक्षिणेन्द्र के तीसरे लोकपाल का जो नाम है, वह उत्तरेन्द्र के चौथे लोकपाल का नाम है। इसी प्रकार शक्रेन्द्र के जिस नाम वाले लोकपाल हैं उसी नाम वाले सनत्कुमार, ब्रह्मलोक, शुक्र और प्राणतेन्द्र के लोकपाल हैं। तथा ईशानेन्द्र के जिस नाम वाले लोकपाल हैं, उसी नामवाले माहेन्द्र, लान्तक, सहस्रार और अच्युतेन्द्र के लोकपाल हैं।

देव सूत्र

१२३—चउव्विहा वाउकुमारा पण्णत्ता, तं जहा—काले, महाकाले, वेलंबे, पभंजणे।

वायुकुमार चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ काल, २ महाकाल, ३ वेलम्ब, ४ प्रभंजन। (ये चार पातालकलशों के स्वामी हैं (१२३)।)

१२४—चउव्विहा देवा पण्णत्ता, तं जहा—भवणवासी, वाणमंतरा, जोइसिया, विमाणवासी।

देव चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ भवनवासी, २ वानव्यन्तर, ३ ज्योतिष्क, ४ विमानवासी (१२४)।

प्रमाण-सूत्र

१२५—चउव्विहे पमाणे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वप्पमाणे, खेत्तप्पमाणे, कालप्पमाणे, भावप्पमाणे।

प्रमाण चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१ द्रव्य-प्रमाण—द्रव्य का प्रमाण बताने वाली सख्या आदि ।
२ क्षेत्र-प्रमाण—क्षेत्र का माप करने वाले दण्ड, धनुष, योजन आदि ।
३ काल-प्रमाण—काल का माप करने वाले आवलिका मुहूत आदि ।
४ भाव-प्रमाण—प्रत्यक्षादि प्रमाण और नगमादिनय (१२५) ।

महत्तरि सूत्र

१२६—चत्तारि दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—रूया, रूयसा, सुरूवा, रूयावती ।

दिक्कुमारियो की चार महत्तरिकाए कही गई है, जैसे—

१ रूपा, २ रूपाशा, ४ सुरूपा, ४ रूपवती । (ये चारो स्वय महत्तरिका अर्थात् प्रधानतम है अथवा दिककुमारियो मे प्रधानतम है (१२६) ।)

१२७—चत्तारि विज्जुकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—चित्ता, चित्तकणगा, सतेरा, सोयामणी ।

विद्युत्कुमारियो की चार महत्तरिकाए कही गई हैं, जसे—

१ चित्रा, २ चित्रकनका, ३ सतेरा, ४ सौदामिनी (१२७) ।

देवस्थिति सूत्र

१२८—सक्कस्स ण देविदस्स देवरण्णो मज्झिमपरिसाए देवाण चत्तारि पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता ।

देवेन्द्र देवराज शक्रेन्द्र की मध्यम परिषद् के देवो की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है (१२८) ।

१२९—ईसाणस्स ण देविदस्स देवरण्णो मज्झिमपरिसाए देवीण चत्तारि पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता ।

देवेन्द्र देवराज ईशानेन्द्र की मध्यम परिषद् की देवियो की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है (१२९) ।

ससार सूत्र

१३०—चउव्विहे ससारे पण्णत्ते, त जहा—दव्वससारे, खेत्तससारे, कालससारे, भावससारे ।

ससार चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१ द्रव्य ससार—जीवो और पुद्गलो का परिभ्रमण ।
२ क्षेत्र-ससार—जीवो और पुद्गलो के परिभ्रमण का क्षेत्र ।

३ काल-संसार—उत्सर्पिणी आदि काल में होने वाला जीव-पुद्गल का परिभ्रमण।

४ भाव-संसार—औदयिक आदि भावों में जीवों का और वर्ण, रसादि में पुद्गलों का परिवर्तन (१३०)।

दृष्टिवाद-सूत्र

१३१—चउव्विहे दिट्ठिवाए पण्णत्ते, तं जहा—परिकम्मं, सुत्ताइं, पुव्वगए, अणुजोगे।

दृष्टिवाद (द्वादशांगी श्रुत का बारहवां अंग) चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१ परिकर्म—इसके पढ़ने से सूत्र आदि के ग्रहण की योग्यता प्राप्त होती है।

२ सूत्र—इसके पढ़ने से द्रव्य-पर्याय-विषयक ज्ञान प्राप्त होता है।

३ पूर्वगत—इसके अन्तर्गत चौदह पूर्वों का समावेश है।

४ अनुयोग—इसमें तीर्थंकरादि शलाका पुरुषों के चरित्र वर्णित है।

विवेचन—शास्त्रों में अन्यत्र दृष्टिवाद के पांच भेद बताये गये हैं। १ परिकर्म, २ सूत्र, ३ प्रथमानुयोग, ४ पूर्वगत और ५ चूलिका। प्रकृत सूत्र में चतुर्थस्थान के अनुरोध से प्रारम्भ के चार भेद कहे गये हैं। परिकर्म में गणित सम्बन्धी करण-सूत्रों का वर्णन है। तथा इसके पांच भेद कहे गये हैं—१ चन्द्रप्रज्ञप्ति, २ सूर्यप्रज्ञप्ति, ३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ४ द्वीप सागरप्रज्ञप्ति और ५ व्याख्याप्रज्ञप्ति। इनमें चन्द्र-सूर्यादिसम्बन्धी विमान, आयु, परिवार, गमन आदि का वर्णन किया गया है।

दृष्टिवाद के दूसरे भेद सूत्र में ३६३ मिथ्यामतों का पूर्वपक्ष बता कर उनका निराकरण किया गया है।

दृष्टिवाद के तीसरे भेद प्रथमानुयोग में ६३ शलाका पुरुषों के चरित्रों का वर्णन किया गया है।

दृष्टिवाद के चौथे भेद में चौदह पूर्वों का वर्णन है। उनके नाम और वर्ण्य विषय इस प्रकार हैं—

१ उत्पादपूर्व—इसमें प्रत्येक द्रव्य के उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य और उनके संयोगी धर्मों का वर्णन है। इसकी पद संख्या एक करोड़ है।

२ आग्रायणीयपूर्व—इसमें द्वादशाङ्ग में प्रधानभूत सात सौ सुनय, दुर्नय, पंचास्तिकाय, सप्त तत्त्व आदि का वर्णन है। इसकी पद-संख्या छयानवे लाख है।

३ वीर्यानुवाद पूर्व—इसमें आत्मवीर्य, परवीर्य, कालवीर्य, तपोवीर्य, द्रव्यवीर्य, गुणवीर्य आदि अनेक प्रकार के वीर्यों का वर्णन है। इसकी पदसंख्या सत्तर लाख है।

४ अस्ति-नास्तिप्रवाद पूर्व—इसमें प्रत्येक द्रव्य के धर्मों का स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, आदि सप्त भंगों का प्रमाण और नय के आश्रित वर्णन है। इसकी पद-संख्या साठ लाख है।

५ ज्ञान-प्रवाद पूर्व—इसमें ज्ञान के भेद-प्रभेदों का स्वरूप, संख्या, विषय और फलादि की अपेक्षा से विस्तृत वर्णन है। इसकी पद-संख्या एक कम एक करोड़ (९९९९९९९) है।

६ सत्यप्रवाद पूव—इसमे दश प्रकार के सत्य वचन, अनेक प्रकार के असत्य वचन, बारह प्रकार की भाषा, तथा उच्चारण के शब्दो के स्थान, प्रयत्न, वाक्य सस्कार आदि का विस्तृत विवेचन है। इसकी पद-सख्या एक करोड छह है।

७ आत्मप्रवाद पूव—इसमे आत्मा के कतृत्व, भोक्तृत्व, अमूतत्व आदि अनेक धर्मों का वणन है। इसकी पद-सख्या छब्बीस करोड है।

८ कमप्रवाद पूव—इसमे कर्मो की मूल-उत्तरप्रकृतियो का, तथा उनकी बध, उदय, सत्त्व, आदि अवस्थाओ का वर्णन है। इसकी पद-सख्या एक करोड अस्सी लाख है।

९ प्रत्याख्यान पूव—इसमे नाम, स्थापनादि निक्षेपो के द्वारा अनेक प्रकार के प्रत्याख्यानो का वणन है। इसकी पद-सख्या चौरासी लाख है।

१० विद्यानुवाद पूर्व—इसमे अगुष्ठ प्रसेनादि सात सौ लघुविद्याओका और रोहिणी आदि पाच सौ महाविद्याओ के साधन-भूत मत्र, तत्र आदि का वर्णन है। इसकी पद-सख्या एक करोड दश लाख है।

११ अवन्ध्य पूव—इसमे तीर्थकरो के गभ, जन्म आदि पाच कल्याणको का, तीर्थकर गोत्र के उपाजन करने वाले कारणो आदि का वणन है। इसकी पद-सख्या छब्बीस करोड है।

१२ प्राणायुपूव—इसमे काय चिकित्सा आदि आयुर्वेद के आठ अगो का, इडा, पिंगला आदि नाडियो का और प्राणो के उपकारक-अपकारक आदि द्रव्यो का वणन है। इसकी पद-सख्या एक करोड छप्पन लाख है।

१३ क्रियाविशालपूव—इसमे सगीत, छद अलकार, पुरुषो की ७२ कलाए, स्त्रियो की ६४ कलाए, शिल्प विज्ञान आदि का और नित्य नैमित्तिक हर क्रियाओ का वणन है। इसकी पद-सख्या नौ करोड है।

१४ लोकबिन्दुसार पूव—इसमे लोक का स्वरूप, छत्तीस परिकम, आठ व्यवहार और चार बीज आदि का वणन है। इसकी पद-सख्या साढे बारह करोड है।

यहा यह विशेष ज्ञातव्य है कि सभी पूर्वो के नाम और उनके पदो की सख्या दोनो सम्प्रदायो मे समान है। भेद केवल ग्यारहवें पूव के नाम मे है। दि० शास्त्रो मे उसका नाम 'कल्याणवाद' दिया गया है। तथा बारहवे पूव की पद-सख्या तेरह करोड कही गई है।

दृष्टिवाद का पाचवा भेद चूलिका है। इसके पाच भेद हैं—१ जलगता, २ स्थलगता, ३ आकाशगता, ४ मायागता और ५ रूपगता। इसम जल, स्थल, और आकाश आदि मे विचरण करने वाले प्रयोगो का वणन है। मायागता मे नाना प्रकार के इन्द्रजालादि मायामयी योगो का और रूपगता मे नाना प्रकार के रूप-परिवतन के प्रयोगो का वणन है।

पूवगत श्रुत विच्छिन्न हो गया है, अतएव किस पूव मे क्या-क्या वणन था, इसके विषय मे कही कुछ भिन्नता भी सभव है।

प्रायश्चित्त-सूत्र

१३२—चउव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, त जहा—णाणपायच्छित्ते, दसणपायच्छित्ते, चरित्त-पायच्छित्ते, वियत्तकिच्चपायच्छित्ते।

प्रायश्चित्त चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ ज्ञान प्रायश्चित्त, २ दर्शन-प्रायश्चित्त, ३ चारित्र-प्रायश्चित्त, ४ व्यक्तकृत्य प्रायश्चित्त।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार ने इनके स्वरूपों का दो प्रकार से निरूपण किया है।

प्रथम प्रकार—ज्ञान के द्वारा चित्त की शुद्धि और पापों का विनाश होता है, अतः ज्ञान ही प्रायश्चित्त है। इसी प्रकार दर्शन और चारित्र के द्वारा चित्त की शुद्धि और पापों का विनाश है, अतः वे ही प्रायश्चित्त हैं। व्यक्त अर्थात्—भाव से गीतार्थ साधु के सभी कार्य सदा सावधान रहने से पाप-विनाशक होते हैं, अतः वह स्वयं-प्रायश्चित्त है।

द्वितीय प्रकार—ज्ञान की आराधना करने में जो अतिचार लगते हैं, उनकी शुद्धि करना ज्ञान-प्रायश्चित्त है। इसी प्रकार दर्शन और चारित्र की आराधना करते समय लगने वाले अतिचारों की शुद्धि करना दर्शन-प्रायश्चित्त और चारित्र-प्रायश्चित्त है।

'वियत्तकिच्च' पद का पूर्वोक्त अर्थ 'व्यक्तकृत्य' संस्कृत रूप मानकर के किया गया है। उन्होंने 'यद्वा' कह कर उसी पद का दूसरा संस्कृत रूप 'विदत्तकृत्य' मान कर यह किया है कि किसी अपराध-विशेष का प्रायश्चित्त यदि तत्कालीन प्रायश्चित्त ग्रन्थों में नहीं भी कहा गया हो तो गीतार्थ साधु मध्यस्थ भाव से जो कुछ भी प्रायश्चित्त देता है, वह 'विदत्त' अर्थात् विशेष रूप से दिया गया प्रायश्चित्त 'वियत्तकिच्च' (विदत्तकृत्य) प्रायश्चित्त कहलाता है। संस्कृत टीकाकार के सम्मुख 'चियत्तकिच्च' पाठ भी रहा है, अतः उसका अर्थ—'प्रीतिकृत्य' करके प्रीतिपूर्वक वैयावृत्त्य आदि करने को 'चियत्तकिच्च' प्रायश्चित्त कहा है।

१३३—चउव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—पडिसेवणापायच्छित्ते, संजोयणापायच्छित्ते, आरोवणापायच्छित्ते, पलिउंचणापायच्छित्ते।

पुनः प्रायश्चित्त चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ प्रतिसेवना-प्रायश्चित्त, २ संयोजना-प्रायश्चित्त, ३ आरोपणा-प्रायश्चित्त, ४ परिकुंचना-प्रायश्चित्त।

विवेचन—गृहीत मूलगुण या उत्तर गुण की विराधना करने वाले या उसमें अतिचार लगाने वाले कार्य का सेवन करने पर जो प्रायश्चित्त दिया जाता है, वह प्रतिसेवना प्रायश्चित्त है। एक जाति के अनेक अतिचारों के मिलाने को यहां संयोजना दोष कहते हैं। जैसे—शय्यातर के यहां की भिक्षा लेना एक दोष है। वह भी गीले हाथ आदि से लेना दूसरा दोष है, और वह भिक्षा भी आधार्मिक होना, तीसरा दोष है। इस प्रकार से अनेक सम्मिलित दोषों के लिए जो प्रायश्चित्त दिया जाता है, वह संयोजना-प्रायश्चित्त कहलाता है। एक अपराध का प्रायश्चित्त चलते समय पुनः उसी अपराध के करने पर जो प्रायश्चित्त दिया जाता है, अर्थात् पूर्वप्रदत्त प्रायश्चित्त की जो सीमा बढ़ाई जाती है, उसे आरोपणा-प्रायश्चित्त कहते हैं। अन्य प्रकार से किये गये अपराध को अन्य प्रकार से गुरु के सम्मुख कहने को परिकुंचना (प्रवंचना) कहते हैं। ऐसे दोष की शुद्धि के लिए जो प्रायश्चित्त दिया जाता है, वह परिकुंचनाप्रायश्चित्त कहलाता है। इन प्रायश्चित्तों का विस्तृत विवेचन प्रायश्चित्त सूत्रों से जानना चाहिए।

काल-सूत्र

१३४—चउव्विहे काले पण्णत्ते, स जहा—पमाणकाले, ग्रहाउयमिव्वत्तिकाले, मरणकाले, ग्रद्धाकाले ।

काल चार प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ प्रमाणकाल—समय, ग्रावलिका, यावत् सागरोपम का विभाग रूपकाल ।
२ यथायुनिवृत्तिकाल—ग्रायुष्य के ग्रनुसार नरक ग्रादि मे रहने का काल ।
३ मरण-काल—मृत्यु का समय (जीवन का ग्रन्त-काल) ।
४ ग्रद्धाकाल—सूय के परिभ्रमण से ज्ञात होने वाला काल ।

पुदगल परिणाम-सूत्र

१३५—चउव्विहे पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते, त जहा—वण्णपरिणामे, गधपरिणामे, रस परिणामे, फासपरिणामे ।

पुद्गल का परिणाम चार प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ वण परिणाम—श्वेत, रक्त ग्रादि रूपो का परिवर्तन ।
२ गध परिणाम—सुगन्ध दुगन्ध रूप गध का परिवतन ।
३ रस-परिणाम—आम्ल, मधुर ग्रादि रसा का परिवतन ।
४ स्पश-परिणाम—स्निग्ध, रूक्ष ग्रादि स्पर्शो का परिवतन (१३५) ।

चातुर्याम-परिणाम सूत्र

१३६—भरहेरवएसु ण वासेसु पुरिम पच्छिम-वज्जा मज्झिमगा बावीस ग्ररहता भगवतो चाउज्जाम धम्म पण्णवेंति, त जहा—सव्वाम्रो पाणातिवायाम्रो वेरमण, एव सव्वाम्रो मुसावायाम्रो वेरमण, सव्वाम्रो ग्रदिण्णादाणाम्रो वेरमण, सव्वाम्रो बहिद्धादाणाम्रो वेरमण ।

भरत ग्रौर ऐरवत क्षेत्र मे प्रथम ग्रौर ग्रतिम तीर्थंकर को छोडकर मध्यवर्ती बाईस अहत भगवत चातुर्याम धम का उपदेश देते हैं । जैसे—

१ सव प्राणातिपात (हिंसा कम) से विरमण ।
२ सव मृपावाद (ग्रमत्य भाषण) से विरमण ।
३ सव अदत्तादान (चौर कम) से विरमण ।
४ सव बाह्य (वस्तुग्रो के) ग्रादान से विरमण (१३६) ।

१३७—सव्वेसु ण महाविदेहेसु ग्ररहता भगवतो चाउज्जाम धम्म पण्णवयति, त जहा—सव्वाम्रो पाणातिवायाम्रो वेरमण, जाव [सव्वाम्रो मुसावायाम्रो वेरमण सव्वाम्रो अदिण्णादाणाम्रो वेरमण], सव्वाम्रो वहिद्धादाणाम्रो वेरमण ।

सभी महाविदेह क्षेत्रो मे अर्हत भगवत चातुर्याम धम का उपदेश देते हैं जैसे—

१ सर्व प्राणातिपात से विरमण । २ सर्व मृपावाद से विरमण ।

३ सव अदत्तादान से विरमण। ४ सव बाह्य आदान से विरमण (१३७)।

दुर्गति-सुगति सूत्र

१३८—चत्तारि दुग्गतीओ पण्णत्ताओ, त जहा—णेरइयदुग्गती,तिरिक्खजोणियदुग्गती, मणुस्स दुग्गती, देवदुग्गती।

दुर्गतियाँ चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ नरयिक-दुर्गति, २ तियग्-योनिक् दुर्गति, ३ मनुष्य दुर्गति, ४ देव दुर्गति (१३८)।

१३९—चत्तारि सोग्गईओ पण्णत्ताओ, त जहा—सिद्धसोग्गती, देवसोग्गती, मणुयसोग्गती, सुकुलपच्चायाती।

सुगतिया चार प्रकार की कही गई ह। जैसे—

१ सिद्ध सुगति, २ देव सुगति, ३ मनुष्य सुगति, ४ सुकुल-उत्पत्ति (१३९)।

१४०—चत्तारि दुग्गता पण्णत्ता, त जहा—णेरइयदुग्गता, तिरिक्खजोणियदुग्गता, मणुय दुग्गता, देवदुग्गता।

दुर्गत (दुर्गति में उत्पन्न होने वाले जीव) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ नैरयिक-दुर्गत, २ तियग्योनिक दुर्गत, ३ मनुष्य दुर्गत, ४ देव-दुर्गत (१४०)।

१४१—चत्तारि सुग्गता पण्णत्ता, त जहा—सिद्धसुग्गता, जाव [देवसुग्गता, मणुयसुग्गता], सुकुलपच्चायाया।

सुगत (सुगति मे उत्पन्न होने वाले जीव) चार प्रकार के कहे गये हैं। जसे—

१ सिद्धसुगत, २ देवसुगत, ३ मनुष्यसुगत, ४, सुकुल-उत्पन्न जीव (१४१)।

कर्मांश-सूत्र

१४२—पढमसमयजिणस्स ण चत्तारि कम्मसा खीणा भवति, त जहा—णाणावरणिज्ज, दसणावरणिज्ज, मोहणिज्ज, अतराइय।

प्रथम समयवर्ती केवली जिनके चार (सत्कर्म कर्मांश सत्ता मे स्थित कर्म) क्षीण हो चुके होते हैं। जैसे—

१ ज्ञानावरणीय सत्-कर्म, २ दर्शनावरणीय सत्-कर्म, ३ मोहनीय सत् कर्म, ४ आन्तरायिक सत्-कर्म (१४२)।

१४३—उप्पण्णणाणदसणधरे ण अरहा जिणे केवली चत्तारि कम्मसे वेदेति, त जहा—वेदणिज्ज, आउय, णाम, गोत।

उत्पन्न हुए केवलज्ञान-दर्शन के धारक केवली जिन अर्हन्त चार सत्कर्मों का वेदन करते हैं। जैसे—

१ वेदनीय कर्म, २ आयु कर्म, ३ नाम कर्म, ४ गोत्र कर्म (१४३)।

१४४—पढमसमयसिद्धस्स णं चत्तारि कम्मंसा जुगवं खिज्जंति, तं जहा—वेयणिज्जं, आउयं, णामं, गोतं।

प्रथम समयवर्ती सिद्ध के चार सत्कर्म एक साथ क्षीण होते हैं। जैसे—

१ वेदनीय कर्म, २ आयु कर्म, ३ नाम कर्म, ४ गोत्र कर्म (१४४)।

हास्योत्पत्ति-सूत्र

१४५—चउहिं ठाणेहिं हासुप्पत्ती सिया, तं जहा—पासेत्ता, भासेत्ता, सुणेत्ता, संभरेत्ता।

चार कारणों से हास्य की उत्पत्ति होती है। जैसे—

१ देख कर—नट, विदूषक आदि की चेष्टाओं को देख करके।
२ बोल कर—किसी के बोलने की नकल करने से।
३ सुन कर—हास्योत्पादक वचन सुनकर।
४ स्मरण कर—हास्यजनक देखी या सुनी बातों को स्मरण करने से (१४५)।

अंतर सूत्र

१४६—चउव्विहे अंतरे पण्णत्ते, तं जहा—कट्ठंतरे, पम्हंतरे, लोहंतरे, पत्थरंतरे।

एवामेव इत्थीए वा पुरिसस्स वा चउव्विहे अंतरे पण्णत्ते, तं जहा—कट्ठंतरसमाणे, पम्हंतर-समाणे, लोहंतरसमाणे, पत्थरंतरसमाणे।

अन्तर चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ काष्ठान्तर—एक काष्ठ से दूसरे काष्ठ का अन्तर, रूप निर्माण आदि की अपेक्षा से।
२ पक्ष्मान्तर—धागे से धागे का अन्तर, विशिष्ट कोमलता आदि की अपेक्षा से।
३ लोहान्तर—छेदन शक्ति की अपेक्षा से।
४ प्रस्तरान्तर—सामान्य पाषाण से हीरा-पन्ना आदि विशिष्ट पाषाण की अपेक्षा से।

इसी प्रकार स्त्री से स्त्री का और पुरुष से पुरुष का अन्तर भी चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ काष्ठान्तर के समान—विशिष्ट पद आदि की अपेक्षा से।
२ पक्ष्मान्तर के समान—वचन-मृदुता आदि की अपेक्षा से।
३ लोहान्तर के समान—स्नेहच्छेदन आदि की अपेक्षा से।
४ प्रस्तरान्तर के समान—विशिष्ट गुणों आदि की अपेक्षा से (१४६)।

भृतक-सूत्र

१४७—चत्तारि भयगा पण्णत्ता, त जहा—दिवसभयए, जत्ताभयए, उच्चत्तभयए, कब्बाल-भयए।

भृतक (सेवक) चार प्रकार के कहे गये ह। जैसे—

१ दिवस-भृतक—प्रतिदिन का नियत पारिश्रमिक लेकर काय करने वाला।
२ यात्रा भृतक—यात्रा (देशान्तरगमन) काल का सेवक—सहायक।
३ उच्चत्व-भृतक—नियत कार्य का ठेका लेकर काय करने वाला।
४ कब्बाड-भृतक—नियत भूमि आदि खोदकर पारिश्रमिक लेन वाला। जैसे घोड आदि (१४७)।

प्रतिसेवि सूत्र

१४८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सपागडपडिसेवी णामेगे णो पच्छण्णपडिसेवी, पच्छण्णपडिसेवी णामेगे णो सपागडपडिसेवी, एगे सपागडपडिसेवी वि पच्छण्णपडिसेवी वि, एगे णो सपागडपडिसेवी णो पच्छण्णपडिसेवी।

दोप-प्रतिसेवी पुरप चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ कोई पुरप सम्प्रकट-प्रतिसेवी—प्रकट रूप से दोप सेवन करने वाला होता है, किन्तु प्रच्छन्न-प्रतिसेवी—गुप्त रूप से दोपसेवी नही होता।
२ कोई पुरप प्रच्छन्न-प्रतिसेवी होता है, किन्तु सम्प्रकट-प्रतिसेवी नही होता।
३ कोई पुरुप सम्प्रकट-प्रतिसेवी भी होता है और प्रच्छन्न-प्रतिसेवी भी होता है।
४ कोई पुरप न सम्प्रकट-प्रतिसेवी होता है और न प्रच्छन्न-प्रतिसेवी ही होता है (१४८)।

अग्रमहिषी सूत्र

१४९—चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—कणगा, कणगलता, चित्तगुत्ता, वसु धरा।

असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के लोकपाल सोम महाराज की चार अग्रमहिपिया कही गई हैं। जैसे—

१ कनका, २ कनकलता, ३ चित्रगुप्ता, ४ वसु धरा (१४९)।

१५०—एव जमस्स वरुणस्स वेसमणस्स।

इसी प्रकार यम, वरुण और वैश्रवण लोकपालो की भी चार-चार अग्रमहिपिया कही गई हैं (१५०)।

१५१—बलिस्स ण वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—मितगा, सुभद्दा, विज्जुता, असणी।

वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र वलि के लोकपाल सोम महाराज की चार अग्रमहिषिया कही गई है। जैसे—

१ मितका, २ सुभद्रा, ३ विद्युत, ४ अशनि (१५१)।

१५२—एव जमस्स वेसमणस्स वरुणस्स।

इसी प्रकार यम, वैश्रवण और वरुण लोकपालो की भी चार-चार अग्रमहिषिया कही गई है (१५२)।

१५३—धरणस्स ण णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो कालवालस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—असोगा, विमला सुप्पभा, सुदसणा ॥

नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण लोकपाल महाराज कालपाल की चार अग्रमहिषिया कही गई है। जसे—

१ अशोका, २ विमला, ३ सुप्रभा, ४ सुदशना (१५३)।

१५४—एव जाव सखवालस्स।

इसी प्रकार शखपाल तक के शेप लोकपालो की चार-चार अग्रमहिषिया कही गई हैं (१५४)।

१५५—भूताणदस्स ण णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो कालवालस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—सुणदा, सुभद्दा, सुजाता, सुमणा।

नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र भूतानन्द के लोकपाल महाराज कालपाल की चार अग्र-महिषिया कही गई है। जैसे—

१ सुनन्दा, २ सुभद्रा, ३ सुजाता, ४ सुमना (१५५)।

१५६—एव जाव सेलवालस्स।

इसी प्रकार सेलपाल तक के शेप लोकपाला की चार-चार अग्रमहिषिया कही गई है (१५६)।

१५७—जहा धरणस्स एव सव्वेसिं दाहिणिदलोगपालाण जाव घोसस्स।

जैसे धरण के लोकपालो की चार-चार अग्रमहिषिया कही गई हैं, उसी प्रकार सभी दक्षिणेन्द्र—वेणुदेव, हरिकान्त, अग्निशिख, पूर्ण, जलकान्त, अमितगति, वेलम्ब और घोष के लोक-पालो की चार-चार अग्रमहिषिया कही गई है। जसे—

१ अशोका, २ विमला, ३ सुप्रभा, ४ सुदशना (१५७)।

१५८—जहा भूताणदस्स एव जाव महाघोसस्स लोगपालाण।

जमे भूतानन्द के लोकपालो की चार-चार अग्रमहिषिया कही गई हैं, उसी प्रकार शेप सभी

उत्तर दिशा के इन्द्र—वेणुदालि, अग्निमाणव, विशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभजन, और महाघोष के लोकपालो के चार-चार अग्रमहिषिया कही गई हैं। जैसे—

१ सुनन्दा, २ सुप्रभा, ३ सुजाता, ४ सुमना (१५८)।

१५९—कालस्स ण पिसाइदस्स पिसायरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा कमला, कमलप्पभा, उप्पला, सुदसणा।

पिशाचराज पिशाचेन्द्र काल की चार अग्रमहिषिया कही गई है। जसे—

१ कमला, २ कमलप्रभा, ३ उत्पला, ४ सुदर्शना (१५९)।

१६०—एव महाकालस्सवि।

इसी प्रकार महाकाल की भी चार अग्रमहिषिया कही गई हैं (१६०)।

१६१—सुरूवस्स ण भूतिदस्स भूतरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—रूववती, बहुरूवा, सुरूवा, सुभगा।

भूतराज भूतेन्द्र सुरूप की चार अग्रमहिषिया कही गई हैं। जसे—

१ रूपवती, २ बहुरूपा, ३ सुरूपा, ४ सुभगा (१६१)।

१६२—एव पडिरूवस्सवि।

इसी प्रकार प्रतिरूप की भी चार अग्रमहिषिया कही गई है (१६२)।

१६३—पुण्णभद्दस्स ण जक्खिदस्स जक्खरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा पुण्णा, बहुपुण्णिता, उत्तमा, तारगा।

यक्षराज यक्षेन्द्र पूर्णभद्र की चार अग्रमहिषिया कही गई हैं। जैसे—

१ पूर्णा, २ बहुपूर्णिका, ३ उत्तमा, ४ तारका (१६३)।

१६४—एव माणिभद्दस्सवि।

इसी प्रकार माणिभद्र की भी चार अग्रमहिषिया कही गई हैं (१६४)।

१६५—भीमस्स ण रक्खसिदस्स रक्खसरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—पउमा, वसुमती, कणगा, रतणप्पभा।

राक्षसराज राक्षसेन्द्र भीम की चार अग्रमहिषिया कही गई हैं। जसे—

१ पद्मा, २ वसुमती, ३ कनका, ४ रत्नप्रभा (१६५)।

१६६—एव महाभीमस्सवि।

इसी प्रकार महाभीम की भी चार अग्रमहिषिया कही गई है (१६६)।

१६७—किण्णरस्स ण किण्णरिंदस्स [किण्णररण्णो] चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—वडेंसा, केतुमती, रतिसेणा, रतिप्पभा।

किन्नरराज किन्नरेन्द्र किन्नर की चार अग्रमहिषिया कही गई है। जैसे—

१ अवतसा, २ केतुमती, ३ रतिसेना, ४ रतिप्रभा (१६७)।

१६८—एव किंपुरिसस्सवि।

इसी प्रकार किंपुरुष की भी चार अग्रमहिषिया कही गई है (१६८)।

१६९—सप्पुरिसस्स ण किंपुरिसिंदस्स [किंपुरिसरण्णो ?] चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—रोहिणी, णवमिता, हिरी, पुप्फवती।

किंपुरुषराज किंपुरुषेन्द्र सत्पुरुष की चार अग्रमहिषिया कही गई है। जैसे—

१ रोहिणी, २ नवमिता, ३ ह्री, ४ पुष्पवती (१६९)।

१७०—एव महापुरिसस्सवि।

इसी प्रकार महापुरुष की भी चार अग्रमहिषिया कही गई है (१७०)।

१७१—अतिकायस्स ण महोरगिंदस्स [महोरगरण्णो ?] चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—भुयगा, भुयगावती, महाकच्छा, फुडा।

महोरगराज महोरगेन्द्र अतिकाय की चार अग्रमहिषिया कही गई है। जैसे—

१ भुजगा, २ भुजगवती, ३ महाकक्षा ४ स्फुटा (१७१)।

१७२—एव महाकायस्सवि।

इसी प्रकार महाकाय की भी चार अग्रमहिषिया कही गई है (१७२)।

१७३—गीतरतिस्स ण गधव्विंदस्स [गधव्वरण्णो ?] चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—सुघोसा, विमला, सुस्सरा, सरस्सती।

गन्धर्वराज गन्धर्वेन्द्र गीतरति की चार अग्रमहिषिया कही गई है, जैसे—

१ सुघोषा, २ विमला, ३ सुस्वरा ४ सरस्वती (१७३)।

१७४—एव गीयजसस्सवि।

इसी प्रकार गीतयश की भी चार अग्रमहिषिया कही गई है (१७४)।

१७५—चदस्स ण जोतिसिदस्स जोतिसरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—चदप्पभा, दोसिणाभा, अच्चिमाली, पभकरा।

ज्योतिष्कराज ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र की चार अग्रमहिषिया कही गई है, जसे—

१ चन्द्रप्रभा, २ ज्योत्स्नाभा, ३ अर्चिमालिनी, ४ प्रभकरा (१७५)।

१७६—एव सूरस्सवि, णवर—सूरप्पभा, दोसिणाभा, अच्चिमाली, पभकरा।

इसी प्रकार ज्योतिष्कराज ज्योतिष्केन्द्र सूय की भी चार अग्रमहिषिया कही गई हैं। केवल नाम इस प्रकार हैं—१ सूयप्रभा २ ज्योत्स्नाभा, ३ अर्चिमिलिनी, ४ प्रभकरा (१७६)।

१७७—इगालस्स ण महागहस्स चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—विजया, वेजयंती, जयती, अपराजिया।

महाग्रह अगार की चार अग्रमहिषिया कही गई हैं, जैसे—

१ विजया, २ वैजयन्ती, ३ जयती, ४ अपराजिता (१७७)।

१७८—एव सव्वेसि महग्गहाण जाव भावकेउस्स।

इसी प्रकार भावकेतु तक के सभी महाग्रहा की चार चार अग्रमहिषिया कही गई हैं (१७८)।

१७९—सक्कस्स ण देविदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—रोहिणी, मयणा, चित्ता, सामा।

देवराज देवेन्द्र शक्र के लोकपाल महाराज सोम की चार अग्रमहिषिया कही गई हैं, जसे—

१ रोहिणी, २, मदना, ३ चित्रा, ४ सोमा (१७९)।

१८० —एवं जाव वेसमणस्स।

इसी प्रकार वैश्रवण तक के सभी लोकपाला की चार-चार अग्रमहिषिया कही गई हैं (१८०)।

१८१—ईसाणस्स ण देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—पुढवी, राती, रयणी, विज्जू।

देवराज देवेन्द्र ईशान के लोकपाल महाराजा सोम की चार अग्रमहिषिया कही गई हैं, जसे—

१ पृथ्वी, २ रात्रि, ३ रजनी, ४ विद्युत् (१८१)।

१८२—एव जाव वरुणस्स।

इसी प्रकार वरुण तक के सभी लोकपाला की चार-चार अग्रमहिषिया कही गई हैं (१८२)।

विकृति-सूत्र

१८३—चत्तारि गोरसविगतीओ पण्णत्ताओ, त जहा—खीर, दहि, सप्पि, णवणीत।

चार गोरस सम्बन्धी विकृतिया कही गई हैं, जसे—
१ क्षीर (दूध), २ दही, ३ घी, ४ नवनीत (मक्खन) (१८३)।

१८४—चत्तारि सिणेहविगतीओ पण्णत्ताओ, त जहा—तेल्ल, घय, वसा, णवणीत।

चार स्नेह (चिकनाई) वाली विकृतिया कही गई हैं, जैसे—
१ तेल, २ घी, ३ वसा (चर्बी), ४ नवनीत (१८४)।

१८५—चत्तारि महाविगतीओ, त जहा—महु, मस, मज्ज, णवणीत।

चार महाविकृतिया कही गई है, जैसे—
१ मधु, २ मास, ३ मद्य, ४ नवनीत (१८५)।

गुप्त-अगुप्त-सूत्र

१८६—चत्तारि कूडागारा पण्णत्ता, त जहा—गुत्ते णाम एगे गुत्ते, गुत्ते णाम एगे अगुत्ते, अगुत्ते णाम एगे गुत्ते, अगुत्ते णाम एगे अगुत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—गुत्ते णाम एगे गुत्ते, गुत्ते णाम एगे अगुत्ते, अगुत्ते णाम एगे गुत्ते, अगुत्ते णाम एगे अगुत्ते।

चार प्रकार के कूटागार (शिखर वाले घर अथवा प्राणियो के बन्धनस्थान) कहे गये है, जसे—

१ गुप्त होकर गुप्त—कोई कूटागार परकोटे से भी घिरा होता है और उसके द्वार भी बन्द होते है अथवा काल की दृष्टि से पहले भी बन्द, बाद मे भी बन्द।

२ गुप्त होकर अगुप्त—कोई कूटागार परकोटे से तो घिरा होता ह, किन्तु उसके द्वार बन्द नही होते।

३ अगुप्त होकर गुप्त—कोई कूटागार परकोटे से घिरा नही होता, किन्तु उसके द्वार बन्द होते हैं।

४ अगुप्त होकर अगुप्त—कोई कूटागार न परकोटे मे घिरा होता है और न उसके द्वार ही बन्द होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ गुप्त होकर गुप्त—कोई पुरुष वस्त्रो की वेप भूपा से भी गुप्त (ढका) होता है और उसकी इन्द्रिया भी गुप्त (वशीभूत—काबू मे) होती है।

२ गुप्त होकर अगुप्त—कोई पुरुष वस्त्र से गुप्त होता है, किन्तु उसकी इन्द्रिया गुप्त नही होती।

३ अगुप्त होकर गुप्त—कोई पुरुष वस्त्र से अगुप्त होता ह, किन्तु उसकी इन्द्रिया गुप्त होती हैं।

४ अगुप्त होकर अगुप्त--कोई पुरुष न वस्त्र से ही गुप्त होता है और न उसकी इन्द्रिया गुप्त होती हैं (१८६)।

१८७—चत्तारि कूडागारसालाओ पण्णत्ताओ, त जहा—गुत्ता णाममेगा गुत्तदुवारा, गुत्ता णाममेगा अगुत्तदुवारा, अगुत्ता णाममेगा गुत्तदुवारा, अगुत्ता णाममेगा अगुत्तदुवारा।

एवामेव चत्तारित्थीओ पण्णत्ताओ, त जहा—गुत्ता णाममेगा गुत्तिंदिया, गुत्ता णाममेगा अगुत्तिंदिया अगुत्ता णाममेगा गुत्तिंदिया, अगुत्ता णाममेगा अगुत्तिंदिया।

चार प्रकार की कूटागार-शालाए कही गई है, जैसे—

१ गुप्त होकर गुप्तद्वार—कोई कूटागार-शाला परकोटे से गुप्त और गुप्त द्वार वाली होती है।

२ गुप्त होकर अगुप्तद्वार—कोई कूटागार-शाला परकोटे से गुप्त, किन्तु अगुप्त द्वारवाली होती है।

३ अगुप्त होकर गुप्तद्वार—कोई कूटागार शाला परकोट से अगुप्त, किन्तु गुप्तद्वार वाली होती है।

४ अगुप्त होकर अगुप्तद्वार—कोई कूटागार-शाला न परकोट वाली होती है और न उसके द्वार ही गुप्त होते है।

इसी प्रकार स्त्रिया भी चार प्रकार की कही गई है, जैसे—

१ गुप्त होकर गुप्तेन्द्रिय—कोई स्त्री वस्त्र से भी गुप्त होती है और गुप्त इन्द्रिय वाली भी होती है।

२ गुप्त होकर अगुप्तेन्द्रिय—कोई स्त्री वस्त्र से गुप्त होकर भी गुप्त इन्द्रियवाली नही होती।

३ अगुप्त होकर गुप्तेन्द्रिय—कोई स्त्री वस्त्र से अगुप्त होकर भी गुप्त इन्द्रियवाली होती है।

४ अगुप्त होकर अगुप्तेन्द्रिय—कोई स्त्री न वस्त्र से गुप्त होती है और न उसकी इन्द्रिया ही गुप्त होती है (१८७)।

अवगाहना सूत्र

१८८—चउव्विहा ओगाहणा पण्णत्ता, त जहा—दव्वोगाहणा, खेत्तोगाहणा, कालोगाहणा, भावोगाहणा।

अवगाहना चार प्रकार की कही गई है, जैसे—

१ द्रव्यावगाहना, २ क्षेत्रावगाहना, ३ कालावगाहना, ४ भावावगाहना (१८८)।

विवेचन—जिसमे जीवादि द्रव्य अवगाहन करे, रहे या आश्रय को प्राप्त हो, उसे अवगाहना कहते है। जिस द्रव्य का जो शरीर या आकार है, वही उसकी द्रव्यावगाहना है। अथवा विवक्षित द्रव्य के आधारभूत आकाश-प्रदेशो मे द्रव्यो की जो अवगाहना है, वही द्रव्यावगाहना है। इसी प्रकार आकाशरूप क्षेत्र की क्षेत्रावगाहना, मनुष्यक्षेत्ररूप समय की अवगाहना को कालावगाहना और भाव (पर्यायो) वाले द्रव्यो की अवगाहना को भावावगाहना जानना चाहिए।

प्रज्ञप्ति सूत्र

१८६—चत्तारि पण्णत्तीओ अगबाहिरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—चदपण्णत्ती, सूरपण्णत्ती, जबुद्दीवपण्णत्ती, दीवसागरपण्णत्ती ।

चार अगवाह्य प्रज्ञप्तिया कही गई है, जैसे—

१ चन्द्रप्रज्ञप्ति, २ सूयप्रज्ञप्ति, ३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ४ द्वीपसागरप्रज्ञप्ति (१८९) ।

विवेचन—यद्यपि पाचवी व्याख्याप्रज्ञप्ति कही गई है, कितु उसके अगप्रविष्ट मे परिगणित होने से उसे यहा नही कहा गया है । इनमे सूयप्रज्ञप्ति और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति पचम और षष्ठ अग की उपाङ्ग रूप है और शेष दोनो प्रकीणक रूप कही गई है ।

।। चतुथ स्थान का प्रथम उद्देश समाप्त ।।

---

४ अगुप्त होकर अगुप्त--कोई पुरुष न वस्त्र से ही गुप्त होता है और न उसकी इन्द्रिया गुप्त होती हैं (१८६)।

१८७—चत्तारि कूडागारसालाओ पण्णत्ताओ, त जहा—गुत्ता णाममेगा गुत्तदुवारा, गुत्ता णाममेगा अगुत्तदुवारा, अगुत्ता णाममेगा गुत्तदुवारा, अगुत्ता णाममेगा अगुत्तदुवारा।

एवामेव चत्तारित्थीओ पण्णत्ताओ, त जहा—गुत्ता णाममेगा गुत्तिदिया, गुत्ता णाममेगा अगुत्तिदिया, अगुत्ता णाममेगा गुत्तिदिया, अगुत्ता णाममेगा अगुत्तिदिया।

चार प्रकार की कूटागार-शालाए कही गई है, जैसे--

१ गुप्त होकर गुप्तद्वार—कोई कूटागार-शाला परकोटे से गुप्त और गुप्त द्वार वाली होती है।

२ गुप्त होकर अगुप्तद्वार—कोई कूटागार-शाला परकोटे से गुप्त, किन्तु अगुप्त द्वारवाली होती है।

३ अगुप्त होकर गुप्तद्वार—कोई कूटागार शाला परकोटे से अगुप्त, किन्तु गुप्तद्वार वाली होती है।

४ अगुप्त होकर अगुप्तद्वार—कोई कूटागार शाला न परकोटे वाली होती है और न उसके द्वार ही गुप्त होते हैं।

इसी प्रकार स्त्रिया भी चार प्रकार की कही गई हैं, जैसे—

१ गुप्त होकर गुप्तेन्द्रिय—कोई स्त्री वस्त्र से भी गुप्त होती है और गुप्त इन्द्रिय वाली भी होती है।

२ गुप्त होकर अगुप्तेन्द्रिय—कोई स्त्री वस्त्र से गुप्त होकर भी गुप्त इन्द्रियवाली नही होती।

३ अगुप्त होकर गुप्तेन्द्रिय—कोई स्त्री वस्त्र से अगुप्त होकर भी गुप्त इन्द्रियवाली होती है।

४ अगुप्त होकर अगुप्तेन्द्रिय—कोई स्त्री न वस्त्र से गुप्त होती है और न उसकी इन्द्रिया ही गुप्त होती है (१८७)।

अवगाहना सूत्र

१८८—चउव्विहा ओगाहणा पण्णत्ता, त जहा—दव्वोगाहणा, खेत्तोगाहणा, कालोगाहणा, भावोगाहणा।

अवगाहना चार प्रकार की कही गई है, जसे—

१ द्रव्यावगाहना, २ क्षेत्रावगाहना, ३ कालावगाहना, ४ भावावगाहना (१८८)।

विवेचन—जिसमे जीवादि द्रव्य अवगाहन करें, रह या आश्रय को प्राप्त हो, उसे अवगाहना कहते है। जिस द्रव्य का जो शरीर या आकार है, वही उसकी द्रव्यावगाहना है। अथवा विवक्षित द्रव्य के आधारभूत आकाश-प्रदेशो मे द्रव्यो की जो अवगाहना है वही द्रव्यावगाहना है। इसी प्रकार आकाशरूप क्षेत्र की क्षेत्रावगाहना, मनुष्यक्षेत्ररूप समय की अवगाहना को कालावगाहना और भाव (पर्यायो) वाले द्रव्यो की अवगाहना को भावावगाहना जानना चाहिए।

प्रज्ञप्ति सूत्र

१८९—चत्तारि पण्णत्तीओ अगबाहिरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—चदपण्णत्ती, सूरपण्णत्ती, जबुद्दीवपण्णत्ती, दीवसागरपण्णत्ती ।

चार अगबाह्य-प्रज्ञप्तिया कही गई है, जैसे—

१ चन्द्रप्रज्ञप्ति, २ सूयप्रज्ञप्ति, ३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ४ द्वीपसागरप्रज्ञप्ति (१८९) ।

विवेचन—यद्यपि पाचवी व्याख्याप्रज्ञप्ति कही गई है, किन्तु उसके अगप्रविष्ट मे परिगणित होन से उसे यहा नही कहा गया है । इनमे सूयप्रज्ञप्ति और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति पचम और षष्ठ अग की उपाङ्ग रूप है और शेष दोनो प्रकीणक रूप कही गई है ।

॥ चतुथ स्थान का प्रथम उद्देश समाप्त ॥

—

द्वितीय उद्देश

प्रतिसलीन अप्रतिसलीन सूत्र

१६०— चत्तारि पडिसलीणा पण्णत्ता, त जहा—कोहपडिसलीणे, माणपडिसलीणे, मायापडिसलीणे, लोभपडिसलीणे।

प्रतिसलीन चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ क्रोध प्रतिसलीन, २ मान-प्रतिसलीन, ३ माया-प्रतिसलीन, ४ लोभ-प्रतिसलीन (१६०)।

१६१—चत्तारि अपडिसलीणा पण्णत्ता, त जहा—कोहअपडिसलीणे जाव (माणअपडिसलीणे, मायाअपडिसलीणे,) लोभअपडिसलीणे।

अप्रतिसलीन चार प्रकार के कहे गये हैं, जसे —

१ क्रोध अप्रतिसलीन, २ मान अप्रतिसलीन, ३ माया-अप्रतिसलीन ४ लोभ अप्रतिसलीन (१६१)।

विवेचन—किसी वस्तु के प्रतिपक्ष मे लीन होने को प्रतिसलीनता कहते हैं। और उस वस्तु में लीन होने को अपतिसलीनता कहते है। प्रकृत मे क्रोध आदि कपायो के उदय होने पर भी उसमे लीन न होना, अर्थात क्रोधादि कपायो के होने वाले उदय का निरोध करना और उदय प्राप्त क्रोधादि को विफल करना क्रोध आदि प्रतिसलीनता है। तथा क्रोध-आदि कपायो के उदय होने पर क्रोध आदि रूप परिणति रखना क्रोध आदि अप्रतिसलीनता है। इसी प्रकार आगे कही जाने वाली मन प्रतिसलीनता आदि का भी अर्थ जानना चाहिए।

१६२—चत्तारि पडिसलीणा पण्णत्ता त जहा—मणपडिसलीणे, वइपडिसलीणे कायपडिसलीणे, इदियपडिसलीणे।

पुन प्रतिसलीन चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ मन प्रतिसलीन, २ वाक्-प्रतिसलीन, ३ काय-प्रतिसलीन, ४ इन्द्रिय-प्रतिसलीन (१६२)।

१६३—चत्तारि अपडिसलीणा पण्णत्ता, त जहा—मणअपडिसलीणे, जाव (वइअपडिसलीणे, कायअपडिसलीण) इदियअपडिसलीणे।

अप्रतिसलीन चार प्रकार के कहे गये है, जसे—

१ मन-अप्रतिसलीन, २ वाक्-प्रतिसलीन, ३ काय अप्रतिसलीन, ४ इन्द्रिय अप्रतिसलीन (१६३)।

विवेचन—मन, वचन, काय की प्रवृत्ति मे सलग्न नही होकर उसका निरोध करना मन, वचन, काय की प्रतिसलीनता है। पाच इन्द्रियो के विषयो मे सलग्न नही होना इन्द्रिय प्रतिसलीनता है। मन, वचन, काय की तथा इन्द्रियो के विषयों की प्रवृत्ति मे सलग्न होना उनकी अप्रति-सलीनता है।

दीन-अदीन सूत्र

१६४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—दीणे णाममेगे दीणे, दीणे णाममेगे अदीणे, अदीणे णाममेगे दीणे, अदीणे णाममेगे अदीणे ॥१॥

पुरुष चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ दीन होकर दीन—कोई पुरुष बाहर से दीन (दरिद्र) है और भीतर मे भी दीन (दयनीय-मनोवृत्तिवाला) होता है।

२ दीन होकर अदीन—कोई पुरुष बाहर मे दीन, किन्तु भीतर मे अदीन होता है।

३ अदीन होकर दीन—कोई पुरुष बाहर से अदीन, किन्तु भीतर मे दीन होता है।

४ अदीन होकर अदीन—कोई पुरुष न बाहर से दीन होता है और न भीतर से दीन होता है (१६४)।

१६५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा दीणे णाममेगे दीणपरिणते, दीणे णाममेगे अदीणपरिणते, अदीणे णाममेगे दीणपरिणते, अदीणे णाममेगे अदीणपरिणते ॥२॥

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ दीन होकर दीन-परिणत—कोई पुरुष दीन है और बाहर से भी दीन रूप से परिणत होता है।

२ दीन होकर अदीन-परिणत—कोई पुरुष दीन होकर के भी दीनरूप मे परिणत नही होता है।

३ अदीन होकर दीन परिणत—कोई पुरुष दीन नहीं होकर के भी दीनरूप से परिणत होता है।

४ अदीन होकर अदीन-परिणत—कोई पुरुष न दीन है और न दीनरूप मे परिणत होता है (१६५)।

१६६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—दीणे णाममेगे दीणरूवे, (दीणे णाममेगे अदीणरूवे, अदीणे णाममेगे दीणरूवे, अदीणे णाममेगे अदीणरूवे ॥३॥

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ दीन होकर दीनरूप—कोई पुरुष दीन है और दीनरूप वाला (दीनतासूचक मलीन वस्त्र आदि वाला) होता है।

२ दीन होकर अदीनरूप—कोई पुरुष दीन है, किन्तु दीनरूप वाला नही होता है।

३ अदीन होकर दीनरूप—कोई पुरुष दीन न होकर के भी दीनरूप वाला होता है।
४ अदीन होकर अदीनरूप—कोई पुरुष न दीन है और न दीनरूप वाला होता है (१९६)।

१९७—एव दीणमणे ४, दीणसकप्पे ४, दीणपण्णे ४, दीणदिट्ठी ४, दीणसीलाचारे ४, दीणववहारे ४, एव सव्वेसि चउभगो भाणियव्वो। (चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—दीणे णाममेगे दीणमणे दीणे णाममेगे अदीणमणे, अदीणे णाममेगे दीणमणे, अदीणे णाममेगे अदीणमणे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ दीन और दीनमन—कोई पुरुष दीन है और दीन मनवाला भी होता है।
२ दीन और अदीनमन—कोई पुरुष दीन होकर भी दीन मनवाला नहीं होता।
३ अदीन और दीनमन—कोई पुरुष दीन नही होकर के भी दीन मनवाला होता है।
४ अदीन और अदीनमन—कोई पुरुष न दान है और न दीन मनवाला होता है (१९७)।

१९८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—दीणे णाममेगे दीणसकप्पे, दीणे णाममेगे अदीणसकप्पे, अदीणे णाममेगे दीणसकप्पे, अदीणे णाममेगे अदीणसकप्पे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये ह, जैसे—

१ दीन और दीनसकल्प—कोई पुरुष दीन होता है और दीन सकल्पवाला भी होता है।
२ दीन और अदीन सकल्प—कोई पुरुष दीन होकर भी दीन सकल्पवाला नही होता।
३ अदीन और दीन सकल्प—कोई पुरुष दीन नही होकर के भी दीन सकल्पवाला होता है।
४ अदीन और अदीन सकल्प—कोई पुरुष न दीन है और न दीन सकल्पवाला होता है (१९८)।

१९९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—दीणे णाममेगे दीणपण्णे, दीणे णाममेगे अदीणपण्णे, अदीणे णाममेगे दीणपण्णे, अदीणे णाममेगे अदीणपण्णे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ दीन और दीनप्रज्ञ—कोई पुरुष दीन है और दीन प्रज्ञावाला होता है।
२ दीन और अदीनप्रज्ञ—कोई पुरुष दीन होकर के भी दीन प्रज्ञावाला नही होना।
३ अदीन और दीनप्रज्ञ—कोई पुरुष दीन नही होकर के भी दीनप्रज्ञावाला होता है।
४ अदीन और अदीनप्रज्ञ—कोई पुरुष न दीन है और न दीनप्रज्ञावाला होता है (१९९)।

२००—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—दीणे णाममेगे दीणदिट्ठी, दीणे णाममेगे अदीणदिट्ठी, अदीणे णाममेगे दीणदिट्ठी, अदीणे णाममेगे अदीणदिट्ठी।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ दीन और दीनदृष्टि—कोई पुरुष दीन है और दीन दृष्टिवाला होता है।
२ दीन और अदीनदृष्टि—कोई पुरुष दीन होकर भी दीनदृष्टि वाला नही होता है।

३ अदीन और दीनदृष्टि—कोई पुरुष दीन नही होकर भी दीनदृष्टि वाला होता है ।
४ अदीन और अदीनदृष्टि—कोई पुरुष न दीन है और न दीनदृष्टिवाला होता है (२००) ।

२०१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—दीणे णाममेगे दीणसीलाचारे, दीणे णाममेगे अदीणसीलाचारे, अदीण णाममेगे दीणसीलाचारे, अदीणे णाममेगे अदीणसीलाचारे ।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है, जसे—

१ दीन और दीन शीलाचार—कोई पुरुष दीन है और दीन शील-आचार वाला है ।
२ दीन और अदीन शीलाचार—कोई पुरुष दीन होकर भी दीन शील-आचार वाला नही होता ।
३ अदीन और दीन शीलाचार—कोई पुरुष दीन नही होकर भी दीन शील आचार वाला होता है ।
४ अदीन और अदीन शीलाचार—कोई पुरुष न दीन है और न दीन शील-आचार वाला होता है (२०१) ।

२०२—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—दीण णाममेगे दीणववहारे, दीणे णाममेगे अदीणववहारे, अदीणे णाममेगे दीणववहारे, अदीणे णाममेगे अदीणववहारे ।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गय है, जसे—

१ दीन और दीन व्यवहार—कोई पुरुष दीन है और दीन व्यवहारवाला होता है ।
२ दीन और अदीन व्यवहार—कोई पुरुष दीन होकर भी दीन व्यवहारवाला नही होता ।
३ अदीन और दीन व्यवहार—कोई पुरुष दीन नही होकर भी दीन व्यवहारवाला होता है ।
४ अदीन और अदीन व्यवहार—कोई पुरुष न दीन है और न दीन व्यवहारवाला होता है (२०२) ।

२०३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—दीणे णाममेगे दीणपरक्कमे, दीणे णाममेगे अदीणपरक्कमे, (अदीणे णाममेगे दीणपरक्कमे, अदीण णाममेगे अदीणपरक्कमे ।)

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है, जसे—

१ दीन और दीनपराक्रम—कोई पुरुष दीन है और दीन पराक्रमवाला भी होता है ।
२ दीन और अदीनपराक्रम—कोई पुरुष दीन होकर भी दीन पराक्रमवाला नही होता ।
३ अदीन और दीनपराक्रम—कोई पुरुष दीन नही होकर भी दीन पराक्रमवाला होता है ।
४ अदीन और अदीनपराक्रम—कोई पुरुष न दीन है और न दीन पराक्रमवाला होता है (२०३)।

२०४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—दीणे णाममेगे दीणवित्ती, दीणे णाममेगे अदीणवित्ती, अदीणे णाममेगे दीणवित्ती, अदीणे णाममेगे अदीणवित्ती ।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ दीन और दीनवृत्ति—कोई पुरुष दीन है और दीनवृत्ति (दीन जसी आजीविका) वाला होता है।
२ दीन और अदीनवृत्ति—कोई पुरुष दीन होकर भी दीनवृत्तिवाला नही होता है।
३ अदीन और दीनवृत्ति—कोई पुरुष दीन नही होकर भी दीनवृत्तिवाला होता है।
४ अदीन और अदीनवृत्ति—कोई पुरुष न दीन है और न दीनवृत्तिवाला होता है (२०४)।

२०५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—दीणे णाममेगे दीणजाती, दीणे णाममेगे अदीणजाती, अदीणे णाममेगे दीणजाती, अदीणे णाममेगे अदीणजाती।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—
१ दीन और दीनजाति—कोई पुरुष दीन है और दीन जातिवाला होता है।
२ दीन और अदीनजाति—कोई पुरुष दीन होकर भी दीन जातिवाला नही होता है।
३ अदीन और दीनजाति—कोई पुरुष दीन नही होकर भी दीन जातिवाला होता है।
४ अदीन और अदीनजाति—कोई पुरुष न दीन है और न दीनजातिवाला होता है[1] (२०५)।

२०६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—दीणे णाममेगे दीणभासी, दीणे णाममेगे अदीणभासी, अदीणे णाममेगे दीणभासी, अदीणे णाममेगे अदीणभासी।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे
१ दीन और दीनभाषी—कोई पुरुष दीन है और दीनभाषा बोलनेवाला होता है।
२ दीन और अदीनभाषी—कोई पुरुष दीन होकर भी दीनभाषा नही बोलनेवाला होता है।
३ अदीन और दीनभाषी—कोई पुरुष दीन नही होकर भी दीनभाषा बोलनेवाला होता है।
४ अदीन और अदीनभाषी—कोई पुरुष न दीन है और न दीनभाषा बोलने वाला होता है। (२०६)।

२०७—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—दीणे णाममेगे दीणोभासी, दीणे णाममेगे अदीणोभासी, अदीणे णाममेगे दीणोभासी, अदीणे णाममेगे अदीणोभासी]।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—
१ दीन और दीनावभासी—कोई पुरुष दीन है और दीन के समान जान पडता है।
२ दीन और अदीनावभासी—कोई पुरुष दीन होकर भी दीन नही जान पडता है।
३ अदीन और दीनावभासी—कोई पुरुष दीन नही होकर भी दीन जान पडता है।
४ अदीन और अदीनावभासी—कोई पुरुष न दीन है और न दीन जान पडता है (२०७)।

२०८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—दीणे णाममेगे दीणसेवी, दीणे णाममेगे अदीणसेवी, अदीणे णाममेगे दीणसेवी, अदीणे णाममेगे अदीणसेवी।

१ संस्कृत टीकाकार ने अथवा लिखकर 'दीणजाती' पद का दूसरा संस्कृत रूप 'दीनयाची' लिखा है जिसके अनुसार दीनतापूर्वक याचना करनेवाला पुरुष होता है। तीसरा संस्कृतरूप 'दीनयायी' लिखा है, जिसका अर्थ दीनता को प्राप्त होने वाला पुरुष होता है।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ दीन और दीनसेवी—कोई पुरुष दीन है और दीनपुरुष (नायक—स्वामी) की सेवा करता है।
२ दीन और अदीनसेवी—कोई पुरुष दीन होकर अदीन पुरुष की सेवा करता है।
३ अदीन और दीनसेवी—कोई पुरुष अदीन होकर भी दीन पुरुष की सेवा करता है।
४ अदीन और अदीनसेवी—कोई पुरुष न दीन है और न दीन पुरुष की सेवा करता है (२०८)।

२०९—एव [चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—दीणे णाममेगे दीणपरियाए, दीणे णाममेगे अदीणपरियाए, अदीणे णाममेगे दीणपरियाए, अदीणे णाममेगे अदीणपरियाए।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ दीन और दीनपर्याय—कोई पुरुष दीन है और दीन पर्याय (अवस्था) वाला होता है।
२ दीन और अदीनपर्याय—कोई पुरुष दीन होकर भी दीन पर्यायवाला नही होता है।
३ अदीन और दीनपर्याय—कोई पुरुष दीन न होकर दीन पर्यायवाला होता है।
४ अदीन और अदीनपर्याय—कोई पुरुष न दीन है और न दीन पर्यायवाला होता है (२०९)।

२१०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—दीणे णाममेगे दीणपरियाले, दीणे णाममेगे अदीणपरियाले, अदीणे णाममेगे दीणपरियाले, अदीणे णाममेगे अदीणपरियाले।[सव्वत्थ चउभगो।]

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ दीन और दीन परिवार—कोई पुरुष दीन है और दीन परिवारवाला होता है।
२ दीन और अदीन परिवार—कोई पुरुष दीन होकर दीन परिवारवाला नही होता है।
३ अदीन और दीनपरिवार—कोई पुरुष दीन न होकर दीन परिवारवाला होता है।
४ अदीन और अदीन परिवार—कोई पुरुष न दीन है और न दीन परिवारवाला होता है (२१०)।

आर्य-अनार्य सूत्र[१]

२११—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—अज्जे णाममेगे अज्जे, अज्जे णाममेगे अणज्जे, अणज्जे णाममेगे अज्जे, अणज्जे णाममेगे अणज्जे। एव अज्जपरिणए, अज्जरूवे अज्जमणे अज्जसकप्पे, अज्जपण्णे अज्जदिट्ठी अज्जसीलाचारे, अज्जववहारे, अज्जपरक्कमे अज्जवित्ती, अज्जजाती, अज्जभासी अज्जोवभासी, अज्जसेवी, एव अज्जपरियाये अज्जपरियाले एव सत्तरसस आलावगा जहा दीणेण भणिया तहा अज्जेण वि भाणियव्वा।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ आर्य और आर्य—कोई पुरुष जाति से भी आर्य और गुण से भी आर्य होता है।

---

१ जिनमे धर्म-कर्म की उत्तम प्रवृत्ति हो ऐसे आर्यदेशोत्पन्न पुरुषो को आर्य कहते हैं। जिनमे धर्म प्राप्ति की प्रवृत्ति नही ऐसे अनार्यदेशोत्पन्न पुरुषो को अनार्य कहते हैं। आर्य पुरुष क्षेत्र, जाति, कुल, कर्म शिल्प, भाषा ज्ञान, दर्शन और चारित्र की अपेक्षा नौ प्रकार के कहे गये हैं। इनसे विपरीत पुरुषो को अनार्य कहा गया है।

१ आर्य और आर्यव्यवहार—कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्यव्यवहार वाला होता है।
२ आर्य और अनार्यव्यवहार—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्यव्यवहार वाला होता है।
३ अनार्य और आर्यव्यवहार—कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्यव्यवहार वाला होता है।
४ अनार्य और अनार्यव्यवहार—कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्यव्यवहार वाला भी होता है (२१९)।

२२०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जपरक्कमे, अज्जे णाममेगे अणज्जपरक्कमे, अणज्जे णाममेगे अज्जपरक्कमे, अणज्जे णाममेगे अणज्जपरक्कमे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ आर्य और आर्यपराक्रम—कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्यपराक्रम वाला होता है।
२ आर्य और अनार्यपराक्रम—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्यपराक्रम वाला होता है।
३ अनार्य और आर्यपराक्रम—कोई पुरुष जाति से अनार्य किन्तु आर्यपराक्रम वाला होता है।
४ अनार्य और अनार्यपराक्रम—कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्यपराक्रम वाला होता है (२२०)।

२२१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जवित्ती, अज्जे णाममेगे अणज्जवित्ती, अणज्जे णाममेगे अज्जवित्ती, अणज्जे णाममेगे अणज्जवित्ती।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ आर्य और आर्यवृत्ति—कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्यवृत्तिवाला होता है।
२ आर्य और अनार्यवृत्ति—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्यवृत्तिवाला होता है।
३ अनार्य और आर्यवृत्ति—कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्यवृत्तिवाला होता है।
४ अनार्य और अनार्यवृत्ति—कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्यवृत्तिवाला होता है (२२१)।

२२२—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जजाती, अज्जे णाममेगे अणज्जजाती, अणज्जे णाममेगे अज्जजाती, अणज्जे णाममेगे अणज्जजाती।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ आर्य और आर्यजाति—कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्यजाति वाला (सगुण मातृपक्षवाला) होता है।
२ आर्य और अनार्यजाति—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य जाति (मातृपक्ष) वाला होता है।

३ अनार्य और आर्यजाति—कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्यजाति (मातृपक्ष) वाला होता है।
४ अनार्य और अनार्यजाति—कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्यजाति (मातृपक्ष) वाला होता है (२२२)।

२२३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जभासी, अज्जे णाममेगे अणज्जभासी, अणज्जे णाममेगे अज्जभासी, अणज्जे णाममेगे अणज्जभासी।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ आर्य और आर्यभाषी—कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्यभाषा बोलनेवाला होता है।
२ आर्य और अनार्यभाषी—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्यभाषा बोलनेवाला होता है।
३ अनार्य और आर्यभाषी—कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्यभाषा बोलनेवाला होता है।
४ अनार्य और अनार्यभाषी—कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्यभाषा बोलनेवाला होता है (२२३)।

२२४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जओभासी, अज्जे णाममेगे अणज्जओभासी, अणज्जे णाममेगे अज्जओभासी, अणज्जे णाममेगे अणज्जओभासी।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ आर्य और आर्यावभासी—कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्य के समान दिखता है।
२ आर्य और अनार्यावभासी—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य के समान दिखता है।
३ अनार्य और आर्यावभासी—कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य के समान दिखता है।
४ अनार्य और अनार्यावभासी—कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य के समान दिखता है (२२४)।

२२५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जसेवी, अज्जे णाममेगे अणज्जसेवी, अणज्जे णाममेगे अज्जसेवी, अणज्जे णाममेगे अणज्जसेवी।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ आर्य और आर्यसेवी—कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्यपुरुष की सेवा करता है।
२ आर्य और अनार्यसेवी—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्यपुरुष की सेवा करता है।
३ अनार्य और आर्यसेवी—कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्यपुरुष की सेवा करता है।
४ अनार्य और अनार्यसेवी—कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य पुरुष की सेवा करता है (२२५)।

२२६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जपरियाए, अज्जे णाममेगे अणज्जपरियाए, अणज्जे णाममेगे अज्जपरियाए, अणज्जे णाममेगे अणज्जपरियाए।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ आय और आर्यपर्याय—कोई पुरुष जाति से आय और आयपर्याय वाला होता है।
२ आय और अनायपयाय—कोई पुरुष जाति से आय, किन्तु अनायपर्याय वाला होता है।
३ अनाय और आयपर्याय—कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आयपर्याय वाला होता है।
४ अनार्य और अनायपर्याय—कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनायपर्याय वाला होता है (२२६)।

२२७—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—अज्जे णाममेगे अज्जपरियाले, अज्जे णाममेगे अणज्जपरियाले, अणज्जे णाममेगे अज्जपरियाले, अणज्जे णाममेगे अणज्जपरियाले।]

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ आय और आयपरिवार—कोई पुरुष जाति से आर्य और आयपरिवारवाला होता है।
२ आय और अनायपरिवार—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनायपरिवारवाला होता है।
३ अनाय और आयपरिवार—कोई पुरुष जाति से अनाय, किन्तु आयपरिवारवाला होता है।
४ अनाय और अनायपरिवार—कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनायपरिवारवाला होता है।

२२८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—अज्जे णाममेगे अज्जभावे, अज्जे णाममेगे अणज्जभावे, अणज्जे णाममेगे अज्जभावे, अणज्जे णाममेगे अणज्जभावे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ आय और आयभाव—कोई पुरुष जाति से आय और आयभाव (क्षायिकदर्शनादि गुण) वाला होता है।
२ आर्य और अनायभाव—कोई पुरुष जाति से आय, किन्तु अनायभाववाला (क्रोधादि युक्त) होता है।
३ अनाय और आयभाव—कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आयभाववाला होता है।
४ अनाय और अनार्यभाव—कोई पुरुष जाति से अनाय और अनायभाववाला होता है (२२८)।

जाति सूत्र

२२९—चत्तारि उसभा पण्णत्ता, त जहा—जातिसपण्णे, कुलसपण्णे, बलसपण्णे, रूवसपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जातिसपण्णे, जाव [कुलसपण्णे, बलसपण्णे] रूवसपण्णे।

वृपभ (बैल) चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ जातिसम्पन्न, २ कुलसम्पन्न, ३ बलसम्पन्न (भारवहन के सामर्थ्य से सम्पन्न), ४ रूपसम्पन्न (देखने मे सुन्दर)।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—
१ जातिसम्पन्न, २ कुलसम्पन्न, ३ बलसम्पन्न, ४ रूपसम्पन्न (२२९)।

विवेचन—मातृपक्ष को जाति कहते हैं और पितृपक्ष को कुल कहते है। सामर्थ्य को बल और शारीरिक सौन्दर्य को रूप कहते हैं। बैलो मे ये चारो धर्म पाये जाते हैं और उनके समान पुरुषो मे भी ये धर्म पाये जाते हैं।

२३०—चत्तारि उसभा पण्णत्ता, त जहा—जातिसपण्णे णाम एगे णो कुलसपण्णे, कुलसपण्णे णाम एगे णो जातिसपण्ण, एगे जातिसपण्णेवि कुलसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे णो कुलसपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जातिसपण्णे णाममेगे णो कुलसपण्णे, कुलसपण्णे णाममेगे णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णेवि कुलसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे णो कुलसपण्णे।

चार प्रकार के वृषभ कहे गये हैं, जैसे—
१ कोई बैल जाति मे सम्पन्न होता है, किन्तु कुल से सम्पन्न नही होता।
२ कोई बैल कुल से सम्पन्न होता है, किन्तु जाति मे सम्पन्न नही होता।
३ कोई बैल जाति से भी सम्पन्न होता है और कुल मे भी सम्पन्न होता है।
४ कोई बैल न जाति से सम्पन्न होता है और न कुल से ही सम्पन्न होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—
१ कोई पुरुष जाति से सम्पन्न होता है, किन्तु कुल से सम्पन्न नही होता।
२ कोई पुरुष कुल से सम्पन्न होता है, किन्तु जाति से सम्पन्न नही होता।
३ कोई पुरुष जाति से भी सम्पन्न होता है और कुल से भी सम्पन्न होता है।
४ कोई पुरुष न जाति से सम्पन्न होता है और न कुल से ही सम्पन्न होता है (२३०)।

२३१—चत्तारि उसभा पण्णत्ता, त जहा—जातिसपण्णे णाम एगे णो बलसपण्णे, बलसपण्णे णाम एगे णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णेवि बलसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्ण णो बलसपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जातिसपण्णे णाम एगे णो बलसपण्णे, बलसपण्णे णाम एगे णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णवि बलसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे णो बलसपण्णे।

पुन वृषभ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ कोई बैल जातिसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नही होता।
२ कोई बैल बलसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नही होता।
३ कोई बैल जातिसम्पन्न भी होता है और बलसम्पन्न भी होता है।
४ कोई बैल न जातिसम्पन्न होता है और न बलसम्पन्न होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये है जैसे—

१ कोई पुरुष जातिसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नही होता।
२ कोई पुरुष बलसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नही होता।
३ कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है, और बलसम्पन्न भी होता है।
४ कोई पुरुष न जातिसम्पन्न होता है और न बलसम्पन्न ही होता है (२३१)।

२३२—चत्तारि उसभा पण्णत्ता, त जहा—जातिसपण्णे णाम एगे णो रूवसपण्णे, रूवसपण्णे णाम एगे णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णेवि रूवसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे णो रूवसपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जातिसपण्णे णाम एगे णो रूवसपण्णे, रूवसपण्णे णाम एगे णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णेवि रूवसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे णो रूवसपण्ण।

पुन वृषभ चार प्रकार के होते है। जसे—

१ कोई बैल जातिसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नही होता।
२ कोई बैल रूपसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नही होता।
३ कोई बैल जातिसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।
४ कोई बल न जातिसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं। जैसे—

१ कोई पुरुष जातिसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नही होता।
२ कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नही होता।
३ कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न होता है।
४ कोई पुरुष न जातिसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है (२३२)।

कुल-सूत्र

२३३—चत्तारि उसभा पण्णत्ता, त जहा—कुलसपण्णे णाम एगे णो बलसपण्णे, बलसपण्णे णाम एगे णो कुलसपण्णे, एगे कुलसपण्णेवि बलसपण्णेवि, एगे णो कुलसपण्णे णो बलसपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—कुलसपण्णे णाम एगे णो बलसपण्णे, बलसपण्णे णाम एगे णो कुलसपण्णे, एगे कुलसपण्णेवि बलसपण्णेवि, एगे णो कुलसपण्णे णो बलसपण्णे।

पुन वृषभ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कोई बैल कुलसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नही होता।
२ कोई बैल बलसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नही होता।
३ कोई बैल कुलसम्पन्न भी होता है और बलसम्पन्न भी होता है।
४ कोई बल न कुलसम्पन्न होता है और न बलसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं जैसे—

१ कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नही होता।

२ कोई पुरुष बलसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नही होता ।
३ कोई पुरुष कुलसम्पन्न भी होता है और बलसम्पन्न भी होता है ।
४ कोई पुरुष न कुलसम्पन्न होता है और न बलसम्पन्न ही होता है (२३३) ।

२३४—चत्तारि उसभा पण्णत्ता, त जहा—कुलसपण्णे णाम एगे णो रूवसपण्णे, रूवसपण्णे णाम एगे कुलसपण्णे, एगे कुलसपण्णेवि रूवसपण्णेवि, एगे णो कुलसपण्णे णो रूवसपण्णे ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—कुलसपण्णे णाम एगे णो रूवसपण्णे, रूवसपण्णे णाम एगे णो कुलसपण्णे, एगे कुलसपण्णेवि रूवसपण्णेवि, एगे णो कुलसपण्णे णो रूवसपण्णे ।

पुन वृषभ चार प्रकार के कहे गये है । जैसे—

१ कोई बैल कुलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नही होता ।
२ कोई बैल रूपसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नही होता ।
३ कोई बल कुलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है ।
४ कोई बैल न कुलसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये है । जैसे—

१ कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नही होता ।
२ कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नही होता ।
३ कोई पुरुष कुलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है ।
४ कोई पुरुष न कुलसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है (२३४) ।

बल सूत्र

२३५—चत्तारि उसभा पण्णत्ता, त जहा—बलसपण्णे णाम एगे णो रूवसपण्णे, रूवसपण्णे णाम एगे णो बलसपण्णे, एगे बलसपण्णेवि रूवसपण्णेवि, एगे णो बलसपण्णे णो रूवसपण्णे ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—बलसपण्णे णाम एगे णो रूवसपण्णे, रूवसपण्णे णाम एगे णो बलसपण्णे एगे बलसपण्णेवि रूवसपण्णेवि, एगे णो बलसपण्णे णो रूवसपण्णे ।

पुन वृषभ चार प्रकार के कहे गये है । जसे—
१ कोई बल बलसम्पन्न होता है किन्तु रूपसम्पन्न नही होता ।
२ कोई बल रूपसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नही होता ।
३ कोई बैल बलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है ।
४ कोई बैल न बलसम्पन्न होना है और न रूपसम्पन्न ही होता है ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं । जसे—

१ कोई पुरुष बलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नही होता ।
२ कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नही होता ।

३ कोई पुरुष बलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।
४ कोई पुरुष न बलसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है (२३५)।

हस्ति सूत्र

२३६—चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, त जहा—भद्दे, मदे, मिए, सकिण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—भद्दे, मदे, मिए, सकिण्णे।

हाथी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ भद्र—धैर्य, वीर्य, वेग आदि गुण वाला।
२ मन्द—धैर्य, वीर्य आदि गुणो की मन्दतावाला।
३ मृग—हरिण के समान छोटे शरीर और भीरुतावाला।
४ सकीर्ण—उक्त तीनों जाति के हाथियो के मिले हुए गुणवाला।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ भद्रपुरुष—धैर्य वीर्यादि उत्कृष्ट गुणो की प्रकर्षतावाला।
२ मन्दपुरुष—धैर्य-वीर्यादि गुणो की मन्दतावाला।
३ मृगपुरुष—छोटे शरीरवाला, भीरु स्वभाववाला।
४ सकीर्णपुरुष—उक्त तीनो जाति के पुरुषो के मिले हुए गुणवाला (२३६)।

२३७—चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, त जहा—भद्दे णाममेगे भद्दमणे, भद्दे णाममेगे मदमणे, भद्दे णाममेगे मियमणे, भद्दे णाममेगे सकिण्णमणे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—भद्दे णाममेगे भद्दमणे, भद्दे णाममेगे मदमण भद्दे णाममेगे मियमणे, भद्दे णाममेगे सकिण्णमणे।

पुन हाथी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ भद्र और भद्रमन – कोई हाथी जाति से भद्र होता है और भद्र मनवाला (धीर) भी होता है।
२ भद्र और मन्दमन—कोई हाथी जाति से भद्र, किन्तु मन्द मनवाला (अत्यन्त धीर नहीं) होता है।
३ भद्र और मृगमन—कोई हाथी जाति से भद्र, किन्तु मृग मनवाला (भीरु) होता है।
४ भद्र और सकीर्णमन—कोई हाथी जाति से भद्र, किन्तु सकीर्ण मनवाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ भद्र और भद्रमन—कोई पुरुष स्वभाव से भद्र और भद्र मनवाला होता है।
२ भद्र और मन्दमन—कोई पुरुष स्वभाव से भद्र किन्तु मन्द मनवाला होता है।
३ भद्र और मृगमन—कोई पुरुष स्वभाव से भद्र, किन्तु मृग मनवाला होता है।
४ भद्र और सकीर्णमन—कोई पुरुष स्वभाव से भद्र, किन्तु सकीर्ण मनवाला होता है (२३७)।

२३८—चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, त जहा—मदे णाममेगे भद्दमणे, मदे णामम गे मदमणे, म दे णामम गे मियमणे, म दे णामम गे सकिण्णमणे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—म दे णामम गे भद्दमणे, [म दे णामम गे म दमणे, म दे णामम गे मियमणे, म दे णामम गे सकिण्णमणे]।

पुन हाथी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ म द और भद्रमन—कोई हाथी जाति से मन्द, कि तु भद्र मनवाला होता है

२ म द और म दमन—कोई हाथी जाति से म द और मन्द मनवाला होता है।

३ मन्द और मृगमन—काई हाथी जाति से म द और मृग मनवाला होता है।

४ म द और सकीणमन—कोई हाथी जाति से म द और सकीण मनवाला होता है।

इसी प्रकार पुरुप भी चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ म द और भद्रमन—कोई पुरुप स्वभाव से मन्द कि तु भद्रमनवाला होता है।

२ म द और म दमन—कोई पुरुप स्वभाव से मन्द और मन्द ही मनवाला होता है।

३ मन्द और मृगमन—कोई पुरुप स्वभाव से म द और मृग मनवाला होता है।

४ म द और सकीणमन—कोई पुरुप स्वभाव मे म द और सकीण मनवाला होता है (२३८)।

२३९—चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, त जहा—मिए णामम गे भद्दमण, मिए णामम गे म दमणे, मिए णामम गे मियमणे, मिए णामम गे सकिण्णमणे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—मिए णामम गे भद्दमणे, [मिए णामम गे म दमणे, मिए णामम गे मियमणे, मिए णामम गे सकिण्णमणे]।

पुन हाथी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ मृग और भद्रमन—कोई हाथी जाति से मृग (भीरु) कि तु भद्रमन वाला (धयवान्) होता है।

२ मृग और म दमन—कोई हाथी जाति से मृग और मन्द मनवाला (कम धैयवाला) होता है।

३ मृग और मृगमन—कोई हाथी जाति से मृग और मृगमन वाला होता है।

४ मृग और सकीणमन—कोई हाथी जाति से मृग और सकीण मनवाला होता है।

इसी प्रकार पुरुप भी चार जाति के कहे गये हैं। जसे—

१ मृग और भद्रमन—कोई पुरुप स्वभाव से मृग, किन्तु भद्र मनवाला होता है।

२ मृग और म दमन—कोई पुरुप स्वभाव से मृग और म द मनवाला होता है।

३ मृग और मृगमन—कोई पुरुप स्वभाव से मृग और मृग मनवाला होना है।

४ मृग और सकीणमन—कोई पुरुप स्वभाव से मृग और सकीण मनवाला होता है (२३९)।

२४०—चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, त जहा—सकिण्णे णाममेगे भद्दमणे सकिण्णे णाममेगे मदमणे, सकिण्णे णामम गे मियमणे, सकिण्णे णामम गे सकिण्णमणे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सकिण्णे णाममेगे भद्दमणे, [सकिण्णे णाममगे मदमणे, सकिण्णे णाममेगे मियमणे] सकिण्णे णाममेगे सकिण्णमणे ।

पुन हाथी चार प्रकार के कहे गये है । जैसे—

१ सकीण और भद्रमन—कोई हाथी जाति से सकीर्ण (मिले-जुले स्वभाववाला) किन्तु भद्र मनवाला होता है ।
२ सकीण और मन्दमन—कोई हाथी जाति से सकीर्ण और मन्द मनवाला होता है ।
३ सकीण और मृगमन—कोई हाथी जाति से सकीण और मृगमनवाला होता है ।
४ सकीण और सकीण—कोई हाथी जाति से सकीण और सकीण ही मनवाला होता है ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार जाति के कहे गये हैं जैसे—

१ सकीण और भद्रमन—कोई पुरुष स्वभाव से सकीण, किन्तु भद्रमन वाला होता है ।
२ सकीर्ण और मन्दमन—कोई पुरुष स्वभाव से सकीण, और मन्द मनवाला होता है ।
३ सकीण और मृगमन—कोई पुरुष स्वभाव से सकीण और मृग मनवाला होता है ।
४ सकीण और सकीण—कोई पुरुष स्वभाव से सकीर्ण और सकीण मनवाला होता है ।

सग्रहणी गाथा

मधुगुलिय पिंगलक्खो, अणुपुव्व सुजाय दीहणगूलो ।
पुरओ उदग्गधीरो, सव्वगसमाधितो भद्दो ॥१॥
चल बहल विसम-चम्मो, थूलसिरो थूलएण पेएण ।
थूलणह दत वालो, हरिपिंगल-लोयणो मदो ॥२॥
तणुओ तणुयग्गीवो, तणुयतओ तणुयदत णह-वालो ।
भीरू तत्थुव्विग्गो, तासी य भवे मिए णाम ॥३॥
एतेसि हत्थीण थोवा थोव, तु जो अणुहरति हत्थी ।
रूवेण व सीलेण व, सो सकिण्णोत्ति णायव्वो ॥४॥
भद्दो मज्जइ सरए, मदो उण मज्जते वसतमि ।
मिउ मज्जति हेमते, सकिण्णो सव्वकालमि ॥५॥

१ जिसके नेत्र मधु की गोली के समान गोल रक्त पिंगल वर्ण के हो, जो काल-मर्यादा के अनुसार ठीक तरह से उत्पन्न हुआ हो, जिसकी पूछ लम्बी हो, जिसका अग्र भाग उन्नत हो, जो धीर हो, जिसके सब अग प्रमाण और लक्षण से सुव्यवस्थित हो, उसे भद्र जाति का हाथी कहते हैं ।

२ जिसका चम शिथिल, स्थूल और विषम (रेखाओं से युक्त) हो, जिसका शिर और पूछ का मूलभाग स्थूल हो, जिसके नख, दन्त और केश स्थूल हो, जिसके नेत्र सिंह के समान पीत पिंगल वर्ण के हो, वह मन्द जाति का हाथी है ।

३ जिसका शरीर, ग्रीवा, चम, नख, दन्त और केश पतले हो, जो भीरु, त्रस्त और उद्विग्न स्वभाववाला हो, तथा दूसरो को त्रास देता हो, वह मृग जाति का हाथी है ।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ कृश और कृशशरीर—कोई पुरुष भावो से कृश होता है और शरीर मे भी कृश होता है।

२ कृश और दढशरीर—कोई पुरुष भावो से कृश होता है, किन्तु शरीर से दृढ होता है।

३ दढ और कृशशरीर—कोई पुरुष भावो से दृढ होता है, किन्तु शरीर से कृश होता है।

४ दृढ और दृढशरीर—कोई पुरुष भावो से भी दृढ होता है और शरीर से भी दृढ होता है (२५२)।

२५३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—किससरीरस्स णाममेगस्स णाणदसणे समुप्पज्जति णो दढसरीरस्स, दढसरीरस्स णाममेगस्स णाणदसणे समुप्पज्जति णो किससरीरस्स, एगस्स किससरीरस्सवि णाणदसणे समुप्पज्जति दढसरीरस्सवि, एगस्स णो किससरीरस्स णाणदसणे समुप्पज्जति णो दढसरीरस्स।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ किसी कृश शरीर वाले पुरुष के विशिष्ट ज्ञान दर्शन उत्पन्न होते हैं, किन्तु दृढ शरीर वाले के नही उत्पन्न होते।

२ किसी दृढ शरीर वाले पुरुष के विशिष्ट ज्ञान दर्शन उत्पन्न होते है किन्तु कृश शरीर वाले के नही उत्पन्न होते।

३ किसी कृश शरीर वाले पुरुष के भी विशिष्ट ज्ञान दर्शन उत्पन्न होते हैं और दृढ शरीर वाले के भी उत्पन्न होते है।

४ किसी कृश शरीर वाले पुरुष के भी विशिष्ट ज्ञान दर्शन उत्पन्न नही होते और दृढशरीर वाले के भी उत्पन्न नही होते (२५३)।

विवेचन—सामान्य ज्ञान और दर्शन तो सभी ससारी प्राणियो के जाति, इन्द्रिय आदि के तारतम्य से हीनाधिक पाये जाते हैं। किन्तु प्रकृत सूत्र मे विशिष्ट क्षयोपशम से होने वाले अवधि ज्ञान-दर्शनादि और तदावरण कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाले केवल-ज्ञान और केवल-दर्शन का अभिप्राय है। इनकी उत्पत्ति का सम्बन्ध कृश या दढशरीर से नही, किन्तु तदावरण कर्म के क्षय और क्षयोपशम से है, ऐसा अभिप्राय जानना चाहिए।

अतिशेष ज्ञान दर्शन सूत्र

२५४—चउहिं ठाणेहिं णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा अस्सि समयसि अतिसेसे णाणदसणे समुप्पज्जिउकामेवि ण समुप्पज्जेज्जा, त जहा—

१ अभिक्खण अभिक्खण इत्थिकह भत्तकह देसकह रायकह कहेत्ता भवति।

२ विवेगेण विउस्सग्गेण णो सम्ममप्पाण भावित्ता भवति।

३ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि णो धम्मजागरिय जागरइत्ता भवति।

४ फासुयस्स एसणिज्जस्स उछस्स सामुदाणियस्स णो सम्म गवेसित्ता भवति।

इच्चेतेहिं चउहिं ठाणेहिं णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा जाव [अंसि समयंसि अतिसेसे णाणदसणे समुप्पज्जिउकामेवि] णो समुप्पज्जेज्जा ।

चार कारणो से निग्रन्थ और निग्रन्थियो के इस समय मे अर्थात् तत्काल अतिशय-युक्त ज्ञान दर्शन उत्पन्न होते-होते भी उत्पन्न नही होते, जैसे—

१ जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी बार-बार स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा और राजकथा करता है।

२ जो निग्रन्थ या निग्रन्थी विवेक और व्युत्सर्ग के द्वारा आत्मा को सम्यक् प्रकार से भावित करने वाला नही होता ।

३ जो निग्रन्थ या निग्रन्थी पूर्वरात्रि और अपररात्रिकाल के समय धर्म-जागरण करके जागृत नही रहता ।

४ जो निर्ग्रन्थ या निग्रन्थी प्रासुक, एषणीय, उञ्छ और सामुदानिक भिक्षा की सम्यक प्रकार से गवेषणा नही करता (२५४) ।

इन चार कारणो से निर्ग्रन्थ और निग्रन्थियो को तत्काल अतिशय-युक्त ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते होते भी रुक जाते हैं—उत्पन्न नही होते ।

विवेचन—साधु और साध्वी को विशिष्ट, अतिशय-सम्पन्न ज्ञान और दर्शन को उत्पन्न करने के लिए चार कार्यो को करना अत्यावश्यक है। वे चार कार्य हैं—१ विकथा का नहीं करना। २ विवेक और कायोत्सर्गपूर्वक आत्मा की सम्यक् भावना करना । ३ रात के पहले और पिछले पहर मे जाग कर धर्मचिन्तन करना। ४ तथा, प्रासुक, एषणीय, उञ्छ और सामुदानिक गोचरी लेना । जो साधु या साध्वी उक्त कार्यों को नही करता, वह अतिशायी ज्ञान दर्शन को प्राप्त नहीं कर पाता । इस सन्दर्भ मे आये हुए विशिष्ट पदो का अर्थ इस प्रकार है—

१ विवेक—अशुद्ध भावो को त्यागकर शरीर और आत्मा की भिन्नता का विचार करना ।
२ व्युत्सर्ग—वस्त्र-पात्रादि और शरीर से ममत्व छोडकर कायोत्सर्ग करना ।
३ प्रासुक—असु नाम प्राण का है, जिस बीज, वनस्पति और जल आदि मे से प्राण निकल गये हो ऐसी अचित्त या निर्जीव वस्तु को प्रासुक कहते हैं ।
४ एषणीय—उद्गम आदि दोषो से रहित साधुओ के लिए कल्प्य आहार ।
५ उञ्छ—अनेक घरो से थोडा-थोडा लिया जाने वाला भक्त-पान ।
६ सामुदानिक—याचनावृत्ति से भिक्षा ग्रहण करना ।

२५५—चउहिं ठाणेहिं णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा [अंसि समयंसि ?] अतिसेसे णाणदसणे समुप्पज्जिउकामे समुप्पज्जेज्जा, त जहा—

१ इत्थिकह भत्तकह देसकह रायकह णो कहेत्ता भवति ।
२ विवेगेण विउस्सग्गेण सम्ममप्पाण भावेत्ता भवति ।
३ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि धम्मजागरिय जागरइत्ता भवति ।
४ फासुयस्स एसणिज्जस्स उछस्स सामुदाणियस्स सम्म गवेसित्ता भवति ।

इच्चेतेहिं चउहिं ठाणेहिं णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा जाव [श्रंसि समयंसि ?] अतिसेसे णाणदसणे समुप्पज्जिउकामे) समुप्पज्जेज्जा ।

चार कारणो से निग्र न्थ और निग्र न्थियो को अभीष्ट अतिशय-युक्त ज्ञान दशन तत्काल उत्पन्न होते हैं, जैसे—

१ जो स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा और राजकथा को नही कहता ।
२ जो विवेक और व्युत्सर्ग के द्वारा आत्मा की सम्यक् प्रकार से भावना करता है ।
३ जो पूर्वरात्रि और अपर रात्रि के समय धर्म ध्यान करता हुआ जागृत रहता है ।
४ जो प्रासुक, एषणीय, उञ्छ और सामुदानिक भिक्षा की सम्यक् प्रकारसे गवेषणा करता है (२५५) ।

इन चार कारणो से निर्ग्रन्थ और निग्र न्थिया के अभीष्ट, अतिशय-युक्त ज्ञान दर्शन तत्काल उत्पन्न हो जाते हैं ।

स्वाध्याय सूत्र

२५६—णो कप्पति णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झाय करेत्तए, त जहा—आसाढपाडिवए, इदमहपाडिवए, कत्तियपाडिवए, सुगिम्हगपाडिवए ।

निग्र न्थ और निग्र न्थिया को चार महाप्रतिपदाओ मे स्वध्याय करना नही कल्पता है, जसे—

१ आषाढ-प्रतिपदा—आषाढी पूर्णिमा के पश्चात् आने वाली सावन की प्रतिपदा ।
२ इन्द्रमह-प्रतिपदा—आसौज मास की पूर्णिमा के पश्चात् आने वाली कार्तिक की प्रतिपदा ।
३ कार्तिक प्रतिपदा—कार्तिकी पूर्णिमा के पश्चात् आने वाली मगसिर की प्रतिपदा ।
४ सुग्रीष्म-प्रतिपदा—चत्री पूर्णिमा के पश्चात् आने वाली वैशाख की प्रतिपदा (२५६) ।

विवेचन—किसी महोत्सव के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहा जाता है । भगवान् महावीर के समय इन्द्रमह, स्कन्दमह, यक्षमह और भूतमह ये चार महोत्सव जन-साधारण मे प्रचलित थे । निशीथभाष्य के अनुसार आषाढी पूर्णिमा को इन्द्रमह, आश्विनी पूर्णिमा को स्कन्द-मह, कार्तिकी पूर्णिमा को यक्षमह और चत्री पूर्णिमा को भूतमह मनाया जाता था । इन उत्सवा मे सम्मिलित होने वाले लोग मदिरा पान करके नाचते-कूदते हुए अपनी परम्परा के अनुसार इन्द्रादि की पूजनादि करते थे । उत्सव के दूसरे दिन प्रतिपदा को अपने मित्रादिको को बुलाते और मदिरा-पान पूवक भोजनादि करते कराते थे ।

इन महाप्रतिपदाओ के दिन स्वाध्याय-निषेध के अनेक कारणो मे से एक प्रधान कारण यह बताया गया है कि महोत्सव मे सम्मिलित लोग समीपवर्ती साधु और साध्वियो को स्वाध्याय करते अर्थात् जोर जोर से शास्त्र-वाचनादि करते हुए देखकर भडक सकते हैं और मदिरा-पान से उन्मत्त होने के कारण उपद्रव भी कर सकते हैं । अत यही श्रेष्ठ है कि उस दिन साधु साध्वी मौनपूर्वक ही अपने धर्म कार्यो को सम्पन्न करें । दूसरा कारण यह भी बताया गया है कि जहा समीप मे जन-साधारण का जोर-जोर से शोर-गुल हो रहा हो, वहा पर साधु-साध्वी एकाग्रतापूर्वक शास्त्र की शब्द या अर्थवाचना को ग्रहण भी नहीं कर सकते है ।

२५७—णो कप्पति णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा चउहिं सभाहिं सज्भाय करेत्तए, त जहा—पढमाए, पच्छिमाए, मज्भण्हे, अड्ढरत्ते ।

निग्रन्थ और निग्रन्थियो को चार सन्ध्याओ मे स्वाध्याय करना नही कल्पता है, जैसे—

१ प्रथम सन्ध्या—सूर्योदय का पूर्वकाल ।
२ पश्चिम सन्ध्या—सूर्यास्त के पीछे का काल ।
३ मध्याह्न सन्ध्या—दिन के मध्य समय का काल ।
४ अर्धरात्र सन्ध्या—आधी रात का समय (२५७) ।

विवेचन- दिन और रात के सन्धि काल को सन्ध्या कहते हैं । इसी प्रकार दिन और रात्रि के मध्य भाग को भी सन्ध्या कहा जाता है, क्योकि वह पूर्वभाग और पश्चिम भाग (पूर्वाह्न और अपराह्न) का सन्धिकाल है । इन सन्ध्याओ मे स्वाध्याय के निषेध का कारण यह बताया गया है कि ये चारो सन्ध्याए ध्यान का समय मानी गई हैं । स्वाध्याय से ध्यान का स्थान ऊचा हैं, अत ध्यान के समय मे ध्यान ही करना उचित है ।

२५८—कप्पइ णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा चउक्ककाल सज्भाय करेत्तए, त जहा—पुव्वण्हे, अवरण्हे पओसे, पच्चूसे ।

निग्रन्थ और निग्रन्थियो को चार कालो मे स्वाध्याय करना कल्पता है, जैसे—

१ पूर्वाह्न मे—दिन के प्रथम पहर मे ।
२ अपराह्न मे—दिन के अन्तिम पहर मे ।
३ प्रदोष मे—रात के प्रथम पहर मे ।
४ प्रत्यूष मे—रात के अन्तिम पहर मे (२५८) ।

लोकस्थिति सूत्र

२५९—चउव्विहा लोगट्ठिती पण्णत्ता, त जहा—आगासपतिट्ठिए वाते, वातपतिट्ठिए उदधी, उदधिपतिट्ठिया पुढवी, पुढविपतिट्ठिया तसा थावरा पाणा ।

लोकस्थिति चार प्रकार की कही गई है, जसे—

१ वायु (तनुवात-घनवात) आकाश पर प्रतिष्ठित है ।
२ घनोदधि वायु पर प्रतिष्ठित है ।
३ पृथिवी घनोदधि पर प्रतिष्ठित है ।
४ त्रस और स्थावर जीव पृथिवी पर प्रतिष्ठित हैं (२५९) ।

पुरुष-भेद सूत्र

२६०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—तहे णाममेगे, णोतहे णाममेगे, सोवत्थी णाममेगे, पधाणे णाममेगे ।

४ जो ऊपर कहे हुए तीनो जाति के हाथियो के कुछ-कुछ लक्षणों का, रूप से और शील (स्वभाव) से अनुकरण करता हो, अर्थात् जिसमे भद्र, मन्द और मृग जाति के हाथी की कुछ-कुछ समानता पाई जावे, वह सकीर्ण हाथी कहलाता है ।

५ भद्र हाथी शरद् ऋतु मे मदयुक्त होता है, मन्द हाथी वसन्त ऋतु मे मदयुक्त होता है— मद झरता है, मृग हाथी हेमन्त ऋतु मे मदयुक्त होता है और सकीर्ण हाथी सभी ऋतुओं मे मदयुक्त रहता है (२४०) ।

विकथा-सूत्र

२४१—चत्तारि विकहाओ पण्णत्ताओ, त जहा—इत्थिकहा, भत्तकहा, देसकहा, रायकहा ।

विकथा चार प्रकार की कही गई है । जैसे—

१ स्त्रीकथा, २ भक्तकथा, ३ देशकथा, ४ राजकथा (२४१) ।

२४२—इत्थिकहा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—इत्थीण जाइकहा, इत्थीण कुलकहा, इत्थीण रूवकहा, इत्थीण णेवत्थकहा ।

स्त्री कथा चार प्रकार की कही गई है । जैसे—

१ स्त्रियो की जाति की कथा, २ स्त्रियो के कुल की कथा ।
३ स्त्रियो के रूप की कथा, ४ स्त्रियो के नेपथ्य (वेष-भूषा) की कथा (२४२) ।

२४३—भत्तकहा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—भत्तस्स आवावकहा, भत्तस्स णिव्वावकहा, भत्तस्स आरभकहा, भत्तस्स णिट्ठाणकहा ।

भक्तकथा चार प्रकार की कही गई है, जैसे—

१ आवापकथा—रसोई की सामग्री आटा, दाल, नमक आदि की चर्चा करना ।
२ निर्वापकथा—पके या बिना पके अन्न या व्यजनादि की चर्चा करना ।
३ आरम्भकथा—रसोई बनाने के लिए आवश्यक सामान और धन आदि की चर्चा करना ।
४ निष्ठानकथा—रसोई मे लगे सामान और धनादि की चर्चा करना (२४३) ।

२४४—देसकहा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—देसविहिकहा, देसविकप्पकहा, देसच्छदकहा, देसणेवत्थकहा ।

देशकथा चार प्रकार की कही गई है, जैसे—

१ देशविधिकथा—विभिन्न देशो मे प्रचलित विधि-विधानो की चर्चा करना ।
२ देशविकल्पकथा—विभिन्न देशो के गढ, परिधि, प्राकार आदि की चर्चा करना ।
३ देशच्छदकथा—विभिन्न देशो के विवाहादि सम्बन्धी रीति-रिवाजो की चर्चा करना ।
४ देशनेपथ्यकथा—विभिन्न देशो के वेष-भूषादि की चर्चा करना (२४४) ।

२४५—रायकहा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—रण्णो अतियाणकहा, रण्णो णिज्जाणकहा, रण्णो बलवाहणकहा, रण्णो कोसकोट्ठागारकहा।

राजकथा चार प्रकार की कही गई है। जसे—

१ राज-अतियान कथा—राजा के नगर-प्रवेश के समारम्भ की चर्चा करना।
२ राज-निर्याण कथा—राजा के युद्ध आदि के लिए नगर से निकलने की चर्चा करना।
३ राज-बल-वाहनकथा—राजा के सैन्य, सैनिक और वाहनो की चर्चा करना।
४ राज-कोष कोष्ठागार कथा—राजा के खजाने और धान्य-भण्डार आदि की चर्चा करना (२४६)।

विवेचन—कथा का अर्थ है—कहना, वार्तालाप करना। जो कथा सयम से विरुद्ध हो, विपरीत हो वह विकथा कहलाती है, अर्थात जिससे ब्रह्मचय मे स्खलना उत्पन्न हो, स्वादलोलुपता जागृत हो, जिससे आरम्भ-समारम्भ को प्रोत्साहन मिले, जो एकनिष्ठ साधना मे बाधक हो, ऐसा समग्र वार्तालाप विकथा मे परिगणित है। उक्त भेद-प्रभेदो मे सब प्रकार की विकथाओ का समावेश हो जाता है।

कथा-सूत्र

२४६—चउव्विहा कहा पण्णत्ता, त जहा—अक्खेवणी, विक्खेवणी, सवेयणी, णिव्वेवणी।

धमकथा चार प्रकार की कही गई है। जसे—

१ आक्षेपणी कथा—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप आदि के प्रति आकर्षण करने वाली कथा करना।
२ विक्षेपणी कथा—पर-मत का कथन कर स्व-मत की स्थापना करने वाली कथा करना।
३ सवेजनी या सवेदनी कथा—ससार के दुःख, शरीर की अशुचिता आदि दिखाकर वैराग्य उत्पन्न करने वाली चर्चा करना।
४ निर्वेदनी कथा—कर्मों के फल बतलाकर ससार से विरक्ति उत्पन्न करने वाली चर्चा करना (२४६)।

२४७—अक्खेवणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—आयारअक्खेवणी, ववहारअक्खेवणी, पण्णत्तिअक्खेवणी, दिट्ठिवायअक्खेवणी।

आक्षेपणी कथा चार प्रकार की कही गई है, जसे—

१ आचाराक्षेपणी कथा—साधु और श्रावक के आचार की चर्चा कर उसके प्रति श्रोता को आकर्षित करना।
२ व्यवहाराक्षेपणी कथा—व्यवहार प्रायश्चित्त लेने और न लेने के गुण-दोषों की चर्चा करना।
३ प्रज्ञप्ति आक्षेपणी कथा—सशय ग्रस्त श्रोता के सशय को दूरकर उसे सबोधित करना।
४ दृष्टिवादाक्षेपणी कथा—विभिन्न नयो की दृष्टियो से श्रोता की योग्यतानुसार तत्त्व का निरूपण करना (२४७)।

२४८—विक्खेवणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—ससमय कहेइ, ससमय कहित्ता परसमय कहेइ, परसमय कहेत्ता ससमय ठावइत्ता भवति, सम्मावाय कहेइ, सम्मावाय कहेत्ता मिच्छावाय कहेइ, मिच्छावाय कहेत्ता सम्मावाय ठावइता भवति ।

विक्षेपणी कथा चार प्रकार की कही गई है, जैसे—

१ पहले स्व समय को कहना, पुन स्वसमय कहकर पर-समय को कहना ।
२ पहले पर-समय को कहना, पुन स्वसमय को कहकर उसकी स्थापना करना ।
३ घुणाक्षरन्याय से जिनमत के सदृश पर-समय-गत सम्यक् तत्त्वो का कथन कर पुन उनके मिथ्या तत्त्वो का कहना ।
अथवा—आस्तिकवाद का निरूपण कर नास्तिकवाद का निरूपण करना ।
४ पर-समय-गत मिथ्या तत्त्वो का कथन कर सम्यक् तत्त्व का निरूपण करना ।
अथवा नास्तिकवाद का निराकरण कर आस्तिकवाद की स्थापना करना (२४८) ।

२४९—सवेयणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—इहलोगसवेयणी, परलोगसवेयणी, आतसरीरसवेयणी, परसरीरसवेयणी ।

सवेजनी या सवेगनी कथा चार प्रकार की कही गई है, जैसे—

१ इहलोकसवेजनी कथा—इस लोक-सम्बन्धी असारता का निरूपण करना ।
२ परलोकसवेजनी कथा—परलोक-सम्बन्धी असारता का निरूपण करना ।
३ आत्मशरीरसवेजनी कथा—अपने शरीर की अशुचिता का निरूपण करना ।
४ परशरीरसवेदनी कथा—दूसरो के शरीरो की अशुचिता का निरूपण करना (२४९) ।

२५०—णिव्वेदणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—

१ इहलोगे दुच्चिण्णा कम्मा इहलोगे दुहफलविवागसजुत्ता भवति ।
२ इहलोगे दुच्चिण्णा कम्मा परलोगे दुहफलविवागसजुत्ता भवति ।
३ परलोगे दुच्चिण्णा कम्मा इहलोगे दुहफलविवागसजुत्ता भवति ।
४ परलोगे दुच्चिण्णा कम्मा परलोगे दुहफलविवागसजुत्ता भवति ।

१ इहलोगे सुचिण्णा कम्मा इहलोगे सुहफलविवागसजुत्ता भवति ।
२ इहलोगे सुचिण्णा कम्मा परलोगे सुहफलविवागसजुत्ता भवति ।
३ [परलोगे सुचिण्णा कम्मा इहलोगे सुहफलविवागसजुत्ता भवति ।
४ परलोगे सुचिण्णा कम्मा परलोगे सुहफलविवागसजुत्ता भवति] ।

निर्वेदनी कथा चार प्रकार की कही गई है, जैसे—

१ इस लोक के दुश्चीर्ण कर्म इस लोक मे दु खमय फल को देने वाले होते हैं ।
२ इस लोक के दुश्चीर्ण कर्म परलोक मे दु खमय फल को देने वाले होते हैं ।
३ परलोक के दुश्चीर्ण कर्म इस लोक मे दु खमय फल को देने वाले होते है ।

४ परलोक के दुश्चीर्ण कर्म परलोक मे ही दु खमय फल को देने वाले होते है, इस प्रकार की प्ररूपणा करना।

१ इस लोक के सुचीर्ण कर्म इसी लोक मे सुखमय फल को देने वाले होते हैं।
२ इस लोक के सुचीर्ण कर्म परलोक मे सुखमय फल को देने वाले होते है।
३ परलोक के सुचीर्ण कर्म इस लोक मे सुखमय फल को देने वाले होते हैं।
४ परलोक के सुचीर्ण कर्म परलोक मे सुखमय फल को देने वाले होते हैं (२५०)।

विवेचन—निर्वेदनी कथा का दो प्रकार से निरूपण किया गया है। प्रथम प्रकार मे पाप कर्मों के फल भोगने के चार प्रकार बताये गये हैं। उनका अभिप्राय इस प्रकार है—१ चोर आदि इसी जन्म मे चोरी आदि करके इसी जन्म मे कारागार आदि की सजा भोगते हैं। २ कितने ही शिकारी आदि इस जन्म मे पाप बन्धकर परलोक म नरकादि के दु ख भोगते हैं। ३ कितने ही प्राणी पूर्वभवोपार्जित पाप कर्मों का दुष्फल इस जन्म मे गर्भ काल से लेकर मरण तक दारिद्रय, व्याधि आदि के रूप मे भोगते है। ४ पूर्वभव मे उपार्जन किये गये अशुभ कर्मों से उत्पन्न काक, गिद्ध आदि जीव मास-भक्षणादि करके पाप कर्मों को बाधकर नरकादि मे दु ख भोगते है।

द्वितीय प्रकार मे पुण्य कर्म का फल भोगने के चार प्रकार बताये गये हैं। उनका खुलासा इस प्रकार है—१ तीर्थंकरो को दान देने वाला दाता इसी भव मे सातिशय पुण्य का उपार्जन कर स्वर्णवृष्टि आदि पच आश्चर्यों को प्राप्त कर पुण्य का फल भोगता है। २ साधु इस लोक म सयम की साधना के साथ-साथ पुण्य कर्म को बाधकर परभव मे स्वर्गादि के सुख भोगता है। ३ परभव मे उपार्जित पुण्य के फल को तीर्थंकरादि इस भव मे भोगते हैं। ४ पूर्व भव मे उपार्जित पुण्य कर्म के फल से देव भव मे स्थित तीर्थंकरादि अग्रिम भव मे तीर्थंकरादि रूप से उत्पन्न होकर भोगते हैं।

इस प्रकार से पाप और पुण्य के फल प्रकाशित करने वाली निर्वेदनी कथा के दो प्रकारो से निरूपण का आशय जानना चाहिए।

कृश-दृढ सूत्र

२५१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—किसे णाममेगे किसे, किसे णाममेगे दढे, दढे णाममेगे किसे, दढे णाममेगे दढे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ कृश और कृश—कोई पुरुष शरीर मे भी कृश होता है और मनोबल मे भी कृश होता है। अथवा पहले भी कृश और पश्चात भी कृश होता है।
२ कृश और दृढ—कोई पुरुष शरीर से कृश होता है, किन्तु मनोबल मे दृढ होता है।
३ दृढ और कृश—कोई पुरुष शरीर से दृढ होता है, किन्तु मनोबल मे कृश होता है।
४ दृढ और दृढ—कोई पुरुष शरीर मे दृढ होता है और मनोबल से भी दृढ होता है (२५१)।

२५२—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—किसे णाममेगे किससरीरे, किसे णाममेगे दढसरीरे, दढे णाममेगे किससरीरे, दढे णाममेगे दढसरीरे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ तथापुरुष—आदेश को 'तहत्ति' (स्वीकार) ऐसा कहकर काम करने वाला सेवक ।
२ नोतथापुरुष—आदेश को न मानकर स्वतन्त्रता से काम करने वाला पुरुष ।
३ सौवस्तिकपुरुष—स्वस्ति पाठक-मागध चारण आदि ।
४ प्रधानपुरुष—पुरुषो मे प्रधान, स्वामी, राजा आदि (२६०) ।

आत्म सूत्र

२६१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—आयतकरे णाममेगे णो परतकरे, परतकरे णाममेगे णो आयतकरे, एगे आयतकरेवि परतकरेवि एगे णो आयतकरे णो परतकरे ।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये है, जसे—

१ कोई पुरुष अपना अन्त करने वाला होता है, किन्तु दूसरे का अन्त नही करता ।
२ कोई पुरुष दूसरे का अन्त करने वाला होता है, किन्तु अपना अन्त नही करता ।
३ कोई पुरुष अपना भी अन्त करने वाला होता है और दूसरे का भी अन्त करता है ।
४ कोई पुरुष न अपना अन्त करने वाला होता है और न दूसरे का अन्त करता है (२६१) ।

विवेचन—सस्कृत टीकाकार ने 'अन्त' शब्द के चार अर्थ करके इस सूत्र की व्याख्या की है ।

प्रथम प्रकार इस प्रकार है—

१ कोई पुरुष अपने ससार का अन्त करता है अर्थात् कर्म-मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करता है । किन्तु दूसरे को उपदेशादि न देने से दूसरे के ससार का अन्त नही करता । जैसे प्रत्येकबुद्ध केवली आदि ।

२ दूसरे भग मे वे आचार्य आदि आते है, जो अचरमशरीरी होने से अपना अन्त तो नही कर पाते, किन्तु उपदेशादि के द्वारा दूसरे के ससार का अन्त करते हैं ।

३ तीसरे भग मे तीर्थकर और अन्य सामान्य केवली आते है जो अपने भी ससार का अन्त करते है और उपदेशादि के द्वारा दूसरो के भी ससार का अन्त करते है ।

४ चौथे भग मे दु षमाकाल के आचार्य आते हैं, जो न अपने ससार का ही अन्त कर पाते हैं और न दूसरे के ससार का ही अन्त कर पाते हैं ।

'अन्त' शब्द का मरण अर्थ भी होता है ।

दूसरे प्रकार के चारो भगो के उदाहरण इस प्रकार हैं—

१ जो अपना 'अन्त' अर्थात् मरण या घात करे, किन्तु दूसरे का घात न करे ।
२ पर-घातक, किन्तु आत्म-घातक नहीं ।
३ आत्म घातक भी और पर-घातक भी ।
४ न आत्म-घातक, और न पर-घातक । (२)

तीसरी व्याख्या सूत्र के 'आयतकर' का सस्कृत रूप 'आत्मतन्त्रकर' मान कर इस प्रकार की है—

१ आत्म-तन्त्रकर—अपने स्वाधीन होकर काय करने वाला पुरुष, किन्तु 'परतन्त्र' होकर काय नही करने वाला जैसे—तीर्थंकर।

२ परतन्त्रकर, किन्तु आत्मतन्त्रकर नही। जैसे—साधु।

३ आत्मतन्त्रकर भी और परतन्त्रकर भी जैसे—आचार्यादि।

४ न आत्मतन्त्रकर और न परतन्त्रकर। जसे—शठ पुरुष।

चौथी व्याख्या 'आयतकर' का सस्कृतरूप 'आत्मायत्त-कर' मान कर इस प्रकार की है—

१ आत्मायत्त-कर, परायत्त कर नही—धन आदि का अपने अधीन करने वाला, किन्तु दूसरे के अधीन नही करने वाला पुरुष।

२ अपने धनादि का पर के अधीन करने वाला, किन्तु अपने अधीन नही करने वाला पुरुष।

३ धनादि का अपने अधीन करने वाला और पर के अधीन भी करने वाला पुरुष।

४ धनादि को न स्वाधीन करने वाला और न पराधीन करने वाला पुरुष।

२६२—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—आयतमे णाममेगे णो परतमे, परतमे णाममेगे णो आयतमे, एगे आयतमेवि परतमेवि, एगे णो आयतमे णो परतमे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ आत्म-तम, किन्तु पर-तम नही—जो अपने आपको खिन्न करे, दूसरे को नही।

२ पर-तम, किन्तु आत्म तम नही—जो पर को खिन्न करे, किन्तु अपने को नही।

३ आत्म-तम भी और पर-तम भी—जो अपने को भी खिन्न करे और पर को भी खिन्न करे।

४ न आत्म-तम, न पर-तम—जो न अपने को खिन्न करे और न पर को खिन्न करे। (२६२)

विवेचन—सस्कृत टीकाकार ने उक्त अर्थ 'आत्मान तमयति खेदयतीति आत्मतम' निरुक्ति करके किया है। अथवा करके तम का अर्थ अज्ञान और क्रोध भी अर्थ किया है। तदनुसार चारो भगो का अर्थ इस प्रकार है—

१ जो अपने मे अज्ञान या क्रोध उत्पन्न करे, पर मे नही।

२ जो पर मे अज्ञान या क्रोध उत्पन्न करे, अपने मे नही।

३ जो अपने मे भी और पर मे भी अज्ञान या क्रोध उत्पन्न करे।

४ जो न अपने मे अज्ञान और क्रोध उत्पन्न करे, न दूसरे मे।

२६३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—आयदमे णाममेगे णो परदमे, परदमे णाममेगे णो आयदमे, एगे आयदमेवि, परदमेवि, एगे णो आयदमे णो परदमे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है जैसे—

१ आत्म दम, किन्तु पर-दम नही—जो अपना दमन करे, किन्तु दूसरे का दमन न करे।

२ पर-दम, किन्तु आत्म-दम नही—जो पर का दमन करे, किन्तु अपना दमन न करे।

३ आत्म-दम भी और पर-दम भी—जो अपना दमन भी करे और पर का दमन भी करे।

४ न आत्म-दम, न पर-दम—जो न अपना दमन करे और न पर का दमन करे (२६३)।

गर्हा सूत्र

२६४—चउव्विहा गरहा पण्णत्ता, त जहा—उवसपज्जामित्तेगा गरहा, वितिगिच्छामित्तेगा गरहा, जंकिंचिमिच्छामित्तेगा गरहा, एवपि पण्णत्तेगा गरहा।

गर्हा चार प्रकार की कही गई है। जसे—

१ उपसम्पदारूप गर्हा—अपने दोप को निवेदन करने के लिए गुरु के समीप जाऊ इस प्रकार का विचार करना, यह एक गर्हा है।

२ विचिकित्सारूप गर्हा—अपने निन्दनीय दोषा का निराकरण करू इस प्रकार का विचार करना, यह दूसरी गर्हा है।

३ मिच्छामिरूप गर्हा—जो कुछ मैंने असद् आचरण किया है, वह मेरा मिथ्या हो, इस प्रकार के विचार से प्रेरित हो ऐसा कहना यह तीसरी गर्हा है।

४ एवमपि प्रज्ञप्तिरूप गर्हा—ऐसा भी भगवान् ने कहा है कि अपने दोप की गर्हा (निन्दा) करने से भी किये गये दोप की शुद्धि होती है, ऐसा विचार करना, यह चौथी गर्हा है (२६४)।

अलमस्तु (निग्रह)-सूत्र

२६५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—अप्पणो णाममेगे अलमथू भवति णो परस्स, परस्स णाममेगे अलमथू भवति णो अप्पणो, एगे अप्पणोवि अलमथू भवति परस्सवि, एगे णो अप्पणो अलमथू भवति णो परस्स।

पुन पुरुप चार प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ आत्म अलमस्तु, पर अलमस्तु नहीं—कोई पुरुष अपना निग्रह करने मे समर्थ होता है, किन्तु दूसरे का निग्रह करने मे समर्थ नहीं होता।

२ पर अलमस्तु, आत्म अलमस्तु नहीं—कोई पुरुष दूसरे का निग्रह करने मे समर्थ होता है, अपना निग्रह करने मे समर्थ नहीं होता।

३ आत्म अलमस्तु भी और पर-अलमस्तु भी—कोई पुरुष अपना निग्रह करने मे भी समर्थ होता है और पर के निग्रह करने मे भी समर्थ होता है।

४ न आत्म-अलमस्तु न पर-अलमस्तु—कोई पुरुष न अपना निग्रह करने मे समर्थ होता है और न पर का निग्रह करने मे समर्थ होता है (२६५)।

विवेचन—'अलमस्तु' का दूसरा अर्थ है—निषेधक अर्थात निषेध करने वाला, कुकृत्य मे प्रवृत्ति को रोकने वाला। इसकी चौभंगी भी उक्त प्रकार से ही समझ लेनी चाहिए।

ऋजु वक्र-सूत्र

२६६—चत्तारि मग्गा पण्णत्ता, त जहा—उज्जू णाममेगे उज्जू, उज्जू णाममेगे वके, वके णाममेगे उज्जू, वके णाममेगे वके।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—उज्जू णाममेगे उज्जू, उज्जू णाममेगे वके, वके णाममेगे उज्जू, वके णाममेगे वके।

मार्ग चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ ऋजु और ऋजु—कोई मार्ग ऋजु (सरल) दिखता है और सरल ही होता है।
२ ऋजु और वक्र—कोई मार्ग ऋजु दिखता है, किन्तु वक्र होता है।
३ वक्र और ऋजु—कोई मार्ग वक्र दिखता है, किन्तु ऋजु होता है।
४ वक्र और वक्र—कोई मार्ग वक्र दिखता है और वक्र ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ ऋजु और ऋजु—कोई पुरुष सरल दिखता है और सरल ही होता है।
२ ऋजु और वक्र—कोई पुरुष सरल दिखता है किन्तु कुटिल होता है।
३ वक्र और ऋजु—कोई पुरुष कुटिल दिखता है, किन्तु सरल होता है।
४ वक्र और वक्र—कोई पुरुष कुटिल दिखता है और कुटिल होता है (२६६)।

विवेचन—ऋजु का अर्थ सरल या सीधा और वक्र का अर्थ कुटिल है। कोई मार्ग आदि मे सीधा और अन्त मे भी सीधा होता है, इस प्रकार से मार्ग के शेष भगो को भी जानना चाहिए। पुरुष पक्ष मे सस्कृत टीकाकार ने दो प्रकार मे अर्थ किया है। जैसे—

(१) प्रथम प्रकार—१ कोई पुरुष प्रारम्भ मे ऋजु प्रतीत होता है और अन्त मे भी ऋजु निकलता है, इस प्रकार से शेष भगो का भी अर्थ करना चाहिए।

(२) द्वितीय प्रकार—१ कोई पुरुष ऊपर से ऋजु दिखता है और भीतर से भी ऋजु होता है। इस प्रकार से शेष भगो का अर्थ करना चाहिए।

क्षेम अक्षेम सूत्र

२६७—चत्तारि मग्गा पण्णत्ता, त जहा—खेमे णाममेगे खेमे, खेमे णाममेगे अखेमे, अखेमे णाममेगे खेमे, अखेमे णाममेगे अखेमे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—खेमे णाममेगे खेमे, खेमे णाममेगे अखेमे, अखेमे णाममेगे खेमे अखेमे णाममेगे अखेमे।

पुन मार्ग चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ क्षेम और क्षेम—कोई मार्ग आदि मे भी क्षेम (निरुपद्रव) होता है और अन्त मे भी क्षेम होता है।

२ क्षेम और अक्षेम—कोई मार्ग आदि मे क्षेम, किन्तु अन्त में अक्षेम (उपद्रव वाला) होता है।

३ अक्षेम और क्षेम—कोई मार्ग आदि मे अक्षेम, किन्तु अन्त मे क्षेम होता है।

४ अक्षेम और अक्षेम—कोई मार्ग आदि मे भी अक्षेम और अन्त मे भी अक्षेम होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ क्षेम और क्षेम—कोई पुरुष आदि मे क्षेम क्रोधादि (उपद्रव मे रहित) होता है और अन्त मे भी क्षेम होता है।

२ क्षेम और अक्षेम—कोई पुरुष आदि मे क्षेम होता है, किन्तु अन्त मे अक्षेम होता है।

३ अक्षेम और क्षेम—कोई पुरुष आदि मे अक्षेम होता है किन्तु अन्त मे क्षेम होता है।

४ अक्षेम और अक्षेम—कोई पुरुष आदि मे भी अक्षेम होता है और अन्त मे भी अक्षेम होता है (२६७)।

उक्त चारो भगो की वाहर से क्षमाशील और अतरग में भी क्षमाशील, तथा वाहर से क्रोधी और अतरग से भी क्रोधी इत्यादि रूप मे व्याख्या समझनी चाहिए। इस व्याख्या के अनुसार प्रथम भग मे द्रव्य-भावलिंगी साधु दूसरे मे द्रव्यलिंगी साधु, तीसरे मे निह्नव और चौथे मे अन्यतीर्थिको का समावेश होता है। आगे भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

२६८—चत्तारि मग्गा पण्णत्ता, त जहा—खेमे णाममेगे खेमरूवे, खेमे णाममेगे अखेमरूवे अखेमे णाममेगे खेमरूवे, अखेमे णाममेगे अखेमरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—खेमे णाममेगे खेमरूवे, खेमे णाममेगे अखेमरूवे, अखेमे णाममेगे खेमरूवे, अखेमे णाममेगे अखेमरूवे।

पुन मार्ग चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ क्षेम और क्षेमरूप—कोई मार्ग क्षेम और क्षेम रूप (आकार) वाला होता है।

२ क्षेम और अक्षेमरूप—कोई मार्ग क्षेम, किन्तु अक्षेमरूप वाला होता है।

३ अक्षेम और क्षेमरूप—कोई मार्ग अक्षेम, किन्तु क्षेमरूप वाला होता है।

४ अक्षेम और अक्षेमरूप—कोई मार्ग अक्षेम और अक्षेमरूप वाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये है, जैसे—

१ क्षेम और क्षेमरूप—कोई पुरुष क्षेम और क्षेम रूपवाला होता है।

२ क्षेम और अक्षेमरूप—कोई पुरुष क्षेम, किन्तु अक्षेम रूपवाला होता है।

३ अक्षेम और क्षेमरूप—कोई पुरुष अक्षेम, किन्तु क्षेमरूप वाला होता है।

४ अक्षेम और अक्षेमरूप—कोई पुरुष अक्षेम और अक्षेमरूप वाला होता है (२६८)।

वाम दक्षिण-सूत्र

२६९—चत्तारि सवुक्का पण्णत्ता, त जहा—वामे णाममेगे वामावत्ते, वामे णाममेगे दाहिणावत्ते, दाहिणे णाममेगे वामावत्ते, दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—वामे णाममेगे वामावत्ते, वामे णाममेगे दाहिणावत्ते, दाहिणे णाममेगे वामावत्ते दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते।

शख चार प्रकार के कहे गये हैं, जसे—

१ वाम और वामावर्त—कोई शख वाम (वाम पार्श्व मे स्थित या प्रतिकूल गुण वाला) और वामावर्त (बाई ओर घुमाव वाला) होता है ।

२ वाम और दक्षिणावर्त—कोई शख वाम और दक्षिणावर्त (दाई ओर घुमाव वाला) होता है ।

३ दक्षिण और वामावर्त—कोई शख दक्षिण (दाहिने पार्श्व मे स्थित या अनुकूल गुण वाला) और वामावर्त होता है ।

४ दक्षिण और दक्षिणावर्त—कोई शख दक्षिण और दक्षिणावर्त होता है ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जसे—

१ वाम और वामावर्त—कोई पुरुष वाम (स्वभाव से प्रतिकूल) और वामावर्त (प्रवृत्ति से भी प्रतिकूल) होता है ।

२ वाम और दक्षिणावर्त—कोई पुरुष वाम, किन्तु दक्षिणावर्त (अनुकूल प्रवृत्ति वाला) होता है ।

३ दक्षिण और वामावर्त—कोई पुरुष दक्षिण (स्वभाव से अनुकूल), किन्तु वामावर्त होता है ।

४ दक्षिण और दक्षिणावर्त—कोई पुरुष दक्षिण (स्वभाव से भी अनुकूल) और दक्षिणावर्त (अनुकूल प्रवृत्ति वाला) होता है (२६९) ।

२७०—चत्तारि धूमसिहाओ पण्णत्ताओ, त जहा—वामा णाममेगा वामावत्ता, वामा णाममेगा दाहिणावत्ता, दाहिणा णाममेगा वामावत्ता, दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता ।

एवामेव चत्तारि इत्थीओ पण्णत्ताओ, त जहा—वामा णाममेगा वामावत्ता, वामा णाममेगा दाहिणावत्ता, दाहिणा णाममेगा वामावत्ता, दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता ।

धूम शिखाए चार प्रकार की कही गई हैं । जसे—

१ वामा और वामावर्ता—कोई धूम शिखा वाम और वामावर्त होती है ।
२ वामा और दक्षिणावर्ता—कोई धूम-शिखा वाम किन्तु दक्षिणावर्त होती है ।
३ दक्षिणा और वामावर्ता—कोई धूम शिखा दक्षिण, किन्तु वामावर्त होती है ।
४ दक्षिण और दक्षिणावर्ता—कोई धूम शिखा दक्षिण और दक्षिणावर्त होती है ।

इसी प्रकार चार प्रकार की स्त्रिया कही गई हैं, जसे—

१ वामा और वामावर्ता—कोई स्त्री वाम और वामावर्त होती है ।
२ वामा और दक्षिणावर्ता—कोई स्त्री वाम, किन्तु दक्षिणावर्त होती है ।
३ दक्षिणा और वामावर्ता—कोई स्त्री दक्षिण किन्तु वामावर्ती होती है ।
४ दक्षिणा और दक्षिणावर्ता—कोई स्त्री दक्षिण और दक्षिणावर्त होती है (२७०) ।

२७१—चत्तारि अग्गिसिहाओ पण्णत्ताओ, त जहा—वामा णाममेगा वामावत्ता, वामा णाममेगा दाहिणावत्ता, दाहिणा णाममेगा वामावत्ता, दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता ।

एवामेव चत्तारि इत्थीओ पण्णत्ताओ, त जहा—वामा णाममेगा वामावत्ता, वामा णाममेगा दाहिणावत्ता, दाहिणा णाममेगा वामावत्ता, दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।

अग्नि-शिखाए चार प्रकार की कही गई हैं। जैसे—

१ वामा और वामावर्ता—कोई अग्नि शिखा वाम और वामावत होती है।
२ वामा और दक्षिणावर्ता—कोई अग्नि-शिखा वाम, किन्तु दक्षिणावत होती है।
३ दक्षिणा और वामावर्ता—कोई अग्नि-शिखा दक्षिण, किन्तु वामावत होती है।
४ दक्षिणा और दक्षिणावर्ता—कोई अग्नि शिखा दक्षिण और दक्षिणावत होती है।

इसी प्रकार स्त्रिया भी चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ वामा और वामावर्ता—कोई स्त्री वाम और वामावत होती है।
२ वामा और दक्षिणावर्ता—कोई स्त्री वाम, किन्तु दक्षिणावत होती है।
३ दक्षिणा और वामावर्ता—कोई स्त्री दक्षिण, किन्तु वामावत होती है।
४ दक्षिणा और दक्षिणावर्ता—कोई स्त्री दक्षिण और दक्षिणावत होती है (२७१)।

२७२—चत्तारि वायमडलिया पण्णत्ता, त जहा—वामा णाममेगा वामावत्ता, वामा णाममेगा दाहिणावत्ता, दाहिणा णाममेगा वामावत्ता, दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।

एवामेव चत्तारि इत्थीओ पण्णत्ताओ त जहा—वामा णाममेगा वामावत्ता, वामा णाममेगा दाहिणावत्ता, दाहिणा णाममेगा वामावत्ता, दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।

वात-मण्डलिकाए चार प्रकार की कही गई हैं। जैसे—

१ वामा और वामावर्ता—कोई वात मण्डलिका वाम और वामावत होती है।
२ वामा और दक्षिणावर्ता—कोई वात-मण्डलिका वाम, किन्तु दक्षिणावत होती है।
३ दक्षिणा और वामावर्ता—कोई वात मण्डलिका दक्षिण, किन्तु वामावत होती है।
४ दक्षिणा और दक्षिणावर्ता—कोई वात-मण्डलिका दक्षिण और दक्षिणावत होती है।

इसी प्रकार स्त्रिया भी चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ वामा और वामावर्ता—कोई स्त्री वाम और वामावत होती है।
२ वामा और दक्षिणावर्ता—कोई स्त्री वाम, किन्तु दक्षिणावत होती है।
३ दक्षिणा और वामावर्ता—कोई स्त्री दक्षिण, किन्तु वामावर्त होती है।
४ दक्षिणा और दक्षिणावर्ता—कोई स्त्री दक्षिण और दक्षिणावत होती है (२७२)।

विवेचन—उपर्युक्त तीन सूत्रो मे क्रमश धूम-शिखा, अग्निशिखा और वात-मण्डलिका के चार-चार प्रकारो का, तथा उनके दार्ष्टान्त स्वरूप चार-चार प्रकार की स्त्रियो का निरूपण किया गया है। जैसे धूम शिखा मलिन स्वभाववाली होती है, उसी प्रकार मलिन स्वभाव की अपेक्षा स्त्रियो के चारो भागो को घटित करना चाहिए। इसी प्रकार अग्नि-शिखा के सताप-स्वभाव और वात-मण्डलिका के चपल-स्वभाव के समान स्त्रियो की सन्ताप-जनकता और चचलता स्वभावो की अपेक्षा चार-चार भगो को घटित करना चाहिए।

२७३—चत्तारि वणसडा पण्णत्ता, त जहा—वामे णाममेगे वामावत्ते, वामे णाममेगे दाहिणावत्ते, दाहिणे णाममेगे वामावत्ते, दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—वामे णाममेगे वामावत्ते, वामे णाममेगे दाहिणावत्ते, दाहिणे णाममेगे वामावत्ते, दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते ।

वनषण्ड (उद्यान) चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१ वाम और वामावत—कोई वनषण्ड वाम और वामावत होता है ।
२ वाम और दक्षिणावर्त—कोई वनषण्ड वाम, किन्तु दक्षिणावत होता है ।
३ दक्षिण और वामावत—कोई वनषण्ड दक्षिण और वामावर्त होता है ।
४ दक्षिण और दक्षिणावत—कोई वनषण्ड दक्षिण और दक्षिणावत होता है ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं । जसे—

१ वाम और वामावत—कोई पुरुष वाम और वामावर्त होता है ।
२ वाम और दक्षिणावत—कोई पुरुष वाम, किन्तु दक्षिणावत होता है ।
३ दक्षिण और वामावत—कोई पुरुष दक्षिण, किन्तु वामावत होता है ।
४ दक्षिण और दक्षिणावर्त—कोई पुरुष दक्षिण और दक्षिणावत होता है (२७३) ।

निग्र थ-निग्र न्थी सूत्र

२७४—चउहि ठाणेहि णिग्गथे णिग्गथि आलवमाणे वा सलवमाणे वा णातिक्कमति, त जहा—१ पथ पुच्छमाणे वा, २ पथ देसमाणे वा, ३ असण वा पाण वा खाइम वा साइम वा दलेमाणे वा ४ असण वा पाण वा खाइम वा साइम वा, दलावेमाणे वा ।

निग्र न्थ चार कारणो से निग्र न्थी के साथ आलाप सलाप करता हुआ निग्र न्थाचार का उल्लघन नही करता है । जैसे—

१ मार्ग पूछता हुआ । २ मार्ग बताता हुआ ।
३ अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य देता हुआ ।
४ गृहस्थो के घर से अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य दिलाता हुआ (२७४) ।

तमस्काय-सूत्र

२७५—तमुक्कायस्स ण चत्तारि णामधेज्जा पण्णत्ता, त जहा—तमे ति वा, तमुक्काए ति वा, अधकारेति वा, महधकारेति वा ।

तमस्काय के चार नाम कहे गये हैं । जसे—

१ तम, २ तमस्काय, ३ अधकार, ४ महाधकार (२७५) ।

२७६—तमुक्कायस्स ण चत्तारि णामधेज्जा पण्णत्ता, त जहा—लोगधगारेति वा, लोगतमसेति वा, देवधगारेति वा देवतमसेति वा ।

पुन तमस्काय के चार नाम कहे गये हैं, जैसे—

१ लोकान्धकार, २ लोकतम, ३ देवान्धकार, ४ देवतम (२७६)।

२७७—तमवकायस्स ण चत्तारि णामधेज्जा पण्णत्ता, त जहा—वातफलिहेति वा, वातफलिहखोभेति वा, देवरण्णेति वा, देववूहेति वा।

पुन तमस्काय के चार नाम कहे गये है, जैसे—

१ वातपरिघ, २ वातपरिघक्षोभ, ३ देवारण्य, ४ देवव्यूह (२७७)।

विवेचन—उक्त तीनो सूत्रो मे जिस तमस्काय का निरूपण किया गया है वह जलकाय के परिणमन-जनित अन्धकार का एक प्रचयविशेष है। इस जम्बूद्वीप मे आगे असख्यात द्वीप समुद्र जाकर अरुणवर द्वीप आता है। उसकी बाहरी वेदिका के अन्त मे अरुणवर समुद्र है। उसके भीतर ४२ हजार योजन जाने पर एक प्रदेश विस्तृत गोलाकार अन्धकार की एक श्रेणी ऊपर की ओर उठती है जो १७२१ योजन ऊची जाने के बाद तिर्यक विस्तृत होती हुई सौधम आदि चारो देवलोको को घेर कर पाचवे ब्रह्मलोक के रिष्ट विमान तक चली गई है। यत उसके पुद्गल कृष्णवर्ण के है, अत उसे तमस्काय कहा जाता है। प्रथम सूत्र म उसके चार नाम सामान्य अन्धकार के और दूसरे सूत्र मे उसके चार नाम महान्धकार के वाचक है। लोक मे इसके समान अत्यन्त काला कोई दूसरा अन्धकार नही है इसलिए उसे लोकतम और लोकान्धकार कहते है। देवो के शरीर की प्रभा भी वहा हतप्रभ हो जाती है, अत उसे देवतम और देवान्धकार कहते है। वात (पवन) भी उसमे प्रवेश नही पा सकता अत उसे वात परिघ और वातपरिघक्षोभ कहते हैं। देवो के लिए भी वह दुर्गम है, अत उसे देवारण्य और देवव्यूह कहा जाता है।

२७८—तमुक्काए ण चत्तारि कप्पे आवरित्ता चिट्ठति, त जहा—सोधम्मीसाण सणकुमार-माहिंद।

तमस्काय चार कल्पो को घेर करके अवस्थित है। जसे—

१ सौधमकल्प, २ ईशानकल्प, ३ सानत्कुमार कल्प ४ माहेन्द्रकल्प (२७८)।

दोष प्रतिसेवि सूत्र

२७९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सपागडपडिसेवी णाममेगे, पच्छण्णपडिसेवी णाममेगे, पडुप्पण्णणदी णाममेगे णिस्सरणणदी णाममेगे।

चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। जसे—

१ सम्प्रकटप्रतिसेवी—कोई पुरुष प्रकट मे (अगीतार्थ के समक्ष अथवा जान-बूझकर दर्प से) दोष सेवन करता है।

२ प्रच्छन्नप्रतिसेवी—कोई पुरुष छिपकर दोष सेवन करता है।

३ प्रत्युत्पन्नप्रतिनन्दी—कोई पुरुष यथालब्ध का सेवन करके आनन्दानुभव करता है।

४ निःसरणानन्दी—कोई पुरुष दूसरो के चले जाने पर (गच्छ आदि से अभ्यागत साधु या शिष्य आदि के निकल जाने पर) प्रसन्न होता है (२७९)।

जय पराजय सूत्र

२८०—चत्तारि सेणाओ पण्णत्ताओ, त जहा—जइत्ता णाममेगा णो पराजिणित्ता, पराजिणित्ता णाममेगा णो जइत्ता, एगा जइत्तावि पराजिणित्तावि, एगा णो जइत्ता णो पराजिणित्ता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जइत्ता णाममेगे णो पराजिणित्ता, पराजिणित्ता णाममेगे णो जइत्ता, एगे जइत्तावि पराजिणित्तावि, एगे णो जइत्ता, णो पराजिणित्ता।

सेनाए चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ जेत्री, न पराजेत्री—कोई सेना शत्रु-सेना को जीतती है, किन्तु शत्रु सेना से पराजित नही होती।
२ पराजेत्री, न जेत्री—कोई सेना शत्रु सेना से पराजित होती है, किन्तु उसे जीतती नहीं है।
३ जेत्री भी, पराजेत्री भी—कोई सेना कभी शत्रु-सेना को जीतती भी है और कभी उससे पराजित भी होती है।
४ न जेत्री, न पराजेत्री—कोई सेना न जीतती है और न पराजित ही होती है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१ जेता, न पराजेता—कोई साधु पुरुष परीषहादि को जीतता है, किन्तु उनसे पराजित नहीं होता। जैसे भगवान् महावीर।
२ पराजेता, न जेता—कोई साधु-पुरुष परीषहादि से पराजित होता है, किन्तु उनको जीत नहीं पाता। जैसे कण्डरीक।
३ जेता भी, पराजेता भी—कोई साधु पुरुष परीषहादि को कभी जीतता भी है और कभी उनसे पराजित भी होता है। जैसे—शैलक राजर्षि।
४ न जेता, न पराजेता—कोई साधु पुरुष परीषहादि को न जीतता ही है और न पराजित ही होता है। जैसे—अनुत्पन्न परीषहवाला साधु (२८०)।

२८१—चत्तारि सेणाओ पण्णत्ताओ, त जहा—जइत्ता णाममेगा जयइ, जइत्ता णाममेगा पराजिणति, पराजिणित्ता णाममेगा जयइ, पराजिणित्ता णाममेगा पराजिणति।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जइत्ता णाममेगे जयइ, जइत्ता णाममेगे पराजिणति, पराजिणित्ता णाममेगे जयइ, पराजिणित्ता णाममेगे पराजिणति।

पुन सेनाए चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ जित्वा, पुन जेत्री—कोई सेना एक बार शत्रु-सेना को जीतकर दुबारा युद्ध होने पर फिर भी जीतती है।
२ जित्वा, पुन पराजेत्री—कोई सेना एक बार शत्रु-सेना को जीतकर दुबारा युद्ध होने पर उससे पराजित होती है।
३ पराजित्य, पुन जेत्री—कोई सेना एक बार शत्रु-सेना से पराजित होकर दुबारा युद्ध होने पर उसे जीतती है।

४ पराजित्य पुन पराजेत्रो– कोई सेना एक वार पराजित होकर के पुन पराजित होती है ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये है । जसे—

१ जित्वा पुन जेता—कोई पुरुष कष्टो को जीत कर फिर भी जीतता है ।
२ जित्वा पुन पराजेता—कोई पुरुष कष्टो को पहले जीतकर पुन (बाद मे) हार जाता है ।
३ पराजित्य पुन जेता—कोई पुरुष पहले हार कर पुन जीतता हे ।
४ पराजित्य पुन पराजेता—कोई पुरुष पहले हार कर फिर भी हारता है (२८१) ।

माया सूत्र

२८२—चत्तारि केतणा पण्णत्ता, त जहा—वसीमूलकेतणए, मेढविसाणकेतणए, गोमुत्ति-केतणए, अवलेहणियकेतणए ।

एवामेव चउविधा माया पण्णत्ता, त जहा—वसीमूलकेतणासमाणा, जाव (मेढविसाणकेतणा-समाणा, गोमुत्तिकेतणासमाणा), अवलेहणियकेतणासमाणा ।

१ वसीमूलकेतणासमाण मायमणुपविट्ठे जीवे काल करेति, णेरइएसु उववज्जति ।
२ मेंढविसाणकेतणासमाण मायमणुपविट्ठे जीवे काल करेति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति ।
३ गोमुत्ति जाव (केतणासमाण मायमणुपविट्ठे जीवे) काल करेति, मणुस्सेसु उववज्जति ।
४ अवलेहणिय जाव (केतणासमाण मायमणुपविट्ठे जीवे काल करेति), देवेसु उववज्जति ।

केतन (वक्र पदार्थ) चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१ वशीमूल केतनक, वास की जड का वक्रपन ।
२ मेढ्रविषाणकेतनक—मेढे के सीग का वक्रपन ।
३ गोमूत्रिका केतनक—चलते बैल की मूत्र-धारा का वक्रपन ।
४ अवलेखनिका केतनक—छिलते हुए बांस की छाल का वक्रपन ।

इसी प्रकार माया भी चार प्रकार की कही गई है, जसे—

१ वशीमूल केतनसमाना—वास की जड के समान अत्यन्त कुटिल अनन्तानुबन्धी माया ।
२ मेढविषाण केतनसमाना—मेढे के सीग के समान कुटिल अप्रत्याख्यानावरण माया ।
३ गोमूत्रिका केतनसमाना—गोमूत्रिका केतनक के समान प्रत्याख्यानावरण माया ।
४ अवलेखनिका केतनकसमाना—बास के छिलके के समान सज्वलन माया ।

१ वशीमूल के समान माया मे प्रवर्तमान जीव काल (मरण) करता है तो नारकी जीवो मे उत्पन्न होता है ।
२ मेष-विषाण के समान माया मे प्रवर्तमान जीव काल करता है तो तिर्यग्योनि के जीवो मे उत्पन्न होता है ।
३ गोमूत्रिका के समान माया मे प्रवर्तमान जीव काल करता है तो मनुष्यो मे उत्पन्न होता है ।

दूसरा अभिमत यह है कि किसी भी जीव के एकत्र किये गये रक्त मे जो कीड़े पैदा हो जाते हे उन्हे मसलकर कचरा फेंक दिया जाता है और कुछ दूसरी वस्तुए मिलाकर जो रग बनाया जाता है, उसे कृमिराग कहते है।

किन्तु दिगम्बर शास्त्रो मे 'किमिराय' का अर्थ 'किरमिजी रग' किया गया है। उससे रगे गये वस्त्र का रग छूटता नही है।

उपर्युक्त दि० ग्रन्थो मे अप्रत्याख्यानावरण लोभ का उदाहरण चक्रमल (गाडी के चाक का मल) जैसे दिया गया है और प्रत्याख्यानावरण लोभ का दृष्टान्त तनु-मल (शरीर का मैल) दिया गया है।[1]

ससार सूत्र

२८५—चउव्विहे ससारे पण्णत्ते, त जहा—णेरइयससारे, जाव (तिरिक्खजोणियससारे, मणुस्सससारे) देवससारे।

ससार चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ नैरयिकससार, २ तिर्यग्योनिकससार, ३ मनुष्यससार और, ४ देवससार (२८५)।

२८६—चउव्विहे आउए पण्णत्ते, त जहा—णेरइयआउए, जाव (तिरिक्खजोणियआउए, मणुस्साउए), देवाउए।

आयुष्य चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ नैरयिक-आयुष्य, २ तिर्यग्योनिक-आयुष्य, ३ मनुष्य आयुष्य, और ४ देव आयुष्य। (२८६)।

२८७—चउव्विहे भवे पण्णत्ते, त जहा—णेरइयभवे, जाव (तिरिक्खजोणियभवे, मणुस्सभवे) देवभवे।

भव चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ नैरयिकभव, २ तिर्यग्योनिकभव, ३ मनुष्यभव, और ४ देवभव (२८७)।

आहार-सूत्र

२८८—चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, त जहा—असणे, पाणे, खाइमे, साइमे।

आहार चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१ अशन—अन्न आदि। २ पान—काजी, दुग्ध, द्राक्ष आदि।
३ खादिम—फल, मेवा आदि। ४ स्वादिम—ताम्बूल, लवग, इलायची आदि (२८८)।

१ किमिराय चक्कतणुमलहलिद्दराएण सरिसओ लाहो।
णारय तिरिय णरामर गईसुप्पायओ कमसो॥ (गो० जीवकाण्ड गा० २८६)

२८९—चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, त जहा—उवक्खरसपण्णे, उवक्खडसपण्णे, सभावसपण्णे, रिजुसियसपण्णे।

पुन आहार चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१ उपस्कार-सम्पन्न—घी तेल आदि के बघार से युक्त मसाले डालकर तैयार किया आहार।
२ उपस्कृत-सम्पन्न—पकाया हुआ भात आदि।
३ स्वभाव-सम्पन्न—स्वभाव से पके फल आदि।
४ पर्यु षित-सम्पन्न—रात-वासी रखने से तैयार हुआ आहार, जैसे—काजी-रस मे रक्खा आम्रफल (२८९)।

र्मावस्था-सूत्र

२९०—चउव्विहे बधे पण्णत्ते, त जहा—पगतिबधे, ठितिबधे, अणुभावबधे, पदेसबधे।

बन्ध चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१ प्रकृतिबन्ध—बन्धनेवाले कर्म-पुद्गलो मे ज्ञानादि के रोकने का स्वभाव उत्पन्न होना।
२ स्थितिबन्ध—बधनेवाले कर्म-पुद्गलो की काल-मर्यादा का नियत होना।
३ अनुभावबन्ध—बधनेवाले कर्म पुद्गलो मे फल देने की तीव्र मन्द आदि शक्ति का उत्पन्न होना।
४ प्रदेशबन्ध—बधनेवाले कर्म पुद्गलो के प्रदेशो का समूह (२९०)।

२९१—चउव्विहे उवक्कमे पण्णत्ते, त जहा—बधणोवक्कमे, उदीरणोवक्कमे, उवसमणोवक्कमे, विप्परिणामणोवक्कमे।

उपक्रम चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ बन्धनोपक्रम—कर्म बन्धन मे कारणभूत जीव के वीर्य विशेष का प्रयत्न।
२ उदीरणोपक्रम—कर्मों की उदीरणा मे कारणभूत जीव के वीर्य विशेष का प्रयत्न।
३ उपशामनोपक्रम—कर्मों के उपशमन मे कारणभूत जीव के वीर्य विशेष का प्रयत्न।
४ विपरिणामनोपक्रम—कर्मों की एक अवस्था से दूसरी अवस्था रूप परिणमन कराने मे कारणभूत जीव के वीर्य विशेष का प्रयत्न (२९१)।

२९२—बधणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—पगतिबधणोवक्कमे, ठितिबधणोवक्कमे अणुभावबधणोवक्कमे पदेसबधणोवक्कमे।

बन्धनोपक्रम चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ प्रकृतिबन्धनोपक्रम, २ स्थितिबन्धनोपक्रम, ३ अनुभावबन्धनोपक्रम और ४ प्रदेशबन्धनोपक्रम।

२९३—उदीरणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—पगतिउदीरणोवक्कमे, ठितिउदीरणोवक्कमे, अणुभावउदीरणोवक्कमे, पदेसउदीरणोवक्कमे।

उदीरणोपक्रम चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ प्रकृति-उदीरणोपक्रम, २ स्थिति-उदीरणोपक्रम,
३ अनुभाव-उदीरणोपक्रम, ४ प्रदेश-उदीरणोपक्रम (२६३)।

२६४—उवसामणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—पगतिउवसामणोवक्कमे, ठितिउवसामणोवक्कमे, अणुभावउवसामणोवक्कमे, पदेसउवसामणोवक्कमे।

उपशामनोपक्रम चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ प्रकृति-उपशामनोपक्रम, २ स्थिति-उपशामनोपक्रम,
३ अनुभाव-उपशामनोपक्रम, ४ प्रदेश उपशामनोपक्रम। (२६४)

२६५—विप्परिणामणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—पगतिविप्परिणामणोवक्कमे, ठितिविप्परिणामणोवक्कमे, अणुभावविप्परिणामणोवक्कमे, पएसविप्परिणामणोवक्कमे।

विपरिणामनोपक्रम चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ प्रकृति विपरिणामनोपक्रम, २ स्थिति-विपरिणामनोपक्रम।
३ अनुभाव विपरिणामनोपक्रम, ४ प्रदेश- विपरिणामनोपक्रम (२६५)।

२६६—चउव्विहे अप्पाबहुए पण्णत्ते, तं जहा—पगतिअप्पाबहुए, ठितिअप्पाबहुए, अणुभावअप्पाबहुए, पएसअप्पाबहुए।

अल्पबहुत्व चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ प्रकृति अल्पबहुत्व, २ स्थिति अल्पबहुत्व,
३ अनुभाव-अल्पबहुत्व ४ प्रदेश-अल्पबहुत्व (२६६)।

२६७—चउव्विहे संकमे पण्णत्ते, तं जहा—पगतिसंकमे, ठितिसंकमे, अणुभावसंकमे, पएससंकमे।

संक्रम चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ प्रकृति संक्रम, २ स्थिति-संक्रम
३ अनुभाव-संक्रम, ४ प्रदेश-संक्रम। (२६७)

२६८—चउव्विहे णिधत्ते पण्णत्ते, तं जहा—पगतिणिधत्ते, ठितिणिधत्ते, अणुभावणिधत्ते, पएसणिधत्ते।

निधत्त चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ प्रकृति निधत्त २ स्थिति-निधत्त,
३ अनुभाव निधत्त, ४ प्रदेश-निधत्त। (२६८)

२६६—चउव्विहे णिकायिते पण्णत्ते, त जहा—पगतिणिकायिते, ठितिणिकायिते, अणुभावणिकायिते, पएसणिकायिते ।

निकाचित चार प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ प्रकृति निकाचित २ स्थिति-निकाचित,
३ अनुभाव निकाचित, ४ प्रदेश-निकाचित । (२६६)

विवेचन—सूत्र २९० से लेकर २६६ तक के १० सूत्रो मे कर्मो की अनेक अवस्थाओ का निरूपण किया गया है । कर्मशास्त्र मे कर्मो की १० अवस्थाए बतलाई गई हैं—१, बध, २ उदय ३ सत्त्व, ४ उदीरणा, ५ उद्वर्तन या उत्कर्षण, ६ अपवर्तन या अपकर्षण, ७ सक्रम, ८ उपशम, ९ निधत्ति और १० निकाचित । इसमे से उदय और सत्त्व को छोडकर शेष आठ की 'करण' सज्ञा है । क्योकि उनके सम्पादन के लिए जीव को अपनी योग-सज्ञक वीर्य-शक्ति का विशेष उपक्रम करना पडता है । उक्त १० अवस्थाओ का स्वरूप इस प्रकार है—

१ बध—जीव और कर्म पुद्‌गलो के गाढ सयोग को बध कहते हैं ।
२ उदय—बधे हुए कर्म-पुद्‌गलो के यथासमय फल देने को उदय कहते हैं ।
३ सत्त्व—बध कर्मो का जीव मे उदय आने तक अवस्थित रहना सत्त्व कहलाता है ।
४ उदीरणा—बधे कर्मो का उदयकाल आने के पूर्व ही अपवर्तन करके उदय मे लाने को उदीरणा कहते है ।
५ उद्वर्तन—बधे कर्मो की स्थिति और अनुभाव शक्ति के बढाने को उद्वर्तन कहते हैं ।
६ अपवर्तन—बधे कर्मों की स्थिति और अनुभाग शक्ति के घटाने को अपवर्तन कहते हैं ।
७ सक्रम—एक कर्म-प्रकृति के सजातीय अन्य प्रकृति मे परिणमन होने को सक्रम कहते हैं ।
८ उपशम—बधे हुए कर्म को उदय—उदीरणा के अयोग्य करना उपशम कहलाता है ।
९ निधत्ति—बधे हुए जिस कर्म को उदय मे भी न लाया जा सके और उद्वर्तन, अपवर्तन एव सक्रम भी न किया जा सके, ऐसी अवस्था विशेषको निधत्ति कहते हैं ।
१० निकाचित—बधे हुए जिस कर्मका उपशम उदीरणा, उद्वर्तना, अपवर्तना और सक्रम आदि कुछ भी न किया जा सके, ऐसी अवस्था विशेष को निकाचित कहते है ।

उक्त दशो ही प्रकृति, स्थिति, अनुभाव और प्रदेश के भेद से चार-चार प्रकार के होते हैं । उनमें से बध, उदीरणा, उपशम, सक्रम, निधत्त और निकाचित के चार-चार भेदो का वर्णन सूत्रो मे किया ही गया है । शेष उद्वर्तना और अपवर्तना का समावेश विपरिणामनोपक्रमण मे किया गया है ।

सूत्र २९६ मे अल्प-बहुत्व का निरूपण किया गया है । कर्मों की प्रकृति, स्थिति, अनुभाव और प्रदेशो की हीनाधिकता को अल्प-बहुत्व कहते हैं ।

सख्या सूत्र

३००—चत्तारि एक्का पण्णत्ता, त जहा—दविएक्कए, माउएक्कए, पज्जवेक्कए सगहेक्कए ।

उदीरणोपक्रम चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ प्रकृति-उदीरणोपक्रम, २ स्थिति-उदीरणोपक्रम,
३ अनुभाव-उदीरणोपक्रम, ४ प्रदेश-उदीरणोपक्रम (२६३)।

२६४—उवसामणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—पगतिउवसामणोवक्कमे, ठितिउवसामणोवक्कमे, अणुभावउवसामणोवक्कमे, पदेसउवसामणोवक्कमे।

उपशामनोपक्रम चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ प्रकृति-उपशामनोपक्रम, २ स्थिति-उपशामनोपक्रम,
३ अनुभाव-उपशामनोपक्रम, ४ प्रदेश-उपशामनोमपक्रम। (२६४)

२६५—विप्परिणामणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—पगतिविप्परिणामणोवक्कमे, ठितिविप्परिणामणोवक्कमे, अणुभावविप्परिणामणोवक्कमे, पएसविप्परिणामणोवक्कमे।

विपरिणामनोपक्रम चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ प्रकृति-विपरिणामनोपक्रम, २ स्थिति-विपरिणापनोक्रम।
३ अनुभाव-विपरिणामनोपक्रम, ४ प्रदेश-विपरिणामनोपक्रम (२६५)।

२६६—चउव्विहे अप्पाबहुए पण्णत्ते, तं जहा—पगतिअप्पाबहुए, ठितिअप्पाबहुए, अणुभावअप्पाबहुए, पएसअप्पाबहुए।

अल्पबहुत्व चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ प्रकृति-अल्पबहुत्व, २ स्थिति-अल्पबहुत्व,
३ अनुभाव-अल्पबहुत्व ४ प्रदेश-अल्पबहुत्व (२६६)।

२६७—चउव्विहे संकमे पण्णत्ते, तं जहा—पगतिसंकमे, ठितिसंकमे, अणुभावसंकमे, पएससंकमे।

संक्रम चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ प्रकृति संक्रम, २ स्थिति संक्रम
३ अनुभाव संक्रम, ४ प्रदेश संक्रम। (२६७)

२६८—चउव्विहे णिधत्ते पण्णत्ते, तं जहा—पगतिणिधत्ते, ठितिणिधत्ते, अणुभावणिधत्ते, पएसणिधत्ते।

निधत्त चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ प्रकृति-निधत्त २ स्थिति-निधत्त,
३ अनुभाव-निधत्त, ४ प्रदेश-निधत्त। (२६८)

२६६—चउव्विहे णिकायिते पण्णत्ते, त जहा—पगतिणिकायिते, ठितिणिकायिते, अणुभावणिकायिते, पएसणिकायिते ।

निकाचित चार प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ प्रकृति निकाचित २ स्थिति-निकाचित,
३ अनुभाव-निकाचित, ४ प्रदेश-निकाचित । (२६६)

विवेचन—सूत्र २९० से लेकर २६६ तक के १० सूत्रो मे कर्मा की अनेक अवस्थाओ का निरूपण किया गया है । कमशास्त्र मे कर्मो की १० अवस्थाए बतलाई गई है—१, बध, २ उदय ३ सत्त्व, ४ उदीरणा, ५ उद्वतन या उत्कपण, ६ अपवतन या अपकपण, ७ सक्रम, ८ उपशम, ९ निधत्ति और १० निकाचित । इनमे से उदय और सत्त्व को छोडकर शेष आठ की 'करण' सज्ञा है । क्योकि उनके सम्पादन के लिए जीव को अपनी योग-सज्ञक वीय शक्ति का विशेष उपक्रम करना पडता है । उक्त १० अवस्थाओ का स्वरूप इस प्रकार है—

१ बध—जीव और कम पुद्गलो के गाढ सयोग को बध कहते हैं ।
२ उदय—बधे हुए कम-पुद्गलो के यथासमय फल दन को उदय कहते हैं ।
३ सत्त्व—बधे कर्मो का जीव मे उदय आने तक अवस्थित रहना सत्त्व कहलाता है ।
४ उदीरणा—बधे कर्मो का उदयकाल आने के पूव ही अपवतन करके उदय मे लाने को उदीरणा कहते ह ।
५ उद्वतन—बधे कर्मो की स्थिति और अनुभाव-शक्ति के बढाने को उद्वतन कहते हैं ।
६ अपवतन—बधे कर्मो की स्थिति और अनुभाग-शक्ति के घटाने का अपवतन कहते हैं ।
७ सक्रम—एक कम-प्रकृति के सजातीय अन्य प्रकृति मे परिणमन होने को सक्रम कहते हैं ।
८ उपशम—बधे हुए कम को उदय—उदीरणा के अयोग्य करना उपशम कहलाता है ।
९ निधत्ति—बधे हुए जिस कम को उदय मे भी न लाया जा सके और उद्वर्तन, अपवतन एव सक्रम भी न किया जा सके, ऐसी अवस्था-विशेषको निधत्ति कहते ह ।
१० निकाचित—बधे हुए जिस कमका उपशम उदीरणा, उद्वतना, अपवतना और सक्रम आदि कुछ भी न किया जा सके, ऐसी अवस्था विशेष को निकाचित कहते हैं ।

उक्त दशा हो प्रकृति, स्थिति, अनुभाव और प्रदेश के भेद से चार-चार प्रकार के होते हैं । उनमे से बध, उदीरणा, उपशम, सक्रम, निधत्त और निकाचित के चार-चार भेदो का वणन सूत्रो मे किया ही गया है । शेष उद्वतना और अपवतना का समावेश विपरिणामनोपक्रमण मे किया गया है ।

सूत्र २६६ मे अल्प बहुत्व का निरूपण किया गया है । कर्मो की प्रकृति, स्थिति, अनुभाव और प्रदेशो की हीनाधिकता को अल्प-बहुत्व कहते हैं ।

सख्या सूत्र

३००—चत्तारि एक्का पण्णत्ता, त जहा—दविएक्कए, माउएक्कए, पज्जवेक्कए सगहेक्कए ।

'एक' सख्या चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ द्रव्यैक—द्रव्यत्व गुण की अपेक्षा सभी द्रव्य एक है।
२ मातृकैक—'उप्पन्नेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा' अर्थात् प्रत्येक पदार्थ नवीन पर्याय की अपेक्षा उत्पन्न होता है, पूर्वपर्याय की अपेक्षा नष्ट होता है और द्रव्य की अपेक्षा ध्रुव रहता है, यह मातृका पद कहलाता है। यह सभी नयो का बीजभूत मातृका पद एक है।
३ पर्यायैक—पर्यायत्व सामान्य की अपेक्षा सब पर्याय एक है।
४ सग्रहैक—समुदाय सामान्य की अपेक्षा बहुत से भी पदार्थों का सग्रह एक है।

३०१—चत्तारि कती पण्णत्ता, त जहा—दवियकती, माउयकती, पज्जवकती, सगहकती।

सख्या-वाचक 'कति' चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ द्रव्यकति—द्रव्य विशेषो की अपेक्षा द्रव्य अनेक है।
२ मातृकाकति—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य की अपेक्षा मातृका अनेक हैं।
३ पर्यायकति—विभिन्न पर्यायो की अपेक्षा पर्याय अनेक है।
४ सग्रहकति—अवान्तर जातियो की अपेक्षा सग्रह अनेक हैं (३०१)।

३०२—चत्तारि सव्वा पण्णत्ता, त जहा—णामसव्वए, ठवणसव्वए, आएससव्वए, णिरवसेससव्वए।

'सर्व' चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ नामसर्व—नाम निक्षेप की अपेक्षा जिसका 'सर्व' यह नाम रखा जाय, वह नामसर्व है।
२ स्थापनासर्व—स्थापना निक्षेप की अपेक्षा जिस व्यक्ति मे 'सर्व' का आरोप किया जाय, वह स्थापनासर्व है।
३ आदेशसर्व—अधिक की मुख्यता मे और अल्प की गौणता से कहा जाने वाला आपेक्षिक सर्व 'आदेश सर्व' कहलाता है। जैसे—बहुभाग पुरुषो के चले जाने पर और कुछ के शेष रहने पर भी कह दिया जाता है कि 'सर्व ग्राम गया'।
४ निरवशेषसर्व—सम्पूर्ण व्यक्तियो के आश्रय मे कहा जाने वाला 'सर्व' निरवशेष सर्व कहलाता है। जैसे—सर्व देव अनिमिष (नेत्र-टिमिकार-रहित) होते हैं, क्योकि एक भी देव नेत्र टिमिकार सहित नही होता (३०२)।

कूट-सूत्र

३०३—माणुसुत्तरस्स ण पव्वयस्स चउदिसिं चत्तारि कूडा पण्णत्ता, त जहा—रयणे रतणुच्चए, सव्वरयणे, रतणसचए।

मानुषोत्तर पर्वत की चारो दिशाओ मे चार कूट कहे गये है। जैसे—

१ रत्नकूट—यह दक्षिण-पूर्व आग्नेय दिशा मे अवस्थित है।
२ रत्नोच्चयकूट—यह दक्षिण पश्चिम नैऋत्य दिशा मे अवस्थित है।
३ सर्वरत्नकूट—यह पूर्व-उत्तर ईशान दिशा मे अवस्थित है।
४ रत्नसचयकूट—यह पश्चिम-उत्तर वायव्य दिशा मे अवस्थित है (३०३)।

कालचक्र सूत्र

३०४—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवतेसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो हुत्था।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में भरत और ऐरवत क्षेत्रों में अतीत उत्सर्पिणी के 'सुषम सुषमा' नामक आरे का काल-प्रमाण चार कोडाकोडी सागरोपम था (३०४)।

३०५—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवतेसु वासेसु इमीसे ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो पण्णत्तो।

जम्बूद्वीपक नामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्रों में इस अवसर्पिणी के 'सुषम सुषमा' नामक आरे का काल प्रमाण चार कोडाकोडी सागरोपम था (३०५)।

३०६—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवतेसु वासेसु आगमेस्साए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो भविस्सइ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्रों में आगामी उत्सर्पिणी के 'सुषम-सुषमा' नामक आरे का काल-प्रमाण चार कोडाकोडी सागरोपम होगा (३०६)।

३०७—जंबुद्दीवे दीवे देवकुरुउत्तरकुरुवज्जाओ चत्तारि अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—हेमवते, हेरण्णवते, हरिवरिसे, रम्मगवरिसे।

चत्तारि वट्टवेयड्ढपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—सद्दावाती, वियडावाती, गंधावाती, मालवंतपरियाते।

तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—साती, पभासे, अरुणे, पउमे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में देवकुरु और उत्तरकुरु को छोडकर चार अकर्मभूमियां कही गई हैं। जैसे—१ हैमवत, २ हैरण्यवत, ३ हरिवर्ष, ४ रम्यक्वर्ष।

उनमें चार वृत्तवैताढ्य पर्वत कहे गये हैं। जैसे—

१ शब्दापाती, २ विकटापाती, ३ गन्धापाती, ४ माल्यवत्पर्याय।

उन पर पल्योपम की स्थिति वाले यावत् महर्द्धिक चार देव रहते हैं। जैसे—

१ स्वाति, २ प्रभास, ३ अरुण, ४ पद्म (३०७)।

महाविदेह-सूत्र

३०८—जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—पुव्वविदेहे, अवरविदेहे, देवकुरा, उत्तरकुरा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में महाविदेह क्षेत्र चार प्रकार का अर्थात् चार भागों में विभक्त कहा गया है। जैसे—

१ पूर्वविदेह, २ अपरविदेह, ३ देवकुरु, ४ उत्तरकुरु (३०८)।

पवत सूत्र

३०९—सव्वे वि ण णिसढणीलवतवासहरपव्वता चत्तारि जोयणसयाइ उड्ढ उच्चत्तेण, चत्तारि गाउसयाइ उव्वेहेण पण्णत्ता।

सभी निषध और नीलवत वर्षधर पवत ऊपर ऊचाई से चार सौ योजन और भूमि गत गहराई से चार सौ कोश कहे गये है (३०९)।

३१०—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणदीए उत्तरकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, त जहा—चित्तकूडे, पम्हकूडे, णलिणकूडे, एगसेले।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पवत के पूव भाग मे सीता महानदी के उत्तरी किनारे पर चार वक्षस्कार पवत कहे गये है। जैसे—

१ चित्रकूट, २ पद्मकूट, ३ नलिनकूट, ४ एक शैलकूट (३१०)।

३११—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणदीए दाहिणकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, त जहा—तिकूडे, वेसमणकूडे, अजणे, मातजणे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पवत के पूव भाग मे सीता महानदी के दक्षिणी किनारे पर चार वक्षस्कार पवत कहे गये है। जैसे -

१ त्रिकूट, २ वैश्रवणकूट, ३ अजनकूट, ४ माताजनकूट (३११)।

३१२—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीओदाए महाणदीए दाहिणकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, त जहा—अकावती, पम्हावती, आसीविसे, सुहावहे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के पश्चिम भाग मे सीतोदा महानदी के दक्षिणी किनारे पर चार वक्षस्कार पवत कहे गये है। जैसे—

१ अकावती, २ पक्ष्मावती, ३ आशीविष, ४ सुखावह (३१२)।

३१३—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीओदाए महाणदीए उत्तरकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, त जहा—चदपव्वते, सूरपव्वते, देवपव्वते णागपव्वते।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पवत के पश्चिम भाग मे सीतोदा महानदी के उत्तरी किनारे पर चार वक्षस्कार पवत कहे गये है। जैसे—

१ चन्द्रपवत, २, सूयपवत, ३ देवपवत, ४ नागपर्वत (३१३)।

३१४—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स चउसु विदिसासु चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, त जहा—सोमणसे, विज्जुप्पभे, गधमायणे मालवते।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पवत की चारो विदिशाओ मे चार वक्षस्कार पवत कहे गये है। जैसे—

१ सौमनस, २ विद्युत्प्रभ, ३ गन्धमादन, ४ माल्यवान् (३१४)।

शलाका पुरुष सूत्र

३१५—जबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे जहण्णपए चत्तारि अरहता चत्तारि चक्कवट्टी चत्तारि बलदेवा चत्तारि वासुदेवा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह क्षेत्र में कम से कम चार अर्हन्त, चार चक्रवर्ती, चार बलदेव और चार वासुदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (३१५)।

मन्दर पर्वत-सूत्र

३१६—जबुद्दीवे दीवे मदरे पव्वते चत्तारि वणा पण्णत्ता, त जहा—भद्दसालवणे, णदणवणे, सोमणसवणे, पडगवणे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत पर चार वन कहे गये हैं। जैसे—

१ भद्रशाल वन, २ नन्दन वन, ३ सौमनस वन, ४ पण्डक वन (३१६)।

३१७—जबुद्दीवे दीवे मदरे पव्वते पडगवणे चत्तारि अभिसेगसिलाओ पण्णत्ताओ, त जहा—पडुकबलसिला, अइपडुकबलसिला, रत्तकबलसिला अतिरत्तकबलसिला।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत पर पण्डक वन में चार अभिषेकशिलाएं कही गई हैं। जैसे—

१ पाण्डुकम्बल शिला, २ अतिपाण्डुकम्बल शिला, ३ रक्तकम्बल शिला, ४ अतिरक्तकम्बल शिला (३१७)।

३१८—मदरचूलिया ण उवरिं चत्तारि जोयणाइ विक्खभेण पण्णत्ता।

मन्दर पर्वत की चूलिका का ऊपरी विष्कम्भ (विस्तार) चार योजन कहा गया है।

धातकीषण्ड पुष्करवर-सूत्र

३१९—एव धायइसडदीवपुरत्थिमद्धे वि काल आदि करेत्ता जाव मदरचूलियत्ति। एव जाव पुक्खरवरदीवपच्चत्थिमद्धे जाव मदरचूलियत्ति।

सग्रहणी-गाथा

जबुद्दीवगआवस्सग तु कालाओ चूलिया जाव।
धायइसडे पुक्खरवरे य पुव्वावरे पासे ॥१॥

इसी प्रकार धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी काल-पद (सूत्र ३०४) से लेकर यावत् मन्दरचूलिका (सूत्र ३१८) तक का सर्व कथन जानना चाहिए।

इसी प्रकार (अर्ध) पुष्करवर द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी कालपद से लेकर यावत् मन्दर चूलिका तक का सब कथन जानना चाहिए (३१९)।

काल-पद से लेकर मन्दर चूलिका तक जम्बूद्वीप में किया गया सभी वर्णन धातकीषण्ड द्वीप के और अर्द्ध पुष्करवर द्वीप के पूर्व अपर पार्श्वभाग में भी कहा गया है।

द्वार-सूत्र

३२०—जबुद्दीवस्स ण दीवस्स चत्तारि दारा पण्णत्ता, त जहा—विजये, वेजयते, जयते, अपराजिते। ते ण दारा चत्तारि जोयणाइ विक्खभेण, तावइय चेव पवेसेण पण्णत्ता।

तत्थ ण चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिग्रोवमट्ठितीया परिवसति, त जहा—विजये, वेजयते, जयते, ग्रपराजिते।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप के चार द्वार हैं। जमे—

१ विजय द्वार, २ वैजयन्त द्वार, ३ जयन्त द्वार, ४ ग्रपराजित द्वार।

वे द्वार विष्कम्भ (विस्तार) की अपक्षा चार योजन और प्रवेश (मुख) की अपेक्षा भी चार योजन के कहे गये है।

उन द्वारा पर पल्योपम की स्थिति वाले यावत् महर्धिक चार देव रहते हैं। जैसे—

१ विजयदेव, २ वजयन्तदव, २ जयन्तदेव, ४ ग्रपाराजितदेव (३२०)।

अन्तरद्वीप-सूत्र

३२१—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण चुल्लहिमवतस्स वासहरपव्वयस्स चउसु विदिसासु लवणसमुद्द तिण्णि तिण्णि जोयणसयाइ ओगाहित्ता, एत्थ ण चत्तारि ग्रतरदीवा पण्णत्ता, त जहा—एगूरुयदीवे, आभासियदीवे, वेसाणियदीवे णगोलियदीवे।

तेसु ण दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा परिवसति, त जहा—एगूरुया, आभासिया, वेसाणिया, णगोलिया।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पवत के दक्षिण मे क्षुल्लक हिमवान् वर्षधर पवत की चारो विदिशाओ में लवण समुद्र के भीतर तीन-तीन सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप कहे गये है। यथा—

१ एकोरुक द्वीप, २ ग्राभाषिक द्वीप, ३ वैपाणिक द्वीप, ४ लागुलिक द्वीप।

उन द्वीपो पर चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं। जैसे—

१ एकोरुक २ ग्राभाषिक ३ वैपाणिक ४ लागुलिक (३२१)।

विवेचन—अन्तर्द्वीपो मे रहने वाले मनुष्यो के जो प्रकार यहा बतलाए गए हैं, उनके विषय मे टीकाकार ने लिखा है—'द्वीपनामत पुरुषाणा नामान्येव ते तु सर्वाङ्गोपाङ्गसुन्दरा, दर्शने मनोरमा स्वरूपतो, नैकोरुकादय एवेति।' अर्थात् पुरुषो के जो नाम कहे गए हैं वे द्वीपो के नाम से ही हैं। पुरुष तो समस्त अगो और उपागो से सुन्दर हैं, देखने मे स्वरूप मे मनोरम हैं। वे एकोरुक—एक जाघ वाले आदि नही है। तात्पय यह कि उनके नामो का अथ उनमे घटित नही होता। मुनि श्री नथमलजी ने 'ठाण' मे जो अर्थ किया है वह टीकाकार के मन्तव्य से विरुद्ध एव चिन्तनीय है।

३२२—तेसि ण दीवाण चउसु विदिसासु लवणसमुद्द चत्तारि-चत्तारि जोयणसयाइ ओगाहेत्ता, एत्थ ण चत्तारि अतरदीवा पण्णत्ता, त जहा—हयकण्णदीवे, गयकण्णदीवे, गोकण्णदीवे, सक्कुलिकण्णदीवे।

तेसु ण दीवेसु चउव्विधा मणुस्सा परिवसति, त जहा—हयकण्णा, गयकण्णा, गोकण्णा, सक्कुलिकण्णा ।

उन उपर्युक्त अ तर्द्वीपो की चारो विदिशाओ से लवण समुद्र के भीतर चार-चार सौ योजन जाने पर चार अ तर्द्वीप कहे गये है । जैसे—

१ हयकर्ण द्वीप, २ गजकर्ण द्वीप, ३ गोकर्ण द्वीप, ४ शष्कुलीकर्ण द्वीप ।

उन अ तर्द्वीपो पर चार प्रकार के मनुष्य रहते है । जैसे—

१ हयकर्ण, २ गजकर्ण, ३ गोकर्ण, ४ शष्कुलीकर्ण (३२२) ।

३२३—तेसि ण दीवाण चउसु विदिसासु लवणसमुद्द पच पच जोयणसयाइ ओगाहित्ता, एत्थ ण चत्तारि अतरदीवा पण्णत्ता, त जहा—आयसमुहदीवे, मेढमुहदीवे, अओमुहदीवे, गोमुहदीवे ।

तेसु ण दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा भाणियव्वा । [परिवसति, त जहा—आयसमुहा, मेंढमुहा, अओमुहा गोमुहा] ।

उन अ तर्द्वीपो की चारो विदिशाओ मे लवण समुद्र के भीतर पाच पाच सौ योजन जाने पर चार अ तर्द्वीप कहे गये हैं । जसे—

१ आदर्शमुख द्वीप, २ मेषमुख द्वीप, ३ अयोमुख द्वीप, ४ गोमुख द्वीप ।

उन द्वीपो पर चार प्रकार के मनुष्य रहते है । जसे—

१ आदर्शमुख, २ मेषमुख, ३ अयोमुख,[1] ४ गोमुख (३२३) ।

३२४—तेसि ण दीवाण चउसु विदिसासु लवणसमुद्द छ-छ जोयणसयाइ ओगाहेत्ता, एत्थ ण चत्तारि अतरदीवा पण्णत्ता, त जहा—आसमुहदीवे, हत्थिमुहदीवे, सीहमुहदीवे, वग्घमुहदीवे ।

तेसु ण दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा भाणियव्वा [परिवसति, त जहा—आसमुहा, हत्थिमुहा, सीहमुहा, वग्घमुहा] ।

उन द्वीपो की चारो विदिशाओ मे लवणसमुद्र के भीतर छह छह सौ योजन जाने पर चार अ तर्द्वीप कहे गय है जैसे—

१ अश्वमुख द्वीप २ हस्तिमुख द्वीप ३ सिंहमुख द्वीप ४ व्याघ्रमुख द्वीप ।

उन द्वीपो पर चार प्रकार के मनुष्य रहते है । जैसे—

१ अश्वमुख २ हस्तिमुख ३ सिंहमुख ४ व्याघ्रमुख (३२४) ।

३२५—तेसि ण दीवाण चउसु विदिसासु लवणसमुद्द सत्त-सत्त जोयणसयाइ ओगाहेत्ता, एत्थ ण चत्तारि अतरदीवा, पण्णत्ता, त जहा—आसकण्णदीवे, हत्थिकण्णदीवे, अकण्णदीवे, कण्णपाउरणदीवे ।

तेसु ण दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा भाणियव्वा [परिवसति, त जहा—आसकण्णा, हत्थिकण्णा, अकण्णा, कण्णपाउरणा] ।

---

१ अओमुहा के स्थान पर अयामुह (अजामुख) पाठ भी है ।

उन द्वीपो की चारो विदिशाओ मे लवण समुद्र के भीतर सात-सात सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप कहे गये है। जैसे—

१ अश्वकर्ण द्वीप २ हस्तिकण द्वीप ३ अकण द्वीप ४ कणप्रावरण द्वीप।

उन द्वीपो पर चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं। जैसे—

१ अश्वकर्ण २ हस्तिकण ३ अकण ४ कणप्रावरण (३२५)।

३२६—तेसि ण दीवाण चउसु विदिसासु लवणमुद्द अट्ठट्ठ जोयणसयाइ ओगाहेत्ता, एत्थ ण चत्तारि अतरदीवा पण्णत्ता, त जहा—उक्कामुहदीवे, मेहमुहदीवे, विज्जुमुहदीवे, विज्जुदतदीवे।

तेसु ण दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा भाणियव्वा। [परिवसति, त जहा—उक्कामुहा, मेहमहा, विज्जुमुहा, विज्जुदता]।

उन द्वीपो की चारो विदिशाओ मे लवण समुद्र के भीतर आठ आठ सौ योजना जाने पर चार अन्तर्द्वीप कहे गये हैं। जैसे—

१ उल्कामुख द्वीप २ मेघमुख द्वीप ३ विद्युन्मुख द्वीप ४ विद्युद्दन्त द्वीप।

उन द्वीपा पर चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं। जैसे—

१ उल्कामुख २ मेघमुख ३ विद्युन्मुख ४ विद्युद्दत (३२६)।

३२७—तेसि ण दीवाण चउसु विदिसासु लवणसमुद्द णव णव जोयणसयाइ ओगाहेत्ता, एत्थ ण चत्तारि अतरदीवा पण्णत्ता, त जहा—घणदतदीवे, लट्ठदतदीवे, गूढदतदीवे, सुद्धदतदीवे।

तेसु ण दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा परिवसति, त जहा—घणदता, लट्ठदता, गूढदता, सुद्धदता।

उन द्वीपो की चारो विदिशाओ मे लवण समुद्र के भीतर नौ नौ सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप कहे गये है। जसे—

१ घनदन्त द्वीप २ लष्टदन्त द्वीप ३ गूढदन्त द्वीप ४ शुद्धदन्त द्वीप।

उन द्वीपा पर चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं। जैसे—

१ घनदन्त २ लष्टदन्त ३ गूढदन्त ४ शुद्धदन्त (३२७)।

३२८—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण सिहरिस्स वासहरपव्वयस्स चउसु विदिसासु लवणसमुद्द तिण्णि तिण्णि जोयणसयाइ ओगाहेत्ता, एत्थ ण चत्तारि अतरदीवा पण्णत्ता, त जहा—एगूरुयदीवे, सेस तहेव णिरवसेस भाणियव्व जाव सुद्धदता।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर मे शिखरी वर्षधर पर्वत की चारो विदिशाओ मे लवण समुद्र के भीतर तीन तीन सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप कहे गये हैं। जसे—

१ एकोरुक द्वीप २ आभाषिक द्वीप ३ वैषाणिक द्वीप ४ लागुलिक द्वीप।

इस प्रकार जैसे क्षुल्लक हिमवान् वर्षधर पर्वत की चारो विदिशाओ मे लवण समुद्र के भीतर जितने अन्तर्द्वीप और जितने प्रकार के मनुष्य कहे गये हैं वह सब वर्णन यहा पर भी शुद्धदन्त मनुष्य पर्यन्त मन्दर पर्वत के उत्तर मे जानना चाहिए (३२८)।

महापाताल-सूत्र

३२९—जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ चउद्दिसिं लवणसमुद्दं पंचाणउइं जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता, एत्थ णं महतिमहालया महालंजरसंठाणसंठिता चत्तारि महापायाला पण्णत्ता, तं जहा—वलयामुहे, केउए, जूवए, ईसरे।

तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—काले, महाकाले, वेलंबे, पभंजणे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप की बाहरी वेदिका के अन्तिम भाग से चारों दिशाओं में लवण समुद्र के भीतर पचानवें हजार योजन जाने पर चार महापाताल अवस्थित हैं, जो बहुत विशाल एवं बड़े भारी घड़े के समान आकार वाले हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१ वडवामुख (पूर्व में) २ केतुक (दक्षिण में)
३ यूपक (पश्चिम में) ४ ईश्वर (उत्तर में)।

उनमें पल्योपम की स्थिति वाले यावत् महर्धिक चार देव रहते हैं। जैसे—

१ काल २ महाकाल ३ वेलम्ब ४ प्रभंजन (३२९)।

आवास पर्वत सूत्र

३३०—जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ चउद्दिसिं लवणसमुद्दं बायालीसं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता एत्थ णं चउण्हं वेलंधरणागराईणं चत्तारि आवासपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—गोथूभे, उदओभासे, संखे, दगसीमे।

तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—गोथूभे, सिवए, संखे, मणोसिलाए।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप की बाहरी वेदिका के अन्तिम भाग से चारों दिशाओं में लवण-समुद्र के भीतर बयालीस-बयालीस हजार योजन जाने पर वेलंधर नागराजों के चार आवास-पर्वत कहे गये हैं। जैसे—

१ गोस्तूप २ उदावभास ३ शंख ४ दकसीम।

उनमें पल्योपम की स्थिति वाले यावत् महर्धिक चार देव रहते हैं। जैसे—

१ गोस्तूप २ शिवक ३ शंख ४ मनःशिलाक (३३०)।

३३१—जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं बायालीसं-बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता, एत्थ णं चउण्हं अणुवेलंधरणागराईणं चत्तारि आवासपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—कक्कोडए, विज्जुप्पभे, केलासे, अरुणप्पभे।

तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—कक्कोडए, कद्दमए, केलासे, अरुणप्पभे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप की बाहरी वेदिका के अन्तिम भाग से चारों विदिशाओं में लवणसमुद्र

के भीतर बयालीस-बयालीस हजार योजन जाने पर अनुवेलन्धर नागराजो के चार आवास पर्वत कहे गये हैं। जैसे—

१ कर्कोटक २ विद्युत्प्रभ ३ कैलाश ४ अरुणप्रभ।

उनमे पल्योपम की स्थिति वाले यावत् महर्धिक चार देव रहते है। जैसे—

१ कर्कोटक २ कदमक ३ कैलाश ४ अरुणप्रभ (३३१)।

ज्योतिष सूत्र

३३२—लवणे ण समुद्दे चत्तारि चदा पभासिसु वा पभासति वा पभासिस्सति वा। चत्तारि सूरिया तविसु वा तवति वा तविस्सति वा। चत्तारि कित्तियाओ जाव चत्तारि भरणीओ।

लवण समुद्र मे चार चन्द्रमा प्रकाश करते थे, प्रकाश करते हैं और प्रकाश करते रहेंगे। चार सूर्य आताप करते थे, आताप करते है और आताप करते रहेगे।

चार कृत्तिका यावत् चार भरणी तक के सभी नक्षत्रो ने चन्द्र के साथ योग किया था, करते हैं और करते रहेंगे (३३२)।

३३३—चत्तारि अग्गी जाव चत्तारि जमा।

नक्षत्रो के अग्नि से लेकर यम तक चार-चार देव कहे गये हैं (३३३)।

३३४—चत्तारि अगारा जाव चत्तारि भावकेऊ।

चार अगारक यावत् चार भावकेतु तक के सभी ग्रहो ने चार (भ्रमण) किया था, चार करते हैं और चार करते रहेगे (३३४)।

द्वार सूत्र

३३५—लवणस्स ण समुद्दस्स चत्तारि दारा पण्णत्ता, त जहा—विजए, वेजयते, जयते, अपराजिते। ते ण दारा चत्तारि जोयणाइ विक्खभेण तावइय चेव पवेसेण पण्णत्ता।

तत्थ ण चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसति, त जहा—विजए, वेजयते, जयंते, अपराजिए।

लवण समुद्र के चार द्वार कहे गये हैं। जैसे—

१ विजय २ वैजयन्त ३ जयन्त ४ अपराजित।

वे द्वार चार योजन विस्तृत और चार योजन प्रवेश (मुख) वाले कहे गये है। उनमे पल्योपम की स्थितिवाले यावत् महर्धिक चार देव रहते हैं। जैसे—

१ विजयदेव २ वजयन्तदेव ३ जयन्तदेव ४ अपराजित देव (३३५)।

धातकीषण्डपुष्करवर सूत्र

३३६—धायइसडे ण दीवे चत्तारि जोयणसयसहस्साइ चक्कवालविक्खभेण पण्णत्ते।

धातकीषण्ड द्वीप का चक्रवाल विष्कम्भ (वलय का विस्तार) चार लाख योजन कहा गया है।

३३७—जबुद्दीवस्स ण दीवस्स बहिया चत्तारि भरहाइ, चत्तारि एरवयाइ। एव जहा सद्दुद्देसए तहेव णिरवसेस भाणियव्व जाव चत्तारि म दरा चत्तारि मदरचूलियाओ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप के बाहर (धातकीषण्ड और पुष्करवर द्वीप मे) चार भरत क्षेत्र और चार ऐरवत क्षेत्र हैं।

इस प्रकार जैसे शब्दोद्देशक (दूसरे स्थान के तीसरे उद्देशक) मे जो बतलाया गया है, वह सब पूर्ण रूप से यहा जान लेना चाहिए। (वहा जो दो-दो की सख्या मे बतलाये गये हैं, वे यहा चार-चार जानना चाहिए। धातकीषण्ड मे दो मन्दर और दो म दरचूलिका, तथा पुष्करवर द्वीप मे भी दो म दर और दो मन्दरचूलिका, इस प्रकार जम्बूद्वीप के बाहर चार म दर और चार मन्दर-चूलिका कही गई है (३३७)।

न दीश्वर-वर द्वीप सूत्र

३३८—णदीसरवरस्स ण दीवस्स चक्कवाल विक्खमस्स बहुमज्भदेसभागे चउद्दिसि चत्तारि अजणगपव्वता पण्णत्ता त जहा—पुरत्थिमिल्ले अजणगपव्वते, दाहिणिल्ले अजणगपव्वते, पच्चत्थिमिल्ले अजणगपव्वते, उत्तरिल्ले अजणगपव्वते। ते ण अजणगपव्वता चउरासीति जायणसहस्साइ उड्ढ उच्चत्तेण, एग जोयणसहस्स उव्वेहेण, मूले दसजोयणसहस्स उव्वेहेण, मूले दसजोयणसहस्साइ विक्खभेण, तदणतर च ण मायाए मायाए परिहायमाणा परिहायमाणा उवरिमेग जोयणसहस्स विक्खभेण पण्णत्ता। मूले इक्कतीस जोयणसहस्साइ छच्च तेवीसे जोयणसते परिक्खेवेण, उवरि तिण्णि-तिण्णि जोयणसहस्साइ एग च बावट्ठ जोयणसत परिक्खेवेण। मूले विच्छिण्णा मज्भे सखित्ता उप्पि तणुया गोपुच्छसठाणसठिता सव्वअजणमया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला णिप्पका णिक्ककड च्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणीया अभिरूवा पडिरूवा।

न दीश्वरवर द्वीप के चक्रवाल-विष्कम्भ के बहुमध्य देशभाग मे (ठीक बीचा-बीच) चारा दिशाओ मे चार अजन पवत कहे गये है। जैसे—

१ पूर्वी अजन पवत, २ दक्षिणी अजन पवत
३ पश्चिमी अजन पवत ४ उत्तरी अजन पवत।

उनकी ऊध्व ऊचाई चौरासी हजार योजन और गहराई भूमितल म एक हजार योजन कही गई है। मूल मे उनका विस्तार दश हजार योजन है। तदन तर थोडी-थोडी मात्रा से हीन-हीन होता हुआ ऊपरी भाग म एक हजार योजन विस्तार कहा गया है।

मूल मे उन अजनपवतो की परिधि इक्तीस हजार छह सौ तेईस योजन और ऊपरी भाग मे तीन हजार एक सौ बासठ योजन की है।

वे मूल मे विस्तृत, मध्य मे सक्षिप्त और अ त मे तनुक (और अधिक सक्षिप्त) हैं। वे गोपुच्छ के आकार वाले हैं। वे सभी ऊपर से नीचे अजनरत्नमयी है, स्फटिक के समान स्वच्छ पारदर्शी, चिकने, चमकदार, शाण पर घिसे हुए से, प्रमाजनी से साफ किये हुए सरीखे, रज-रहित, निमल, निष्पक, निष्कण्टक छाया वाले, प्रभा-युक्त, रश्मि-युक्त, उद्योत-सहित, मन को प्रसन्न करने वाले, दशनीय, कमनीय और रमणीय हैं (३३८)।

३३६—तेसि ण अजणगपव्वयाण उवरिं बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता।

तेसि ण बहुसमरमणिज्जाण भूमिभागाण बहुमज्झदेसभागे चत्तारि सिद्धायतणा पण्णत्ता। ते ण सिद्धायतणा एग जोयणसय आयामेण, पण्णास जोयणाइ विक्खभेण, बावत्तरि जोयणाइ उड्ढ उच्चत्तेण।

तेसि ण सिद्धायतणाण चउदिसि चत्तारि दारा पण्णत्ता, त जहा—देवदारे, असुरदारे, णागदारे, सुवण्णदारे।

तेसु ण दारेसु चउव्विहा देवा परिवसति, त जहा—देवा, असुरा, णागा, सुवण्णा।
तेसि ण दाराण पुरओ चत्तारि मुहमडवा पण्णत्ता।
तेसि ण मुहमडवाण पुरओ चत्तारि पेच्छाघरमडवा पण्णत्ता।
तेसि ण पेच्छाघरमडवाण बहुमज्झदेसभागे चत्तारि वइरामया अक्खाडगा पण्णत्ता।
तेसि ण वइरामयाण अक्खाडगाण बहुमज्झदेसभागे चत्तारि मणिपेढियातो पण्णत्ताओ।
तासि ण मणिपेढिताण उवरिं चत्तारि सीहासणा पण्णत्ता।
तेसि ण सीहासणाण उवरिं चत्तारि विजयदूसा पण्णत्ता।
तेसि ण विजयदूसगाण बहुमज्झदेसभागे चत्तारि वइरामया अकुसा पण्णत्ता।

तेसु ण वइरामएसु अकुसेसु चत्तारि कु भिका मुत्तादामा पण्णत्ता। ते ण कु भिका मुत्तादामा पत्तेय पत्तेय अण्णेहि तदद्धउच्चत्तपमाणमित्तेहि चउहि अद्धकु भिक्केहि मुत्तादामेहि सव्वतो समता सपरिक्खित्ता।

तेसि ण पेच्छाघरमडवाण पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।
तासि ण मणिपेढियाण उवरिं चत्तारि-चत्तारि चेइयथूभा पण्णत्ता।
तेसि ण चेइयथूभाण पत्तेय-पत्तेय चउद्दिसि चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।

तासि ण मणिपेढियाण उवरिं चत्तारि जिणपडिमाओ सव्वरयणामईओ सपलियकणिसण्णाओ थूभाभिमुहाओ चिट्ठ ति, त जहा—रिसभा, वद्धमाणा, चदाणणा, वारिसेणा।

तेसि ण चेइयथूभाण पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।
तासि ण मणिपेढियाण उवरिं चत्तारि चेइयरुक्खा पण्णत्ता।
तेसि ण चेइयरुक्खाण पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।
तासि ण मणिपेढियाण उवरिं चत्तारि महिंदज्झया पण्णत्ता।
तेसि ण महिंदज्झयाण पुरओ चत्तारि णदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ।

तासि ण पुक्खरिणीण पत्तेय पत्तेय चउदिसि चत्तारि वणसडा पण्णत्ता, त जहा—पुरत्थिमे ण, दाहिणे ण, पच्चत्थिमे ण, उत्तरे ण।

सग्रहणी गाथा

पुव्वे ण असोगवण, दाहिणओ होइ सत्तवण्णवण।
अवरे ण चपगवण, चूतवण उत्तरे पासे ॥१॥

उन अजन पर्वतों का ऊपरी भूमिभाग अति समतल और रमणीय कहा गया है।

उनके बहु-सम रमणीय भूमिभागो के बहुमध्य देश भाग मे (बीचोबीच) चार सिद्धायतन कहे गये है।

वे सिद्धायतन एक सौ योजन लम्बाई वाले, पचास योजन चौडाई वाले और बहत्तर योजन ऊपरी ऊंचाई वाले हैं।

उन सिद्धायतनो के चारो दिशाओ मे चार द्वार कहे गये हैं। जैसे—

१ देवद्वार २ असुरद्वार ३ नागद्वार ४ सुपर्णद्वार।

उन द्वारो पर चार प्रकार के देव रहते हैं। जैसे—

१ देव २ असुर ३ नाग ४ सुपर्ण।

उन द्वारो के आगे चार मुख-मण्डप कहे गये हैं। उन मुख-मण्डपों के आगे चार प्रेक्षागृह-मण्डप कहे गये है। उन प्रेक्षागृह मण्डपों के बहुमध्य देश भाग मे चार वज्रमय अक्षवाटक (दर्शको के लिए बैठने के आसन) कहे गये हैं। उन वज्रमय अक्षवाटको के बहुमध्य देशभाग मे चार मणिपीठिकाए कही गई हैं। उन मणिपीठिकाओ के ऊपर चार सिंहासन कहे गये है। उन सिंहासनो के ऊपर चार विजयदूष्य (चन्दोवा) कहे गये हैं। उन विजयदूष्यो के बहुमध्य देश भाग मे चार वज्रमय अकुश कहे गये है। उन वज्रमय अकुशो के ऊपर चार कुम्भिक मुक्तामालाए लटकती है।

उन कुम्भिक मुक्तामालाओं से प्रत्येक माला पर उनकी ऊंचाई से आधी ऊंचाई वाली चार अर्धकुम्भिक मुक्तामालाए सब ओर से लिपटी हुई हैं (३३९)।

विवेचन—सस्कृत टीकाकार ने आगम प्रमाण को उद्धृत करके कुम्भ का प्रमाण इस प्रकार कहा है—दो असती = एक पसती। दो पसती = एक सेतिका। दो सेतिका = १ कुडव। ४ कुडव = एक प्रस्थ। चार प्रस्थ = एक आढक। ४ आढक = १ द्रोण। ६० आढक = एक जघन्य कुम्भ। ८० आढक = एक मध्यम कुम्भ। १०० आढक = एक उत्कृष्ट कुम्भ। इस प्राचीन माप के अनुसार ४० मन का एक कुम्भ होता है। इस कुम्भ प्रमाण मोतियो से बनी माला को कुम्भिक मुक्तादाम कहा जाता है। अर्ध कुम्भ का प्रमाण २० मन जानना चाहिए।

उन प्रेक्षागृह मण्डपो के आगे चार मणिपीठिकाए कही गई है। उन मणिपीठिकाओं के ऊपर चार चैत्यस्तूप है। उन चैत्यस्तूपो में से प्रत्येक-प्रत्येक पर चारो दिशाओ मे चार-चार मणिपीठिकाए हैं। उन मणिपीठिकाओ पर सर्वरत्नमय, पर्यङ्कासन जिन-प्रतिमाए अवस्थित हैं और उनका मुख स्तूप के सामने है। उनके नाम इस प्रकार है—

१ ऋषभा, २ वर्धमाना, ३ चन्द्रानना, ४ वारिषेणा।

उन चैत्यस्तूपो के आगे मणिपीठिकाए हैं। उन मणिपीठिकाओं के ऊपर चार चैत्यवृक्ष है। उन चैत्यवृक्षो के आगे चार मणिपीठिकाए है। उन मणिपीठिकाओ के ऊपर चार महेन्द्रध्वज हैं। उन महेन्द्रध्वजो के आगे चार नन्दा पुष्करिणिया हैं। उन पुष्करिणियो मे से प्रत्येक के आगे चारो दिशाओ मे चार वनषण्ड कहे गये हैं। जैसे—

१ पूर्ववनषण्ड, २ दक्षिणवनषण्ड, ३ पश्चिम वनषण्ड, ४ उत्तरवनषण्ड।

१ पूर्व मे अशोकवन, २ दक्षिण मे सप्तपर्णवन, ३ पश्चिम मे चम्पकवन और ४ उत्तर मे आम्रवन कहा गया है।

३४०—तत्थ ण जे से पुरत्थिमिल्ले अजणगपव्वते, तस्स ण चउद्दिसि चत्तारि णदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, त जहा—णदुत्तरा, णदा, आणदा, णदिवद्धणा। ताओ ण णदाओ पुक्ख रिणीओ एग जोयणसयसहस्स आयामेण, पण्णास जोयणसहस्साइ विक्खभेण, दसजोयणसताइ उव्वेहेण।

तासि ण पुक्खरिणीण पत्तेय-पत्तेय चउद्दिसि चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता।

तेसि ण तिसोवाणपडिरूवगाण पुरतो चत्तारि तोरणा पण्णत्ता, त जहा—पुरत्थिमे ण, दाहिणे ण, पच्चत्थिमे ण, उत्तरे ण।

तासि ण पुक्खरिणीण पत्तेय पत्तेय चउद्दिसि चत्तारि वणसडा पण्णत्ता, त जहा—पुरतो, दाहिणे ण, पच्चत्थिमे ण उत्तरे ण।

सग्रहणी गाथा

पुव्वे ण असोगवण, दाहिणओ होइ सत्तवण्णवण।
अवरे ण चपगवण, चूयवण उत्तरे पासे॥१॥

तासि ण पुक्खरिणीण बहुमज्झदेसभागे चत्तारि दधिमुहगपव्वया पण्णत्ता। ते ण दधिमुहग पव्वया चउसट्ठि जोयणसहस्साइ उड्ढ उच्चत्तेण, एग जोयणसहस्स उव्वेहेण, सव्वत्थ समा पल्लग सठाणसठिता, दस जोयणसहस्साइ विक्खभेण, एक्कतीस जोयणसहस्साइ छच्च तेवीसे जोयणसते परिक्खेवेण, सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।

तेसि ण दधिमुहगपव्वताण उवरि बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता। सेस जहेव अजणग पव्वताण तहेव णिरवसेस भाणियव्व जाव चूतवण उत्तरे पासे।

उन पूर्वोक्त चार अजन पर्वतो मे से जो पूव दिशा का अजन पवत है, उसकी चारो दिशाओ म चार नन्दा (आनन्द-दायिनी) पुष्करिणिया कही गई हैं। जसे—

१ नन्दोत्तरा, २ नन्दा, ३, आनन्दा, ४ नन्दिवधना।

वे नन्दा पुष्करिणियाँ एक लाख योजन लम्बी, पचास हजार योजन चौडी और दश सौ (एक हजार) योजन गहरी ह।

उन नन्दा पुष्करिणिया मे से चारो दिशाओ मे तीन-तीन सोपान (सीढी) वाली चार सोपान-पक्तिया कही गई है। उन त्रि सोपान पक्तियो के आगे चार तोरण कहे गये है। जैसे—पूव में, दक्षिण मे, पश्चिम मे, उत्तर मे।

उन नन्दा पुष्करिणिया मे से प्रत्येक के चारो दिशाओ मे चार वनषण्ड हैं। जैसे—पूव मे, दक्षिण मे, पश्चिम मे, उत्तर मे।

१ पूर्व मे अशोकवन, २ दक्षिण मे सप्तपणवन, ३ पश्चिम में चम्पकवन और उत्तर म आम्रवन कहा गया है।

उन पुष्करिणियो के बहुमध्यदेश भाग म चार दधिमुख पवत हैं। वे दधिमुखपवत ऊपर ६४ हजार योजन ऊचे और नीचे एक हजार योजन गहरे हैं। वे ऊपर, नीचे और मध्य मे सवत्र

समान विस्तार वाले ह। उनका आकार अन्न भरने के पल्यक (कोठी) के समान गोल है। वे दश हजार योजन विस्तार वाले है। उनकी परिधि इकतीस हजार छह सौ तेईस (३१६२३) योजन है। वे सब रत्नमय यावत् रमणीय हैं।

उन दधिमुखपर्वतो के ऊपर बहुसम, रमणीय भूमिभाग है। शेष वर्णन जैसा अजनपर्वतो का कहा गया है उसी प्रकार यावत् आम्रवन तक सम्पूर्णरूप से जानना चाहिए (३४०)।

३४१—तत्थ ण जे से दाहिणिल्ले अजणगपव्वते, तस्स ण चउदिसि चत्तारि णदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, त जहा—भद्दा, विसाला कुमुदा, पोडरीगिणी। ताओ ण णदाओ पुक्खरिणीओ एग जोयणसयसहस्स, सेस त चेव जाव दधिमुहगपव्वता जाव वणसडा।

उन चार अजन पर्वतो मे जो दक्षिण दिशा वाला अजन पर्वत है, उसकी चारो दिशाओ मे चार नन्दा पुष्करिणिया कही गई है। जैसे—

१ भद्रा, २ विशाला, ३ कुमुदा, ४ पौडरीकिणी।

वे नन्दा पुष्करिणिया एक लाख योजन विस्तृत हैं। शेष सब वर्णन यावत् दधिमुख पर्वत और यावत् वनषण्ड तक पूर्वदिशा के समान जाननी चाहिए (३४१)।

३४२—तत्थ ण जे से पच्चत्थिमिल्ले अजणगपव्वते, तस्स ण चउद्दिसि चत्तारि णदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, त जहा—णदिसेणा, अमोहा गोथूभा, सुदसणा। सेस त चेव, तहेव दधिमुहगपव्वता, तहेव सिद्धाययणा जाव वणसडा।

उन चार अजन पर्वतो मे जो पश्चिम दिशा वाला अजन पर्वत है, उसकी चारो दिशाओ मे चार नन्दा पुष्करिणिया कही गई है। जसे—

१ नन्दिषेणा, २ अमोघा, ३ गोस्तूपा, ४ सुदर्शना।

इनका विस्तार आदि शेष सब वर्णन पूर्व दिशा के समान है, उसी प्रकार दधिमुख पर्वत हैं, और तथैव सिद्धायतन यावत् वनषण्ड जानना चाहिए (३४२)।

३४३—तत्थ ण जे से उत्तरिल्ले अजणगपव्वते, तस्स ण चउद्दिसि चत्तारि णदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, त जहा—विजया, वेजयती, जयती, अपराजिता। ताओ ण णदाओ पुक्खरिणीओ एग जोयणसयसहस्स सेस त चेव पमाण, तहेव दधिमुहगपव्वता, तहेव सिद्धाययणा जाव वणसडा।

उन चार अजन पर्वता मे जो उत्तरदिशा वाला अजन पर्वत है, उसकी चारो दिशाओ मे चार नन्दा पुष्करिणियाँ कही गई हैं। जसे—

१ विजया, २ वजयन्ती, ३ जयन्ती, ४ अपराजिता।

वे नन्दा पुष्करिणिया एक लाख योजन विस्तृत हैं, शेष सर्व पूर्व के समान प्रमाण वाला है। उसी प्रकार के दधिमुख पर्वत हैं, उसी प्रकार के सिद्धायतन यावत् वनषण्ड जानना चाहिए (३४३)।

३४४—णदीसरवरस्स ण दीवस्स चक्कवाल विक्खभस्स बहुमज्झदेसभागे चउसु विदिसासु चत्तारि रतिकरगपव्वता पण्णत्ता, त जहा—उत्तरपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए, दाहिणपुरत्थिमिल्ले

रतिकरगपव्वए, दाहिणपच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए, उत्तरपच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए। ते णं रतिकरगपव्वता दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस गाउयसताइं उव्वेहेणं, सव्वत्थ समा झल्लरि संठाणसंठिता, दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसते परिक्खेवेणं, सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।

नन्दीश्वरवर द्वीप के चक्रवाल विष्कम्भ के बहुमध्यदेश भाग में चारों विदिशाओं में चार रतिकर पर्वत हैं। जैसे।

१ उत्तर-पूर्व दिशा का रतिकर पर्वत। २ दक्षिण-पूर्वदिशा का रतिकर पर्वत। ३ दक्षिण पश्चिमदिशा का रतिकर पर्वत। ४ उत्तर पश्चिम दिशा का रतिकर पर्वत।

वे रतिकर पर्वत एक हजार योजन ऊंचे और एक हजार कोस गहरे हैं। ऊपर, मध्य और अधोभाग में सर्वत्र समान विस्तार वाले हैं। वे झालर के आकार से अवस्थित हैं, अर्थात् गोलाकार हैं। उनका विस्तार दश हजार योजन और परिधि इकतीस हजार छह सौ तेईस (३१६२३) योजन है। वे सर्वरत्नमय, स्वच्छ यावत रमणीय हैं (३४४)।

३४५—तत्थ णं जे से उत्तरपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीवपमाणाओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—णंदुत्तरा, णंदा, उत्तरकुरा, देवकुरा। कण्हाए, कण्हराईए, रामाए, रामरक्खियाए।

उन चार रतिकरों में जो उत्तर पूर्व दिशा का रतिकर पर्वत है, उसकी चारों दिशाओं में देवराज ईशान देवेन्द्र की चार अग्रमहिषियों की जम्बूद्वीप प्रमाण वाली—एक लाख योजन विस्तृत चार राजधानियां कही गई हैं। जैसे—

१ कृष्णा अग्रमहिषी की राजधानी नन्दोत्तरा।
२ कृष्णराजिका अग्रमहिषी की राजधानी नन्दा।
३ रामा अग्रमहिषी की राजधानी उत्तरकुरा।
४ रामरक्षिता अग्रमहिषी की राजधानी देवकुरा (३४५)।

३४६—तत्थ णं जे से दाहिणपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीवपमाणाओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—समणा, सोमणसा, अच्चिमाली, मणोरमा। पउमाए, सिवाए, सतीए, अंजूए।

उन चारों रतिकरों में जो दक्षिण-पूर्व दिशा का रतिकर पर्वत है, उसकी चारों दिशाओं में देवराज शक्र देवेन्द्र की चार अग्रमहिषियों की जम्बूद्वीप प्रमाणवाली चार राजधानियां कही गई हैं। जैसे—

१ पद्मा अग्रमहिषी की राजधानी समना।
२ शिवा अग्रमहिषी की राजधानी सौमनसा।
३ शची अग्रमहिषी की राजधानी अर्चिमालिनी।
४ अंजू अग्रमहिषी की राजधानी मनोरमा (३४६)।

३४७—तत्थ ण जे से दाहिणपच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तस्स ण चउद्दिसि सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीण जबुद्दीवपमाणमेत्ताओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, त जहा—भूता, भूतवडेंसा, गोथूभा, सुदसणा । अमलाए, अच्छराए, णवमियाए, रोहिणीए ।

उन चारो रतिकरा म जो दक्षिण पश्चिम दिशा का रतिकर पवत है, उसकी चारो दिशाओ मे देवराज शक्र दवेन्द्र की चार अग्रमहिपियो की जम्बूद्वीप प्रमाणवाली चार राजधानिया कही गई हं । जमे—

१ अमला अग्रमहिपी की राजधानी भूता ।
२ अप्सरा अग्रमहिपी की राजधानी भूतावतसा ।
३ नवमिका अग्रमहिपी की राजधानी गोस्तूपा ।
४ रोहिणा अग्रमहिपी की राजधानी सुदशना (३४७) ।

३४८—तत्थ ण जे से उत्तरपच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तस्स ण चउद्दिसिमीसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीण जबुद्दीवप्पमाणमेत्ताओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, त जहा—रयणा, रतणुच्चया, सव्वरतणा, रतणसचया । वसूए, वसुगुत्ताए, वसुमित्ताए, वसु धराए ।

उन चारो रतिकरो मे जो उत्तर-पश्चिम दिशा का रतिकर पवत है, उसकी चारो दिशाओ म देवराज ईशान देवेन्द्र की चार अग्रमहिपियो की जम्बूद्वीप प्रमाणवाली चार राजधानिया कही गई हं । जैसे—

१ वसु अग्रमहिपी की राजधानी रत्ना ।
२ वसुगुप्ता अग्रमहिपी की राजधानी रत्नोच्चया ।
३ वसुमित्रा अग्रमहिपी की राजधानी सवरत्ना ।
४ वसुन्धरा अग्रमहिपी की राजधानी रत्नसचया (३४८) ।

सत्य सूत्र

३४९—चउव्विहे सच्चे पण्णत्ते, त जहा—णामसच्चे, ठवणसच्चे, दव्वसच्चे, भावसच्चे ।

सत्य चार प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ *नामसत्य—नाम निक्षेप की अपेक्षा किसी व्यक्ति का रखा गया 'सत्य' ऐसा नाम ।*
२ स्थापनासत्य—किसी वस्तु मे आरोपित सत्य या सत्य की सकल्पित मूर्ति ।
३ द्रव्यसत्य—सत्य का ज्ञायक, किन्तु अनुपयुक्त (सत्य सबधी उपयोग से रहित) पुरुष ।
४ भावसत्य—सत्य का ज्ञाता और उपयुक्त (सत्यविपयक उपयोग से युक्त) पुरुप (३४९) ।

आजीविक तप सूत्र

३५०—आजीवियाण चउव्विहे तवे पण्णत्ते त जहा—उग्गतवे, घोरतवे, रसणिज्जहणता, जिब्भिदियपडिसलीणता ।

आजीविको (गोशलक के शिष्यो) का तप चार प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ उग्रतप—षष्ठभक्त, (उपवास) वेला, तेला आदि करना ।

२ घोरतप—सूय-आतापनादि के साथ उपवासादि करना।
३ रस-निर्यूहणतप—घत आदि रसो का परित्याग करना।
४ जिह्व न्द्रिय-प्रतिसलीनता तप—मनोज्ञ और अमनोज्ञ भक्त पानादि मे राग द्वेष रहित होकर जिह्व न्द्रिय को वश करना (३५०)।

संयमादि सूत्र

३५१—चउव्विहे सजमे पण्णत्ते, त जहा—मणसजमे, वइसजमे, कायसजमे, उवगरणसजमे।

सयम चार प्रकार का कहा गया है। जसे—

१ मन-सयम, २ वाक-सयम, ३ काय सयम ४ उपकरण सयम (३५१)।

३५२—चउव्विधे चियाए पण्णत्ते त जहा—मणचियाए, वइचियाए, कायचियाए, उवगरण चियाए।

त्याग चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ मन-त्याग, २ वाक् त्याग, ३ काय त्याग, ४ उपकरण-त्याग (३५२)।

विवेचन—मन आदि के अप्रशस्त व्यापार का त्याग अथवा मन आदि द्वारा मुनियो को आहार आदि प्रदान करना त्याग कहलाता है।

३५३—चउव्विहा अकिंचणता पण्णत्ता, त जहा—मणअकिंचणता, वइअकिंचणता, कायअकिंचणता, उवगरणअकिंचणता।

अकिंचनता चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ मन-अकिंचनता, २ वचन-अकिंचनता, ३ काय-अकिंचनता, ४ उपकरण अकिंचनता (३५३)।

विवेचन—सयम के चार प्रकारो के द्वारा समिति रूप प्रवृत्ति की, त्याग के चार प्रकारो के द्वारा गुप्तिरूप प्रवृत्ति की और चार प्रकार की अकिंचनता के द्वारा महाव्रत रूप प्रवृत्ति का सकेत किया गया प्रतीत होता है।

॥ चतुथ स्थान का द्वितीय उद्देश समाप्त ॥

चतुर्थ स्थान

तृतीय उद्देश

क्रोध सूत्र

३५४—चत्तारि राईओ पण्णत्ताओ, त जहा—पव्वयराई, पुढविराई, वालुयराई, उदगराई।

एवामेव चउव्विहे कोहे पण्णत्ते, त जहा—पव्वयराइसमाणे, पुढविराइसमाणे, वालुयराइ समाणे, उदगराइसमाणे।

१ पव्वयराइसमाण कोहमणुपविट्ठे जीवे काल करेइ, णेरइएसु उववज्जति।
२ पुढविराइसमाण कोहमणुपविट्ठे जीवे काल करेइ, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति।
३ वालुयराइसमाण कोहमणुपविट्ठे जीवे काल करेइ, मणुस्सेसु उववज्जति।
४ उदगराइसमाण कोहमणुपविट्ठे जीवे काल करेइ, देवेसु उववज्जति।

राजि (रेखा) चार प्रकार की होती है। जैसे—

१ पर्वतराजि, २ पृथिवीराजि, ३ वालुकाराजि, ४ उदकराजि।

इसी प्रकार क्रोध चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ पर्वतराजि समान—अनन्तानुबन्धी क्रोध।
२ पृथिवीराजि-समान—अप्रत्याख्यानावरण क्रोध।
३ वालुकाराजि समान—प्रत्याख्यानावरण क्रोध।
४ उदकराजि-समान—सञ्ज्वलन क्रोध।

१ पर्वत राजि समान क्रोध मे प्रवर्तमान जीव काल करे तो नारकों मे उत्पन्न होता है।
२ पृथिवी-राजि समान क्रोध मे प्रवर्तमान जीव काल करे तो तिर्यग्योनिक जीवों मे उत्पन्न होता है।
३ वालुका राजिसमान क्रोध मे प्रवर्तमान जीव काल करे तो मनुष्यो मे उत्पन्न होता है।
४ उदक राजिसमान क्रोध मे प्रवर्तमान जीव काल करे तो देवो मे उत्पन्न होता है (३५४)।

विवेचन—उदक (जल) की रेखा जैसे तुरन्त मिट जाती है, उसी प्रकार अन्तर्मुहूर्त के भीतर उपशान्त होनेवाले क्रोध को सञ्ज्वलन क्रोध कहा गया है। बालु मे खिंची रेखा जैसे वायु आदि के द्वारा एक पक्ष के भीतर मिट जाती है, इसी प्रकार पाक्षिक प्रतिक्रमण के समय तक शान्त हो जाने वाले क्रोध को प्रत्याख्यानावरण क्रोध कहा गया है। पृथ्वी की ग्रीष्म ऋतु मे हुई रेखा वर्षा होने पर मिट जाती है, इसी प्रकार अधिक से अधिक जिस क्रोध का संस्कार एक वर्ष तक रहे और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करते हुए शान्त हो जाय, वह अप्रत्याख्यानावरण क्रोध कहा गया है। जिस क्रोध का संस्कार एक वर्ष के बाद भी दीर्घकाल तक बना रहे, उसे अनन्तानुबन्धी क्रोध कहा गया है। यही बात चारो जाति के मान, माया और लोभ के विषय मे जानना चाहिए।

यहा यह विशेष ज्ञातव्य है कि उक्त प्रकार के सस्कार को वासनाकाल कहा जाता है। अथात् उक्त कपायो की वासना (सस्कार) इतने समय तक रहता है । गोम्मटसार मे अप्रत्याख्यानावरण कपाय का उत्कृष्ट वासनाकाल छह मास कहा गया है[1] ।

भाव सूत्र

३५५—चत्तारि उदगा पण्णत्ता, त जहा—कद्दमोदए, खजणोदए, वालुओदए, सेलोदए ।

एवामेव चउव्विहे भावे पण्णत्ते, त जहा—कद्दमोदगसमाणे, खजणोदगसमाणे, वालुओदग-समाणे, सेलोदगसमाणे ।

१ कद्दमोदगसमाण भावमणुपविट्ठे जीवे काल करेइ, णेरइएसु उववज्जति । एव जाव—
२ [खजणोदगसमाण भावमणुपविट्ठे जीवे काल करेइ, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति ।
३ वालुओदगसमाण भावमणुपविट्ठे जीवे काल करेइ, मणुस्सेसु उववज्जति] ।
४ सेलोदगसमाण भावमणुपविट्ठे जीवे काल करेइ, देवेसु उववज्जति ।

उदक (जल) चार प्रकार का कहा गया है । जसे—

१ कर्दमोदक—कीचड वाला जल । २ खजनोदक—काजलयुक्त जल ।
३ वालुकोदक—वालु-युक्त जल । ४ शैलोदक—पर्वतीय जल ।

इसी प्रकार जीवो के भाव (राग-द्वेष रूप परिणाम) चार प्रकार के कहे गये हैं । जसे—

१ कदमोदक समान—अत्यन्त मलिन भाव ।
२ खजनोदक-समान—मलिन भाव ।
३ वालुकोदक-समान—अल्प मलिन भाव ।
४ शलोदक-समान—अत्यल्प मलिन या निमल भाव ।
१ कदमोदक-समान भाव मे प्रवतमान जीव काल करे तो नारको मे उत्पन्न होता है ।
२ खजनोदक-समान भाव मे प्रवतमान जीव काल करे तो तियग्योनिक जीवो मे उत्पन्न होता है ।
३ वालुकोदक-समान भाव मे प्रवर्तमान जीव काल करे ता मनुष्यो म उत्पन्न होता है ।
४ शैलोदक-समान भाव मे प्रवतमान जीव काल करे तो देवो मे उत्पन्न होता है (३५५) ।

रुत-रूप सूत्र

३५६—चत्तारि पक्खी पण्णत्ता, त जहा—रुतसपण्णे णाममेगे णो रूवसपण्णे, रूवसपण्णे णाममेगे णो रुतसपण्णे, एगे रुतसपण्णेवि रूवसपण्णेवि, एगे णो रुतसपण्णे णो रूवसपण्णे ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—रुतसपण्णे णाममेगे णो रूवसपण्णे, रूवसपण्णे णाममेगे णो रुतसपण्णे, एगे रुतसपण्णेवि रूवसपण्णेवि, एगे णो रुतसपण्णे णो रूवसपण्णे ।

चार प्रकार के पक्षी हाते हैं । जैसे—

१ रुत-सम्पन्न, रूप-सम्पन्न नही—कोई पक्षी स्वर-सम्पन्न (मधुर स्वर वाला) होता है, किन्तु रूप-सम्पन्न (देखने मे सुन्दर) नही होता, जसे कोयल ।

---

१ अतोमुहुत्त पक्ख छम्मास सखऽसखणतभव ।
सजलणादीयाण वासणकालो दु नियमेण ।। (गो० कर्मकाण्डगाथा)

२ रूप-सम्पन्न, स्वर-सम्पन्न नही—कोई पक्षी रूप-सम्पन्न होता है, किन्तु स्वर-सम्पन्न नही होता, जैसे तोता।
३ स्वर-सम्पन्न भी, रूप सम्पन्न भी—कोई पक्षी स्वर-सम्पन्न भी होता है और रूप-सम्पन्न भी, जैसे मोर।
४ न स्वर-सम्पन्न, न रूप-सम्पन्न—कोई पक्षी न स्वर-सम्पन्न होता है और न रूप-सम्पन्न जैसे काक (कौआ)।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ स्वर-सम्पन्न, रूप सम्पन्न नही—कोई पुरुष मधुर स्वर से सम्पन्न होता है, किन्तु सुन्दर रूप से सम्पन्न नही होता।
२ रूप सम्पन्न, स्वर-सम्पन्न नही—कोई पुरुष सुन्दर रूप से सम्पन्न होता है, किन्तु मधुर स्वर से सम्पन्न नही होता है।
३ स्वर-सम्पन्न भी, रूप-सम्पन्न भी—कोई पुरुष स्वर से भी सम्पन्न होता है और रूप से भी सम्पन्न होता है।
४ न स्वर सम्पन्न, न रूप-सम्पन्न—कोई पुरुष न स्वर से ही सम्पन्न होता है और न रूप से ही सम्पन्न होता है (३५६)।

प्रीतिक-अप्रीतिक-सूत्र

३५७—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—पत्तिय करेमीतेगे पत्तिय करेति, पत्तिय करेमीतेगे अप्पत्तिय करेति, अप्पत्तिय करेमीतेगे पत्तिय करेति, अप्पत्तिय करेमीतेगे अप्पत्तिय करेति।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ प्रीति करू, प्रीतिकर—कोई पुरुष 'मैं अमुक व्यक्ति के साथ प्रीति करू' (अथवा अमुक की प्रतीति करू) ऐसा विचार कर प्रीति (प्रतीति) करता है।
२ प्रीति करू, अप्रीतिकर—कोई पुरुष 'मैं अमुक व्यक्ति के साथ प्रीति करू', ऐसा विचार कर भी अप्रीति करता है।
३ अप्रीति करू प्रीतिकर—कोई पुरुष 'मैं अमुक व्यक्ति के साथ अप्रीति करू', ऐसा विचार कर भी प्रीति करता है।
४ अप्रीति करू, अप्रीतिकर—कोई पुरुष 'मैं अमुक व्यक्ति के साथ अप्रीति करू', ऐसा विचार कर अप्रीति ही करता है (३५७)।

३५८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—अप्पणो णाममेगे पत्तिय करेति णो परस्स, परस्स णाममेगे पत्तिय करेति णो अप्पणो, एगे अप्पणोवि पत्तिय करेति परस्सवि, एगे णो अप्पणो पत्तिय करेति णो परस्स।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ आत्म-प्रीतिकर, पर प्रीतिकर नही—कोई पुरुष अपने आप से प्रीति करता है, किन्तु दूसरे से प्रीति नही करता है।

२ पर-प्रीतिकर, आत्म-प्रीतिकर नही—कोई पुरुष पर से प्रीति करता है, किन्तु अपने आप से प्रीति नही करता है।
३ आत्म-प्रीतिकर भी, पर-प्रीतिकर भी—कोई पुरुष अपने से भी प्रीति करता है और पर से भी प्रीति करता है।
४ न आत्म-प्रीतिकर न पर-प्रीतिकर—कोई पुरुष न अपने आप से प्रीति करता है और न पर से भी प्रीति करता है (३५८)।

३५९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—पत्तिय पवेसामीतेगे पत्तिय पवेसेति, पत्तिय पवेसामीतेगे अप्पत्तिय पवेसेति, अप्पत्तिय पवेसामीतेगे पत्तिय पवेसेति, अप्पत्तिय पवेसामीतेगे अप्पत्तिय पवेसेति।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—
१ प्रीति-प्रवेशेच्छु, प्रीति प्रवेशक—कोई पुरुष 'दूसरे के मन मे प्रीति उत्पन्न करू', ऐसा विचार कर प्रीति उत्पन्न करता है।
२ प्रीति-प्रवेशेच्छु, अप्रीति प्रवेशक—कोई पुरुष 'दूसरे के मन मे प्रीति उत्पन्न करू' ऐसा विचार कर भी अप्रीति उत्पन्न करता है।
३ अप्रीति प्रवेशेच्छु, प्रीति-प्रवेशक—कोई पुरुष 'दूसरे के मन मे अप्रीति उत्पन्न करू' ऐसा विचार कर भी प्रीति उत्पन्न करता है।
४ अप्रीति-प्रवेशेच्छु, अप्रीति-प्रवेशक—कोई पुरुष दूसरे के मन मे अप्रीति उत्पन्न करू' ऐसा विचार कर अप्रीति उत्पन्न करता है (३५९)।

३६०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—अप्पणो णाममेगे पत्तिय पवेसेति णो परस्स, परस्स णाममेगे पत्तिय पवेसेति णो अप्पणो, एगे अप्पणोवि पत्तिय पवेसेति परस्सवि, एगे णो अप्पणो पत्तिय पवेसेति णो परस्स।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ आत्म-प्रीति-प्रवेशक, पर प्रीति-प्रवेशक नही—कोई पुरुष अपने मन मे प्रीति (अथवा प्रतीति) का प्रवेश कर लेते हैं किन्तु दूसरे के मन मे प्रीति का प्रवेश नही कर पाते।
२ पर-प्रीति प्रवेशक, आत्म-प्रीति-प्रवेशक नही—कोई पुरुष दूसरे के मन मे प्रीति का प्रवेश कर देते हैं, किन्तु अपने मन मे प्रीति का प्रवेश नही कर पाते।
३ आत्म-प्रीति-प्रवेशक भी, पर-प्रीति-प्रवेशक भी—कोई पुरुष अपने मन मे भी प्रीति का प्रवेश कर पाता है और पर के मन मे भी प्रीति का प्रवेश कर देता है।
४ न आत्म प्रीति प्रवेशक, न पर-प्रीति-प्रवेशक—कोई पुरुष न अपने मन मे प्रीति का प्रवेश कर पाता है और न पर के मन मे प्रीति का प्रवेश कर पाता है (३६०)।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार ने 'पत्तिय' इस प्राकृत पद के दो अर्थ किये हैं—एक—स्वार्थ मे 'क' प्रत्यय मानकर प्रीति अर्थ किया है और दूसरा—'प्रत्यय' अर्थात् प्रतीति या विश्वास अर्थ भी किया है। जैसे प्रथम अर्थ के अनुसार उक्त चारो सूत्रो की व्याख्या की गई है, उसी प्रकार प्रतीति

अथ को दष्टि मे रखकर उक्त सूत्रों के चारा अगो की व्याख्या करनी चाहिए । जैसे कोई पुरप अपनी प्रतीति करता है, दूसरे की नही इत्यादि ।

जो पुरुप दूसरे के मन मे प्रीति या प्रतीति उत्पन्न करना चाहते ह और प्रीति या प्रतीति उत्पन्न कर देते हैं उनकी ऐसी प्रवृत्ति के तीन कारण टीकाकार न बतलाये ह—स्थिर-परिणामक हाना, उचित सन्मान करने की निपुणता और सौभाग्यशालिता । जिस पुरुप मे ये तीनो गुण होते ह, वह सहज मे ही दूसरे के मन मे प्रीति या प्रतीति उत्पन्न कर देता है किन्तु जिसमे ये गुण नही होते हैं, वह वैसा नही कर पाता ।

जो पुरुप दूसरे के मन मे अप्रीति या अप्रतीति उत्पन्न करना चाहता ह, किन्तु उत्पन्न नही कर पाता, ऐसी मनोवृत्ति की व्याख्या भी टीकाकार ने दो प्रकार से की है—

१ अप्रीति या अप्रतीति उत्पन्न करने के पूवकालिक भाव उत्तरकाल मे दूर हो जाने पर दूसरे के मन म अप्रीति या अप्रतीति उत्पन्न नही कर पाता ।
२ अप्रीति या अप्रतीतिजनक कारण के होने पर भी सामने वाले व्यक्ति का स्वभाव प्रीति या प्रतीति के योग्य हाने से मनुष्य उससे अप्रीति या अप्रतीति नही कर पाता है ।

'पत्तिय पवेसामीतेगे पत्तिय पवेसेति' इत्यादि का अथ टीकाकार के सकेतानुसार इस प्रकार भी किया जा सकता है—

१ कोई पुरुप दसरे के मन मे 'यह प्रीति या प्रतीति करता है', ऐसी छाप जमाना चाहता है और जमा भी देता ह ।
२ कोई पुरुप दूसरे के मन मे 'यह प्रीति या प्रतीति करता ह' ऐसी छाप जमाना चाहता है, किन्तु जमा नही पाता ।
३ कोई पुरुप दूसरे के मन मे 'यह अप्रीति या अप्रतीति करता है' ऐसी छाप जमाना चाहता है और जमा भी देता है ।
४ कोई पुरुप दूसरे क मन मे 'यह अप्रीति या अप्रतीति करता है' ऐसी छाप जमाना चाहता है और जमा नही पाता ।

इसी प्रकार सामने वाले व्यक्ति के आत्म-साधक या मूल पुरुप की अपेक्षा भी चारा भगा की व्याख्या की जा सकती है ।

उपकार सूत्र

३६१—चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, त जहा—पत्तोवए, पुप्फोवए, फलोवए, छायोवए ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—पत्तोवारुक्खसमाणे, पुप्फोवारुक्खसमाणे, फलोवारुक्खसमाणे, छायोवारुक्खसमाणे ।

वृक्ष चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१ पत्रोपग—कोई वृक्ष पत्ता से सम्पन्न होता है ।
२ पुष्पोपग—कोई वृक्ष फूला से सम्पन्न होता है ।
२ फलोपग—कोई वृक्ष फला से सम्पन्न हाता है ।

४ छायोपग—कोई वृक्ष छाया से सम्पन्न होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ पत्रोपग वृक्ष समान—कोई पुरुष पत्तों वाले वृक्ष के समान स्वयं सम्पन्न रहता है किन्तु दूसरों को कुछ नहीं देता।

२ पुष्पोपग वृक्ष-समान—कोई पुरुष फूलों वाले वृक्ष के समान अपनी सुगंध दूसरों को देता है।

३ फलोपग वृक्ष-समान—कोई पुरुष फलों वाले वृक्ष के समान अपना धनादि दूसरों को देता है।

४ छायोपग वृक्ष-समान—कोई पुरुष छाया वाले वृक्षों के समान अपनी शीतल छाया में दूसरों को आश्रय देता है (३६१)।

विवेचन—उक्त अर्थ लौकिक पुरुषों की अपेक्षा से किया गया है। लोकोत्तर पुरुषों की अपेक्षा चारों भंगों का अर्थ इस प्रकार करना चाहिए—

१ कोई गुरु पत्तों वाले वृक्ष के समान अपनी श्रुत-सम्पदा अपने तक ही सीमित रखता है।

२ कोई गुरु फूल वाले वृक्ष के समान शिष्यों को सूत्र-पाठ की वाचना देता है।

३ कोई गुरु फल वाले वृक्ष के समान शिष्यों को सूत्र के अर्थ की वाचना देता है।

४ कोई गुरु छाया वाले वृक्ष के समान शिष्यों को सूत्रार्थ का परावर्तन एवं अपाय-संरक्षण आदि के द्वारा निरन्तर आश्रय देता है।

आश्वास-सूत्र

३६२—भारण्ण वहमाणस्स चत्तारि आसासा पण्णत्ता, तं जहा—

१ जत्थ णं अंसाओ अंसं साहरइ, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।

२ जत्थवि य णं उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।

३ जत्थवि य णं णागकुमारावाससि वा सुवण्णकुमारावाससि वा वासं उवेति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।

४ जत्थवि य णं आवकहाए चिट्ठति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।

एवामेव समणोवासगस्स चत्तारि आसासा पण्णत्ता, तं जहा—

१ जत्थवि य णं सीलव्वत-गुणव्वत-वेरमण पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं पडिवज्जति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।

२ जत्थवि य णं सामाइयं देसावगासियं सम्ममणुपालेइ, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।

३ जत्थवि य णं चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेइ, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।

४ जत्थवि य णं अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा झूसणा झूसिते भत्तपाण पडियाइक्खिते पाओवगते कालमणवकंखमाणे विहरति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।

भार को वहन करने वाले पुरुष के लिए चार आश्वास (श्वास लेने के स्थान या विश्राम) कहे गये हैं। जैसे—

१ जहा वह अपने भार को एक कधे से दूसरे कन्धे पर रखता है, वह उसका पहला आश्वास कहा गया है।
२ जहा वह अपना भार भूमि पर रख कर मल मूत्र का विसर्जन करता है, वह उसका दूसरा आश्वास कहा गया है।
३ जहा वह किसी नागकुमारावास या सुपर्णकुमारावास आदि देवस्थान पर रात्रि मे बसता है, वह तीसरा आश्वास कहा गया है।
४ जहा वह भार-वहन से मुक्त होकर यावज्जीवन (स्थायी रूप मे) रहता है, वह चौथा आश्वास कहा गया है।

इसी प्रकार श्रमणोपासक (श्रावक) के चार आश्वास कहे गये हैं। जैसे—

१ जिस समय वह शीलव्रत, गुणव्रत, पाप विरमण, प्रत्याख्यान और पोषधोपवास को स्वीकार करता है, तब वह उसका पहला आश्वास होता है।
२ जिस समय वह सामायिक और देशावकाशिक व्रत का सम्यक् प्रकार से परिपालन करता है, तब वह उसका दूसरा आश्वास है।
३ जिस समय वह अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णमासी के दिन परिपूर्ण पोषध का सम्यक प्रकार परिपालन करता है, तब वह उसका तीसरा आश्वास कहा गया है।
४ जिस समय वह जीवन के अन्त मे अपश्चिम मारणान्तिक सलेखना की आराधना से युक्त होकर भक्त पान का त्याग कर पादोपगमन सथारा को स्वीकार कर मरण की आकाक्षा नही करता हुआ समय व्यतीत करता है वह उसका चौथा आश्वास कहा गया है (३६२)।

उदित अस्तमित सूत्र

३६३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—उदितोदिते णाममेगे, उदितत्थमिते णाममेगे, अत्थमितोदिते णाममेगे, अत्थमितत्थमिते णाममेगे।

भरहे राया चाउरतचक्कवट्टी ण उदितोदिते, बभदत्ते ण राया चाउरतचक्कवट्टी उदितत्थमिते, हरिएसबले ण अणगारे अत्थमितोदिते, काले ण सोयरिये अत्थमितत्थमिते।

पुरुष चार प्रकार के होते हैं। जसे—

१ उदितोदित—कोई पुरुष प्रारम्भ मे उदित (उन्नत) होता है और अन्त तक उन्नत रहता है। जसे चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा।
२ उदितास्तमित—कोई पुरुष प्रारम्भ मे उन्नत होता है, किन्तु अन्त में अस्तमित होता है। अर्थात् सर्वसमृद्धि से भ्रष्ट होकर दुर्गति का पात्र होता है जसे—चातुरन्त चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त राजा।
३ अस्तमितोदित—कोई पुरुष प्रारम्भ म सम्पदा-विहीन होता है, किन्तु जीवन के अन्त म उन्नति को प्राप्त करता है। जसे—हरिकेशबल अनगार।
४ अस्तमितास्तमित—कोई पुरुष प्रारम्भ में भी सुकुलादि से भ्रष्ट और जीवन के अन्त मे भी दुर्गति का पात्र होता है। जसे कालशौकरिक (३६३)।

युग्म-सूत्र

३६४—चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता, त जहा—कडजुम्मे, तेयोए, दावरजुम्मे, कलिग्रोए।

युग्म (राशि विशेष) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ कृतयुग्म—जिस राशि मे चार का भाग देन पर शेष कुछ न रहे, वह कृतयुग्म राशि है। जैसे—१६ का अक।

२ त्र्योज—जिस राशि मे चार का भाग देने पर तीन शेष रहें वह त्र्योज राशि है। जैसे—१५ का अक।

३ द्वापरयुग्म—जिस राशि मे चार का भाग देने पर दो शेष रह, वह द्वापरयुग्म राशि है। जैसे—१४ का अक।

४ कल्योज—जिस राशि मे चार का भाग देने पर एक शेष रहे, वह कल्योज राशि है। जसे—१३ का अक (३६४)।

३६५—णेरइयाण चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता, त जहा—कडजुम्मे, तेग्रोए, दावरजुम्मे, कलिग्रोए।

नारक जीव चारो प्रकार के युग्मवाले कहे गये हैं। जैसे—

१ कृतयुग्म, २ त्र्योज, ३ द्वापरयुग्म, ४ कल्योज (३६५)।

३६६—एव—असुरकुमाराण जाव थणियकुमाराण। एव—पुढविकाइयाण ग्राउ तेउ वाउ वणस्सतिकाइयाण बेंदियाण तेंदियाण चउरिंदियाण पंचिंदियतिरिक्ख जोणियाण मणुस्साण वाणमतर जोइसियाण वेमाणियाण—सव्वेसि जहा णेरइयाण।

इसी प्रकार असुरकुमारो से लेकर स्तनितकुमारो तक, इसी प्रकार पृथिवी, अप्, तेज, वायु वनस्पतिकायिको के, द्वीन्द्रियो के, त्रीन्द्रिया के, चतुरिन्द्रियो के, पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिको के, मनुष्यो के, वानव्यन्तरो के, ज्योतिष्को के और वमानिको के सभी के नारकियो के समान चारो युग्म कहे गये हैं (३६६)।

विवेचन—सभी दण्डको मे चारो युग्मराशियो के जीव पाये जाने का कारण यह है कि जन्म और मरण की अपेक्षा इनकी राशि मे हीनाधिकता होती रहती है, इसलिए किसी समय विवक्षित राशि कृतयुग्म पाई जाती है, तो किसी समय त्र्योज आदि राशि पाइ जाती है।

शूर सूत्र

३६७—चत्तारि सूरा पण्णत्ता, त जहा—तवसूरे, खतिसूरे, दाणसूरे, जुद्धसूरे।

खतिसूरा अरहता, तवसूरा अणगारा, दाणसूरे वेसमणे, जुद्धसूरे वासुदेवे।

शूर चार प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ क्षान्ति या शान्ति शूर, २ तप शूर ३ दानशूर, ४ युद्धशूर।

१ अर्हन्त भगवन्त क्षान्तिशूर होते है। २ अनगार साधु तप शूर होते हैं। ३ वैश्रवण देव दानशूर होते हैं। ४ वासुदेव युद्धशूर होते हैं (३६७)।

उच्च-नीच सूत्र

३६८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—उच्चे णाममेगे उच्चच्छदे, उच्चे णाममेगे णीयच्छदे, णीए णाममेगे उच्चच्छदे, णीए णाममेगे णीयच्छदे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ उच्च और उच्चच्छन्द—कोई पुरुष कुल वैभव आदि मे उच्च होता है और उच्च-विस्तार, उदारता आदि से भी उच्च होता है।
२ उच्च, किन्तु नीचच्छन्द—कोई पुरुष कुल, वैभव आदि मे उच्च होता है, किन्तु नीच विचार, कृपणता आदि से नीच होता है।
३ नीच, किन्तु उच्चच्छन्द—कोई पुरुष जाति-कुलादि से नीच होता है, किन्तु उच्च-विचार, उदारता आदि से उच्च होता है।
४ नीच और नीचच्छन्द—कोई पुरुष जाति-कुलादि से भी नीच होता है और विचार, कृपणता आदि से भी नीच होता है (३६८)।

लेश्या सूत्र

३६९—असुरकुमाराण चत्तारि लेसाओ पण्णत्ताओ, त जहा—कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा, तेउलेसा।

असुरकुमारो मे चार लेश्याए कही गई है। जैसे—

१ कृष्णलेश्या, २ नीललेश्या, ३ कापोतलेश्या, ४ तेजोलेश्या (३६९)।

३७०—एव जाव थणियकुमाराण। एव—पुढविकाइयाण आउ-वणस्सइकाइयाण वाणमतराण—सव्वेसि जहा असुरकुमाराण।

इसी प्रकार यावत स्तनितकुमारो के, इसी प्रकार पृथिवीकायिक, अपकायिक, वनस्पति-कायिक जीवो के और वानव्यन्तर देवो के, इन सब के असुरकुमारो के समान चार-चार लेश्याए होती हैं (३७०)।

युक्त अयुक्त-सूत्र

३७१—चत्तारि जाणा पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

यान चार प्रकार के होते हैं। जैसे—

१ युक्त और युक्त—कोई यान (सवारी का वाहन गाडी आदि) युक्त (बल आदि से सयुक्त) और युक्त (वस्त्रादि से सुसज्जित) होता है।

२ युक्त और अयुक्त—कोई यान युक्त (बैल आदि से संयुक्त) होने पर भी अयुक्त (वस्त्रादि से सुसज्जित नहीं) होता है।
३ अयुक्त और युक्त—कोई यान अयुक्त (बैल आदि से असंयुक्त) होने पर भी युक्त (वस्त्रादि से सुसज्जित) होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त—कोई यान न बैल आदि से ही संयुक्त होता है और न वस्त्रादि से ही सुसज्जित होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं। जैसे—
१ युक्त और युक्त—कोई पुरुष धनादि से संयुक्त और योग्य आचार आदि से, तथा योग्य वेष-भूषा से भी संयुक्त होता है।
२ युक्त और अयुक्त—कोई पुरुष धनादि से संयुक्त होने पर भी योग्य आचार और योग्य वेष-भूषादि से युक्त नहीं होता है।
३ अयुक्त और युक्त—कोई पुरुष धनादि से संयुक्त नहीं होने पर भी योग्य आचार और योग्य वेष-भूषादि से संयुक्त होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त—कोई पुरुष न धनादि से ही युक्त होता है और न योग्य आचार और वेष-भूषादि से ही युक्त होता है (३७१)।

३७२—चत्तारि जाणा पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

पुनः यान चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ युक्त और युक्त-परिणत—कोई यान युक्त (बैल आदि से संयुक्त) और युक्त परिणत (पहले योग्य सामग्री से युक्त न होने पर भी) बाद में सामग्री के भाव से परिणत हो जाता है।
२ युक्त और अयुक्त-परिणत—कोई यान बैल आदि से युक्त होने पर भी अयुक्त-परिणत होता है।
३ अयुक्त और युक्त-परिणत—कोई यान बैल आदि से अयुक्त होने पर भी युक्त-परिणत होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त परिणत—कोई यान न तो बैल आदि से युक्त ही होता है और न युक्त-परिणत ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ युक्त और युक्त-परिणत—कोई पुरुष सत्कार्य से युक्त और युक्त परिणत होता है।
२ युक्त और अयुक्त-परिणत—कोई पुरुष सत्कार्य से युक्त होकर भी अयुक्त-परिणत होता है।
३ अयुक्त और युक्त-परिणत—कोई पुरुष सत्कार्य से युक्त न होने पर भी युक्त परिणत जैसा होता है।

४ अयुक्त और अयुक्त-परिणत—कोई पुरुष न सत्कार्य से युक्त होता है और न युक्त परिणत ही होता है (३७२)।

३७३—चत्तारि जाणा पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

पुन यान चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ युक्त और युक्तरूप—कोई यान बैल आदि से युक्त और युक्तरूप वाला होता है।
२ युक्त और अयुक्त-रूप—कोई यान बैल आदि से युक्त, किन्तु अयुक्तरूप वाला होता है।
३ अयुक्त और युक्तरूप—कोई यान बैल आदि से अयुक्त, किन्तु युक्तरूप वाला होता है।
४ अयुक्त और अयुक्तरूप—कोई यान न बैल आदि से युक्त होता है और न युक्तरूप वाला ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ युक्त और युक्तरूप—कोई पुरुष गुणों से भी युक्त होता है और रूप से (वेष आदि से) भी युक्त होता है।
२ युक्त और अयुक्तरूप—कोई पुरुष गुणो से युक्त होता है, किन्तु रूप से युक्त नही होता है।
३ अयुक्त और युक्तरूप—कोई पुरुष गुणो से अयुक्त होता है, किन्तु रूप से युक्त होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त रूप—कोई पुरुष न गुणों से ही युक्त होता है और न रूप से ही युक्त होता है (३७३)।

३७४—चत्तारि जाणा पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

पुन यान चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ युक्त और युक्तशोभ—कोई यान बैल आदि से भी युक्त होता है और वस्त्राभरणादि की शोभा से भी युक्त होता है।
२ युक्त और अयुक्तशोभ—कोई यान बैल आदि से तो युक्त होता है, किन्तु शोभा से युक्त नहीं होता है।
३ अयुक्त और युक्त शोभ—कोई यान बैल आदि से युक्त नहीं होता, किन्तु शोभा से युक्त होता है।
४ अयुक्त और अयुक्तशोभ—कोई यान न बैलादि से युक्त होता है और न शोभा से ही युक्त होता है।

२ युक्त और अयुक्त—कोई यान युक्त (बैल आदि से संयुक्त) होने पर भी अयुक्त (वस्त्रादि से सुसज्जित नहीं) होता है।
३ अयुक्त और युक्त—कोई यान अयुक्त (बैल आदि से असंयुक्त) होने पर भी युक्त (वस्त्रादि से सुसज्जित) होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त—कोई यान न बैल आदि से ही संयुक्त होता है और न वस्त्रादि से ही सुसज्जित होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं। जैसे—
१ युक्त और युक्त—कोई पुरुष धनादि से संयुक्त और योग्य आचार आदि से, तथा योग्य वेष-भूषा से भी संयुक्त होता है।
२ युक्त और अयुक्त—कोई पुरुष धनादि से संयुक्त होने पर भी योग्य आचार और योग्य वेष-भूषादि से युक्त नहीं होता है।
३ अयुक्त और युक्त—कोई पुरुष धनादि से संयुक्त नहीं होने पर भी योग्य आचार और योग्य वेष भूषादि से संयुक्त होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त—कोई पुरुष न धनादि से ही युक्त होता है और न योग्य आचार और वेष-भूषादि से ही युक्त होता है (३७१)।

३७२—चत्तारि जाणा पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

पुनः यान चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ युक्त और युक्त-परिणत—कोई यान युक्त (बैल आदि से संयुक्त) और युक्त परिणत (पहले योग्य सामग्री से युक्त न होने पर भी) बाद में सामग्री के भाव से परिणत हो जाता है।
२ युक्त और अयुक्त-परिणत—कोई यान बैल आदि से युक्त होने पर भी अयुक्त परिणत होता है।
३ अयुक्त और युक्त परिणत—कोई यान बैल आदि से अयुक्त होने पर भी युक्त परिणत होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त-परिणत—कोई यान न तो बैल आदि से युक्त ही होता है और न युक्त परिणत ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ युक्त और युक्त-परिणत—कोई पुरुष सत्कार्य से युक्त और युक्त परिणत होता है।
२ युक्त और अयुक्त-परिणत—कोई पुरुष सत्कार्य से युक्त होकर भी अयुक्त-परिणत होता है।
३ अयुक्त और युक्त-परिणत—कोई पुरुष सत्कार्य से युक्त न होने पर भी युक्त-परिणत जैसा होता है।

४ अयुक्त और अयुक्त-परिणत—कोई पुरुष न सत्काय से युक्त होता है और न युक्त-परिणत ही होता है (३७२)।

३७३—चत्तारि जाणा पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

पुनः यान चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ युक्त और युक्तरूप—कोई यान बैल आदि से युक्त और युक्तरूप वाला होता है।
२ युक्त और अयुक्त-रूप—कोई यान बैल आदि से युक्त, किन्तु अयुक्तरूप वाला होता है।
३ अयुक्त और युक्तरूप—कोई यान बैल आदि से अयुक्त, किन्तु युक्तरूप वाला होता है।
४ अयुक्त और अयुक्तरूप—कोई यान न बैल आदि से युक्त होता है और न युक्तरूप वाला ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ युक्त और युक्तरूप—कोई पुरुष गुणों से भी युक्त होता है और रूप से (वेष आदि से) भी युक्त होता है।
२ युक्त और अयुक्तरूप—कोई पुरुष गुणों से युक्त होता है, किन्तु रूप से युक्त नहीं होता है।
३ अयुक्त और युक्तरूप—कोई पुरुष गुणों से अयुक्त होता है, किन्तु रूप से युक्त होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त रूप—कोई पुरुष न गुणों से ही युक्त होता है और न रूप से ही युक्त होता है (३७३)।

३७४—चत्तारि जाणा पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

पुनः यान चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ युक्त और युक्तशोभ—कोई यान बैल आदि से भी युक्त होता है और वस्त्राभरणादि की शोभा से भी युक्त होता है।
२ युक्त और अयुक्तशोभ—कोई यान बैल आदि से तो युक्त होता है, किन्तु शोभा से युक्त नहीं होता है।
३ अयुक्त और युक्त शोभ—कोई यान बैल आदि से युक्त नहीं होता, किन्तु शोभा से युक्त होता है।
४ अयुक्त और अयुक्तशोभ—कोई यान न बैलादि से युक्त होता है और न शोभा से ही युक्त होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ युक्त और युक्त-शोभ—कोई पुरुष गुणों से युक्त होता है और उचित शोभा से भी युक्त होता है।
२ युक्त और अयुक्त शोभ—कोई पुरुष गुणों से युक्त होता है, किन्तु शोभा से युक्त नहीं होता है।
३ अयुक्त और युक्त-शोभ—कोई पुरुष गुणों से तो युक्त नहीं होता है, किन्तु शोभा से युक्त होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त शोभ—कोई पुरुष न गुणों से युक्त होता है और न शोभा से ही युक्त होता है (३७४)।

३७५—चत्तारि जुग्गा पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

चार प्रकार के युग्य (घोड़ा आदि अथवा गोल्ल देश में प्रसिद्ध दो हाथ का चौकोर यान-विशेष) कहे गये हैं। जैसे—

१ युक्त और युक्त—कोई युग्य उपकरणों (काठी आदि) से भी युक्त होता है और उत्तम गति (चाल) से भी युक्त होता है।
२ युक्त और अयुक्त—कोई युग्य उपकरणों से तो युक्त होता है, किन्तु उत्तम गति से युक्त नहीं होता है।
३ अयुक्त और युक्त—कोई युग्य उपकरणों से तो युक्त नहीं होता, किन्तु उत्तम गति से युक्त होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त—कोई युग्य न उपकरणों से युक्त होता है और न उत्तम गति से युक्त होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ युक्त और युक्त—कोई पुरुष सम्पत्ति से भी युक्त होता है और सदाचार से भी युक्त होता है।
२ युक्त और अयुक्त—कोई पुरुष सम्पत्ति से तो युक्त होता है, किन्तु सदाचार से युक्त नहीं होता है।
३ अयुक्त और युक्त—कोई पुरुष सम्पत्ति से तो युक्त नहीं होता, किन्तु सदाचार से युक्त होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त—कोई पुरुष न सम्पत्ति से ही युक्त होता है और न सदाचार से ही युक्त होता है (३७५)।

३७६—चत्तारि आलावगा, तथा जुग्गेण वि, पडिवक्खो, तहेव पुरिसजाया जाव सोभेत्ति।

एव जहा जाणेण [चत्तारि जुग्गा पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते]।

पुन युग्य चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ युक्त और युक्त-परिणत—कोई युग्य युक्त और युक्त-परिणत होता है।
२ युक्त और अयुक्त-परिणत—कोई युग्य युक्त होकर भी अयुक्त-परिणत होता है।
३ अयुक्त और युक्त-परिणत—कोई युग्य अयुक्त होकर भी युक्त-परिणत होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त-परिणत—कोई युग्य न युक्त ही होता है और न युक्त-परिणत ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं—

१ युक्त और युक्त परिणत—कोई पुरुष गुणो से भी युक्त होता है और योग्य परिणतिवाला भी होता है।
२ युक्त और अयुक्त-परिणत—कोई पुरुष गुणो से तो युक्त होता है, किन्तु योग्य परिणति-वाला नही होता।
३ अयुक्त और युक्त-परिणत—कोई पुरुष गुणो से युक्त नही होता, किन्तु योग्य परिणति वाला होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त परिणत—कोई पुरुष न गुणो से ही युक्त होता है और न योग्य परिणति वाला होता है (३७६)।

३७७—[चत्तारि जुग्गा पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे]।

पुन युग्य चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ युक्त और युक्त रूप—कोई युग्य युक्त और योग्य रूप वाला होता है।
२ युक्त और अयुक्त रूप—कोई युग्य युक्त, किन्तु अयोग्य रूप वाला होता है।
३ अयुक्त और युक्त रूप—कोई युग्य अयुक्त, किन्तु योग्य रूप वाला होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त रूप—कोई युग्य अयुक्त और अयुक्त रूप वाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ युक्त और युक्तरूप—कोई पुरुष युक्त और योग्य रूप वाला होता है।
२ युक्त और अयुक्तरूप—कोई पुरुष युक्त, किन्तु अयोग्य रूप वाला होता है।
३ अयुक्त और युक्तरूप—कोई पुरुष अयुक्त, किन्तु योग्य रूप वाला होता है।
४ अयुक्त और अयुक्तरूप—कोई पुरुष अयुक्त और अयोग्य रूप वाला होता है (३७७)।

३७८—[चत्तारि जुग्गा पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे]।

पुन युग्य चार प्रकार के कहे गये हैं। जसे—

१ युक्त और युक्त-शोभ—कोई युग्य युक्त और युक्त शोभा वाला होता है।
२ युक्त और अयुक्त-शोभ—कोई युग्य युक्त, किन्तु अयुक्त शोभा वाला होता है।
३ अयुक्त और युक्त शोभ—कोई युग्य अयुक्त, किन्तु युक्त शोभा वाला होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त-शोभ—कोई युग्य अयुक्त और अयुक्त शोभा वाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ युक्त और युक्त-शोभ—कोई पुरुष युक्त और युक्त शोभा वाला होता है।
२ युक्त और अयुक्त-शोभ—कोई पुरुष युक्त, किन्तु अयुक्त शोभा वाला होता है।
३ अयुक्त और युक्त-शोभ—कोई पुरुष अयुक्त, किन्तु युक्त शोभा वाला होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त-शोभ—कोई पुरुष अयुक्त और अयुक्त शोभा वाला होता है (३७८)।

सारथि सूत्र

३७९—चत्तारि सारही पण्णत्ता, त जहा—जोयावइत्ता णाम एगे णो विजोयावइत्ता, विजोयावइत्ता णाममेगे णो जोयावइत्ता, एगे जोयावइत्तावि विजोयावइत्तावि, एगे णो जोयावइत्ता णो विजोयावइत्ता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जोयावइत्ता णाम एगे णो विजोयावइत्ता, विजोयावइत्ता णाम एगे णो जोयावइत्ता, एगे जोयावइत्तावि विजोयावइत्तावि, एगे णो जोयावइत्ता णो विजोयावइत्ता।

सारथि (रथ वाहक) चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ योजयिता, न वियोजयिता—कोई सारथि घोडे आदि को रथ मे जोडने वाला होता है, किन्तु उन्हे मुक्त करने वाला नही होता।
२ वियोजयिता, न योजयिता—कोई सारथि घोडे आदि को रथ से मुक्त करने वाला होता है, किन्तु उन्हे रथ मे जोडने वाला नही होता।
३ योजयिता भी, वियोजयिता भी—कोई सारथि घोडे आदि को रथ मे जोडने वाला भी होता है और उन्हे रथ से मुक्त करने वाला भी होता है।
४ न योजयिता, न वियोजयिता—कोई सारथि न रथ मे घोडे आदि को जोडता ही है और न उन्हे रथ से मुक्त ही करता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जसे—

१ योजयिता, न वियोजयिता—कोई पुरुष दूसरों को उत्तम कार्यों से युक्त तो करता है किन्तु अनुचित कार्यों से उन्हें वियुक्त नही करता।

२ वियोजयिता, न योजयिता—कोई पुरुष दूसरो को अयोग्य कार्यो मे वियुक्त तो करता है, किन्तु उत्तम कार्यों मे युक्त नही करता।
३ योजयिता भी, वियोजयिता भी—कोई पुरुष दूसरो को उत्तम कार्यों मे युक्त भी करता है और अनुचित कार्यो से वियुक्त भी करता है।
४ न योजयिता, न वियोजयिता—कोई दूसरो को उत्तम कार्यों मे न युक्त ही करता है और न अनुचित कार्यो से वियुक्त ही करता है (३७९)।

युक्त अयुक्त सूत्र

३८०—चत्तारि हया पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

घोडे चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—
१ युक्त और युक्त—कोई घोडा जीन पलान मे युक्त होता है और वेग मे भी युक्त होता है।
२ युक्त और अयुक्त—कोई घोडा जीन पलान मे युक्त तो होता है, किन्तु वेग से युक्त नही होता।
३ अयुक्त और युक्त—कोई घोडा जीन-पलान से अयुक्त होकर भी वेग मे युक्त होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त—कोई घोडा न जीन पलान से युक्त होता है और न वेग से ही युक्त होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ युक्त और युक्त—कोई पुरुष वस्त्राभरण से युक्त है और उत्साह आदि गुणो से भी युक्त है।
२ युक्त और अयुक्त—कोई पुरुष वस्त्राभरण से तो युक्त है, किन्तु उत्साह आदि गुणो से युक्त नही है।
३ अयुक्त और युक्त—कोई पुरुष वस्त्राभरण से अयुक्त है, किन्तु उत्साह आदि गुणो से युक्त है।
४ अयुक्त और अयुक्त—कोई पुरुष न वस्त्राभरण से युक्त है और न उत्साह आदि गुणो से युक्त है (३८०)।

३८१—एव जुत्तपरिणते, जुत्तरूवे, जुत्तसोभे सव्वेसि पडिवक्खो पुरिसजाता। चत्तारि हया पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

पुन घोडे चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ युक्त और युक्त परिणत—कोई घोडा युक्त भी होता है और युक्त-परिणत भी होता है।

३७८—[चत्तारि जुग्गा पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे]।

पुन युग्य चार प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ युक्त और युक्त-शोभ—कोई युग्य युक्त और युक्त शोभा वाला होता है।
२ युक्त और अयुक्त-शोभ—कोई युग्य युक्त, किन्तु अयुक्त शोभा वाला होता है।
३ अयुक्त और युक्त शोभ—कोई युग्य अयुक्त, किन्तु युक्त शोभा वाला होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त शोभ—कोई युग्य अयुक्त और अयुक्त शोभा वाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये ह। जैसे—

१ युक्त और युक्त-शोभ—कोई पुरुष युक्त और युक्त शोभा वाला होता है।
२ युक्त और अयुक्त शोभ—कोई पुरुष युक्त, किन्तु अयुक्त शोभा वाला होता है।
३ अयुक्त और युक्त शोभ—कोई पुरुष अयुक्त, किन्तु युक्त शोभा वाला होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त-शोभ—कोई पुरुष अयुक्त और अयुक्त शोभा वाला होता है (३७८)।

सारथि सूत्र

३७९—चत्तारि सारही पण्णत्ता, त जहा—जोयावइत्ता णाम एगे णो विजोयावइत्ता, विजोयावइत्ता णाममेगे णो जोयावइत्ता, एगे जोयावइत्तावि विजोयावइत्तावि, एगे णो जोयावइत्ता णो विजोयावइत्ता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जोयावइत्ता णाम एगे णो विजोयावइत्ता, विजोयावइत्ता णाम एगे णो जोयावइत्ता, एगे जोयावइत्तावि विजोयावइत्तावि, एगे णो जोयावइत्ता णो विजोयावइत्ता।

सारथि (रथ वाहक) चार प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ योजयिता, न वियोजयिता—कोई सारथि घोडे आदि को रथ मे जोडने वाला होता है, किन्तु उन्हे मुक्त करने वाला नही होता।
२ वियोजयिता, न योजयिता—कोई सारथि घोडे आदि को रथ से मुक्त करने वाला होता है, किन्तु उन्हे रथ मे जोडने वाला नही होता।
३ योजयिता भी, वियोजयिता भी—कोई सारथि घोडे आदि को रथ मे जोडने वाला भी होता है और उन्हे रथ से मुक्त करने वाला भी होता है।
४ न योजयिता, न वियोजयिता—कोई सारथि न रथ मे घोडे आदि को जोडता ही है और न उन्हे रथ से मुक्त ही करता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ योजयिता, न वियोजयिता—कोई पुरुष दूसरों को उत्तम कार्यों से युक्त तो करता है किन्तु अनुचित कार्यों से उन्हे वियुक्त नही करता।

२ वियोजयिता, न योजयिता—कोई पुरुष दूसरे को अयोग्य कार्यों से वियुक्त तो करता है, किन्तु उत्तम कार्यों मे युक्त नही करता ।
३ योजयिता भी, वियोजयिता भी—कोई पुरुष दूसरा को उत्तम कार्यों मे युक्त भी करता है और अनुचित कार्यों से वियुक्त भी करता है ।
४ न योजयिता, न वियोजयिता—कोई दूसरा को उत्तम कार्यों मे न युक्त ही करता है और न अनुचित कार्यों से वियुक्त ही करता है (३७९) ।

युक्त-अयुक्त सूत्र

३८०—चत्तारि हया पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते ।

घोडे चार प्रकार के कहे गये है । जैसे—
१ युक्त और युक्त—कोई घोडा जीन पलान से युक्त होता है और वेग मे भी युक्त होता है ।
२ युक्त और अयुक्त—कोई घोडा जीन-पलान से युक्त तो होता है, किन्तु वेग से युक्त नही होता ।
३ अयुक्त और युक्त—कोई घोडा जीन पलान मे अयुक्त होकर भी वेग से युक्त होता है ।
४ अयुक्त और अयुक्त—कोई घोडा न जीन पलान से युक्त होता है और न वेग से ही युक्त होता है ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—
१ युक्त और युक्त—कोई पुरुष वस्त्राभरण से युक्त है और उत्साह आदि गुणो मे भी युक्त है ।
२ युक्त और अयुक्त—कोई पुरुष वस्त्राभरण मे तो युक्त है, किन्तु उत्साह आदि गुणो से युक्त नहीं है ।
३ अयुक्त और युक्त—कोई पुरुष वस्त्राभरण मे अयुक्त है, किन्तु उत्साह आदि गुणो से युक्त है ।
४ अयुक्त और अयुक्त—कोई पुरुष न वस्त्राभरण से युक्त है और न उत्साह आदि गुणो से युक्त है (३८०) ।

३८१—एव जुत्तपरिणते, जुत्तरूवे, जुत्तसोभे, सव्वेसि पडिवक्खो पुरिसजाता । चत्तारि हया पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते ।

पुन घोडे चार प्रकार के कहे गये है । जैसे—
१ युक्त और युक्त-परिणत—कोई घोडा युक्त भी होता है और युक्त-परिणत भी होता है ।

२ युक्त और अयुक्त-परिणत—कोई घोडा युक्त होकर भी अयुक्त परिणत होता है।
३ अयुक्त और युक्त परिणत—कोई घोडा अयुक्त होकर भी युक्त-परिणत होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त परिणत—कोई घोडा अयुक्त भी होता है और अयुक्त परिणत भी होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ युक्त और युक्त-परिणत—कोई पुरुष युक्त होकर युक्त-परिणत होता है।
२ युक्त और अयुक्त परिणत—कोई पुरुष युक्त होकर अयुक्त परिणत होता है।
३ अयुक्त और युक्त परिणत—कोई पुरुष अयुक्त होकर युक्त-परिणत होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त परिणत—कोई पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त-परिणत होता है (३८१)।

३८२—एव जहा हयाण तहा गयाण वि भाणियव्व, पडिवक्खे तहेव पुरिसजाया। [चत्तारि हया पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।]

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे]।

पुन घोडे चार प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ युक्त और युक्तरूप—कोई घोडा युक्त और युक्तरूप वाला होता है।
२ युक्त और अयुक्तरूप—कोई घोडा युक्त, किन्तु अयुक्तरूप वाला होता है।
३ अयुक्त और युक्तरूप—कोई घोडा अयुक्त, किन्तु युक्तरूप वाला होता है।
४ अयुक्त और अयुक्तरूप—कोई घोडा अयुक्त और अयुक्तरूप वाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये ह। जैसे—

१ युक्त और युक्तरूप—कोई पुरुष युक्त और युक्तरूप वाला होता है।
२ युक्त और अयुक्तरूप—कोई पुरुष युक्त, किन्तु अयुक्तरूप वाला होता है।
३ अयुक्त और युक्तरूप—कोई पुरुष अयुक्त, किन्तु युक्तरूप वाला होता है।
४ अयुक्त और अयुक्तरूप—कोई पुरुष अयुक्त और अयुक्तरूप वाला होता है (३८२)।

३८३—[चत्तारि हया पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे]।

पुन घोडे चार प्रकार के कहे गये हैं। जसे—

१ युक्त और युक्तशोभ—कोई घोडा युक्त और युक्तशोभा वाला होता है।
२ युक्त और अयुक्तशोभ—कोई घोडा युक्त, किन्तु अयुक्तशोभा वाला होता है।
३ अयुक्त और युक्तशोभ—कोई घोडा अयुक्त, किन्तु युक्तशोभा वाला होता है।
४ अयुक्त और अयुक्तशोभ—कोई घोडा अयुक्त और अयुक्तशोभा वाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ युक्त और युक्तशोभ—कोई पुरुष युक्त और युक्तशोभा वाला होता है।
२ युक्त और अयुक्तशोभ—कोई पुरुष युक्त, किन्तु अयुक्तशोभा वाला होता है।
३ अयुक्त और युक्तशोभ—कोई पुरुष अयुक्त, किन्तु युक्तशोभा वाला होता है।
४ अयुक्त और अयुक्तशोभ—कोई पुरुष अयुक्त और अयुक्तशोभा वाला होता है (३८३)।

३८४—[चत्तारि गया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते]।

हाथी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ युक्त और युक्त—कोई हाथी युक्त होकर युक्त ही होता है।
२ युक्त और अयुक्त—कोई हाथी युक्त होकर भी अयुक्त होता है।
३ अयुक्त और युक्त—कोई हाथी अयुक्त होकर भी युक्त होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त—कोई हाथी अयुक्त होकर अयुक्त ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ युक्त और युक्त—कोई पुरुष युक्त होकर युक्त ही होता है।
२ युक्त और अयुक्त—कोई पुरुष युक्त होकर भी अयुक्त होता है।
३ अयुक्त और युक्त—कोई पुरुष अयुक्त होकर भी युक्त होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त—कोई पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त ही होता है (३८४)।

३८५—[चत्तारि गया पण्णत्ता तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते]।

पुनः हाथी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ युक्त और युक्त-परिणत—कोई हाथी युक्त होकर युक्त-परिणत होता है।
२ युक्त और अयुक्त परिणत—कोई हाथी युक्त होकर भी अयुक्त परिणत होता है।
३ अयुक्त और युक्त-परिणत—कोई हाथी अयुक्त होकर भी युक्त-परिणत होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त-परिणत—कोई हाथी अयुक्त होकर भी युक्त परिणत होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ युक्त और युक्त परिणत—कोई पुरुष युक्त होकर युक्त परिणत होता है।
२ युक्त और अयुक्त-परिणत—कोई पुरुष युक्त होकर भी अयुक्त परिणत होता है।
३ अयुक्त और युक्त परिणत—कोई पुरुष अयुक्त होकर भी युक्त-परिणत होता है।
४ अयुक्त और अयुक्त परिणत—कोई पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त-परिणत होता है (३८५)।

३८६—[चत्तारि गया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे]।

पुनः हाथी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ युक्त और युक्तरूप—कोई हाथी युक्त होकर युक्तरूप वाला होता है।
२ युक्त और अयुक्तरूप—कोई हाथी युक्त होकर भी अयुक्तरूप वाला होता है।
३ अयुक्त और युक्तरूप—कोई हाथी अयुक्त होकर भी युक्तरूप वाला होता है।
४ अयुक्त और अयुक्तरूप—कोई हाथी अयुक्त होकर अयुक्तरूप वाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ युक्त और युक्तरूप—कोई पुरुष युक्त होकर युक्तरूप वाला होता है।
२ युक्त और अयुक्तरूप—कोई पुरुष युक्त होकर भी अयुक्तरूप वाला होता है।
३ अयुक्त और युक्तरूप—कोई पुरुष अयुक्त होकर भी युक्तरूप वाला होता है।
४ अयुक्त और अयुक्तरूप—कोई पुरुष अयुक्त होकर अयुक्तरूप वाला होता है (३८६)।

३८७—[चत्तारि गया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे]।

पुनः हाथी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ युक्त और युक्तशोभ—कोई हाथी युक्त होकर युक्त शोभा वाला होता है।
२ युक्त और अयुक्तशोभ—कोई हाथी युक्त होकर भी अयुक्तशोभा वाला होता है।
३ अयुक्त और युक्तशोभ—कोई हाथी अयुक्त होकर भी युक्तशोभा वाला होता है।
४ अयुक्त और अयुक्तशोभ—कोई हाथी अयुक्त होकर अयुक्तशोभा वाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ युक्त और युक्तशोभ—कोई पुरुष युक्त होकर युक्तशोभा वाला होता है।
२ युक्त और अयुक्तशोभ—कोई पुरुष युक्त होकर भी अयुक्तशोभा वाला होता है।
३ अयुक्त और युक्तशोभ—कोई पुरुष अयुक्त होकर भी युक्तशोभा वाला होता है।
४ अयुक्त और अयुक्तशोभ—कोई पुरुष अयुक्त होकर अयुक्तशोभा वाला होता है (३८७)।

पथ-उत्पथ सूत्र

३८८—चत्तारि जुग्गारिता पण्णत्ता, तं जहा—पथजाई णाममेगे णो उप्पहजाई, उप्पहजाई णाममेगे णो पथजाई, एगे पथजाईवि उप्पहजाईवि, एगे णो पथजाई णो उप्पहजाई।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पथजाई णाममेगे णो उप्पहजाई, उप्पहजाई णाममेगे णो पथजाई, एगे पथजाईवि उप्पहजाईवि, एगे णो पथजाई णो उप्पहजाई।

युग्य (जोते जानेवाले घोड़े आदि) का ऋत (गमन) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ पथयायी, न उत्पथयायी—कोई युग्य मार्गगामी होता है, किन्तु उन्मार्गगामी नहीं होता।
२ उत्पथयायी, न पथयायी—कोई युग्य उन्मार्गगामी होता है, किन्तु मार्गगामी नहीं होता।
३ पथयायी-उत्पथयायी—कोई युग्य मार्गगामी भी होता है और उन्मार्गगामी भी होता है।
४ न पथयायी, न उत्पथयायी—कोई युग्य न मार्गगामी होता है और न उन्मार्गगामी होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ पथयायी, न उत्पथयायी—कोई पुरुष मार्गगामी होता है, किन्तु उन्मार्गगामी नहीं होता।
२ उत्पथयायी, न पथयायी—कोई पुरुष उन्मार्गगामी होता है, किन्तु मार्गगामी नहीं होता।
३ पथयायी भी, उत्पथयायी भी—कोई पुरुष मार्गगामी भी होता है और उन्मार्गगामी भी होता है।
४ न पथयायी, न उत्पथयायी—कोई पुरुष न मार्गगामी होता है और न उन्मार्गगामी होता है (३८८)।

रूप शील सूत्र

३८९—चत्तारि पुप्फा पण्णत्ता, तं जहा—रूवसपण्णे णाममेगे णो गंधसपण्णे, गंधसपण्णे णाममेगे णो रूवसपण्णे, एगे रूवसपण्णेवि गंधसपण्णेवि, एगे णो रूवसपण्णे णो गंधसपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रूवसपण्णे णाममेगे णो सीलसपण्णे, सीलसपण्णे णाममेगे णो रूवसपण्णे एगे रूवसपण्णेवि सीलसपण्णेवि, एगे णो रूवसपण्णे णो सीलसपण्णे।

पुष्प चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ रूपसम्पन्न न गन्धसम्पन्न—कोई फूल रूपसम्पन्न होता है, किन्तु गन्धसम्पन्न नहीं होता। जैसे—आकुलि का फूल।
२ गन्धसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई फूल गन्धसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता। जैसे—बकुल का फूल।
३ रूपसम्पन्न भी, गन्धसम्पन्न भी—कोई फूल रूपसम्पन्न भी होता है और गन्धसम्पन्न भी होता है। जैसे—जुही का फूल।
४ न रूपसम्पन्न, न गन्धसम्पन्न—कोई फूल न रूपसम्पन्न होता है और न गन्धसम्पन्न ही होता है। जैसे—बदरी (बोरडी) का फूल।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ रूपसम्पन्न, न शीलसम्पन्न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु शीलसम्पन्न नहीं होता।
२ शीलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष शीलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।

३ रूपसम्पन्न भी, शीलसम्पन्न भी—कोई पुरुष रूपसम्पन्न भी होता है और शीलसम्पन्न भी होता है।
४ न रूपसम्पन्न, न शीलसम्पन्न—कोई पुरुष न रूपसम्पन्न होता है और न शीलसम्पन्न ही होता है (३८९)।

जाति-सूत्र

३९०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जातिसपण्णे णाममेगे णो कुलसपण्णे, कुलसपण्णे णाममेगे णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णेवि कुलसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे णो कुलसपण्णे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ जातिसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई पुरुष जातिसम्पन्न (उत्तम मातृपक्षवाला) होता है, किन्तु कुलसम्पन्न (उत्तम पितृपक्षवाला) नही होता।
२ कुलसम्पन्न, न जातिसम्पन्न—कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नही होता।
३ जातिसम्पन्न भी, कुलसम्पन्न भी—कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है और कुलसम्पन्न भी होता है।
४ न जातिसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई पुरुष न जातिसम्पन्न होता है और न कुलसम्पन्न ही होता है (३९०)।

३९१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जातिसपण्णे णाममेगे णो बलसपण्णे, बलसपण्णे णाममेगे णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णेवि बलसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे णो बलसपण्णे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—
१ जातिसम्पन्न, बलसम्पन्न न—कोई पुरुष जातिसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नही होता।
२ बलसम्पन्न, जातिसम्पन्न न—कोई पुरुष बलसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नही होता।
३ जातिसम्पन्न भी, बलसम्पन्न भी—कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है और बलसम्पन्न भी होता है।
४ न जातिसम्पन्न, न बल सम्पन्न—कोई पुरुष न जातिसम्पन्न होता है और न बलसम्पन्न ही होता है (३९१)।

३९२—एव जातीए य, रूवेण य, चत्तारि आलावगा, एव जातीए य, सुएण य, एव जातीए य, सीलेण य, एव जातीए य, चरित्तेण य, एव कुलेण य, बलेण य, एव कुलेण य, रूवेण य, कुलेण य, सुत्तेण य, कुलेण य, सीलेण य, कुलेण य चरित्तेण य [चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—जातिसपण्णे णाममेगे णो रूवसपण्णे रूवसपण्णे णाममेगे णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णेवि रूवसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे णो रूवसपण्णे]।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ जातिसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष जातिसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नही होता।
२ रूपसम्पन्न, न जातिसम्पन्न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नही होता।
३ जातिसम्पन्न भी, रूपसम्पन्न भी—कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।
४ न जातिसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष न जातिसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है (३९२)।

३९३—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जातिसपण्णे णाममेगे णो सुयसपण्णे, सुयसपण्णे णाममेगे णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णे वि सुयसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे णो सुयसपण्णे।]

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ जातिसम्पन्न, श्रुतसम्पन्न न—कोई पुरुष जातिसम्पन्न होता है, किन्तु श्रुतसम्पन्न नही होता।
२ श्रुतसम्पन्न, जातिसम्पन्न न—कोई पुरुष श्रुतसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नही होता।
३ जातिसम्पन्न भी, श्रुतसम्पन्न भी—कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है और श्रुतसम्पन्न भी होता है।
४ न जातिसम्पन्न, न श्रुतसम्पन्न—कोई पुरुष न जातिसम्पन्न होता है और न श्रुतसम्पन्न ही होता है (३९३)।

३९४—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जातिसपण्णे णाममेगे णो सीलसपण्णे, सीलसपण्णे णाममेगे णो जातिसपण्णे एगे जातिसपण्णेवि सीलसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे णो सीलसपण्णे।]

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ जातिसम्पन्न, शीलसम्पन्न न—कोई पुरुष जातिसम्पन्न होता है किन्तु शीलसम्पन्न नही होता।
२ शीलसम्पन्न, जातिसम्पन्न न—कोई पुरुष शीलसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नही होता।
३ जातिसम्पन्न भी, शीलसम्पन्न भी—कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है शीलसम्पन्न भी होता है।
४ न जातिसम्पन्न, न शीलसम्पन्न—कोई पुरुष न जातिसम्पन्न होता है और न शीलसम्पन्न ही होता है (३९४)।

३९५—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जातिसपण्णे णाममेगे णो चरित्तसपण्णे, चरित्तसपण्णे णाममेगे णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णवि चरित्तसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे णो चरित्तसपण्णे।]

पुन पुरुप चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१ जातिसम्पन्न, चरित्रसम्पन्न न—कोई पुरुप जातिसम्पन्न होता है, किन्तु चरित्रसम्पन्न नही होता ।
२ चरित्रसम्पन्न, जातिसम्पन्न न—कोई पुरुप चरित्रसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नही होता ।
३ जातिसम्पन्न भी, चरित्रसम्पन्न भी—कोई पुरुप जातिसम्पन्न भी होता है और चरित्र-सम्पन्न भी होता है ।
४ न जातिसम्पन्न, न चरित्रसम्पन्न—कोई पुरुप न जातिसम्पन्न होता है और न चरित्र-सम्पन्न ही होता है (३९५) ।

३९६—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—कुलसपण्णे णाममेगे णो बलसपण्णे, बलसपण्णे णाममेगे णो कुलसपण्णे एगे कुलसपण्णेवि बलसपण्णवि, एगे णो कुलसपण्णे णो बलसपण्णे ।]

पुन पुरुप चार प्रकार के कहे गये ह । जैसे—

१ कुलसम्पन्न, बलसम्पन्न न—कोई पुरुप कुलसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नही होता ।
२ बलसम्पन्न, कुलसम्पन्न न—कोई पुरुप बलसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता ।
३ कुलसम्पन्न भी, बलसम्पन्न भी—कोई पुरुप कुलसम्पन्न भी होता है और बलसम्पन्न भी होता है ।
४ न कुलसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई पुरुप न कुलसम्पन्न होता है और न बलसम्पन्न ही होता है (३९६) ।

३९७—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—कुलसपण्णे णाममेगे णो रूवसपण्णे, रूवसपण्णे णाममेगे णो कुलसपण्णे, एगे कुलसपण्णेवि रूवसपण्णेवि, एगे णो कुलसपण्णे णो रूवसपण्णे ।]

पुन पुरुप चार प्रकार के कहे गये ह जैसे—

१ कुलसम्पन्न, रूपसम्पन्न न—कोई पुरुप कुलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नही होता ।
२ रूपसम्पन्न, कुलसम्पन्न न—कोई पुरुप रूपसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नही होता ।
३ कुलसम्पन्न भी, रूपसम्पन्न भी—कोई पुरुप कुलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है ।
४ न कुलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुप न कुलसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है (३९७) ।

३९८—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—कुलसपण्णे णाममेगे णो सुयसपण्णे, सुयसपण्णे णाममेगे णो कुलसपण्णे, एगे कुलसपण्णेवि सुयसपण्णेवि, एगे णो कुलसपण्णे णो सुयसपण्णे ।]

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है जैसे—

१ कुलसम्पन्न, श्रुतसम्पन्न न—कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु श्रुतसम्पन्न नही होता।
२ श्रुतसम्पन्न, कुलसम्पन्न न—कोई पुरुष श्रुतसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नही होता।
३ कुलसम्पन्न भी, श्रुतसम्पन्न भी—कोई पुरुष कुलसम्पन्न भी होता है और श्रुतसम्पन्न भी होता है।
४ न कुलसम्पन्न, न श्रुतसम्पन्न—कोई पुरुष न कुलसम्पन्न होता है और न श्रुतसम्पन्न ही होता है (३९८)।

३९९—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—कुलसपण्णे णाममेगे णो सीलसपण्णे, सीलसपण्णे णाममेगे णो कुलसपण्णे, एगे कुलसपण्णेवि सीलसपण्णेवि, एगे णो कुलसपण्णे णो सीलसपण्णे।]

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कुलसम्पन्न शीलसम्पन्न न—कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु शीलसम्पन्न नही होता।
२ शीलसम्पन्न, कुलसम्पन्न न—कोई पुरुष शीलसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नही होता।
३ कुलसम्पन्न भी, शीलसम्पन्न भी—कोई पुरुष कुलसम्पन्न भी होता है और शीलसम्पन्न भी होता है।
४ न कुलसम्पन्न, न शीलसम्पन्न—कोई पुरुष न कुलसम्पन्न होता है और न शीलसम्पन्न ही होता है (३९९)।

४००—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—कुलसपण्णे णाममेगे णो चरित्तसपण्णे, चरित्तसपण्णे णाममेगे णो कुलसपण्णे, एगे कुलसपण्णेवि चरित्तसपण्णेवि, एगे णो कुलसपण्णे णो चरित्तसपण्णे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ कुलसम्पन्न, चरित्रसम्पन्न न—कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु चरित्रसम्पन्न नही होता।
२ चरित्रसम्पन्न, कुलसम्पन्न न—कोई पुरुष चरित्रसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नही होता।
३ कुलसम्पन्न भी, चरित्रसम्पन्न भी—कोई पुरुष कुलसम्पन्न भी होता है और चरित्रसम्पन्न भी होता है।
४ न कुलसम्पन्न, न चरित्रसम्पन्न—कोई पुरुष न कुलसम्पन्न होता है और न चरित्रसम्पन्न ही होता है (४००)।

बल सूत्र

४०१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—बलसपण्णे णाममेगे णो रूवसपण्णे, रूवसपण्णे णाममेगे णो बलसपण्णे, एगे बलसपण्णेवि रूवसपण्णेवि, एगे णो बलसपण्णे णो रूवसपण्णे।

पुरुप चार प्रकार के कहे गये हैं जसे—

१ वलसम्पन्न, रूपसम्पन्न न—कोइ पुरुप बलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नही होता।
२ रूपसम्पन्न, वलसम्पन्न न—कोइ पुरप रूपसम्पन्न होता ह, किन्तु बलसम्पन्न नही होता।
३ बलसम्पन्न भी, रूपसम्पन्न भी—कोइ पुरुप बलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता ह।
४ न बलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोइ पुरुप न बलसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है (४०१)।

४०२—एव बलेण य, सुत्तेण य, एव बलेण य, सीलेण य, एव बलेण य, चरित्तेण य, [चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—बलसपण्णे णाममेगे णो सुयसपण्णे, सुयसपण्णे णाममेगे णो बलसपण्णे, एगे बलसपण्णेवि सुयसपण्णेवि, एगे णो बलसपण्णे णो सुयसपण्णे]।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ बलसम्पन्न, श्रुतसम्पन्न न—कोइ पुरुप बलसम्पन्न होता है, किन्तु श्रुतसम्पन्न नही होता।
२ श्रुतसम्पन्न, बलसम्पन्न न—कोइ पुरुप श्रुतसम्पन्न होता है किन्तु बलसम्पन्न नही होता।
३ बलसम्पन्न भी, श्रुतसम्पन्न भी—कोइ पुरुप बलसम्पन्न भी होता है और श्रुतसम्पन्न भी होता है।
४ न बलसम्पन्न, न श्रुतसम्पन्न—कोई पुरुप न बलसम्पन्न होता है और न श्रुतसम्पन्न ही होता ह (४०२)।

४०३—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—बलसपण्णे णाममेगे णो सीलसपण्णे, सीलसपण्णे णाममेगे णो बलसपण्णे, एगे बलसपण्णेवि सीलसपण्णेवि, एगे णो बलसपण्णे णो सीलसपण्णे।]

पुन पुरुप चार प्रकार के कहे गये हैं। जसे—

१ बलसम्पन्न, शीलसम्पन्न न—कोई पुरुप बलसम्पन्न होता है, किन्तु शीलसम्पन्न नही होता।
२ शीलसम्पन्न, बलसम्पन्न न—कोई पुरुप शीलसम्पन्न होता ह, किन्तु बलसम्पन्न नही होता।
३ बलसम्पन्न भी, शीलसम्पन्न भी—कोई पुरुप बलसम्पन्न भी होता है और शीलसम्पन्न भी होता है।

४ न बलसम्पन्न, न शीलसम्पन्न—कोई पुरुष न बलसम्पन्न होता है और न शीलसम्पन्न ही होता है (४०३)।

४०४—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—बलसपण्णे णाममेगे णो चरित्तसपण्णे, चरित्तसपण्णे णाममेगे णो बलसपण्णे, एगे बलसपण्णेवि चरित्तसपण्णेवि, एगे णो बलसपण्णे णो चरित्तसपण्णे ।]

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ बलसम्पन्न, चरित्रसम्पन्न न—कोई पुरुष बलसम्पन्न होता है, किन्तु चरित्रसम्पन्न नही होता।
२ चरित्रसम्पन्न, बलसम्पन्न न—कोई पुरुष चरित्रसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नही होता।
३ बलसम्पन्न भी, चरित्रसम्पन्न भी—कोई पुरुष बलसम्पन्न भी होता है और चरित्रसम्पन्न भी होता है।
४ न बलसम्पन्न, न चरित्रसम्पन्न—कोई पुरुष न बलसम्पन्न होता है और न चरित्रसम्पन्न ही होता है (४०४)।

रूप-सूत्र

४०५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—रूवसपण्णे णाममेगे णो सुयसपण्णे एव रूवेण य सीलेण य, रूवेण य चरित्तेण य, सुयसपण्ण णाममेग णो रूवसपण्णे, एगे रूवसपण्णेवि सुयसपण्णेवि, एगे णो रूवसपण्णे णो सुयसपण्ण।]

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ रूपसम्पन्न, श्रुतसम्पन्न न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु श्रुतसम्पन्न नही होता।
२ श्रुतसम्पन्न, रूपसम्पन्न न—कोई पुरुष श्रुतसम्पन्न होता है, किन्तु रूप-सम्पन्न नही होता।
३ रूपसम्पन्न भी, श्रुतसम्पन्न भी—कोई पुरुष रूपसम्पन्न भी होता है, और श्रुतसम्पन्न भी होता है।
४ न रूपसम्पन्न, न श्रुतसम्पन्न—कोई पुरुष न रूपसम्पन्न होता है, और न श्रुतसम्पन्न ही होता है (४०५)।

४०६—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—रूवसपण्णे णाममेगे णो सीलसपण्णे, सीलसपण्णे णाममेगे णो रूवसपण्णे, एगे रूवसपण्णेवि सीलसपण्णेवि, एगे णो रूवसपण्ण णो सीलसपण्णे ।]

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ रूपसम्पन्न, शीलसम्पन्न न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु शीलसम्पन्न नही होता।

२ शीलसम्पन्न, रूपसम्पन्न न—कोई पुरुष शीलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता ।
३ रूपसम्पन्न भी, शीलसम्पन्न भी—कोई पुरुष रूपसम्पन्न भी होता है और शीलसम्पन्न भी होता है ।
४ न रूपसम्पन्न, न शीलसम्पन्न—कोई पुरुष न रूपसम्पन्न होता है और न शीलसम्पन्न ही होता है (४०६) ।

४०७—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रूवसपण्णे णाममेगे णो चरित्तसपण्णे, चरित्तसपण्णे णाममेगे णो रूवसपण्णे, एगे रूवसपण्णेवि चरित्तसपण्णेवि, एगे णो रूवसपण्णे णो चरित्तसपण्णे ।]

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है । जैसे—

१ रूपसम्पन्न, चरित्रसम्पन्न न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु चरित्रसम्पन्न नहीं होता ।
२ चरित्रसम्पन्न, रूपसम्पन्न न—कोई पुरुष चरित्रसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता ।
३ रूपसम्पन्न भी, चरित्रसम्पन्न भी—कोई पुरुष रूपसम्पन्न भी होता है और चरित्रसम्पन्न भी होता है ।
४ न रूपसम्पन्न, न चरित्रसम्पन्न—कोई पुरुष न रूपसम्पन्न होता है और न चरित्रसम्पन्न ही होता है (४०७) ।

श्रुत-सूत्र

४०८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुयसपण्णे णाममेगे णो सीलसपण्णे, सीलसपण्णे णाममेगे णो सुयसपण्णे, एगे सुयसपण्णेवि सीलसपण्णेवि, एगे णो सुयसपण्णे णो सीलसपण्णे ।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१ श्रुतसम्पन्न, शीलसम्पन्न न—कोई पुरुष श्रुतसम्पन्न होता है, किन्तु शीलसम्पन्न नहीं होता ।
२ शीलसम्पन्न, श्रुतसम्पन्न न—कोई पुरुष शीलसम्पन्न होता है, किन्तु श्रुतसम्पन्न नहीं होता ।
३ श्रुतसम्पन्न भी, शीलसम्पन्न भी—कोई पुरुष श्रुतसम्पन्न भी होता है और शीलसम्पन्न भी होता है ।
४ न श्रुतसम्पन्न, न शीलसम्पन्न—कोई पुरुष न श्रुतसम्पन्न होता है और न शीलसम्पन्न ही होता है (४०८) ।

४०९—एवं सुएण य चरित्तेण य [चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुयसपण्णे णाममेगे

णो चरित्तसपण्णे, चरित्तसपण्णे णाममेगे णो सुयसपण्णे, एगे सुयसपण्णेवि चरित्तसपण्णेवि, एगे णो सुयसपण्णे णो चरित्तसपण्णे।]

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ श्रुतसम्पन्न, चरित्रसम्पन्न न—कोई पुरुष श्रुतसम्पन्न होता है, किन्तु चरित्रसम्पन्न नहीं होता।
२ चरित्रसम्पन्न, श्रुतसम्पन्न न—कोई पुरुष चरित्रसम्पन्न होता है, किन्तु श्रुतसम्पन्न नही होता।
३ श्रुतसम्पन्न भी, चरित्रसम्पन्न भी—कोई पुरुष श्रुतसम्पन्न भी होता है और चरित्र-सम्पन्न भी होता है।
४ न श्रुतसम्पन्न, न चरित्रसम्पन्न—कोई पुरुष न श्रुतसम्पन्न होता है और न चरित्रसम्पन्न ही होता है (४०९)।

शील-सूत्र

४१०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सीलसपण्णे णाममेगे णो चरित्तसपण्णे, चरित्तसपण्णे णाममेगे णो सीलसपण्णे, एगे सीलसपण्णेवि चरित्तसपण्णेवि, एगे णो सीलसपण्णे णो चरित्तसपण्णे। एते एक्कवीस भगा भाणियव्वा।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ शीलसम्पन्न, चरित्रसम्पन्न न—कोइ पुरुष शीलसम्पन्न होता है, किन्तु चरित्र से सम्पन्न नही होता।
२ चरित्रसम्पन्न, शीलसम्पन्न न—कोइ पुरुष चरित्रसम्पन्न होता है, किन्तु शीलसम्पन्न नही होता।
३ शीलसम्पन्न भी, चरित्रसम्पन्न भी—कोइ पुरुष शीलसम्पन्न भी होता है और चरित्रसम्पन्न भी होता है।
४ न शीलसम्पन्न, न चरित्रसम्पन्न—कोइ पुरुष न शीलसम्पन्न होता है और न चरित्र-सम्पन्न ही होता है (४१०)।

आचार्य-सूत्र

४११—चत्तारि फला पण्णत्ता, त जहा—आमलगमहुरे, मुद्दियामहुरे, खीरमहुरे, खडमहुरे।
एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, त जहा—आमलगमहुरफलसमाणे, जाव [मुद्दियामहुर-फलसमाणे, खीरमहुरफलसमाणे] खडमहुरफलसमाणे।

चार प्रकार के फल कहे गये है। जैसे—

१ आमलक-मधुर—आवले के समान मधुर।
२ मृद्वीका-मधुर—द्राक्षा के समान मधुर।
३ क्षीर-मधुर—दूध के समान मधुर।
४ खण्ड-मधुर—खाड-शक्कर के समान मधुर।

इसी प्रकार आचार्य भी चार प्रकार के कहे गये है । जसे—

१ आमलकमधुर फल समान—कोइ आचार्य आवले के फल समान अल्पमधुर होते हैं ।
२ मृद्वीकामधुर फल समान—कोइ आचार्य दाख के फल समान मधुर होते हैं ।
३ क्षीरमधुर फल समान—काइ आचार्य दूध-मधुर फल समान अधिक मधुर होते है ।
४ खण्ड मधुरफल समान—कोइ आचार्य खाड-मधुर फल समान बहुत अधिक मधुर होते हैं (४११) ।

विवेचन—जैसे आवले से अगूर आदि फल उत्तरोत्तर मधुर या मीठे होते हैं, उसी प्रकार आचार्यों के स्वभाव मे भी तर-तम-भाव को लिए हुए मधुरता पाइ जाती है, अत उनके भी चार प्रकार कहे गये ह ।

वैयावृत्य सूत्र

४१२—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—आतवेयावच्चकरे णाममेगे णो परवेयावच्चकरे, परवेयावच्चकरे णाममेगे णो आतवेयावच्चकरे, एगे आतवेयावच्चकरेवि परवेयावच्चकरेवि, एगे णो आतवेयावच्चकरे णो परवेयावच्चकरे ।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये ह । जसे—

१ आत्म-वैयावृत्यकर, न पर-वैयावृत्यकर—कोई पुरुष अपनी वैयावृत्य (सेवा-टहल) करता है, किन्तु दूसरो की वैयावृत्य नही करता ।
२ पर-वैयावृत्यकर, न आत्म-वैयावृत्यकर—कोई पुरुष दूसरो की वैयावृत्य करता है, किन्तु अपनी वैयावृत्य नही करता ।
३ आत्म वैयावृत्यकर, पर-वैयावृत्यकर—कोई मनुष्य अपनी भी वैयावृत्य करता है और दूसरो की भी वैयावृत्य करता है ।
४ न आत्म वैयावृत्यकर, न पर-वैयावृत्यकर—कोई पुरुष न अपनी वैयावृत्य ही करता है और न दूसरो की ही वैयावृत्य करता है (४१२) ।

विवेचन—स्वार्थी मनुष्य अपनी सेवा-टहल करता है, पर दूसरो की नही । निःस्वार्थी मनुष्य दूसरो की सेवा करता है, अपनी नही । श्रावक अपनी भी सेवा करता है और दूसरो की भी सेवा करता है । आलसी, मूर्ख और पादोपगमन सथारावाला या जिनकल्पी साधु न अपनी सेवा करता ह और न दूसरो की ही सेवा करता है ।

४१३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—करेति णाममेगे वेयावच्च णो पडिच्छइ, पडिच्छइ णाममेगे वेयावच्च णो करेति, एगे करेतिवि वेयावच्च पडिच्छइवि, एगे णो करेति वेयावच्च णो पडिच्छइ ।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं । जसे—

१ कोई पुरुष दूसरो की वैयावृत्य करता है, किन्तु दूसरों से अपनी वैयावृत्य नही कराता ।
२ काई पुरुष दूसरो से अपनी वैयावृत्य कराता है, किन्तु दूसरो की नही करता ।

३ कोई पुरुष दूसरा की भी वैयावृत्त्य करता है और अपनी भी वैयावृत्त्य दूसरा से कराता है।
४ कोई पुरुष न दूसरो की वैयावृत्य करता है और न दूसरा से अपनी कराता है (४१३)।

अथ मान-सूत्र

४१४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—अट्ठकरे णाममेगे णो माणकरे, माणकरे णाममेगे णो अट्ठकरे, एगे अट्ठकरेवि माणकरेवि, एगे णो अट्ठकरे णो माणकरे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—
१ अथकर, न मानकर—कोई पुरुष अथकर होता है, किन्तु अभिमान नही करता।
२ मानकर न अथकर—कोई पुरुष अभिमान करता है, किन्तु अथकर नही होता।
३ अथकर भी, मानकर भी—कोई पुरुष अथकर भी होता है और अभिमान भी करता है।
४ न अथकर, न मानकर—कोई पुरुष न अथकर होता है और न अभिमान ही करता है (४१४)।

विवेचन—'अथ' शब्द के अनेक अथ होते हैं। प्रकृत मे इसका अर्थ 'इष्ट या प्रयोजन भूत काय को करना और अनिष्ट या अप्रयाजनभूत काय का निपेध करना' ग्राह्य है। राजा के मन्त्री या पुरोहित आदि प्रथम भग की श्रेणी मे आते हैं। वे समय समय पर अपने स्वामी को इष्ट काय सुझाने और अनिष्ट काय करने का निपेध करते रहते है। किन्तु वे यह अभिमान नहीं करते कि स्वामी ने हम से इस विषय मे कुछ नही पूछा है तो हम बिना पूछे यह काय कैसे करें। कमचारी-वग भी इस प्रथम श्रेणी मे आता है। अथ का दूसरा अथ धन भी होता है। घर का कोई प्रधान सचालक धन कमाता है और घर भर का खच चलाता है, किन्तु वह यह अभिमान नही करता कि मैं धन कमाकर सब का भरण-पोषण करता हू। दूसरी श्रेणी मे वे पुरुष आते हैं जो वय, विद्या आदि मे बडे-चढे होने से अभिमान तो करते हैं, किन्तु न प्रयोजनभूत कोई काय ही करते हैं और न धनादि ही कमाते है। तीसरी श्रेणी मे मध्य वग के गृहस्थ आते है और चौथी श्रेणी मे दरिद्र, मूख और आलसी पुरुष परिगणनीय हैं। इसी प्रकार आगे कहे जाने वाले सूत्रो का भी विवेचन करना चाहिए।

४१५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—गणट्ठकरे णाममेगे णो माणकरे, माणकरे णाममेगे णो गणट्ठकरे, एगे गणट्ठकरेवि माणकरेवि, एगे णो गणट्ठक णो माणकरे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ गणाथकर, न मानकर—कोई पुरुष गण के लिए काय करता है, किन्तु अभिमान नही करता।
२ मानकर न गणाथकर—कोई पुरुष अभिमान करता है, किन्तु गण के लिए काय नही करता।
३ गणाथकर भी, मानकर भी—कोई पुरुष गण के लिए काय भी करता है और अभिमान भी करता है।
४ न गणाथकर, न मानकर—कोई पुरुष न गण के लिए कार्य ही करता है और न अभिमान ही करता है (४१५)।

विवेचन—यहा 'गण' पद से साधु सघ और श्रावक-सघ ये दोनो अथ ग्रहण करना चाहिए। यत शास्त्रो के रचयिता साधुजन रहे हैं, अत उन्होने साधुगण को लक्ष्य कर के ही इसकी व्याख्या की है। फिर भी श्रावक-गण को भी 'गण' के भीतर गिना जा सकता है। यदि इनका ग्रहण अभीष्ट न होता, तो सूत्र मे 'पुरुषजात' इस सामान्य पद का प्रयोग न किया गया होता।

४१६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—गणसगहकरे णाममेगे णो माणकरे, माणकरे णाममेगे णो गणसगहकरे, एगे गणसगहकरेवि माणकरेवि, एगे णो गणसगहकरे णो माणकरे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ गणसग्रहकर, न मानकर—कोई पुरुष गण के लिये सग्रह करता है, किन्तु अभिमान नही करता।
२ मानकर, न गणसग्रहकर—कोई पुरुष अभिमान करता है, किन्तु गण के लिए सग्रह नही करता।
३ गणसग्रहकर भी, मानकर भी—कोइ पुरुष गण के लिए सग्रह भी करता है और अभिमान भी करता है।
४ न गणसग्रहकर, न मानकर—कोइ पुरुष न गण के लिए सग्रह ही करता है और न अभिमान ही करता है। (४१६)

४१७—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—गणसोभकरे णाममेगे णो माणकरे, माणकरे णाममेगे णो गणसोभकरे, एगे गणसोभकरेवि माणकरेवि, एगे णो गणसोभकरे णो माणकरे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ गणशोभाकर, न मानकर—कोइ पुरुष अपने विद्यातिशय आदि से गण की शोभा बढाता है, किन्तु अभिमान नही करता।
२ मानकर, न गणशोभकर—कोइ पुरुष अभिमान तो करता है, किन्तु गण की कोइ शोभा नही बढाता।
३ गणशोभाकर, मानकर—कोइ पुरुष गण की शोभा भी बढाता है और अभिमान भी करता है।
४ न गणशोभाकर, न मानकर—कोई पुरुष न गण की शोभा ही बढाता है और न अभिमान ही करता है (४१७)।

४१८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—गणसोहिकरे णाममेगे णो माणकरे, माणकरे णाममेगे णो गणसोहिकरे, एगे गणसोहिकरेवि माणकरेवि, एगे णो गणसोहिकरे णो माणकरे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ गणशोधिकर न मानकर—कोइ पुरुष गण की प्रायश्चित्त आदि के द्वारा शुद्धि करता है, किन्तु अभिमान नही करता।
२ मानकर, न गणशोधिकर—कोइ पुरुष अभिमान करता है, किन्तु गण की शुद्धि नही करता।

३ गण-शोधिकर भी, अभिमानकर भी—कोइ पुरुष गण की शुद्धि भी करता है और अभिमान भी करता है।
४ न गण-शोधिकर, न मानकर—कोइ पुरुष न गण की शुद्धि ही करता है और न अभिमान ही करता है (४१८)।

धर्म सूत्र

४१९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—रूव णाममेगे जहति णो धम्म, धम्म णाममेगे जहति णो रूव, एगे रूवपि जहति धम्मपि, एगे णो रूव जहति णो धम्म।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—
१ रूप-जही, न धर्म-जही—कोइ पुरुष वेष का त्याग कर देता है, किन्तु धर्म का त्याग नही करता।
२ धर्म जही, न रूप जही—कोइ पुरुष धर्म का त्याग कर देता है, किन्तु वेष का त्याग नही करता।
३ रूप जही, धर्म-जही—कोइ पुरुष वेष का भी त्याग कर देता है और धर्म का भी त्याग कर देता है।
४ न रूप-जही, न धर्म-जही—कोइ पुरुष न वेष का ही त्याग करता है और न धर्म का ही त्याग करता है (४१९)।

४२०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—धम्म णाममेगे जहति णो गणसठिति, गणसठिति णाममेगे जहति णो धम्म, एगे धम्मवि जहति गणसठितिवि, एगे णो धम्म जहति णो गणसठिति।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जसे—
१ धर्म-जही न गणसस्थिति-जही—कोइ पुरुष धर्म का त्याग कर देता है, किन्तु गण का निवास और मर्यादा नही त्यागता है।
२ गणसस्थिति जही, न धर्म-जही—कोइ पुरुष गण का निवास और मर्यादा का त्याग कर देता है, किन्तु धर्म का त्याग नही करता।
३ धर्म-जही, गणसस्थिति-जही—कोइ पुरुष धर्म का भी त्याग कर देता है और गण का निवास और मर्यादा का भी त्याग कर देता है।
४ न धर्म-जही न गणसस्थिति-जही—कोइ पुरुष न धर्म का ही त्याग करता है और न गण का निवास और मर्यादा का ही त्याग करता है (४२०)।

४२१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—पियधम्मे णाममेगे णो दढधम्मे, दढधम्मे णाममेगे णो पियधम्मे, एगे पियधम्मेवि दढधम्मेवि, एगे णो पियधम्मे णो दढधम्मे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—
१ प्रियधर्मा, न दृढधर्मा—किसी पुरुष को धर्म तो प्रिय होता है, किन्तु वह धर्म में दृढ नही रहता।

२ दृढधर्मा, न प्रियधर्मा—कोई पुरुष स्वीकृत धर्म के पालन मे दृढ तो होता है, किन्तु अन्तरंग से उसे वह धर्म प्रिय नहीं होता।
३ प्रियधर्मा, दृढधर्मा—किसी पुरुष को धर्म प्रिय भी होता है और वह उसके पालन मे भी दृढ होता है।
४ न प्रियधर्मा, न दृढधर्मा—किसी पुरुष को न धर्म प्रिय होता है और न उसके पालन में ही दृढ होता है (४२१)।

आचार्य सूत्र

४२२—चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, त जहा—पव्वावणायरिए णाममेगे णो उवट्ठावणायरिए, उवट्ठावणायरिए णाममेगे णो पव्वावणायरिए, एगे पव्वावणायरिएवि उवट्ठावणायरिए वि, एगे णो पव्वावणायरिए णो उवट्ठावणायरिए—धम्मायरिए।

आचार्य चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ प्रव्राजनाचार्य, न उपस्थापनाचार्य—कोई आचार्य प्रव्रज्या (दीक्षा) देने वाले होते हैं, *किन्तु उपस्थापना (महाव्रतों की आरोपणा करने वाले) नहीं होते।*
२ उपस्थापनाचार्य, न प्रव्राजनाचार्य—कोई आचार्य महाव्रतो की उपस्थापना करने वाले होते हैं, किन्तु प्रव्राजनाचार्य नहीं होते।
३ प्रव्राजनाचार्य, उपस्थापनाचार्य—कोई आचार्य दीक्षा देने वाले भी होते है, और उपस्थापना करने वाले भी होते हैं।
४ *न प्रव्राजनाचार्य, न उपस्थापनाचार्य—कोई आचार्य न दीक्षा* देने वाले ही होते है और न उपस्थापना करने वाले ही होते हैं, किन्तु धर्म के प्रतिबोधक होते हैं, वह चाहे गृहस्थ हो चाहे साधु (४२२)।

४२३—चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, त जहा—उद्देसणायरिए णाममेगे णो वायणायरिए, वायणायरिए णाममेगे णो उद्देसणायरिए, एगे उद्देसणायरिएवि वायणायरिएवि, एगे णो उद्देसणायरिए णो वायणायरिए—धम्मायरिए।

पुन आचार्य चार प्रकार के कहे गये है जैसे—

१ उद्देशनाचार्य, न वाचनाचार्य—कोई आचार्य शिष्यों को अंगसूत्रों के पढने का आदेश देने वाले होते हैं, किन्तु वाचना देने वाले नहीं होते।
२ वाचनाचार्य, न उद्देशनाचार्य—कोई आचार्य वाचना देने वाले होते हैं किन्तु पठन पाठन का आदेश देने वाले नहीं होते।
३ उद्देशनाचार्य वाचनाचार्य—कोई आचार्य पठन पाठन का आदेश भी देते है और वाचना देने वाले भी होते है।
४ न उद्देशनाचार्य, न वाचनाचार्य—कोई आचार्य न पठन पाठन का आदेश देने वाले होते है और न वाचना देने वाले ही होते हैं। किन्तु धर्म का प्रतिबोध देने वाले होते हैं (४२३)।

अंतेवासी सूत्र

४२४—चत्तारि अंतेवासी पण्णत्ता, तं जहा—पव्वावणंतेवासी णाममेगे णो उवट्ठावणंतेवासी, उवट्ठावणंतेवासी णाममेगे णो पव्वावणंतेवासी, एगे पव्वावणंतेवासीवि उवट्ठावणंतेवासीवि, एगे णो पव्वावणंतेवासी णो उवट्ठावणंतेवासी—धम्मंतेवासी।

अन्तेवासी (समीप रहने वाले अर्थात् शिष्य) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ प्रव्राजनान्तेवासी न उपस्थापनान्तेवासी—कोई शिष्य प्रव्राजना अन्तेवासी होता है अर्थात् दीक्षा देने वाले आचार्य का दीक्षादान की दृष्टि से ही शिष्य होता है, किन्तु उपस्थापना की दृष्टि से अन्तेवासी नहीं होता।

२ उपस्थापनान्तेवासी, न प्रव्राजनान्तेवासी—कोई शिष्य उपस्थापना की अपेक्षा से अन्तेवासी होता है, किन्तु प्रव्राजना की अपेक्षा से अन्तेवासी नहीं होता।

३ प्रव्राजनान्तेवासी, उपस्थापनान्तेवासी—कोई शिष्य प्रव्राजना अन्तेवासी भी होता है और उपस्थापना-अन्तेवासी भी होता है (जिसने एक ही आचार्य से दीक्षा और उपस्थापना ग्रहण की हो)।

४ न प्रव्राजनान्तेवासी, न उपस्थापनान्तेवासी—कोई शिष्य न प्रव्राजना की अपेक्षा अन्तेवासी होता है और न उपस्थापना की दृष्टि से ही अन्तेवासी होता है, किन्तु मात्र धर्मोपदेश की अपेक्षा अन्तेवासी होता है अथवा अन्य आचार्य द्वारा दीक्षित एवं उपस्थापित होकर जो किसी अन्य आचार्य का शिष्यत्व स्वीकार करता है (४२४)।

४२५—चत्तारि अंतेवासी पण्णत्ता, तं जहा—उद्देसणंतेवासी णाममेगे णो वायणंतेवासी, वायणंतेवासी णाममेगे णो उद्देसणंतेवासी, एगे उद्देसणंतेवासीवि वायणंतेवासीवि, एगे णो उद्देसणंतेवासी णो वायणंतेवासी—धम्मंतेवासी।

पुनः अन्तेवासी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ उद्देशनान्तेवासी, न वाचनान्तेवासी—कोई शिष्य उद्देशना की अपेक्षा से अन्तेवासी होता है, किन्तु वाचना की अपेक्षा से अन्तेवासी नहीं होता।

२ वाचनान्तेवासी, न उद्देशनान्तेवासी—कोई शिष्य वाचना की अपेक्षा से अन्तेवासी होता है किन्तु उद्देशना की अपेक्षा से अन्तेवासी नहीं होता।

३ उद्देशनान्तेवासी, वाचनान्तेवासी—कोई शिष्य उद्देशन की अपेक्षा से भी अन्तेवासी होता है और वाचना की अपेक्षा से भी अन्तेवासी होता है।

४ न उद्देशनान्तेवासी, न वाचनान्तेवासी—कोई शिष्य न उद्देशन से ही अन्तेवासी होता है और न वाचना की अपेक्षा से ही अन्तेवासी होता है। मात्र धर्म प्रतिबोध पाने की अपेक्षा से अन्तेवासी होता है (४२५)।

महाकर्म अल्पकर्म निर्ग्रन्थ-सूत्र

४२६—चत्तारि णिग्गंथा पण्णत्ता, तं जहा—

१ रातिणिए समणे णिग्गंथे महाकम्मे महाकिरिए अणायावी असमिते धम्मस्स अणाराधए भवति।

२ रातिणिए समणे णिग्गथे अप्पकम्मे अप्पकिरिए आतावी समिए धम्मस्स आराहए भवति ।
३ ओमरातिणिए समणे णिग्गथे महाकम्मे महाकिरिए अणातावी असमिते धम्मस्स अणाराहए भवति ।
४ ओमरातिणिए समणे णिग्गथे अप्पकम्मे अप्पकिरिए आतावी समिते धम्मस्स आराहए भवति ।

निग्रन्थ चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—
१ कोई श्रमण निग्रन्थ रात्निक (दीक्षापर्याय मे ज्येष्ठ) होकर भी महाकर्मा, महाक्रिय, *(महाक्रियावाला) अनातापी (अतपस्वी) और असमित (समिति-रहित) होने के कारण* धम का अनाराधक होता ह।
२ कोई रात्निक श्रमण निर्ग्रन्थ अल्पकर्मा, अल्पक्रिय (अल्पक्रियावाला) आतापी (तपस्वी) और समित (समितिवाला) होने के कारण धम का आराधक होना है।
३ कोई निग्रन्थ श्रमण अवमरात्निक (दीक्षापर्याय मे छोटा) होकर महाकर्मा, महाक्रिय अनातापी और असमित होन के कारण धम का अनाराधक होता है।
४ कोई अवमरात्निक श्रमण निग्रन्थ अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी और समित होने के कारण धम का आराधक होता है (४२६)।

महाकम-अल्पकम निग्रन्थी सूत्र

४२७—चत्तारि णिग्गथीओ पण्णत्ताओ, त जहा—
१ रातिणिया समणी णिग्गथी एव चेव ४। [महाकम्मा महाकिरिया अणायावी असमिता धम्मस्स अणाराधिया भवति]।
२ [रातिणिया समणी णिग्गथी अप्पकम्मा अप्पकिरिया आतावी समिता धम्मस्स आराहिया भवति।]
३ [ओमरातिणिया समणी णिग्गथी महाकम्मा महाकिरिया अणायावी असमिता धम्मस्स अणाराधिया भवति।]
४ [ओमरातिणिया समणी णिग्गथी अप्पकम्मा अप्पकिरिया आतावी समिता धम्मस्स आराहिया भवति।]

निग्रन्थिया चार प्रकार की कही गई है। जसे—
१ कोई रात्निक श्रमणी निग्रन्थी, महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापिनी और असमित होने के कारण धम की अनाराधिका होती है।
२ कोई रात्निक श्रमणी निग्रन्थी अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापिनी और समित होने कारण धम की आराधिका होती है।
३ कोई अवमरात्निक श्रमणी निर्ग्रन्थी महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापिनी और असमित होने के कारण धम की अनाराधिका होती है।
४ कोई अवमरात्निक श्रमणी निग्रन्थी अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापिनी और समित होने के कारण धम की आराधिका होती है (४२७)।

महाकर्म-अल्पकर्म-श्रमणोपासक-सूत्र

४२८—चत्तारि समणोवासगा पण्णत्ता, तं जहा—

१ राइणिए समणोवासए महाकम्मे तहेव ४। [महाकिरिए अणायावी असमिते धम्मस्स अणाराधए भवति]।
२ [राइणिए समणोवासए अप्पकम्मे अप्पकिरिए आतावी समिए धम्मस्स आराहए भवति।]
३ [ओमराइणिए समणोवासए महाकम्मे महाकिरिए अणातावी असमिते धम्मस्स अणाराहए भवति।]
४ [ओमराइणिए समणोवासए अप्पकम्मे अप्पकिरिए आतावी समिते धम्मस्स आराहए भवति।]

कोई श्रमणोपासक चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कोई रात्निक (दीर्घ श्रावकपर्यायवाला) श्रमणोपासक महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापी और असमित होने के कारण धर्म का अनाराधक होता है।
२ कोई रात्निक श्रमणोपासक अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी और समित होने के कारण धर्म का आराधक होता है।
३ कोई अवमरात्निक (अल्पकालिक श्रावकपर्यायवाला) श्रमणोपासक महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापी और असमित होने के कारण धर्म का अनाराधक होता है।
४ कोई अवमरात्निक श्रमणोपासक अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी और समित होने के कारण धर्म का आराधक होता है (४२८)।

महाकर्म अल्पकर्म श्रमणोपासिका सूत्र

४२९—चत्तारि समणोवासियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१ राइणिया समणोवासिता महाकम्मा तहेव चत्तारि गमा। [महाकिरिया अणायावी असमिता धम्मस्स अणाराधिया भवति]।
२ [राइणिया समणोवासिता अप्पकम्मा अप्पकिरिया आतावी समिता धम्मस्स आराहिया भवति।]
३ [ओमराइणिया समणोवासिता महाकम्मा महाकिरिया अणायावी असमिता धम्मस्स अणाराधिया भवति।]
४ [ओमराइणिया समणोवासिता अप्पकम्मा अप्पकिरिया आतावी समिता धम्मस्स आराहिया भवति।]

श्रमणोपासिकाएं चार प्रकार की कही गई हैं। जैसे—

१ कोई रात्निक श्रमणोपासिका महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापिनी और असमित होने के कारण धर्म की अनाराधिका होती है।
२ कोई रात्निक श्रमणोपासिका अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापिनी और समित होने के कारण धर्म की आराधिका होती है।

३ कोई अवमरात्निक श्रमणोपासिका महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापिनी और असमित होने के कारण धर्म की अनाराधिका होती है।
४ कोई अवमरात्निक श्रमणोपासिका अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापिनी और समित होने के कारण धर्म की आराधिका होती है (४२९)।

श्रमणोपासक-सूत्र

४३०—चत्तारि समणोवासगा पण्णत्ता, त जहा—अम्मापितिसमाणे, भातिसमाणे, मित्तसमाणे, सवत्तिसमाणे।

श्रमणोपासक चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ माता-पिता के समान, २ भाई के समान, ३ मित्र के समान,
४ सपत्नी के समान (४३०)।

विवेचन—श्रमण निर्ग्रन्थ साधुओ की उपासना-आराधना करने वाले गृहस्थ श्रावका को श्रमणोपासक कहते हैं। जिन श्रमणोपासकों मे श्रमणो के प्रति अत्यन्त स्नेह, वात्सल्य और श्रद्धा का भाव निरन्तर प्रवहमान रहता है उनकी तुलना माता पिता से की गई है। वे तात्त्विक विचार और जीवन निर्वाह—दोनो ही अवसरो पर प्रगाढ वात्सल्य और भक्ति-भाव का परिचय देते हैं।

जिन श्रमणोपासको मे श्रमणो के प्रति यथावसर वात्सल्य और यथावसर उग्रभाव दोना होते हैं, उनकी तुलना भाई से की गई है, वे तत्त्व-विचार आदि के समय कदाचित उग्रता प्रकट कर देते ह, किन्तु जीवन-निर्वाह के प्रसग मे उनका हृदय वात्सल्य से परिपूर्ण रहता है।

जिन श्रमणोपासको मे श्रमणा के प्रति कारणवश प्रीति और कारण विशेप से अप्रीति दोनो पाई जाती है, उनकी तुलना मित्र से की गई है, ऐसे श्रमणोपासक अनुकूलता के समय प्रीति रखते हैं और प्रतिकूलता के समय अप्रीति या उपेक्षा करने लगते हैं।

जो केवल नाम से ही श्रमणोपासक कहलाते हैं, किन्तु जिनके भीतर श्रमणो के प्रति वात्सल्य या भक्तिभाव नही होता, प्रत्युत जो छिद्रान्वेषण ही करते रहते हैं, उनकी तुलना सपत्नी (सौत) से की गई है।

इस प्रकार श्रद्धा, भक्ति-भाव और वात्सल्य की हीनाधिकता के आधार पर श्रमणोपासक चार प्रकार के कह गये हैं।

४३१—चत्तारि समणोवासगा पण्णत्ता, त जहा—अद्दागसमाणे, पडागसमाणे, खाणुसमाणे, खरकटयसमाणे।

पुन श्रमणोपासक चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ आदर्शसमान, २ पताकासमान, ३ स्थाणुसमान, ४ खरकण्टकसमान (४३१)।

विवेचन—जो श्रमणोपासक आदर्श (दपण) के समान निर्मलचित्त होता है, वह साधु जनो के द्वारा प्रतिपादित उत्सर्गमार्ग और अपवादमार्ग के आपेक्षिक कथन को यथावत् स्वीकार करता है, वह आदर्श के समान कहा गया है।

जो श्रमणोपासक पताका (ध्वजा) के समान अस्थिरचित्त होता है, वह विभिन्न प्रकार की देशना रूप वायु से प्रेरित होने के कारण किसी एक निश्चित तत्त्व पर स्थिर नहीं रह पाता, उसे पताका के समान कहा गया है।

जो श्रमणोपासक स्थाणु (सूखे वृक्ष के ठूंठ) के समान नमन-स्वभाव से रहित होता है, अपने कदाग्रह को समझाये जाने पर भी नहीं छोड़ता है, वह स्थाणु-समान कहा गया है।

जो श्रमणोपासक महाकदाग्रही होता है उसको दूर करने के लिए यदि कोई सन्त पुरुष प्रयत्न करता है तो वह तीक्ष्ण दुर्वचन रूप कण्टकों से उसे भी विद्ध कर देता है, उसे खर कण्टक समान कहा गया है।

इस प्रकार चित्त की निर्मलता, अस्थिरता, अनम्रता और कलुषता की अपेक्षा चार भेद कहे गये हैं।

४३२—समणस्स णं भगवतो महावीरस्स समणोवासगाणं सोधम्मे कप्पे अरुणाभे विमाणे चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

सौधर्म कल्प में अरुणाभ विमान में उत्पन्न हुए श्रमण भगवान महावीर के श्रमणोपासकों की स्थिति चार पल्योपम कही गई है (४३२)।

अधुनोपपन्न देव सूत्र

४३३—चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए, तं जहा—

१ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, से णं माणुस्सए कामभोगे णो आढाइ, णो परियाणाति, णो अट्ठं बंधइ, णो णियाणं पगरेति, णो ठितिपगप्पं पगरेति।

२ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, तस्स णं माणुस्सए पेमे वोच्छिण्णे दिव्वे संकंते भवति।

३ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, तस्स णं एवं भवति—इण्हिं गच्छं मुहुत्तेण गच्छं, तेणं कालेणमप्पाउया मणुस्सा कालधम्मुणा संजुत्ता भवंति।

४ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, तस्स णं माणुस्सए गंधे पडिकूले पडिलोमे यावि भवति, उड्ढं पि य णं माणुस्सए गंधे जाव चत्तारि पंच जोयणसताइं हव्वमागच्छति।

इच्चेतेहिं चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए।

चार कारणों से देवलोक में तत्काल उत्पन्न हुआ देव शीघ्र ही मनुष्यलोक में आने की इच्छा करता है, किन्तु शीघ्र आने में समर्थ नहीं होता। जैसे—

१ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न हुआ देव दिव्य काम भोगो मे मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित (बद्ध) और अध्युपपन्न (आसक्त) होकर मनुष्यो के काम-भोगो का आदर नही करता है, उन्हे अच्छा नही जानता है, उनसे प्रयोजन नही रखता है, उन्हे पाने का निदान (सकल्प) नही करता है और न स्थिति-प्रकल्प (उनके मध्य मे रहने की इच्छा) करता है।

२ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न हुआ देव दिव्य काम-भोगो मे मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और आसक्त हो जाता है, अत उसका मनुष्य-सम्बन्धी प्रेम व्युच्छिन्न हो जाता है और उसके भीतर दिव्य प्रेम सक्रान्त हो जाता है।

३ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न हुआ देव दिव्य काम-भोगो मे मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और आसक्त हो जाता है, तब उसका ऐसा विचार होता है—अभी जाता हूँ, थोडी देर मे जाता हू। इतने काल मे अल्प आयु के धारक मनुष्य कालधर्म से सयुक्त हो जाते हैं।

४ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न हुआ देव दिव्य काम-भोगो मे मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और आसक्त हो जाता है, तब उसे मनुष्यलोक की गन्ध प्रतिकूल (दिव्य सुगन्ध से विपरीत दुर्गन्ध रूप) तथा प्रतिलोम (इन्द्रिय और मन को अप्रिय) लगने लगती है, क्योकि मनुष्यलोक की दुर्गन्ध ऊपर चार-पाच सौ योजन तक फैलती रहती है। (एकान्त सुषमा आदि कालो मे चार योजन और दूसरे कालो मे पाच योजन ऊपर तक दुर्गन्ध फैलती है।)

इन चार कारणो से देवलोक मे तत्काल उत्पन्न हुआ देव शीघ्र ही मनुष्यलोक मे आने की इच्छा करता है, किन्तु शीघ्र आने मे समर्थ नही होता (४३३)।

४३४—चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्ज माणुस लोग हव्वमागच्छित्तए, स चाएति हव्वमागच्छित्तए, त जहा—

१ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिते जाव [अगिद्धे अगढिते] अणज्झोववण्णे, तस्स ण एव भवति—अत्थि खलु मम माणुस्सए भवे आयरिएति वा उवज्झाएति वा पवत्तीति वा थेरेति वा गणीति वा गणधरेति वा गणावच्छेदेति वा, जेसि पभावेण मए इमा एतारूवा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवजुती [दिव्वे देवाणुभावे ?] लद्धा पत्ता अभिसमण्णागता त गच्छामि ण ते भगवते वदामि जाव [णमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगल देवय चेइय] पज्जुवासामि।

२ अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु जाव [दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिते अगिद्धे अगढिते] अणज्झोववण्णे, तस्स णमेव भवति—एस ण माणुस्सए भवे णाणीति वा तवस्सीति वा अइदुक्कर दुक्करकारगे, त गच्छामि ण ते भगवते वदामि जाव [णमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगल देवय चेइय] पज्जुवासामि।

३ अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु जाव [दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिते अगिद्धे अगढिते] अणज्झोववण्णे, तस्स णमेव भवति—अत्थि ण मम माणुस्सए भवे माताति वा जाव [पियाति वा भायाति वा भगिणीति वा भज्जाति वा पुत्ताति वा धूयाति वा] सुण्हाति वा, त गच्छामि ण तेसिमतिय पाउब्भवामि, पासतु ता मे इममेतारूव दिव्व देविड्ढि दिव्व देवजुति [दिव्व देवाणुभाव ?] लद्ध पत्त अभिसमण्णागत।

४ अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु जाव [दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिते अगिद्धे अगढिते] अणज्झोववण्णे, तस्स णमेव भवति—अत्थि ण मम माणुस्सए भवे मित्तेति वा सहीति वा सुहीति वा सहाएति वा संगइएति वा, तेसिं च ण अम्हे अण्णमण्णस्स संगारे पडिसुते भवति—जो मे पुव्वि चयति से संबोहेतव्वे। इच्चेतेहिं जाव [चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए] संचाएति हव्वमागच्छित्तए।

चार कारणों से देवलोक मे तत्काल उत्पन्न हुआ देव शीघ्र मनुष्यलोक मे आने की इच्छा करता है और शीघ्र आने के लिए समर्थ भी होता है। जैसे—

१ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न हुआ, दिव्य काम-भोगों मे अमूर्च्छित, अगृद्ध, अग्रथित और अनासक्त देव को ऐसा विचार होता है—मनुष्यलोक मे मेरे मनुष्यभव के आचार्य है या उपाध्याय है या प्रवर्तक है या स्थविर है या गणी है या गणधर हैं या गणावच्छेदक है, जिनके प्रभाव से मैंने यह इस प्रकार की दिव्य देवर्धि, दिव्य देव द्युति और दिव्य देवानुभाव लब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत (भोगने के योग्य दशा को प्राप्त) किया है, अत मैं जाऊं—उन भगवन्तों की वन्दना करूं, नमस्कार करूं, उनका सत्कार, सम्मान करूं, और कल्याणरूप, मंगलमय देव चैत्यस्वरूप की पर्युपासना करूं।

२ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न हुआ, दिव्य काम-भोगों मे अमूर्च्छित, अगृद्ध, अग्रथित और अनासक्त देव ऐसा विचार करता है—इस मनुष्यभव मे ज्ञानी है, तपस्वी है, अतिदुष्कर घोर तपस्या-कारक हैं, अत मैं जाऊं—उन भगवन्तों की वन्दना करूं, नमस्कार करूं, उनका सत्कार करूं, सम्मान करूं और कल्याणरूप, मंगलमय देव एव चैत्यस्वरूप की पर्युपासना करूं।

३ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न हुआ, दिव्य काम-भोगों मे अमूर्च्छित, अगृद्ध, अग्रथित और अनासक्त देव को ऐसा विचार होता है—मेरे मनुष्य भव के माता है, या पिता हैं, या भाई है, या बहिन हैं, या स्त्री है, या पुत्र है या पुत्री है या पुत्र वधू है, अत मैं जाऊं, उनके सम्मुख प्रकट होऊं, जिससे वे मेरी, इस प्रकार की, दिव्य देवर्धि, दिव्य देव द्युति, और दिव्य देव प्रभाव को—जो मुझे मिला है, प्राप्त हुआ है और अभिसमन्वागत हुआ है, देखें।

४ देवलोक मे तत्काल उत्पन्न हुआ, दिव्य काम-भोगों मे अमूर्च्छित, अगृद्ध, अग्रथित और अनासक्त देव को ऐसा विचार होता है—मनुष्यलोक मे मेरे मनुष्य भव के मित्र है या सखा हैं, या सुहृत है या सहायक हैं, या संगतिक हैं, उनका हमारे साथ परस्पर संगार (संकेतरूप प्रतिज्ञा) स्वीकृत है कि जो मेरे पहले मरणप्राप्त हो, वह दूसरे को संबोधित करे।

इन चार कारणों से देवलोक मे तत्काल उत्पन्न हुआ देव शीघ्र मनुष्यलोक मे आने की इच्छा करता है और शीघ्र आने के लिए समर्थ होता है (८३४)।

विवेचन—इस सूत्र मे आये हुए आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, गणी आदि पदों की व्याख्या तीसरे स्थान के सूत्र ३६२ मे की जा चुकी है। मित्र आदि पदों का अर्थ इस प्रकार है—

१ मित्र—जीवन के किसी प्रसग विशेष मे जिनके साथ स्नेह हुआ हो।

२ सखा—बाल काल मे साथ खेलन-कूदन वाला।

३ सुहृत्—सुन्दर मनोवृत्तिवाला हितैषी, सज्जन पुरुष।
४ सहायक—सकट के समय सहायता करने वाला, नि स्वार्थ व्यक्ति।
५ सगतिक—जिसके साथ सदा सगति—उठना-बैठना आदि होता रहता है।

ऐसे मित्रादिकों से भी मिलने के लिए देव आने की इच्छा करते है और आते भी हैं। तथा जिनके साथ पूर्वभव मे यह प्रतिज्ञा हुई हो कि जो पहले स्वर्ग से च्युत होकर मनुष्य हो और यदि वह काम-भोगो म लिप्त होकर सयम को धारण करना भूल जावे तो उसे सबोधने के लिए स्वर्गस्थ देव को आकर उसे प्रबोध देना चाहिए या जो पहले देवलोक मे उत्पन्न हो वह दूसरे को प्रतिबोध दे, ऐसा प्रतिज्ञाबद्ध देव भी अपने सागरिक पुरुष को सबोधना करने के लिए मनुष्यलोक मे आता है।

अन्धकार-उद्योतादि सूत्र

४३५—चउहि ठाणेहि लोगधगारे सिया, त जहा—अरहतेहि वोच्छिज्जमाणेहि, अरहत पण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे, पुव्वगते वोच्छिज्जमाणे, जायतेजे वोच्छिज्जमाणे।

चार कारणो से मनुष्यलोक मे अन्धकार होता है। जैसे—

१ अर्हन्ता-तीर्थकरो के विच्छेद हो जाने पर,
२ तीर्थकरो द्वारा प्ररूपित धर्म के विच्छेद होने पर,
३ पूर्वगत श्रुत के विच्छेद हो जाने पर,
४ जाततेजस (अग्नि) के विच्छेद हो जाने पर।

इन चार कारणो से मनुष्यलोक मे (भाव से, द्रव्य से अथवा द्रव्य भाव दोनो से) अन्धकार हो जाता है (४३५)।

४३६—चउहि ठाणेहि लोउज्जोते सिया, त जहा—अरहतेहि जायमाणेहि, अरहतेहि पव्वयमाणेहि, अरहताण णाणुप्पायमहिमासु, अरहताण परिनिव्वाणमहिमासु।

चार कारणो से मनुष्यलोक मे उद्योत (प्रकाश) होता है। जैसे—

१ अर्हन्ता-तीर्थकरो के उत्पन्न होने पर,
२ अर्हन्ता के प्रव्रजित (दीक्षित) होने के अवसर पर,
३ अर्हन्ता का केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,
४ अर्हन्ता के परिनिर्वाण कल्याण की महिमा के अवसर पर।

इन चार कारणो से मनुष्यलोक म उद्योत होता है।

४३७—एव देवधगारे, देवुज्जोते, देवसण्णिवाते, देवुक्कलियाए, देवकहकहए, [चउहि ठाणेहि देवधगारे सिया, त जहा—अरहतेहि वोच्छिज्जमाणेहि, अरहतपण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे, पुव्वगते वोच्छिज्जमाणे, जायतेजे वोच्छिज्जमाणे।

चार कारणो से देवलोक मे अन्धकार होता है। जैसे—

१ अर्हन्तो के व्युच्छेद हो जाने पर,

२ अर्हत्प्रज्ञप्त धर्म के व्युच्छेद हो जाने पर,

३ पूर्वगत श्रुत के व्युच्छेद हो जाने पर,

४ अग्नि के व्युच्छेद हो जाने पर।

इन चार कारणा से देवलोक मे (क्षण भर के लिए) अन्धकार हो जाता है (४३७)।

४३८—चउहि ठाणेहि देवुज्जोते सिया, त जहा—अरहतेहि जायमाणेहि, अरहतेहि पव्वयमाणेहि, अरहताण णाणुप्पायमहिमासु, अरहताण परिणिव्वाणमहिमासु।

चार कारणो से देवलोक मे उद्योत होता है। जैसे—

१ अर्हन्तो के उत्पन्न होने पर,

२ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर,

३ अर्हन्तो के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,

४ अर्हन्तो के परिनिर्वाणकल्याण की महिमा के अवसर पर।

इन चार कारणो से देवलोक मे उद्योत होता है (४३८)।

४३९—चउहि ठाणेहि देवसण्णिवाते सिया, त जहा—अरहतेहि जायमाणेहि, अरहतेहि पव्वयमाणेहि, अरहताण णाणुप्पायमहिमासु, अरहताण परिणिव्वाणमहिमासु।

चार कारणो से देव-सन्निपात (देवो का मनुष्यलोक मे आगमन) होता है। जैसे—

१ अर्हन्तो के उत्पन्न होने पर,

२ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर

३ अर्हन्तो के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर।

४ अर्हन्तो के परिनिर्वाण कल्याण की महिमा के अवसर पर।

इन चार कारणो से देवो का मनुष्यलोक मे आगमन होता है (४३९)।

४४०—चउहि ठाणेहि देवुक्कलिया सिया त जहा—अरहतेहि जायमाणेहि, अरहतेहि पव्वयमाणेहि, अरहताण णाणुप्पायमहिमासु अरहताण परिणिव्वाणमहिमासु।

चार कारणो से देवोत्कलिका (देव लहरी—देवो का जमघट) होती है। जैसे—

१ अर्हन्तो के उत्पन्न होने पर,

२ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर,

३ अर्हन्तो के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,

४ अर्हन्तो के परिनिर्वाणकल्याण की महिमा के अवसर पर।

इन चार कारणो से देवोत्कलिका होती है (४४०)।

विवेचन—उत्कलिका का अर्थ तरग या लहर है। जैसे पानी मे पवन के निमित्त से एक के बाद एक तरग या लहर उठती है, उसी प्रकार से तीर्थंकरो के जन्मकल्याणक आदि के अवसरो पर एक देव-पक्ति के बाद पीछे से दूसरी देवपक्ति आती रहती है। यही आती हुई देव पक्ति की परम्परा देवोत्कलिका कहलाती है।

४४१—चउहिं ठाणेहिं देवकहकहए सिया त जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वय-माणेहिं, अरहंताण णाणुप्पायमहिमासु, अरहंताण परिणिव्वाणमहिमासु ।

चार कारणो से देव-कहकहा (देवो का प्रमोदजनित कल कल शब्द) होता है । जसे—
१ अर्हन्तो के उत्पन्न होने पर,
२ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३ अर्हन्तो के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,
४ अर्हन्तो के परिनिर्वाण कल्याण की महिमा के अवसर पर ।
इन चार कारणा से देव-कहकहा होता है (४४१) ।

४४२—चउहिं ठाणेहिं देविदा माणुस लोग हव्वमागच्छति, एव जहा तिठाणे जाव लोगतिया देवा माणुस्स लोग हव्वमागच्छेज्जा । त जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताण णाणुप्पायमहिमासु, अरहंताण परिणिव्वाणमहिमासु ।

चार कारणा से देवेन्द्र तत्काल मनुष्यलोक मे आते है । जसे—
१ अर्हन्तो के उत्पन्न होने पर,
२ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३ अर्हन्तो के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,
४ अर्हन्तो के परिनिर्वाणकल्याण की महिमा के अवसर पर ।
इन चार कारणा से देवेन्द्र तत्काल मनुष्यलोक मे आते हैं (४४२) ।

४४३—एव—सामाणिया, तायत्तीसगा, लोगपाला देवा, अग्गमहिसीओ देवीओ, परिसोव वण्णगा देवा, अणियाहिवई देवा, आयरक्खा देवा माणुस लोग हव्वमागच्छति, त जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताण णाणुप्पायमहिमासु, अरहंताण परिणिव्वाणमहिमासु ।

इसी प्रकार सामानिक, त्रायस्त्रिंशक, लोकपाल देव, उनकी अग्रमहिषियाँ, पारिषद्यदेव, अनीकाधिपति (सेनापति) देव और आत्मरक्षक देव, उक्त चार कारणों से तत्काल मनुष्यलोक मे आते हैं । जैसे—
१ अर्हन्तो के उत्पन्न होने पर,
२ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३ अर्हन्तो के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,
४ अर्हन्तो के परिनिर्वाणकल्याण की महिमा के अवसर पर ।
इन चार कारणो से उपर्युक्त सर्व देव तत्काल मनुष्यलोक मे आते हैं (४४३) ।

४४४—चउहिं ठाणेहिं देवा अब्भुट्ठिज्जा, त जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वय माणेहिं, अरहंताण णाणुप्पायमहिमासु, अरहंताण परिणिव्वामहिमासु ।

चार कारणो से देव अपने सिंहासन से उठते है । जैसे—
१ अर्हन्तो के उत्पन्न होने पर,

२ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३ अर्हन्तो के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,
४ अर्हन्तो के परिनिर्वाणकल्याण की महिमा के अवसर पर।

इन चार कारणो से देव अपने सिंहासन से उठते हैं (४४४)।

४४५—चउहिं ठाणेहिं देवाण आसणाइ चलेज्जा, त जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहताण णाणुप्पायमहिमासु, अरहताण परिणिव्वाणमहिमासु।

चार कारणो से देवो के आसन चलायमान होते है। जैसे—

१ अर्हन्तो के उत्पन्न होने पर,
२ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३ अर्हन्तो के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,
४ अर्हन्तो के परिनिर्वाण कल्याण की महिमा के अवसर पर।

इन चार कारणो से देवो के आसन चलायमान होते है (४४५)।

४४६—चउहिं ठाणेहिं देवा सीहणाय करेज्जा त जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहताण णाणुप्पायमहिमासु, अरहताण परिणिव्वाणमहिमासु।

चार कारणो से देव सिंहनाद करते है। जैसे—

१ अर्हन्तो के उत्पन्न होने पर,
२ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३ अर्हन्तो के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,
४ अर्हन्तो के परिनिर्वाण कल्याण की महिमा के अवसर पर।

इन चार कारणो से देव सिंहनाद करते हैं (४४६)।

४४७—चउहिं ठाणेहिं देवा चेलुक्खेव करेज्जा त जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहताण णाणुप्पायमहिमासु अरहताण परिणिव्वाणमहिमासु।

चार कारणो से देव चेलोत्क्षेप (वस्त्र का ऊपर फेंकना) करते है। जैसे—

१ अर्हन्तो के उत्पन्न होने पर,
२ अर्हन्तो के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३ अर्हन्तो के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,
४ अर्हन्तो के परिनिर्वाणकल्याण की महिमा के अवसर पर।

इन चार कारणो से देव चेलोत्क्षेप करते हैं (४४७)।

४४८—चउहिं ठाणेहिं देवाण चेइयरुक्खा चलेज्जा, त जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहताण णाणुप्पायमहिमासु अरहताण परिणिव्वाणमहिमासु।]

४ गात्रोत्क्षालन—वस्त्र से शरीर को रगडते हुए जल से स्नान करना।

इन की इच्छा करना भी संयम का निघातक है।

सुखशय्या सूत्र

४५१—चत्तारि सुहसेज्जाओ पण्णत्ताओ, त जहा—

१ तत्थ खलु इमा पढमा सुहसेज्जा—से ण मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए णिग्गथे पावयणे णिस्सकिते णिक्कखिते णिव्वितिगिच्छिए णो भेदसमावण्णे णो कलुस-समावण्णे णिग्गथ पावयण सद्दहइ पत्तियइ रोएति, णिग्गथ पावयण सद्दहमाणे पत्तियमाणे रोएमाणे णो मण उच्चावय णियच्छति, णो विणिघातमावज्जति—पढमा सुहसेज्जा।

२ अहावरा दोच्चा सुहसेज्जा—से ण मु ड जाव [भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वइए सएण लाभेण तुस्सति परस्स लाभ णो आसाएति णो पीहेति णो पत्थेति णो अभिलसति, परस्स लाभमणासाएमाणे जाव [अपीहेमाणे अपत्थेमाणे] अणभिलसमाणे णो मण उच्चावय णियच्छति, णो विणिघातमावज्जति—दोच्चा सुहसेज्जा।

३ अहावरा तच्चा सुहसेज्जा—से ण मु डे जाव [भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वइए दिव्वमाणुस्सए काममोगे णो आसाएति जाव [णो पीहेति णो पत्थेति] णो अभिलसति, दिव्वमाणुस्सए काममोगे अणासाएमाणे जाव [अपीहेमाणे अपत्थेमाणे] अणभिलसमाणे णो मण उच्चावय णियच्छति, णो विणिघातमावज्जति—तच्चा सुहसेज्जा।

४ अहावरा चउत्था सुहसेज्जा—से ण मु डे जाव [भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वइए तस्स ण एव भवति—जइ ताव अरहता भगवतो हट्ठा अरोगा वलिया कल्लसरीरा अण्णयराइ ओरालाइ कल्लाणाइ विउलाइ पयताइ पग्गहिताइ महाणुभागाइ कम्मक्खय-कारणाइ तवोकम्माइ पडिवज्जति, किमग पुण अह अब्भोवगमिओवक्कमियं वेयण णो सम्म सहामि खमामि तितिक्खेमि अहियासेमि ?

मम च ण अब्भोवगमिओवक्कमियं [वेयण ?] सम्ममसहमाणस्स अक्खममाणस्स अतितिक्ख-माणस्स अणहियासेमाणस्स किं मण्णे कज्जति ?

एगतसो मे पावे कम्मे कज्जति।

मम च ण अब्भोवगमिओ जाव (निवक्कमियं [वेयण ?]) सम्म सहमाणस्स जाव [खममाणस्स तितिक्खेमाणस्स] अहियासेमाणस्स किं मण्णे कज्जति ?

एगतसो मे णिज्जरा कज्जति—चउत्था सुहसेज्जा।

चार सुख-शय्याए कही गई है—

१ उनमे पहली सुख-शय्या यह है—कोई पुरुष मुण्डित होकर अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित हो, निर्ग्रन्थ प्रवचन मे नि शकित, निष्कांक्षित, निर्विचिकित्सित अभेद समापन्न, और अकलुष-समापन्न होकर निर्ग्रन्थ प्रवचन मे श्रद्धा करता है, प्रतीति करता है और रुचि करता है। वह निर्ग्रन्थ प्रवचन मे श्रद्धा करता हुआ, प्रतीति करता हुआ, रुचि करता हुआ, मन को ऊँचा-नीचा नही करता है,

(किन्तु समता को धारण करता है), वह धर्म के विनिघात को नही प्राप्त होता है (किन्तु धर्म मे स्थिर रहता है)। यह उसकी पहली सुखशय्या है।

२ दूसरी सुख-शय्या यह है—कोई पुरुष मुण्डित होकर अगार त्यागकर अनगारिता मे प्रव्रजित हो, अपने (भिक्षा) लाभ मे सतुष्ट रहता है, दूसरे के लाभ का आस्वाद नही करता, इच्छा नही करता, प्रार्थना नही करता और अभिलाषा नही करता है। वह दूसरे के लाभ का आस्वाद नही करता हुआ, इच्छा नही करता हुआ, प्रार्थना नही करता हुआ, और अभिलाषा नही करता हुआ मन को ऊचा-नीचा नही करता है। वह धर्म के विनिघात को नही प्राप्त होता है। यह उसकी दूसरी सुख-शय्या है।

३ तीसरी सुख शय्या यह है—कोई पुरुष मुण्डित होकर अगार त्यागकर अनगारिता मे प्रव्रजित होकर देवो के और मनुष्यो के काम-भोगो का आस्वाद नही करता, इच्छा नही करता, प्रार्थना नही करता और अभिलाषा नही करता है। वह उनका आस्वाद नही करता हुआ, इच्छा नही करता हुआ, प्रार्थना नही करता हुआ और अभिलाषा नही करता हुआ मन को ऊचा नीचा नही करता है। वह धर्म के विनिघात को नही प्राप्त होता है। यह उसकी तीसरी सुख शय्या है।

४ चौथी सुखशय्या यह है—कोई पुरुष मुण्डित होकर अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित हुआ। तब उसका ऐसा विचार होता है—जब यदि अर्हन्त भगवन्त हृष्ट-पुष्ट, नीरोग, बलशाली और स्वस्थ शरीर वाले होकर भी कर्मों का क्षय करने के लिए उदार, कल्याण, विपुल, प्रयत, प्रगृहीत, महानुभाव, कर्म-क्षय करने वाले अनेक प्रकार के तप कर्मो मे से अन्यतर तपो का स्वीकार करते है, तब मैं आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदना को क्यों न सम्यक् प्रकार से सहू? क्या न क्षमा धारण करू? और क्यो न वीरता-पूर्वक वेदना मे स्थिर रहू? यदि मैं आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदना का सम्यक् प्रकार से सहन नही करूगा, क्षमा धारण नही करूगा और वीरता पूर्वक वेदना मे स्थिर नही रहूगा, तो मुझे क्या होगा? मुझे एकान्त रूप से पाप कर्म होगा? यदि मैं आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदना को सम्यक् प्रकार से सहन करूगा, क्षमा धारण करूगा, और वीरता-पूर्वक वेदना मे स्थिर रहूगा, तो मुझे क्या होगा? एकान्त रूप से मेरे कर्मों की निर्जरा होगी। यह उसकी चौथी सुखशय्या है (४५१)।

विवेचन—दुःख-शय्या और सुख-शय्या के सूत्रों मे आये कुछ विशिष्ट पदों का अर्थ इस प्रकार है—

१ शकित—निर्ग्रन्थ-प्रवचन मे शका-शील रहना यह सम्यग्दर्शन का प्रथम दोष है और निःशकित रहना यह सम्यग्दर्शन का प्रथम गुण है।
२ काक्षित—निर्ग्रन्थ प्रवचन को स्वीकार कर फिर किसी भी प्रकार की आकाक्षा करना सम्यक्त्व का दूसरा दोष है और निष्काक्षित रहना उसका दूसरा गुण है।
३ विचिकित्सित—निर्ग्रन्थ-प्रवचन को स्वीकार कर किसी भी प्रकार की ग्लानि करना सम्यक्त्व का तीसरा दोष है और निर्विचिकित्सित भाव रखना उसका तीसरा गुण है।
४ भेद-समापन्न होना सम्यक्त्व का अस्थिरता नामक दोष है और अभेदसमापन्न होना यह उसका स्थिरता नामक गुण है।
५ कलुषसमापन्न होना यह सम्यक्त्व का एक विपरीत धारणा रूप दोष है और अकलुष-समापन्न रहना यह सम्यक्त्व का गुण है।

६ उदार तप कर्म—आशमा प्रशमा आदि की अपेक्षा न करके तपस्या करना ।
७ कल्याण तप कम—आत्मा को पापो से मुक्त कर मगल करने वाली तपस्या करना ।
८ विपुल तप कम—बहुत दिनो तक की जाने वाली तपस्या ।
९ प्रयत तप कम—उत्कृष्ट सयम से युक्त तपस्या ।
१० प्रगृहीत तप कम—आदरपूवक स्वीकार की गई तपस्या ।
११ महानुभाग तप कम—अचिन्त्य शक्तियुक्त ऋद्धियो को प्राप्त कराने वाली तपस्या ।
१२ आभ्युपगमिकी वेदना—स्वेच्छापूर्वक स्वीकार की गई वेदना ।
१३ औपक्रमिकी वेदना—सहसा आई हुई प्राण-घातक वेदना ।

दु खशय्याओ मे पडा हुआ साधक वतमान मे भी दु ख पाता है और आगे के लिए अपना ससार बढाता ह ।

इसके विपरीत सुख शय्या पर शयन करने वाला साधक प्रतिक्षण कर्मो की निजरा करता है और ससार का अन्त कर सिद्धपद पाकर अनन्त सुख भोगता है ।

अवाचनीय वाचनीय सूत्र

४५२—चत्तारि अवायणिज्जा पण्णत्ता, त जहा—अविणीए, विगइपडिबद्धे, अविओसवित-पाहुडे, माई ।

चार अवाचनीय (वाचना देने के अयोग्य) कहे गये हैं । जैसे—

१ अविनीत—जो विनय-रहित हो, उद्दण्ड और अभिमानी हो ।
२ विकृति प्रतिबद्ध—जो दूध घृतादि के खाने मे आसक्त हो ।
३ अव्यवशमित-प्राभृत—जिसका कलह और क्रोध शात न हुआ हो ।
४ मायावी—मायाचार करने का स्वभाव वाला (४५२) ।

विवेचन—उक्त चार प्रकार के व्यक्ति सूत्र और अर्थ की वाचना देने के अयोग्य कह गये हैं, क्योकि ऐसे व्यक्तियो को वाचना देना निष्फल ही नही होता प्रत्युत कभी-कभी दुष्फल कारक भी होता है ।

४५३—चत्तारि वायणिज्जा पण्णत्ता, त जहा—विणीते, अविगतिपडिबद्धे, विओसवितपाहुडे, अमाई ।

चार वाचनीय (वाचना देने के योग्य) कहे गये हैं । जसे—

१ विनीत—जो अहकार से रहित एव विनय से सयुक्त हो ।
२ विकृति-अप्रतिबद्ध— जो दूध घृतादि विकृतियो मे आसक्त न हो ।
३ व्यवशमित-प्राभृत—जिसका कलह-भाव शान्त हो गया हो ।
४ अमायावी—जो मायाचार से रहित हो (४५३) ।

आत्म-पर-सूत्र

४५४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—आतभरे णाममेगे णो परभरे, परभरे णाममेगे णो आतभरे, एगे आतभरेवि परभरेवि, एगे णो आतभरे णो परभरे ।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ आत्मभर, न परभर—कोई पुरुष अपना ही भरण पोषण करता है, दूसरा का नहीं।
२ परभर, न आत्मभर—कोई पुरुष दूसरा का भरण-पोषण करता है, अपना नहीं।
३ आत्मभर भी, परभर भी—कोई पुरुष अपना भरण पोषण करता है और दूसरों का भी।
४ न आत्मभर, न परभर—कोई पुरुष न अपना ही भरण पोषण करता है और न दूसरों का ही (४५४)।

दुर्गत सुगत-सूत्र

४५५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—दुग्गए णाममेगे दुग्गए, दुग्गए णाममेगे सुग्गए, सुग्गए णाममेगे दुग्गए, सुग्गए, णाममेगे सुग्गए।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जसे—

१ दुर्गत और दुर्गत—कोई पुरुष धन से भी दुर्गत (दरिद्र) होता है और ज्ञान से भी दुर्गत होता है।
२ दुर्गत और सुगत—कोई पुरुष धन से दुर्गत होता है, किन्तु ज्ञान मे सुगत (सम्पन्न) होता है।
३ सुगत और दुर्गत—कोई पुरुष धन से सुगत होता है, किन्तु ज्ञान से दुर्गत होता है।
४ सुगत और सुगत—कोई पुरुष धन से भी सुगत होता है और ज्ञान से भी सुगत होता है (४५५)।

४५६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—दुग्गए णाममेगे दुव्वए, दुग्गए णाममेगे सुव्वए सुग्गए णाममेगे दुव्वए, सुग्गए णाममेगे सुव्वए।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जसे—

१ दुर्गत और दुर्व्रत—कोई पुरुष दुर्गत और दुर्व्रत (खोटे व्रतवाला) होता है।
२ दुर्गत और सुव्रत—कोई पुरुष दुर्गत किन्तु सुव्रत (उत्तम व्रतवाला) होता है।
३ सुगत और दुर्व्रत—कोई पुरुष सुगत, किन्तु दुर्व्रत होता है।
४ सुगत और सुव्रत—कोई पुरुष सुगत और सुव्रत होता है।

विवेचन—सूत्र पठित 'दुव्वए' और 'सुव्वए' इन प्राकृत पदों का टीकाकार ने 'दुर्व्रत' और 'सुव्रत' सस्कृत रूप देने के अतिरिक्त 'दुर्व्यय' और 'सुव्यय' सस्कृत रूप भी दिये हैं। तदनुसार चारों भगो का अर्थ इस प्रकार किया है—

१ दुर्गत और दुर्व्यय—कोई पुरुष धन से दरिद्र होता है और प्राप्त धन का दुर्व्यय करता है, अर्थात् अनुचित व्यय करता है, अथवा आय से अधिक व्यय करता है।
२ दुर्गत और सुव्यय—कोई पुरुष दरिद्र होकर भी प्राप्त धन का सद्-व्यय करता है।
३ सुगत और दुर्व्यय—कोई पुरुष धन-सम्पन्न होकर धन का दुर्व्यय करता है।
४ सुगत और सुव्यय—कोई पुरुष धन-सम्पन्न होकर धन का सद्-व्यय करता है (४५६)।

४५७—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—दुग्गए णाममेगे दुप्पडिताणदे, दुग्गए णाममेगे सुप्पडिताणदे ४ । [सुग्गए णाममेगे दुप्पडिताणदे, सुग्गए णाममेगे सुप्पडिताणदे] ।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१ दुगत और दुष्प्रत्यानन्द—कोई पुरुष दुगत और दुष्प्रत्यानन्द (कृतघ्न) होता है ।
२ दुगत और सुप्रत्यानन्द—कोई पुरुष दुगत होकर भी सुप्रत्यानन्द (कृतज्ञ) होता है ।
३ सुगत और दुष्प्रत्यानन्द—कोई पुरुष सुगत होकर भी दुष्प्रत्यानन्द (कृतघ्न) होता है ।
४ सुगत और सुप्रत्यानन्द—कोई पुरुष सुगत और सुप्रत्यानन्द (कृतज्ञ) होता है (४५७) ।

विवेचन—जो पुरुष दूसरे के द्वारा किये गये उपकार को नही मानता है, उसे दुष्प्रत्यानन्द या कृतघ्न कहते हैं और जो दूसरे के द्वारा किये गये उपकार को मानता है, उसे सुप्रत्यानन्द या कृतज्ञ कहते हैं ।

४५८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—दुग्गए णाममेगे दुग्गतिगामी, दुग्गए णाममेगे सुग्गतिगामी । [सुग्गए णाममेगे दुग्गतिगामी, सुग्गए णाममेगे सुग्गतिगामी] ४ ।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१ दुगत और दुगतिगामी—कोई पुरुष दुगत (दरिद्र) और (खोटे काय करके) दुगतिगामी होता है ।
२ दुगत और सुगतिगामी—कोई पुरुष दुगत और (उत्तम कार्य करके) सुगतिगामी होता है ।
३ सुगत और दुगतिगामी—कोई पुरुष सुगत (सम्पन्न) और दुगतिगामी होता है ।
४ सुगत और सुगतिगामी—कोई पुरुष सुगत और सुगतिगामी होता है (४५८) ।

४५९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—दुग्गए णाममेगे दुग्गतिं गते, दुग्गए णाममेगे सुग्गतिं गते । [सुग्गए णाममेगे दुग्गतिं गते, सुग्गए णाममेगे सुग्गतिं गते] ४ ।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है । जैसे—

१ दुगत और दुगति-गत—कोई पुरुष दुगत होकर दुगति को प्राप्त हुआ है ।
२ दुगत और सुगति-गत—कोई पुरुष दुगत होकर भी सुगति को प्राप्त हुआ है ।
३ सुगत और दुगति-गत—कोई पुरुष सुगत होकर भी दुगति को प्राप्त हुआ है ।
४ सुगत और सुगति-गत—कोई पुरुष सुगत होकर सुगति को ही प्राप्त हुआ है (४५९) ।

तम ज्योति-सूत्र

४६०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—तमे णाममेगे तमे, तमे णाममेगे जोती, जोती णाममेगे तमे, जोती णाममेगे जोती ।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१ तम और तम—कोई पुरुष पहले भी तम (अज्ञानी) होता है और पीछे भी तम (अज्ञानी) होता है ।

२ तम और ज्योति—कोई पुरुष पहले तम (अज्ञानी) होता है, किन्तु पीछे ज्योति (ज्ञानी) हो जाता है।
३ ज्योति और तम—कोई पुरुष पहले ज्योति (ज्ञानी) होता है, किन्तु पीछे तम (अज्ञानी) हो जाता है।
४ ज्योति और ज्योति—कोई पुरुष पहले भी ज्योति (ज्ञानी) होता है और पीछे भी ज्योति (ज्ञानी) ही रहता है (४६०)।

४६१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—तमे णाममेगे तमबले, तमे णाममेगे जोतिबले, जोती णाममेगे तमबले, जोती णाममेगे जोतिबले।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ तम और तमोबल—कोई पुरुष तम (अज्ञानी और मलिन स्वभावी) होता है और तमोबल (अन्धकार, अज्ञान और असदाचार ही उसका बल) होता है।
२ तम और ज्योतिबल—कोई पुरुष तम (अज्ञानी) होता है, किन्तु ज्योतिबल (प्रकाश, ज्ञान और सदाचार ही उसका बल) होता है।
३ ज्योति और तमोबल—कोई पुरुष ज्योति (ज्ञानी) होकर भी तमोबल (असदाचार) वाला होता है।
४ ज्योति और ज्योतिबल—कोई पुरुष ज्योति (ज्ञानी) होकर ज्योतिबल (सदाचारी) होता है (४६१)।

४६२—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—तमे णाममेगे तमबलपलज्जणे तमे णाममेगे जोतिबलपलज्जणे ४। [जोती णाममेगे तमबलपलज्जणे, जोती णाममेगे जोतिबलपलज्जणे]।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ तम और तमोबलप्ररजन—कोई पुरुष तम और तमोबल में रति करने वाला होता है।
२ तम और ज्योतिबलप्ररजन—कोई पुरुष तम किन्तु ज्योतिबल में रति करने वाला होता है।
३ ज्योति और तमोबलप्ररजन—कोई पुरुष ज्योति, किन्तु तमोबल में रति करने वाला होता है।
४ ज्योति और ज्योतिबलप्ररजन—कोई पुरुष ज्योति और ज्योतिबल में रति करने वाला होता है (४६२)।

परिज्ञात-अपरिज्ञात सूत्र

४६३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—परिण्णातकम्मे णाममेगे णो परिण्णातसण्णे, परिण्णातसण्णे णाममेगे णो परिण्णातकम्मे, एगे परिण्णातकम्मेवि। [परिण्णातसण्णेवि, एगे णो परिण्णातकम्मे णो परिण्णातसण्णे] ४।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ परिज्ञातकर्मा, न परिज्ञातसंज्ञ—कोई पुरुष कृषि आदि कर्मों का परित्यागी—सावद्य कर्म से विरत होता है, किन्तु आहारादि संज्ञाओं का परित्यागी (अनासक्त) नहीं होता।
२ परिज्ञातसंज्ञ, न परिज्ञातकर्मा—कोई पुरुष आहारादि संज्ञाओं का परित्यागी होता है, किन्तु कृषि आदि कर्मों का परित्यागी नहीं होता।
३ परिज्ञातकर्मा भी, परिज्ञातसंज्ञ भी—कोई पुरुष कृषि आदि कर्मों का भी परित्यागी होता है और आहारादि संज्ञाओं का भी परित्यागी होता है।
४ न परिज्ञातकर्मा, न परिज्ञातसंज्ञ—कोई पुरुष न कृषि आदि कर्मों का ही परित्यागी होता है और न आहारादि संज्ञाओं का ही परित्यागी होता है (४६३)।

४६४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—परिण्णातकम्मे णाममेगे णो परिण्णातगिहावासे, परिण्णातगिहावासे णाममेगे णो परिण्णातकम्मे,। [एगे परिण्णातकम्मेवि परिण्णातगिहावासेवि, एगे णो परिण्णातकम्मे णो परिण्णातगिहावासे] ४।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ परिज्ञातकर्मा, न परिज्ञातगृहावास—कोई पुरुष परिज्ञातकर्मा (सावद्यकर्म का त्यागी) तो होता है, किन्तु गृहावास का परित्यागी नहीं होता।
२ परिज्ञातगृहावास, न परिज्ञातकर्मा—कोई पुरुष गृहावास का परित्यागी तो होता है, किन्तु परिज्ञातकर्मा नहीं होता।
३ परिज्ञातकर्मा भी, परिज्ञातगृहावास भी—कोई पुरुष परिज्ञातकर्मा भी होता है और परिज्ञातगृहावास भी होता है।
४ न परिज्ञातकर्मा, न परिज्ञातगृहावास—कोई पुरुष न तो परिज्ञातकर्मा ही होता है और न परिज्ञातगृहावास ही होता है (४६४)।

४६५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—परिण्णातसण्णे णाममेगे णो परिण्णातगिहावासे, परिण्णातगिहावासे णाममेगे। [णो परिण्णातसण्णे, एगे परिण्णातसण्णेवि परिण्णातगिहावासेवि, एगे णो परिण्णातसण्णे णो परिण्णातगिहावासे] ४।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ परिज्ञातसंज्ञ, न परिज्ञातगृहावास—कोई पुरुष आहारादि संज्ञाओं का परित्यागी तो होता है किन्तु गृहावास का परित्यागी नहीं होता।
२ परिज्ञातगृहावास, न परिज्ञातसंज्ञ—कोई पुरुष परिज्ञातगृहावास तो होता है, किन्तु परिज्ञातसंज्ञ नहीं होता।
३ परिज्ञातसंज्ञ भी, परिज्ञातगृहावास भी—कोई पुरुष परिज्ञातसंज्ञ भी होता है और परिज्ञातगृहावास भी होता है।
४ न परिज्ञातसंज्ञ, न परिज्ञातगृहावास—कोई पुरुष न परिज्ञातसंज्ञ ही होता है और न परिज्ञातगृहावास ही होता है (४६५)।

इहार्थ-परार्थ सूत्र

४६६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—इहत्थे णाममेगे णो परत्थे, परत्थे णाममेगे णो इहत्थे। [एगे इहत्थेवि परत्थेवि, एगे णो इहत्थे णो परत्थे] ४।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ इहार्थ, न परार्थ—कोई पुरुष इहार्थ (इस लोक सम्बन्धी प्रयोजनवाला) होता है, किन्तु परार्थ (परलोक सम्बन्धी प्रयोजनवाला) नहीं होता।
२ परार्थ, न इहार्थ—कोई पुरुष परार्थ होता है किन्तु इहार्थ नहीं होता।
३ इहार्थ भी परार्थ भी—कोई पुरुष इहार्थ भी होता है और परार्थ भी होता है।
४ न इहार्थ, न परार्थ—कोई पुरुष न इहार्थ ही होता है और न परार्थ ही होता है (४६६)।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार ने सूत्र-पठित 'इहत्थ' और 'परत्थ' इन प्राकृत पदों के क्रमशः 'इहास्थ' और 'परास्थ' ऐसे भी संस्कृत रूप दिये हैं। तदनुसार 'इहास्थ' का अर्थ इस लोक सम्बन्धी कार्यों में जिसकी आस्था है, वह 'इहास्थ' पुरुष है और जिसकी परलोक सम्बन्धी कार्यों में आस्था है, वह 'परास्थ' पुरुष है। अतः इस अर्थ के अनुसार चारों भंग इस प्रकार होंगे—

१ कोई पुरुष इस लोक में आस्था (विश्वास) रखता है, परलोक में आस्था नहीं रखता।
२ कोई पुरुष परलोक में आस्था रखता है, इस लोक में आस्था नहीं रखता।
३ कोई पुरुष इस लोक में भी आस्था रखता है और परलोक में भी आस्था रखता है।
४ कोई पुरुष न इस लोक में आस्था रखता है और न परलोक में ही आस्था रखता है।

हानि-वृद्धि सूत्र

४६७—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—एगेण णाममेगे वड्ढति एगेण हायति, एगेण णाममेगे वड्ढति दोहिं हायति, दोहिं णाममेगे वड्ढति एगेण हायति, दोहिं णाममेगे वड्ढति दोहिं हायति।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ एक से बढ़ने वाला एक से हीन होने वाला—कोई पुरुष एक-शास्त्राभ्यास से बढ़ता है और एक सम्यग्दर्शन से हीन होता है।
२ एक से बढ़ने वाला, दो से हीन होने वाला—कोई पुरुष एक शास्त्राभ्यास से बढ़ता है, किन्तु सम्यग्दर्शन और विनय इन दो से हीन होता है।
३ दो से बढ़ने वाला, एक से हीन होने वाला—कोई पुरुष शास्त्राभ्यास और चारित्र इन दो से बढ़ता है और एक-सम्यग्दर्शन से हीन होता है।
४ दो से बढ़ने वाला, दो से हीन होने वाला—कोई पुरुष शास्त्राभ्यास और चारित्र इन दो से बढ़ता है और सम्यग्दर्शन एवं विनय इन दो से हीन होता है (४६७)।

विवेचन—सूत्र पठित 'एक', और 'दो' इन सामान्य पदों के आश्रय से उक्त व्याख्या के अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार से व्याख्या की है, जो कि इस प्रकार है—

१ कोई पुरुष एक-ज्ञान से बढ़ता है और एक राग से हीन होता है।

२ कोई पुरुष एक ज्ञान से बढता है और राग-द्वेष इन दो से हीन होता है ।
३ कोई पुरुष ज्ञान और सयम इन दो से बढता है और एक-राग से हीन होता है ।
४ कोई पुरुष ज्ञान और सयम इन दो से बढता है और राग द्वेष इन दो से हीन होता है ।

अथवा—

१ कोई पुरुष एक-क्रोध से बढता है और एक-माया से हीन होता है ।
२ कोई पुरुष एक-क्रोध से बढता है और माया एव लोभ इन दो से हीन होता है ।
३ कोई पुरुष क्रोध और मान इन दो से बढता है, तथा माया से हीन होता है ।
४ कोई पुरुष क्रोध और मान इन दो से बढता है, तथा माया और लोभ इन दो से हीन होता है ।

इसी प्रकार अन्य अनेक विवक्षाओ से भी इस सूत्र की व्याख्या की जा सकती है । जैसे—

१ कोई पुरुष तृष्णा से बढता है और आयु से हीन होता है ।
२ कोई पुरुष एक तृष्णा से बढता है, किन्तु वात्सल्य और कारुण्य इन दो से हीन होता है ।
३ कोई पुरुष ईर्ष्या और क्रूरता से बढता है और वात्सल्य से हीन होता है ।
४ कोई पुरुष वात्सल्य और कारुण्य से बढता है और ईर्ष्या तथा क्रूरता से हीन होता है ।

अथवा—

१ कोई पुरुष बुद्धि से बढता है और हृदय से हीन होता है ।
२ कोई पुरुष बुद्धि से बढता है, किन्तु हृदय और आचार इन दो से हीन होता है ।
३ कोई पुरुष बुद्धि और हृदय इन दो से बढता है और अनाचार से हीन होता है ।
४ कोई पुरुष बुद्धि और हृदय इन दो से बढता है, तथा अनाचार और अश्रद्धा इन दो से हीन होता है ।

अथवा—

१ कोई पुरुष सन्देह से बढता है और मैत्री से हीन होता है ।
२ कोई पुरुष सन्देह से बढता है, और मैत्री तथा प्रमोद से हीन होता है ।
३ कोई पुरुष मैत्री और प्रमोद से बढता है और सन्देह से हीन होता है ।
४ कोई पुरुष मैत्री और प्रमोद से बढता है, तथा सन्देह और क्रूरता से हीन होता है ।

अथवा—

१ कोई पुरुष सरागता से बढता है और वीतरागता से हीन होता है ।
२ कोई पुरुष सरागता से बढता है तथा वीतरागता और विज्ञान से हीन होता है ।
३ कोई पुरुष वीतरागता और विज्ञान से बढता है तथा सरागता से हीन होता है ।
४ कोई पुरुष वीतरागता और विज्ञान से बढता है तथा सरागता और छद्मस्थता से हीन होता है ।

इसी प्रक्रिया से इस सूत्र के चारो भगों की और भी अनेक प्रकार से व्याख्या की जा सकती है ।

आकीर्ण खलुंक सूत्र

४६८—चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, त जहा—आइण्णे णाममेगे आइण्णे, आइण्णे णाममेगे खलु के, खलु के णाममगे आइण्णे, खलु के णाममेगे खलु के ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—आइण्णे णाममेगे आइण्णे चउभगो [आइण्णे णाममेगे खलु के, खलु के णाममेगे आइण्णे, खलु के णाममेगे खलु के] ।

प्रकन्थक—घोड चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१ आकीण और आकीण—कोई घोडा पहले भी आकीण (वेग वाला) होता है और पीछे भी आकीण रहता है ।
२ आकीण और खलुक—कोई घोडा पहले आकीण होता है, किन्तु बाद म खलुक (मन्दगति और अडियल) होता जाता है ।
३ खलुक और आकीण—कोई घोडा पहले खलुक होता है, किन्तु बाद मे आकीर्ण हो जाता है ।
४ खलुक और खलुक—कोई घोडा पहले भी खलुक होता है और पीछे भी खलुक ही रहता है ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं । जसे—

१ आकीण और आकीण—कोई पुरुष पहले भी आकीण—तीव्रबुद्धि—होता है और पीछे भी तीव्रबुद्धि ही रहता है ।
२ आकीण और खलुक—कोई पुरुष पहले तो तीव्रबुद्धि होता है, किन्तु पीछे मन्दबुद्धि हो जाता है ।
३ खलुक और आकीण—कोई पुरुष पहले तो मन्दबुद्धि होता है, किन्तु पीछे तीव्रबुद्धि हो जाता है ।
४ खलुक और खलुक—कोई पुरुष पहले भी मन्दबुद्धि होता है और पीछे भी मन्दबुद्धि ही रहता है (४६८) ।

४६९—चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, त जहा—आइण्णे णाममेगे आइण्णताए वहति, आइण्णे णाममेगे खलुकताए वहति । [खलुके णाममेगे आइण्णताए वहति, खलुके णाममेगे खलुकताए वहति] ४ ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—आइण्णे णाममेगे आइण्णताए वहति चउभगो [आइण्णे णाममेगे खलुकताए वहति, खलुके णाममेगे आइण्णताए वहति, खलुके णाममेगे खलुकताए वहति] ।

पुन प्रकन्थक—घोडे चार प्रकार के कहे गये हैं । जसे—

१ आकीण और आकीणविहारी—कोई घोडा आकीण होता है और आकीणविहारी भी होता है, अर्थात आराही पुरुष को उत्तम गति से ले जाता है ।

२ आकीर्ण और खलुंकविहारी—कोई घोडा आकीर्ण होकर भी खलुंकविहारी होता है, अर्थात् आरोही को मार्ग में अड अड कर परेशान करता है।
३ खलुंक और आकीर्णविहारी—कोई घोडा पहले खलुंक होता है, किन्तु पीछे आकीर्ण-विहारी हो जाता है।
४ खलुंक और खलुंकविहारी—कोई घोडा खलुंक भी होता है और खलुंकविहारी भी होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ आकीर्ण और आकीर्णविहारी—कोई पुरुष बुद्धिमान् होता है और बुद्धिमानों के समान व्यवहार करता है।
२ आकीर्ण और खलुंकविहारी—कोई पुरुष बुद्धिमान् तो होता है, किन्तु मूर्खों के समान व्यवहार करता है।
३ खलुंक और आकीर्णविहारी—कोई पुरुष मन्दबुद्धि होता है, किन्तु बुद्धिमानों के समान व्यवहार करता है।
४ खलुंक और खलुंकविहारी—कोई पुरुष मूर्ख होता है और मूर्खों के समान ही व्यवहार करता है (४६९)।

जाति-सूत्र

४७०—चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, त जहा—जातिसपण्णे णाममेगे णो कुलसपण्णे ४। [कुल-सपण्णे णाममेगे णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णेवि कुलसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे णो कुलसपण्णे]।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—जातिसपण्णे णाममेगे चउभगो। [णो कुल-सपण्णे, कुलसपण्णे णाममेगे णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णेवि कुलसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे णो कुलसपण्णे]।

घोडे चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ जातिसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई घोडा जातिसम्पन्न (उत्तम मातृपक्षवाला) तो होता है, किन्तु कुलसम्पन्न (उत्तम पितृपक्षवाला) नहीं होता।
२ कुलसम्पन्न, न जातिसम्पन्न—कोई घोडा कुलसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३ जातिसम्पन्न भी, कुलसम्पन्न भी—कोई घोडा जातिसम्पन्न भी होता है और कुल-सम्पन्न भी होता है।
४ न जातिसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई घोडा न जातिसम्पन्न ही होता है और न कुल-सम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ जातिसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई पुरुष जातिसम्पन्न तो होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता।

२ कुलसम्पन्न, न जातिसम्पन्न—कोई पुरुष कुल सम्पन्न तो होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३ जातिसम्पन्न भी, कुलसम्पन्न भी—कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है और कुलसम्पन्न भी होता है।
४ न जातिसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई पुरुष न जातिसम्पन्न होता है और न कुलसम्पन्न ही होता है (४७०)।

४७१—चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, तं जहा—जातिसपण्णे णाममेगे णो बलसपण्णे ४। [बलसपण्णे णाममेगे णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णेवि बलसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे णो बलसपण्णे]।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जातिसपण्णे णाममेगे णो बलसपण्णे ४। [बलसपण्णे णाममेगे णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णेवि बलसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे णो बलसपण्णे]।

पुनः घोड़े चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ जातिसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई घोड़ा जातिसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।
२ बलसम्पन्न, न जातिसम्पन्न—कोई घोड़ा बलसम्पन्न तो होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३ जातिसम्पन्न भी, बलसम्पन्न भी—कोई घोड़ा जातिसम्पन्न भी होता है और बलसम्पन्न भी होता है।
४ न जातिसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई घोड़ा न जातिसम्पन्न ही होता है और न बलसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ जातिसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई पुरुष जातिसम्पन्न तो होता है किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।
२ बलसम्पन्न, न जातिसम्पन्न—कोई पुरुष बलसम्पन्न तो होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३ जातिसम्पन्न भी बलसम्पन्न भी—कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है और बलसम्पन्न भी होता है।
४ न जातिसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई पुरुष न जातिसम्पन्न ही होता है और न बलसम्पन्न ही होता है (४७१)।

४७२—चत्तारि [प ?] कथगा पण्णत्ता, तं जहा—जातिसपण्णे णाममेगे णो रूवसपण्णे ४। [रूवसपण्णे णाममेगे णो जातिसपण्णे, एगे जातिसपण्णेवि रूवसपण्णेवि, एगे णो जातिसपण्णे णो रूवसपण्णे]।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जातिसपण्णे णाममेगे णो रूवसपण्णे ४।

४ न कुलसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई पुरुष न कुलसम्पन्न होता है और न बलसम्पन्न ही होता है (४७४)।

४७५—चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, तं जहा—कुलसपण्णे णाममेगे णो रूवसपण्णे, रूवसपण्णे णाममेगे णो कुलसपण्णे, एगे कुलसपण्णेवि रूवसपण्णेवि, एगे णो कुलसपण्णे णो रूवसपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—कुलसपण्णे णाममेगे णो रूवसपण्णे, रूवसपण्णे णाममेगे णो कुलसपण्णे, एगे कुलसपण्णेवि रूवसपण्णेवि, एगे णो कुलसपण्णे णो रूवसपण्णे।

पुन घोडे चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ कुलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई घोडा कुलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नही होता।
२ रूपसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई घोडा रूपसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नही होता।
३ कुलसम्पन्न भी, रूपसम्पन्न भी—कोई घोडा कुलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।
४ न कुलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई घोडा न कुलसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कुलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नही होता।
२ रूपसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नही होता।
३ कुलसम्पन्न भी, रूपसम्पन्न भी—कोई पुरुष कुलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।
४ न कुलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष न कुलसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है (४७५)।

४७६—चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, तं जहा—कुलसपण्णे णाममेगे णो जयसपण्णे, जयसपण्णे णाममेगे णो कुलसपण्णे, एगे कुलसपण्णेवि जयसपण्णेवि, एगे णो कुलसपण्णे णो जयसपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—कुलसपण्णे णाममेगे णो जयसपण्णे, जयसपण्णे णाममेगे णो कुलसपण्णे, एगे कुलसपण्णेवि जयसपण्णेवि, एगे णो कुलसपण्णे णो जयसपण्णे।

पुन घोडे चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कुलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई घोडा कुलसम्पन्न होता है, किन्तु जयसम्पन्न नही होता।
२ जयसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई घोडा जयसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नही होता।

३ कुलसम्पन्न भी, जयसम्पन्न भी—कोई घोडा कुलसम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है।

४ न कुलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई घोडा न कुलसम्पन्न होता है और न जयसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कुलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु जयसम्पन्न नहीं होता।

२ जयसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई पुरुष जयसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता।

३ कुलसम्पन्न भी जयसम्पन्न भी—कोई पुरुष कुलसम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है।

४ न कुलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई पुरुष न कुलसम्पन्न ही होता है और न जयसम्पन्न ही होता है (४७६)।

बल सूत्र

४७७—चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, त जहा—बलसपण्णे णाममेगे णो रूवसपण्णे, रूवसपण्णे णाममेगे णो बलसपण्णे, एगे बलसपण्णेवि रूवसपण्णेवि, एगे णो बलसपण्णे णो रूवसपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—बलसपण्णे णाममेगे णो रूवसपण्णे, रूवसपण्णे णाममेगे णो बलसपण्णे, एगे बलसपण्णेवि रूवसपण्णेवि, एगे णो बलसपण्णे णो रूवसपण्ण।

घोडे चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ बलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई घोडा बलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।

२ रूपसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई घोडा रूपसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।

३ बलसम्पन्न भी, रूपसम्पन्न भी—कोई घोडा बलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।

४ न बलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई घोडा न बलसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ बलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष बलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।

२ रूपसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।

३ बलसम्पन्न भी, रूपसम्पन्न भी—कोई पुरुष बलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।

४ न कुलसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई पुरुष न कुलसम्पन्न होता है और न बलसम्पन्न ही होता है (४७४)।

४७५—चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, त जहा—कुलसपण्णे णाममेगे णो रूवसपण्णे, रूव सपण्णे णाममेगे णो कुलसपण्णे, एगे कुलसपण्णेवि रूवसपण्णेवि, एगे णो कुलसपण्णे णो रूवसपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—कुलसपण्णे णाममेगे णो रूवसपण्णे, रूवसपण्णे णाममेगे णो कुलसपण्णे, एगे कुलसपण्णेवि रूवसपण्णेवि, एगे णो कुलसपण्णे णो रूवसपण्णे।

पुन घोडे चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ कुलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई घोडा कुलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नही होता।
२ रूपसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई घोडा रूपसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नही होता।
३ कुलसम्पन्न भी, रूपसम्पन्न भी—कोई घोडा कुलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।
४ न कुलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई घोडा न कुलसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कुलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नही होता।
२ रूपसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नही होता।
३ कुलसम्पन्न भी, रूपसम्पन्न भी—कोई पुरुष कुलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।
४ न कुलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष न कुलसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है (४७५)।

४७६—चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, त जहा—कुलसपण्णे णाममेगे णो जयसपण्णे, जयसपण्णे णाममेगे णो कुलसपण्णे, एगे कुलसपण्णेवि जयसपण्णेवि, एगे णो कुलसपण्णे णो जयसपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—कुलसपण्णे णाममेगे णो जयसपण्णे, जयसपण्णे णाममेगे णो कुलसपण्णे, एगे कुलसपण्णेवि जयसपण्णेवि, एगे णो कुलसपण्णे णो जयसपण्णे।

पुन घोडे चार प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ कुलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई घोडा कुलसम्पन्न होता है, किन्तु जयसम्पन्न नही होता।
२ जयसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई घोडा जयसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नही होता।

३ कुलसम्पन्न भी, जयसम्पन्न भी—कोई घोड़ा कुलसम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है।

४ न कुलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई घोड़ा न कुलसम्पन्न होता है और न जयसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कुलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु जयसम्पन्न नहीं होता।

२ जयसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई पुरुष जयसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता।

३ कुलसम्पन्न भी जयसम्पन्न भी—कोई पुरुष कुलसम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है।

४ न कुलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई पुरुष न कुलसम्पन्न ही होता है और न जयसम्पन्न ही होता है (४७६)।

बल-सूत्र

४७७—चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, तं जहा—बलसपण्णे णाममेगे णो रूवसपण्णे, रूवसपण्णे णाममेगे णो बलसपण्णे, एगे बलसपण्णेवि रूवसपण्णेवि, एगे णो बलसपण्ण णो रूवसपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—बलसपण्णे णाममेगे णो रूवसपण्णे, रूवसपण्णे णाममेगे णो बलसपण्णे, एगे बलसपण्णेवि रूवसपण्णेवि, एगे णो बलसपण्णे णो रूवसपण्ण।

घोड़े चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ बलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई घोड़ा बलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।

२ रूपसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई घोड़ा रूपसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।

३ बलसम्पन्न भी, रूपसम्पन्न भी—कोई घोड़ा बलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।

४ न बलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई घोड़ा न बलसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ बलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष बलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।

२ रूपसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।

३ बलसम्पन्न भी, रूपसम्पन्न भी—कोई पुरुष बलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।

४ न बलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष न बलसम्पन्न ही होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है (४७७)।

४७८—चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, तं जहा—बलसपण्णे णाममेगे णो जयसपण्णे, जयसपण्णे णाममेगे णो बलसपण्णे, एगे बलसपण्णेवि जयसपण्णेवि, एगे णो बलस पण्णे णो जयस पण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—बलस पण्णे णाममेगे णो जयस पण्णे, जयसपण्ण णाममेगे णो बलसपण्णे, एगे बलस पण्णेवि जयस पण्णेवि, एगे णो बलस पण्णे णो जयसपण्णे।

पुन घोड़े चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ बलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई घोडा बलसम्पन्न होता है, किन्तु जयसम्पन्न नही होता।
२ जयसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई घोडा जयसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नही होता।
३ बलसम्पन्न भी, जयसम्पन्न भी—कोई घोडा बलसम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है।
४ न बलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई घोडा न बलसम्पन्न होता है और न जयसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ बलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई पुरुष बलसम्पन्न होता है, किन्तु जयसम्पन्न नही होता।
२ जयसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई पुरुष जयसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नही होता।
३ बलसम्पन्न भी, जयसम्पन्न भी—कोई पुरुष बलसम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है।
४ न बलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई पुरुष न बलसम्पन्न ही होता है और न जयसम्पन्न ही होता है (४७८)।

रूप सूत्र

४७९—चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, तं जहा—रूवस पण्णे णाममेगे णो जयस पण्णे ४। (जयस पण्णे णाममेगे णो रूवस पण्णे, एगे रूवस पण्णेवि, जयस पण्णेवि, एगे णो रूवस पण्णे णो जयस पण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रूवस पण्णे णाममेगे णो जयस पण्णे, जयस पण्णे णाममेगे णो रूवस पण्णे, एगे रूवस पण्णेवि जयस पण्णेवि, एगे णो रूवस पण्णे णो जयस पण्णे।

पुन घोड़े चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ रूपसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई घोडा रूपसम्पन्न होता है, किन्तु जयसम्पन्न नही होता।

२ जयसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई घोडा जयसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नही होता।
३ रूपसम्पन्न भी, जयसम्पन्न भी—कोई घोडा रूपसम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है।
४ न रूपसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई घोडा न रूपसम्पन्न होता है और न जयसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ रूपसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु जयसम्पन्न नही होता।
२ जयसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष जयसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नही होता।
३ रूपसम्पन्न भी, जयसम्पन्न भी—कोई पुरुष रूपसम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है।
४ न रूपसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई पुरुष न रूपसम्पन्न होता है और न जयसम्पन्न ही होता है (४७९)।

सिंह-शृगाल-सूत्र

४८०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सीहत्ताए णाममेगे णिक्खते सीहत्ताए विहरइ, सीहत्ताए णाममेगे णिक्खते सीयालत्ताए विहरइ, सीयालत्ताए णाममेगे णिक्खते सीहत्ताए विहरइ, सीयालत्ताए णाममेगे णिक्खते सीयालत्ताए विहरइ।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ कोई पुरुष सिंहवृत्ति से निष्क्रान्त (प्रव्रजित) होता है और सिंहवृत्ति से ही विचरता है अर्थात् सयम का दृढता से पालन करता है।
२ कोई पुरुष सिंहवृत्ति से निष्क्रान्त होता है, किन्तु शृगालवृत्ति से विचरता है, अर्थात् दीनवृत्ति से सयम का पालन करता है।
३ कोई पुरुष शृगालवृत्ति से निष्क्रान्त होता है, किन्तु सिंहवृत्ति से विचरता है।
४ कोई पुरुष शृगालवृत्ति से निष्क्रान्त होता है और शृगालवृत्ति से ही विचरता है (४८०)।

सम-सूत्र

४८१—चत्तारि लोगे समा पण्णत्ता, त जहा—अपइट्ठाणे णरए, जबुद्दीवे दीवे, पालए जाणविमाणे, सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे।

लोक मे चार स्थान समान कहे गये हैं। जैसे—

१ अप्रतिष्ठान नरक—सातवे नरक के पाच नारकावासो मे से मध्यवर्ती नारकावास।
२ जम्बूद्वीप नामक मध्यलोक का सर्वमध्यवर्ती द्वीप।
३ पालकयान विमान—सौधर्मेन्द्र का यात्रा-विमान।

४ न वलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष न बलसम्पन्न ही होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है (४७७)।

४७८—चत्तारि पकयगा पण्णत्ता, त जहा—बलसपण्णे णाममेगे णो जयसपण्णे, जयसपण्णे णाममेगे णो बलसपण्णे, एगे बलसपण्णेवि जयसपण्णेवि, एगे णो बलस पण्णे णो जयस पण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—बलस पण्णे णाममेगे णो जयस पण्णे, जयसपण्ण णाममेगे णो बलसपण्णे, एगे बलस पण्णेवि जयस पण्णेवि, एगे णो बलस पण्णे णो जयसपण्णे।

पुन घाडे चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ वलसम्पन्न, न जयमम्पन्न—कोई घोडा वलसम्पन्न होता है, किन्तु जयमम्पन्न नही होता।
२ जयसम्पन्न, न वलमम्पन्न—कोई घोडा जयसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नही होता।
३ वलसम्पन्न भी, जयमम्पन्न भी—कोई घोडा बलसम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है।
४ न वलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई घोडा न बलसम्पन्न होता है और न जयसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ बलसम्पन्न, न जयमम्पन्न—कोई पुरुष बलसम्पन्न हाना है, किन्तु जयसम्पन्न नही होता।
२ जयसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई पुरुष जयसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नही होना।
३ वलसम्पन्न भी, जयसम्पन्न भी—कोई पुरुष वलमम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है।
४ न बलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई पुरुष न वलसम्पन्न ही होता है और न जयसम्पन्न ही हाता है (४७८)।

रूप सूत्र

४७९—चत्तारि पकथगा पण्णत्ता, त जहा—रूवस पण्णे णाममेगे णो जयस पण्णे ४। (जयस पण्णे णाममेगे णो रूवस पण्णे, एगे रूवस पण्णेवि, जयस पण्णेवि, एगे णो रूवस पण्णे णो जयस पण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—रूवस पण्णे णाममेगे णो जयस पण्णे, जयस पण्णे णाममेगे णो रूवस पण्णे, एगे रूवस पण्णवि जयस पण्णेवि, एगे णो रूवस पण्णे णो जयस पण्णे।

पुन घोडे चार प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ रूपसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई घोडा रूपसम्पन्न हाता है, किन्तु जयसम्पन्न नही होता।

२ जयसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई घोडा जयसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नही होता।
३ रूपसम्पन्न भी, जयसम्पन्न भी—कोई घोडा रूपसम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है।
४ न रूपसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई घोडा न रूपसम्पन्न होता है और न जयसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ रूपसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु जयसम्पन्न नही होता।
२ जयसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष जयसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नही होता।
३ रूपसम्पन्न भी, जयसम्पन्न भी—कोई पुरुष रूपसम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है।
४ न रूपसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई पुरुष न रूपसम्पन्न होता है और न जयसम्पन्न ही होता है (४७९)।

सिंह शृगाल-सूत्र

४८०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सीहत्ताए णाममेगे णिक्खंते सीहत्ताए विहरइ, सीहत्ताए णाममेगे णिक्खंते सीयालत्ताए विहरइ, सीयालत्ताए णाममेगे णिक्खंते सीहत्ताए विहरइ, सीयालत्ताए णाममेगे णिक्खंते सीयालत्ताए विहरइ।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ कोई पुरुष सिंहवृत्ति से निष्क्रान्त (प्रव्रजित) होता है और सिंहवृत्ति से ही विचरता है अर्थात् संयम का दृढ़ता से पालन करता है।
२ कोई पुरुष सिंहवृत्ति से निष्क्रान्त होता है, किन्तु शृगालवृत्ति से विचरता है, अर्थात् दीनवृत्ति से संयम का पालन करता है।
३ कोई पुरुष शृगालवृत्ति से निष्क्रान्त होता है, किन्तु सिंहवृत्ति से विचरता है।
४ कोई पुरुष शृगालवृत्ति से निष्क्रान्त होता है और शृगालवृत्ति से ही विचरता है (४८०)।

सम सूत्र

४८१—चत्तारि लोगे समा पण्णत्ता, तं जहा—अपइट्ठाणे णरए, जंबुद्दीवे दीवे, पालए जाणविमाणे, सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे।

लोक मे चार स्थान समान कहे गये है। जैसे—

१ अप्रतिष्ठान नरक—सातवे नरक के पांच नारकावासो मे से मध्यवर्ती नारकावास।
२ जम्बूद्वीप नामक मध्यलोक का सर्वमध्यवर्ती द्वीप।
३ पालकयान-विमान—सौधर्मेन्द्र का यात्रा-विमान।

४ सर्वार्थसिद्ध महाविमान—पच अनुत्तर विमानो मे मध्यवर्ती विमान ।
ये चारो ही एक लाख योजन विस्तार वाले है (४८१)।

४८२—चत्तारि लोगे समा सपक्खि सपडिदिसि पण्णत्ता, त जहा—सीमतए णरए, समयक्खेत्ते, उडुविमाणे, इसीपब्भारा पुढवी ।

लोक मे चार सम (समान विस्तारवाले), सपक्ष (समान पार्श्ववाले), और सप्रतिदिश (समान दिशा और विदिशा वाले) कहे गये हैं । जसे—

१ सीमन्तक नरक—पहले नरक का मध्यवर्ती प्रथम नारकावास ।
२ समयक्षेत्र—काल के व्यवहार से सयुक्त मनुष्य क्षेत्र—अढाई द्वीप ।
३ उडुविमान—सौधम कल्प के प्रथम प्रस्तट का मध्यवर्त्ती विमान ।
४ ईषत्प्राग्भार-पृथ्वी—लोक के अग्रभाग पर अवस्थित भूमि, (सिद्धालय—जहाँ पर सिद्ध जीव निवास करते है ।)
ये चारो ही पैतालीस लाख योजन विस्तार वाले ह ।

विवेचन—दिगम्बर शास्त्रो मे ईषत्प्राग्भार पृथ्वी को एक रज्जू चौडी, सात रज्जू लम्बी और आठ योजन मोटी कहा गया है । हा, उसके मध्य मे स्थित छत्राकार गोल और मनुष्य क्षेत्र के समान पैतालीस लाख योजन विस्तार वाला, सिद्धक्षेत्र बताया गया है, जहा पर कि सिद्ध जीव अनन्त सुख भोगते हुए रहते हैं[1] ।

द्विशरीर सूत्र

४८३—उड्ढलोगे ण चत्तारि बिसरीरा पण्णत्ता, त जहा—पुढविकाइया, आउकाइया, वणस्सइकाइया, उराला तसा पाणा ।

ऊर्ध्वलोक मे चार द्विशरीरी (दो शरीर वाले) कहे गये हैं । जसे—
१ पृथ्वीकायिक, २ अप्कायिक, ३ वनस्पतिकायिक, ४ उदार त्रस प्राणी (४८३) ।

४८४—अहोलोगे ण चत्तारि बिसरीरा पण्णत्ता, त जहा—एव चेव, (पुढविकाइया, आउकाइया, वणस्सइकाइया, उराला तसा पाणा ।

अधोलोक मे चार द्विशरीरी कहे गये हैं । जैसे—
१ पृथ्वीकायिक, २ अप्कायिक, ३ वनस्पतिकायिक ४ उदार त्रस प्राणी (४८४) ।

---

१ तिहुवणमुड्ढारुढा ईसिपभारा धरट्ठमी रुदा ।
दिग्घा इगि सगरज्जू अडजोयणपमिद बाहल्ला ॥५५६॥
तम्मज्झ रुप्पमय छत्तायार मणुस्समहिवास ।
सिद्धक्खेत्त मज्झडवह कमहीण बहुलय ॥५५७॥
उत्ताणट्ठियमत पत्त व तणु तदुवरि तणूवादे ।
अट्ठगुणड्ढा सिद्धा चिट्ठति अणतसुहतित्ता ॥५५८॥
—त्रिलोकसार, वमानिक लाकाधिकार ।

४८५—एव तिरियलोगे वि (ण चत्तारि बिसरीरा पण्णत्ता, त जहा—पुढविकाइया, आउकाइया, वणस्सइकाइया, उराला तसा पाणा) ।

तिर्यक् लोक मे चार द्विशरीरी कहे गये हैं । जसे—

१ पथ्वीकायिक, २ अप्कायिक, ६ वनस्पतिकायिक, ४ उदार त्रस प्राणी (४८५) ।

विवेचन—छह कायिक जीवो मे से उक्त तीनो सूत्रा मे अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो को छोड दिया है क्योंकि वे मर कर मनुष्यो मे उत्पन्न नही होते है और इसीलिए वे दूसरे भव मे सिद्ध नही हो सकते । छहो कायो मे जो सूक्ष्म जीव है, वे भी मर कर अगले भव मे मनुष्य न हो सकने के कारण मुक्त नही हो सकते । त्रस पद के पूर्व जो 'उदार' विशेषण दिया गया है, उससे यह सूचित किया गया है कि विकलेन्द्रिय त्रस प्राणी भी अगले भव मे सिद्ध नही हो सकते । अत यह अर्थ फलित होता है कि सनी पचेन्द्रिय त्रस जीवो को 'उदार त्रस प्राणी' पद मे ग्रहण करना चाहिए ।

यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि सूत्रोक्त सभी प्राणी अगले भव मे मनुष्य होकर सिद्ध नही होंगे । किन्तु उनमे जो आसन्न या अतिनिकट भव्य जीव है, उनमे भी जिसको एक ही नवीन भव धारण करके सिद्ध होना है, उनका ही प्रकृत सूत्रो म वर्णन किया गया है और उनकी अपेक्षा से एक वर्तमान शरीर और एक अगले भव का मनुष्य शरीर एसे दो शरीर उक्त प्राणियो के बतलाये गये है ।

सत्त्व-सूत्र

४८६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—हिरिसत्ते, हिरिमणसत्ते, चलसत्ते थिरसत्ते ।

पुरुष चार प्रकार के कहे गय हैं । जसे—

१ ह्रीसत्त्व—किसी भी परिस्थिति म लज्जावश कायर न होन वाला पुरुष ।
२ ह्रीमन सत्त्व—शरीर मे रोमाच, कम्पनादि होने पर भी मन मे दढता रखने वाला पुरुष ।
३ चलसत्त्व—परीषहादि आने पर विचलित हो जान वाला पुरुष ।
४ स्थिरसत्त्व—उग्र मे उग्र परीषह और उपसर्ग आने पर भी स्थिर रहने वाला पुरुष (४८६)।

विवेचन—ह्रीसत्त्व और ह्रीमन सत्त्व वाले पुरुषो म यह अन्तर है कि ह्रीसत्त्व व्यक्ति तो विकट परिस्थितिया मे भय-ग्रस्त होने पर भी लज्जावश शरीर और मन दोनो म ही भय के चिह्न प्रकट नहीं होने देता । किन्तु जो ह्रीमन सत्त्व व्यक्ति होता है वह मन मे तो सत्त्व (हिम्मत) को बनाये रखता है, किन्तु उसके शरीर मे भय के चिह्न रोमाच-कम्प आदि प्रकट हो जाते हैं ।

प्रतिमा सूत्र

४८७—चत्तारि सेज्जपडिमाओ पण्णत्ताओ ।

चार शय्या प्रतिमाए (शय्या विषयक अभिग्रह या प्रतिज्ञाए) कही गई है (४८७) ।

४८८—चत्तारि वत्थपडिमाओ पण्णत्ताओ ।

चार वस्त्र प्रतिमाए (वस्त्र विषयक प्रतिज्ञाए) कही गई है (४८८)

४८९—चत्तारि पायपडिमाओ पण्णत्ताओ ।

चार पात्र-प्रतिमाए (पात्र-विषयक-प्रतिज्ञाए) कही गई हैं (४८९) ।

४९०—चत्तारि ठाणपडिमाओ पण्णत्ताओ ।

चार स्थान-प्रतिमाए (स्थान विषयक प्रतिज्ञाए) कही गई है (४९०) ।

विवेचन—मूल सूत्रो मे उक्त प्रतिमाओ के चार-चार प्रकारो का उल्लेख नही किया गया है, पर आयारचूला के आधार पर सस्कृत टीकाकार ने चारो प्रतिमाओ के चारो प्रकारो का वणन इस प्रकार किया है—

(१) शय्या-प्रतिमा के चार प्रकार—

१ मेरे लिए उद्दिष्ट (नाम-निर्देश-पूर्वक सकल्पित) शय्या (काष्ठ-फलक आदि शयन करने की वस्तु) मिलेगी तो ग्रहण करु गा, अन्य अनुद्दिष्ट शय्या को नही ग्रहण करु गा। यह पहली शय्या-प्रतिमा है ।

२ मेरे लिए उद्दिष्ट शय्या को यदि मै देखू गा, तो उसे ही ग्रहण करू गा, अन्य अनुद्दिष्ट और अदृष्ट को नही ग्रहण करू गा । यह दूसरी शय्याप्रतिमा है ।

३ मेरे लिए उद्दिष्ट शय्या यदि शय्यातर के घर मे होगी तो उसे ही ग्रहण करु गा, अन्यथा नही । यह तीसरी शय्याप्रतिमा है ।

४ मेरे लिए उद्दिष्ट शय्या यदि यथासस्त (सहज बिछी हुई) मिलेगी तो उसे ग्रहण करु गा, अन्यथा नही । यह चौथी शय्याप्रतिमा है ।

(२) वस्त्र प्रतिमा के चार प्रकार—

१ मेरे लिए उद्दिष्ट और 'यह कपास निर्मित है, या ऊन निर्मित हो इस प्रकार से घोषित वस्त्र की ही मैं याचना करु गा, अन्य की नही । यह पहला वस्त्रप्रतिमा है ।

२ मेरे लिए उद्दिष्ट और सूती-ऊनी आदि नाम से घोषित वस्त्र यदि देखू गा, तो उसकी ही याचना करु गा, अन्य की नही । यह दूसरी वस्त्रप्रतिमा है ।

३ मेरे लिए उद्दिष्ट और घोषित वस्त्र यदि शय्यातर के द्वारा उपभुक्त—उपयोग म लाया हुआ हो ता उसकी याचना करु गा, अन्य की नही । यह तीसरी वस्त्रप्रतिमा है ।

४ मेरे लिए उद्दिष्ट और घोषित वस्त्र यदि शय्यातर के द्वारा फक देने योग्य हो तो उसकी याचना करू गा, अन्य की नही । यह चौथी वस्त्रप्रतिमा है ।

(३) पात्र प्रतिमा के चार प्रकार—

१ मेरे लिए उद्दिष्ट काष्ठ-पात्र आदि की मैं याचना करु गा, अन्य की नही, यह पहली पात्र-प्रतिमा है ।

२ मेरे लिए उद्दिष्ट पात्र यदि मैं देखू गा, तो उसकी मैं याचना करू गा, अन्य की नही । यह दूसरी पात्र प्रतिमा है ।

३ मेरे लिए उद्दिष्ट पात्र यदि दाता का निजी है और उसके द्वारा उपभुक्त है, ता मैं याचना करु गा, अन्यथा नही । यह तीसरी पात्र-प्रतिमा है ।

४ मेरे लिए उद्दिष्ट पात्र यदि दाता का निजी है, उपभुक्त है और उसके द्वारा छोड़ने-त्याग देने के योग्य है, तो मैं याचना करूंगा, अन्य नहीं। यह चौथी पात्र-प्रतिमा है।

(४) स्थान प्रतिमा के चार प्रकार—

१ कायोत्सर्ग, ध्यान और अध्ययन के लिए मैं जिस अचित्त स्थान का आश्रय लूंगा, वहां पर ही मैं हाथ-पैर पसारूंगा वहीं पर अल्प पाद-विचरण करूंगा, और भित्ति आदि का सहारा लूंगा, अन्यथा नहीं। यह पहली स्थानप्रतिमा है।

२ स्वीकृत स्थान में भी मैं पाद-विचरण नहीं करूंगा, यह दूसरी स्थानप्रतिमा है।

३ स्वीकृत स्थान में भी मैं भित्ति आदि का सहारा नहीं लूंगा, यह तीसरी स्थान-प्रतिमा है।

४ स्वीकृत स्थान में भी मैं न हाथ-पैर पसारूंगा, न भित्ति आदि का सहारा लूंगा, न पाद-विचरण करूंगा। किन्तु जैसा कायोत्सर्ग, पद्मासन या अन्य आसन में अवस्थित होऊंगा, नियत काल तक वैसे अवस्थित रहूंगा। यह चौथी स्थानप्रतिमा है।

शरीर-सूत्र

४६१—चत्तारि सरीरगा जीवफुडा पण्णत्ता, तं जहा—वेउव्विए, आहारए, तेयए कम्मए।

चार शरीर जीव-स्पृष्ट कहे गये हैं। जैसे—

१ वैक्रियशरीर, २ आहारकशरीर, ३ तैजस शरीर, ४ कार्मण शरीर (४६१)।

४६२—चत्तारि सरीरगा कम्मुम्मीसगा पण्णत्ता, तं जहा—ओरालिए, वेउव्विए, आहारए, तेयए।

चार शरीर कार्मणशरीर से संयुक्त कहे गये हैं।

१ औदारिक शरीर, २ वैक्रिय शरीर, ३ आहारक शरीर, ४ तैजस शरीर (४६२)।

विवेचन—वैक्रिय आदि चार शरीरों को जीव स्पृष्ट कहा गया है, इसका अभिप्राय यह है कि ये चारों शरीर सदा जीव से व्याप्त ही मिलेंगे। जीव से रहित वैक्रिय आदि शरीरों की सत्ता त्रिकाल में भी सम्भव नहीं है अर्थात् जीव द्वारा त्यक्त वैक्रिय आदि शरीर पृथक् रूप से कभी नहीं मिलेंगे। जीव के बहिर्गमन करते ही वैक्रिय आदि शरीरों के पुद्गल-परमाणु तत्काल बिखर जाते हैं किन्तु औदारिक शरीर की स्थिति उक्त चारों शरीरों से भिन्न है। जीव के बहिर्गमन करने के बाद भी निर्जीव या मुर्दा औदारिक शरीर अमुक काल तक ज्यों का त्यों पड़ा रहता है, उसके परमाणुओं का वैक्रियादि शरीरों के समान तत्काल विघटन नहीं होता है।

चार शरीरों को कार्मणशरीर से संयुक्त कहा गया है, उसका अर्थ यह है कि अकेला कार्मण-शरीर कभी नहीं पाया जाता है। जब भी और जिस किसी भी गति में वह मिलेगा, तब वह औदारिकादि चार शरीरों में से किसी एक, दो या तीन के साथ सम्मिश्र, संपृक्त या संयुक्त ही मिलेगा। इसी कारण से जीव-युक्त चार शरीरों को कार्मण शरीर-संयुक्त कहा गया है।

स्पृष्ट-सूत्र

४६३—चउहिं अत्थिकाएहिं लोगे फुडे पण्णत्ते, त जहा—धम्मत्थिकाएण, अधम्मत्थिकाएण, जीवत्थिकाएण, पुग्गलत्थिकाएण।

चार अस्तिकायो से यह सर्व लोक स्पृष्ट (व्याप्त) है। जसे—

१ धर्मास्तिकाय से, २ अधर्मास्तिकाय से, ३ जीवास्तिकाय से और ४ पुद्गलास्तिकाय से। (४६३)।

४६४—चउहिं बादरकाएहिं उववज्जमाणेहिं लोगे फुडे पण्णत्ते, त जहा—पुढविकाइएहिं, आउकाइएहिं वाउकाइएहिं, वणस्सइकाइएहिं।

निरन्तर उत्पन्न होने वाले चार अपर्याप्तक बादरकायिक जीवो के द्वारा यह सवलोक स्पृष्ट कहा गया है। जैसे—

१ बादर पृथवीकायिक जीवा से, २ बादर अप्कायिक जीवो से, ३ बादर वायुकायिक जीवो से, ४ बादर वनस्पतिकायिक जीवो से (४६४)।

विवेचन—इस सूत्र मे बादर तैजस्कायिकजीवा का नामोल्लेख नही करने का कारण यह है कि वे सव लोक म नही पाये जाते है, किन्तु केवल मनुष्य क्षेत्र मे ही उनका सद्भाव पाया जाता है। हा, सूक्ष्मतेजस्कायिक जीव सब लोक में व्याप्त पाये जाते ह, किन्तु 'बादरकाय' इस सूत्र पठित पद से उनका ग्रहण नही होता है। बादर पृथ्वीकायिकादि चारो काया के जीव निरन्तर मरते रहते ह, अत उनको उत्पत्ति भी निरन्तर होती रहती है।

तुल्य प्रदेश सूत्र

४६५—चत्तारि पएसग्गेण तुल्ला पण्णत्ता, त जहा—धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, लोगागासे, एगजीवे।

चार अस्तिकाय द्रव्य प्रदेशाग्र (प्रदेशो के परिमाण) की अपेक्षा से तुल्य कहे गये हैं। जसे—

१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ लाकाकाश, ४ एकजीव।

इन चारो के असख्यात प्रदेश होते ह और वे बराबर-बराबर ह (४६५)।

नो सुपश्य सूत्र

४६६—चउण्हमेग सरीर णो सुपस्स भवइ, त जहा—पुढविकाइयाण, आउकाइयाण, तेउकाइयाण, वणस्सइकाइयाण।

चार काय के जीवो का एक शरीर सुपश्य (सहज दृश्य) नही होता है। जैसे—

१ पृथ्वीकायिक जीवा का, २ अप्-कायिक जीवा का, ३ तजस-कायिक जीवो का, ४ साधारण वनस्पतिकायिक जीवा का (४६६)।

विवेचन—प्रकृत में 'सुपश्य नही' का अर्थ आखा से दिखाई नही देता, यह समझना चाहिए,

क्योंकि इन चारों ही काया के जीवों में एक-एक जीव के शरीर की अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग कही गई है। इतने छोटे शरीर का दिखना नेत्रों से सम्भव नही है। हा, अनुमानादि प्रमाणों से उनका जानना सम्भव है।

इन्द्रियार्थ-सूत्र

४६७—चत्तारि इंदियत्था पुट्ठा वेदेंति, त जहा—सोइंदियत्थे, घाणिंदियत्थे, जिब्भिंदियत्थे, फासिंदियत्थे।

चार इन्द्रियों के अर्थ (विषय) स्पृष्ट होने पर ही अर्थात् इन विषयों का उनकी ग्राहक इन्द्रिय के साथ सयोग होने पर ही ज्ञान होता है जैसे—

१ श्रोत्रेन्द्रिय का विषय—शब्द, २ घ्राणेन्द्रिय का विषय—गन्ध, ३ रसनेन्द्रिय का विषय—रस, और ४ स्पर्शनेन्द्रिय का विषय—स्पर्श। (चक्षु-इन्द्रिय रूप के साथ सयोग हुए बिना ही अपने विषय-रूप को देखती है) (४६७)।

अलोक-अगमन-सूत्र

४६८—चउहिं ठाणेहिं जीवा य पोग्गला य णो सचाएंति बहिया लोगता गमणयाए, त जहा—गतिअभावेण, णिरुवग्गहयाए, लुक्खताए, लोगाणुभावेण।

चार कारणों से जीव और पुद्गल लोकान्त से बाहर गमन करने के लिए समर्थ नही हैं। जैसे—

१ गति के अभाव से—लोकान्त से आगे इनका गति करने का स्वभाव नही होने से।
२ निरुपग्रहता से—धर्मास्तिकाय रूप उपग्रह या निमित्त कारण का अभाव होने से।
३ रूक्ष होने से—लोकान्त मे स्निग्ध पुद्गल भी रूक्ष रूप से परिणत हो जाते हैं, जिससे उनका आगे गमन सम्भव नही। तथा कर्म-पुद्गलों के भी रूक्ष रूप से परिणत हो जाने के कारण ससारी जीवों का भी गमन सम्भव नही रहता। सिद्ध जीव धर्मास्तिकाय का अभाव होने से लोकान्त से आगे नही जाते।
४ लोकानुभाव से—लोक की स्वाभाविक मर्यादा ऐसी है कि जीव और पुद्गल लोकान्त से आगे नही जा सकते (४६८)।

ज्ञात सूत्र

४६९—चउव्विहे णाते पण्णत्ते, त जहा—आहरणे, आहरणतद्देसे, आहरणतद्दोसे, उवण्णा-सोवणए।

ज्ञात (दृष्टान्त) चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ आहरण—सामान्य दृष्टान्त।
२ आहरण तद्देश—एक देशीय दृष्टान्त।
३ आहरण तद्दोष—साध्यविकल आदि दृष्टान्त।

४ उपन्यासोपनय—वादी के द्वारा किये गये उपन्यास के विघटन (खंडन) के लिए प्रतिवादी के द्वारा दिया गया विरुद्धार्थक उपनय (४९९)।

५००—आहरणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—अवाए, उवाए, ठवणाकम्म, पडुप्पण्णविणासी।

आहरण रूप ज्ञात (दृष्टान्त) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ अपाय-आहरण—हेयधर्म का ज्ञापक दृष्टान्त।
२ उपाय-आहरण—उपादेय वस्तु का उपाय बताने वाला दृष्टान्त।
३ स्थापनाकर्म-आहरण—अभीष्ट की स्थापना के लिए प्रयुक्त दृष्टान्त।
४ प्रत्युत्पन्नविनाशी-आहरण—उत्पन्न दूषण का परिहार करने के लिए दिया जाने वाला दृष्टान्त (५००)।

५०१—आहरणतद्देसे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—अणुसिट्ठी, उवालंभे, पुच्छा, णिस्सावयणे।

आहरण तद्देश ज्ञात (दृष्टान्त) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ अनुशिष्टि-आहरणतद्देश—प्रतिवादी के मन्तव्य का अनुचित अंश स्वीकार कर अनुचित अंश का निराकरण करना।
२ उपालम्भ आहरण-तद्देश—दूसरे के मत को उसी की मान्यता से दूषित करना।
३ पृच्छा आहरण-तद्देश—प्रश्न-प्रतिप्रश्न के द्वारा पर-मत को असिद्ध करना।
४ निःश्रावचन-आहरण-तद्देश—एक के माध्यम से दूसरे को शिक्षा देना (५०१)।

५०२—आहरणतद्दोसे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—अधम्मजुत्ते, पडिलोमे, अत्तोवणीते, दुरुवणीते।

आहरण-तद्दोष ज्ञात (दृष्टान्त) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ अधर्म युक्त-आहरण-तद्दोष—अधर्म बुद्धि को उत्पन्न करने वाला दृष्टान्त।
२ प्रतिलोम-आहरण तद्दोष—अपसिद्धान्त का प्रतिपादक दृष्टान्त, अथवा प्रतिकूल आचरण की शिक्षा देने वाला दृष्टान्त।
३ आत्मोपनीत-आहरण-तद्दोष—पर-मत में दोष दिखाने के लिए प्रयुक्त किया गया, किन्तु स्वमत का दूषक दृष्टान्त।
४ दुरुपनीत-आहरण-तद्दोष—दोष-युक्त निगमन वाला दृष्टान्त (५०२)।

५०३—उवण्णासोवणए चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—तव्वत्थुते, तदण्णवत्थुते, पडिणिभे, हेतू।

उपन्यासोपनय-ज्ञात (दृष्टान्त) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ तद्-वस्तुक उपन्यासोपनय—वादी के द्वारा उपन्यास किये गये हेतु में उसका ही निराकरण करना।
२ तदन्यवस्तुक-उपन्यासोपनय—उपन्यास की गई वस्तु से भिन्न भी वस्तु में प्रतिवादी की बात को पकड़ कर उसे हराना।

३ प्रतिनिभ-उपन्यासोपनय—वादी-द्वारा प्रयुक्त हेतु के सदृश दूसरा हेतु प्रयोग करके उसके हेतु को असिद्ध करना।

४ हेतु उपन्यासोपनय—हेतु बता कर अन्य के प्रश्न का समाधान कर देना (५०३)।

विवेचन—संस्कृत टीका में 'ज्ञात' पद के चार अर्थ किये हैं—

१ दृष्टान्त, २ आख्यानक, ३ उपमान मात्र और ४ उपपत्ति मात्र।

१ दृष्टान्त—न्यायशास्त्र के अनुसार साधन का सद्भाव होने पर साध्य का नियम से सद्भाव और साध्य के अभाव में साधन का नियम से अभाव जहा दिखाया जावे, उसे दृष्टान्त कहते हैं। जैसे धूम देखकर अग्नि का सद्भाव बताने के लिए रसोईघर को बताना, अर्थात् जहां धूम होता है वहां अग्नि होती है, जैसे रसोईघर। यहां रसोईघर दृष्टान्त है।

आख्यानक का अर्थ कथानक है। यह दो प्रकार का होता है—चरित और कल्पित। निदान का दुष्फल बताने के लिए ब्रह्मदत्त का दृष्टान्त देना चरित-आख्यानक है। कल्पना के द्वारा किसी तथ्य को प्रकट करना कल्पित आख्यानक है। जैसे—पीपल के पके पत्ते को गिरता देखकर नव किसलय हंसा, उसे हंसता देखकर पका पत्ता बोला—एक दिन तुम्हारा भी यही हाल होगा। यह दृष्टान्त यद्यपि कल्पित है, तो भी शरीरादि की अनित्यता का बोधक है।

सूत्राङ्क ४९९ में ज्ञात के चार भेद बताये गये हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—

१ आहरण-ज्ञात—अप्रतीत अर्थ को प्रतीत कराने वाला दृष्टान्त आहरण-ज्ञात कहलाता है। जैसे—पाप दुःख देने वाला होता है, ब्रह्मदत्त के समान।

२ आहरणतद्देश-ज्ञात—दृष्टान्तार्थ के एक देश से दार्ष्टान्तिक अर्थ का कहना, जैसे—'इसका मुख चन्द्र जैसा है' यहां चन्द्र की सौम्यता और कान्ति मात्र ही विवक्षित है, चन्द्र का कलंक आदि नहीं। अतः यह एकदेशीय दृष्टान्त है।

३ आहरणतद्दोष ज्ञात—उदाहरण के साध्यविकल आदि दोषों से युक्त दृष्टान्त को आहरणतद्दोष ज्ञात कहते हैं। जैसे—शब्द नित्य है, क्योंकि वह अमूर्त है, जैसे घट। यह दृष्टान्त साध्य-साधन-विकलता दोष से युक्त है, क्योंकि घट मनुष्य के द्वारा बनाया जाता है, इसलिए वह नित्य नहीं है और रूपादि से युक्त है अतः अमूर्त्त भी नहीं है।

४ उपन्यासोपनय ज्ञात—वादी अपने अभीष्ट मत की सिद्धि के लिए दृष्टान्त का उपन्यास करता है—आत्मा अकर्ता है, क्योंकि वह अमूर्त्त है। जैसे—आकाश। प्रतिवादी उसका खण्डन करने के लिए कहता है—यदि आत्मा आकाश के समान अकर्ता है तो वह आकाश के समान अभोक्ता भी होना चाहिए।

ज्ञात के प्रथम भेद आहरण के भी सूत्राङ्क ५०० में चार भेद बताये गये हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—

१ अपाय आहरण—हेयधर्म के ज्ञान कराने वाले दृष्टान्त को अपाय-आहरण कहते हैं। टीकाकार ने इसके भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा चार भेद करके कथानकों द्वारा उनका विस्तृत वर्णन किया है।

२ उपाय-आहरण—इष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए उपाय बतानेवाले दृष्टान्त का उपाय-आहरण कहते हैं। टीका में इसके भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा चार भेद करके उनका विस्तृत वर्णन किया गया है।

३ स्थापनाकर्म-आहरण—जिस दृष्टान्त के द्वारा पर-मत के दूषणा का निर्देश कर स्व-मत की स्थापना की जाय अथवा प्रतिवादी द्वारा बताये गये दोष का निराकरण कर अपने मत की स्थापना की जाय, उसे स्थापनाकर्म-आहरण कहते हैं। शास्त्रार्थ के समय सहसा व्यभिचारी हेतु का प्रस्तुत कर उसके समर्थन में जो दृष्टान्त दिया जाता है, उसे भी स्थापनाकर्म कहते हैं।

४ प्रत्युत्पन्नविनाशी आहरण—तत्काल उत्पन्न किसी दोष के निराकरण के लिए प्रत्युत्पन्न बुद्धि से उपस्थित किये जाने वाले दृष्टान्त को प्रत्युत्पन्नविनाशी आहरण कहते हैं।

सूत्राङ्क ५०१ में आहरणतद्देश के चार भेद बताये गये हैं। उनका विवेचन इस प्रकार है—

१ अनुशिष्टि-आहरणतद्देश—सद्-गुणों के कथन से किसी वस्तु के पुष्ट करने को अनुशिष्टि कहते हैं। अनुशासन प्रकट करने वाला दृष्टान्त अनुशिष्टि-आहरणतद्देश है।

२ उपालम्भ-आहरणतद्देश—अपराध करने वालों को उलाहना देना उपालम्भ कहलाता है। किसी अपराधी का दृष्टान्त देकर उलाहना देना उपालम्भ आहरणतद्देश है।

३ पृच्छा-आहरणतद्देश—जिस दृष्टान्त से 'यह किसने किया, क्या किया' इत्यादि अनेक प्रश्नों का समावेश हो, उसे पृच्छा आहरणतद्देश कहते हैं।

४ निश्रावचन-आहरणतद्देश—किसी दृष्टान्त के बहाने से दूसरों को प्रबोध देना निश्रा-वचन आहरणतद्देश कहलाता है।

सूत्राङ्क ५०२ में आहरणतद्दोष के चार भेद बताये गये हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—

१ अधर्मयुक्त आहरणतद्दोष—जिस दृष्टान्त के सुनने से दूसरे के मन में अधर्मबुद्धि पैदा हो, उसे अधर्मयुक्त आहरणतद्दोष कहते हैं।

२ प्रतिलोम-आहरणतद्दोष—जिस दृष्टान्त के सुनने से श्रोता के मन में प्रतिकूल आचरण करने का भाव जागृत हो, उस दृष्टान्त को प्रतिलोम आहरणतद्दोष कहते हैं।

३ आत्मोपनीत-आहरणतद्दोष—जो दृष्टान्त पर-मत को दूषित करने के लिए दिया जाय, किन्तु वह अपने ही इष्ट मत को दूषित कर दे, उसे आत्मोपनीत-आहरणतद्दोष कहते हैं।

४ दुरुपनीत आहरणतद्दोष—जिस दृष्टान्त का निगमन या उपसंहार दोष युक्त हो, अथवा जो दृष्टान्त साध्य की सिद्धि के लिए अनुपयोगी और अपने ही मत को दूषित करनेवाला हो, उसे दुरुपनीत-आहरणतद्दोष कहते हैं।

सूत्राङ्क ५०३ में उपन्यासोपनय के चार भेद बताये गये हैं। जो इस प्रकार हैं—

१ तद्-वस्तुक उपन्यासोपनय—वादी के द्वारा उपन्यस्त दृष्टान्त को पकड़कर उसका विघटन करना तद् वस्तुक उपन्यासोपनय कहलाता है।

२ तदन्यवस्तुक-उपन्यासोपनय—वादी के द्वारा उपन्यस्त दृष्टान्त को परिवर्तन कर वादी के मत का खण्डन करना तदन्यवस्तुक-उपन्यासोपनय है।

३ प्रतिनिभ-उपन्यासोपनय—वादी के द्वारा दिये गये हेतु के समान ही दूसरा हेतु प्रयोग कर उसके हेतु को असिद्ध करना प्रतिनिभ-उपन्यासोपनय है।

४ हेतु उपन्यासोपनय—हेतु का उपन्यास करके अन्य के प्रश्न का समाधान करना हेतु-उपन्यासोपनय है। जैसे—किसी ने पूछा—तुम क्यों दीक्षा ले रहे हो? उसने उत्तर दिया—क्योंकि बिना उसके मोक्ष नहीं मिलता है।

हेतु-सूत्र

५०४—हेऊ चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—जावए, थावए, वसए, लूसए।

अहवा—हेऊ चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—पच्चक्खे, अणुमाणे, ओवम्मे, आगमे।

अहवा—हेऊ चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—अत्थित्त अत्थि सो हेऊ, अत्थित्त णत्थि सो हेऊ, णत्थित्त अत्थि सो हेऊ, णत्थित्त णत्थि सो हेऊ।

हेतु (साध्य का साधक साधन-वचन) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ यापक हेतु—जिसे प्रतिवादी शीघ्र न समझ सके ऐसा समय बिताने वाला विशेषण-बहुल हेतु।
२ स्थापक हेतु—साध्य को शीघ्र स्थापित (सिद्ध) करने वाली व्याप्ति से युक्त हेतु।
३ व्यंसक हेतु—प्रतिवादी को छल मे डालनेवाला हेतु।
४ लूषक हेतु—व्यसक हेतु के द्वारा प्राप्त आपत्ति को दूर करने वाला हेतु।

अथवा—हेतु चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ प्रत्यक्ष, २ अनुमान ३ औपम्य, ४ आगम।

अथवा—हेतु चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ 'अस्तित्व है' इस प्रकार से विधि साधक विधि-हेतु।
२ 'अस्तित्व नहीं है' इस प्रकार से विधि साधक निषेध-हेतु।
३ 'नास्तित्व है' इस प्रकार से निषेध-साधक विधि-हेतु।
४ 'नास्तित्व नहीं है' इस प्रकार से निषेध-साधक निषेध-हेतु (५०४)।

विवेचन—साध्य की सिद्धि करने वाले वचन को हेतु कहते हैं। उसके जो यापक आदि चार भेद बताये गये हैं, उनका प्रयोग वादि-प्रतिवादी शास्त्रार्थ के समय करते हैं। 'अथवा कह कर' जो प्रत्यक्ष आदि चार भेद कहे हैं, वे वस्तुत प्रमाण के भेद हैं और हेतु उन चार में से अनुमान-प्रमाण का अंग है। वस्तु का यथार्थ बोध कराने मे कारण होने से शेष प्रत्यक्षादि तीन प्रमाणों को भी हेतु रूप से कह दिया गया है।

हेतु के वास्तव में दो भेद हैं—विधि-रूप और निषेध-रूप। विधि-रूप को उपलब्धि हेतु और निषेध-रूप को अनुपलब्धि हेतु कहते हैं। इन दोनों के भी अविरुद्ध और विरुद्ध की अपेक्षा दो-दो भेद होते हैं। जैसे—

१ विधि साधक—उपलब्धि हेतु।
२ निषेध साधक—उपलब्धि हेतु।

३ निषेध-साधक—अनुपलब्धि हेतु।
४ विधि-साधक—अनुपलब्धि हेतु।

इनमे से प्रथम के ६ भेद, द्वितीय के ७ भेद, तीसरे के ७ भेद और चौथे के ५ भेद न्यायशास्त्र मे बताये गये हैं।[1]

सख्यान-सूत्र

५०५—चउव्विहे सखाणे पण्णत्ते, त जहा—परिकम्म, ववहारे, रज्जू, रासी।

सख्यान (गणित) चार प्रकार का कहा गया है। जसे—

१ परिकम-सख्यान—जोड, बाकी, गुणा, भाग आदि गणित।
२ व्यवहार-सख्यान—लघुतम, महत्तम, भिन्न, मिश्र आदि गणित।
३ रज्जु-सख्यान—राजुरूप क्षेत्रगणित।
४ राशि-सख्यान—त्रैराशिक, पचराशिक आदि गणित (५०५)।

अधकार उद्योत-सूत्र

५०६—अहोलोगे ण चत्तारि अधगार करेंति, त जहा—णरगा, णेरइया, पावाइ कम्माइ, असुभा पोग्गला।

अधोलोक मे चार पदार्थ अधकार करते हैं। जसे—
१ नरक, २ नैरयिक, ३ पापकम, ४ अशुभ पुद्गल (५०६)।

५०७—तिरियलोग ण चत्तारि उज्जोत करेंति, त जहा—चदा, सूरा, मणी, जोती।

तियक् लोक मे चार पदाथ उद्योत करते हैं। जसे—
१ चन्द्र, २ सूय, ३ मणि, ४ ज्योति (अग्नि) (५०७)।

५०८—उड्ढलोग ण चत्तारि उज्जोत करेंति, त जहा—देवा, देवीओ, विमाणा, आभरणा।

ऊध्वलोक मे चार पदाथ उद्योत करते हैं। जैसे—
१ देव, २ देविया, ३ विमान ४ देव-देवियो के आभरण (आभूषण) (५०८)।

॥ चतुथ स्थान का तृतीय उद्देश समाप्त ॥

---

१ देखिए प्रमाणनयतत्त्वालोक, परिच्छेद ३

चतुर्थ स्थान

चतुर्थ उद्देश

प्रसर्पक-सूत्र

५०६—चत्तारि पसप्पगा पण्णत्ता, त जहा—अणुप्पण्णाण भोगाण उप्पाएत्ता एगे पसप्पए, पुव्वुप्पण्णाण भोगाण अविप्पओगेण एगे पसप्पए, अणुप्पण्णाण सोक्खाण उप्पाइत्ता एगे पसप्पए, पुव्वुप्पण्णाण सोक्खाण अविप्पओगेण एगे पसप्पए।

प्रसर्पक (भोगोपभोग और सुख आदि के लिए देश-विदेश मे भटकने वाले अथवा प्रसर्पणशील या विस्तार-स्वभाव वाले) जीव चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कोई प्रसर्पक अनुत्पन्न या अप्राप्त भोगो को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है।
२ कोई प्रसर्पक उत्पन्न या प्राप्त भोगो के सरक्षण के लिए प्रयत्न करता है।
३ कोई प्रसर्पक अप्राप्त सुखो को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है।
४ कोई प्रसर्पक प्राप्त सुखो के सरक्षण के लिए प्रयत्न करता है (५०६)।

आहार सूत्र

५१०—णेरइयाण चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, त जहा—इगालोवमे, मुम्मुरोवमे, सीतले, हिमसीतले।

नारकी जीवो का आहार चार प्रकार का होता है। जैसे—
१ अगारोपम—अगार के समान अल्पकालीन दाहवाला आहार।
२ मुर्मुरोपम—मुर्मुर अग्नि के समान दीर्घकालीन दाहवाला आहार।
३ शीतल—शीत वेदना उत्पन्न करने वाला आहार।
४ हिमशीतल—अत्यन्त शीत वेदना उत्पन्न करने वाला आहार (५१०)।

विवेचन—जिन नरको मे उष्णवेदना निरन्तर रहती है, वहा के नारकी अगारोपम और मुर्मुरोपम मृत्तिका का आहार करते हैं और जिन नरको मे शीतवेदना निरन्तर रहती है वहा के नारक शीतल और हिमशीतल मृत्तिका का आहार करते हैं। पहले नरक से लेकर पाचवे नरक के ¾ भाग तक उष्णवेदना और पाँचवे नरक के ¼ भाग से लेकर सातवे नरक तक शीतवेदना उत्तरोत्तर अधिक-अधिक पाई जाती है।

५११—तिरिक्खजोणियाण चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, त जहा—कंकोवमे, बिलोवमे, पाणमंसोवमे, पुत्तमंसोवमे।

तिर्यग्योनिक जीवो का आहार चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ कंकोपम—कक पक्षी के आहार के समान सुगमता से खाने और पचने के योग्य आहार।

२ बिलोपम—विना चबाये निगला जाने वाला आहार।
३ पाण-मासोपम—चण्डाल के मास-सदृश घृणित आहार।
४ पुत्र-मासोपम—पुत्र के मास-सदृश निन्द्य और दुःख भक्ष्य आहार (५११)।

विवेचन—उक्त चारो प्रकार के आहार क्रम से शुभ, शुभ-तर, अशुभ और अशुभतर होते हैं।

५१२—मणुस्साण चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा—असणे, पाणे, खाइमे, साइमे।

मनुष्यो का आहार चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ अशन, २ पान, ३ खाद्य, ४ स्वाद्य (५१२)।

५१३—देवाण चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा—वण्णमते, गधमते, रसमते, फासमते।

देवो का आहार चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ वर्णवान्—उत्तम वर्णवाला,
२ गन्धवान्—उत्तम सुगन्धवाला,
३ रसवान्—उत्तम मधुर रसवाला,
४ स्पर्शवान्—मृदु और स्निग्ध स्पर्शवाला आहार (५१३)।

आशीविष सूत्र

५१४—चत्तारि जातिआसीविसा पण्णत्ता, तं जहा—विच्छुयजातिआसीविसे, मडुक्कजाति आसीविसे, उरगजातिआसीविसे, मणुस्सजातिआसीविसे।

विच्छुयजातिआसीविसस्स णं भंते! केवइए विसए पण्णत्ते?

पभू णं विच्छुयजातिआसीविसे अद्धभरहप्पमाणमेत्तं बोंदिं विसेण विसपरिणयं विसट्टमाणिं करित्तए। विसए से विसट्टताए, णो चेव णं सपत्तीए करेंसु वा करेंति वा करिस्संति वा।

मडुक्कजातिआसीविसस्स (णं भंते! केवइए विसए पण्णत्ते)?

पभू णं मडुक्कजातिआसीविसे 'भरहप्पमाणमेत्तं बोंदिं विसेण विसपरिणयं विसट्टमाणिं' (करित्तए। विसए से विसट्टताए, णो चेव णं सपत्तीए करेंसु वा करेंति वा) करिस्संति वा।

उरगजाति (आसीविसस्स णं भंते! केवइए विसए पण्णत्ते)?

पभू णं उरगजातिआसीविसे जंबुद्दीवपमाणमेत्तं बोंदिं विसेण (विसपरिणयं विसट्टमाणिं करित्तए। विसए से विसट्टताए, णो चेव णं सपत्तीए करेंसु वा करेंति वा) करिस्संति वा।

मणुस्सजाति (आसीविसस्स णं भंते! केवइए विसए पण्णत्ते)?

पभू णं मणुस्सजातिआसीविसे समयखेत्तपमाणमेत्तं बोंदिं विसेण विसपरिणतं विसट्टमाणिं करेत्तए। विसए से विसट्टताए, णो चेव णं (सपत्तीए करेंसु वा करेंति वा) करिस्संति वा।

जाति (जन्म) से आशीविष जीव चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ जाति-आशीविष वृश्चिक, २ जाति आशीविष मेढक।
३ जाति-आशीविष सर्प, ४ जाति-आशीविष मनुष्य (५१४)।

विवेचन—आशी का अर्थ दाढ है। जाति अर्थात् जन्म से ही जिनकी दाढा म विप होता है, उन्हे जाति-आशीविप कहा जाता है। यद्यपि वृश्चिक (बिच्छू) की पूछ मे विप होता है, किन्तु जन्म-जात विपवाला होने से उसकी भी गणना जाति-आशीविषो के साथ की गई है।

प्रश्न—भगवन्! जाति आशीविप वृश्चिक के विप म कितना सामर्थ्य होता है?

उत्तर—गौतम! जाति-आशीविप वृश्चिक अपने विप के प्रभाव से अर्ध भरतक्षेत्र-प्रमाण (लगभग दो सौ तिरेसठ योजन वाले) शरीर को विप-परिणत और विदलित करने के लिए समर्थ है। इतना उसके विप का सामर्थ्य है। किन्तु न कभी उसने अपने इस सामर्थ्य का उपयोग भूतकाल म किया है, न वर्तमान मे करता है और न भविष्य मे कभी करेगा।

प्रश्न—भगवन! जाति आशीविप मेढक के विप मे कितना सामर्थ्य है?

उत्तर—गौतम! जाति आशीविप मेढक अपने विप के प्रभाव मे भरत क्षेत्र प्रमाण शरीर को विप-परिणत और विदलित करने के लिए समर्थ है। इतना उसके विप का सामर्थ्य है। किन्तु न कभी उसने अपने इस सामर्थ्य का उपयोग भूतकाल मे किया है, न वर्तमान मे करता है और न भविष्य म करेगा।

प्रश्न—भगवन! जाति आशीविप सर्प के विप का कितना सामर्थ्य है?

उत्तर—गौतम! जाति-आशीविप सर्प अपने विप के प्रभाव से जम्बूद्वीप प्रमाण (एक लाख योजन वाले) शरीर को विप-परिणत और विदलित करने के लिए समर्थ है। इतना उसके विप का सामर्थ्य मात्र है। किन्तु न कभी उसने इस सामर्थ्य का उपयोग भूतकाल म किया है न वर्तमान मे करता है और न भविष्य मे कभी करेगा।

प्रश्न—भगवन! जाति आशीविप मनुष्य के विप का कितना सामर्थ्य है?

उत्तर—गौतम! जाति-आशीविप मनुष्य अपने विप के प्रभाव से समय क्षेत्र प्रमाण (पैतालीस लाख योजन वाले) शरीर को विप-परिणत और विदलित करने के लिए समर्थ है। इतना उसके विप का सामर्थ्य है, किन्तु न कभी उसने इस सामर्थ्य का उपयोग भूतकाल मे किया है, न वर्तमान म करता है और न भविष्य म कभी करेगा।

विवेचन—प्रकृत सूत्र मे जिन चार प्रकार के आशीविप जीवो के विप के सामर्थ्य का निरूपण किया गया है, वे सभी जीव आगम प्ररूपित उत्कृष्ट शरीरावगाहना वाले जानने चाहिए। मध्यम या जघन्य अवगाहना वालो के विप मे इतना सामर्थ्य नही होता।

व्याधि चिकित्सा सूत्र

५१५—चउव्विहे वाही पण्णत्ते, त जहा—वातिए पित्तिए, सिंभिए, सण्णिवातिए।

व्याधियाँ चार प्रकार की कही गई हैं। जैसे—

१ वातिक—वायु के विकार से उत्पन्न होने वाली व्याधि।
२ पैत्तिक—पित्त के विकार से उत्पन्न होने वाली व्याधि।
३ श्लैष्मिक—कफ के विकार से उत्पन्न होने वाली व्याधि।

४ सान्निपातिक—वात, पित्त और कफ के सम्मिलित विकार से उत्पन्न होने वाली व्याधि (५१५)।

५१६—चउव्विहा तिगिच्छा पण्णत्ता, त जहा—विज्जो, ओसधाइ, आउरे, परियारए।

चिकित्सा के चार अग होते हैं। जैसे—
१ वैद्य, २ औषध, ३ आतुर (रोगी), ४ परिचारक (परिचर्या करने वाला) (५१६)।

५१७—चत्तारि तिगिच्छगा पण्णत्ता, त जहा—आततिगिच्छए णाममेगे णो परतिगिच्छए, परतिगिच्छए णाममेगे णो आततिगिच्छए, एगे आततिगिच्छएवि परतिगिच्छएवि, एगे णो आततिगिच्छए णो परतिगिच्छए।

चिकित्सक (वैद्य) चार प्रकार के कहे गये ह। जैसे—
१ आत्म-चिकित्सक, न परचिकित्सक—कोई वैद्य अपना इलाज करता है, किन्तु दूसरे का इलाज नही करता।
२ पर-चिकित्सक, न आत्म-चिकित्सक—कोई वद्य दूसरे का इलाज करता है, किन्तु अपना इलाज नही करता।
३ आत्म-चिकित्सक भी, पर-चिकित्सक भी—कोई वद्य अपना भी इलाज करता है और दूसरे का भी इलाज करता है।
४ न आत्म-चिकित्सक, न पर-चिकित्सक—कोई वैद्य न अपना इलाज करता है और न दूसरे का ही इलाज करता है (५१७)।

व्रणकर-सूत्र

५१८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—वणकरे णाममेगे णो वणपरिमासी, वणपरिमासी णाममेगे णो वणकरे, एगे वणकरेवि वणपरिमासीवि, एगे णो वणकरे णो वणपरिमासी।

व्रणकर [घाव करने वाले] पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जसे—
१ व्रणकर, न व्रण परामर्शी—कोई पुरुष रक्त, राध आदि निकालने के लिए व्रण (घाव) करता है, किन्तु उसका परिमर्श (सफाई, धोना आदि) नही करता।
२ व्रण परामर्शी, न व्रणकर—कोई पुरुष व्रण का परिमर्श करता है, किन्तु व्रण नही करता।
३ व्रणकर भी, व्रण-परामर्शी भी—कोई पुरुष व्रणकर भी होता है और व्रण परिमर्शी भी होता है।
४ न व्रणकर, न व्रण परामर्शी—कोई पुरुष न व्रणकर ही होता है और न व्रण परामर्शी ही होता है[1] (५१८)।

---

१ व्रण के दो भेद हैं—द्रव्य व्रण—शरीर सम्बन्धी घाव और भाव व्रण—स्वीकृत व्रत म होने वाला अतिचार। भावपक्ष म परामर्शी का है—स्मरण करने वाला। इत्यादि व्याख्या यथायोग्य समझ लेनी चाहिये।

५१९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—वणकरे णाममेगे णो वणसारक्खी, वणसारक्खी णाममेगे णो वणकरे, एगे वणकरेवि वणसारक्खीवि, एगे णो वणकरे णो वणसारक्खी।

पुनः [व्रणकर] पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ व्रणकर, न व्रणसंरक्षी—कोई पुरुष व्रण करता है, किन्तु व्रण को पट्टी आदि बांध कर उसका संरक्षण नहीं करता।
२ व्रणसंरक्षी, न व्रणकर—कोई पुरुष व्रण का संरक्षण करता है, किन्तु व्रण नहीं करता।
३ व्रणकर भी, व्रणसंरक्षी भी—कोई पुरुष व्रण करता भी है और उसका संरक्षण भी करता है।
४ न व्रणकर, न व्रणसंरक्षी—कोई पुरुष न व्रण करता ही है और न उसका संरक्षण ही करता है (५१९)।

५२०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—वणकरे णाममेगे णो वणसरोही, वणसरोही णाममेगे णो वणकरे, एगे वणकरेवि वणसरोहीवि, एगे णो वणकरे णो वणसरोही।

पुनः [व्रणकर] पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ व्रणकर, न व्रणसंरोही—कोई पुरुष व्रण करता है, किन्तु व्रणसंरोही नहीं होता। (उसमें औषधि लगाकर उसे भरता नहीं है)।
२ व्रणसंरोही, न व्रणकर—कोई पुरुष व्रणसंरोही होता है, किन्तु व्रणकर नहीं होता।
३ व्रणकर भी, व्रणसंरोही भी—कोई पुरुष व्रणकर भी होता है और व्रणसंरोही भी होता है।
४ न व्रणकर, न व्रणसंरोही—कोई पुरुष न व्रणकर होता है, न व्रणसंरोही ही होता है (५२०)।

अन्तर्बहिर्व्रण-सूत्र

५२१—चत्तारि वणा पण्णत्ता, तं जहा—अंतोसल्ले णाममेगे णो बाहिंसल्ले, बाहिंसल्ले णाममेगे णो अंतोसल्ले, एगे अंतोसल्लेवि बाहिंसल्लेवि, एगे णो अंतोसल्ले णो बाहिंसल्ले।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अंतोसल्ले णाममेगे णो बाहिंसल्ले, बाहिंसल्ले णाममेगे णो अंतोसल्ले, एगे अंतोसल्लेवि बाहिंसल्लेवि, एगे णो अंतोसल्ले णो बाहिंसल्ले।

व्रण चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ अन्तःशल्य, न बहिःशल्य—कोई व्रण अन्तःशल्य (भीतरी घाव वाला) होता है, बहिःशल्य (बाहरी घाव वाला) नहीं होता।
२ बहिःशल्य, न अन्तःशल्य—कोई व्रण बहिःशल्य होता है, अन्तःशल्य नहीं होता।
३ अन्तःशल्य भी, बहिःशल्य भी—कोई व्रण अन्तःशल्य भी होता है और बहिःशल्य भी होता है।
४ न अन्तःशल्य, न बहिःशल्य—कोई व्रण न अन्तःशल्य होता है और न बहिःशल्य ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ अन्त शल्य, न वहि शल्य—कोई पुरुष भीतरी शल्यवाला होता है, बाहरी शल्य वाला नही।
२ वहि शल्य, न अन्त शल्य—कोई पुरुष बाहरी शल्यवाला होता है, भीतरी शल्यवाला नहीं।
३ अन्त शल्य भी, वहि शल्य भी—कोई पुरुष भीतरी शल्यवाला भी होता है और बाहरी शल्यवाला भी होता है।
४ न अन्त शल्य, न वहि शल्य—कोई पुरुष न भीतरी शल्यवाला होता है और न बाहरी शल्य वाला ही होता है (५२१)।

५२२—चत्तारि वणा पण्णत्ता, त जहा—अतोदुट्ठे णाममेगे णो बाहिदुट्ठे, बाहिदुट्ठे णाममेगे णो अतोदुट्ठे, एगे अतोदुट्ठे वि बाहिदुट्ठे वि, एगे णो अतोदुट्ठे णो बाहिदुट्ठे।

एवमेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—अतोदुट्ठे णाममेगे णो बाहिदुट्ठे, बाहिदुट्ठे णाममेगे णो अतोदुट्ठे, एगे अतोदुट्ठे वि बाहिदुट्ठे वि, एगे णो अतोदुट्ठे णो बाहिदुट्ठे।

पुन व्रण चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ अन्तदुष्ट, न वहिदुष्ट—कोई व्रण भीतर से दुष्ट (विकृत) होता है, बाहर से दुष्ट नही होता।
२ वहिदुष्ट, न अन्तर्दुष्ट—कोई व्रण बाहर से दुष्ट होता है, भीतर से दुष्ट नही होता।
३ अन्तदुष्ट भी, वहिदुष्ट भी—कोई व्रण भीतर से भी दुष्ट होता है और बाहर से भी दुष्ट होता है।
४ न अन्तर्दुष्ट, न वहिर्दुष्ट—कोई व्रण न भीतर से दुष्ट होता है और न बाहर से ही दुष्ट होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ अन्तदुष्ट, न वहिदुष्ट—कोई पुरुष अन्दर से दुष्ट होता है, बाहर से दुष्ट नही होता।
२ वहिदुष्ट, न अन्तदुष्ट—कोई पुरुष बाहर से दुष्ट होता है, भीतर से दुष्ट नही होता।
३ अन्तदुष्ट भी, वहिदुष्ट भी—कोई पुरुष अन्दर से भी दुष्ट होता है और बाहर से भी दुष्ट होता है।
४ न अन्तर्दुष्ट, न वहिदुष्ट—कोई पुरुष न अन्दर से दुष्ट होता है और न बाहर से दुष्ट होता है (५२२)।

श्रेयस-पापीयस-सूत्र

५२३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सेयसे णाममेगे सेयसे, सेयसे णाममेगे पावसे, पावसे णाममेगे सेयसे, पावसे णाममेगे पावसे।

चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। जैसे—

१ श्रेयान् और श्रेयान्—कोई पुरुष सद्-ज्ञान की अपेक्षा श्रेयान् (अति प्रशमनीय) होता है और सदाचार की अपेक्षा भी श्रेयान होता है।

२ श्रेयान् और पापीयान्—कोई पुरुष सद्-ज्ञान की अपेक्षा तो श्रेयान होता है, किन्तु सदाचार की अपेक्षा पापीयान (अत्यन्त पापी) होता है।
३ पापीयान् और श्रेयान्—कोई पुरुष कुज्ञान की अपेक्षा पापीयान् होता है, किन्तु सदाचार की अपेक्षा श्रेयान् होता है।
४ पापीयान् और पापीयान्—कोई पुरुष कुज्ञान की अपेक्षा भी पापीयान् होता है और कदाचार की अपेक्षा भी पापीयान् होता है। (५२३)

५२४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सेयसे णाममेगे सेयसेत्तिसालिसए, सेयसे णाममेगे पावसेत्तिसालिसए, पावसे णाममेगे सेयसेत्तिसालिसए, पावसे णाममेगे पावसेत्तिसालिसए।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ श्रेयान और श्रेयानसदृश—कोई पुरुष सद ज्ञान की अपेक्षा श्रेयान् होता है, किन्तु सदाचार की अपेक्षा द्रव्य से श्रेयान् के सदृश है, भाव से नही।
२ श्रेयान् और पापीयान्सदृश—कोई पुरुष सद्-ज्ञान की अपेक्षा श्रेयान होता है, किन्तु सदाचार की अपेक्षा द्रव्य से पापीयान के सदृश होता है, भाव से नही।
३ पापीयान् और श्रेयान्सदृश—कोई पुरुष कुज्ञान की अपेक्षा पापीयान् होता है, किन्तु सदाचार की अपेक्षा द्रव्य से श्रेयान् सदृश होता है, भाव से नहीं।
४ पापीयान् और पापीयान् सदृश—कोई पुरुष कुज्ञान की अपेक्षा पापीयान होता है और कदाचार की अपेक्षा द्रव्य से पापीयान् सदृश होता है, भाव से नही। (५२४)

५२५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सेयसे णाममेगे सेयसेत्ति मण्णति, सेयसे णाममेगे पावसेत्ति मण्णति, पावसे णाममेगे सेयसेत्ति मण्णति, पावसे णाममेगे पावसेत्ति मण्णति।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—
१ श्रेयान् और श्रेयान्मन्य—कोई पुरुष श्रेयान् होता है और अपने आपको श्रेयान् मानता है।
२ श्रेयान् और पापीयान-मन्य—कोई पुरुष श्रेयान् होता है, किन्तु अपने आपको पापीयान् मानता है।
३ पापीयान् और श्रेयान्मन्य—कोई पुरुष पापीयान् होता है किन्तु अपने आपको श्रेयान् मानता है।
४ पापीयान् और पापीयान्मन्य—कोई पुरुष पापीयान होता है और अपने आपको पापीयान् ही मानता है। (५२५)

५२६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सेयसे णाममेगे सेयसेत्तिसालिसए मण्णति, सेयसे णाममेगे पावसेत्तिसालिसए मण्णति, पावसे णाममेगे सेयसेत्तिसालिसए मण्णति, पावसे णाममेगे पावसेत्तिसालिसए मण्णति।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ श्रेयान् और श्रेयान्-सदृशम्मन्य—कोई पुरुष श्रेयान होता है और अपने आपको श्रेयान के सदृश मानता है।

२ श्रेयान श्रौर पापीयान्-सदशम्मन्य—कोई पुरुप श्रेयान् होता है, किन्तु अपने आपको पापीयान् के सदृश मानता है।
३ पापीयान् श्रौर श्रेयान्-सदृशम्मन्य—कोई पुरुप पापीयान् होता है, किन्तु अपने आपको श्रेयान् के सदृश मानता है।
४ पापीयान् श्रौर पापीयान-सदृशम्मन्य—कोई पुरुप पापीयान् होता है, श्रौर अपने आपको पापीयान् सदृश मानता है। (५२६)

आख्यापन-सूत्र

५२७—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—आघवइत्ता णाममेगे णो पविभावइत्ता, पविभावइत्ता णाममेगे णो आघवइत्ता, एगे आघवइत्तावि पविभावइत्तावि, एगे णो आघवइत्ता णो पविभावइत्ता।

पुरुप चार प्रकार के कहे गये है। जसे—
१ आख्यायक, न प्रभावक—कोई पुरुप प्रवचन का प्रज्ञापक (पढाने वाला) तो होता है, किन्तु प्रभावक (शासन की प्रभावना करने वाला) नही होता है।
२ प्रभावक, न आख्यायक—कोई पुरुप प्रभावक तो होता है, किन्तु आख्यायक नहीं।
३ आख्यायक भी, श्रौर प्रभावक भी—कोई पुरुप आख्यायक भी होता है श्रौर प्रभावक भी होता है।
४ न आख्यायक, न प्रभावक—कोई पुरुप न आख्यायक ही होता है, श्रौर न प्रभावक ही होता है। (५२७)

५२८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—आघवइत्ता णाममेगे णो उञ्छजीविसपण्णे, उञ्छजीविसपण्णे णाममेगे णो आघवइत्ता, एगे आघवइत्तावि उञ्छजीविसपण्णवि, एगे णो आघवइत्ता णो उञ्छजीविसपण्णे।

पुन पुरुप चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ आख्यायक, न उञ्छजीविकासम्पन्न—कोई पुरुप आख्यायक तो होता है, किन्तु उञ्छजीविकासम्पन्न नहीं होता।
२ उञ्छजीविकासम्पन्न, न आख्यायक—कोई पुरुप उञ्छजीविकासम्पन्न होता है, किन्तु आख्यायक नही होता।
३ आख्यायक भी, उञ्छजीविकासम्पन्न भी—कोई पुरुप आख्यायक भी होता है श्रौर उञ्छजीविकासम्पन्न भी होता है।
४ न आख्यायक, न उञ्छजीविकासम्पन्न—कोई पुरुप न आख्यायक ही होता है, श्रौर न उञ्छजीविकासम्पन्न ही होता है (५२८)।

विवेचन—अनेक घरो मे थोडी-थोडी भिक्षा के ग्रहण करने को उञ्छ[1] जीविका कहते हैं।

---

१ 'उञ्छ कणश आदान इति यादव।

माधुकरीवृत्ति या गोचरी प्रभृत्ति भी इसी के दूसरे नाम है। जो व्यक्ति उञ्छजीविका या माधुकरी-वृत्ति से अपने भक्त पान की गवेषणा करता है, उसे उञ्छजीविकासम्पन्न कहा जाता है।

वृक्ष विक्रिया-सूत्र

५२९—चउव्विहा रुक्खविगुव्वणा पण्णत्ता, तं जहा—पवालत्ताए, पत्तत्ताए, पुप्फत्ताए, फलत्ताए।

वृक्षो की विकरणरूप विक्रिया चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ प्रवाल (कोपल) के रूप से २ पत्र के रूप से, ३ पुष्प के रूप से ४ फल के रूप से। (५२९)

वादि-समवसरण सूत्र

५३०—चत्तारि वादिसमोसरणा पण्णत्ता, तं जहा—किरियावादी, अकिरियावादी, अण्णाणियावादी वेणइयावादी।

वादियो के चार समवसरण (सम्मेलन या समुदाय) कहे गये है। जैसे—

१ क्रियावादि-समवसरण—पुण्य पाप रूप क्रियाओ को मानने वाले आस्तिको का समवसरण।
२ अक्रियावादि-समवसरण—पुण्य पापरूप रूप क्रियाओ को नही मानने वाले नास्तिकों का समवसरण।
३ अज्ञानवादि-समवसरण—अज्ञान को ही शान्ति या सुख का कारण माननेवालो का समवसरण।
४ विनयवादि-समवसरण—सभी जीवो की विनय करने से मुक्ति मानने वालो का समवसरण।

५३१—णेरइयाणं चत्तारि वादिसमोसरणा पण्णत्ता, तं जहा—किरियावादी, जाव (अकिरियावादी, अण्णाणियावादी) वेणइयावादी।

नारको के चार समवसरण कहे गये है। जसे—

१ क्रियावादि-समवसरण, २ अक्रियावादि समवसरण, ३ अज्ञानवादि-समवसरण, ४ विनयवादि-समवरण। (५३१)

५३२—एवमसुरकुमाराणवि जाव थणियकुमाराणं। एवं—विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं।

इसी प्रकार असुरकुमारो से लेकर स्तनितकुमारो तक चार-चार वादिसमवसरण कहे गये हैं। इसी प्रकार विकलेन्द्रियो को छोडकर वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डको के चार-चार समवसरण जानना चाहिए।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार ने 'समवसरण' की निरुक्ति इस प्रकार से की है—'वादिन - तीर्थिका समवसरन्ति अवतरन्ति येषु इति समवसरणानि' अर्थात् जिस स्थान पर सर्व ओर से आकर वादी जन या विभिन्नमत वाले मिलें—एकत्र हों, उस स्थान को समवसरण कहते हैं। भगवान् महावीर के समय में सूत्रोक्त चारों प्रकार के वादियों के समवसरण थे और उनके भी अनेक उत्तर भेद थे जिनकी संख्या एक प्राचीन गाथा को उद्धृत करके इस प्रकार बतलाई गई है—

१ क्रियावादियों के १८० उत्तरभेद, २ अक्रियावादियों के ८४ उत्तरभेद, ३ अज्ञानवादियों के ६७ उत्तरभेद, ४ विनयवादियों के ३२ उत्तरभेद।

इस प्रकार (१८० + ८४ + ६७ + ३२ = ३६३) तीन सौ तिरेसठ वादियों के भ० महावीर के समय में होने का उल्लेख श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदाय के शास्त्रों में पाया जाता है।

यहां यह बात खास तौर से विचारणीय है कि सूत्र ५३१ में नारकों के और सूत्र ५३२ में विकलेन्द्रियों को छोडकर शेष दण्डक वाले जीवों के उक्त चारों समवसरणों का उल्लेख किया गया है। इसका कारण यह है कि विकलेन्द्रिय जीव असंज्ञी होते है, अत उनमें ये चारों भेद नहीं घटित हो सकते, किन्तु नारक आदि संज्ञी हैं, अत उनमें यह चारों विकल्प घटित हो सकते हैं।

मेघ सूत्र

५३३—चत्तारि मेहा पण्णत्ता, त जहा—गज्जित्ता णाममेगे णो वासित्ता, वासित्ता णाममेगे णो गज्जित्ता, एगे गज्जित्तावि वासित्तावि, एगे णो गज्जित्ता णो वासित्ता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—गज्जित्ता णाममेगे णो वासित्ता, वासित्ता णाममेगे णो गज्जित्ता, एगे गज्जित्तावि वासित्तावि, एगे णो गज्जित्ता णो वासित्ता।

मेघ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ गर्जक, न वर्षक—कोई मेघ गरजता है, किन्तु बरसता नहीं है।
२ वर्षक, न गर्जक—कोई मेघ बरसता है, किन्तु गरजता नहीं है।
३ गर्जक भी, वर्षक भी—कोई मेघ गरजता भी है और बरसता भी है।
४ न गर्जक, न वर्षक—कोई मेघ न गरजता है और न बरसता ही है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ गर्जक, न वर्षक—कोई पुरुष गरजता है, किन्तु बरसता नहीं। अर्थात् बड़े-बड़े कामों को करने की उद्घोषणा करता है, किन्तु उन कामों को करता नहीं है।
२ वर्षक, न गर्जक—कोई पुरुष कार्यों का सम्पादन करता है किन्तु उद्घोषणा नहीं करता, गरजता नहीं है।
३ गर्जक भी, वर्षक भी—कोई पुरुष कार्यों को करने की गर्जना भी करता है और उन्हें सम्पादन भी करता है।
४ न गर्जक, न वर्षक—कोई पुरुष कार्यों को करने की न गर्जना ही करता है और न कार्यों को करता ही है (५३३)।

५३४—चत्तारि मेहा पण्णत्ता, त जहा—गज्जित्ता णाममेगे णो विज्जुयाइत्ता, विज्जुयाइत्ता णाममेगे णो गज्जित्ता, एगे गज्जित्तावि विज्जुयाइत्तावि, एगे णो गज्जित्ता णो विज्जुयाइत्ता ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—गज्जित्ता णाममेगे णो विज्जुयाइत्ता, विज्जुयाइत्ता णाममेगे णो गज्जित्ता, एगे गज्जित्तावि विज्जुयाइत्तावि, एगे णो गज्जित्ता णो विज्जुयाइत्ता ।

पुन मेघ चार प्रकार के कहे गये हैं जसे—

१ गजक, न विद्योतक—कोई मेघ गरजता है, कि तु विद्यु त्कत्ता नही—चमकता नही है ।
२ विद्योतक, न गजक—कोई मेघ चमकता है, किन्तु गरजता नही है ।
३ गजक भी, विद्योतक भी—कोई मेघ गरजता भी है और चमकता भी है ।
४ न गजक, न विद्योतक—कोई मेघ न गरजता ही है और न चमकता ही है ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१ गजक, न विद्योतक—कोई पुरुष दानादि करने की गजना (घोषणा) तो करता है, कि तु चमकता नही अर्थात उसे देता नही है ।
२ विद्योतक, न गजक—कोई पुरुष दानादि देकर चमकता तो है, किन्तु उसकी गजना या घोषणा नही करता ।
३ गजक भी, विद्योतक भी—कोई पुरुष दानादि की गजना भी करता है और देकर के चमकता भी है ।
४ न गजक, न विद्योतक—कोई पुरुष न दानादि की गजना ही करता है और न देकर के चमकता ही है । (५३४)

५३५—चत्तारि मेहा पण्णत्ता, त जहा—वासित्ता णाममेगे णो विज्जुयाइत्ता, विज्जुयाइत्ता णाममेगे णो वासित्ता, एगे वासित्तावि विज्जुयाइत्तावि, एगे णो वासित्ता णो विज्जुयाइत्ता ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—वासित्ता णाममेगे णो विज्जुयाइत्ता, विज्जुयाइत्ता णाममेगे णो वासित्ता, एगे वासित्तावि विज्जुयाइत्तावि, एगे णो वासित्ता णो विज्जुयाइत्ता ।

पुन मेघ चार प्रकार के कहे गये है । जैसे—

१ वपक, न विद्योतक—कोई मेघ वरसता है, कि तु चमकता नही है ।
२ विद्योतक, न वपक—कोई मेघ चमकता है, किन्तु बरसता नही है ।
३ वपक भी, विद्योतक भी—कोई मेघ वरसता भी है और चमकता भी है ।
४ न वपक, न विद्योतक—कोई मेघ न वरसता है और न चमकता ही है ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१ वपक, न विद्योतक—कोई पुरुष दानादि देता तो है, कि तु दिखावा कर चमकता नही है ।
२ विद्योतक, न वपक—कोई पुरुष दानादि देने का आडम्बर या प्रदशन कर चमकता तो है, किन्तु वरसता (देता) नही है ।

३ वर्षक भी, विद्योतक भी—कोई पुरुष दानादि की वर्षा भी करता है और उसका दिखावा कर चमकता भी है।
४ न वर्षक, न विद्योतक—कोई पुरुष न दानादि की वर्षा ही करता है और न देकर के चमकता ही है। (५३५)

५३६—चत्तारि मेहा पण्णत्ता, त जहा—कालवासी णाममेगे णो अकालवासी, अकालवासी णाममेगे णो कालवासी, एगे कालवासीवि अकालवासीवि एगे णो कालवासी णो अकालवासी।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—कालवासी णाममेगे णो अकालवासी, अकालवासी णाममेगे णो कालवासी, एगे कालवासीवि अकालवासीवि, एगे णो कालवासी णो अकालवासी।

पुन मेघ चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—
१ कालवर्षी, न अकालवर्षी—कोई मेघ समय पर बरसता है, असमय मे नही बरसता।
२ अकालवर्षी, न कालवर्षी—कोई मेघ असमय मे बरसता है, समय पर नही बरसता।
३ कालवर्षी भी, अकालवर्षी भी—कोई मेघ समय पर भी बरसता है और असमय मे भी बरसता है।
४ न कालवर्षी, न अकालवर्षी—कोई मेघ न समय पर ही बरसता है और न असमय मे ही बरसता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ कालवर्षी, न अकालवर्षी—कोई पुरुष समय पर दानादि देता है, असमय मे नही देता।
२ अकालवर्षी, न कालवर्षी—कोई पुरुष असमय में दानादि देता है, समय पर नही देता।
३ कालवर्षी भी, अकालवर्षी भी—कोई पुरुष समय पर भी दानादि देता है और असमय मे भी दानादि देता है।
४ न कालवर्षी, न अकालवर्षी—कोई पुरुष न समय पर ही दानादि देता है और न असमय मे ही देता है।

५३७—चत्तारि मेहा पण्णत्ता, त जहा—खेत्तवासी णाममेगे णो अखेत्तवासी, अखेत्तवासी णाममेगे णो खेत्तवासी, एगे खेत्तवासीवि अखेत्तवासीवि, एगे णो खेत्तवासी णो अखेत्तवासी।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—खेत्तवासी णाममेगे णो अखेत्तवासी, अखेत्तवासी णाममेगे णो खेत्तवासी, एगे खेत्तवासीवि अखेत्तवासीवि, एगे णो [illegible] णो अखेत्तवासी।

पुन मेघ चार प्रकार के कहे [illegible]
१ क्षेत्रवर्षी, न अक्षेत्रवर्षी—[illegible] भूमि) [illegible] अक्षेत्र (ऊसरभूमि) पर नही बरसता है।
२ अक्षेत्रवर्षी, न क्षेत्रवर्षी [illegible] बरसता [illegible]

३ क्षेत्रवर्षी भी, अक्षेत्रवर्षी भी—कोई मेघ क्षेत्र पर भी बरसता है और अक्षेत्र पर भी बरसता है।
४ न क्षेत्रवर्षी, न अक्षेत्रवर्षी—कोई मेघ न क्षेत्र पर बरसता है और न अक्षेत्र पर बरसता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ क्षेत्रवर्षी, न अक्षेत्रवर्षी—कोई पुरुष धर्मक्षेत्र (धर्मस्थान—दया और धर्म के पात्र) पर बरसता (दान देता है), अक्षेत्र (अधर्मस्थान) पर नही बरसता।
२ अक्षेत्रवर्षी, न क्षेत्रवर्षी—कोई पुरुष अक्षेत्र पर बरसता है, क्षेत्र पर नही बरसता है।
३ क्षेत्रवर्षी भी, अक्षेत्रवर्षी भी—कोई पुरुष क्षेत्र पर भी बरसता है और अक्षेत्र पर भी बरसता है।
४ न क्षेत्रवर्षी न अक्षेत्रवर्षी—कोई पुरुष न क्षेत्र पर बरसता है और न अक्षेत्र पर बरसता है (५३७)।

अम्बा पित सूत्र

५३८—चत्तारि मेहा पण्णत्ता, त जहा—जणइत्ता णाममेगे णो णिम्मवइत्ता, णिम्मवइत्ता णाममेगे णो जणइत्ता, एगे जणइत्तावि णिम्मवइत्तावि, एगे णो जणइत्ता णो णिम्मवइत्ता।

एवामेव चत्तारि अम्मापियरो पण्णत्ता, त जहा—जणइत्ता णाममेगे णो णिम्मवइत्ता, णिम्मवइत्ता णाममेगे णो जणइत्ता, एगे जणइत्तावि णिम्मवइत्तावि, एगे णो जणइत्ता णो णिम्मवइत्ता।

मेघ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ जनक, न निर्मापक—कोई मेघ अन्न का जनक (उगाने वाला-उत्पन्न करने वाला) होता है, निर्मापक (निर्माण कर फसल देने वाला) नही होता।
२ निर्मापक, न जनक—कोई मेघ अन्न का निर्मापक होता है, जनक नही होता।
३ जनक भी, निर्मापक भी—कोई मेघ अन्न का जनक भी होता है और निर्मापक भी होता है।
४ न जनक, न निर्मापक—कोई मेघ अन्न का न जनक होता है, न निर्मापक ही होता है।

इसी प्रकार माता-पिता भी चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ जनक, न निर्मापक—कोई माता पिता सन्तान के जनक (जन्म देने वाले) होते हैं, किन्तु निर्मापक (भरण पोषणादि कर उनका निर्माण करने वाले) नही होते।
२ निर्मापक, न जनक—कोई माता-पिता सन्तान के निर्मापक होते हैं, किन्तु जनक नही होते।
३ जनक भी, निर्मापक भी—कोई माता पिता सन्तान के जनक भी होते हैं और निर्मापक भी होते हैं।
४ न जनक, न निर्मापक—कोई माता-पिता सन्तान के न जनक ही होते हैं और न निर्मापक ही होते हैं (५३८)।

राज-सूत्र

५३६—चत्तारि मेहा पण्णत्ता, त जहा—देसवासी णाममेगे णो सव्ववासी, सव्ववासी णाममेगे णो देसवासी, एगे देसवासीवि सव्ववासीवि, एगे णो देसवासी णो सव्ववासी ।

एवामेव चत्तारि रायाणो पण्णत्ता, त जहा—देसाधिवती णाममेगे णो सव्वाधिवती, सव्वाधिवती णाममेगे णो देसाधिवती, एगे देसाधिवतीवि सव्वाधिवतीवि, एगे णो देसाधिवती णो सव्वाधिवती ।

पुन मेघ चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१ देशवर्षी, न सववर्षी—कोई मेघ किसी एक देश मे बरसता है, सब देशो म नही बरसता ।
२ सववर्षी न देशवर्षी—कोई मेघ सब देशों में बरसता है, किसी एक देश मे नही बरसता ।
३ देशवर्षी भी, सववर्षी भी—कोई मेघ किसी एक देश मे भी बरसता है और सब देशो म भी बरसता है ।
४ न देशवर्षी, न सववर्षी—कोई मेघ न किसी एक देश मे बरसता है, न सब देशो मे ही बरसता है ।

इसी प्रकार राजा भी चार प्रकार के कहे गये हैं । जसे—

१ देशाधिपति, सर्वाधिपति—कोई राजा किसी एक देश का ही स्वामी होता है, सब देशो का स्वामी नही होता ।
२ सर्वाधिपति, न देशाधिपति—कोई राजा सब देशो का स्वामी होता है, किसी एक देश का स्वामी नही होता ।
३ देशाधिपति भी, सर्वाधिपति भी—कोई राजा किसी एक देश का भी स्वामी होता है और सब देशो का भी स्वामी होता है ।
४ न देशाधिपति और न सर्वाधिपति—कोई राजा न किसी एक देश का स्वामी होता है और न सब देशो का ही स्वामी होता है जैसे राज्य से भ्रष्ट हुआ राजा (५३६) ।

मेघ-सूत्र

५४०—चत्तारि मेहा पण्णत्ता, त जहा—पुक्खलसवट्टए, पज्जुण्णे, जीमूते, जिम्मे ।

पुक्खलसवट्टए ण महामेहे एगेण वासेण दसवाससहस्साइ भावेति । पज्जुण्णे ण महामेहे एगेण वासेण दसवाससयाइ भावेति । जीमूते ण महामेहे एगेण वासेण दसवासाइ भावेति । जिम्म ण महामेहे बहूहि वासेहि एग वास भावेति वा ण वा भावेति ।

मेघ चार प्रकार के होते है । जसे—

१ पुष्क्लावतमेघ, २ प्रद्युम्नमेघ, ३, जीमूतमेघ, ४ जिम्हमेघ ।
१ पुष्क्लावत महामेघ एक वर्षा स दश हजार वर्ष तक भूमि को जल से स्निग्ध (उपजाऊ) कर देता है ।
२ प्रद्युम्न महामेघ एक वर्षा से दश सौ (एक हजार) वर्ष तक भूमि को जल से स्निग्ध कर देता है ।

३ जीमूत महामेघ एक वर्षा से दश वर्ष तक भूमि को जल से स्निग्ध कर देता है।
४ जिम्ह महामेघ बहुत बार बरस कर एक वर्ष तक भूमि को जल से स्निग्ध करता है, और नहीं भी करता है (५४०)।

विवेचन—यद्यपि मूल-सूत्र में पुष्कलावर्त आदि मेघों के समान चार प्रकार के पुरुषों का कोई उल्लेख नहीं है, तथापि टीकाकार ने उक्त चारों प्रकार के मेघों के समान पुरुषों के स्वयं जान लेने की सूचना अवश्य की है, जिसे इस प्रकार से जानना चाहिए—

१ कोई दानी या उपदेष्टा पुरुष पुष्कलावर्त मेघ के समान अपने एक बार के दान से या उपदेश से बहुत लम्बे काल तक अर्थी—याचकों को और जिज्ञासुओं को तृप्त कर देता है।
२ कोई दानी या उपदेष्टा पुरुष प्रद्युम्न मेघ के समान बहुत काल तक अपने दान या उपदेश से अर्थी और जिज्ञासुओं को तृप्त कर देता है।
३ कोई दानी या उपदेष्टा पुरुष जीमूत मेघ के समान कुछ वर्षों के लिए अपने दान या उपदेश से अर्थी और जिज्ञासुओं को तृप्त करता है।
४ कोई दानी या उपदेष्टा पुरुष अपने अनेक बार दिये गये दान या उपदेश से अर्थी और जिज्ञासु जनों को एक वर्ष के लिए तृप्त करता है और कभी तृप्त कर भी नहीं पाता है।

भावार्थ—जैसे चारों प्रकार के मेघों का प्रभाव उत्तरोत्तर अल्प होता जाता है उसी प्रकार दानी या उपदेष्टा के दान या उपदेश की मात्रा और प्रभाव उत्तरोत्तर अल्प होता जाता है।

आचार्य सूत्र

५४१—चत्तारि करंडगा पण्णत्ता, तं जहा—सोवागकरंडए, वेसियाकरंडए, गाहावतिकरंडए, रायकरंडए।

एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा—सोवागकरंडगसमाणे, वेसियाकरंडगसमाणे, गाहावतिकरंडगसमाणे, रायकरंडगसमाणे।

करण्डक चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ श्वपाक-करण्डक, २ वेश्याकरण्डक, ३ गृहपतिकरण्डक, ४ राजकरण्डक।

इसी प्रकार आचार्य भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ श्वपाक करण्डक समान २ वेश्या-करण्डक समान,
३ गृहपति करण्डकसमान, ४ राज-करण्डकसमान (५४१)।

विवेचन—करण्डक का अर्थ पिटारा या पिटारी है। आज भी यह बांस की शलाकाओं से बनाया जाता है। किन्तु प्राचीन काल में जब आज के समान लोह और स्टील से निर्मित सन्दूक-पेटी आदि का विकास नहीं हुआ था तब सभी वर्गों के लोग बांस से बने करण्डकों में ही अपना सामान रखते थे। उक्त चारों प्रकार के करण्डकों और उनके समान बताये गये आचार्यों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

१ जैसे श्वपाक (चाण्डाल, चमकार) आदि के करण्डक में चमड़े को छीलने-काटने आदि के उपकरणों और चमड़े के टुकड़ों आदि के रखे रहने से वह असार या निकृष्ट कोटि का

माना जाता है, उसी प्रकार जो आचाय केवल पट्काय-प्रज्ञापक गाथादिरूप अल्पसूत्र का धारक और विशिष्ट क्रियाओ से रहित होता है, वह आचाय श्वपाक करण्डक के समान है।

२ जैसे वेश्या का करण्डक लाख भरे सोने के दिखाऊ आभूपणो से भरा होता है, वह श्वपाक-करण्डक से अच्छा है वैसे ही जो आचाय अल्पश्रुत होने पर भी अपने वचन चातुय से मुग्धजनो को आकर्पित करते हैं, उनको वेश्या-करण्डक के समान कहा गया है। ऐसा आचाय श्वपाक-करण्डक-समान आचार्य से अच्छा है।

३ जैसे किसी गृहपति या सम्पन्न गृहस्थ का करण्डक सोने-मानी आदि के आभूपणो से भरा रहता है, वैसे ही जो आचाय स्व-समय पर-समय के ज्ञाता और चारित्रसम्पन्न हात है, उन्हे गृहपति करण्डक के समान कहा गया है।

४ जसे राजा का करण्डक मणि माणिक आदि वहुमूल्य रत्नो से भरा होता है, उसी प्रकार जा आचार्य अपन पद के योग्य सर्वगुणो से सम्पन्न होते हैं, उन्हे राज करण्डक के समान कहा गया है।

उक्त चारा प्रकार के करण्डको के समान चारो प्रकार के आचाय क्रमश असार, अल्पसार, सारवान् और सर्वश्रेष्ठ सारवान् जानना चाहिए।

५४२—चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, त जहा—साले णाममेगे सालपरियाए, साले णाममेगे एरड परियाए, एरडे णाममेगे सालपरियाए, एरडे णाममेगे एरडपरियाए।

एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, त जहा—साले णाममेगे सालपरियाए साले णाममगे एरडपरियाए, एरडे णाममेगे सालपरियाए, एरडे णाममेगे एरडपरियाए।

चार प्रकार के वृक्ष कहे गये है। जैसे—

१ शाल और शाल पर्याय—कोई वक्ष शाल जाति का हाता है और शाल-पर्याय (विशाल छाया वाला, आश्रयणीयता आदि धर्मों वाला) होता है।

२ शाल और एरण्ड-पर्याय—कोई वृक्ष शाल जाति का होता है, किन्तु एरण्ड-पर्याय (एरण्ड के वृक्ष-समान अल्प छाया वाला) हाता है।

३ एरण्ड और शाल-पर्याय—कोई वृक्ष एरण्ड के समान छोटा, किन्तु शाल के समान विशाल छाया वाला होता है।

४ एरण्ड और एरण्ड-पर्याय—कोई वृक्ष एरण्ड के समान छोटा और उसी के समान अल्प छाया वाला होता है।

इसी प्रकार आचार्य भी चार प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ शाल और शालपर्याय—कोई आचाय शाल के समान उत्तम जाति वाले और उसी के समान धम वाले—ज्ञान, आचार और प्रभावशाली होते ह।

२ शाल और एरण्डपर्याय—कोई आचाय शाल के समान उत्तम जाति वाले, किन्तु ज्ञान, आचार और प्रभाव स रहित हाते हैं।

३ एरण्ड और शालपर्याय—कोई आचाय जाति से एरण्ड के समान हीन किन्तु ज्ञान, आचार और प्रभावशाली होन से शालपर्याय होते है।

४ एरण्ड और एरण्डपर्याय—कोई आचाय एरण्ड के समान हीन जाति वाले और उसी के समान ज्ञान, आचार और प्रभाव से भी हीन होते है (५४२)।

५४३—चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, त जहा—साले णाममेगे सालपरिवारे, साले णाममेगे एरंड-परिवारे, एरंडे णाममेगे सालपरिवारे, एरंडे णाममेगे एरंडपरिवारे।

एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, त जहा—साले णाममेगे सालपरिवारे, साले णाममेगे एरंडपरिवारे, एरंडे णाममेगे सालपरिवारे, एरंडे णाममेगे एरंडपरिवारे।

संग्रहणी-गाथा

सालदुममज्झयारे, जह साले णाम होइ दुमराया।
इय सु दरआयरिए, सु दरसीसे मुणेयव्वे ॥१॥
एरंडमज्झयारे, जह साले णाम होइ दुमराया।
इय सु दरआयरिए, मगुलसीसे मुणेयव्वे ॥२॥
सालदुममज्झयारे, एरंडे णाम होइ दुमराया।
इय मगुलआयरिए, सु दरसीसे मुणेयव्वे ॥३॥
एरंडमज्झयारे, एरंडे णाम होइ दुमराया।
इय मगुलआयरिए, मगुलसीसे मुणेयव्वे ॥४॥

पुन वृक्ष चार प्रकार के कहे गये ह। जसे—

१ शाल और शालपरिवार—कोई वृक्ष शाल जाति और शालपरिवार वाला होता है।

२ शाल और एरण्डपरिवार—कोई वक्ष शाल जाति किन्तु एरण्डपरिवार वाला होता है।

३ एरण्ड और शालपरिवार—कोई वृक्ष जाति से एरण्ड किन्तु शालपरिवार वाला होता है।

४ एरण्ड और एरण्डपरिवार—कोई वृक्ष जाति मे एरण्ड और एरण्डपरिवार वाला होता है।

इसी प्रकार आचाय भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जसे—

१ शाल और शालपरिवार—कोई आचाय शाल के समान जातिमान् और शालपरिवार के समान उत्तम शिष्यपरिवार वाले होत है।

२ शाल और एरण्डपरिवार—कोई आचाय शाल के समान जातिमान्, किन्तु एरण्ड-परिवार के समान अयोग्य शिष्य परिवार वाले होते हैं।

३ एरण्ड और शालपरिवार—कोई आचाय एरण्ड के समान हीन जाति वाले, किन्तु शाल के समान उत्तम शिष्य-परिवार वाले होते है।

४ एरण्ड और एरण्डपरिवार—कोई आचाय एरण्ड के समान हीन जाति वाले और एरण्ड परिवार के समान अयोग्य शिष्यपरिवार वाले होते है।

१ जिस प्रकार शाल नाम का वृक्ष शालवृक्षो के मध्य मे वृक्षराज होता है उसी प्रकार उत्तम आचाय उत्तम शिष्यो के परिवार वाला आचायराज जानना चाहिए।

२ जिस प्रकार शाल नाम का वृक्ष एरण्ड वृक्षों के मध्य में वृक्षराज होता है, उसी प्रकार उत्तम आचार्य मंगुल (अधम-असुन्दर) शिष्यों के परिवार वाला जानना चाहिए।
३ जिस प्रकार एरण्ड नाम का वृक्ष शाल वृक्षों के मध्य में वृक्षराज होता है, उसी प्रकार सुन्दर शिष्यों के परिवार वाला मंगुल आचार्य जानना चाहिए।
४ जिस प्रकार एरण्ड नाम का वृक्ष एरण्ड वृक्षों के मध्य में वृक्षराज होता है, उसी प्रकार मंगुल शिष्यों के परिवार वाला मंगुल आचार्य जानना चाहिए (५४३)।

मिक्षाक सूत्र

५४४—चत्तारि मच्छा पण्णत्ता, तं जहा—अणुसोयचारी, पडिसोयचारी, अंतचारी, मज्झचारी।

एवामेव चत्तारि भिक्खागा पण्णत्ता, तं जहा—अणुसोयचारी, पडिसोयचारी, अंतचारी, मज्झचारी।

मत्स्य चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ अनुस्रोतचारी—जल प्रवाह के अनुकूल चलने वाला मत्स्य।
२ प्रतिस्रोतचारी—जल-प्रवाह के प्रतिकूल चलने वाला मत्स्य।
३ अन्तचारी—जल-प्रवाह के किनारे-किनारे चलने वाला मत्स्य।
४ मध्यचारी—जल-प्रवाह के मध्य में चलने वाला मत्स्य।

इसी प्रकार भिक्षुक भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ अनुस्रोतचारी—उपाश्रय से लगाकर सीधी गली में स्थित घरों से भिक्षा लेने वाला।
२ प्रतिस्रोतचारी—गली के अन्त से लगा कर उपाश्रय तक स्थित घरों से भिक्षा लेने वाला।
३ अन्तचारी—नगर-ग्रामादि के अन्त भाग में स्थित घरों से भिक्षा लेने वाला।
४ मध्यचारी—नगर ग्रामादि के मध्य में स्थित घरों से भिक्षा लेने वाला।

साधु उक्त चार प्रकार के अभिग्रहों में से किसी एक प्रकार का अभिग्रह लेकर भिक्षा लेने के लिए निकलते हैं और अपने अभिग्रह के अनुसार ही भिक्षा ग्रहण करते हैं (५४४)।

गोल सूत्र

५४५—चत्तारि गोला पण्णत्ता, तं जहा—मधुसित्थगोले, जउगोले, दारुगोले, मट्टियागोले।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—मधुसित्थगोलसमाणे, जउगोलसमाणे, दारुगोलसमाणे, मट्टियागोलसमाणे।

गोले चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ मधुसिक्थगोला, २ जतुगोला, ३ दारुगोला, ४ मृत्तिकागोला।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ मधुसिक्थगोलासमान—मधुसिक्थ (मोम) के बने गोले के समान कोमल हृदयवाला पुरुष ।
२ जतुगोला समान—लाख के गोले के समान किंचित कठिन हृदय वाला, किन्तु जैसे अग्नि के सान्निध्य से जतुगोला शीघ्र पिघल जाता है इसी प्रकार गुरु-उपदेशादि से शीघ्र कोमल होने वाला पुरुष ।
३ दारुगोला समान—जैसे लाख के गोले से लकडी का गोला अधिक कठिन होता है, उसी प्रकार कठिनतर हृदय वाला पुरुष ।
४ मृत्तिकागोला समान—जैसे मिट्टी का गोला (आग मे पकने पर) लकडी से भी अधिक कठिन होता है, उसी प्रकार कठिनतम हृदय वाला पुरुष (५४५) ।

५४६—चत्तारि गोला पण्णत्ता, त जहा—अयगोले तउगोले, तबगोले, सीसगोले ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—अयगोलसमाणे, जाव (तउगोलसमाणे, तबगोलसमाणे), सीसगोलसमाणे ।

पुन गोले चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१ अयोगोल (लोह का गोला) । २ त्रपुगोल (रांग का गोला) ।
३ ताम्रगोल (तांबे का गोला) । ४ शीशगोल (सीसे का गोला) ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१ अयोगोलसमान—लोह के गोले के समान गुरु (भारी) कर्म वाला पुरुष ।
२ त्रपुगोलसमान—रांगे के गोले के समान गुरुतर कर्म वाला पुरुष ।
३ ताम्रगोलसमान—तांबे के गोले के समान गुरुतम कर्म वाला पुरुष ।
४ शीशगोलसमान—सीसे के गोले के समान अत्यधिक गुरु कर्म वाला पुरुष ।

विवेचन—अयोगोल आदि के समान चार प्रकार के पुरुषो की उक्त व्याख्या मन्द, तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम कषायो के द्वारा उपार्जित कर्म-भार की उत्तरोत्तर अधिकता से की गई है । टीकाकार ने पिता माता, पुत्र और स्त्री-सम्बन्धी स्नेह भार से भी करने की सूचना की है । पुरुष का स्नेह पिता की अपेक्षा माता मे अधिक होता है, माता की अपेक्षा पुत्र से और भी अधिक होता है तथा स्त्री से और भी अधिक होता है । इस स्नेह-भार की अपेक्षा पुरुष चार प्रकार के होते हैं, ऐसा अभिप्राय जानना चाहिए । अथवा पिता आदि परिवार के प्रति राग की मन्दता तीव्रता की अपेक्षा यह कथन समझना चाहिए (५४६) ।

५४७—चत्तारि गोला पण्णत्ता, त जहा—हिरण्णगोले, सुवण्णगोले, रयणगोले, वयरगोले ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—हिरण्णगोलसमाणे, जाव (सुवण्णगोलसमाणे रयणगोलसमाणे), वयरगोलसमाणे ।

पुन गोले चार प्रकार के कहे गये है । जैसे—

१ हिरण्य-(चांदी) गोला, २ सुवर्ण-गोला, ३ रत्न गोला, ४ वज्रगोला ।

विवेचन—चम पक्षी और रोम पक्षी तो मनुष्य क्षेत्र मे पाये जाते हैं, किन्तु समुद्ग पक्षी और विततपक्षी मनुष्यक्षेत्र से बाहरी द्वीपो और समुद्रो मे ही पाये जाते हैं।

५५२—चउव्विहा खुड्डपाणा पण्णत्ता, त जहा—बेइदिया, तेइदिया, चउरिंदिया, समुच्छिम पचिदियतिरिक्खजोणिया।

क्षुद्र प्राणी चार प्रकार क कहे गये हैं। जैसे—

१ द्वीन्द्रिय जीव, २ त्रीन्द्रिय जीव, ३ चतुरिन्द्रिय जीव,
४ सम्मूच्छिम पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीव (५५२)।

विवेचन—जिनकी अग्रिम भव मे मुक्ति सभव नही, ऐसे प्राणी क्षुद्र कहलाते है।

भिक्षुक-सूत्र

५५३—चत्तारि पक्खी पण्णत्ता, त जहा—णिवतित्ता णाममेगे णो परिवइत्ता, परिवइत्ता णाममेगे णो णिवतित्ता, एगे णिवतित्तावि परिवइत्तावि, एगे णो णिवतित्ता णो परिवइत्ता।

एवामेव चत्तारि भिक्खागा पण्णत्ता, त जहा—णिवतित्ता णाममेगे णो परिवइत्ता, परिवइत्ता णाममेगे णो णिवतित्ता, एगे णिवतित्तावि परिवइत्तावि, एगे णो णिवतित्ता णो परिवइत्ता।

पक्षी चार प्रकार के कहे गये हैं। जसे—

१ निपतिता, न परिव्रजिता—कोई पक्षी अपने घोसले से नीचे उतर सकता है, किन्तु (बच्चा होने से) उड नही सकता।
२ परिव्रजिता, न निपतिता—कोई पक्षी अपने घोसले से उड सकता है, किन्तु (भीरु होने से) नीचे नही उतर सकता।
३ निपतिता भी, परिव्रजिता भी—कोई समर्थ पक्षी अपने घोसले से नीचे भी उड सकता है और ऊपर भी उड सकता है।
४ न निपतिता, न परिव्रजिता—कोई पक्षी (अतीव बालावस्था वाला होने के कारण) अपने घोसले मे न नीचे ही उतर सकता है और न ऊपर ही उड सकता है (५५३)।

इसी प्रकार भिक्षुक भी चार प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ निपतिता, न परिव्रजिता—कोई भिक्षुक भिक्षा के लिए निकलता है, किन्तु रुग्ण होने आदि के कारण अधिक घूम नही सकता।
२ परिव्रजिता, न निपतिता—कोई भिक्षुक भिक्षा के लिए घूम सकता है किन्तु स्वाध्यायादि मे सलग्न रहने से भिक्षा के लिए निकल नही सकता।
३ निपतिता भी, परिव्रजिता भी—कोई समर्थ भिक्षुक भिक्षा के लिए निकलता भी है और घूमता भी है।
४ न निपतिता, न परिव्रजिता—कोई नवदीक्षित अल्पवयस्क भिक्षुक भिक्षा के लिए न निकलता है और न घूमता ही है।

कृश-अकृश सूत्र

५५४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—णिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठे, णिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठे, अणिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठे, अणिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठे ।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये है । जैसे—

१ निष्कृष्ट और निष्कृष्ट—कोई पुरुष शरीर से कृश होता है और कषाय से भी कृश होता है ।
२ निष्कृष्ट और अनिष्कृष्ट—कोई पुरुष शरीर से कृश होता है किन्तु कषाय से कृश नही होता ।
३ अनिष्कृष्ट और निष्कृष्ट—कोई पुरुष शरीर से कृश नही होता, किन्तु कषाय से कृश होता है ।
४ अनिष्कृष्ट और अनिष्कृष्ट—कोई पुरुष न शरीर से कृश होता है और न कषाय से ही कृश होता है (५५४) ।

५५५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—णिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठप्पा, णिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठप्पा, अणिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठप्पा, अणिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठप्पा ।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१ निष्कृष्ट और निष्कृष्टात्मा—कोई पुरुष शरीर से कृश होता है और कषायो का निर्मथन कर देने से निर्मल-आत्मा होता है ।
२ निष्कृष्ट और अनिष्कृष्टात्मा—कोई पुरुष शरीर से तो कृश होता है, किन्तु कषायो की प्रबलता से अनिर्मल-आत्मा होता है ।
३ अनिष्कृष्ट और निष्कृष्टात्मा—कोई पुरुष शरीर से अकृश (स्थूल) किन्तु कषायो के अभाव से निर्मल-आत्मा होता है ।
४ अनिष्कृष्ट और अनिष्कृष्टात्मा—कोई पुरुष शरीर से अनिष्कृष्ट (अकृश) होता है और आत्मा से भी अनिष्कृष्ट (अकृश या अनिर्मल) होता है (५५५) ।

बुध अबुध सूत्र

५५६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—बुहे णाममेगे बुहे, णाममेगे अबुहे, अबुहे णाममेगे बुहे, अबुहे णाममेगे अबुहे ।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१ बुध और बुध—कोई पुरुष ज्ञान से भी बुध (विवेकी) होता है और आचरण से भी बुध (विवेकी) होता है ।
२ बुध और अबुध—कोई पुरुष ज्ञान से तो बुध होता है, किन्तु आचरण से अबुध (अविवेकी) होता है ।
३ अबुध और बुध—कोई पुरुष ज्ञान से अबुध होता है, किन्तु आचरण से बुध होता है ।

४ अबुध और अबुध—कोई पुरुष ज्ञान से भी अबुध होता है और आचरण से भी अबुध होता है (५५६)।

५५७—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—बुधे णाममेगे बुधहियए, बुधे णाममेगे अबुधहियए अबुधे णाममेगे बुधहियए, अबुधे णाममेगे अबुधहियए।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ बुध और बुधहृदय—कोई पुरुष आचरण से बुध (सत् क्रिया वाला) होता है और हृदय से भी बुध (विवेकशील) होता है।
२ बुध और अबुधहृदय—कोई पुरुष आचरण से बुध होता है, किन्तु हृदय से अबुध (अविवेकी) होता है।
३ अबुध और बुधहृदय—कोई पुरुष आचरण से अबुध होता है, किन्तु हृदय से बुध होता है।
४ अबुध और अबुधहृदय—कोई पुरुष आचरण से भी अबुध होता है और हृदय से भी अबुध होता है (५५७)।

अनुकम्पक-सूत्र

५५८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—आयाणुकंपए णाममेगे णो पराणुकंपए, पराणुकंपए णाममेगे णो आयाणुकंपए, एगे आयाणुकंपएवि पराणुकंपएवि, एगे णो आयाणुकंपए णो पराणुकंपए।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ आत्मानुकम्पक, न परानुकम्पक—कोई पुरुष अपनी आत्मा पर अनुकम्पा (दया) करता है, किन्तु दूसरे पर अनुकम्पा नहीं करता। (जिनकल्पी, प्रत्येकबुद्ध या निर्दय कोई अन्य पुरुष)
२ परानुकम्पक, न आत्मानुकम्पक—कोई पुरुष दूसरे पर तो अनुकम्पा करता है, किन्तु मेतार्य मुनि के समान अपने ऊपर अनुकम्पा नहीं करता।
३ आत्मानुकम्पक भी, परानुकम्पक भी—कोई पुरुष आत्मानुकम्पक भी होता है और परानुकम्पक भी होता है, (स्थविरकल्पी साधु)।
४ न आत्मानुकम्पक, न परानुकम्पक—कोई पुरुष न आत्मानुकम्पक ही होता है और न परानुकम्पक ही होता है। (कालशौकरिक के समान) (५५८)।

संवास सूत्र

५५९—चउव्विहे संवासे पण्णत्ते, तं जहा—दिव्वे, आसुरे रक्खसे, माणुसे।

संवास (स्त्री-पुरुष का सहवास) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ दिव्य-संवास, २ आसुर-संवास, ३ राक्षस-संवास, ४ मानुष-संवास (५५९)।

विवेचन—वैमानिक देवों के सवास को दिव्यसवास कहते है। असुरकुमार भवनवासी देवों के सवास को आसुरसवास कहते है। राक्षस व्यन्तर देवो के सवास को राक्षस-सवास कहते है और मनुष्यो के सवास को मानुषसवास कहते है।

५६०—चउव्विहे सवासे पण्णत्ते, त जहा—देवे णाममेगे देवीए सद्धि सवास गच्छति, देवे णाममेगे असुरीए सद्धि सवास गच्छति, असुरे णाममेगे देवीए सद्धि सवास गच्छति, असुरे णाममेगे असुरीए सद्धि सवास गच्छति।

पुन सवास चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ कोई देव देवियो के साथ सवास करता है।
२ कोई देव असुरिया के साथ सवास करता है।
३ कोई असुर देवियो के साथ सवास करता है।
४ कोई असुर असुरियो के साथ सवास करता है (५६०)।

५६१—चउव्विधे सवासे पण्णत्ते, त जहा—देवे णाममेगे देवीए सद्धि सवास गच्छति, देवे णाममेगे रक्खसीए सद्धि सवास गच्छति, रक्खसे णाममेगे देवीए सद्धि सवास गच्छति, रक्खसे णाममेगे रक्खसीए सद्धि सवास गच्छति।

पुन सवास चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ कोई देव देवियो के साथ सवास करता है।
२ कोई देव राक्षसियो के साथ सवास करता है।
३ कोई राक्षस देवियो के साथ सवास करता है।
४ कोई राक्षस राक्षसियो के साथ सवास करता है (५६१)।

५६२—चउव्विधे सवासे पण्णत्ते, त जहा—देवे णाममेगे देवीए सद्धि सवास गच्छति, देवे णाममेगे मणुस्सीए सद्धि सवास गच्छति, मणुस्से णाममेगे देवीए सद्धि सवास गच्छति, मणुस्से णाममेगे मणुस्सीए सद्धि सवास गच्छति।

पुन सवास चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ कोई देव देवी के साथ सवास करता है।
२ कोई देव मानुषी के साथ सवास करता है।
३ कोई मनुष्य देवी के साथ सवास करता है।
४ कोई मनुष्य मानुषी स्त्री के साथ सवास करता है (५६२)।

५६३—चउव्विधे सवासे पण्णत्ते, त जहा—असुरे णाममेगे असुरीए सद्धि स वास गच्छति, असुरे णाममेगे रक्खसीए सद्धि सवास गच्छति, रक्खसे णाममेगे असुरीए सद्धि स वास गच्छति, रक्खसे णाममेगे रक्खसीए सद्धि सवास गच्छति।

पुन सवास चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ कोई असुर असुरियो के साथ सवास करता है।

२ कोई असुर राक्षसियों के साथ संवास करता है।
३ कोई राक्षस असुरियों के साथ संवास करता है।
४ कोई राक्षस राक्षसियों के साथ संवास करता है (५६३)।

५६४—चउव्विधे संवासे पण्णत्ते, तं जहा—असुरे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छति, असुरे णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छति, मणुस्से णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छति, मणुस्से णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छति।

पुनः संवास चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ कोई असुर असुरियों के साथ संवास करता है।
२ कोई असुर मानुषी स्त्रियों के साथ संवास करता है।
३ कोई मनुष्य असुरियों के साथ संवास करता है।
४ कोई मनुष्य मानुषी स्त्रियों के साथ संवास करता है (५६४)।

५६५—चउव्विधे संवासे पण्णत्ते, तं जहा—रक्खसे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छति, रक्खसे णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छति, मणुस्से णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छति, मणुस्से णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छति।

पुनः संवास चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ कोई राक्षस राक्षसियों के साथ संवास करता है।
२ कोई राक्षस मानुषी स्त्रियों के साथ संवास करता है।
३ कोई मनुष्य राक्षसियों के साथ संवास करता है।
४ कोई मनुष्य मानुषी स्त्रियों के साथ संवास करता है (५६५)।

अपध्वंस सूत्र

५६६—चउव्विहे अवद्धंसे पण्णत्ते, तं जहा—आसुरे, आभिओगे, संमोहे, देवकिव्विसे।

अपध्वंस (चारित्र का विनाश) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ आसुर अपध्वंस, २. आभियोग-अपध्वंस, ३ सम्मोह-अपध्वंस, ४ देवकिल्विष अपध्वंस (५६६)।

विवेचन—शुद्ध तपस्या का फल निर्वाण-प्राप्ति है, शुभ तपस्या का फल स्वर्ग-प्राप्ति है। किन्तु जिस तपस्या में किसी जाति की आकांक्षा या फल प्राप्ति की वाञ्छा संलग्न रहती है, वह तप साधना के फल से देवयोनि में तो उत्पन्न होता है, किन्तु आकांक्षा करने से नीच जाति के भवनवासी आदि देवों में उत्पन्न होता है। जिन अनुष्ठानों या क्रियाविशेषों को करने से साधक असुरत्व का उपार्जन करता है, वह आसुरी भावना कही गयी है। जिन अनुष्ठानों से साधक आभियोग जाति के देवों में उत्पन्न होता है, वह आभियोग भावना है, जिन अनुष्ठानों से साधक सम्मोहक देवों में उत्पन्न होता है, वह सम्मोही भावना है और जिन अनुष्ठानों से साधक किल्विष देवों में उत्पन्न होता है, वह देवकिल्विषी भावना है। वस्तुतः ये चारों ही भावनाएं चारित्र के अपध्वंस (विनाशरूप) हैं, अतः

अपध्वस के चार प्रकार बताये गये हैं। चारित्र का पालन करते हुए भी व्यक्ति जिस प्रकार की हीन भावना मे निरत रहता है, वह उस प्रकार के हीन देवो मे उत्पन्न हो जाता ह।

५६७—चउहिं ठाणेहिं जीवा ग्रासुरत्ताए कम्म पगरेंति, त जहा—कोवसीलताए, पाहुड-सीलताए, स सत्ततवोकम्मेण णिमित्ताजीवयाए।

चार स्थाना से जीव असुरत्व कम (असुरो मे जन्म लेने योग्य कम) का उपाजन करते हैं। जसे—

१ कोपशीलता मे—चारित्र का पालन करते हुए क्रोधयुक्त प्रवृत्ति से।
२ प्राभृतशीलता मे—चारित्र का पालन करते हुए कलह-स्वभावी होने से।
३ ससक्त तप कम मे—ग्राहार, पात्रादि की प्राप्ति के लिए तपश्चरण करने से।
४ निमित्ताजीविता से—हानि लाभ आदि-विषयक निमित्त बताकर ग्राहारादि प्राप्त करने मे (५६७)।

५६८—चउहिं ठाणेहिं जीवा ग्राभिग्रोगत्ताए कम्म पगरेंति, त जहा—ग्रत्तुक्कोसेण, परपरि-वाएण, भूतिकम्मेण, कोउयकरणेण।

चार स्थानो से जीव ग्राभियोगत्व कम का उपाजन करते हैं। जैसे—

१ ग्रात्मोत्कप से—ग्रपने गुणा का ग्रभिमान करने तथा ग्रात्मप्रशसा करने से।
२ पर-परिवाद से—दूसरो की निन्दा करन ग्रौर दोष कहने स।
३ भूतिकम से—ज्वर, भूतावेश ग्रादि को दूर करने के लिए भस्म ग्रादि देन से।
४ कौतुक करने से—सौभाग्यवृद्धि ग्रादि के लिए मन्त्रित जलादि के क्षेपण करने से (५६८)।

५६९—चउहिं ठाणेहिं जीवा सम्मोहत्ताए कम्म पगरेंति, त जहा—उम्मग्गदेसणाए, मग्गतराएण, कामासंसप्पग्रोगेण, भिज्जाणियाणकरणेण।

चार स्थानो से जीव सम्मोहत्व कम का उपाजन करते हैं। जसे—

१, उन्मागदेशना से—जिन वचनो म विरुद्ध मिथ्या माग का उपदेश देने से।
२ मार्गान्तराय से—मुक्ति के माग मे प्रवृत्त व्यक्ति के लिए अन्तराय करने से।
३ कामाशसाप्रयोग से—तपश्चरण करते हुए काम-भोगा की ग्रभिलाषा रखने से।
४ भिध्यानिदानकरण से—तीव्र भोगो की लालसा-वश निदान करने मे (५६९)।

५७०—चउहिं ठाणेहिं जीवा देवकिब्बिसियत्ताए कम्म पगरेंति, त जहा—ग्ररहताण ग्रवण्ण वदमाणे, ग्ररहतपण्णत्तस्स धम्मस्स ग्रवण्ण वदमाणे, ग्रायरियउवज्झायाणमवण्ण वदमाणे, चाउवण्णस्स सघस्स ग्रवण्ण वदमाणे।

चार स्थानो मे जीव देवकिल्विषिकत्व कर्म का उपार्जन करते हैं। जैसे—

१ ग्रहन्तो का ग्रवणवाद (ग्रसद् दोषोद्भाव) करने से।
२ ग्रहत्प्रज्ञप्त धम का ग्रवणवाद करने से।

३ आचार्य और उपाध्याय का अवर्णवाद करने से ।
४ चतुर्विध संघ का अवर्णवाद करने से (५७०) ।

प्रव्रज्या-सूत्र

५७१—चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, त जहा—इहलोगपडिबद्धा, परलोगपडिबद्धा, दुहओ-लोगपडिबद्धा, अप्पडिबद्धा ।

प्रव्रज्या (निर्ग्रन्थ दीक्षा) चार प्रकार की कही गई है । जैसे—
१ इहलोकप्रतिबद्धा—इस लोक सम्बन्धी सुख-कामना से ली जाने वाली प्रव्रज्या ।
२ परलोकप्रतिबद्धा—परलोक-सम्बन्धी सुख-कामना से ली जाने वाली प्रव्रज्या ।
३ लोकद्वयप्रतिबद्धा—दोनों लोकों में सुख कामना से ली जाने वाली प्रव्रज्या ।
४ अप्रतिबद्धा—किसी भी प्रकार के सांसारिक सुख की कामना से रहित कर्म विनाशार्थ ली जाने वाली प्रव्रज्या (५७१) ।

५७२—चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, त जहा—पुरओपडिबद्धा, मग्गओपडिबद्धा, दुहओपडि-बद्धा, अप्पडिबद्धा ।

पुन प्रव्रज्या चार प्रकार की कही गई है । जैसे—
१ पुरत प्रतिबद्धा—प्रव्रजित होने पर आहारादि अथवा शिष्यपरिवारादि की कामना से ली जाने वाली प्रव्रज्या ।
२ मार्गत (पृष्ठत) प्रतिबद्धा—मेरी प्रव्रज्या से मेरे वंश, कुल और कुटुम्बादि की प्रतिष्ठा बढ़ेगी । इस कामना से ली जाने वाली प्रव्रज्या ।
३ द्वयप्रतिबद्धा—पुरत और पृष्ठत उक्त इन दोनों प्रकार की कामना से ली जाने वाली प्रव्रज्या ।
४ अप्रतिबद्धा—उक्त दोनों प्रकार की कामनाओं से रहित कर्मक्षयार्थ ली जाने वाली प्रव्रज्या (५७२) ।

५७३—चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, त जहा—ओवायपव्वज्जा, अक्खातपव्वज्जा, संगार-पव्वज्जा, विहगगइपव्वज्जा ।

पुन प्रव्रज्या चार प्रकार की कही गई है । जैसे—
१ अवपात प्रव्रज्या—सद्-गुरुओं की सेवा से प्राप्त होने वाली दीक्षा ।
२ आख्यात प्रव्रज्या—दूसरों के कहने से ली जाने वाली दीक्षा ।
३ संगार प्रव्रज्या—तुम दीक्षा लोगे तो मैं भी दीक्षा लूंगा, इस प्रकार परस्पर प्रतिज्ञाबद्ध होने से ली जाने वाली दीक्षा ।
४ विहगगति प्रव्रज्या—परिवारादि से अलग होकर और एकाकी देशान्तर में जाकर ली जाने वाली दीक्षा (५७३) ।

५७४—चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, त जहा—तुयावइत्ता, पुयावइत्ता, वुग्रावइत्ता, परिपुयावइत्ता।

पुन प्रव्रज्या चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ तादयित्वा प्रव्रज्या—कष्ट देकर दी जाने वाली दीक्षा।
२ प्लावयित्वा प्रव्रज्या—अन्यत्र ले जाकर दी जाने वाली दीक्षा।
३ वाचयित्वा प्रव्रज्या—बातचीत करके दी जाने वाली दीक्षा।
४ परिप्लुतयित्वा प्रव्रज्या—स्निग्ध, मिष्ट भोजन कराकर या मिष्ट आहार मिलने का प्रलोभन देकर दी जाने वाली दीक्षा (५७४)।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार के सम्मुख 'तुयावइत्ता' के स्थान पर 'उयावइत्ता' भी पाठ उपस्थित था, उसका संस्कृत रूप 'ओजयित्वा' होता है। तदनुसार 'शारीरिक या विद्यादि-सम्बन्धी बल दिखाकर दी जाने वाली दीक्षा' ऐसा अर्थ किया है। इसी प्रकार 'पुयावइत्ता' के संस्कृत रूप प्लावयित्वा के स्थान पर अथवा कहकर 'पूतयित्वा' संस्कृत रूप देकर यह अर्थ किया है कि जो दीक्षा किसी के ऊपर लगे दूषण को दूर कर दी जाती है, वह पूतयित्वा-प्रव्रज्या है। यह अर्थ भी सगत है और आज भी ऐसी दीक्षाएँ होती हुई देखी जाती है। तीसरी 'वुग्रावइत्ता' 'वाचयित्वा' प्रव्रज्या के स्थान पर टीकाकार के सम्मुख मोयावइत्ता' भी पाठ रहा है। इसका संस्कृतरूप 'मोचयित्वा' होता है, तदनुसार यह अर्थ होता है कि किसी ऋण ग्रस्त व्यक्ति को ऋण से मुक्त कराके, या अन्य प्रकार की आपत्ति से पीडित व्यक्ति को उससे छुडाकर जो दीक्षा दी जाती है, वह 'मोचयित्वा प्रव्रज्या' कहलाती है। यह अर्थ भी सगत है। इस तीसरे प्रकार की प्रव्रज्या मे टीकाकार ने गौतम स्वामी के द्वारा वार्तालाप कर प्रबोधित कृषक का उल्लेख किया है। तदनन्तर 'वचन वा' आदि लिखकर यह भी प्रकट किया है कि दो व्यक्तियो के वाद-विवाद (शास्त्रार्थ) मे जो हार जायगा, उसे जीतने वाले के मत मे प्रव्रजित होना पडेगा। इस प्रकार की प्रतिज्ञा से गृहीत प्रव्रज्या का 'वुग्रावइत्ता' वचन वा प्रतिज्ञावचन कारयित्वा प्रव्रज्या' कहा है।

५७५—चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, त जहा—णडखइया, भडखइया, सीहखइया, सियालखइया।

पुन प्रव्रज्या चार प्रकार की गई है। जैसे—

१ नटखादिता—संवेग-वैराग्य से रहित धर्मकथा कह कर भोजनादि प्राप्त करने के लिए ली गई प्रव्रज्या।
२ भटखादिता—सुभट के समान बल-प्रदर्शन कर भोजनादि प्राप्त कराने वाली प्रव्रज्या।
३ सिंहखादिता—सिंह के समान दूसरो को भयभीत कर भोजनादि प्राप्त कराने वाली प्रव्रज्या।
४ श्रृगालखादिता—सियाल के समान दीन वृत्ति से भोजनादि प्राप्त कराने वाली प्रव्रज्या (५७५)।

५७६—चउव्विहा किसी पण्णत्ता, त जहा—वाविया, परिवाविया, णिंदिता, परिणिंदिता।

एवामेव चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—वाविता, परिवाविता, णिदिता, परिणिदिता।

कृषि (खेती) चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ वापिता—एक बार वायी गई गेहूँ आदि की कृषि।
२ परिवापिता—एक बार बोने पर उगे हुए धान्य को उखाडकर अन्य स्थान पर रोपण की जाने वाली कृषि।
३ निदाना—बोये गये धान्य के साथ उगी हुई विजातीय घास को नीद कर तयार होने वाली कृषि।
४ परिनिदाना—बोये गये धान्यादि के साथ उगी हुई घास आदि का अनेक बार नीदन से होने वाली कृषि।

इसी प्रकार प्रव्रज्या भी चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ वापिता प्रव्रज्या—सामायिक चारित्र मे आरोपित करना (छोटी दीक्षा)।
२ परिवापिता प्रव्रज्या—महाव्रतो मे आरोपित करना (बडी दीक्षा)।
३ निदाता प्रव्रज्या—एक बार आलोचना वाली दीक्षा।
४ परिनिदाना प्रव्रज्या—बार-बार आलोचना वाली दीक्षा (५७६)।

५७७—चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—धण्णपुंजितसमाणा धण्णविरल्लितसमाणा, धण्णविक्खित्तसमाणा, धण्णसंकड्डितसमाणा।

पुन प्रव्रज्या चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ पुंजितधान्यसमाना—साफ किये गये खलिहान मे रखे धान्य पुंज के समान निर्दोष प्रव्रज्या।
२ विरल्लितधान्यसमाना—साफ किये गये, किन्तु खलिहान मे बिखरे हुए धान्य के समान अल्प-अतिचार वाली प्रव्रज्या।
३ विक्षिप्तधान्यसमाना—खलिहान मे बैला आदि के द्वारा कुचले गए धान्य के समान बहु-अतिचार वाली प्रव्रज्या।
४ संकर्षितधान्यसमाना—खेत से काट कर खलिहान मे लाए गए धान्य-पूलो के समान बहुतर अतिचार वाली प्रव्रज्या (५७७)।

संज्ञा सूत्र

५७८—चत्तारि सण्णाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—आहारसण्णा, भयसण्णा, मेहुणसण्णा परिग्गहसण्णा।

संज्ञाए चार प्रकार की कही गई हैं। जैसे—

१ आहारसंज्ञा, २ भयसंज्ञा, ३ मैथुनसंज्ञा, ४ परिग्रहसंज्ञा।

५७९—चउहिं ठाणेहिं आहारसण्णा समुप्पज्जति, तं जहा—ओमकोट्ठताए, छुहावेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, मतीए, तदट्ठोवओगेणं।

चार कारणों से आहारसंज्ञा उत्पन्न होती है। जैसे—

१ पेट के खाली होने से, २ क्षुधा वेदनीय कर्म के उदय से,
३ आहार संबंधी बातें सुनने से उत्पन्न होने वाली आहार की बुद्धि से
४ आहार संबंधी उपयोग-चिन्तन से (५७८)।

५८०—चउहिं ठाणेहिं भयसण्णा समुप्पज्जति, तं जहा—हीणसत्तताए, भयवेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, मतीए, तदट्ठोवओगेणं।

भयसंज्ञा चार कारणों से उत्पन्न होती है। जैसे—

१ सत्त्व (शक्ति) की हीनता से, २ भयवेदनीय कर्म के उदय से,
३ भय की बात सुनने से, ४ भय का सोच-विचार करते रहने से (५८०)।

५८१—चउहिं ठाणेहिं मेहुणसण्णा समुप्पज्जति, तं जहा—चितमंससोणिययाए, मोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, मतीए, तदट्ठोवओगेणं।

मैथुनसंज्ञा चार कारणों से उत्पन्न होती है। जैसे—

१ शरीर में अधिक मांस, रक्त, वीर्य का संचय होने से,
२ [वेद] मोहनीय कर्म के उदय से,
३ मैथुन की बात सुनने से, ४ मैथुन में उपयोग लगाने से (५८१)।

५८२—चउहिं ठाणेहिं परिग्गहसण्णा समुप्पज्जति, तं जहा—अविमुत्तयाए, लोभवेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, मतीए तदट्ठोवओगेणं।

परिग्रहसंज्ञा चार कारणों से उत्पन्न होती है। जैसे—

१ परिग्रह का त्याग न होने से, २ [लोभ] मोहनीय कर्म के उदय से,
३ परिग्रह को देखने से उत्पन्न होने वाली तद्विषयक बुद्धि से,
४ परिग्रह संबंधी विचार करते रहने से (५८२)।

विवेचन—उक्त चारों सूत्रों में चारों संज्ञाओं की उत्पत्ति के चार-चार कारण बताये गये हैं। इनमें से क्षुधा या असाता वेदनीय कर्म का उदय आहारसंज्ञा के उत्पन्न होने में अन्तरंग कारण है, भय वेदनीय कर्म का उदय भय संज्ञा के उत्पन्न होने में अन्तरंग कारण है। इसी प्रकार वेदमोहनीय कर्म का उदय मैथुन संज्ञा का और लोभमोहनीय का उदय परिग्रह संज्ञा का अन्तरंग कारण है। शेष तीन तीन उक्त संज्ञाओं के उत्पन्न होने में बहिरंग कारण हैं। गोम्मटसार जीवकाण्ड में भी प्रत्येक संज्ञा के उत्पन्न होने में इन्हीं कारणों का निर्देश किया गया है। वहां उदय के स्थान पर उदीरणा का कथन है जो यहां भी समझा जा सकता है। तथा यहां चारों संज्ञाओं के उत्पन्न होने का तीसरा कारण 'मति' अर्थात् इन्द्रिय प्रत्यक्ष मतिज्ञान कहा है। गो० जीवकाण्ड में इसके स्थान पर आहार-दर्शन, अतिभीमदर्शन, प्रणीत (पौष्टिक) रस भोजन और उपकरण-दर्शन को क्रमशः चारों संज्ञाओं का कारण माना गया है (५८२)।[1]

१ गो० जीवकाण्ड गाथा १३४ १३७

काम-सूत्र

५८३—चउव्विहा कामा पण्णत्ता त जहा—सिंगारा, कलुणा, बीभच्छा रोद्दा। सिंगारा कामा देवाण, कलुणा कामा मणुयाण, बीभच्छा कामा तिरिक्खजोणियाण, रोद्दा कामा णेरइयाण।

काम-भोग चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ शृंगार काम, २ करुण काम, ३ बीभत्स काम, ४ रौद्र काम।
१ देवों का काम शृंगार-रस-प्रधान होता है।
२ मनुष्यों का काम करुण-रस-प्रधान होता है।
३ तिर्यग्योनिक जीवों का काम बीभत्स-रस-प्रधान होता है।
४ नारक जीवों का काम रौद्र-रस-प्रधान होता है (५८३)।

उत्ताण-गंभीर-सूत्र

५८४—चत्तारि उदगा पण्णत्ता, त जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोदए उत्ताणे णाममेगे गंभीरोदए, गंभीरे णाममेगे उत्ताणोदए, गंभीरे णाममेगे गंभीरोदए।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणहिदए, उत्ताणे णाममेगे गंभीरहिदए, गंभीरे णाममेगे उत्ताणहिदए, गंभीरे णाममेगे गंभीरहिदए।

उदक (जल) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ उत्तान और उत्तानोदक—कोई जल छिछला-अल्प किन्तु स्वच्छ होता है—उसका भीतरी भाग दिखाई देता है।
२ उत्तान और गम्भीरोदक—कोई जल अल्प किन्तु गम्भीर (गहरा) होता है अर्थात मलीन होने से इसका भीतरी भाग दिखाई नही देता।
३ गम्भीर और उत्तानोदक—कोई जल गम्भीर (गहरा) किन्तु स्वच्छ होता है।
४ गम्भीर और गम्भीरोदक—कोई जल गम्भीर और मलिन होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ उत्तान और उत्तानहृदय—कोई पुरुष बाहर से भी अगम्भीर (उथला या तुच्छ) दिखता है और हृदय से भी अगम्भीर (उथला या तुच्छ) होता है।
२ उत्तान और गम्भीरहृदय—कोई पुरुष बाहर से अगम्भीर दिखता है, किन्तु भीतर से गम्भीर हृदय होता है।
३ गम्भीर और उत्तानहृदय—कोई पुरुष बाहर से गम्भीर दिखता है किन्तु भीतर से अगम्भीर हृदय वाला होता है
४ गम्भीर और गम्भीरहृदय—कोई पुरुष बाहर से भी गम्भीर होता है और भीतर से भी गभीर हृदय वाला होता है (५८४)।

५८५—चत्तारि उदगा पण्णत्ता, त जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी, उत्ताणे णाममेगे गंभीरोभासी, गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी, गंभीरे णाममेगे गंभीरोभासी।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी, उत्ताणे णाममेगे गंभीरोभासी, गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी, गंभीरे णाममेगे गंभीरोभासी।

पुनः उदक चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ उत्तान और उत्तानावभासी—कोई जल उथला होता है और उथला जैसा ही प्रतिभासित होता है।
२ उत्तान और गम्भीरावभासी—कोई जल उथला होता है किन्तु स्थान की विशेषता से गहरा प्रतिभासित होता है।
३ गम्भीर और उत्तानावभासी—कोई जल गहरा होता है, किन्तु स्थान की विशेषता से उथला जैसा प्रतिभासित होता है।
४ गम्भीर और गम्भीरावभासी—कोई जल गहरा होता है और गहरा ही प्रतिभासित होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ उत्तान और उत्तानावभासी—कोई पुरुष उथला (तुच्छ) होता है और उसी प्रकार के तुच्छ कार्य करने से उथला ही प्रतिभासित होता है।
२ उत्तान और गम्भीरावभासी—कोई पुरुष उथला होता है, किन्तु गम्भीर जैसे दिखाऊ कार्य करने से गम्भीर प्रतिभासित होता है।
३ गम्भीर और उत्तानावभासी—कोई पुरुष गम्भीर होता है, किन्तु तुच्छ कार्य करने से उथला जैसा प्रतिभासित होता है।
४ गम्भीर और गम्भीरावभासी—कोई पुरुष गम्भीर होता है और तुच्छता प्रदर्शित न करने से गम्भीर ही प्रतिभासित होता है (५८५)।

५८६—चत्तारि उदही पण्णत्ता, तं जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोदही, उत्ताणे णाममेगे गंभीरोदही, गंभीरे णाममेगे उत्ताणोदही, गंभीरे णाममेगे गंभीरोदही।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणहियए, उत्ताणे णाममेगे गंभीरहियए, गंभीरे णाममेगे उत्ताणहियए, गंभीरे णाममेगे गंभीरहियए।

समुद्र चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ उत्तान और उत्तानोदधि—कोई समुद्र पहले भी उथला होता है और बाद में भी उथला होता है क्योंकि अढाई द्वीप से बाहर के समुद्रों में ज्वार नहीं आता।
२ उत्तान और गम्भीरोदधि—कोई समुद्र पहले तो उथला होता है, किन्तु बाद में ज्वार आने पर गहरा हो जाता है।
३ गम्भीर और उत्तानोदधि—कोई समुद्र पहले गहरा होता है, किन्तु बाद में ज्वार न रहने पर उथला हो जाता है।
४ गम्भीर और गम्भीरोदधि—कोई समुद्र पहले भी गहरा होता है और बाद में भी गहरा होता है।

काम-सूत्र

५८३—चउव्विहा कामा पण्णत्ता त जहा—सिंगारा, कलुणा बीभच्छा, रोद्दा। सिंगारा कामा देवाण, कलुणा कामा मणुयाण, बीभच्छा कामा तिरिक्खजोणियाण, रोद्दा कामा णेरइयाण।

काम-भोग चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ शृ गार काम, २ करुण काम, ३ बीभत्स काम, ४ रौद्र काम।
१ देवों का काम शृ गार-रस-प्रधान होता है।
२ मनुष्यों का काम करुण-रस-प्रधान होता है।
३ तिर्यग्योनिक जीवों का काम बीभत्स-रस प्रधान होता है।
४ नारक जीवों का काम रौद्र-रस प्रधान होता है (५८३)।

उत्ताण-गभीर-सूत्र

५८४—चत्तारि उदगा पण्णत्ता, त जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोदए, उत्ताणे णाममेगे गभीरोदए, गभीरे णाममेगे उत्ताणोदए, गभीरे णाममेगे गभीरोदए।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणहिदए, उत्ताणे णाममेगे गभीरहिदए, गभीरे णाममेगे उत्ताणहिदए, गभीरे णाममेगे गभीरहिदए।

उदक (जल) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ उत्तान और उत्तानोदक—कोई जल छिछला-अल्प कि तु स्वच्छ होता है—उसका भीतरी भाग दिखाई देता है।
२ उत्तान और गम्भीरोदक—कोई जल अल्प कि तु गम्भीर (गहरा) होता है अर्थात मलीन होने से इसका भीतरी भाग दिखाई नहीं देता।
३ गम्भीर और उत्तानोदक—कोई जल गम्भीर (गहरा) किन्तु स्वच्छ होता है।
४ गम्भीर और गम्भीरोदक—कोई जल गम्भीर और मलिन होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ उत्तान और उत्तानहृदय—कोई पुरुष बाहर से भी अगम्भीर (उथला या तुच्छ) दिखता है और हृदय से भी अगम्भीर (उथला या तुच्छ) होता है।
२ उत्तान और गम्भीरहृदय—कोई पुरुष बाहर से अगम्भीर दिखता है, कि तु भीतर से गम्भीर हृदय होता है।
३ गम्भीर और उत्तानहृदय—कोई पुरुष बाहर से गम्भीर दिखता है, किन्तु भीतर से अगम्भीर हृदय वाला होता है
४ गम्भीर और गम्भीरहृदय—कोई पुरुष बाहर से भी गम्भीर होता है और भीतर से भी गभीर हृदय वाला होता है (५८४)।

५८५—चत्तारि उदगा पण्णत्ता, त जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी, उत्ताणे णाममेगे गभीरोभासी, गभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी, गभीरे णाममेगे गभीरोभासी।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी, उत्ताणे णाममेगे गभीरोभासी, गभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी, गभीरे णाममेगे गभीरोभासी ।

पुन उदक चार प्रकार के गये है । जैसे—

१ उत्तान और उत्तानावभासी—कोई जल उथला होता है और उथला जैसा ही प्रतिभासित होता है ।
२ उत्तान और गम्भीरावभासी—कोई जल उथला होता है किन्तु स्थान की विशेषता से गहरा प्रतिभासित होता है ।
३ गम्भीर और उत्तानावभासी—कोई जल गहरा होता है, किन्तु स्थान की विशेषता से उथला जैसा प्रतिभासित होता है ।
४ गम्भीर और गम्भीरावभासी—कोई जल गहरा होता है और गहरा ही प्रतिभासित होता है ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये है । जैसे—

१ उत्तान और उत्तानावभासी—कोई पुरुष उथला (तुच्छ) होता है और उसी प्रकार के तुच्छ कार्य करने से उथला ही प्रतिभासित होता है ।
२ उत्तान और गम्भीरावभासी—कोई पुरुष उथला होता है, किन्तु गम्भीर जैसे दिखाऊ कार्य करने से गम्भीर प्रतिभासित होता है ।
३ गम्भीर और उत्तानावभासी—कोई पुरुष गम्भीर होता है, किन्तु तुच्छ कार्य करने से उथला जैसा प्रतिभासित होता है ।
४ गम्भीर और गम्भीरावभासी—कोई पुरुष गम्भीर होता है और तुच्छता प्रदर्शित न करने से गम्भीर ही प्रतिभासित होता है (५८५) ।

५८६—चत्तारि उदही पण्णत्ता, त जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोदही उत्ताणे णाममेगे गभीरोदही, गभीरे णाममेगे उत्ताणोदही, गभीरे णाममेगे गभीरोदही ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणहियए, उत्ताणे णाममेगे गभीरहियए गभीरे णाममेगे उत्ताणहियए, गभीरे णाममेगे गभीरहियए ।

समुद्र चार प्रकार के कहे गये है । जैसे—

१ उत्तान और उत्तानोदधि—कोई समुद्र पहले भी उथला होता है और बाद मे भी उथला होता है क्योकि अढाई द्वीप से बाहर के समुद्रो मे ज्वार नही आता ।
२ उत्तान और गम्भीरोदधि—कोई समुद्र पहले तो उथला होता है, किन्तु बाद मे ज्वार आने पर गहरा हो जाता है ।
३ गम्भीर और उत्तानोदधि—कोई समुद्र पहले गहरा होता है, किन्तु बाद मे ज्वार न रहने पर उथला हो जाता है ।
४ गम्भीर और गम्भीरोदधि—कोई समुद्र पहले भी गहरा होता है और बाद मे भी गहरा होता है ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ उत्तान और उत्तानहृदय—कोई पुरुष अनुदार या उथला होता है और उसका हृदय भी अनुदार या उथला होता है।
२ उत्तान और गम्भीरहृदय—कोई पुरुष अनुदार या उथला होता है, किन्तु उसका हृदय गम्भीर या उदार होता है।
३ गम्भीर और उत्तानहृदय—कोई पुरुष गम्भीर किन्तु अनुदार या उथले हृदय वाला होता है।
४ गम्भीर और गम्भीरहृदय—कोई पुरुष गम्भीर और गम्भीरहृदय वाला होता है (५८६)।

५८७—चत्तारि उदही पण्णत्ता, त जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी, उत्ताणे णाममेगे ग भीरोभासी, ग भीरे णाममेगे उत्ताणोभासी, ग भीरे णाममेगे ग भीरोभासी।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी, उत्ताणे णाममेगे ग भीरोभासी, ग भीरे णाममेगे उत्ताणोभासी, ग भीरे णाममेगे ग भीरोभासी।

पुन समुद्र चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ उत्तान और उत्तानावभासी—कोई समुद्र उथला होता है और उथला ही प्रतिभासित होता है।
२ उत्तान और गम्भीरावभासी—कोई समुद्र उथला होता है, किन्तु गहरा प्रतिभासित होता है।
३ गम्भीर और उत्तानावभासी—कोई समुद्र गम्भीर होता है किन्तु उथला प्रतिभासित होता है।
४ गम्भीर और गम्भीरावभासी—कोई समुद्र गम्भीर होता है और गम्भीर ही प्रतिभासित होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ उत्तान और उत्तानावभासी—कोई पुरुष उथला होता है और उथला ही प्रतिभासित होता है।
२ उत्तान और गम्भीरावभासी—कोई पुरुष उथला होता है किन्तु गम्भीर प्रतिभासित होता है।
३ गम्भीर और उत्तानावभासी—कोई पुरुष गम्भीर होता है, किन्तु उथला प्रतिभासित होता है।
४ गम्भीर और गम्भीरावभासी—कोई पुरुष गम्भीर होता है और गम्भीर ही प्रतिभासित होता है (५८७)।

तरक सूत्र

५८८—चत्तारि तरगा पण्णत्ता, त जहा—समुद्द तरामोतेगे समुद्द तरति, समुद्द तरामोतेगे गोप्पय तरति, गोप्पय तरामोतेगे समुद्द तरति, गोप्पय तरामोतेगे गोप्पय तरति।

तैराक (तरने वाले पुरुष) चार प्रकार के कहे गये ह। जैसे—

१ कोइ तैराक समुद्र को तैरने का सकल्प करता है और समुद्र को तर भी जाता है।
२ कोइ तैराक समुद्र का तैरने का सकल्प करता है, किन्तु गोष्पद (गौ के पैर रखने से बने गडहे जैसे अल्पजलवाले स्थान) को तरता है।
३ कोइ तैराक गोष्पद को तैरने का सकल्प करता है और समुद्र को तैर जाता ह।
४ कोइ तैराक गोष्पद को तरने का सकल्प करता है और गोष्पद को ही तैरता है।

विवेचन—यद्यपि इसका दार्ष्टान्तिक प्रतिपादक सूत्र उपलब्ध नही है, किन्तु परम्परा के अनुसार टीकाकार ने इस प्रकार से भाव-तराक का निरूपण किया है—

१ कोइ पुरुष भव-समुद्र पार करने के लिए सर्वविरति को धारण करने का सकल्प करता है और उसे धारण करके भव-समुद्र को पार भी कर लेता है।
२ कोइ पुरुष सर्वविरति को धारण करने का सकल्प करके देशविरति को ही धारण करता है।
३ कोइ पुरुष देशविरति का धारण करने का सकल्प करके सर्वविरति को धारण करता ह।
४ कोइ पुरुष देशविरति का धारण करने का सकल्प करके देशविरति को ही धारण करता है (५८८)।

५८९—चत्तारि तरगा पण्णत्ता, त जहा—समुद्द तरेत्ता णाममेगे समुद्दे विसीयति, समुद्द तरेत्ता णाममेगे गोप्पए विसीयति, गोप्पय तरेत्ता णाममेगे समुद्दे विसीयति, गोप्पय तरेत्ता णाममेगे गोप्पए विसीयति।

पुन तैराक चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ कोइ तराक समुद्र को पार करके पुन समुद्र को पार करने मे अर्थात् समुद्र तिरने के समान एक महान् कार्य करके दूसरे महान् कार्य को करने मे विषाद को प्राप्त होता है।
२ कोइ तैराक समुद्र को पार करके (महान् कार्य करके) गोष्पद को पार करने मे (सामान्य कार्य करने मे) विषाद को प्राप्त होता है।
३ कोई तैराक गोष्पद को पार करके समुद्र को पार करने मे विषाद को प्राप्त होता है।
४ कोई तराक गोष्पद को पार करके पुन गोष्पद को पार करने मे विषाद को प्राप्त होता है (५८९)।

पूर्ण तुच्छ-सूत्र

५९०—चत्तारि कु भा पण्णत्ता, त जहा—पुण्णे णाममेगे पुण्णे, पुण्णे णाममेगे तुच्छे, तुच्छे णाममेगे पुण्णे, तुच्छे णाममेगे तुच्छे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—पुण्णे णाममेगे पुण्णे पुण्णे णाममेगे तुच्छे, तुच्छे णाममेगे पुण्णे, तुच्छे णाममेगे तुच्छे।

कुम्भ (घट) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ पूर्ण और पूण—कोई कुम्भ आकार से परिपूण होता है और घी आदि द्रव्य से भी परिपूण होता है।
२ पूण और तुच्छ—कोई कुम्भ आकार से तो परिपूण हाना है, किन्तु घी आदि द्रव्य से तुच्छ (रिक्त) होता है।
३ तुच्छ और पूण—कोई कुम्भ आकार से अपूण किन्तु घृतादि द्रव्यो मे परिपूण होता है।
४ तुच्छ और तुच्छ—कोई कुम्भ घी आदि मे भी तुच्छ (रिक्त) होता है और आकार मे भी तुच्छ (अपूण) होता है।

इस प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ पूण और पूण—कोई पुरुष आकार से और जाति-कुलादि से पूण हाना है और ज्ञानादि गुणो मे भी पूण होता है।
२ पूण और तुच्छ—कोई पुरुष आकार और जाति-कुलादि मे पूण होता है, किन्तु ज्ञानादि-गुणो से तुच्छ (रिक्त) होता है।
३ तुच्छ और पूण—कोई पुरुष आकार और जाति आदि मे तुच्छ होता है किन्तु ज्ञानादि गुणो मे पूण होता है।
४ तुच्छ और तुच्छ—कोई पुरुष आकार और जाति आदि मे भी तुच्छ होता है और ज्ञानादि गुणो से भी तुच्छ होता है। (५६०)

५६१—चत्तारि कुभा पण्णत्ता, त जहा—पुण्णे णाममेगे पुण्णोभासी, पुण्णे णाममेगे तुच्छोभासी, तुच्छे णाममेगे पुण्णोभासी, तुच्छे णाममेगे तुच्छोभासी।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—पुण्णे णाममेगे पुण्णोभासी, पुण्णे णाममेगे तुच्छोभासी, तुच्छे णाममेगे पुण्णोभासी, तुच्छे णाममेगे तुच्छोभासी।

पुन कुम्भ चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ पूण और पूर्णावभासी—कोई कुम्भ आकार से पूण होता है और पूण ही दिखता है।
२ पूण और तुच्छावभासी—कोई कुम्भ आकार मे पूण होना है, किन्तु अपूण सा दिखता है।
३ तुच्छ और पूणावभासी—कोई कुम्भ आकार से अपूर्ण होता है, किन्तु पूण सा दिखता है।
४ तुच्छ और तुच्छावभासी—कोई कुम्भ आकार मे अपूण होता है और अपूण ही दिखता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जसे—

१ पूण और पूर्णावभासी—कोई पुरुष सम्पत्ति-श्रुत आदि मे पूर्ण होना है और उसके यथोचित सदुपयोग करने से पूण ही दिखता है।
२ पूण और तुच्छावभासी—कोई पुरुष सम्पत्ति-श्रुत आदि मे पूर्ण होता है, किन्तु उसका यथोचित सदुपयोग न करने से अपूण सा दिखता है।

३ तुच्छ और पूर्णावभासी—कोई पुरुष सम्पत्ति श्रुत आदि से अपूर्ण होता है, किन्तु प्राप्त यत्किंचित् सम्पत्ति-श्रुतादि का उपयोग करने से पूर्ण सा दिखता है।

४ तुच्छ और तुच्छावभासी—कोई पुरुष सम्पत्ति-श्रुत आदि से अपूर्ण होता है और प्राप्त का उपयोग न करने से अपूर्ण ही दिखता है। (५९१)

५९२—चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णे णाममेगे पुण्णरूवे, पुण्णे णाममेगे तुच्छरूवे, तुच्छे णाममेगे पुण्णरूवे, तुच्छे णाममेगे तुच्छरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णे णाममेगे पुण्णरूवे, पुण्णे णाममेगे तुच्छरूवे तुच्छे णाममेगे पुण्णरूवे, तुच्छे णाममेगे तुच्छरूवे।

पुनः कुम्भ चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ पूर्ण और पूर्णरूप—कोई कुम्भ जल आदि से पूर्ण होता है और उसका रूप (आकार) भी पूर्ण होता है।

२ पूर्ण और तुच्छरूप—कोई कुम्भ जल आदि से पूर्ण होता है, किन्तु उसका रूप पूर्ण नही होता है।

३ तुच्छ और पूर्णरूप—कोई कुम्भ जल आदि से अपूर्ण होता है, किन्तु उसका रूप पूर्ण होता है।

४ तुच्छ और तुच्छरूप—कोई कुम्भ जल आदि से भी अपूर्ण होता है और उसका रूप भी अपूर्ण होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ पूर्ण और पूर्णरूप—कोई पुरुष धन श्रुत आदि से भी पूर्ण होता है और वेषभूषादि रूप से भी पूर्ण होता है।

२ पूर्ण और तुच्छरूप—कोई पुरुष धन श्रुत आदि से पूर्ण होता है, किन्तु वेषभूषादि रूप से अपूर्ण होता है।

३ तुच्छ और पूर्णरूप—कोई पुरुष धन श्रुत आदि से भी अपूर्ण होता है किन्तु वेष भूषादि रूप से पूर्ण होता है।

४ तुच्छ और तुच्छरूप—कोई पुरुष धन-श्रुतादि से भी अपूर्ण होता है और वेष भूषादि रूप से भी अपूर्ण होता है।

५९३—चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णेवि एगे पियट्ठे, पुण्णेवि एगे अवदले, तुच्छेवि एगे पियट्ठे, तुच्छेवि एगे अवदले।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णेवि एगे पियट्ठे, पुण्णेवि एगे अवदले, तुच्छेवि एगे पियट्ठे, तुच्छेवि एगे अवदले।

पुनः कुम्भ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ पूर्ण और प्रियार्थ—कोई कुम्भ जल आदि से पूर्ण होता है और सुवर्णादि-निर्मित होने के कारण प्रियार्थ (प्रीतिजनक) होता है।

२ पूण और अपदल—कोई कुम्भ जल आदि से पूण होने पर भी अपदल (पूण पक्व न होने के कारण असार) होता है।

३ तुच्छ और प्रियाथ—कोई कुम्भ जलादि से अपूण होने पर भी प्रियाथ होता है।

४ तुच्छ और अपदल—कोई कुम्भ जलादि से भी अपूण होता है और अपदल (अपूण पक्व न होने के कारण असार) होता है (५८३)।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जसे—

१ पूण और प्रियाथ—कोई पुरुष सम्पत्ति-श्रुत आदि से भी पूण होता है और प्रियाथ (परोपकारी होने से प्रिय) भी होता है।

२ पूण और अपदल—कोई पुरुष सम्पत्ति श्रुत आदि से पूण होता है, किन्तु अपदल (परोपकारादि न करने से असार) होता है।

३ तुच्छ और प्रियाथ—कोई पुरुष सम्पत्ति-श्रुत आदि से अपूण होने पर भी परोपकारादि करने से प्रियाथ होता है।

४ तुच्छ और अपदल—कोई पुरुष सम्पत्ति-श्रुत आदि से भी अपूण होता है और परोपकारादि न करने से अपदल (असार) भी होता है (५६३)।

५६४—चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णेवि एगे विस्सदति, पुण्णेवि एगे णो विस्सदति, तुच्छेवि एगे विस्सदति, तुच्छेवि एगे णो विस्सदति।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णेवि एगे विस्सदति, (पुण्णेवि एगे णो विस्सदति, तुच्छेवि एगे विस्सदति, तुच्छेवि एगे णो विस्सदति।)

पुन कुम्भ चार प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ पूण और विष्यन्दक—कोई कुम्भ जल से पूण होता है और झरता भी है।

२ पूर्ण और अविष्यन्दक—कोई कुम्भ जल से पूण होता है और झरता भी नही है।

३ तुच्छ, विष्यन्दक—कोई कुम्भ अपूण भी होता है और झरता भी है।

४ तुच्छ और अविष्यन्दक—कोई कुम्भ अपूण होता है और झरता भी नही है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ पूण और विष्यन्दक—कोई पुरुष सम्पत्ति-श्रुतादि से पूण होता है और उपकारादि करने से विष्यन्दक भी होता है।

२ पूण और अविष्यन्दक—कोई पुरुष सम्पत्ति-श्रुतादि से पूण होने पर भी उसका उपकारादि मे उपयोग न करने से अविष्यन्दक होता है।

३ तुच्छ, विष्यन्दक—कोई पुरुष सम्पत्ति श्रुतादि से अपूण होने पर भी प्राप्त अथ को उपकारादि मे लगाने से विष्यन्दक भी होता है।

४ तुच्छ, अविष्यन्दक—कोई पुरुष सम्पत्ति श्रुतादि से अपूण होता है और अविष्यन्दक भी होता है (५६४)।

चारित्र सूत्र

५६५—चत्तारि कुभा पण्णत्ता, त जहा—भिण्णे, जज्जरिए, परिस्साई, अपरिस्साई ।
एवामेव चउव्विहे चरित्ते पण्णत्ते, त जहा—भिण्णे, (जज्जरिए, परिस्साई), अपरिस्साई ।

कुम्भ चार प्रकार के कहे गये है । जसे—

१ भिन्न (फूटा) कुम्भ, २ जजरित (पुराना) कुम्भ, ३ परिस्रावो (झरने वाला) कुम्भ, ४ अपरिस्रावी (नही झरने वाला) कुम्भ ।

इसी प्रकार चारित्र भी चार प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ भिन्न चारित्र—मूल प्रायश्चित्त के योग्य ।
२ जजरित चारित्र—छेद प्रायश्चित्त के योग्य ।
३ परिस्रावी चारित्र—सूक्ष्म अतिचार वाला ।
४ अपरिस्रावी चारित्र—निरतिचार-सवथा निर्दाप चारित्र (५६५) ।

मधु विष सूत्र

५६६—चत्तारि कुभा पण्णत्ता, त जहा—महुकु भे णाममगे महुपिहाणे, महुकु भे णाममगे विसपिहाणे, विसकु भे णाममेंग महुपिहाणे, विसकु भे णाममेगे विसपिहाणे ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—महुकु भे णाममेगे महुपिहाणे, महुकु भे णाममेगे विसपिहाणे, विसकु भे णाममेगे महुपिहाणे, विसकु भे णाममेगे विसपिहाणे ।

सग्रहणी-गाथाए

हिययमपावमकलुस, जीहाऽवि य महुरभासिणी णिच्च ।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जति, से मधुकु भे मधुपिहाणे ॥१॥
हिययमपावमकलुस, जीहाऽवि य कडुयभासिणी णिच्च ।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जति, से मधुकु भे विसपिहाणे ॥२॥
ज हियय कलुसमय, जीहाऽवि य मधुरभासिणी णिच्च ।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जति, से विसकु भे महुपिहाणे ॥३॥
ज हियय कलुसमय, जीहाऽवि य कडुयभासिणी णिच्च ।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जति, से विसकु भे विसपिहाणे ॥४॥

कुम्भ चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१ मधु कुम्भ, मधुपिधान—कोई कुम्भ मधु से भरा होता है और उसका पिधान (ढक्कन) भी मधु का ही होता है ।
२ मधु कुम्भ, विषपिधान—कोई कुम्भ मधु से भरा होता है, किन्तु उसका ढक्कन विष का होता है ।
३ विष कुम्भ-मधुपिधान—कोई कुम्भ विष से भरा होता है किन्तु उसका ढक्कन मधु का होता है ।

४ विषकुम्भ-विषपिधान—कोई कुम्भ विष से भरा होता है और उसका ढक्कन भी विष का ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ मधुकुम्भ, मधुपिधान—कोई पुरुष हृदय से मधु जैसा मिष्ट होता है और उसकी जिह्वा भी मिष्टभाषिणी होती है।
२ मधुकुम्भ, विषपिधान—कोई पुरुष हृदय से तो मधु जैसा मिष्ट होता है, किन्तु उसकी जिह्वा विष जैसी कटु-भाषिणी होती है।
३ विषकुम्भ-मधु-पिधान—किसी पुरुष के हृदय मे तो विष भरा होता है, किन्तु उसकी जिह्वा मिष्टभाषिणी होती है।
४ विष कुम्भ, विषपिधान—किसी पुरुष के हृदय मे विष भरा होता है और उसकी जिह्वा भी विष जैसी कटु-भाषिणी होती है।

१ जिस पुरुष का हृदय पाप से रहित होता है और कलुषता से रहित होता है, तथा जिस की जिह्वा भी सदा मधुरभाषिणी होती है, वह पुरुष मधु से भरे और मधु के ढक्कन वाले कुम्भ के समान कहा गया है।
२ जिस पुरुष का हृदय पाप-रहित और कलुषता-रहित होता है, किन्तु जिस की जिह्वा सदा कटु-भाषिणी होती है, वह पुरुष मधुभृत, किन्तु विषपिधान वाले कुम्भ के समान कहा गया है।
३ जिस पुरुष का हृदय कलुषता से भरा है, किन्तु जिसकी जिह्वा सदा मधुरभाषिणी है, वह पुरुष विष-भृत और मधु-पिधान वाले कुम्भ के समान है।
४ जिस पुरुष का हृदय कलुषता से भरा है और जिसकी जिह्वा भी सदा कटुभाषिणी है, वह पुरुष विष-भृत और विष पिधान वाले कुम्भ के समान है (५९६)।

उपसर्ग-सूत्र

५९७—चउव्विहा उवसग्गा पण्णत्ता, तं जहा—दिव्वा, माणुसा, तिरिक्खजोणिया, आयसंचेयणिज्जा।

उपसर्ग चार प्रकार का होता है। जैसे—

१ दिव्य-उपसर्ग—देव के द्वारा किया जाने वाला उपसर्ग।
२ मानुष-उपसर्ग—मनुष्यों के द्वारा किया जाने वाला उपसर्ग।
३ तिर्यग्योनिक उपसर्ग—तिर्यंच योनि के जीवों के द्वारा किया जाने वाला उपसर्ग।
४ आत्मसंचेतनीय उपसर्ग—स्वयं अपने द्वारा किया गया उपसर्ग (५९७)।

विवेचन—संयम से गिराने वाली और चित्त को चलायमान करने वाली बाधा को उपसर्ग कहते हैं। ऐसी बाधाएं देव, मनुष्य और तिर्यंचकृत तो होती ही हैं, कभी-कभी आकस्मिक भी होती हैं, उनको यहां आत्म-संचेतनीय कहा गया है। दिगम्बर ग्रन्थ मूलाचार में इसके स्थान पर 'अचेतनकृत

उपसर्ग' का उल्लेख है, जो बिजली गिरने—उल्कापात, भूकम्प, भित्ति पतन आदि जनित पीडाए होती हैं, उनको अचेतनकृत उपमग कहा गया है।[1]

५६८—दिव्वा उवसग्गा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—हासा, पाओसा, वीमसा, पुढोवेमाता।

दिव्य उपमग चार प्रकार के कहे गये हैं। जसे—

१ हास्य-जनित—कुतूहल-वश हँसी से किया गया उपसग।
२ प्रद्वेष-जनित—पूव भव के वैर से किया गया उपसग।
३ विमश-जनित—परीक्षा लेने के लिए किया गया उपसर्ग।
४ पृथग विमात्र—हास्य, प्रद्वेषादि अनेक मिले-जुले कारणो से किया गया उपसग (५६८)।

५६६—माणुसा उवसग्गा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—हासा, पाओसा, वीमसा कुसील पडिसेवणया।

मानुप उपसग चार प्रकार का कहा गया है। जसे—

१ हास्य-जनित उपसग, २ प्रद्वेष-जनित उपसग,
३ विमश-जनित उपसग, ४ कुशील प्रतिसेवन के लिए किया गया उपमग (५६६)।

६००—तिरिक्खजोणिया उवसग्गा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—भया, पदोसा, आहारहेउ अवच्चलेण सारक्खणया।

तिर्यंचा के द्वारा किया जाने उपसग चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ भय जनित उपसग, २ प्रद्वेष-जनित उपसग,
३ आहार के लिए किया गया उपमग।
४ अपने बच्चो के एव आवास स्थान के सरक्षणाथ किया गया उपसग (६००)।

६०१—आयसचेयणिज्जा उवसग्गा चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—घट्टणता, पवडणता, थभणता, लेसणता।

आत्मसचेतनीय उपसग चार प्रकार का कहा गया ह। जसे—

१ घट्टनता-जनित—आख में रज-कण चले जाने पर उसे मलने से होने वाला कष्ट।
२ प्रपतन-जनित—मार्ग मे चलते हुए असावधानी से गिर पडने का कष्ट।
३ स्तम्भन जनित—हस्त-पाद आदि के शून्य हो जाने से उत्पन्न हुआ कष्ट।
४ श्लेषणता-जनित—सधिस्थला के जुड जाने से होने वाला कष्ट (६०१)।

---

१ ज केई उवसग्गा देव माणुस-तिरिक्खऽचेदणिया। (गा० ७ १५८ पूर्वाध)
टीका—ये केचनोपसर्गा देव मनुष्य तियक्-कृता, अचेतना विद्युदश नादयस्तान सर्वान् अध्यासे।

कर्म-सूत्र

६०२—चउव्विहे कम्मे पण्णत्ते, त जहा—सुभे णाममेगे सुभे, सुभे णाममेगे असुभे, असुभे णाममेग सुभे, असुभे णाममेगे असुभे ।

कर्म चार प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ शुभ और शुभ—कोई पुण्यकर्म शुभप्रकृति वाला होता है और शुभानुबंधी भी होता है ।
२ शुभ और अशुभ—कोई पुण्यकर्म शुभप्रकृति वाला किन्तु अशुभानुबंधी होता है ।
३ अशुभ और शुभ—कोई पापकर्म अशुभ प्रकृति वाला, किन्तु शुभानुबन्धी होता है ।
४ अशुभ और अशुभ—कोई पापकर्म अशुभ प्रकृतिवाला और अशुभानुबन्धी होता है (६०२) ।

विवेचन—कर्मों के मूल भेद आठ हैं, उनमें चार घातिकर्म तो अशुभ या पापरूप ही कहे गये हैं । शेष चार अघातिकर्मों के दो विभाग हैं । उनमें सातावेदनीय, शुभ आयु, उच्च गोत्र और पंचेन्द्रिय जाति, उत्तम संस्थान, स्थिर, सुभग, यश कीर्त्ति आदि नाम कर्म की ६८ प्रकृतियां पुण्य रूप और शेष पापरूप कही गई है । प्रकृत में शुभ और पुण्य को, तथा अशुभ और पाप को एकार्थ जानना चाहिए ।

सूत्र में जो चार भंग कहे गये हैं, उनका खुलासा इस प्रकार है—

१ कोई पुण्यकर्म वर्तमान में भी उत्तम फल देता है और शुभानुबन्धी होने से आगे भी सुख देने वाला होता है । जैसे भरत चक्रवर्ती आदि का पुण्यकर्म ।
२ कोई पुण्यकर्म वर्तमान में तो उत्तम फल देता है, किन्तु पापानुबंधी होने से आगे दुःख देने वाला होता है । जैसे-ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती आदि का पुण्यकर्म ।
३ कोई पापकर्म वर्तमान में तो दुःख देता है किन्तु आगे सुखानुबन्धी होता है । जैसे दुःखित अकामनिर्जरा करनेवाले जीवों का नवीन उपार्जित पुण्य कर्म ।
४ कोई पापकर्म वर्तमान में भी दुःख देता है और पापानुबन्धी होने से आगे भी दुःख देता है । जैसे—मछली मारने वाले धीवरादि का पापकर्म ।

६०३—चउव्विहे कम्मे पण्णत्ते, त जहा—सुभे णाममेगे सुभविवागे, सुभे णाममेगे असुभविवागे, असुभे णाममेगे सुभविवागे, असुभे णाममेगे असुभविवागे ।

पुनः कर्म चार प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ शुभ और शुभविपाक—कोई कर्म शुभ होता है और उसका विपाक भी शुभ होता है ।
२ शुभ और अशुभविपाक—कोई कर्म शुभ होता है, किन्तु उसका विपाक अशुभ होता है ।
३ अशुभ और शुभविपाक—कोई कर्म अशुभ होता है, किन्तु उसका विपाक शुभ होता है ।
४ अशुभ और अशुभविपाक—कोई कर्म अशुभ होता है और उसका विपाक भी अशुभ ही होता है (६०३) ।

६०४—चउव्विहे कम्मे पण्णत्ते, त जहा—पगडीकम्मे, ठितीकम्मे, अणुभावकम्मे, पदेसकम्मे ।

विवेचन—उक्त चारो भगो का खुलासा इस प्रकार है—

१ कोई जीव सातावेदनीय आदि पुण्यकर्म का बाधता है और उसका विपाक रूप शुभफल—सुख को भोगता है।

२ कोई जीव पहले सातावेदनीय आदि शुभकर्म को बाधता है और पीछे तीव्र कषाय से प्रेरित होकर असातावेदनीय आदि अशुभकर्म का तीव्र बन्ध करता है, तो उसका पूर्व-बद्ध साता-वेदनीयादि शुभकर्म भी असातावेदनीयादि पापकर्म मे सक्रान्त (परिणत) हो जाता है, अत वह अशुभ विपाक को देता है।

३ कोई जीव पहले असातावेदनीय आदि अशुभकर्म को बाधता है, किन्तु पीछे शुभ परिणामो की प्रबलता से सातावेदनीय आदि उत्तम अनुभाग वाले कर्म को बाधता है। ऐसे जीव का पूर्व बद्ध अशुभ कर्म भी शुभ कर्म के रूप मे सक्रान्त या परिणत हो जाता है, अतएव वह शुभ विपाक को देता है।

४ कोई जीव पहले पापकर्म को बाधता है, पीछे उसके विपाक रूप अशुभफल को ही भोगता है।

उक्त चार प्रकारो मे प्रथम और चतुर्थ प्रकार तो बन्धानुसारी विपाक वाले हैं। तथा द्वितीय और तृतीय प्रकार सक्रमण-जनित परिणाम वाले है। कर्म-सिद्धान्त के अनुसार मूल कर्म, चारो आयु कर्म, दर्शन मोह और चारित्रमोह का अन्य प्रकृति रूप सक्रमण नही होता। शेष सभी पुण्य-पाप रूप कर्मो का अपनी मूल प्रकृति के अन्तर्गत परस्पर मे परिवर्तन रूप सक्रमण हो जाता है।

पुन कर्म चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ प्रकृतिकर्म—ज्ञान दर्शन, चारित्र आदि गुणो को रोकने का स्वभाव।
२ स्थितिकर्म—बधे हुए कर्मो की काल मर्यादा।
३ अनुभावकर्म—बधे हुए कर्मो की फलदायक शक्ति।
४ प्रदेशकर्म—कर्म परमाणुओ का सचय (६०४)।

सघ-सूत्र

६०५—चउव्विहे सघे पण्णत्ते, त जहा—समणा, समणीओ, सावगा, सावियाओ।

सघ चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ श्रमण सघ, २ श्रमणी सघ, ३ श्रावक सघ, ४ श्राविका सघ (६०५)।

बुद्धि-सूत्र

६०६—चउव्विहा बुद्धी पण्णत्ता, त जहा—उप्पत्तिया, वेणइया, कम्मिया, परिणामिया।

मति चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ औत्पत्तिकी मति—पूर्व अदृष्ट, अश्रुत और अज्ञात तत्त्व को तत्काल जानने वाली प्रत्युत्पन्न मति या अतिशायिनी प्रतिभा।
२ वैनयिकी मति—गुरुजनो की विनय और सेवा शुश्रूषा से उत्पन्न बुद्धि।

३ कार्मिकी मति—कार्य करते-करते बढने वाली बुद्धि—कुशलता ।
४ पारिणामिकी मति—अवस्था—उम्र बढने के साथ बढने वाली बुद्धि (६०६) ।

मति सूत्र

६०७—चउव्विहा मई पण्णत्ता, त जहा—उग्गहमती, ईहामती, अवायमती, धारणामती ।

अहवा—चउव्विहा मती पण्णत्ता, त जहा—अरजरोदगसमाणा, वियरोदगसमाणा, सरोदग-समाणा, सागरोदगसमाणा ।

पुन मति चार प्रकार की कही गई है । जैसे—
१ अवग्रहमति—वस्तु के सामान्य धर्म-स्वरूप को जानना ।
२ ईहामति—अवग्रह से गृहीत वस्तु के विशेष धर्म को जानने की इच्छा करना ।
३ अवायमति—उक्त वस्तु के विशेष स्वरूप का निश्चय होना ।
४ धारणामति—कालान्तर मे भी उस वस्तु का विस्मरण न होना ।

अथवा—मति चार प्रकार की कही गई है । जैसे—
१ अरजरोदकसमाना—अरजर (घट) के पानी के समान अल्प बुद्धि ।
२ विदरोदकसमाना—विदर (गड्ढा, खसी) के पानी के समान अधिक बुद्धि ।
३ सर-उदकसमाना—सरोवर के पानी के समान बहुत अधिक बुद्धि ।
४ सागरोदकसमाना—समुद्र के पानी के समान असीम विस्तीर्ण बुद्धि (६०७)

जीव सूत्र

६०८—चउव्विहा ससारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, त जहा—णेरइया तिरिक्खजोणिया, मणुस्सा, देवा ।

ससारी जीव चार प्रकार के कहे गये है । जसे—
१ नारक २ तिर्यग्योनिक ३ मनुष्य ४ देव (६०८)

६०९—चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी, अजोगी ।

अहवा—चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—इत्थिवेयगा, पुरिसवेयगा, णपु सकवेयगा, अवेयगा ।

अहवा—चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—चक्खुदसणी, अचक्खुदसणी, ओहिदसणी, केवलदसणी ।

अहवा—चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—सजया, असजया, सजयासजया, णोसजया णोअसजया ।

सर्वजीव चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—
१ मनोयोगी २ वचनयोगी ३ काययोगी ४ अयोगी जीव

अथवा सवजीव चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ स्त्रीवेदी, २ पुरुषवेदी, ३ नपु सकवेदी, ४ अवेदीजीव।

अथवा सर्वजीव चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ चक्षुदर्शनी, २ अचक्षुदर्शनी, ३ अवधिदर्शनी, ४ केवलदर्शनी जीव।

अथवा सर्वजीव चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ सयत, २ असयत, ३ सयतासयत, ४ नोसयत, नोअसयत जीव (६०९)।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे प्रतिपादित चौथे भेद का अथ इस प्रकार है—

१ अयोगी जीव—चौदहवें गुणस्थानवर्ती और सिद्ध जीव।
२ अवेदी जीव—नौवें गुणस्थान के अवेदभाग से ऊपर के सभी गुणस्थान वाले और सिद्ध जीव।
३ नोसयत, नोअसयत जीव—सिद्ध जीव।

मित्र-अमित्र सूत्र

६१०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता त जहा—मित्ते णाममेगे मित्ते, मित्ते णाममेगे अमित्ते, अमित्ते णाममेगे मित्ते, अमित्ते णाममेगे अमित्ते।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ मित्र और मित्र—कोई पुरुष व्यवहार मे भी मित्र होता है और हृदय से भी मित्र होता है।
२ मित्र और अमित्र—कोई पुरुष व्यवहार मे मित्र होता है, कि तु हृदय से मित्र नही होता।
३ अमित्र और मित्र—कोई पुरुष व्यवहार से मित्र नही होता, कि तु हृदय से मित्र होता है।
४ अमित्र और अमित्र—कोई पुरुष न व्यवहार से मित्र होता है और न हृदय से मित्र होता है।

विवेचन—इस सूत्र द्वारा प्रतिपादित चारो प्रकार के मित्रो की व्याख्या अनेक प्रकार से की जा सकती है। जसे—

१ कोई पुरुष इस लोक का उपकारी होने से मित्र है और परलोक का भी उपकारी होने से मित्र है। जैसे—सद्गुरु आदि।
२ कोई इस लोक का उपकारी होने से मित्र है, कि तु परलोक के साधक सयमादि का पालन न करने देने से अमित्र है। जसे पत्नी आदि।
३ कोई प्रतिकूल व्यवहार करने से अमित्र है, कि तु वैराग्य-उत्पादक होने से मित्र है। जैसे कलहकारिणी स्त्री आदि।
४ कोई प्रतिकूल व्यवहार करने से अमित्र है और सक्लेश पदा करने से दुर्गति का भी कारण होता है अत फिर भी अमित्र है।

पूर्वकाल और उत्तरकाल की अपेक्षा से भी चारो भग घटित हो सकते हैं। जैसे—

१ कोई पूर्वकाल मे भी मित्र था और आगे भी मित्र रहेगा।
२ कोई पूर्वकाल मे तो मित्र था, वर्तमान मे भी मित्र है, किन्तु आगे अमित्र हो जायगा।
३ कोई वर्तमान मे अमित्र है, किन्तु आगे मित्र हो जायगा।
४ कोई वर्तमान मे भी अमित्र है और आगे भी अमित्र रहेगा (६१०)।

६११—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—मित्ते णाममेगे मित्तरूवे, मित्ते णाममेगे अमित्तरूवे, अमित्ते णाममेगे मित्तरूवे, अमित्ते णाममेगे अमित्तरूवे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ मित्र और मित्ररूप—कोई पुरुष मित्र होता है और उसका व्यवहार भी मित्र के समान होता है।
२ मित्र और अमित्ररूप—कोई पुरुष मित्र होता है, किन्तु उसका व्यवहार अमित्र के समान होता है।
३, अमित्र और मित्ररूप—कोई पुरुष अमित्र होता है, किन्तु उसका व्यवहार मित्र के समान होता है।
४ अमित्र और अमित्ररूप—कोई पुरुष अमित्र होता है और उसका व्यवहार भी अमित्र के समान होता है (६११)।

मुक्त अमुक्त-सूत्र

६१२—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—मुत्ते णाममेगे मुत्ते, मुत्ते णाममेगे अमुत्ते, अमुत्ते णाममेगे मुत्ते, अमुत्ते णाममेगे अमुत्ते।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ मुक्त और मुक्त—कोई साधु पुरुष परिग्रह का त्यागी होने से द्रव्य से भी मुक्त होता है और परिग्रहादि मे आसक्ति का अभाव होने से भाव से भी मुक्त होता है।
२ मुक्त और अमुक्त—कोई दरिद्र पुरुष परिग्रह से रहित होने के कारण द्रव्य से मुक्त है, किन्तु उसकी लालसा बनी रहने से अमुक्त है।
३, अमुक्त और मुक्त—कोई पुरुष द्रव्य से अमुक्त होता है, किन्तु भाव से भरतचक्री के समान मुक्त होता है।
४ अमुक्त और अमुक्त—कोई पुरुष न द्रव्य से ही मुक्त होता है और न भाव से ही मुक्त होता है, जसे—लोभी श्रीमन्त (६१२)।

६१३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—मुत्ते णाममेगे मुत्तरूवे, मुत्ते णाममेगे अमुत्तरूवे, अमुत्ते णाममेगे मुत्तरूवे, अमुत्ते णाममेगे अमुत्तरूवे।

पुन पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं—

१ मुक्त और मुक्त रूप—कोई पुरुष परिग्रहादि से मुक्त होता है और उसका रूप—बाह्य स्वरूप भी मुक्तवत् होता है। जसे—वह सुसाधु जिसकी मुखमुद्रा से वैराग्य झलकता हो।

२ मुक्त और अमुक्तरूप—कोई पुरुष परिग्रहादि से मुक्त होता है किन्तु उसका रूप अमुक्त के समान होता है, जसे गृहस्थ दशा मे महावीर स्वामी ।
३ अमुक्त और मुक्तरूप—कोई पुरुष परिग्रहादि मे अमुक्त होकर के भी मुक्त के समान बाह्य रूपवाला होता है, जसे धूर्त साधु ।
४ अमुक्त और अमुक्तरूप—कोई पुरुष अमुक्त होता है और अमुक्त के समान ही रूपवाला होता है, जैसे गृहस्थ (६१३) ।

गति-आगति सूत्र

६१४—पंचिदियतिरिक्खजोणिया चउगइया चउआगइया पण्णत्ता, त जहा—पंचिदियतिरिक्खजोणिए पंचिदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जमाणे णेरइएहितो वा, तिरिक्खजोणिएहितो वा, मणुस्सेहितो वा, देवेहितो वा उववज्जेज्जा ।

से चेव ण से पंचिदियतिरिक्खजोणिए पंचिदियतिरिक्खजोणियत्त विप्पजहमाणे णेरइयत्ताए वा, जाव (तिरिक्खजोणियत्ताए वा, मणुस्सत्ताए वा), देवत्ताए वा गच्छेज्जा ।

पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीव (मर कर) चारो गतियो मे जाने वाले और चारो गतियो से आने (जन्म लेने) वाले कहे गये है । जसे—

१ पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीव पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिको मे उत्पन्न होता हुआ नारकियो से या तिर्यग्योनिको से, या मनुष्यो से या देवो से आकर उत्पन्न होता है ।
२ पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीव पचेन्द्रिय तिर्यग्योनि को छोडता हुआ (मर कर) नारकियो मे, तिर्यग्योनिको मे, मनुष्यो मे या देवो मे जाता (उत्पन्न होता है) (६१४) ।

६१५—मणुस्सा चउगइआ चउआगइआ (पण्णत्ता, त जहा—मणुस्से मणुस्सेसु उववज्जमाणे णेरइएहितो वा, तिरिक्खजोणिएहितो वा, मणुस्सेहितो वा, देवेहितो वा उववज्जेज्जा ।

से चेव ण से मणुस्से मणुस्सत्त विप्पजहमाणे णेरइयत्ताए वा, तिरिक्खजोणियत्ताए वा, मणुस्सत्ताए वा, देवत्ताए वा गच्छेज्जा) ।

मनुष्य चारो गतियो मे जाने वाले और चारो गतियो मे आने वाले कहे गये हैं । जसे—

१. मनुष्य मनुष्यो मे उत्पन्न होता हुआ नारकियो से, या तिर्यग्योनिको से, या मनुष्यो से, या देवो से आकर उत्पन्न होता है ।
२ मनुष्य मनुष्यपर्याय को छोडता हुआ नारकियो मे, या तिर्यग्योनिको मे, या मनुष्यो मे, या देवो मे उत्पन्न होता है (६१५) ।

सयम-असयम सूत्र

६१६—बेइदिया ण जीवा असमारभमाणस्स चउव्विहे सजमे कज्जति, त जहा—जिब्भामयातो सोक्खातो अववरोवित्ता भवति, जिब्भामएण दुक्खेण असजोगेत्ता भवति, फासामयातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति, फासामएण दुक्खेण असजोगेत्ता भवति ।

द्वीन्द्रिय जीवो को नही मारने वाले पुरुष के चार प्रकार का सयम होता है, जसे—

१ द्वीन्द्रिय जीवो के जिह्वामय सुख का घात नही करता, यह पहला सयम है।
२ द्वीन्द्रिय जीवो के जिह्वामय दु ख का सयोग नही करता, यह दूसरा सयम है।
३ द्वीन्द्रिय जीवो के स्पर्शमय सुख का घात नही करता, यह तीसरा सयम है।
४ द्वीन्द्रिय जीवो के स्पर्शमय दु ख का सयोग नही करता, यह चौथा सयम है (६१६)।

६१७—बेइंदिया ण जीवा समारभमाणस्स चउविधे असजमे कज्जति, त जहा—जिब्भामयातो सोक्खातो ववरोवित्ता भवति, जिब्भामएण दुक्खेण सजोगित्ता भवति, फासामयातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति, (फासामएण दुक्खेण सजोगित्ता भवति)।

द्वीन्द्रिय जीवो का घात करने वाले पुरुष के चार प्रकार का असयम होता है। जसे—

१ द्वीन्द्रिय जीवो के जिह्वामय सुख का घात करता है, यह पहला असयम है।
२ द्वीन्द्रिय जीवो के जिह्वामय दु ख का सयोग करता है, यह दूसरा असयम है।
३ द्वीन्द्रिय जीवो के स्पर्शमय सुख का घात करता है, यह तीसरा असयम है।
४ द्वीन्द्रिय जीवो के स्पर्शमय दु ख का सयोग करता है, यह चौथा असयम है (६१७)।

क्रिया सूत्र

६१८—सम्मद्दिट्ठियाण णेरइयाण चत्तारि किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—आरंभिया, पारिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया।

सम्यग्दृष्टि नारकियो मे चार क्रियाए कही गई है। जैसे—

१ आरम्भिकी क्रिया, २ पारिग्रहिकी क्रिया,
३ मायाप्रत्ययिकी क्रिया, ४ अप्रत्याख्यान क्रिया (६१८)।

६१९—सम्मद्दिट्ठियाणमसुरकुमाराण चत्तारि किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—(आरंभिया, पारिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया)।

सम्यग्दृष्टि असुरकुमारो मे चार क्रियाए कही गई हैं। जसे—

१ आरम्भिकी क्रिया, २ पारिग्रहिकी क्रिया,
३ मायाप्रत्ययिकी क्रिया, ४ अप्रत्याख्यान क्रिया (६१९)।

६२०—एव—विगलिंदियवज्ज जाव वेमाणियाण।

इसी प्रकार विकलेन्द्रियो को छोडकर सभी सम्यग्दृष्टिसम्पन्न दण्डको मे चार चार क्रियाए जाननी चाहिए। (विकलेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि होने से उनमे पाचवी मिथ्या-दर्शनक्रिया नियम से होती है, अत उनका वर्जन किया गया है) (६२०)।

गुण-सूत्र

६२१—चउहि ठाणेहि सते गुणे णासेज्जा, त जहा—कोहेण, पडिणिवेसेण, अकयण्णुयाए, मिच्छत्ताभिणिवेसेण।

चार कारणों से पुरुष दूसरों के विद्यमान गुणों का भी विनाश (अपलाप) करता है। जैसे—

१ क्रोध से, २ प्रतिनिवेश से—दूसरों की पूजा-प्रतिष्ठा न देख सकने से।
३ अकृतज्ञता से (कृतघ्न होने से) ४ मिथ्याभिनिवेश (दुराग्रह) से (६२१)।

६२२—चउहिं ठाणेहिं असंते गुणे दीवेज्जा, तं जहा—अब्भासवत्तियं, परच्छंदाणुवत्तियं, कज्जहेउं, कतपडिकतेति वा।

चार कारणों से पुरुष दूसरों के अविद्यमान गुणों का भी दीपन (प्रकाशन) करता है। जैसे—

१ अभ्यासवृत्ति से—गुण-ग्रहण का स्वभाव होने से।
२ परच्छन्दानुवृत्ति से—दूसरों के अभिप्राय का अनुकरण करने से।
३ कार्य हेतु से—अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए दूसरों को अनुकूल बनाने के लिए।
४ कृतज्ञता का भाव प्रदर्शित करने से (६२२)।

शरीर सूत्र

६२३—णेरइयाणं चउहिं ठाणेहिं सरीरुप्पत्ती सिया, तं जहा—कोहेणं, माणेणं, मायाए, लोभेणं।

चार कारणों से नारक जीवों के शरीर की उत्पत्ति होती है। जसे—

१ क्रोध से, २ मान से, ३ माया से, ४ लोभ से (६२३)।

६२४—एवं जाव वेमाणियाणं।

इसी प्रकार वैमानिकपर्यन्त सभी दण्डकों के जीवों के शरीरों की उत्पत्ति चार-चार कारणों से होती है (६२४)।

६२५—णेरइयाणं चउट्ठाणणिव्वत्तिते सरीरे पण्णत्ते, तं जहा—कोहणिव्वत्तिए, जाव (माणणिव्वत्तिए, मायाणिव्वत्तिए), लोभणिव्वत्तिए।

नारक जीवों के शरीर चार कारणों से निर्वृत्त (निष्पन्न) होते हैं। जैसे—

१ क्रोध-जनित कर्म से, २ मान-जनित कर्म से,
३ माया-जनित कर्म से, ४ लोभ-जनित कर्म से (६२५)।

६२६—एवं जाव वेमाणियाणं।

इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों के शरीरों की निर्वृति या निष्पत्ति चार कारणों से होती है (६२६)।

विवेचन—क्रोधादि कषाय कर्म-बन्ध के कारण हैं और कर्म शरीर की उत्पत्ति का कारण है, इस प्रकार कारण के कारण में कारण का उपचार कर क्रोधादि को शरीर की उत्पत्ति का कारण कहा

गया है। पूर्व के दो सूत्रों में उत्पत्ति का अर्थ शरीर का प्रारम्भ करने से है। तथा तीसरे व चौथे सूत्र में कहे गये निर्वृत्ति पद का अभिप्राय शरीर की निष्पत्ति या पूर्णता से है।

धर्मद्वार सूत्र

६२७—चत्तारि धम्मदारा पण्णत्ता, तं जहा—खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे।

धर्म के चार द्वार कहे गये हैं। जैसे—

१ क्षान्ति (क्षमाभाव)
२ मुक्ति (निर्लोभिता)
३ आर्जव (सरलता)
४ मार्दव (मृदुता) (६२७)।

आयुर्बन्ध-सूत्र

६२८—चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयाउयत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहा—महारंभताए, महापरिग्गहयाए, पंचिंदियवहेणं, कुणिमाहारेणं।

चार कारणों से जीव नारकायुष्क योग्य कर्म उपार्जन करते हैं। जैसे—

१ महा आरम्भ से,
२ महा परिग्रह से,
३ पंचेन्द्रिय जीवों का वध करने से,
४ कुणप आहार से (मांसभक्षण करने से) (६२८)।

६२९—चउहिं ठाणेहिं जीवा तिरिक्खजोणिय [आउय ?]त्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—माइल्लताए, णियडिल्लताए, अलियवयणेणं, कूडतुलकूडमाणेणं।

चार कारणों से जीव तिर्यगायुष्क कर्म का उपार्जन करते हैं। जैसे—

१ मायाचार से,
२ निकृतिमत्ता से अर्थात् दूसरों को ठगने से),
३ असत्य वचन से,
४ कूटतुला—कूट मान से (घट-बढ़ तोलने नापने से) (६२९)।

६३०—चउहिं ठाणेहिं जीवा मणुस्साउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—पगतिभद्दताए, पगतिविणीययाए, साणुक्कोसयाए, अमच्छरिताए।

चार कारणों से जीव मनुष्यायुष्क कर्म का उपार्जन करते हैं। जैसे—

१ प्रकृति भद्रता से, २ प्रकृति विनीतता से, ३ सानुक्रोशता से (दयालुता और सहृदयता से) ४ अमत्सरित्व से (मत्सर-भाव न रखने से) (६३०)।

६३१—चउहिं ठाणेहिं जीवा देवाउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—सरागसंजमेणं, संजमासंजमेणं, बालतवोकम्मेणं, अकामणिज्जराए।

चार कारणों से जीव देवायुष्क कर्म का उपार्जन करते हैं। जैसे—

१ सरागसंयम से,
२ संयमासंयम से,
३ बाल तप करने से,
४ अकामनिर्जरा से (६३१)।

विवेचन--हिंसादि पाचो पापो के मवथा त्याग करने को सयम कहते हैं। उसके दो भेद हैं--सरागसयम और वीतरागमयम। जहा तक सूक्ष्म राग भी रहता है--ऐसे दशवें गुणस्थान तक का सयम मरागसयम कहलाता है और उसके उपरिम गुण स्थानो का मयम वीतरागसयम कहा जाता है। यत वीतरागसयम से देवायुष्क कम का भी बध या उपाजन नही होता है, अत यहा पर मरागसयम को देवायु के बध का कारण कहा गया है। यद्यपि मरागसयम छठे गुणस्थान से लेकर दशवे गुणस्थान तक होता है, किन्तु सातवें गुण स्थान से ऊपर के सयमी देवायु का बध नही करते है, क्योकि वहा आयु का बध ही नही होता। अत छठे सातव गुणस्थान का सरागसयम ही देवायु के बध का कारण होता है।

श्रावक के अणुव्रत गुणव्रत और शिक्षाव्रत रूप एकदशसयम को सयमासयम कहते हैं। यह पचम गुणस्थान मे होता है। त्रसजीवो की हिंसा के त्याग की अपेक्षा पचम गुणस्थानवर्त्ती के सयम है और स्थावरजीवों की हिंसा का त्याग न होने से असयम है, अत उसके आंशिक या एक-दशसयम को सयमासयम कहा जाता है।

मिथ्यात्वी जीवो के तप को बालतप कहते है। पराधीन होने से भूख-प्यास के कष्ट सहन करना, पर वश ब्रह्मचय पालना, इच्छा के विना कम-निजरा के कारणभूत कार्यों का करना अकाम-निजरा कहलाती है। इन चार कारणो मे स आदि के दो कारण अर्थात सराग-सयम और सयमासयम वैमानिक देवायु के कारण हैं और अन्तिम दो कारण भवनत्रिक--(भवनपति, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क) देवो मे उत्पत्ति के कारण जानना चाहिए।

यहाँ इतना और विशेष ज्ञातव्य है कि यदि जीव के आयुबन्ध के त्रिभाग का अवसर है, तो उक्त कार्यो को करने से उस-उस आयुष्क-कम का बन्ध होगा। यदि त्रिभाग का अवसर नही है तो उक्त कार्यो के द्वारा उस-उस गति नामकम का बन्ध होगा।

वाद्य नृत्यादि सूत्र

६३२--चउव्विहे वज्जे पण्णत्ते त जहा--तते, वितते, घणे, भुसिरे।

वाद्य (बाजे) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे--

१ तत (वीणा आदि) २ वितत (ढोल आदि)
३ घन (कास्य ताल आदि) ४ शुषिर (बासुरी आदि) (६३२)।

६३३--चउव्विहे णट्टे पण्णत्ते, त जहा--अचिए, रिभिए आरभडे, भसोले।

नाट्य (नृत्य) चार प्रकार के कहे गये हैं। जसे--

१ अचित नाट्य--ठहर ठहर कर या रुक-रुक कर नाचना।
२ रिभित नाट्य--सगीत के साथ नाचना।
३ आरभट नाट्य--सकेतो से भावाभिव्यक्ति करते हुए नाचना।
४ भसोल नाट्य--झुक कर या लेट कर नाचना (६३३)।

६३४—चउव्विहे गेए पण्णत्ते, त जहा—उक्खित्तए, पत्तए, मदए, रोविंदए, ।

गेय (गायन) चार प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ उत्क्षिप्तक गेय—नाचते हुए गायन करना ।
२ पत्रक गेय—पद्य-छन्दा का गायन करना, उत्तम स्वर से छन्द बोलना ।
३ मन्द्रक गेय—मन्द-मन्द स्वर से गायन करना ।
४ रोविन्दक गेय—शनै शनै स्वर को तेज करते हुए गायन करना (६३४) ।

६३५—चउव्विहे मल्ले पण्णत्ते, त जहा—गथिमे, वेढिमे, पूरिमे, सघातिमे ।

माल्य (माला) चार प्रकार की कही गई है । जसे—

१ ग्रन्थिममाल्य—सूत के धागे से गूथ कर बनाई जाने वाली माला ।
२ वेष्टिममाल्य—चारो ओर फूलो को लपेट कर बनाई गई माला ।
३ पूरिममाल्य—फूल भर कर बनाई जाने वाली माला ।
४ सघातिममाल्य—एक फूल की नाल आदि से दूसरे फूल आदि को जोडकर बनाई गई माला (६३५) ।

६३६—चउव्विहे अलकारे पण्णत्ते, त जहा—केसालकारे, वत्थालकारे, मल्लालकारे, आभरणालकारे ।

अलकार चार प्रकार के कहे गये हैं । जसे—

१ केशालकार—शिर के बालो को सजाना ।
२ वस्त्रालकार—सुदर वस्त्रो को धारण करना ।
३ माल्यालकार—मालाओ को धारण करना ।
४ आभरणालकार—सुवर्ण-रत्नादि के आभूषणो को धारण करना (६३६) ।

६३७—चउव्विहे अभिणए पण्णत्ते, त जहा—दिट्ठतिए, पाडिसुते, सामण्णओविणिवाइय, लोगमज्झावसिते ।

अभिनय (नाटक) चार प्रकार का कहा गया है । जसे—

१ दार्ष्टान्तिक—किसी घटना-विशेष का अभिनय करना ।
२ प्रातिश्रुत—रामायण, महाभारत आदि का अभिनय करना ।
३ सामान्यतोविनिपातिक—राजा-मन्त्री आदि का अभिनय करना ।
४ लोकमध्यावसित—मानवजीवन की विभिन्न अवस्थाओ का अभिनय करना (६३७) ।

विमान-सूत्र

६३८—सणकुमार माहिंदेसु ण कप्पेसु विमाणा चउवण्णा पण्णत्ता, त जहा—णीला, लोहिता, हालिद्दा, सुक्किल्ला ।

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पो मे विमान चार वर्ण वाले कहे गये हैं । जैसे—

१ नीलवर्ण वाले, २ लोहित (रक्त) वर्ण वाले,
३ हारिद्र (पीत) वर्ण वाले, ४ शुक्ल (श्वेत) वर्ण वाले (६३८)।

देव-सूत्र

६३९—महासुक्क सहस्सारेसु ण कप्पेसु देवाण भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेण चत्तारि रयणीओ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता।

महाशुक्र और सहस्रार कल्पो मे देवो के भवधारणीय (जन्म से मृत्यु तक रहने वाला मूल) शरीर उत्कृष्ट ऊचाई मे चार रत्नि प्रमाण (चार हाथ के) कहे गये है (६३९)।

गर्भ सूत्र

६४०—चत्तारि दगगब्भा पण्णत्ता, त जहा—उस्सा, महिया, सीता, उसिणा।

उदक के चार गर्भ (जल वर्षा के कारण) कहे गये है। जैसे—

१ अवश्याय (ओस) २ मिहिका (कुहरा, धूवर)
३ अतिशीतलता ४ अतिउष्णता (६४०)।

६४१—चत्तारि दगगब्भा पण्णत्ता त जहा—हेमगा, अब्भसथडा, सीतोसिणा, पचरूविया।

सग्रहणी-गाथा

माहे उ हेमगा गब्भा, फग्गुणे अब्भसथडा।
सीतोसिणा उ चित्ते, वइसाहे पचरूविया ॥१॥

पुन उदक के चार गर्भ कहे गये है। जैसे—

१ हिमपात, २ मेघो से आकाश का आच्छादित होना,
३ अति शीतोष्णता,
४ पचरूपिता (वायु, बादल, गरज, बिजली और जल इन पाच का मिलना) (६४१)।

१ माघ मास मे हिमपात से उदक-गर्भ रहता है। फाल्गुन मास मे आकाश के बादलो से आच्छादित रहने से उदक-गर्भ रहता है। चैत्र मास मे अतिशीत और अतिउष्णता से उदक-गर्भ रहता है। वैशाख मास मे पचरूपिता से उदक गर्भ रहता है।

६४२—चत्तारि मणुस्सीगब्भा पण्णत्ता, त जहा—इत्थित्ताए पुरिसत्ताए, णपु सगत्ताते, बिबत्ताए।

सग्रहणी गाथाए

अप्प सुक्क बहु ओय, इत्थी तत्थ पजायति।
अप्प ओय बहु सुक्क, पुरिसो तत्थ जायति ॥१॥
दोण्हपि रत्तसुक्काण, तुल्लभावे णपु सओ।
इत्थी ओय समायोगे, बिब तत्थ पजायति ॥२॥

मनुष्यनी स्त्री के गभ चार प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ स्त्री के रूप मे, २ पुरुष के रूप मे,

३ नपु सक के रूप मे, ४ विम्ब रूप से (६४२)।

१ जब गर्भ-काल मे शुक्र (वीय) अल्प और ओज (रज) अधिक होता है, तब उस गभ स स्त्री उत्पन्न होती है। यदि ओज अल्प और शुक्र अधिक होता है, तो उस गभ से पुरुष उत्पन्न होता है।

२ जब रक्त (रज) और शुक्र इन दोनो की समान मात्रा होती है, तब नपु सक उत्पन्न होता है। वायु विकार के कारण स्त्री के ओज (रक्त) के समायोग से (जम जाने से) विम्ब उत्पन्न होता है।

विवेचन—पुरुप-सयोग के विना स्त्री का रज वायु-विकार से पिण्ड रूप मे गभ-स्थित होकर बढने लगता है, वह गभ के समान बढने से विम्ब या प्रतिविम्बरूप गभ कहा जाता है। पर उससे सन्तान का जन्म नही होता। किन्तु एक गोल-पिण्ड निकल कर फूट जाता है।

पूववस्तु सूत्र

६४३—उप्पायपुव्वस्स ण चत्तारि चलवत्थू पण्णत्ता।

उत्पाद पूव (चतुदश पूवगत श्रुतके प्रथम भेद के) चूलावस्तु नामक चार अधिकार कहे गये है, अर्थात् उसमे चार चूलाए थी (६४३)।

काव्य-सूत्र

६४४—चउव्विहे कव्वे पण्णत्ते, त जहा—गज्जे, पज्जे, कत्थे, गेए।

काव्य चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ गद्य काव्य, २ पद्य-काव्य, ३ कथ्य काव्य, ४ गय-काव्य (६४४)।

विवेचन—छन्द-रहित रचना विशेप को गद्यकाव्य कहते हैं। छन्द वाली रचना को पद्यकाव्य कहते ह। कथा रूप से कही जाने वाली रचना को कथ्यकाव्य कहते ह। गान के योग्य रचना को गय-काव्य कहते है।

समुदघात-सूत्र

६४५—णेरइयाण चत्तारि समुग्घाता पण्णत्ता, त जहा—वेयणासमुग्घाते, कसायसमुग्घाते, मारणतियसमुग्घाते, वेउव्वियसमुग्घाते।

नारक जीवा के चार समुदघात कहे गये है। जसे—

१ वेदना समुद्घात, २ कषाय समुद्घात,

३ मारणान्तिक-समुदघात, ४ वैक्रिय-समुद्घात (६४५)।

६४६—एव—वाउवकाइयाणवि ।

इसी प्रकार वायुकायिक जीवो के भी चार समुदघात होते है ।

विवेचन—मूल शरीर को नही छोडते हुए किसी कारण विशेष से जीव के कुछ प्रदेशा के बाहर निकलने को समुदघात कहते हैं[1] । समुद्घात के सात भेद आगे सातवे स्थान के सूत्र १३८ मे कहे गये है । उनमे से नारक और वायुकायिक जीवो के केवल चार ही समुदघात होते है । उनका अथ इस प्रकार है—

१ वेदना की तीव्रता से जीव के कुछ प्रदेशा का बाहर निकलना वेदनासमुदघात है ।

२ कषाय की तीव्रता से जीव के कुछ प्रदेशो का बाहर निकलना कषायसमुद्घात है ।

३ मारणान्तिक दशा मे मरण के अतमुहूर्त पूव जीव के कुछ प्रदेश निकल कर जहा उत्पन्न होना है, वहा तक फलते चले जाते ह और उस स्थान का स्पश कर वापिस शरीर मे प्रविष्ट हो जाते हैं । इसे मारणान्तिक समुद्घात कहते हैं । इसके कुछ क्षण के बाद जीव का मरण होता है ।

४ वक्रिय समुद्घात—शरीर के छोटे-बडे आकारादि क बनाने को वैक्रिय समुद्घात कहत है ।

नारक जीवो के समान वायुकायिक जीवा के भी निमित्तविशेष से शरीर छोटे-बडे रूप मे सकुचित-विस्तृत होते रहते हैं अत उनके वक्रिय समुदघात कहा गया है (६४६) ।

चतुदशपूर्वि सूत्र

६४७—अरहतो ण अरिट्ठणेमिस्स चत्तारि सया चोद्दसपुव्वीणमजिणाण जिससकासाण सव्वक्खरसण्णिवाईण जिणो [जिणाण ?] इव अवितय वागरमाणाण उक्कोसिया चउद्दसपुव्विसपया हुत्या ।

अरहन्त अरिष्टनेमि के चतुदश-पूव-वेत्ता मुनियो की सख्या चार सौ थी । वे जिन नही होते हुए भी जिन के समान सर्वाक्षरसन्निपाती (सभी अक्षरो के सयोग से बने सयुक्त पदो के और उनसे निर्मित बीजाक्षरो के ज्ञाता) थे, तथा जिन के समान ही अवितथ—(यथाथ-) भाषी थे । यह अरिष्ट-नेमि के चौदह पूर्वियो की उत्कृष्ट सम्पदा थी (६४७) ।

वादि सूत्र

६४८—समणस्स ण भगवओ महावीरस्स चत्तारि सया वादीण सदेवमणुयासुराए परिसाए अपराजियाण उक्कोसिता वादिसपया हुत्था ।

श्रमण भगवान् महावीर के वादी मुनियो की सख्या चार सौ थी । वे देव परिषद्, मनुज-परिषद् और असुर-परिषद् मे अपराजित थे । अर्थात् उन्हे कोई भी देव, मनुष्य या असुर जीत नही सकता था । यह उनके वादी-शिष्यो की उत्कृष्ट सम्पदा थी (६४८) ।

कल्प-सूत्र

६४९—हेट्ठिल्ला चत्तारि कप्पा अद्धचदसठाणसठिया पण्णत्ता, त जहा—सोहम्मे, ईसाणे, सणकुमारे, माहिंदे ।

---

१ मूलसरीरमछडिय उत्तरदेहस्स जीवपिडस्स ।
णिग्गमण देहादो होदि समुग्घाद णाम तु ॥ ६६७ ॥ गो० जीवकाण्ड ।

अधस्तन (नीचे के) चार कल्प अर्धचन्द्र आकार से स्थित हैं। जैसे—

१ सौधर्मकल्प, २ ईशानकल्प, ३ सनत्कुमारकल्प, ४ माहेन्द्रकल्प।

६५०—मज्झिल्ला चत्तारि कप्पा पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिया पण्णत्ता, तं जहा—बंभलोगे, लंतए, महासुक्के सहस्सारे।

मध्यवर्ती चार कल्प परिपूर्ण चन्द्र के आकार से स्थित कहे गये हैं। जैसे—

१ ब्रह्मलोककल्प, २ लान्तककल्प ३ महाशुक्रकल्प, ४ सहस्रारकल्प (६५०)।

६५१—उवरिल्ला चत्तारि कप्पा अद्धचंदसंठाणसंठिया पण्णत्ता, तं जहा—आणते, पाणते, आरणे, अच्चुते।

उपरिम चार कल्प अर्ध चन्द्र के आकार में स्थित कहे गये हैं। जैसे—

१ आनतकल्प, २ प्राणतकल्प, ३ आरणकल्प, ४ अच्युतकल्प (६५१)।

समुद्र-सूत्र

६५२—चत्तारि समुद्दा पत्तेयरसा पण्णत्ता, तं जहा—लवणोदे, वरुणोदे, खीरोदे, घतोदे।

चार समुद्र प्रत्येक रस (भिन्न-भिन्न रस) वाले कहे गये हैं। जैसे—

१ लवणोदक—लवण-रस के समान खारे पानी वाला।
२ वरुणोदक—मदिरा-रस के समान पानी वाला।
३ क्षीरोदक—दुग्ध रस के समान पानी वाला।
४ घृतोदक—घृत-रस के समान पानी वाला (६५२)।

कषाय-सूत्र

६५३—चत्तारि आवत्ता पण्णत्ता, तं जहा—खरावत्ते, उण्णतावत्ते, गूढावत्ते, आमिसावत्ते।

एवामेव चत्तारि कसाया पण्णत्ता, तं जहा—खरावत्तसमाणे कोहे, उण्णतावत्तसमाणे माणे, गूढावत्तसमाणा माया, आमिसावत्तसमाणे लोभे।

१ खरावत्तसमाणं कोहं अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, णेरइएसु उववज्जति।
२ (उण्णतावत्तसमाणं माणं अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, णेरइएसु उववज्जति।
३ गूढावत्तसमाणं मायं अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, णेरइएसु उववज्जति)।
४ आमिसावत्तसमाणं लोभमणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, णेरइएसु उववज्जति।

चार आवर्त (गोलाकार घुमाव) कहे गये हैं। जैसे—

१ खरावर्त—अतिवेगवाली जल-तरंगों के मध्य होने वाली गोलाकार भंवर।
२ उन्नतावर्त—पर्वत-शिखर पर चढ़ने का घुमावदार मार्ग, या वायु का गोलाकार बवंडर।
३ गूढावर्त—गेंद के समान सर्व ओर से गोलाकार आवर्त।
४ आमिषावर्त—मांस के लिए गिद्ध आदि पक्षियों का चक्कर वाला परिभ्रमण (६५३)।

इसो प्रकार कपाय भी चार प्रकार के कहे गय है । जैसे—

१ खरावर्त समान—क्रोध कपाय २ उन्नतावत समान—मान कपाय ।
३ गूढावर्त-समान—माया कपाय ४ आमिपावत-समान—लोभ कपाय ।

खरावत-समान क्रोध मे वतमान जीव काल करता है तो नारको मे उत्पन्न होता ह । उन्नतावत समान मान मे वतमान जीव काल करता है तो नारको मे उत्पन्न होता है । गूढावत-समान माया म वर्तमान जीव काल करता है तो नारको मे उत्पन्न होता है । आमिपावत समान लोभ मे वतमान जीव काल करता है तो नारको मे उत्पन्न होता है ।

नक्षत्र-सूत्र

६५४—अणुराहाणक्खत्ते चउत्तारे पण्णत्ते ।

अनुराधा नक्षत्र चार तारे वाला कहा गया है (६५४) ।

६५५—पुव्वासाढा (णक्खत्ते चउत्तारे पण्णत्ते) ।

पूर्वाषाढा नक्षत्र चार तारे वाला कहा गया है (६५५) ।

६५६—एव चेव उत्तरासाढा (णक्खत्ते चउत्तारे पण्णत्ते) ।

इसी प्रकार उत्तराषाढा नक्षत्र चार तारे वाला कहा गया है (६५६) ।

पापकम सूत्र

६५७—जीवा ण चउट्ठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिसु वा चिणति वा चिणिस्सति वा—णेरइयणिव्वत्तिते, तिरिक्खजोणियणिव्वत्तिते, मणुस्सणिव्वत्तिते, देवणिव्वत्तिते ।

जीवो ने चार कारणो से निर्वर्तित (उपार्जित) कम-पुद्गलो को पाप कम रूप से भूतकाल मे सचित किया है, वतमानकाल मे सचित कर रहे ह और भविष्यकाल मे सचित करेंगे । जैसे—

१ नैरयिक निर्वर्तित कमपुद्गल, २ तिर्यग्योनिक निर्वर्तित कमपुद्गल,
३ मनुष्य निर्वर्तित कमपुद्गल, ४ देवनिर्वर्तित कमपुद्गल (६५७) ।

६५८—एव—उवचिणिसु वा उवचिणति वा उवचिणिस्सति वा ।

एव—चिण उवचिण बध उदीर वेय तह णिज्जरा चेव ।

इसी प्रकार जीवा ने चतु स्थान निर्वर्तित कम पुद्गलो का उपचय, बध, उदीरण, वेदन और निजरण भूतकाल मे किया है, वतमान मे कर रहे ह और भविष्यकाल मे करेंगे (६५८) ।

पुद्गल सूत्र

६५९—चउपदेसिया खधा अणता पण्णत्ता ।

चार प्रदेश वाले पुद्गलस्कन्ध अनन्त है (६५९) ।

६६०—चउपदेसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता ।

आकाश के चार प्रदेशों में अवगाहना वाले पुद्गलस्कन्ध अनन्त कहे गये हैं (६६०) ।

६६१—चउसमयट्ठितीया पोग्गला अणंता पण्णत्ता ।

चार समय की स्थिति वाले पुद्गलस्कन्ध अनन्त कहे गये हैं (६६१) ।

६६२—चउगुणकालगा पोग्गला अणंता जाव चउगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता ।

चार काले गुण वाले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं (६६२) ।

इसी प्रकार सभी वर्ण, सभी गन्ध, सभी रस और सभी स्पर्शों के चार-चार गुण वाले पुद्गल अनन्त अनन्त कहे गये हैं ।

॥ चतुर्थ उद्देश का चतुर्थ स्थान समाप्त ॥

पचम स्थान

सार सक्षेप

इस स्थान मे पाच की सख्या से सम्बन्धित विपय सकलित किये गय है। जिनमें सैद्धान्तिक, तात्विक, दार्शनिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक, ज्योतिष्क, और योग आदि अनेक विपयो का वणन है। जैसे—

१ सद्धान्तिक प्रकरण मे—इन्द्रिया के विपय, शरीरो का वणन, तीर्थभेद, आर्जवस्थान, देवो की स्थिति क्रियाओ का वणन, कम रज का आदान वमन, तृण वनस्पति, अस्तिकाय शरीरवगाहनादि अनेक सैद्धान्तिक विपया का वणन है।

२ चारित्र-सम्बन्धी चचा मे पाच अणुव्रत महाव्रत, पाच प्रतिमा, पाच अतिशेप ज्ञान-दर्शन, गोचरी के भेद, वर्षावास, राजान्त पुर-प्रवेश, निग्रन्थ-निग्रन्थी का एकत्र वास, पाच प्रकार की परिज्ञाए, भक्त-पान-दत्ति, पाच प्रकार के निग्रन्थ-निर्ग्रन्थी-अवलम्बनादि अनेक महत्त्वपूण विपयो का वणन है।

३ तात्त्विक चर्चा मे कमनिजरा के कारण, आस्रव-सवर के द्वार, पाच प्रकार के दण्ड, सवर-असवर सयम-असयम ज्ञान सूत्र, वन्ध आदि पदो के द्वारा अनेक विपयो का तात्त्विक वणन है।

प्रायश्चित्त चर्चा मे—विसभोग, पाराञ्चित, अव्युद-ग्रहस्थान, अनुद्-घात्य, व्यवहार, उपघात-विशोधि आचार-प्रकल्प आरोपणा प्रत्याख्यान और प्रतिक्रमण आदि पदो के द्वारा प्रायश्चित्त का वणन किया गया है।

भौगोलिक चर्चा मे—महानदी, वक्षस्कार पवत, महाद्रह, जम्बूद्वीपादि अढाईद्वीप, महानरक, महाविमान आदि का वणन किया गया है।

ऐतिहासिक चचा मे—राजचिह्न, पचकल्याणक, ऋद्धिमान् पुरुप, कुमारावस्था मे प्रव्रजित तीथकर, आदि का वणन किया गया है।

ज्योतिप से सबद्ध चर्चा मे ज्योतिष्क देवो के भेद, पाच प्रकार के सवत्सर, पाच तारा वाले नक्षत्र, एव एक एक ही नक्षत्र मे पाच पाच कल्याणको आदि का वणन किया गया है।

योग साधना के वणन मे बताया गया है कि अपने मन वचनकाययोग को स्थिर नही रखने वाला पुरुप प्राप्त होते हुए अवधिज्ञान आदि से वचित रह जाता है और योग साधना मे स्थिर रहने वाला पुरुप किस प्रकार से अतिशय सम्पन्न ज्ञान दर्शनादि को प्राप्त कर लेता है।

इसके अतिरिक्त गेहूँ, चने आदि धान्यो की कब तक उत्पादनशक्ति रहती है, स्त्री-पुरुषो की प्रवीचारणा कितने प्रकार की होती है, देवो की सेना और उसके सेनापतियो के नाम, गर्भ-धारण के प्रकार, गर्भ के अयोग्य स्त्रिया का निरूपण, सुप्त जागृत सयमी असयमी का अन्तर और सुलभ-दुर्लभ बोधि का विवेचन किया गया है।

दार्शनिक चर्चा मे पाच प्रकार से हेतु और पाच प्रकार के अहेतुओ का अपूर्व वणन किया गया है। □□

पचम स्थान

प्रथम उद्देश

महाव्रत अणुव्रत-सूत्र

१—पच महव्वया पण्णत्ता, त जहा—सव्वाओ पाणातिवायाओ वेरमण जाव (सव्वाओ मुसावायाओ वेरमण, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमण, सव्वाओ मेहुणाओ वेरमण), सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमण।

महाव्रत पाच कहे गये हैं। जैसे—

१ सब प्रकार के प्राणातिपात (जीव-घात) से विरमण।
२ सब प्रकार के मृषावाद (असत्य-भाषण) से विरमण।
३ सब प्रकार के अदत्तादान (चोरी) से विरमण।
४ सब प्रकार के मैथुन (कुशील-सेवन) से विरमण।
५ सब प्रकार के परिग्रह से विरमण (१)।

२—पचाणुव्वया पण्णत्ता त जहा—थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमण, थूलाओ मुसावायाओ वेरमण, थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमण, सदारसतोसे, इच्छापरिमाणे।

अणुव्रत पाच कहे गये हैं। जैसे—

१ स्थूल प्राणातिपात (त्रस जीव-घात) से विरमण।
२ स्थूल मृषावाद (धर्म घातक, लोक विरुद्ध असत्य भाषण) से विरमण।
३ स्थूल अदत्तादान (राज दण्ड, लोक-दण्ड देने वाली चोरी) से विरमण।
४ स्वदारसन्तोष (पर-स्त्री सेवन से विरमण)।
५ इच्छापरिमाण (इच्छा—परिग्रह का परिमाण करना) (२)।

इन्द्रिय विषय-सूत्र

३—पच वण्णा पण्णत्ता, त जहा—किण्हा, णीला, लोहिता, हालिद्दा, सुक्किल्ला।

वर्ण पाच कहे गये हैं। जैसे—

१ कृष्ण वर्ण, २ नील वर्ण, ३ लोहित (लाल) वर्ण, ४ हारिद्र (पीला) वर्ण, ५ शुक्ल वर्ण (३)।

४—पच रसा पण्णत्ता, त जहा—तित्ता (कडुया, कसाया, अबिला), मधुरा।

रस पाच कहे गये है। जैसे—

१ तिक्त रस, २, कटु रस, ३ कषाय रस, ४ आम्ल रस, ५ मधुर रस (४)।

५—पच कामगुणा पण्णत्ता, त जहा—सद्दा, रूवा, गधा, रसा, फासा ।

कामगुण पाच कहे गये हैं । जैसे—

१ शब्द, २ रूप ३ गन्ध, ४, रस, ५ स्पर्श (५) ।

६—पर्चाहि ठाणेहि जीवा सज्जति, त जहा—सद्देहि, रूवेहि, गधेहि, रसेहि, फासेहि ।

पाच स्थानो मे जीव आसक्त होते है । जैसे—

१ शब्दो मे, २ रूपो मे, ३ गन्धो मे, ४ रसो मे, ५ स्पर्शो मे (६) ।

७—एव रज्जति मुच्छति गिज्झति अज्झोववज्जति । (पर्चाहि ठाणेहि जीवा रज्जति, त जहा—सद्देहि, जाव (रूवेहि, गधेहि, रसेहि), फासेहि । ८—पर्चाहि ठाणेहि जीवा मुच्छति, त जहा—सद्देहि, रूवेहि, गधेहि, रसेहि, फासेहि । ९—पर्चाहि ठाणेहि जीवा गिज्झति, त जहा—सद्देहि, रूवेहि, गधेहि, रसेहि, फासेहि । १०—पर्चाहि ठाणेहि जीवा अज्झोववज्जति, त जहा—सद्देहि, रूवेहि, गधेहि, रसेहि, फासेहि ।

पाच स्थानो मे जीव अनुरक्त होते है । जैसे—

१ शब्दो मे, २ रूपो मे, ३ गन्धो मे, ४ रसो मे, ५ स्पर्शो मे (७) ।

पाच स्थानो मे जीव मूच्छित होते हैं । जैसे—

१ शब्दो मे, २ रूपो मे, ३ गन्धो मे, ४ रसो मे, ५ स्पर्शो मे (८) ।

पाच स्थानो मे जीव गृद्ध होते हैं । जैसे—

१ शब्दो मे, २ रूपो मे, ३ गन्धो मे, ४ रसो मे, ५ स्पर्शो मे (९) ।

पाच स्थानो मे जीव अध्युपपन्न (अत्यासक्त) होते है । जैसे—

१ शब्दो मे २ रूपो मे, ३ गन्धो मे ४ रसो मे, ५ स्पर्शो मे (१०) ।

११—पर्चाहि ठाणेहि जीवा विणिघायमावज्जति, त जहा—सद्देहि, जाव (रूवेहि, गधेहि, रसेहि), फासेहि ।

पाच स्थानो से जीव विनिघात (विनाश) को प्राप्त होते है । जैसे—

१ शब्दो से, २ रूपो से, ३ गन्धो से, ४ रसो से ५ स्पर्शो से, अर्थात् इनकी अति लोलुपता के कारण जीव विघात को प्राप्त होते है (११) ।

१२—पच ठाणा अपरिण्णाता जीवाण अहिताए असुभाए अखमाए अणिस्सेसाए अणाणुगामियत्ताए भवति, त जहा—सद्दा जाव (रूवा, गधा, रसा), फासा ।

अपरिज्ञात (अज्ञात और अप्रत्याख्यात) पाच स्थान जीवो के अहित के लिए, अशुभ के लिए, अक्षमता (असामर्थ्य) के लिए, अनि श्रेयस् (अकल्याण) के लिए और अननुगामिता (अमोक्ष—समारवास) के लिए होते हैं । जैसे—

१ शब्द, २ रूप, ३ गन्ध, ४ रस, ५ स्पर्श (१२)।

१३—पच ठाणा सुपरिण्णाता जीवाण हिताए सुभाए जाव (खमाए णिस्सेस्साए) श्राणुगामियत्ताए भवति, त जहा—सद्दा, जाव (रूवा, गधा, रसा), फासा।

सुपरिज्ञात (सुज्ञात और प्रत्याख्यात) पाच स्थान जीवो के हित के लिए, शुभ के लिए, क्षम (सामर्थ्य) के लिए, नि श्रेयस् (कल्याण) के लिए और अनुगामिता (मोक्ष) के लिए होते हैं। जसे—

१, शब्द, २ रूप, ३ गन्ध, ४ रस, ५ स्पर्श (१३)।

१४—पच ठाणा अपरिण्णाता जीवाण दुग्गतिगमणाए भवति, त जहा—सद्दा, जाव (रूवा, गधा, रसा), फासा।

अपरिज्ञात (अज्ञात और अप्रत्याख्यात) पाच स्थान जीवो के दुर्गतिगमन के लिए कारण होते है। जैसे—

१ शब्द, २ रूप, ३ गन्ध, ४ रस, ५ स्पर्श (१४)।

१५—पच ठाणा सुपरिण्णाता जीवाण सुग्गतिगमणाए भवति, त जहा—सद्दा, जाव (रूवा, गधा, रसा), फासा।

सुपरिज्ञात (सुज्ञात और प्रत्याख्यात) पूर्वोक्त पाच स्थान जीवो के सुगतिगमन के लिए कारण होते हैं (१५)।

आस्रव सवर-सूत्र

१६—पर्चाह ठाणेहि जीवा दोग्गति गच्छति, त जहा—पाणातिवातेण जाव (मुसावाएण, अदिण्णादाणेण, मेहुणेण), परिग्गहेण।

पाच कारणो से जीव दुगति मे जाते है। जैसे—

१ प्राणातिपात से, २ मृषावाद से, ३ अदत्तादान से, ४ मथुन से, ५ परिग्रह से (१६)।

१७—पर्चाह ठाणेहि जीवा सोगति गच्छति, त जहा—पाणातिवातवेरमणेण जाव (मुसावायवेरमणेण, अदिण्णादाणवेरमणेण, मेहुणवेरमणेण), परिग्गहवेरमणेण।

पाच कारणो से जीव सुगति मे जाते हैं। जसे—

१ प्राणातिपात के विरमण से, २ मृषावाद के विरमण से, ३ अदत्तादान के विरमण से,
४ मथुन के विरमण से, ५ परिग्रह के विरमण से (१७)।

प्रतिमा सूत्र

१८—पच पडिमाओ पण्णत्ताओ, त जहा—भद्दा, सुभद्दा, महाभद्दा, सव्वतोभद्दा, भद्दुत्तरपडिमा।

प्रतिमाए पाच कही गई हैं जसे—

१ भद्रा प्रतिमा, २ सुभद्रा प्रतिमा, ३ महाभद्रा प्रतिमा,
४ सर्वतोभद्रा प्रतिमा, ५ भद्रोत्तर प्रतिमा (१८)।

इनका विवेचन दूसरे स्थान मे किया जा चुका है।

स्थावरकाय-सूत्र

१९—पच थावरकाया पण्णत्ता, त जहा—इदे थावरकाए, बभे थावरकाए, सिप्पे थावरकाए, सम्मति थावरकाए, पायावच्चे थावरकाए।

पाच स्थावरकाय कहे गये है। जसे—

१ इन्द्रस्थावरकाय पृथ्वीकाय, २ ब्रह्मस्थावरकाय-अप्काय, ३ शिल्पस्थावरकाय-तेजसकाय, ४ सम्मतिस्थावरकाय वायुकाय, ५ प्राजापत्यस्थावरकाय-वनस्पतिकाय (१९)।

२०—पच थावरकायाधिपती पण्णत्ता, त जहा—इदे थावरकायाधिपती, जाव (बभे थावरकायाधिपती सिप्पे थावरकायाधिपती, सम्मती थावरकायाधिपती), पायावच्चे थावरकायाधिपती।

पाच स्थावरकायो के अधिपति कहे गये हैं। जसे—

१ पृथ्वी-स्थावरकायाधिपति—इन्द्र।
२ अप स्थावरकायाधिपति—ब्रह्मा।
३ तेजस-स्थावरकायाधिपति—शिल्प।
४ वायु स्थावरकायाधिपति—सम्मति।
५ वनस्पति-स्थावरकायाधिपति—प्राजापत्य (२०)।

विवेचन—उक्त दो सूत्रो में स्थावरकाय और उनके अधिपति (स्वामी) बताये गये हैं। जिस प्रकार दिशाओ के अधिपति इन्द्र, अग्नि आदि है, नक्षत्रो के अधिपति अश्वि, यम आदि हैं, उसी प्रकार पाचो स्थावरकायो के अधिपति भी यहा पर (२० व सूत्र मे) बताये गये हैं और उनके सम्बन्ध से पृथ्वी आदि को भी इन्द्रस्थावरकाय आदि के नामो से उल्लेख किया गया है।

अतिशेषज्ञान दर्शन सूत्र

२१—पचहि ठाणेहि ओहिदसणे समुप्पज्जिउकामेवि तप्पढमयाए खभाएज्जा, त जहा—

१ अप्पभूत वा पुढवि पासित्ता तप्पढमयाए खभाएज्जा।
२ कु थुरासिभूत वा पुढवि पासित्ता तप्पढमयाए खभाएज्जा।
३ महतिमहालय वा महोरगसरीर पासित्ता तप्पढमयाए खभाएज्जा।
४ देव वा महिड्ढिय जाव (महज्जुइय महाणुभाग महायस महाबल) महासोक्ख पासित्ता तप्पढमयाए खभाएज्जा।
५ पुरेसु वा पोराणाइ उरालाइ महतिमहालयाइ महाणिहाणाइ पहीणसामियाइ पहीणसेउयाइ पहीणगुत्तागाराइ उच्छिण्णसामियाइ उच्छिण्णसेउयाइ उच्छिण्णगुत्तागाराइ जाइ

इमाइं गामागर-णगर खेड कब्बड-मडंब दोणमुहपट्टणासम संबाह सण्णिवेसेसु सिंघाडग तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह महापह-पहेसु णगर णिद्धमणेसु सुसाण सुण्णागार गिरिकंदर-संति सेलोवट्ठावण भवण गिहेसु सण्णिक्खित्ताइं चिट्ठंति, ताइं वा पासित्ता तप्पढमताए खभाएज्जा।

इच्चेतेहिं पचहिं ठाणेहिं ग्रोहिदंसणे समुप्पज्जिउकामे तप्पढमयाए खभाएज्जा।

पाच कारणों से अवधि [ज्ञान-] दर्शन उत्पन्न होता हुआ भी अपने प्राथमिक क्षणों में ही स्तम्भित (क्षुब्ध या चलायमान) हो जाता है। जैसे—

१ पृथ्वी को छोटी या अल्पजीव वाली देख कर वह अपने प्राथमिक क्षणों में ही स्तम्भित हो जाता है।
२ कुंथु जैसे क्षुद्र जीवराशि से भरी हुई पृथ्वी को देख कर वह अपने प्राथमिक क्षणों में ही स्तम्भित हो जाता है।
३ बड़े-बड़े महोरगों—(सांपों) के शरीरों को देखकर वह अपने प्राथमिक क्षणों में ही स्तम्भित हो जाता है।
४ महर्धिक महाद्युतिक, महानुभाग, महान् यशस्वी, महान् बलशाली और महान् सुख वाले देवों को देख कर वह अपने प्राथमिक क्षणों में ही स्तम्भित हो जाता है।
५ पुरों में, ग्रामों में, आकरों में, नगरों में, खेटों में, कर्वटों में, मडम्बों में, द्रोणमुखों में, पत्तनों में, आश्रमों में संबाधों में, सन्निवेशों में, नगरों के शृंगाटकों, तिराहों, चौकों, चौराहों, चौमुहानों और छोटे-बड़े मार्गों में, गलियों में, श्मशानों में, शून्य गृहों में, गिरि-कन्दराओं में, शान्ति गृहों में, शैलगृहों में, उपस्थानगृहों और भवन-गृहों में दबे हुए एवं से एक बड़े महानिधानों को (धन के भण्डारों या खजानों को) जिनके कि स्वामी, मर चुके हैं, जिनके मार्ग प्रायः नष्ट हो चुके हैं, जिनके नाम और संकेत विस्मृत प्रायः हो चुके हैं और जिनके उत्तराधिकारी कोई नहीं है—देखकर वह अपने प्राथमिक क्षणों में ही स्तम्भित हो जाता है।

इन पाँच कारणों से उत्पन्न होता हुआ अवधि-[ज्ञान-]-दर्शन अपने प्राथमिक क्षणों में ही स्तम्भित हो जाता है।

विवेचन—विशिष्ट ज्ञान दर्शन की उत्पत्ति या विभिन्न ऋद्धियों की प्राप्ति एकान्त में ध्याना-वस्थित साधु को होती है। उस अवस्था में सिद्ध या प्राप्त ऋद्धि का तो पता उसे तत्काल नहीं चलता है, किन्तु विशिष्ट ज्ञान-दर्शन के उत्पन्न होते ही सूत्रोक्त पांच कारणों में से सर्वप्रथम पहला ही कारण उसके सामने उपस्थित होता है। ध्यानावस्थित व्यक्ति की नासाग्र दृष्टि रहती है, अतः उसे सर्वप्रथम पृथ्वीगत जीव ही दृष्टिगोचर होते हैं। तदनन्तर पृथ्वी पर विचरने वाले कुंथु आदि छोटे-छोटे जन्तु विपुल परिमाण में दिखाई देते हैं। तत्पश्चात् भूमिगत बिलों आदि में बैठे सांपराज-नागराज आदि दिखाई देते है। यदि उसके अवधिज्ञानावरण अवधिदर्शनावरण कर्म का और भी विशिष्ट क्षयोपशम हो रहा है तो उसे महावैभवशाली देव दृष्टिगोचर होते हैं और ग्राम नगरादि की भूमि में दबे हुए खजाने भी दिखने लगते हैं। इन सब को देख कर सर्वप्रथम उसे विस्मय होता है, कि यह मैं क्या देख रहा हूं। पुनः जीवों से व्याप्त पृथ्वी को देख कर करुणाभाव भी जागृत हो जाता है। बड़े-बड़े सांपों

को देखने से भयभीत भी हो सकता है और भूमिगत खजानो को देखकर के वह लोभ से भी अभिभूत हो सकता है। इन मे से किसी एक-दो या सभी कारणो के सहसा उपस्थित होने पर ध्यानावस्थित व्यक्ति का चित्त चलायमान होना स्वाभाविक है।

यदि-वह उस समय चल-विचल न हो तो तत्काल उसके विशिष्ट अतिशय सम्पन्न ज्ञान-दर्शनादि उत्पन्न हो जाते हैं। और यदि वह उस समय विस्मयादि कारणो मे से किसी भी एक दो, या सभी के निमित्त से चल-विचल हो जाता है, तो वे उत्पन्न होते हुए भी रुक जाते हैं—उत्पन्न नही होते।

यही बात आगे के सूत्र मे केवल ज्ञान-दर्शन की उत्पत्ति के विषय मे भी जानना चाहिए।

सूत्रोक्त ग्राम नगरादि का अर्थ दूसरे स्थान के सूत्र ३९० के विवेचन मे किया जा चुका है। जो शृ गाटक आदि नवीन शब्द आये हैं। उनका अर्थ और आकार इस प्रकार है—

१ शृ गाटक—सिंघाडे के आकार वाला तीन मार्गों का मध्य भाग △।
२ त्रिकपथ-तिराहा, तिगडडा—जहा पर तीन मार्ग मिलते हैं ⊤।
३ चतुष्कपथ-चौराहा, चौक—जहा पर चार मार्ग मिलते हैं +।
४ चतुर्मु ख-चौमुहानी—जहा पर चारो दिशाओ के मार्ग निकलते है ।
५ पथ—मार्ग, गली आदि।
६ महापथ—राजमार्ग—चौडा रास्ता, मेन रोड।
७ नगर निर्द्ध मन—नगर की नाली, नाला आदि।
८ शान्तिगृह—शान्ति, हवन आदि करने का घर।
९ शैलगृह—पर्वत को काट कर या खोद कर बनाया मकान।
१० उपस्थान गृह—सभामडप।
११ भवनगृह—नौकर चाकरो के रहने का मकान।

कही कही चतुर्मु ख का अर्थ चार द्वार वाले देवमन्दिर आदि भी किया गया है। इसी प्रकार अन्य शब्दो के अर्थ मे भी कुछ व्याख्या भेद पाया जाता है। प्रकृत मे मूल अभिप्राय इतना ही है कि अवधि ज्ञान-दर्शन जितने क्षेत्र की सीमा वाला होता है, उतने क्षेत्र के भीतर की रूपी वस्तुओ का उसे प्रत्यक्ष दर्शन होता है।

२२—पचहि ठाणेहि केवलवरणाणदसणे समुप्पज्जिउकामे तप्पढमयाए णो खभाएज्जा, त जहा—

१ अप्पभूत वा पुढवि पासित्ता तप्पढमयाए णो खभाएज्जा। २ सेस तहेव जाव (कु थुरासिभूत वा पुढवि पासित्ता तप्पढमयाए णो खभाएज्जा। ३ महतिमहालय वा महोरगसरीर पासित्ता तप्पढमयाए णो खभाएज्जा। ४ देव वा महिड्ढिय महज्जुइय महाणुभाग महायस महाबल महासोक्ख पासित्ता तप्पढमयाए णो खभाएज्जा। ५ (पुरेसु वा पोराणाइ उरालाइ महतिमहालयाइ महाणिहाणाइ पहीणसामियाइ पहीणसेउयाइ पहीणगुत्तागाराइ उच्छिण्णसामियाइ उच्छिण्णसेउयाइ उच्छिण्णगुत्तागाराइ जाइ इमाइ गामागर णगर खेड कब्बड मडब-दोणमुह पट्टणासम सबाह-सण्णिवेसेसु सिघाडग तिग चउक्क चच्चर चउम्मुह महापहपहेसु णगर-णिद्धमणेसु सुसाण सुण्णागार गिरिकदर-सति सेलोवट्ठावण) भवण गिहेसु सण्णिक्खित्ताइ चिट्ठ ति, ताइ वा पासित्ता तप्पढमयाए णो खभाएज्जा।

सेस तहेव। इच्चेतेहिं पचहिं ठाणेहिं जाव (केवलवरणाणदसणे समुप्पज्जिउकामे तप्पढमयाए) जाव णो खभाएज्जा।

पाच कारणा से उत्पन्न होता हुआ केवलवर-ज्ञान दर्शन अपने प्राथमिक क्षणो मे स्तम्भित नही होता। जैसे—

१ पृथ्वी को छोटी या अल्पजीव वाली देखकर वह अपने प्राथमिक क्षणो मे स्तम्भित नही होता।
२ कुथु आदि क्षुद्र जीव-राशि से भरी हुई पृथ्वी को देखकर वह अपने प्राथमिक क्षणो मे स्तम्भित नही होता।
३ बडे-बडे महोरगो के शरीरो को देखकर वह अपने प्राथमिक क्षणो में स्तम्भित नही होता।
४ महर्धिक, महाद्युतिक, महानुभाव, महान् यशस्वी, महान् बलशाली और महान् सुख वाले देवो को देख कर वह अपने प्राथमिक क्षणो मे स्तम्भित नही होता।

५ पुरो मे, ग्रामो मे, आकरो मे, नगरो मे, खेटो मे, कर्वटो मे, मडम्बो मे, द्रोणमुखो मे, पत्तनो मे, आश्रमो मे, सबाधो मे, सन्निवेशो मे, शृगाटको, तिराहो, चौको, चौराहो, चौमुहानो और छोटे-बडे मार्गों मे, गलियो मे, नालियो मे, श्मशानो मे, शून्य गृहो मे, गिरिकन्दराओ मे, शान्ति-गृहो मे, शैल गृहो मे उपस्थान-गृहो मे और भवन गृहो मे दबे हुए एक से एक बडे महानिधानो को— जिनके स्वामी प्राय नष्ट हो चुके है, जिनके नाम और सकेत विस्मृतप्राय हो चुके हैं, और जिनके उत्तराधिकारी कोई नही हैं—देख कर वह अपने प्राथमिक क्षणो मे विचलित नही होता (२२)।

इन पाच कारणो से उत्पन्न होता हुआ केवल वर ज्ञान-दर्शन अपने प्राथमिक क्षणो मे स्तम्भित नही होता।

विवेचन—पूर्व सूत्र मे जो पाच कारण अवधि ज्ञान दर्शन के उत्पन्न होते-होते स्तम्भित होने के बताये गये थे, वे ही पाच कारण यहा केवल ज्ञान-दर्शन के उत्पन्न होने मे बाधक नही होते। इसका कारण यह है कि अवधि ज्ञान तो हीन सहनन और हीन सामर्थ्य वाले मनुष्यो को भी उत्पन्न हो सकता है, अत वे उक्त पाच कारणो मे से किसी एक भी कारण के उपस्थित होने पर अपने उपयोग से चल-विचल हो सकते हैं। किन्तु केवल ज्ञान और केवल दर्शन तो वज्रर्षभनाराचसहनन के, उसमे भी जो घोरातिघोर परीषह और उपसर्गों से भी चलायमान नही होता और जिसका मोहनीय कर्म दशवें गुण-स्थान मे ही क्षय हो चुका है, अत जिसके विस्मय, भय और लोभ का कोई कारण ही शेष नही रहा है, ऐसे परमवीतरागी क्षीणमोह बारहवे गुणस्थान वाले पुरुष को उत्पन्न होता है, अत ऐसे परम धीर-वीर महान् साधक के उक्त पाच कारण तो क्या, यदि एक से एक बढ चढकर सहस्रो विघ्न बाधाओ वाले कारण एक साथ उपस्थित हो जावें, तो भी उत्पन्न होते हुए केवलज्ञान और केवलदर्शन को नहीं रोक सकते हैं।

शरीर-सूत्र

२३—णेरइयाण सरीरगा पचवण्णा पचरसा पण्णत्ता, त जहा—किण्हा जाव (णीला, लोहिता, हालिद्दा), सुक्किल्ला। तित्ता, जाव (कडुया, कसाया, अबिला), मधुरा।

नारकी जीवो के शरीर पाच वण और पाच रस वाले कहे गये है। जैसे—

१ कृष्ण, नील, लाहित, हारिद्र और श्वेत वण वाले।
२ तथा तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधुर रस वाले (२३)।

२४—एव—णिरतर जाव वेमाणियाण।

इसी प्रकार वमानिक तक के सभी दण्डका वाले जीवा के शरीर पाचो वण और पाचो रस वाले जानना चाहिए (२४)।

विवेचन—व्यवहार मे शरीरा के बाहिरी वण नारकी और देवादिको से कृष्ण या नीलादि एक ही वण वाले हाते है। किन्तु निश्चय मे शरीर के विभिन्न अवयव पाचा वण वाले होत ह। इसी प्रकार रसा के विषय मे भी जानना चाहिए। या आगम मे नारकी जीवों के शरीर अशुभ वण और अशुभ रस वाले तथा देवा के शरीर शुभ वण और शुभ रस वाले कहे गये हैं, यह व्यवहारनय का कथन है।

२५—पच सरीरगा पण्णत्ता, त जहा—ओरालिए, वेउव्विए, आहारए, तेयए, कम्मए।

शरीर पाच प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ औदारिकशरीर, २ वक्रियशरीर, ३ आहारकशरीर,
४ तजसशरीर, ५ कामणशरीर (२५)।

२६—ओरालियसरीरे पचवण्णे पचरसे पण्णत्ते, त जहा—किण्हे, जाव (णीले, लोहिते, हालिद्दे), सुक्किल्ले। तित्ते, जाव (कडुए, कसाए, अबिले), महुरे। २७—एव जाव कम्मगसरीरे। [वेउव्वियसरीरे पचवण्णे पचरसे पण्णत्ते, त जहा—किण्हे, णीले, लोहिते, हालिद्दे, सुक्किल्ले। तित्ते, कडुए कसाए, अबिले महुरे। २८—आहारयसरीरे पचवण्णे पचरसे पण्णत्त, त जहा—किण्हे, णीले, लोहिते, हालिद्दे, सुक्किल्ले। तित्ते कडुए, कसाए, अबिले, महुरे। २९—तेययसरीरे पचवण्णे पचरसे पण्णत्ते, त जहा—किण्हे, णीले, लोहिते, हालिद्दे, सुक्किल्ले। तित्ते, कडुए, कसाए, अबिले, महुरे। ३०—कम्मगसरीरे पचवण्णे पचरसे पण्णत्ते त जहा—किण्हे, णीले लोहिते, हालिद्दे, सुक्किल्ले। तित्ते, कडुए, कसाए, अबिले, महुरे।]

औदारिक शरीर पाच वण और पाच रस वाला कहा गया है। जसे—

१ कृष्ण, नील, लाहित, हारिद्र और श्वेत वण वाला।
२ तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधुर रस वाला (२६)।

वैक्रियशरीर पाच वण और पाच रस वाला कहा गया है। जैसे—

१ कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र और श्वेतवण वाला।
२ तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधुर रस वाला (२७)।

आहारक शरीर पाच वण, पाच रस वाला कहा गया है। जैसे—

१ कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र और श्वेत वर्ण वाला।
२ तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधुर रस वाला (२८)।

तैजस शरीर पांच वर्ण, पांच रस वाला कहा गया है। जैसे—
१ कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र और श्वेत वर्ण वाला।
२ तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधुर रस वाला (२९)।

कार्मण शरीर पांच वर्ण और पांच रस वाला कहा गया है। जैसे—
१ कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र और श्वेत वर्ण वाला।
२ तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधुर रस वाला (३०)।

३१—सव्वेवि ण बादरबोंदिधरा कलेवरा पंचवण्णा पंचरसा दुगंधा अट्ठफासा।

सभी बादर (स्थूल) शरीर के धारक कलेवर पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श वाले कहे गये हैं (३१)।

विवेचन—उदार या स्थूल पुद्गलों से निर्मित, रस, रक्तादि सप्त धातुमय शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं। यह मनुष्य और तिर्यग्गति के जीवों के ही होता है। नाना प्रकार के रूप बनाने में समर्थ शरीर को वैक्रिय शरीर कहते हैं। यह देव और नारकी जीवों के होता है। तथा वैक्रियलब्धि को प्राप्त करने वाले मनुष्य, तिर्यंचों और वायुकायिक जीवों के भी होता है। तपस्याविशेष से चतुर्दश पूर्वधर महामुनि के आहारकलब्धि के प्रभाव से आहारकशरीर उत्पन्न होता है। जब उक्त मुनि को सूक्ष्म तत्त्व में कोई शंका उत्पन्न होती है, और वहाँ पर सर्वज्ञ का अभाव होता है, तब उक्त शरीर का निर्माण होकर उनके मस्तक से एक हाथ का पुतला निकल कर सर्वज्ञ के समीप पहुँचता है और उनसे शंका का समाधान पाकर वापिस आकर के मुनि के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। इस शरीर का निर्माण, निर्गमन और वापिस प्रवेश एक मुहूर्त के भीतर ही हो जाता है। जिस शरीर के निमित्त से शरीर में तेज, दीप्ति और भोजन-पाचन की शक्ति प्राप्त होती है, उसे तैजसशरीर कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है—१ निस्सरणात्मक (बाहर निकलने वाला) और २ अनिस्सरणात्मक (बाहर न निकलने वाला)। निस्सरणात्मक तैजस शरीर तो तेजोलब्धिसम्पन्न मुनि के प्रकट होता है, और वह शाप और अनुग्रह करने में समर्थ होता है। अनिस्सरणात्मक तैजस शरीर सभी संसारी जीवों के होता है। कर्मों के बीजभूत उत्पादक शरीर को, या आठों कर्मों के समुदाय को कार्मण शरीर कहते हैं।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि औदारिक शरीर से आगे के शरीर उत्तरोत्तर सूक्ष्म होते हैं, किन्तु उनके प्रदेशों की संख्या आहारक शरीर तक असंख्यातगुणित और आगे के दोनों शरीरों के प्रदेश अनन्त गुणित होते हैं। तैजस और कार्मण शरीर सभी संसारी जीवों के सदा ही पाये जाते हैं। केवल ये दोनों शरीर विग्रहगति में ही पाये जाते हैं। शेष समय में उनके साथ औदारिक शरीर मनुष्य तिर्यंचों में, तथा वैक्रिय शरीर देव नारकों में, इस प्रकार तीन-तीन शरीर पाये जाते हैं। वैक्रियलब्धि-सम्पन्न मनुष्य तिर्यंचों के, या आहारकलब्धिसम्पन्न मनुष्यों के चार शरीर एक साथ पाये जाते हैं।

किन्तु पाचो शरीर एक साथ कभी भी किसी जीव के नही पाये जाते क्योकि वैक्रिय और आहारक शरीर एक जीव के एक साथ नही होते है ।

तीर्थभेद सूत्र

३२—पचहि ठाणेहि पुरिम पच्छिमगाण जिणाण दुग्गम भवति त जहा—दुआइक्ख, दुव्विभज्ज, दुपस्स, दुतितिक्ख, दुरणुचर ।

प्रथम और अतिम तीर्थंकर जिनो के शासन मे पाच स्थान दुगम (दुर्बोध्य) होते है । जसे—

१ दुराख्येय—धमतत्त्व का व्याख्यान करना दुगम होता है ।

२ दुर्विभाज्य—तत्त्व का नय-विभाग से समझाना दुगम होता है ।

३ दुदश—तत्त्व का युक्तिपूवक निदशन करना दुगम होता है ।

४ दुस्तितिक्ष—उपसग-परीषहादि का सहन करना दुगम होता है ।

५ दुरनुचर—धम का आचरण करना दुगम होता है (३२) ।

विवेचन—प्रथम तीथकर के साधु ऋजु (सरल) और जड (अल्प या मन्दज्ञानी) होते हैं, इसलिए उनको धम का व्याख्यान करना, समझाना आदि बडा दुगम (कठिन) होता है । अतिम तीर्थंकर के समय के साधु वक्र (कुटिल) और जड होते है, इसलिए उनको भी तत्त्व का समझाना आदि दुगम होता है । जब धम या तत्त्व समझेगे ही नही, तब उसका आचरण क्या करेंगे ? प्रथम तीथकर के समय के पुरुष अधिक सुकुमार होते है, अत उन्ह परीपहादि का सहना कठिन होता है और अतिम तीर्थंकर के समय के पुरुष चचल मनोवृत्ति वाले होते हैं । और चित्त की एकाग्रता के विना न परीपहादि सहन किये जा सकते है और न धम का आचरण या परिपालन ही ठीक हो सकता है ।

३३—पचहि ठाणेहि मज्झिमगाण जिणाण सुगम भवति, त जहा—सुआइक्ख, सुविभज्ज, सुपस्स, सुतितिक्ख, सुरणुचर ।

मध्यवर्ती (बाईस) तीर्थंकरो के शासन म पाच स्थान सुगम (सुबोध्य) होते ह । जसे—

१ स्वाख्येय—धमतत्त्व का व्याख्यान करना सुगम होता ह ।

२ सुविभाज्य—तत्त्व का नय विभाग से समझाना सुगम होता है ।

३ सुदश—तत्त्व का युक्तिपूवक निदर्शन करना सुगम होता है ।

४ सुतितिक्ष—उपसग-परीपहादि का सहन करना सुगम होता है ।

५ स्वनुचर—धम का आचरण करना सुगम होता है ।

विवेचन—मध्यवर्ती बाईस तीर्थकरो के समय के पुरुप ऋजु (सरल) और प्राज्ञ (बुद्धिमान्) होते हैं, अत उनको धमतत्त्व का समझाना भी सरल होता है और परीपहादि का सहन करना और धम का पालन करना भी आसान होता है (३३) ।

अभ्यनुज्ञात सूत्र

३४—पच ठाणाइ समणेण भगवता महावीरेण समणाग णिग्गथाण णिच्च वण्णिताइ णिच्च कित्तिताइ णिच्च वुइयाइ णिच्च पसत्थाइ णिच्चमब्भणुण्णाताइ भवति, त जहा—खती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे, लाघवे।

श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निग्रन्थो के लिए पाच स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्तित किये हैं, व्यक्त किये हैं, प्रशसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये है। जैसे—

१ क्षान्ति (क्षमा) २ मुक्ति (निर्लोभता), ३ आर्जव (सरलता) ४ मार्दव (मृदुता) और लाघव (लघुता) (३४)।

३५—पच ठाणाइ समणेण भगवता महावीरेण जाव (समणाण णिग्गथाण णिच्च वण्णिताइ णिच्च कित्तिताइ णिच्च वुइयाइ णिच्च पसत्थाइ णिच्च) अब्भणुण्णाताइ भवति, त जहा—सच्चे, सजमे, तवे, चियाए, बभचेरवासे।

श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निग्रन्थो के लिए पाच स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्तित किये हैं, व्यक्त किये हैं, प्रशसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये है। जैसे—

१ सत्य, २ सयम, ३ तप, ४ त्याग और ५ ब्रह्मचर्य (३५)।

विवेचन—यति धर्म नाम से प्रसिद्ध दश धर्मों का निर्देश यहाँ पर दो सूत्रो मे किया गया है और दशवें स्थान मे उनका वर्णन श्रमणधर्म के रूप मे किया गया है। दोनो ही स्थानो के क्रम मे कोई अन्तर नही है। किन्तु तत्त्वार्थसूत्र-वर्णित दश धर्मों के क्रम मे तथा नामो मे भी कुछ अन्तर है। जो इस प्रकार है—

स्थानाङ्ग-सम्मत-दश श्रमण धर्म	तत्त्वार्थ सूत्रोक्त दशधर्म
१ क्षान्ति	१ क्षमा
२ मुक्ति	२ मार्दव
३ आर्जव	३ आर्जव
४ मार्दव	४ शौच
५ लाघव	५ सत्य
६ सत्य	६ सयम
७ सयम	७ तप
८ तप	८ त्याग
९ त्याग	९ आकिंचन्य
१० ब्रह्मचर्यवास	१० ब्रह्मचर्य

नाम और क्रम में किंचित् अन्तर होने पर भी अर्थ मे कोई मौलिक अन्तर नही है।

३६—पच ठाणाइ समणेण जाव (भगवता, महावीरेण समणाण णिग्गथाण णिच्च वण्णिताइ णिच्च कित्तिताइ णिच्च बुइयाइ णिच्च पसत्थाइ णिच्च) अब्भणुण्णाताइ भवति, त जहा—उक्खित्त-चरए, णिक्खित्तचरए, अतचरए, पतचरए, लूहचरए ।।

श्रमण भगवान महावीर ने श्रमण-निग्रन्थो के लिए पाच (अभिग्रह) स्थान सदा वर्णित किये है, कीर्तित किये हैं, व्यक्त किये है, प्रशसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये हैं । जसे—

१ उत्क्षिप्तचरक—राधने के पात्र मे से पहले ही बाहर निकाला हुआ आहार ग्रहण करू गा ऐसा अभिग्रह करने वाला मुनि ।
२ निक्षिप्तचरक—यदि गृहस्थ राधने के पात्र मे से आहार दे तो मैं ग्रहण करू, ऐसा अभिग्रह करने वाला मुनि ।
३ अतचरक—गृहस्थ-परिवार के भोजन करने के पश्चात् बचा हुआ यदि अनुच्छिष्ट आहार मिले, तो मैं ग्रहण करू, ऐसा अभिग्रह करने वाला मुनि ।
४ प्रातचरक—तुच्छ या बासी आहार लेने का अभिग्रह करने वाला मुनि ।
५ रूक्षचरक—सब प्रकार के रसो से रहित रूखे आहार के ग्रहण करने का अभिग्रह करने वाला मुनि (३६) ।

३७—पच ठाणाइ जाव (समणेण भगवता महावीरेण समणाण णिग्गथाण णिच्च वण्णिताइ णिच्च कित्तिताइ णिच्च बुइयाइ णिच्च पसत्थाइ णिच्च) अब्भणुण्णाताइ भवति, त जहा—अण्णातचरए, अण्णइलायचरए, मोणचरए, ससट्ठकप्पिए, तज्जातससट्ठकप्पिए ।।

पुन श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निग्रन्थो के लिए पाच (अभिग्रह) स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्तित किये हैं, व्यक्त किये हैं, प्रशसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये हैं । जैसे—

१ अज्ञातचरक—अपनी जाति कुलादि को बताये विना भिक्षा लेने वाला मुनि ।
२ अन्यग्लायक चरक—दूसरे रोगी मुनि के लिए भिक्षा लाने वाला मुनि ।
३ मौनचरक—विना बोले मौनपूर्वक भिक्षा लाने वाला मुनि ।
४ ससृष्टकल्पिक—भोजन से लिप्त हाथ या कडछी आदि से भिक्षा लेने वाला मुनि ।
५ तज्जात-ससृष्टकल्पिक—देय द्रव्य से लिप्त हाथ आदि से भिक्षा लेने वाला मुनि (३७) ।

३८—पच ठाणाइ जाव (समणेण भगवता महावीरेण समणाण णिग्गथाण णिच्च वण्णिताइ णिच्च कित्तिताइ णिच्च बुइयाइ णिच्च पसत्थाइ णिच्च) अब्भणुण्णाताइ भवति, त जहा—उवणिहिए, सुद्धेसणिए, सखादत्तिए, दिट्ठलाभिए, पुट्ठलाभिए ।।

पुन श्रमण भगवान महावीर ने श्रमण-निग्रन्थो के लिए पाच (अभिग्रह) स्थान सदा वर्णित किये है, कीर्तित किये हैं, व्यक्त किये है, प्रशसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये हैं । जैसे—

१ औपनिधिक—अन्य स्थान मे लाये और समीप रखे आहार को लेने वाला भिक्षुक ।
२ शुद्धैषणिक—निर्दोष आहार की गवेषणा करने वाला भिक्षुक ।
३ सख्यादत्तिक—सीमित सख्या मे दत्तियो का नियम करके आहार लेने वाला भिक्षुक ।

४ दृष्टलाभिक—सामने दीखने वाले आहार-पान को लेने वाला भिक्षुक।
५ पृष्टलाभिक—'क्या भिक्षा लोगे' ? यह पूछे जाने पर ही भिक्षा लेने वाला भिक्षुक (३८)।

३९—पंच ठाणाइं जाव (समणेणं भगवता महावीरेण समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं) अब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—आयंबिलिए, णिव्विइए, पुरिमड्ढिए, परिमितपिंडवातिए, भिण्णपिंडवातिए ।।

पुनः श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए पांच (अभिग्रह) स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्तित किये हैं, व्यक्त किये हैं, प्रशंसित किये हैं, और अभ्यनुज्ञात किये हैं। जैसे—

१ आचाम्लिक—'आयंबिल' करने वाला भिक्षुक।
२ निर्विकृतिक—घी आदि विकृतियों का त्याग करने वाला भिक्षुक।
३ पूर्वार्धिक—दिन के पूर्वार्ध में भोजन नहीं करने के नियम वाला भिक्षुक।
४ परिमितपिण्डपातिक—परिमित अन्न-पिंडों या वस्तुओं की भिक्षा लेने वाला भिक्षुक।
५ भिन्नपिण्डपातिक—खंड खंड किये अन्न-पिण्ड की भिक्षा लेने वाला भिक्षुक (३९)।

४०—पंच ठाणाइं जाव (समणेणं भगवता महावीरेण समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं) अब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—अरसाहारे, विरसाहारे, अंताहारे, पंताहारे, लूहाहारे ।।

पुनः श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पांच (अभिग्रह) स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्तित किये हैं, व्यक्त किये हैं, प्रशंसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये हैं। जैसे—

१ अरसाहार—हींग आदि के बघार से रहित भोजन लेने वाला भिक्षुक।
२ विरसाहार—पुराने धान्य का भोजन करने वाला भिक्षुक।
३ अन्त्याहार—बचे-खुचे आहार को लेने वाला भिक्षुक।
४ प्रान्ताहार—तुच्छ आहार को लेने वाला भिक्षुक।
५ रूक्षाहार—रूखा-सूखा आहार करने वाला भिक्षुक (४०)।

४१—पंच ठाणाइं (समणेणं भगवता महावीरेण समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं) अब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—अरसजीवी, विरसजीवी, अंतजीवी, पंतजीवी, लूहजीवी ।।

पुनः श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पांच (अभिग्रह) स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्तित किये हैं, व्यक्त किये हैं, प्रशंसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये हैं। जैसे—

१ अरसजीवी—जीवन भर रस-रहित आहार करने वाला भिक्षुक।
२ विरसजीवी—जीवन भर विरस हुए पुराने धान्य का भात आदि लेने वाला भिक्षुक।
३ अन्त्यजीवी—जीवन भर बचे खुचे आहार को लेने वाला भिक्षुक।
४ प्रान्तजीवी—जीवन भर तुच्छ आहार को लेने वाला भिक्षुक।
५ रूक्षजीवी—जीवन भर रूखे-सूखे आहार को लेने वाला भिक्षुक (४१)।

४२—पच ठाणाइ (समणेण भगवता महावीरेण समणाण णिग्गथाण णिच्च वण्णिताइ णिच्च कित्तिताइ णिच्च बुइयाइ णिच्च पसत्थाइ णिच्च अब्भणुण्णाताइ) भवति, त जहा—ठाणातिए, उक्कुडुआसणिए पडिमट्ठाई वीरासणिए, णेसज्जिए ।।

श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निग्रन्थो के लिए पाच स्थान सदा वर्णित किये है, कीर्तित किये हैं, व्यक्त किये है, प्रशसित किये है और अभ्यनुज्ञात किये हैं । जैसे—

१ स्थानायतिक—दोनो भुजाओ को नीचे घुटनो तक लबाकर कायोत्सग मुद्रा मे खडे रहने वाला मुनि ।
२ उत्कुटुकासनिक—उकडू बैठने वाला मुनि ।
३ प्रतिमास्थायी—प्रतिमा-मूर्त्ति के समान पद्मासन से बैठने वाला मुनि । अथवा एकरात्रिक आदि भिक्षुप्रतिमा को धारण करने वाला मुनि ।
४ वीरासनिक—वीरासन से बैठने वाला मुनि ।
५ नैषधिक—पालथी लगाकर बैठने वाला मुनि ।

विवेचन—भूमि पर पैर रखके सिंहासन या कुर्सी पर बैठने से शरीर की जो स्थिति होती है, उसी स्थिति मे सिंहासन या कुर्सी के निकाल देने पर स्थित रहने को वीरासन कहते हैं । इस आसन मे वीर पुरुष ही अवस्थित रह सकता है, इसीलिए यह वीरासन कहलाता है । निषद्या शब्द का सामान्य अर्थ बैठना है आगे इसी स्थान के सूत्र ५० मे इसके पाच भेदो का विशेष वर्णन किया जायगा ।

४३—पच ठाणाइ (समणेण भगवता महावीरेण समणाण णिग्गथाण णिच्च वण्णिताइ णिच्च कित्तिताइ णिच्च बुइयाइ णिच्च पसत्थाइ णिच्च अब्भणुण्णाताइ) भवति, त जहा—दडायतिए, लगडसाई, आतावए, अवाउडए, अकडूयए ।।

श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निग्रन्थो के लिए पाच स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्त्तित किये हैं, व्यक्त किये है, प्रशसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये हैं । जैसे—

१ दण्डायतिक—काठ के दड के समान सीधे पैर पसार कर चित सोने वाला मुनि ।
२ लगडशायी—एक करवट से या जिसमें मस्तक और एडी भूमि मे लगे और पीठ भूमि मे न लगे, ऊपर उठी रहे, इस प्रकार से सोने वाला मुनि ।
३ आतापक—शीत ताप आदि को सहने वाला मुनि ।
४ अपावृतक—वस्त्र-रहित होकर रहने वाला मुनि ।
५ अकण्डूयक—शरीर को नहीं खुजाने वाला मुनि (४३) ।

महानिर्जर सूत्र

४४—पचहि ठाणेहि समणे णिग्गथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति, त जहा—अगिलाए आयरियवेयावच्च करेमाणे, अगिलाए उवज्झायवेयावच्च करेमाणे, अगिलाए थेरवेयावच्च करेमाणे, अगिलाए तवस्सिवेयावच्च करेमाणे, अगिलाए गिलाणवेयावच्च करेमाणे ।

पाच स्थानो से श्रमण-निग्रन्थ महान् कर्म निर्जरा करने वाला और महापर्यवसान (ससार का सर्वथा उच्छेद या जन्म-मरण का अन्त करने वाला) होता है । जैसे—

४ दृष्टलाभिक—सामने दीखने वाले आहार-पान को लेने वाला भिक्षुक।
५ पृष्टलाभिक—'क्या भिक्षा लोगे'? यह पूछे जाने पर ही भिक्षा लेने वाला भिक्षुक (३८)।

३६—पच ठाणाइ जाव (समणेण भगवता महावीरेण समणाण णिग्गथाण णिच्च वण्णिताइ णिच्च कित्तिताइ णिच्च बुइयाइ णिच्च पसत्थाइ णिच्च) अब्भणुण्णाताइ भवति, त जहा— आयबिलिए, णिव्विइए, पुरिमड्ढिए, परिमितपिंडवातिए, भिण्णपिंडवातिए ॥

पुन श्रमण भगवान महावीर ने श्रमण-निग्रन्थो के लिए पाच (अभिग्रह) स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्तित किये है, व्यक्त किये ह, प्रशसित किये हैं, और अभ्यनुज्ञात किये ह। जसे—

१ आचाम्लिक—'आयबिल' करने वाला भिक्षुक।
२ निर्विकृतिक—घी आदि विकृतियो का त्याग करने वाला भिक्षुक।
३ पूर्वार्धिक—दिन के पूर्वार्ध मे भोजन नही करने के नियम वाला भिक्षुक।
४ परिमितपिण्डपातिक—परिमित अन्न-पिंडो या वस्तुओ की भिक्षा लेने वाला भिक्षुक।
५ भिन्नपिण्डपातिक—खड-खड किये अन्न-पिण्ड की भिक्षा लेने वाला भिक्षुक (३६)।

४०—पच ठाणाइ जाव (समणेण भगवता महावीरेण समणाण णिग्गथाण णिच्च वण्णिताइ णिच्च कित्तिताइ णिच्च बुइयाइ णिच्च पसत्थाइ णिच्च) अब्भणुण्णाताइ भवति, त जहा—अरसाहारे, विरसाहारे, अताहारे, पताहारे, लूहाहारे ॥

पुन श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निग्रन्थो के लिए पाच (अभिग्रह) स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्तित किये हैं, व्यक्त किये ह, प्रशसित किये है और अभ्यनुज्ञात किये हैं। जैसे—

१ अरसाहार—हींग आदि के बघार से रहित भोजन लेने वाला भिक्षुक।
२ विरसाहार—पुराने धान्य का भोजन करने वाला भिक्षुक।
३ अन्त्याहार—बचे-खुचे आहार को लेने वाला भिक्षुक।
४ प्रान्ताहार—तुच्छ आहार को लेने वाला भिक्षुक।
५ रूक्षाहार—रूखा सूखा आहार करने वाला भिक्षुक (४०)।

४१—पच ठाणाइ (समणेण भगवता महावीरेण समणाण णिग्गथाण णिच्च वण्णिताइ णिच्च कित्तिताइ णिच्च बुइयाइ णिच्च पसत्थाइ णिच्च) अब्भणुण्णाताइ भवति, त जहा—अरसजीवी, विरसजीवी, अतजीवी, पतजीवी, लूहजीवी ॥

पुन श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए पाच (अभिग्रह) स्थान सदा वर्णित किये ह, कीर्तित किये हैं, व्यक्त किये हैं, प्रशसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये हैं। जैसे—

१ अरसजीवी—जीवन भर रस-रहित आहार करने वाला भिक्षुक।
२ विरसजीवी—जीवन भर विरस हुए पुराने धान्य का भात आदि लेने वाला भिक्षुक।
३ अन्त्यजीवी—जीवन भर बचे खुचे आहार को लेने वाला भिक्षुक।
४ प्रान्तजीवी—जीवन भर तुच्छ आहार को लेने वाला भिक्षुक।
५ रूक्षजीवी—जीवन भर रूखे-सूखे आहार को लेने वाला भिक्षुक (४१)।

४२—पच ठाणाइ (समणेण भगवता महावीरेण समणाण णिग्गथाण णिच्च वण्णिताइ णिच्च कित्तिताइ णिच्च बुइयाइ णिच्च पसत्थाइ णिच्च अब्भणुण्णाताइ) भवति, त जहा—ठाणातिए, उक्कुडुआसणिए, पडिमट्ठाई वीरासणिए, णेसज्जिए ।।

श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए पाच स्थान सदा वर्णित किये है, कीर्तित किये है, व्यक्त किये है, प्रशसित किये है और अभ्यनुज्ञात किये हैं । जैसे—

१ स्थानायतिक—दोनो भुजाओं को नीचे घुटनों तक लबाकर कायोत्सर्ग मुद्रा से खड़े रहने वाला मुनि ।
२ उत्कुटुकासनिक—उकडू बैठने वाला मुनि ।
३ प्रतिमास्थायी—प्रतिमा-मूर्त्ति के समान पद्मासन से बैठने वाला मुनि । अथवा एकरात्रिक आदि भिक्षुप्रतिमा को धारण करने वाला मुनि ।
४ वीरासनिक—वीरासन से बैठने वाला मुनि ।
५ नैषद्यिक—पालथी लगाकर बैठने वाला मुनि ।

विवेचन—भूमि पर पैर रखके सिंहासन या कुर्सी पर बैठने से शरीर की जो स्थिति होती है, उसी स्थिति मे सिंहासन या कुर्सी के निकाल देने पर स्थित रहने को वीरासन कहते हैं । इस आसन मे वीर पुरुष ही अवस्थित रह सकता है, इसीलिए यह वीरासन कहलाता है । निषद्या शब्द का सामान्य अर्थ बैठना है आगे इसी स्थान के सूत्र ५० मे इसके पाच भेदो का विशेष वर्णन किया जायगा ।

४३—पच ठाणाइ (समणेण भगवता महावीरेण समणाण णिग्गथाण णिच्च वण्णिताइ णिच्च कित्तिताइ णिच्च बुइयाइ णिच्च पसत्थाइ णिच्च अब्भणुण्णाताइ) भवति, त जहा—दडायतिए, लगडसाई, आतावए, अवाउडए, अकडूयए ।।

श्रमण भगवान महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए पाच स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्तित किये है, व्यक्त किये है, प्रशसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये है । जैसे—

१ दण्डायतिक—काठ के दड के समान सीधे पैर पसार कर चित सोने वाला मुनि ।
२ लगडशायी—एक करवट से या जिसमे मस्तक और एडी भूमि मे लगे और पीठ भूमि मे न लगे, ऊपर उठी रहे, इस प्रकार से सोने वाला मुनि ।
३ आतापक—शीत-ताप आदि को सहने वाला मुनि ।
४ अपावृतक—वस्त्र-रहित होकर रहने वाला मुनि ।
५ अकण्डूयक—शरीर का नहीं खुजाने वाला मुनि (४३) ।

महानिर्जर सूत्र

४४—पचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति, त जहा—अगिलाए आयरियवेयावच्च करेमाणे, अगिलाए उवज्झायवेयावच्च करेमाणे, अगिलाए थेरवेयावच्च करेमाणे, अगिलाए तवस्सिवेयावच्च करेमाणे, अगिलाए गिलाणवेयावच्च करेमाणे ।

पाच स्थानो से श्रमण-निर्ग्रन्थ महान् कर्म निर्जरा करने वाला और महापर्यवसान (ससार का सर्वथा उच्छेद या जन्म-मरण का अन्त करने वाला) होता है । जैसे—

१ ग्लानि-रहित होकर आचाय की वैयावृत्त्य करता हुआ।
२ ग्लानि-रहित होकर उपाध्याय की वैयावृत्त्य करता हुआ।
३ ग्लानि-रहित होकर स्थविर की वयावृत्त्य करता हुआ।
४ ग्लानि-रहित होकर तपस्वी की वयावृत्त्य करता हुआ।
५ ग्लानि-रहित होकर ग्लान (रोगी मुनि) की वैयावृत्त्य करता हुआ (४४)।

४५—पचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति, त जहा—अगिलाए सेहवेयावच्च करेमाणे, अगिलाए कुलवेयावच्च करेमाणे, अगिलाए गणवेयावच्च करेमाणे, अगिलाए सघवेयावच्च करेमाणे, अगिलाए साहम्मियवेयावच्च करेमाणे।

पाच स्थानो से श्रमण-निग्र न्थ महान् कम-निजरा और पयवसान वाला होता है। जसे—

१ ग्लानि-रहित होकर शैक्ष (नवदीक्षित मुनि) की वयावृत्त्य करता हुआ।
२ ग्लानि-रहित होकर कुल (एक आचाय के शिष्य-समूह) की वैयावृत्त्य करता हुआ।
३ ग्लानि-रहित होकर गण (अनेक कुल समूह) की वयावत्त्य करता हुआ।
४ ग्लानि-रहित होकर सघ (अनेक गण-समूह) की वैयावृत्त्य करता हुआ।
५ ग्लानि-रहित होकर साधर्मिक (समान समाचारी वाले) की वैयावृत्त्य करता हुआ (४५)।

विसभोग सूत्र

४६—पचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गथे साहम्मिय सभोइय विसभोइय करेमाणे णातिक्कमति, त जहा—१ सकिरियट्ठाण पडिसेवित्ता भवति। २ पडिसेवित्ता णो आलोएइ। ३ आलोइत्ता णो पट्ठवेति। ४ पट्ठवेत्ता णो णिव्विसति। ५ जाइ इमाइ थेराण ठितिपकप्पाइ भवति ताइ अतियचिय-अतियचिय पडिसेवेति, से हदऽह पडिसेवामि किं म थेरा करेस्सति ?

पाच स्थानो (कारणो) से श्रमण निग्र न्थ अपने साधर्मिक साम्भोगिक को विसभोगिक करे तो भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नही करता। जैसे—

१ जो सक्रिय स्थान (अशुभ कर्म का बन्ध करने वाले अकृत्य कार्य) का प्रतिसेवन करता है।
२ जो आलोचना करने योग्य दोष का प्रतिसेवन कर आलोचना नही करता है।
३ जो आलोचना कर प्रस्थापन (गुरु-प्रदत्त प्रायश्चित्त का प्रारम्भ) नही करता है।
४ जो प्रस्थापन कर निर्वेशन (पूरे प्रायश्चित का सेवन) नही करता।
५ जो स्थविरो के स्थितिकल्प होते हैं, उनमे से एक के बाद दूसरे का अतिक्रमण कर प्रतिसेवना करता है, तथा दूसरो के समझाने पर कहता है—लो, मैं दोष का प्रतिसेवन करता हूँ, स्थविर मेरा क्या करेंगे ? (४६)।

विवेचन—साधु-मण्डली मे एक साथ बैठ कर भोजन और स्वाध्याय आदि के करने वाले साधुओ को 'साम्भोगिक' कहते है। जब कोई साम्भोगिक साधु सूत्रोक्त पाच कारणो मे से किसी एक-दो, या सब ही स्थानो का प्रतिसेवन करता है, तब उसे आचाय साधु-मण्डली से पृथक् कर देते हैं। ऐसे साधु को 'विसम्भोगिक' कहते हैं। उसे विसभोगिक करते हुए आचाय जिन आज्ञा का अतिक्रमण नही करता, प्रत्युत पालन ही करता है।

पारचित-सूत्र

४७—पचहि ठाणेहि समणे णिग्गथे साहम्मिय पारचित करेमाणे णातिक्कमति, त जहा—
१ कुले वसति कुलस्स भेदाए अब्भुट्ठित्ता भवति । २ गणे वसति गणस्स भेदाए अब्भुट्ठेत्ता भवति ।
३ हिंसप्पेही । ४ छिद्दप्पेही । ५ अभिक्खण अभिक्खण पसिणायतणाइ पउजित्ता भवति ।

पाच कारणो से श्रमण-निर्ग्रन्थ अपने सार्धमिक को पाराञ्चित करता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नही करता है । जैसे—

१ जो साधु जिस कुल मे रहता है उसी मे भेद डालने का प्रयत्न करता है ।
२ जो साधु जिस गण मे रहता है, उसी मे भेद डालने का प्रयत्न करता है ।
३ जो हिंसाप्रेक्षी होता है (कुल या गण के साधु का घात करना चाहता है) ।
४ जो कुल या गण के सदस्यो का एव अन्य जनो का छिद्रान्वेषण करता है ।
५ जो बार-बार प्रश्नायतनो का प्रयोग करता है (४७) ।

विवेचन—अगुष्ठ, भुजा आदि मे देवता को बुलाकर लोगो के प्रश्नो का उत्तर देकर उन्हे चमत्कृत करना, सावद्य अनुष्ठान के प्रश्नो का उत्तर देना और असयम के आयतनो (स्थानो) का प्रति सेवन करना प्रश्नायतन कहलाता है । सूत्रोक्त पाच कारणों से साधु का वेष छुडा कर उसे सघ से पृथक् करना पाराञ्चित प्रायश्चित कहलाता है । उक्त पाच कारणो मे से किसी एक-दो, या सभी कारणो से साधु का पाराञ्चित करने की भगवान् की आज्ञा है ।

व्युदग्रहस्थान-सूत्र

४८—आयरियउवज्झायस्स ण गणसि पच वुग्गहट्ठाणा पण्णत्ता, त जहा—

१ आयरियउवज्झाए ण गणसि आण वा धारण वा णो सम्म पउजित्ता भवति ।
२ आयरियउवज्झाए ण गणसि आधारातिणियाए कितिकम्म णो सम्म पउजित्ता भवति ।
३ आयरियउवज्झाए ण गणसि ज सुत्तपज्जवजाते धारेति ते काले-काले णो सम्ममणुप्पवाइत्ता भवति ।
४ आयरियउवज्झाए ण गणसि गिलाणसेहवेयावच्च णो सम्ममब्भुट्ठित्ता भवति ।
५ आयरियउवज्झाए ण गणसि अणापुच्छियचारी यावि हवइ, णो आपुच्छियचारी ।

आचार्य और उपाध्याय के लिए गण मे पाच व्युद्-ग्रहस्थान (विग्रहस्थान) कहे गये हैं । जैसे—
१ आचार्य और उपाध्याय गण मे आज्ञा तथा धारणा का सम्यक प्रयोग न करें ।
२ आचार्य और उपाध्याय गण मे यथारात्निक कृतिकर्म का सम्यक प्रयोग न करें ।
३ आचार्य और उपाध्याय जिन-जिन सूत्र-पर्यवजातो (सूत्र के अर्थ-प्रकारो) को धारण करते है—जानते हैं उनकी समय-समय पर गण को सम्यक् वाचना न दें ।
४ आचार्य और उपाध्याय गण मे रोगी और नवदीक्षित साधुओं का वैयावृत्य करने के लिए सम्यक् प्रकार सावधान न रहे, समुचित व्यवस्था न करें ।
५ आचार्य और उपाध्याय गण को पूछे विना ही अन्यत्र विहार आदि करें, पूछ कर न करें (४८) ।

विवेचन—कलह के कारण को व्युद्-ग्रहस्थान अथवा विग्रहस्थान कहते है। प्रस्तुत सूत्र म वतलाये गये पाच स्थान आचाय या उपाध्याय के लिए कलह के कारण होते है। सूत्र-पठित कुछ विशिष्ट शब्दा का अथ इस प्रकार है—

१ आना — 'हे साधो ! आपको यह करना चाहिए' इस प्रकार के विधेयात्मक आदेश देने को आज्ञा कहते ह। अथवा—कोई गीताथ साधु देशान्तर गया हुआ है। दूसरा गीताथ साधु अपने दोष की आलोचना करना चाहता है। वह अगीताथ साधु के सामने आलोचना कर नही सकता। तव वह अगीताथ साधु के साथ गूढ अथ वाले वाक्यो-द्वारा अपने दोष का निवेदन देशान्तरवासी गीताथ साधु के पास कराता है। ऐसा करने को भी टीकाकार ने 'आज्ञा' कहा है।

२ धारणा—'हे साधो ! आपको ऐसा नहीं करना चाहिए', इस प्रकार निषेधात्मक आदेश को धारणा कहते ह। अथवा—वार-वार आलोचना के द्वारा प्राप्त प्रायश्चित्त-विशेष के अवधारण करने को भी टीकाकार ने धारणा कहा है।

२ यथारात्निक कृतिकम—दीक्षा-पर्याय मे छोटे-बडे साधुओ के क्रम से वन्दनादि कर्त्तव्यो के निर्देश करने को यथारात्निक कृतिकम कहते हैं।

आचाय या उपाध्याय अपने गण में साधुओ का उचित कार्यो के करने का विधान और अनुचित कार्यों का निषेध न करें, तो सघ मे कलह उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार यथारात्निक साधुओ के विनय-वन्दनादि का सघस्थ साधुओ को निर्देश करना भी उनका आवश्यक कत्तव्य है। उसका उल्लघन होने पर भी कलह हो सकता है।

कलह का तीसरा कारण सूत्र-पयवजाता की यथाकाल वाचना न देने का है। आगम-सूत्रो की वाचना देने का यह क्रम है—तीन वप की दीक्षा-पर्याय वाले को आचार-प्रकल्प की, चार वप के दीक्षित को सूत्रकृत की, पाच वप के दीक्षित को दशाश्रुतस्कध, वृहत्कल्प और व्यवहार-सूत्र की, आठ वप के दीक्षित को स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग की, दश वप के दीक्षित को व्याख्या-प्रज्ञप्ति (भगवती) सूत्र की, ग्यारह वप के दीक्षित को क्षुल्लकविमानप्रविभक्ति आदि पाच अध्ययनो की, वारह वप के दीक्षित को अरुणोपपात आदि पाच अध्ययनो की, तेरह वप के दीक्षित को उत्थानश्रुत आदि चार अध्ययनो की, चौदह वप के दीक्षित को आशीविप-भावना की, पन्द्रह वप के दीक्षित को दृष्टिविपभावना की, सोलह वप के दीक्षित को चारण भावना की, सत्रह वप के दीक्षित को महास्वप्न भावना की, अट्ठारह वप के दीक्षित को तेजोनिसग की, उन्नीस वप के दीक्षित को वारहवें दृष्टिवाद अग की और बीस वप के दीक्षित को सर्वाक्षरसन्निपाती श्रुत की वाचना देने का विधान है। जो आचाय या उपाध्याय जितने भी श्रुत का पाठी है, उसको दीक्षा-पर्याय के अनुसार अपने शिष्यो को यथाकाल वाचना देनी चाहिए। यदि वह ऐसा नही करता है, या व्युत्क्रम से वाचना देता है तो उसके ऊपर पक्षपात का दोषारोपण कर कलह हो सकता है।

कलह का चौथा कारण ग्लान और शैक्ष की यथोचित वैयावृत्त्य की सुव्यवस्था न करना है। इससे सघ मे अव्यवस्था होती है और पक्षपात का दोषारोपण भी सभव है।

पाचवा कारण साधु-सघ से पूछे विना अन्यत्र चले जाना आदि है। इससे भी सघ मे कलह हो सकता है।

अत आचार्य और उपाध्याय को इन पाच कारणो के प्रति सदा जागरूक रहना चाहिए।

अव्युदग्रहस्थान-सूत्र

४६—आयरियउवज्झायस्स ण गणसि पचावुग्गहट्ठाणा पण्णत्ता, त जहा—

१ आयरियउवज्झाए ण गणसि आण वा धारण वा सम्म पउजित्ता भवति।

२ एवमाधारातिणिताए (आयरियउवज्झाए ण गणसि) आधारातिणिताए सम्म किइकम्म पउजित्ता भवति।

३ आयरियउवज्झाए ण गणसि जे सुत्तपज्जवजाते धारेति ते काले काले सम्म अणुपवाइत्ता भवति।

४ आयरियउवज्झाए गणसि गिलाणसेहवेयावच्च सम्म अब्भुट्ठित्ता भवति।

५ आयरियउवज्झाए गणसि आपुच्छियचारी यावि भवति णो अणापुच्छियचारी।

आचार्य और उपाध्याय के लिए गण मे पाच अव्युद्-ग्रहस्थान (कलह न होने के कारण) कहे गये है। जैसे—

१ आचार्य और उपाध्याय गण मे आज्ञा तथा धारणा का सम्यक् प्रयोग करें।
२ आचार्य और उपाध्याय गण मे यथारात्निक कृतिकर्म का प्रयोग करें।
३ आचार्य और उपाध्याय जिन जिन सूत्र-पर्यवजातो का धारण करते है, उनकी यथा-समय गण को सम्यक वाचना दें।
४ आचार्य और उपाध्याय गण मे रोगी तथा नवदीक्षित साधुओ की वैयावृत्य कराने के लिए सम्यक् प्रकार से सावधान रहे।
५ आचार्य और उपाध्याय गण को पूछकर अन्यत्र विहार आदि करे, विना पूछे न करे।

उक्त पाच स्थानो का पालन करने वाले आचार्य या उपाध्याय के गण मे कभी कलह उत्पन्न नही होता है (४६)।

निषद्या-सूत्र

५०—पच णिसिज्जाओ पण्णत्ताओ, त जहा—उक्कुडुया, गोदोहिया, समपायपुता, पलियका, अद्धपलियका।

निषद्या पाच प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ उत्कुटुका-निषद्या—उत्कुटासन से बैठना (उकडू बैठना)।
२ गोदोहिका-निषद्या—गाय को दुहने के आसन से बैठना।
३ समपाद-पुता-निषद्या—दोनो पैरो और पुता (पुट्ठों) से भूमि का स्पर्श करके बैठना।
४ पर्यका निषद्या—पद्मासन से बैठना।
५ अर्ध पर्यका-निषद्या—अर्धपद्मासन से बैठना (५०)।

आजवस्थान सूत्र

५१—पच अज्जवट्ठाणा पण्णत्ता, त जहा—साधुग्रज्जव, साधुमद्दव, साधुलाघव, साधुखत्ती, साधुमुत्ती ।

पाच आजव स्थान कहे गये है । जसे—

१ साधु-आजव—मायाचार का सवथा निग्रह करना ।
२ साधु मादव—अभिमान का सवथा निग्रह करना ।
३ साधु-लाघव—गौरव का सवथा निग्रह करना ।
४ साधु-क्षान्ति—क्रोध का सवथा निग्रह करना ।
५ साधु-मुक्ति—लोभ का सवथा निग्रह करना ।

विवेचन—राग-द्वेष की वक्रता से रहित सामायिक सयमी साधु के कर्म या भाव को आजव अर्थात सवर कहते ह । सवर अर्थात, अशुभ कर्मों के आस्रव को रोकने के पाच कारणो का प्रकृत सूत्र मे निरूपण किया गया है । इनमे से लोभकषाय के निग्रह से लाघव और मुक्ति ये दो सवर होत हैं । शेष तीन सवर तीन कषायो के निग्रह से उत्पन्न होते हैं । प्रत्येक आजवस्थान के साथ साधु पद लगाने का अथ है—कि यदि य पाचो कारण सम्यग्दशन पूवक होते ह, तो वे सवर के कारण है, अन्यथा नही । 'साधु' शब्द यहा सम्यक् या समीचीन अथ का वाचक समझना चाहिए (५१) ।

ज्योतिष्क सूत्र

५२—पचविहा जोइसिया पण्णत्ता, त जहा—चदा, सूरा, गहा, णक्खत्ता, ताराओ ।

ज्योतिष्क देव पाच प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१ चन्द्र, २ सूय, ३ ग्रह, ४ नक्षत्र, ५ तारा (५२) ।

देव-सूत्र

५३—पचविहा देवा पण्णत्ता, त जहा—भवियदव्वदेवा, णरदेवा, धम्मदेवा, देवातिदेवा, भावदेवा ।

देव पाच प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१ भव्य-द्रव्य-देव—भविष्य मे होने वाला देव ।
२ नर-देव—राजा, महाराजा यावत चक्रवर्ती ।
३ धम देव—आचाय, उपाध्याय आदि ।
४ देवाधिदेव—अर्हन्त तीथकर ।
५ भावदेव—देव पर्याय मे वर्तमान देव (५३) ।

परिचारणा-सूत्र

५४—पचविहा परियारणा पण्णत्ता, त जहा—कायपरियारणा, फासपरियारणा, रूवपरियारणा, सद्दपरियारणा, मणपरियारणा ।

परिचारणा (मैथुन या कुशील-सेवना) पाच प्रकार की कही गई है । जसे—

१ काय-परिचारणा—मनुष्या के समान मैथुन सेवन करना ।
२ स्पर्श-परिचारणा—स्त्री पुरुष का परस्पर शरीरालिंगन करना ।
३ रूप-परिचारणा—स्त्री-पुरुष का काम-भाव मे परस्पर रूप देखना ।
४ शब्द-परिचारणा—स्त्री पुरुष के काम-भाव मे परस्पर गीतादि सुनना ।
५ मन परिचारणा—स्त्री-पुरुष का काम-भाव मे परस्पर चिन्तन करना (५४) ।

अग्रमहिषी सूत्र

५५—चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो पच अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—काली, राती, रयणी, विज्जू मेहा ।

असुरकुमारराज चमर असुरेन्द्र की पाच अग्रमहिषिया कही गई है । जैसे—
१ काली, २ रात्री, ३ रजनी, ४ विद्युत्, ५ मेघा (५५) ।

५६—बलिस्स ण वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो पच अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—सुभा, णिसुभा, रभा, णिरभा, मदणा ।

वरोचनराज बलि वैरोचनेन्द्र की पाच अग्रमहिषिया कही गई है । जसे—
१ शुम्भा, २ निशुम्भा, ३ रम्भा ४ निरभा, ५, मदना (५६) ।

अनीक-अनीकाधिपति सूत्र

५७—चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो पच सगामिया अणिया, पच सगामिया अणियाधिवती पण्णत्ता, त जहा—पायत्ताणिए, पीढाणिए, कुजराणिए महिसाणिए, रहाणिए ।

दुमे पायत्ताणियाधिवती, सोदामे आसराया पीढाणियाधिवती, कुथू हत्थिराया कुजराणियाधिवती, लोहितक्खे महिसाणियाधिवती, किण्णरे रधाणियाधिवती ।

असुरकुमारराज चमर असुरेन्द्र के सग्राम (युद्ध) करने वाले पाच अनीक (सेनाए) और पाच अनीकाधिपति (सेनापति) कहे गये हैं । जैसे—

१ पादातानीक—पैदल चलने वाली सेना ।
२ पीठानीक—अश्वारोही सेना ।
३ कुजरानीक—गजारोही सेना ।
४ महिषानीक—महिषारोही (भसा पाडा पर बैठने वाली) सेना ।
५ रथानीक—रथारोही सेना (५७) ।

इनके सेनापति इस प्रकार हैं—

१ द्रुम—पादातानीक का अधिपति ।
२ अश्वराज सुदामा—पीठानीक का अधिपति ।
३ हस्तिराज कुथु—कुजरानीक का अधिपति ।
४ लोहिताक्ष—महिषानीक का अधिपति ।
५ किन्नर—रथानीक का अधिपति ।

५८—बलिस्स ण वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो पच सगामियाणिया, पच सगामियाणिया-धिवती पण्णत्ता, त जहा—पायत्ताणिए, (पीढाणिए, कु जराणिए, महिसाणिए), रधाणिए।

महद्दुमे पायत्ताणियाधिवती, महासोदामे आसराया पीढाणियाधिवती, मालकारे हत्थिराया कु जराणियाधिपती महालोहिअक्खे महिसाणियाधिपती, किंपुरिसे रधाणियाधिपती।

वरोचनराज बलि वरोचनेन्द्र क सग्राम करने वाले पाच अनीक और पाच अनीकाधिपति कहे गये हैं। जैसे—

अनीक—१ पादातानीक, २ पीठानीक, ३ कु जरानीक, ४ महिपानीक, ५ रथानीक।
अनीकाधिपति—

१ महाद्रुम—पायातानीक-अधिपति।
२ अश्वराज महासुदामा—पीठानीक-अधिपति।
३ हस्तिराज मालकार—कु जरानीक अधिपति।
४ महालोहिताक्ष—महिपानीक अधिपति।
५ किंपुरुष—रथानीक-अधिपति (५८)।

५९—धरणस्स ण णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो पच सगामिया अणिया, पच सगामिया णियाधिपती पण्णत्ता, त जहा—पायत्ताणिए जाव रहाणिए।

भद्दसेणे पायत्ताणियाधिपती, जसोधरे आसराया पीढाणियाधिपती, सुदसणे हत्थिराया कु जराणियाधिपती, णीलकठे महिसाणियाधिपती, आणदे रहाणियाहिवई।

नागकुमारराज, नागकुमारेन्द्र धरण के सग्राम करने वाले पाच अनीक और पाच अनीकाधिपति कहे गये हैं। जैसे—

अनीक—१ पादातानीक, २ पीठानीक, ३ कु जरानीक, ४ महिपानीक, ५ रथानीक।
अनीकाधिपति— १ भद्रसेन—पादातानीक-अधिपति।
२ अश्वराज यशोधर—पीठानीक-अधिपति।
३ हस्तिराज-सुदर्शन—कु जरानीक-अधिपति।
४ नीलकण्ठ—महिपानीक-अधिपति।
५ आनन्द—रथानीक-अधिपति (५९)।

६०—भूयाणदस्स ण णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो पच सगामियाणिया, पच सगामिया-णियाहिवई पण्णत्ता, त जहा—पायत्ताणिए जाव रहाणिए।

दक्खे पायत्ताणियाहिवई, सुग्गीवे आसराया पीढाणियाहिवई, सुविक्कमे हत्थिराया कु जराणियाहिवई, सेयकठे महिसाणियाहिवई, णदुत्तरे रहाणियाहिवई।

नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र भूतानन्द के सग्राम करने वाले पाच अनीक और पाच अनीकाधिपति कहे गये है। जैसे—

अनीक—१ पादातानीक, २ पीठानीक, ३ कु जरानीक, ४ महिपानीक, ५ रथानीक।

अनीकाधिपति— १ दक्ष—पादातानीक-अधिपति ।
२ सुग्रीव अश्वराज—पीठानीक-अधिपति ।
३ सुविक्रम हस्तिराज—कु जरानीक-अधिपति ।
४ श्वेतकण्ठ—महिषानीक अधिपति ।
५ नन्दोत्तर—रथानीक अधिपति (६०) ।

६१—वेणुदेवस्स ण सुवण्णिदस्स सुवण्णकुमाररण्णो पच सगामियाणिया, पच सगामियाणि याहिपती पण्णत्ता, त जहा—पायत्ताणिए, एव जधा धरणस्स तधा वेणुदेवस्सवि । वेणुदालियस्स जहा भूताणदस्स ।

सुपर्णकुमारराज सुपर्णेन्द्र वेणुदेव के सग्राम करने वाले पाच अनीक और अनीकाधिपति धरण के समान कहे गये है । जसे—

अनीक—१ पादातानीक, २ पीठानीक, ३ कु जरानीक, ४ महिषानीक, ५ रथानीक ।

अनीकाधिपति— १ भद्रसेन—पादातानीक-अधिपति ।
२ अश्वराज यशोधर—पीठानीक अधिपति ।
३ हस्तिराज सुदर्शन—कु जरानीक-अधिपति ।
४ नीलकण्ठ—महिषानीक अधिपति ।
५ आनन्द—रथानीक-अधिपति (६१) ।

जसे भूतानन्द के पाच अनीक और पाच अनीकाधिपति कहे गये है, उसी प्रकार नागकुमारराज, नागकुमारेन्द्र वेणुदालि के भी पाच अनीक और पाच अनीकाधिपति कहे गये हैं ।

६२—जधा धरणस्स तहा सव्वेसि दाहिणिल्लाण जाव घोसस्स ।

जिस प्रकार धरण के पाच अनीक और पाच अनीकाधिपति कहे गये हैं, उसी प्रकार सभी दक्षिणदिशाधिपति शेष भवनपतियो के इन्द्र—हरिकान्त, अग्निशिख, पूर्ण, जलकान्त, अमितगति, *वेलम्ब और घोष के भी सग्राम करने वाले पाच अनीक और पाच अनीकाधिपति क्रमश — भद्रसेन,* अश्वराज यशोधर, हस्तिराज सुदर्शन, नीलकण्ठ और आनन्द जानना चाहिये ।

६३—जधा भूताणदस्स तधा सव्वेसि उत्तरिल्लाण जाव महाघोसस्स ।

जिस प्रकार भूतानन्द के पाच अनीक और पाच अनीकाधिपति कहे गये है, उसी प्रकार उत्तरदिशाधिपति शेष सभी भवनपतियो के अर्थात् वेणुदालि, हरिस्सह, अग्निमानव, विशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभजन और महाघोष के पाच-पाच अनीक और पाच-पाच अनीकाधिपति उन्ही नामवाले जानना चाहिये (६३) ।

६४—सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो पच सगामिया अणिया, पच सगामियाणियाधिवती पण्णत्ता, त जहा—पायत्ताणिए, (पीढाणिए कु जराणिए), उसभाणिए, रधाणिए ।

हरिणेगमेसी पायत्ताणियाधिवती, वाऊ आसराया पीढाणियाधिवती, एरावणे हत्थिराया कु जराणियाधिवती, दामड्ढी उसभाणियाधिपती, माढरे रधाणियाधिपती ।

दनराज देवेन्द्र शक्र के सग्राम करने वाले पाच अनीक और पाँच अनीकाधिपति कहे गये हैं। जसे—

अनीक—१ पादातानीक, २ पीठानीक, ३ कुंजरानीक ४ वृषभानीक, ५ रथानीक।

अनीकाधिपति— १ हरिनैगमेषी—पादातानीक-अधिपति।
२ अश्वराज वायु—पीठानीक-अधिपति।
३ हस्तिराज ऐरावण—कुंजरानीक अधिपति।
४ दामर्धि—वृषभानीक-अधिपति।
५ माठर—रथानीक-अधिपति (६४)।

६५—ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो पंच संगामिया अणिया जाव पायत्ताणिए, पीढाणिए, कुंजराणिए, उसभाणिए, रधाणिए।

लहुपरक्कमे पायत्ताणियाधिवती, महावाऊ आसराया पीढाणियाहिवती, पुप्फदंते हत्थिराया कुंजराणियाहिवती, महादामड्ढी उसभाणियाहिवती महामाढरे रधाणियाहिवती।

देवराज देवेन्द्र ईशान के सग्राम करने वाले पाच अनीक और पाच अनीकाधिपति कहे गये हैं। जैसे—

अनीक—१ पादातानीक, १ पीठानीक, ३ कुंजरानीक, ४ वृषभानीक, ५ रथानीक।

अनीकाधिपति— १ लघुपराक्रम—पादातानीक अधिपति।
२ अश्वराज महावायु—पीठानीक अधिपति।
३ हस्तिराज पुष्पदन्त—कुंजरानीक-अधिपति।
४ महादामर्धि—वृषभानीक-अधिपति।
५ महामाठर—रथानीक-अधिपति (६५)।

६६—जधा सक्कस्स तहा सव्वेसिं दाहिणिल्लाण जाव आरणस्स।

जिस प्रकार देवराज देवेन्द्र शक्र के पाच अनीक और पाच अनीकाधिपति कहे गये हैं, उसी प्रकार आरणकल्प तक के सभी दक्षिणेन्द्रों के भी सग्राम करने वाले पाच-पाच अनीक और पाच पाच अनीकाधिपति जानना चाहिए (६६)।

६७—जधा ईसाणस्स तहा सव्वेसिं उत्तरिल्लाण जाव अच्चुतस्स।

जिस प्रकार देवराज देवेन्द्र ईशान के पाच अनीक और पाच अनीकाधिपति कहे गये हैं, उसी प्रकार अच्युतकल्प तक के सभी उत्तरेन्द्रों के भी सग्राम करनेवाले पाच-पाच अनीक और पाच-पाच अनीकाधिपति जानना चाहिए (६७)।

देवस्थिति-सूत्र

६८—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अब्भतरपरिसाए देवाणं पंच पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

देवराज देवेन्द्र शक्र की अतरग परिषद् के परिषद्-देवो की स्थिति पाच पल्योपम कही गई है (६८)।

६९—ईसाणस्स ण देविदस्स देवरण्णो अब्भतरपरिसाए देवीण पच पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता।

देवराज देवेन्द्र ईशान की अतरग परिषद की देवियो की स्थिति पाच पल्योपम कही गई है (६९)।

प्रतिघात-सूत्र

७०—पचविहा पडिहा पण्णत्ता त जहा—गतिपडिहा, ठितिपडिहा, बधणपडिहा, भोगपडिहा, बल वीरिय पुरिसयार-परक्कमपडिहा।

प्रतिघात (अवरोध या स्खलन) पाच प्रकार के कहे गये है। जैसे—
१ गति प्रतिघात—अशुभ प्रवृत्ति के द्वारा शुभगति का अवरोध।
२ स्थिति प्रतिघात—उदीरणा के द्वारा कर्मस्थिति का अल्पीकरण।
३ बन्धन प्रतिघात—शुभ औदारिक शरीर-बन्धनादि की प्राप्ति का अवरोध।
४ भोग-प्रतिघात—भोग्य सामग्री के भोगन का अवरोध।
५ बल, वीय, पुरुस्कार और पराक्रम की प्राप्ति का अवरोध (७०)।

आजीव-सूत्र

७१—पचविध आजीवे पण्णत्ते, त जहा—जातिआजीवे, कुलाजीवे, कम्माजीवे, सिप्पाजीवे, लिगाजीवे।

आजीवक (आजीविका करने वाले पुरुष) पाच प्रकार के कहे गये है। जैसे—
१ जात्याजीवक—अपनी ब्राह्मणादि जाति बताकर आजीविका करने वाला।
२ कुलाजीवक—अपना उग्रकुल आदि बताकर आजीविका करने वाला।
३ कर्माजीवक—कृषि आदि से आजीविका करने वाला।
४ शिल्पाजीवक—शिल्प आदि कला से आजीविका करने वाला।
५ लिंगाजीवक—साधुवेष आदि धारण कर आजीविका करने वाला (७१)।

राजचिह्न-सूत्र

७२—पच रायककुधा पण्णत्ता, त जहा—खग्ग, छत्त, उप्फेस, पाणहाओ, वालवीअणे।

राज चिह्न पाच प्रकार के कहे गये है। जैसे—
१ खड्ग, २ छत्र, ३ उष्णीष (मुकुट), ४ उपानह (पाद रक्षक, जूते) ५ वाल-व्यजन (चवर) (७२)।

उदीर्णपरीषहोपसर्ग सूत्र

७३—पचहि ठाणेहि छउमत्थे ण उदिण्णे परिस्सहोवसग्गे सम्म सहेज्जा खमेज्जा तितिक्खेज्जा अहियासेज्जा त जहा—

देवराज देवेन्द्र शक्र के सग्राम करने वाले पाच अनीक और पाँच अनीकाधिपति कहे गये हैं। जैसे—

अनीक—१ पादातानीक, २ पीठानीक, ३, कुंजरानीक ४ वृषभानीक, ५ रथानीक।

अनीकाधिपति— १ हरिनैगमेषी—पादातानीक-अधिपति।
२ अश्वराज वायु—पीठानीक-अधिपति।
३ हस्तिराज ऐरावण—कुंजरानीक-अधिपति।
४ दामर्धि—वृषभानीक अधिपति।
५ माठर—रथानीक अधिपति (६४)।

६५—ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो पंच संगामिया अणिया जाव पायत्ताणिए, पीढाणिए, कुंजराणिए, उसभाणिए, रधाणिए।

लहुपरक्कमे पायत्ताणियाधिवती, महावाऊ आसराया पोढाणियाहिवती, पुप्फदंते हत्थिराया कुंजराणियाहिवती, महादामड्ढी उसभाणियाहिवती महामाढरे रधाणियाहिवती।

देवराज देवेन्द्र ईशान के सग्राम करने वाले पाच अनीक और पाच अनीकाधिपति कहे गये हैं। जसे—

अनीक—१ पादातानीक, १ पीठानीक, ३ कुंजरानीक, ४ वृषभानीक, ५ रथानीक।

अनीकाधिपति— १ लघुपराक्रम—पादातानीक अधिपति।
२ अश्वराज महावायु—पीठानीक अधिपति।
३ हस्तिराज पुष्पदन्त—कुंजरानीक-अधिपति।
४ महादामर्धि—वृषभानीक-अधिपति।
५ महामाठर—रथानीक अधिपति (६५)।

६६—जधा सक्कस्स तहा सव्वेसिं दाहिणिल्लाण जाव आरणस्स।

जिस प्रकार देवराज देवेन्द्र शक्र के पाच अनीक और पाच अनीकाधिपति कहे गये हैं उसी प्रकार आरणकल्प तक के सभी दक्षिणेन्द्रो के भी सग्राम करने वाले पाच पाच अनीक और पाच पाच अनीकाधिपति जानना चाहिए (६६)।

६७—जधा ईसाणस्स तहा सव्वेसिं उत्तरिल्लाण जाव अच्चुतस्स।

जिस प्रकार देवराज देवेन्द्र ईशान के पाच अनीक और पाच अनीकाधिपति कहे गये हैं, उसी प्रकार अच्युतकल्प तक के सभी उत्तरेन्द्रो के भी सग्राम करनेवाले पाच-पाच अनीक और पाच-पाच अनीकाधिपति जानना चाहिए (६७)।

देवस्थिति-सूत्र

६८—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अब्भतरपरिसाए देवाण पंच पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

देवराज देवेन्द्र शक्र की अन्तरग परिषद् के परिषद् देवो की स्थिति पाच पल्योपम कही गई है (६८)।

६९—ईसाणस्स ण देविंदस्स देवरण्णो अब्भतरपरिसाए देवीण पच पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता।

देवराज देवेन्द्र ईशान की अन्तरग परिषद् की देवियो की स्थिति पाच पल्योपम कही गई है (६९)।

प्रतिघात सूत्र

७०—पचविहा पडिहा पण्णत्ता त जहा—गतिपडिहा, ठितिपडिहा, बधणपडिहा, भोगपडिहा, बल वीरिय पुरिसयार-परक्कमपडिहा।

प्रतिघात (अवरोध या स्खलन) पाच प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ गति प्रतिघात—अशुभ प्रवृत्ति के द्वारा शुभगति का अवरोध।
२ स्थिति-प्रतिघात—उदीरणा के द्वारा कर्मस्थिति का अल्पीकरण।
३ बधन प्रतिघात—शुभ औदारिक शरीर बधनादि की प्राप्ति का अवरोध।
४ भोग-प्रतिघात—भोग्य सामग्री के भोगने का अवरोध।
५ बल, वीर्य पुरुस्कार और पराक्रम की प्राप्ति का अवरोध (७०)।

आजीव-सूत्र

७१—पचविध आजीवे पण्णत्ते, त जहा—जातिआजीवे, कुलाजीवे, कम्माजीवे, सिप्पाजीवे, लिंगाजीवे।

आजीवक (आजीविका करने वाले पुरुष) पाच प्रकार के कहे गये हैं। जसे—

१ जात्याजीवक—अपनी ब्राह्मणादि जाति बताकर आजीविका करने वाला।
२ कुलाजीवक—अपना उग्रकुल आदि बताकर आजीविका करने वाला।
३ कर्माजीवक—कृषि आदि से आजीविका करने वाला।
४ शिल्पाजीवक—शिल्प आदि कला से आजीविका करने वाला।
५ लिंगाजीवक—साधुवेष आदि धारण कर आजीविका करने वाला (७१)।

राजचिह्न सूत्र

७२—पच रायककुधा पण्णत्ता, त जहा—खग्ग, छत्त, उप्फेस, पाणहाओ, वालवीअणे।

राज-चिह्न पाच प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ खड्ग, २ छत्र, ३ उष्णीष (मुकुट), ४ उपानह (पाद-रक्षक, जूते) ५ बाल-व्यजन (चवर) (७२)।

उदीर्णपरीषहोपसर्ग सूत्र

७३—पचहिं ठाणेहिं छउमत्थे ण उदिण्णे परिस्सहोवसग्गे सम्म सहेज्जा खमेज्जा तितिक्खेज्जा अहियासेज्जा त जहा—

१ उदिण्णकम्मे खलु अयं पुरिसे उम्मत्तगभूते। तेण मे एस पुरिसे अक्कोसति वा अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भछेति वा बधेति वा रुंभति वा छविच्छेदं करेति वा, पमारं वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणमच्छिंदति वा विच्छिंदति वा भिंदति वा अवहरति वा।

२ जक्खाइट्ठे खलु अयं पुरिसे। तेण मे एस पुरिसे अक्कोसति वा तहेव जाव अवहरति (अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भछेति वा बधेति वा रुंभति वा छविच्छेदं करेति वा, पमारं वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणमच्छिंदति वा विच्छिंदति वा भिंदति वा) अवहरति वा।

३ ममं च णं तब्भववेयणिज्जे कम्मे उदिण्णे भवति। तेण मे एस पुरिसे अक्कोसति वा तहेव जाव अवहरति (अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भछेति वा बधेति वा रुंभति वा छविच्छेदं करेति वा, पमारं वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणमच्छिंदति वा विच्छिंदति वा भिंदति वा) अवहरति वा।

४ ममं च णं सम्ममसहमाणस्स अखममाणस्स अतितिक्खमाणस्स अणधियासमाणस्स किं मण्णे कज्जति? एगंतसो मे पावे कम्मे कज्जति।

५ ममं च णं सम्मं सहमाणस्स जाव (खममाणस्स तितिक्खमाणस्स) अहियासेमाणस्स किं मण्णे कज्जति? एगंतसो मे णिज्जरा कज्जति।

इच्चेतेहिं पचहिं ठाणेहिं छउमत्थे उदिण्णे परिसहोवसग्गे सम्मं सहेज्जा जाव (खमेज्जा तितिक्खेज्जा) अहियासेज्जा।

पाच कारणो से छद्मस्थ पुरुष उदीर्ण (उदय या उदीरणा को प्राप्त) परीषहो और उपसर्गो का सम्यक्-अविचल भाव से सहता है, क्षान्ति रखता है, तितिक्षा रखता है, और उनसे प्रभावित नही होता है। जसे—

१ यह पुरुष निश्चय मे उदीर्णकर्मा है, इसलिए यह उन्मत्तक (पागल) जैसा हो रहा है। और इसी कारण यह मुझ पर आक्रोश करता है या मुझे गाली देता है, या मेरा उपहास करता है या मुझे बाहर निकालने की धमकी देता है, या मेरी निभर्त्सना करता है, या मुझे बाधता है, या रोकता है, या छविच्छेद (अग का छेदन) करता है, या पमार (मूर्च्छित) करता है, या उपद्रुत करता है, वस्त्र या पात्र या कम्बल या पादप्रोछन का छेदन करता है, या विच्छेदन करता है, या भेदन करता है, या अपहरण करता है।

२ यह पुरुष निश्चय से यक्षाविष्ट (भूत-प्रेतादि से प्रेरित) है, इसलिए यह मुझ पर आक्रोश करता है, या मुझे गाली देता है, या मेरा उपहास करता है, या मुझे बाहर निकालने की धमकी देता है, या मेरी निभर्त्सना करता है, या मुझे बाधता है, या रोकता है, या छविच्छेद करता है, या मूर्च्छित करता है या उपद्रुत करता है, वस्त्र या पात्र या कम्बल या पादप्रोछन का छेदन करता है, या विच्छेदन करता है, या भेदन करता है, या अपहरण करता है।

३ मेरे इस भव मे वेदन करने के योग्य कर्म उदय मे आ रहा है, इसलिए यह पुरुष मुझ पर आक्रोश करता है, मुझे गाली देता है, या मेरा उपहास करता है, या मुझे बाहर निकालने की धमकी

देता है, या मेरी निभत्सना करता है, या बाधता है, या रोकता है, या छविच्छेद करता है, या मूर्छित करता है, या उपद्रुत करता है, वस्त्र या पात्र या कम्बल, या पादप्रोछन का छेदन करता है, या विच्छेदन करता है, या भेदन करता है, या अपहरण करता है।

४ यदि मैं इन्हे सम्यक् प्रकार अविचल भाव से सहन नही करूंगा, क्षान्ति नही रखूंगा, तितिक्षा नही रखूंगा और उनमे प्रभावित होऊगा, तो मुझे क्या होगा ? मुझे एकान्त रूप से पाप-कर्म का सचय होगा।

५ यदि मैं इन्हे सम्यक् प्रकार अविचल भाव से सहन करूंगा, क्षान्ति रखूंगा, तितिक्षा रखूंगा, और उनसे प्रभावित नही होऊगा, तो मुझे क्या होगा ? एकान्त रूप से कर्म निर्जरा होगी।

इन पाच कारणो मे छद्मस्थ पुरुष उदयागत परीषहो और उपसर्गों को सम्यक् प्रकार अविचल भाव मे सहता है, क्षान्ति रखता है, तितिक्षा रखता है, और उनमे प्रभावित नही होता है।

७४—पर्चाहि ठाणेहि केवली उदिण्णे परिसहोवसग्गे सम्म सहेज्जा जाव (खमेज्जा तितिक्खेज्जा) अहियासेज्जा, त जहा—

१ खित्तचित्ते खलु अय पुरिसे। तेण मे एस पुरिसे अक्कोसति वा तहेव जाव (अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भछेति वा बधेति वा रु भति वा छविच्छेद करेति वा, पमार वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थ वा पडिग्गह वा कबल वा पायपु छणमच्छिदति वा विच्छिदति वा भिदति वा) अवहरति वा।

२ दित्तचित्ते खलु अय पुरिसे। तेण मे एस पुरिसे जाव (अक्कोसति वा अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भछेति वा बधेति वा रु भति वा छविच्छेद करेति वा, पमार वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थ वा पडिग्गह वा कबल वा पायपु छणमच्छिदति वा विच्छिदति वा भिदति वा) अवहरति वा।

३ जक्खाइट्ठे खलु अय पुरिसे। तेण मे एस पुरिसे जाव (अक्कोसति वा अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भछेति वा बधेति वा रु भति वा छविच्छेद करेति वा, पमार वा णेति, उद्दवेइ वा वत्थ वा पडिग्गह वा कबल वा पायपु छणमच्छिदति वा विच्छिदति वा भिदति वा) अवहरति वा।

४ मम च ण तब्भववेयणिज्जे कम्मे उदिण्णे भवति। तेण मे एस पुरिसे जाव (अक्कोसति वा अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भछेति वा बधेति वा रु भति वा छविच्छेद करेति वा, पमार वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थ वा पडिग्गह वा कबल वा पायपु छणमच्छिदति वा विच्छिदति वा भिदति वा) अवहरति वा।

५ मम च ण सम्म सहमाण खममाण तितिक्खमाण अहियासेमाण पासेत्ता बहवे अण्णे छउमत्था समणा णिग्गथा उदिण्णे उदिण्णे परीसहोवसग्गे एव सम्म सहिस्सति जाव (खमिस्सति तितिक्खिस्सति) अहियासिस्सति।

इच्चेतेहि पर्चाहि ठाणेहि केवली उदिण्णे परीसहोवसग्गे सम्म सहेज्जा जाव (खमेज्जा तितिक्खेज्जा) अहियासेज्जा।

पाच कारणा से केवली उदयागत परीपहो और उपसर्गों को सम्यक् प्रकार अविचल भाव से सहते हैं, क्षान्ति रखते हैं, तितिक्षा रखते हैं, और उनमे प्रभावित नही होत है। जसे—

१ यह पुरुप निश्चय से विक्षिप्तचित्त है—शोक आदि से बेभान है, इसलिए यह मुझ पर आक्रोश करता है, मुझे गाली देता है या मेरा उपहास करता है, या मुझे बाहर निकालने की धमकी देता है या मेरी निभत्सना करता है या मुझे बाधता ह या रोकता है या छविच्छद करता है या वध स्थान मे ले जाता है या उपद्रुत करता है, वस्त्र या पात्र या कम्बल या पादप्रोछन का छेदन करता है या विच्छेदन करता है या भेदन करता है, या अपहरण करता है।

२ यह पुरुप निश्चय से दृप्तचित्त (उन्माद-युक्त) है, इसलिए यह मुझ पर आक्रोश करता है, मुझे गाली देता है या मेरा उपहास करता है या मुझे बाहर निकालने की धमकी देता है या मेरी निभत्सना करता है या मुझे बाधता है या रोकता है या छविच्छेदन करता है या वधस्थान मे ले जाता है या उपद्रुत करता है, वस्त्र या पात्र या कम्बल या पादप्रोछन का छेदन करता है या भेदन करता है या अपहरण करता है।

३ यह पुरुप निश्चय मे यक्षाविष्ट (यक्ष से प्रेरित) है, इसलिए यह मुझ पर आक्रोश करता है, मुझे गाली देता है, मेरा उपहास करता है, मुझे बाहर निकालने की धमकी देता है, मेरी निभत्सना करता है, या मुझे बाधता है, या रोकता है, या छविच्छेद करता है, या वधस्थान मे ले जाता है, या उपद्रुत करता है, वस्त्र, या पात्र, या कम्बल, या पादप्रोछन का छेदन करता है, या विच्छेदन करता है, या भेदन करता है, या अपहरण करता है।

४ मेरे इस भव मे वेदन करने योग्य कर्म उदय मे आरहा है, इसलिए यह पुरुप मुझ पर आक्रोश करता है—मुझे गाली देता है, या मेरा उपहास करता है, या मुझे बाहर निकालने की धमकी देता है, या मेरी निभत्सना करता है, या मुझे बाधता है, या रोकता है, या छविच्छेद करता है, या वधस्थान मे ले जाता है, या उपद्रुत करता है, वस्त्र, या पात्र, या कम्बल, या पादप्रोछन का छेदन करता है, या विच्छेदन करता है या भेदन करता है, या अपहरण करता है।

५ मुझे सम्यक् प्रकार अविचल भाव मे परीपहो और उपसर्गों को सहन करते हुए, क्षान्ति रखते हुए, तितिक्षा रखते हुए, और प्रभावित नही होते हुए देखकर बहुत से अन्य छद्मस्थ श्रमण-निग्रन्थ उदयागत परीपहो और उदयागत उपसर्गो को सम्यक् प्रकार अविचल भाव से सहन करेंगे, क्षान्ति रखेंगे, तितिक्षा रखेंगे और उनमे प्रभावित नही होंगे।

इन पाच कारणा से केवली उदयागत परीपहों और उपसर्गों को सम्यक् प्रकार अविचल भाव से सहन करते हैं, क्षान्ति रखते है, तितिक्षा रखते हैं और उनमे प्रभावित नही होते है।

हेतु सूत्र

७५—पच हेऊ पण्णत्ता, त जहा—हेउ ण जाणति, हेउ ण पासति, हेउ ण बुज्झति, हेउ णाभिगच्छति, हेउ अण्णाणमरण मरति।

हेतु पाच कहे गये हैं। जैसे—

१ हेतु को (सम्यक्) नही जानता है।

२ हेतु का (सम्यक्) नही देखता है।
३ हेतु को (सम्यक्) नही समझता है—श्रद्धा नही करता है।
४ हेतु को (सम्यक रूप से) प्राप्त नही करता है।
५ हेतु पूवक अज्ञानमरण से मरता है (७५)।

७६—पच हेऊ पण्णत्ता, त जहा—हेउणा ण जाणति, जाव (हेउणा ण पासति, हेउणा ण बुज्झति, हेउणा णाभिगच्छति), हेउणा श्रण्णाणमरण मरति।

पुन हेतु पाच कहे गये हैं। जैसे—

१ हेतु से असम्यक् जानता है।
२ हेतु से असम्यक देखता है।
३ हेतु से असम्यक् समझता है, असम्यक् श्रद्धा करता है।
४ हेतु से असम्यक प्राप्त करता है।
५ सहेतुक अज्ञानमरण से मरता है (७६)।

७७—पच हेऊ पण्णत्ता, त जहा—हेउ जाणइ, जाव (हेउ पासइ, हेउ बुज्झइ, हेउ अभिगच्छइ) हेउ छउमत्थमरण मरति।

पुन पाच हेतु कहे गये है। जैसे—

१ हेतु को (सम्यक्) जानता है।
२ हेतु को (सम्यक) देखता है।
३ हेतु की (सम्यक) श्रद्धा करता है।
४ हेतु को (सम्यक) प्राप्त करता है।
५ हेतु पूवक छद्मस्थमरण मरता है (७७)।

७८—पच हेऊ पण्णत्ता, त जहा—हेउणा जाणइ जाव (हेउणा पासइ, हेउणा बुज्झइ, हेउणा अभिगच्छइ), हेउणा छउमत्थमरण मरइ।

पुन पाच हेतु कहे गये हैं। जैसे—

१ हेतु से (सम्यक्) जानता है।
२ हेतु से (सम्यक) देखता है।
३ हेतु से (सम्यक) श्रद्धा करता है।
४ हेतु से (सम्यक्) प्राप्त करता है।
५ हेतु से (सम्यक्) छद्मस्थमरण मरता है (७८)।

अहेतु सूत्र

७९—पच अहेऊ पण्णत्ता, त जहा—अहेउ ण जाणति, जाव (अहेउ ण पासति, अहेउ ण बुज्झति, अहेउ णाभिगच्छति), अहेउ छउमत्थमरण मरति।

पाच अहेतु कहे गये है। जैसे—
१ अहेतु को नही जानता है।
२ अहेतु को नही देखता है।
३ अहेतु की श्रद्धा नही करता है।
४ अहेतु को प्राप्त नही करता है।
५ अहेतुक छद्मस्थमरण मरता है (७९)।

८०—पच अहेऊ पण्णत्ता, त जहा—अहेउणा ण जाणति, जाव (अहेउणा ण पासति, अहेउणा ण बुज्झति, अहेउणा णाभिगच्छति), अहेउणा छउमत्थमरण मरति।

पुन पाच अहेतु कहे गये हैं। जसे—
१ अहेतु से नहीं जानता है।
२ अहेतु से नही देखता है।
३ अहेतु से श्रद्धा नही करता है।
४ अहेतु से प्राप्त नही करता है।
५ अहेतुक छद्मस्थमरण मरता है (८०)।

८१—पच अहेऊ पण्णत्ता, त जहा—अहेउ जाणति, जाव (अहेउ पासति, अहेउ बुज्झति, अहेउ अभिगच्छति), अहेउ केवलिमरण मरति।

पुन पाच अहेतु कहे गये हैं। जसे—
१ अहेतु को जानता है।
२ अहेतु को देखता है।
३ अहेतु की श्रद्धा करता है।
४ अहेतु को प्राप्त करता है।
५ अहेतुक केवलि-मरण मरता है (८१)।

८२—पच अहेऊ पण्णत्ता, त जहा—अहेउणा जाणति, जाव (अहेउणा पासति, अहेउणा बुज्झति, अहेउणा अभिगच्छति), अहेउणा केवलिमरण मरति।

पुन पाच अहेतु कहे गये हैं। जसे—
१ अहेतु से जानता है।
२ अहेतु से देखता है।
३ अहेतु से श्रद्धा करता है।
४ अहेतु से प्राप्त करता है।
५ अहेतुक केवलि-मरण मरता है (८२)।

विवेचन—उपयुक्त आठ सूत्रो मे से आरम्भ के चार सूत्र हेतु-विषयक है और अन्तिम चार सूत्र अहेतु-विषयक है। जिसका साध्य के साथ अविनाभाव सम्बन्ध निश्चित रूप से पाया जाता है,

ऐसे साधन को हेतु कहते है। जैसे—अग्नि के होने पर ही धूम होता है और अग्नि के अभाव मे धूम नही होता है, अत अग्नि और धूम का अविनाभाव सम्बन्ध है। जिस किसी अप्रत्यक्ष स्थान से धूम उठता हुआ दिखता है, तो निश्चित रूप से यह ज्ञात हो जाता है कि उस अप्रत्यक्ष स्थान पर अग्नि अवश्य है। यहा पर जैसे धूम अग्नि का साधक हेतु है, इसी प्रकार जिस किसी भी पदार्थ का जो भी अविनाभावी हेतु होता है, उसके द्वारा उस पदार्थ का ज्ञान नियम से होता है। इसे ही अनुमान-प्रमाण कहते है।

पदार्थ दो प्रकार के होते है—हेतुगम्य और अहेतुगम्य। दूर देश स्थित जो अप्रत्यक्ष पदार्थ हेतु से जाने जाते हैं, उन्हे हेतुगम्य कहते हैं। किन्तु जो पदार्थ सूक्ष्म है, देशान्तरित (सुमेरु आदि) और कालान्तरित (राम रावण आदि) है, जिनका हेतु से ज्ञान सभव नही है, जो केवल आप्त पुरुषो के वचनो से ही ज्ञात किये जाते है, उन्हे अहेतुगम्य अर्थात आगमगम्य कहा जाता है। जैसे—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि अरूपी पदार्थ केवल आगम गम्य हैं, हमारे लिए वे हेतुगम्य नही है।

प्रस्तुत सूत्रो मे हेतु और हेतुवादी (हेतु का प्रयोग करने वाला) ये दोनो ही हेतु शब्द से विवक्षित है। जो हेतुवादी असम्यग्दर्शी या मिथ्यादृष्टि होता है, वह कार्य को जानता देखता तो है, परन्तु उसके हेतु को नही जानता-देखता है। वह हेतु-गम्य पदार्थ को हेतु के द्वारा नही जानता-देखता। किन्तु जो हेतुवादी सम्यग्दर्शी या सम्यग्दृष्टि होता है वह कार्य के साथ-साथ उसके हेतु को भी जानता-देखता है। वह हेतु-गम्य पदार्थ को हेतु के द्वारा जानता-देखता है।

परोक्ष ज्ञानी जीव ही हेतु के द्वारा परोक्ष वस्तुओ को जानते देखते है। किन्तु जो प्रत्यक्ष-ज्ञानी होते हैं, वे प्रत्यक्ष रूप से वस्तुओ को जानते देखते हैं। प्रत्यक्षज्ञानी भी दो प्रकार के होते हैं—देशप्रत्यक्षज्ञानी और सकलप्रत्यक्षज्ञानी। देशप्रत्यक्षज्ञानी धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यो की अहेतुक या स्वाभाविक परिणतियो को आशिकरूप से ही जानता-देखता है, पूर्णरूप से नही जानता देखता। वह अहेतु (प्रत्यक्ष ज्ञान) के द्वारा अहेतुगम्य पदार्थो को सर्वभावेन नही जानता देखता। किन्तु जो सकल प्रत्यक्षज्ञानी सर्वज्ञकेवली होता है वह धर्मास्तिकाय आदि अहेतुगम्य पदार्थों की अहेतुक या स्वाभाविक परिणतियो को सम्पूर्ण रूप से जानता देखता है। वह प्रत्यक्षज्ञान के द्वारा अहेतुगम्य पदार्थो को सर्वभाव से जानता-देखता है।

उक्त विवेचन का निष्कर्ष यह है कि प्रारम्भ के दो सूत्र असम्यग्दर्शी हेतुवादी की अपेक्षा से और तीसरा-चौथा सूत्र सम्यग्दर्शी हेतुवादी की अपेक्षा से कहे गये है। पाचवा-छठा सूत्र देशप्रत्यक्ष-ज्ञानी छद्मस्थ की अपेक्षा से और सातवा-आठवा सूत्र सकलप्रत्यक्षज्ञानी सर्वज्ञकेवली की अपेक्षा से कहे गये है।

उक्त आठो सूत्रो का पाचवा भेद मरण से सम्बन्ध रखता है। मरण दो प्रकार का कहा गया है—सहेतुक (सोपक्रम) और अहेतुक (निरुपक्रम)। शस्त्राघात आदि बाह्य हेतुओ से होने वाले मरण को सहेतुक, सोपक्रम या अकालमरण कहते है। जो मरण शस्त्राघात आदि बाह्य हेतुओ के विना आयुकर्म के पूर्ण होने पर होता है वह अहेतुक, निरुपक्रम या यथाकाल मरण कहलाता है। असम्यग्दर्शी हेतुवादी का अहेतुक मरण अज्ञानमरण कहलाता है और सम्यग्दर्शी हेतुवादी का

सहेतुकमरण छद्मस्थमरण कहलाता है। देशप्रत्यक्षज्ञानी का सहेतुकमरण भी छद्मस्थमरण कहा जाता है। सकलप्रत्यक्षज्ञानी सर्वज्ञ का अहेतुक मरण केवलि-मरण कहा जाता है।

संस्कृत टीकाकार श्री अभयदेव सूरि कहते हैं कि हमने उक्त सूत्रों का यह अर्थ भगवती सूत्र के पंचम शतक के सप्तम उद्देशक की चूर्णि के अनुसार लिखा है, जो कि सूत्रों के पदों की गमनिका मात्र है।[1] इन सूत्रों का वास्तविक अर्थ तो बहुश्रुत आचार्य ही जानते हैं।[2]

अनुत्तर सूत्र

८३—केवलिस्स णं पंच अणुत्तरा पण्णत्ता, तं जहा—अणुत्तरे णाणे, अणुत्तरे दंसणे, अणुत्तरे चरित्ते, अणुत्तरे तवे, अणुत्तरे वीरिए।

केवली के पांच स्थान अनुत्तर (सर्वोत्तम—अनुपम) कहे गये हैं। जैसे—

१ अनुत्तर ज्ञान, २ अनुत्तर दर्शन ३ अनुत्तर चारित्र,
४ अनुत्तर तप, ५ अनुत्तर वीर्य (८३)।

विवेचन—चार घातिकर्मों का क्षय करने वाले केवली होते हैं। इनमें से ज्ञानावरणकर्म के क्षय से अनुत्तर ज्ञान, दर्शनावरण कर्म के क्षय से अनुत्तरदर्शन, मोहनीय कर्म के क्षय से अनुत्तर चरित्र और तप, तथा अन्तराय कर्म के क्षय से अनुत्तर वीर्य प्राप्त होता है।

पंच कल्याण-सूत्र

८४—पउमप्पहे णं अरहा पंचचित्ते हुत्था, तं जहा—१ चित्ताहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते। २ चित्ताहिं जाते। ३ चित्ताहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारितं पव्वइए। ४ चित्ताहिं अणंते अणुत्तरे णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे। ५ चित्ताहिं परिणिव्वुते।

पदमप्रभ तीर्थंकर के पंच कल्याणक चित्रा नक्षत्र में हुए। जैसे—

१ चित्रा नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत हुए और च्युत होकर गर्भ में आये।
२ चित्रा नक्षत्र में जन्म हुआ।
३ चित्रा नक्षत्र में मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए।
४ चित्रा नक्षत्र में अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, सम्पूर्ण, परिपूर्ण केवलवर ज्ञान दर्शन समुत्पन्न हुआ।
५ चित्रा नक्षत्र में परिनिर्वृत हुए—निर्वाणपद पाया (८४)।

८५—पुप्फदंते णं अरहा पंचमूले हुत्था, तं जहा—मूलेणं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते।

पुष्पदन्त तीर्थंकर के पांच कल्याणक मूल नक्षत्र में हुए। जैसे—

---

१ 'पंच हेऊ' इत्यादि सूत्रपंचकम्। तत्र भगवतीपञ्चमशतसप्तमोद्देशकचूर्ण्यनुसारेण किमपि लिख्यते। (स्थानाङ्ग सटीक प २९१ A)

२ गमनिकामात्रमेतत्। तत्त्व तु बहुश्रुता विदन्तीति। (स्थानाङ्ग सटीक, पृ २९२ A)

१ मूल नक्षत्र मे स्वग से च्युत हुए और च्युत होकर गभ मे आये ।
२ मूल नक्षत्र मे जन्म लिया ।
३ मूल नक्षत्र मे अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित हुए ।
४ मूल नक्षत्र मे अनुत्तर परिपूण ज्ञान दशन समुत्पन्न हुआ ।
५ मूल नक्षत्र मे परिनिवृत्त हुए—निर्वाण पद पाया (८६) ।

८६—एव चेव एवमेतेण अभिलावेण इमातो गाहातो अणुगतव्वातो—

पउमप्पभस्स चित्ता, मूले पुण होइ पुप्फदतस्स ।
पुव्वाइ आसाढा, सीयलस्सुत्तर विमलस्स भद्दवता ॥१॥
रेवतिला अणतजिणा, पूसो धम्मस्स सतिणो भरणी ।
कुथुस्स कत्तियाओ, अरस्स तह रेवतीतो य ॥२॥
मुणिसुव्वयस्स सवणो, आसिणि णमिणो य णेमिणो चित्ता ।
पासस्स विसाहाओ, पच य हत्थुत्तरे वीरो ॥३॥

[सीयले ण अरहा पचपुव्वासाढ हुत्था, त जहा—पुव्वासाढाहि चुते चइत्ता गब्भ वक्कते ।

शीतलनाथ तीथकर के पाच कल्याणक पूर्वाषाढा नक्षत्र मे हुए । जैसे—

१ पूर्वाषाढा नक्षत्र म स्वग से च्युत हुए और च्युत होकर गभ मे आये । इत्यादि (८६) ।

८७—विमले ण अरहा पचउत्तराभद्दवए हुत्था, त जहा—उत्तराभद्दवयाहि चुते चइत्ता गब्भ वक्कते । ८८—अणते ण अरहा पचरेवतिए हुत्था, त जहा—रेवतिहि चुते चइत्ता गब्भ वक्कते । ८९—धम्मे ण अरहा पचपूसे हुत्था, त जहा—पूसेण चुते चइत्ता गब्भ वक्कते । ६०—सती ण अरहा पचभरणीए हुत्था, त जहा—भरणीहि चुते चइत्ता गब्भ वक्कते । ६१—कुथू ण अरहा पचकत्तिए हुत्था, त जहा—कत्तियाहि चुते चइत्ता गब्भ वक्कते । ६२—अरे ण अरहा पचरेवतिए हुत्था, त जहा—रेवतिहि चुते चइत्ता गब्भ वक्कते । ६३—मुणिसुव्वए ण अरहा पचसवणे हुत्था, त जहा—सवणेण चुते चइत्ता गब्भ वक्कते । ६४—णमी ण अरहा पचआसिणीए हुत्था त जहा—आसिणीहि चुते चइत्ता गब्भ वक्कते । ६५—णेमी ण अरहा पचचित्ते हुत्था, त जहा—चित्ताहि चुते चइत्ता गब्भ वक्कते । ६६—पासे ण अरहा पचविसाहे हुत्था, त जहा—विसाहाहि चुते चइत्ता गब्भ वक्कते ।]

विमल तीथकर के पाच कल्याणक उत्तराभाद्रपद नक्षत्र म हुए । जसे—

१ उत्तराभाद्रपद नक्षत्र मे स्वग से च्युत हुए और च्युत होकर गभ मे आये । इत्यादि (८७)

अनन्त तीर्थकर के पाच कल्याणक रेवती नक्षत्र मे हुए । जसे—

१ रेवती नक्षत्र मे स्वग मे च्युत हुए और च्युत होकर गभ मे आये । इत्यादि (८८) ।

धम तीर्थंकर के पाच कल्याणक पुष्य नक्षत्र मे हुए । जैसे—

१ पुष्य नक्षत्र मे स्वग से च्युत हुए और च्युत होकर गभ मे आये । इत्यादि (८६) ।

शान्ति तीर्थंकर के पाँच कल्याणक भरणी नक्षत्र मे हुए । जैसे—

१ भरणी नक्षत्र मे स्वर्ग स च्युत हुए और च्युत होकर गभ मे आये । इत्यादि (६०)

कुन्थु तीर्थंकर के पाँच कल्याणक कृत्तिका नक्षत्र मे हुए । जैसे—

१ कृत्तिका नक्षत्र मे स्वर्ग से च्युत हुए और च्युत होकर गभ मे आये । इत्यादि (६१) ।

अर तीथकर के पाच कल्याणक रेवती नक्षत्र मे हुए । जैसे—

१ रेवनी नक्षत्र मे स्वग मे च्युन हुए और च्युत होकर गभ मे आये । इत्यादि (६२) ।

मुनिमुव्रत तीर्थंकर के पाच कल्याणक श्रवण नक्षत्र मे हुए । जसे—

१ श्रवण नक्षत्र मे स्वग से च्युत हुए और च्युत होकर गभ मे आये । इत्यादि (६३) ।

नमि तीथकर के पाच कल्याणक अश्विनी नक्षत्र मे हुए । जैसे—

१ अश्विनी नक्षत्र मे स्वग से च्युत हुए और च्युत होकर गभ मे आये । इत्यादि (६४) ।

नेमि तीर्थंकर के पच कल्याणक चित्रा नक्षत्र मे हुए । जैसे—

१ चित्रा नक्षत्र म स्वग से च्युत हुए और च्युत होकर गभ मे आये । इत्यादि (६५) ।

पाश्व तीर्थंकर के पाच कल्याणक विशाखा नक्षत्र म हुए । जसे—

१ विशाखा नक्षत्र मे स्वग से च्युत हुए और च्युन होकर गभ मे आये । इत्यादि (६६) ।

६७—समणे भगव महावीरे पचहत्थुत्तरे होत्था, त जहा—१ हत्थुत्तराहि चुते चइत्ता गब्भ वक्कते । २ हत्थुत्तराहि गब्भाओ गब्भ साहरिते । ३ हत्थुत्तराहि जाते । ४ हत्थुत्तराहि मुड भवित्ता जाव (अगाराओ अणगारित) पव्वइए । ५ हत्थुत्तराहि अणते अणुत्तरे जाव (णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्ण) केवलवरणाणदसणे समुप्पण्णे ।

श्रमण भगवान् महावीर के पच कल्याणक हस्तोत्तर (उत्तरा फाल्गुनी) नक्षत्र मे हुए जसे—

१ हस्तोत्तर नक्षत्र मे स्वग से च्युत हुए और च्युत होकर गर्भ म आये ।

२ हस्तोत्तर नक्षत्र मे देवानन्दा के गभ से त्रिशला के गभ मे सहृत हुए ।

३ हस्तोत्तर नक्षत्र मे जन्म लिया ।

४ हस्तोत्तर नक्षत्र मे अगार म अनगारिता म प्रव्रजित हुए ।

५ हस्तोत्तर नक्षत्र मे अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, सम्पूण, परिपूण केवल वर ज्ञान दर्शन समुत्पन्न हुआ ।

विवेचन—जिनसे त्रिलोकवर्ती जीवो का कल्याण हो, उन्हे कल्याणक कहते हैं । तीर्थंकरो के गभ, जन्म, निष्क्रमण (प्रव्रज्या) केवलज्ञानप्राप्ति और निर्वाण-प्राप्ति ये पाँचो ही अवसर जीवो को सुख दायक है । यहा तक कि नरक के नारक जीवो को भी उक्त पाचो कल्याणको के समय कुछ समय के लिए सुख की लहर प्राप्त हो जाती है । इसलिए तीथकरो के गभ-जन्मादि को कल्याणक कहा जाता है । (भ० महावीर का निर्वाण स्वाति नक्षत्र मे हुआ था) ।

।। पचम स्थान का प्रथम उद्देश समाप्त हुआ ।।

पचम स्थान

द्वितीय उद्देश

महानदी उत्तरण सूत्र

९८—णो कप्पइ णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा इमाम्रो उद्दिट्ठाम्रो गणियाम्रो वियजियाम्रो पच महण्णवाम्रो महाणदीम्रो म्रतो मासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरित्तए वा सतरित्तए वा, त जहा—गगा, जउणा, सरऊ, एरवती, मही ।

पर्चाह ठाणेहि कप्पति, त जहा—१ भयसि वा, २ दुब्भिक्खसि वा, ३ पव्वहेज्ज वा ण कोई, ४ दम्रोघसि वा एज्जमाणसि महता वा, ५ अणारिएसु ।

निग्र थ और निग्र न्थिया को महानदी के रूप मे उद्दिष्ट की गई, गिनती की गई, प्रसिद्ध और बहुत जलवाली ये पाच महानदियाँ एक मास के भीतर दो वार या तीन वार से अधिक उतरना या नौका से पार करना नही कल्पता है। जैसे—

१ गगा, २ यमुना, ३ सरयू, ४ ऐरावती, ५ मही ।

किन्तु पाँच कारणो से इन महानदियो का उतरना या नौका से पार करना कल्पता है । जैसे—

१ शरीर, उपकरण आदि के अपहरण का भय होने पर ।

२ दुर्भिक्ष होने पर ।

३ किसी द्वारा व्यथित या प्रवाहित किये जाने पर ।

४ बाढ आ जाने पर ।

५ अनार्य पुरुषो द्वारा उपद्रव किये जाने पर (९८) ।

विवेचन—सूत्र निर्दिष्ट नदियो के लिए 'महार्णव और महानदी ये दो विशेषण दिये गये है । जो बहुत गहरी हो उसे महानदी कहते हैं और जो महार्णव—समुद्र के समान बहुत जल वाली या महार्णवगामिनी—समुद्र मे मिलने वाली हो उसे महार्णव कहते है । गगा आदि पाचो नदियाँ गहरी भी हैं और समुद्रगामिनी भी हैं, बहुत जल वाली भी हैं ।

सस्कृत टीकाकार ने एक गाथा को उद्धृतकर नदियो मे उतरने या पार करने के दोषो को बताया है—

१ इन नदियो मे बडे बडे मगरमच्छ रहते हैं, उनके द्वारा खाये जाने का भय रहता है ।

२ इन नदियो मे चोर-डाकू नौकाम्रो मे घूमते रहते हैं, जो मनुष्यो को मार कर उनके वस्त्रादि लूट ले जाते हैं ।

३ इसके अतिरिक्त स्वय नदी पार करने मे जलकायिक जीवो की तथा जल मे रहनेवाले अन्य छोटे-छोटे जीव-जन्तुम्रो की विराधना होती है ।

४ स्वय के डूब जाने से आत्म-विराधना की भी सभावना रहती है ।

गगादि पाच हा महानदियो के उल्लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् महावीर के समय मे निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो का विहार उत्तर भारत मे ही हो रहा था, क्योकि दक्षिण भारत मे बहने वाली नर्मदा, गोदावरी, ताप्ती आदि किसी भी महानदी का उल्लेख प्रस्तुत सूत्र मे नहीं है। हा, महानदी और महार्णव पद को उपलक्षण मानकर अन्य महानदियों का ग्रहण करना चाहिए।

प्रथम प्रावृष-सूत्र

९९—णो कप्पइ णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा पढमपाउससि गामाणुगाम दूइज्जित्तए।

पचहि ठाणेहि कप्पइ त जहा—१ भयसि वा, २ दुब्भिक्खसि वा, ३ (पव्वहेज्ज वा ण कोई, ४ दओघसि वा एज्जमाणसि), महता वा, अणारिएहि।

निग्रन्थ और निग्रन्थिओ को प्रथम प्रावृष् मे ग्रामानुग्राम विहार करना नही कल्पता है। किन्तु पाच कारणो म विहार करना कल्पता है। जैसे—

१ शरीर, उपकरण आदि के अपहरण का भय होने पर
२ दुर्भिक्ष होने पर
३ किसी के द्वारा व्यथित किये जाने पर, या ग्राम से निकाल दिये जाने पर।
४ बाढ आजाने पर
५ अनार्यों के द्वारा उपद्रव किये जाने पर। (९९)

वर्षावास सूत्र

१००—वासावास पज्जोसविताण णो कप्पइ णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा गामाणुगाम दूइज्जित्तए।

पचहि ठाणेहि कप्पइ, त जहा—१ णाणट्ठयाए, २ दसणट्ठयाए, ३ चरित्तट्ठयाए, ४ आयरिय उवज्झाया वा से वीसु भेज्जा, ५ आयरिय उवज्झायाण वा बहिया वेआवच्च करणयाए।

वर्षावास म पर्युपणाकल्प करने वाले निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो को ग्रामानुग्राम विहार करना नहीं कल्पता है। किन्तु पाच कारणा से विहार करना कल्पता है। जसे—

१ विशेष ज्ञान की प्राप्ति के लिए।
२ दशन-प्रभावक शास्त्र का अर्थ पाने के लिए।
३ चारित्र की रक्षा के लिए।
४ आचाय या उपाध्याय की मृत्यु हा जान पर अथवा उनका कोई अति महत्त्व काय करने के लिए।
५ वर्षाक्षेत्र से बाहर रहने वाले आचाय या उपाध्याय की वैयावृत्त्य करने के लिए। (१००)

विवेचन—वर्षाकाल मे एक स्थान पर रहने को वर्षावास कहते हैं। यह तीन प्रकार का कहा गया है—जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट।

१ जघन्य वर्षावास—सावत्सरिक प्रतिक्रमण के दिन से लेकर कार्त्तिकी पूर्णमासी तक ७० दिन का होता है।

२ मध्यम वर्षावास—श्रावणकृष्णा प्रतिपदा से लेकर कार्तिकी पूर्णमासी तक चार मास या १२० दिन का होता है।

३ उत्कृष्ट वर्षावास—आषाढ से लेकर मगसिर तक छह मास का होता है।

प्रथम सूत्र के द्वारा प्रथम प्रावृष् मे विहार का निषेध किया गया है और दूसरे सूत्र के द्वारा वर्षावास म विहार का निषेध किया गया है। दोनो सूत्रो की स्थिति को देखते हुए यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि पयुषणाकल्प को स्वीकार करने के पूर्व जो वर्षा का समय है उसे 'प्रथम प्रावष' पद से सूचित किया गया है। अत प्रथम प्रावृट का अर्थ आषाढ मास है। आषाढ मास मे विहार करने का निषेध है। प्रावृट का अर्थ वर्षाकाल लेने पर पूर्वप्रावृट का अर्थ होगा—भाद्रपद शुक्ला पचमी से कार्तिकी पूर्णिमा का समय। इस समय मे विहार का निषेध किया गया है। तीन ऋतुओ की गणना मे 'वर्षा' एक ऋतु है। किन्तु छह ऋतुओ की गणना मे उसके दो भेद हो जाते हैं, जिसके अनुसार श्रावण और भाद्रपद ये दो मास प्रावृष् ऋतु मे, तथा आश्विन और कार्तिक मे दो मास वर्षा ऋतु मे परिगणित होते हैं। इस प्रकार दोनो सूत्रो का सम्मिलित अर्थ है कि श्रावण से लेकर कार्तिक मास तक चार मासो मे साधु और साध्वियो को विहार नही करना चाहिए। यह उत्सर्ग मार्ग है। हा, सूत्रोक्त कारण विशेषो की अवस्था मे विहार किया भी जा सकता है यह अपवाद मार्ग है।

उत्कृष्ट वर्षावास के छह मास काल का अभिप्राय यह है कि यदि आषाढ के प्रारम्भ से ही पानी बरसने लगे और मगसिर मास तक भी बरसता रहे तो छह मास का उत्कृष्ट वर्षावास होता है।

वर्षाकाल मे जल की वर्षा से असख्य त्रस जीव पैदा हो जाते ह, उस समय विहार करने पर छह काया के जीवो की विराधना होती है। इसके सिवाय अन्य भी दोष वर्षाकाल मे विहार करने पर बताये गये हैं, जिन्हे सस्कृतटीका मे जानना चाहिए।

अनुदघात्य सूत्र

१०१—पच अणुग्घातिया पण्णत्ता, त जहा—हत्थकम्म करेमाणे, मेहुण पडिसेवेमाणे, रातीभोयण भुजेमाणे, सागारियपिंड भुजेमाणे, रायपिंड भुजेमाणे।

पाच अनुद्घात्य (गुरुप्रायश्चित्त के योग्य) कहे गये ह। जसे—

१ हस्त (मथुन) कर्म करने वाला।
२ मैथुन की प्रतिसेवना (स्त्री-सभोग) करने वाला।
३ रात्रि-भोजन करने वाला।
४ सागारिक-(शय्यातर-) पिण्ड को खाने वाला।
५ राज-पिण्ड को खाने वाला (१०१)।

विवेचन—प्रायश्चित्त शास्त्र मे दोष की शुद्धि के लिए दो प्रकार के प्रायश्चित्त बताये गये हैं—लघु प्रायश्चित्त और गुरु प्रायश्चित्त। लघु-प्रायश्चित्त को उद्घातिम और गुरु-प्रायश्चित्त को अनुद्घातिम प्रायश्चित्त कहते हैं। सूत्रोक्त पाँच स्थानो के सेवन करने वाले को अनुद्घात प्रायश्चित्त देने का विधान है उसे किसी भी दशा मे कम नहीं किया जा सकता है। पाच कारणो म से प्रारम्भ के तीन कारण तो स्पष्ट है। शेष दो का अर्थ इस प्रकार है—

१ सागारिक पिण्ड—गृहस्थ श्रावक को सागारिक कहते हैं। जो गृहस्थ साधु के ठहरने के लिए अपना मकान दे, उसे शय्यातर कहते हैं। शय्यातर के घर का भोजन, वस्त्र, पात्रादि लेना साधु के लिए निषिद्ध है, क्योंकि उसके ग्रहण करने पर तीर्थकरों की आज्ञा का अतिक्रमण, परिचय के कारण अज्ञात-उञ्छका अभाव आदि अनेक दोष उत्पन्न होते हैं।

२ राजपिण्ड—जिसका विधिवत् राज्याभिषेक किया गया हो, जो सेनापति, मन्त्री, पुरोहित, श्रेष्ठी और सार्थवाह इन पाँच पदाधिकारियों के साथ राज्य करता हो, उसे राजा कहते हैं, उसके घर का भोजन राज-पिण्ड कहलाता है। राज पिण्ड के ग्रहण करने में अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। जैसे—तीर्थकरों की आज्ञा का अतिक्रमण, राज्याधिकारियों के आने-जाने के समय होने वाला व्याघात, चोर आदि की आशंका, आदि। इनके अतिरिक्त राजाओं का भोजन प्रायः राजस और तामस होता है, ऐसा भोजन करने पर साधु को दर्प, कामोद्रेक आदि भी हो सकता है। इन कारणों से राजपिण्ड के ग्रहण करने का साधु के लिए निषेध किया गया है।

राजान्तःपुर प्रवेश सूत्र

१०२—पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे रायंतेउरमणुपविसमाणे णाइक्कमति, तं जहा—

१ णगरे सिया सव्वतो समंता गुत्ते गुत्तदुवारे, बहवे समणमाहणा णो संचाएंति भत्ताए वा पाणाए वा णिक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, तेसिं विण्णवणट्ठयाए रायंतेउरमणुपविसेज्जा।
२ पाडिहारियं वा पीढ फलग सेज्जा संथारगं पच्चप्पिणमाणे रायंतेउरमणुपविसेज्जा।
३ हयस्स वा गयस्स वा दुट्ठस्स आगच्छमाणस्स भीते रायंतेउरमणुपविसेज्जा।
४ परो व णं सहसा वा बलसा वा बाहाए गहाय रायंतेउरमणुपवेसेज्जा।
५ बहिया व णं आरामगयं या उज्जाणगयं वा रायंतेउरजणो सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता णं सण्णिवेसिज्जा।

इच्चेतेहिं पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे (रायंतेउरमणुपविसमाणे) णातिक्कमइ।

पांच कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ राजा के अन्तःपुर (रणवास) में प्रवेश करता हुआ तीर्थकरों की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है। जैसे—

१ यदि नगर सब ओर से परकोट से घिरा हो, उसके द्वार बन्द कर दिये गये हों, बहुत-से श्रमण-माहन भक्त-पान के लिए नगर से बाहर न निकल सकें, या प्रवेश न कर सकें, तब उनका प्रयोजन बतलाने के लिए राजा के अन्तःपुर में प्रवेश कर सकता है।

२ प्रातिहारिक (वापिस करने को कहकर लाये गये) पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक को वापिस देने के लिए राजा के अन्तःपुर में प्रवेश कर सकता है।

३ दुष्ट घोड़े या हाथी के सामने आने पर भयभीत साधु राजा के अन्तःपुर में प्रवेश कर सकता है।

४ कोई अन्य व्यक्ति सहसा बल पूर्वक बाहु पकड़कर ले जाये, तो राजा के अन्तःपुर में प्रवेश कर सकता है।

५ कोई साधु बाहर पुष्पोद्यान या वृक्षोद्यान में ठहरा हो और वहां (क्रीडा करने के लिए

राजा का अन्त पुर आ जावे), राजपुरुष उस स्थान को सब ओर से घेर ले और निकलने के द्वार बन्द कर द, तब वह वहा रह सकता है ।

इन पाच कारणो से श्रमण निर्ग्रन्थ राजा के अन्त पुर मे प्रवेश करता हुआ तीर्थंकरो की आज्ञा का अतिक्रमण नही करता है (१०२) ।

गर्भ धारण-सूत्र

१०३—पचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धि असवसमाणीवि गब्भ धरेज्जा, त जहा—१ इत्थी दुब्वियडा दुण्णिसण्णा सुक्कपोग्गले अधिट्ठिज्जा । २ सुक्कपोग्गलससिट्ठे व से वत्थे अतो जोणीए अणुपवेसेज्जा । ३ सइ वा से सुक्कपोग्गले अणुपवेसेज्जा । ४ परो व से सुक्कपोग्गले अणुपवेसेज्जा । ५ सीओदगवियडेण वा से आयममाणीए सुक्कपोग्गला अणुपवेसेज्जा—इच्चेतेहिं पचहिं ठाणेहिं (इत्थी पुरिसेण सद्धि असवसमाणीवि गब्भ) धरेज्जा ।

पाच कारणा से स्त्री पुरुष के साथ सवास नही करती हुई भी गर्भ को धारण कर सकती है । जैसे—

१ अनावृत (नग्न) और दुनिपण्ण (विवृत योनिमुख) रूप से बैठी अर्थात् पुरुष वीर्य से ससृष्ट स्थान का आक्रान्त कर बैठी हुई स्त्री शुक्र पुद्गला को आकर्षित कर लेवे ।
२ शुक्र-पुद्गला से ससृष्ट वस्त्र स्त्री की योनि मे प्रविष्ट हा जावे ।
३ स्वय ही स्त्री शुक्र पुदगला को योनि म प्रविष्ट करले ।
४ दूसरा कोई शुक्र पुद्गला का उसकी योनि मे प्रविष्ट कर दे ।
५ शीतल जल वाने नदी-तालाव आदि मे स्नान करती हुई स्त्री की योनि मे यदि (वह कर आये) शुक्र-पुद्गल प्रवेश कर जावें ।

इन पाँच कारणो से स्त्री पुरुष के साथ सवास नही करती हुई भी गर्भ धारण कर सकती है (१०३) ।

१०४—पचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धि सवसमाणीवि गब्भ णो धरेज्जा, त जहा—१ अप्पत्तजोव्वणा । २ अतिकतजोव्वणा । ३ जातिवझा । ४ गेलण्णपुट्ठा । ५ दोमणसिया—इच्चेतेहिं पचहिं ठाणेहिं (इत्थी पुरिसेण सद्धि सवसमाणीवि गब्भ) णो धरेज्जा ।

पाच कारणो से स्त्री पुरुष के साथ सवास करती हुई भी गर्भ को धारण नही करती । जसे—

१ अप्राप्तयौवना—युवावस्था का अप्राप्त, अरजस्क बालिका ।
२ अतिक्रान्तयौवना—जिसकी युवावस्था बीत गई है, ऐसी अरजस्क वृद्धा ।
३ जातिवन्ध्या—जन्म से ही मासिक धर्म रहित बाँझ स्त्री ।
४ ग्लानस्पृष्टा—रोग से पीडित स्त्री ।
५ दौमनस्यिका—शोकादि से व्याप्त चित्त वाली स्त्री ।

इन पाँच कारणो से पुरुष के साथ सवास करती हुई भी स्त्री गर्भ को धारण नही करती है (१०४) ।

१०५—पचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरसेण सद्धिं सवसमाणीवि णो गब्भ धरेज्जा, त जहा—
१ णिच्चोउया। २ अणोउया। ३ वावण्णसोया। ४ वाविद्धसोया। ५ अणगपडिसेवणी—इच्चेतेहिं (पचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं सवसमाणीवि गब्भ) णो धरेज्जा।

पाच कारणा से स्त्री पुरुष के साथ सवास करती हुई भी गर्भ को धारण नही करती। जसे—

१ नित्यतु का—सदा ऋतुमती (रजस्वला) रहने वाली स्त्री।
२ अनृतुका—कभी भी ऋतुमती न होने वाली स्त्री।
३ व्यापन्नश्रोता—नष्ट गर्भाशयवाली स्त्री।
४ व्याविद्धश्रोता—क्षीण शक्ति गर्भाशयवाली स्त्री।
५ अनगप्रतिपेविणी—अनग-क्रीडा करने वाली स्त्री।

इन पाँच कारणो से पुरुप के साथ सवास करती हुई भी स्त्री गर्भ को धारण नही करती है (१०५)।

१०६—पचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं सवसमाणीवि गब्भ णो धरेज्जा, त जहा—
१ उउमि णो णिगामपडिसेविणी यावि भवति। २ समागता वा से सुक्कपोग्गला पडिविद्धसति। ३ उदिण्णे वा से पित्तसोणिते। ४ पुरा वा देवकम्मणा। ५ पुत्तफले वा णो णिव्विट्ठे भवति—इच्चेतेहिं (पचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं सवसमाणीवि गब्भ) णो धरेज्जा।

पाँच कारणा से स्त्री पुरुप के साथ सवास करती हुई भी गर्भ को धारण नही करती। जसे—

१ जो स्त्री ऋतुकाल मे वीर्यपात होने तक पुरुष का सेवन नही करती है।
२ जिसकी योनि मे आये शुक्र पुद्गल विनष्ट हो जाते है।
३ जिसका पित्त-प्रधान शोणित (रक्त-रज) उदीर्ण हो गया है।
४ देव कर्म से (देव के द्वारा शापादि देने से) जो गर्भधारण के योग्य नही रही है।
५ जिसने पुत्र-फल देने वाला कर्म उपार्जित नही किया है।

इन पाँच कारणो से पुरुप के साथ सवास करती हुई भी स्त्री गर्भ को धारण नही करती है।

निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी एकत्र-वास-सूत्र

१०७—पचहिं ठाणेहिं णिग्गथा णिग्गथीओ य एगतओ ठाण वा सेज्ज वा णिसीहिय वा चेतेमाणा णातिक्कमति, त जहा—

१ अत्थेगइया णिग्गथा य णिग्गथीओ य एग मह अगामिय छिण्णावाय दीहमद्धमडविमणुपविट्ठा, तत्थेगयतो ठाण वा सेज्ज वा णिसीहिय वा चेतेमाणा णातिक्कमति।
२ अत्थेगइया णिग्गथा य णिग्गथीओ य गामसि वा णगरसि वा (खेडसि वा कब्बडसि वा मडबसि वा पट्टणसि वा दोणमुहसि वा आगरसि वा णिगमसि वा आसमसि वा सण्णिवेससि वा) रायहाणिसि वा वास उवागता, एगतिया जत्थ उवस्सय लभति, एगतिया णो लभति, तत्थेगतो ठाण वा (सेज्ज वा णिसीहिय वा चेतेमाणा) णातिक्कमति।
३ अत्थेगइया णिग्गथा य णिग्गथीओ य णागकुमारावाससि वा सुवण्णकुमारावाससि वा वास उवागता, तत्थेगओ (ठाण वा सेज्ज वा णिसीहिय वा चेतेमाणा) णातिक्कमति।

४ आमोसगा दीसति, ते इच्छति णिग्गथीओ चीवरपडियाए पडिगाहित्तए, तत्थेगओ ठाण वा (सेज्ज वा णिसीहिय वा चेतेमाणा) णातिक्कमति ।

५ जुवाणा दीसति, ते इच्छति णिग्गथीओ मेहुणपडियाए पडिगाहित्तए, तत्थेगओ ठाण वा (सेज्ज वा णिसीहिय वा चेतेमाणा) णातिक्कमति ।

इच्चेतेहि पचहि ठाणेहि (णिग्गथा णिग्गथीओ य एगतओ ठाण वा सेज्ज वा निसीहिय वा चेतेमाणा) णातिक्कमति ।

पाच कारणो से निग्रन्थ और निग्रन्थियाँ एक स्थान पर अवस्थान, शयन और स्वाध्याय करते हुए भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नही करते हैं । जसे—

१ यदि कदाचित कुछ निग्रन्थ और निग्रन्थिया किसी बडी भारी, ग्राम शून्य, आवागमन-रहित, लम्बे माग वाली अटवी (वनस्थली) मे अनुप्रविष्ट हो जावें तो वहाँ एक स्थान पर अवस्थान, शयन और स्वाध्याय करते हुए भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नही करते हैं ।

२ यदि कुछ निर्ग्रन्थ या निग्रन्थिया किसी ग्राम मे, नगर मे, खेट मे, कवट मे, मडम्ब मे, पत्तन मे, आकर मे, द्रोणमुख मे, निगम मे, आश्रम मे, सन्निवेश मे अथवा राजधानी मे पहुचे, वहा दोनो मे से किसी एक वग को उपाश्रय मिला और एक को नही मिला, तो वे एक स्थान पर अवस्थान, शयन और स्वाध्याय करते हुए भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नही करते हैं ।

३ यदि कदाचित् कुछ निग्रन्थ और निर्ग्रन्थिया नागकुमार के आवास मे या सुपणकुमार के (या किसी अन्य देव के) आवास मे निवास के लिए एक साथ पहुचे ता वहाँ अनिशून्यता से, या अति जनबहुलता आदि कारण से निग्रन्थियो की रक्षा के लिए एक स्थान पर अवस्थान, शयन और स्वाध्याय करते हुए भगवान की आज्ञा का अतिक्रमण नही करते ह ।

४ (यदि कही अरक्षित स्थान पर निग्रन्थियाँ ठहरी हो, और वहा) चोर-लुटेरे दिखाई देवे, वे निग्रन्थियो के वस्त्रो को चुराना चाहते हो तो वहा एक स्थान पर अवस्थान, शयन और स्वाध्याय करते हुए भगवान की आज्ञा का अतिक्रमण नही करते है ।

५ (यदि किसी स्थान पर निर्ग्रन्थियाँ ठहरी हो, और वहाँ पर) गुडे युवक दिखाई देवे, वे निग्रन्थियो के साथ मथुन की इच्छा से उन्हे पकडना चाहते हो, तो वहा निर्ग्रन्थ और निग्रन्थियाँ एक स्थान पर अवस्थान शयन और स्वाध्याय करते हुए भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नही करते हैं ।

इन पाच कारणो से निग्रन्थ और निग्रन्थियाँ एक स्थान पर अवस्थान, शयन और स्वाध्याय करते हुए भगवान की आज्ञा का अतिक्रमण नही करते हैं (१०७) ।

१०८—पचहि ठाणेहि समणे णिग्गथे अचेलए सचेलियाहि णिग्गथीहि सद्धि सवसमाणे णातिक्कमति, त जहा—

१ खित्तचित्ते समणे णिग्गथे णिग्गथेहिमविज्जमाणेहि अचेलए सचेलियाहि णिग्गथीहि सद्धि सवसमाणे णातिक्कमति ।

२ (दित्तचित्ते समणे णिग्गथे णिग्गथेहिमविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं णिग्गथीहि सद्धि सवसमाणे णातिक्कमति ।
३ जक्खाइट्ठे समणे णिग्गथे णिग्गथेहिमविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं णिग्गथीहिं सद्धि सवसमाणे णातिक्कमति ।
४ उम्मायपत्ते समणे णिग्गथे णिग्गथेहिमविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं णिग्गथीहिं सद्धि सवसमाणे णातिक्कमति ।)
५ णिग्गथीपव्वाइयए समणे णिग्गथेहिं अविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं णिग्गथीहि सद्धि सवसमाणे णातिक्कमति ।

पाँच कारणो से अचेलक श्रमण निग्रन्थ सचेलक निर्ग्रन्थियो के साथ रहता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नही करता है । जैसे—

१ शोक आदि से विक्षिप्तचित्त कोई अचेलक श्रमण निग्रन्थ अन्य निग्रन्था के नही होने पर सचेलक निग्रन्थियो के साथ रहता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नही करता है ।
२ हर्षातिरेक से दृप्तचित्त कोई अचेलक श्रमण निग्रन्थ अन्य निग्रन्थो के नही होन पर सचेल निग्रन्थियो के साथ रहता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नही करता है ।
३ यक्षाविष्ट कोई अचेलक श्रमण निग्रन्थ अन्य निर्ग्रन्थो के नही होने पर सचेल निग्रन्थियो के साथ रहता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नही करता है ।
४ वायु के प्रकोपादि से उन्माद को प्राप्त कोई अचेलक श्रमण निग्रन्थ अन्य निग्रन्था के नही होने पर सचेल निग्रन्थियो के साथ रहता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नही करता है ।
५ निग्रन्थियो के द्वारा प्रव्राजित (दीक्षित) अचेलक श्रमण निग्रन्थ अन्य निर्ग्रन्थो के नही होने पर सचेल निग्रन्थियो के साथ रहता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है ।

आस्रव-सूत्र

१०९—पच आसवदारा पण्णत्ता, त जहा—मिच्छत्त, अविरती, पमादो, कसाया, जोगा ।

आस्रव के पाच द्वार (कारण) कहे गये हैं—
१ मिथ्यात्व, २ अविरति, ३ प्रमाद, ४ कषाय, ५ योग (१०९) ।

११०—पच सवरदारा पण्णत्ता, त जहा—समत्त, विरती, अपमादो, अकसाइत्त अजोगित्त ।

सवर के पाच द्वार कहे गये है । जैसे—
१ सम्यक्त्व, २ विरति, ३ अप्रमाद, ४ अकषायिता, ५ अयोगिता (११०) ।

दड सूत्र

१११—पच दडा पण्णत्ता, त जहा—अट्ठादडे, अणट्ठादडे, हिंसादडे अकस्मादडे, दिट्ठीविप्परियासियादडे ।

दण्ड पाच प्रकार के कहे गये ह । जैसे—

१ अर्थदण्ड—प्रयाजन-वश अपने या दूसरा के लिए जीव-घात करना ।
२ अनर्थदण्ड—बिना प्रयोजन जीव-घात करना ।
३ हिंसादण्ड—'इसने मुझे मारा था, या मार रहा है, या मारेगा' इसलिए हिंसा करना ।
४ अकस्माद् दण्ड—अकस्मात जीव घात हो जाना ।
५ दृष्टिविपर्यास दण्ड—मित्र को शत्रु समझकर दण्डित करना (१११) ।

क्रिया सूत्र

११२—पच किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—आरभिया, पारिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया, मिच्छादसणवत्तिया ।

क्रियाए पाच कही गई हैं । जैसे—

१ आरम्भिकी क्रिया, २ पारिग्रहिकी क्रिया, ३ मायाप्रत्यया क्रिया, ४ अप्रत्याख्यान क्रिया, ५ मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया (११२) ।

११३—मिच्छादिट्ठियाण णेरइयाण पच किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—(आरभिया, पारिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया), मिच्छादसणवत्तिया ।

मिथ्यादृष्टि नारकों के पाच क्रियाए कही गई है । जसे—

१ आरम्भिकी क्रिया, २ पारिग्रहिकी क्रिया, ३ मायाप्रत्यया क्रिया, ४ अप्रत्याख्यान क्रिया, ५ मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया (११३) ।

११४—एव—सव्वेसि णिरतर जाव मिच्छद्दिट्ठियाण वेमाणियाण, णवर—विगलिदिया मिच्छद्दिट्ठी ण भण्णति । सेस तहेव ।

इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि वैमानिकों तक सभी दण्डकों मे पाचो क्रियाए होती हैं । केवल विकलेन्द्रियो के साथ मिथ्यादृष्टि पद नही कहना चाहिए, क्योंकि वे सभी मिथ्यादृष्टि ही होते हैं, अत विशेषण लगाने की आवश्यकता ही नही है । शेष सब तथैव जानना चाहिए (११४) ।

११५—पच किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—काइया, आहिगरणिया, पाओसिया, पारितावणिया, पाणातिवातकिरिया ।

पुन पाच क्रियाए कही गई हैं । जैसे—

१ कायिकी क्रिया, २ आधिकरणिकी क्रिया, ३ प्रादोषिकी क्रिया, ४ पारितापनिकी क्रिया, ५ प्राणातिपातिकी क्रिया (११५) ।

११६—णेरइयाण पच एव चेव । एव—णिरतर जाव वेमाणियाण ।

नारकी जीवो मे ये ही पाच क्रियाए होती ह । इसी प्रकार वैमानिकों तक सभी दण्डकों मे ये ही पाच क्रियाए कही गई है (११६) ।

११७—पच किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—आरभिया (पारिग्गहिया मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया), मिच्छादसणवत्तिया ।

पुन पाच क्रियाए कही गई हैं। जैसे—

१ आरम्भिकी क्रिया, २ पारिग्रहिकी क्रिया, ३ मायाप्रत्यया क्रिया, ४ अप्रत्याख्यान क्रिया, ५ मिथ्यादर्शन क्रिया (११७)।

११८—णेरइयाण पच किरिया णिरतर जाव वेमाणियाण ।

नारकी जीवो से लेकर निरन्तर वैमानिक तक सभी दण्डको मे ये पाच क्रियाए जाननी चाहिए (११८)।

११९—पच किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—दिट्ठिया, पुट्ठिया, पाडुच्चिया, सामतोवणिवाइया, साहत्थिया ।

पुन पाच क्रियाए कही गई हैं। जैसे—

१ दृष्टिजा क्रिया, २ पृष्टिजाक्रिया, ३ प्रातीत्यिकी क्रिया, ४ सामन्तोपनिपातिकी क्रिया, ५ स्वाहस्तिकी क्रिया (११९)।

१२०—एव णेरइयाण जाव वेमाणियाण ।

नारकी जीवो से लेकर वैमानिक तक सभी दडको मे ये पाच क्रियाए जाननी चाहिए (१२०)।

१२१—पच किरियाओ, त जहा—णेसत्थिया, आणवणिया, वेयारणिया, अणाभोगवत्तिया, अणवकखवत्तिया। एव जाव वेमाणियाण ।

पुन पाच क्रियाए कही गई है। जैसे—

१ नैसृष्टिकी क्रिया, २ आज्ञापनिकी क्रिया, ३ वैदारणिका क्रिया, ४ अनाभोगप्रत्ययाक्रिया, ५ अनवकाक्षप्रत्यया क्रिया।

नारको से लेकर वैमानिका तक सभी दण्डको मे ये पाच क्रियाए जाननी चाहिए (१२१)।

१२२—पच किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—पेज्जवत्तिया दोसवत्तिया, पओगकिरिया, समुदाणकिरिया, ईरियावहिया। एव—मणुस्साणवि। सेसाण णत्थि ।

पुन पाच क्रियाए कही गई हैं। जैसे—

१ प्रेय प्रत्यया क्रिया, २ द्वेषप्रत्यया क्रिया, ३ प्रयोगक्रिया, ४ समुदानक्रिया ५ ईर्यापथिकी क्रिया।

ये पाचो क्रियाए मनुष्यो मे ही होती हैं। शेष दण्डको मे नही होती। (क्योकि उनमे ईर्यापथिकी क्रिया सभव नही है, वह वीतरागी ग्यारहवे, बारहवे और तेरहवें गुणस्थान वाले मनुष्यो के ही होती है।)

परिज्ञा सूत्र

१२३—पचविहा परिण्णा पण्णत्ता, त जहा—उवहिपरिण्णा उवस्सयपरिण्णा, कसाय-परिण्णा, जोगपरिण्णा भत्तपाणपरिण्णा ।

परिज्ञा पाच प्रकार की कही गई है । जैसे—
१ उपधिपरिज्ञा, २ उपाश्रयपरिज्ञा, ३ कषायपरिज्ञा, ४ योगपरिज्ञा, ५ भक्त पान-परिज्ञा ।

विवेचन—वस्तुस्वरूप के ज्ञानपूर्वक प्रत्याख्यान या परित्याग को परिज्ञा कहते हैं ।

व्यवहार-सूत्र

१२४—पचविहे ववहारे पण्णत्ते, त जहा—आगमे, सुते, आणा, धारणा, जीते ।

जहा से तत्थ आगमे सिया, आगमेण ववहार पट्ठवेज्जा ।
णो से तत्थ आगमे सिया जहा से तत्थ सुते सिया, सुतेण ववहार पट्ठवेज्जा ।
णो से तत्थ सुते सिया (जहा से तत्थ आणा सिया, आणाए ववहार पट्ठवेज्जा ।
णो से तत्थ आणा सिया जहा से तत्थ धारणा सिया, धारणाए ववहार पट्ठवेज्जा ।
णो से तत्थ धारणा सिया) जहा से तत्थ जीते सिया, जीतेण ववहार पट्ठवेज्जा ।
इच्चतेहि पचहि ववहार पट्ठवेज्जा—आगमेण (सुतेण आणाए धारणाए) जीतेण ।
जधा जधा से तत्थ आगमे (सुते आणा धारणा) जीते तधा तधा ववहार पट्ठवेज्जा ।
से किमाहु भते ! आगमबलिया समणा णिग्गथा ?

इच्चेत पचविध ववहार जया जया जहि जहि तया तया तहि तहि अणिस्सितोवस्सित सम्म ववहरमाणे समणे णिग्गथे आणाए आराधए भवति ।

व्यवहार पाच प्रकार का कहा गया है । जसे—
१ आगमव्यवहार, २ श्रुतव्यवहार, ३ आज्ञाव्यवहार, ४ धारणाव्यवहार, ५ जीतव्यवहार (१२४) ।

जहा आगम हो अर्थात् जहा आगम से विधि-निषेध का बोध होता हो वहा आगम से व्यवहार की प्रस्थापना करे ।
जहा आगम न हो, श्रुत हो, वहा श्रुत से व्यवहार की प्रस्थापना करे ।
जहा श्रुत न हो, आज्ञा हो, वहा आज्ञा से व्यवहार की प्रस्थापना करे ।
जहा आज्ञा न हो, धारणा हो, वहा धारणा से व्यवहार की प्रस्थापना करे ।
जहा धारणा न हो, जीत हो, वहा जीत से व्यवहार की प्रस्थापना करे ।

इन पाचो से व्यवहार की प्रस्थापना करे—१ आगम से, २ श्रुत से, ३ आज्ञा से, ४ धारणा से, ५ जीत से ।

जिस समय जहा आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत म से जो प्रधान हो, वहा उसीसे व्यवहार की प्रस्थापना करे ।

प्रश्न—हे भगवन्! आगम ही जिनका बल है ऐसे श्रमण-निग्रन्थों ने इस विषय में क्या कहा है?

उत्तर—हे आयुष्मान् श्रमणो! इन पांचों व्यवहारों में जब-जब जिस-जिस विषय में जो व्यवहार हो, तब-तब वहां-वहां उसका अनिश्रितोपाश्रित—मध्यस्थ भाव से—सम्यक् व्यवहार करता हुआ श्रमण निग्रन्थ भगवान् की आज्ञा का आराधक होता है।

विवेचन—मुमुक्षु व्यक्ति का क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए? इस प्रकार के प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप निर्देश-विशेष को व्यवहार कहते हैं। जिनसे यह व्यवहार चलता है वे व्यक्ति भी कार्य-कारण की अभेदविवक्षा से व्यवहार कहे जाते हैं। सूत्र पठित पाँचों व्यवहारों का अर्थ इस प्रकार है—

१ आगमव्यवहार—'आगम्यन्ते परिच्छिद्यन्ते अर्था अनेनेत्यागम' इस निरुक्ति के अनुसार जिस ज्ञानविशेष से पदार्थ जाने जावें, उसे आगम कहते हैं। प्रकृत में केवलज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, चतुर्दशपूर्वी, दशपूर्वी और नवपूर्वी के व्यवहार को 'आगम व्यवहार' कहा गया है।

२ श्रुतव्यवहार—नवपूर्व से न्यून ज्ञानवाले आचार्यों के व्यवहार को श्रुत व्यवहार कहते हैं।

३ आज्ञाव्यवहार—किसी साधु ने किसी दोष-विशेष की प्रतिसेवना की है, अथवा भक्त-पान का त्याग कर दिया है और समाधिमरण को धारण कर लिया है, वह अपने जीवनभर की आलोचना करना चाहता है। गीतार्थ साधु या आचार्य समीप प्रदेश में नहीं हैं, दूर हैं, और उनका आना भी संभव नहीं है। ऐसी दशा में उस साधु के दोषों को गूढ या संकेत पदों के द्वारा किसी अन्य साधु के साथ उन दूरवर्ती आचार्य या गीतार्थ साधु के समीप भेजा जाता है, तब वे उसके प्रायश्चित्त को गूढ पदों के द्वारा ही उसके साथ भेजते हैं। इस प्रकार गीतार्थ की आज्ञा से जो शुद्धि की जाती है, उसे आज्ञा-व्यवहार कहते हैं।

४ धारणाव्यवहार—गीतार्थ साधु ने पहले किसी को प्रायश्चित्त दिया हो, उसे जो धारण करे, अर्थात् याद रखे। पीछे उसी प्रकार का दोष किसी अन्य के द्वारा होने पर वैसा ही प्रायश्चित्त देना धारणा-व्यवहार है।

५ जीतव्यवहार—किसी समय किसी अपराध के लिए आगमादि चार व्यवहारों का अभाव हो, तब तात्कालिक आचार्यों के द्वारा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार जो प्रायश्चित्त का विधान किया जाता है, उसे जीतव्यवहार कहते हैं। अथवा जिस गच्छ में कारण विशेष से सूत्रातिरिक्त जो प्रायश्चित्त देने का व्यवहार चल रहा है और जिसका अन्य अनेक महापुरुषों ने अनुसरण किया है, वह जीतव्यवहार कहलाता है।[1]

---

१ आगम्यन्ते परिच्छिद्यन्ते अर्था अनेनेत्यागमः—केवलमनःपर्यायावधिपूर्वचतुर्दशकदशकनवकरूपः १। तथा शेषं श्रुतं—आचारप्रकल्पादिश्रुतं। नवादिपूर्वाणां श्रुतत्वेऽप्यतीन्द्रियार्थज्ञानहेतुत्वेन सातिशयत्वादागमव्यपदेशः केवलवदिति २। यदगीतार्थस्य पुरतो गूढार्थपदैर्देशान्तरस्थगीतार्थनिवेदनायातिचारालोचनमितरस्यापि तथैव शुद्धिदानं साऽऽज्ञा ३। गीतार्थसंविग्नेन द्रव्याद्यपेक्षया यत्रापराधे यथा या विशुद्धिः कृता तामवधार्य यदन्यस्तत्रैव तथैव तामेव प्रयुङ्क्ते सा धारणा। वैयावृत्त्यकरादेर्वा गच्छोपग्रहकारिणो अशेषानुचितस्योचितप्रायश्चित्तपदानां प्रदर्शितानां धरणं धारणेति ४। तथा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावपुरुषप्रतिसेवानुवृत्त्या संहननधृत्यादिपरिहाणिमपेक्ष्य यत्प्रायश्चित्तदानं यो वा यत्र गच्छे सूत्रातिरिक्तः कारणतः प्रायश्चित्तव्यवहारः प्रवर्तितो बहुभिरन्यैश्चानुवर्तितस्तज्जीतमिति ५। (स्थानाङ्गसूत्रवृत्ति, पत्र ३०२)

सुप्त जागर-सूत्र

१२५—सजयमणुस्साण सुत्ताण पच जागरा पण्णत्ता, त जहा—सद्दा, (रूवा, गधा, रसा), फासा।

सोते हुए सयत मनुष्यो क पाच जागर कहे गये है। जैसे—
१ शब्द २ रूप ३ गन्ध ४ रस ५ स्पर्श (१२५)।

१२६—सजतमणुस्साण जागराण पच सुत्ता पण्णत्ता, त जहा—सद्दा, (रूवा, गधा, रसा), फासा।

जागते हुए सयत मनुष्यो के पाच सुप्त कहे गये हैं। जैसे—
१ शब्द २ रूप ३ गन्ध ४ रस ५ स्पश (१२६)।

१२७—असजयमणुस्साण सुत्ताण वा जागराण वा पच जागरा पण्णत्ता, त जहा--सद्दा, (रूवा, गधा, रसा), फासा।

मोते हुए या जागत हुए असयत मनुष्यो के पाच जागर कहे गये ह। जैसे—
१ शब्द २ रूप ३ गन्ध ४ रस ५ स्पर्श (१२७)।

विवेचन—सोते हुए सयमी मनुष्यो की पाचा इन्द्रिया अपने विषयभूत शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पश मे स्वतत्र रूप से प्रवृत्त रहती है, अर्थात् प्रत्येक इन्द्रिय अपने विषय को ग्रहण करती रहती है—अपने विषय मे जागृत रहती ह इसीलिए शब्दादिक को जागर कहा गया है। सोती दशा में सयत के प्रमाद का सद्भाव होने से वे शब्दादिक कम बन्ध के कारण होते है। इसके विपरीत जागते हुए सयत मनुष्य के प्रमाद का अभाव होने से वे शब्दादिक कमबन्ध के कारण नही होते हैं, अत जागते हुए सयत के शब्दादिक का सुप्त के समान होने से सुप्त कहा गया है। किन्तु असयत मनुष्य चाहे सो रहा हो, चाह जाग रहा हा, दोना ही अवस्थाओ मे प्रमाद का सदभाव पाये जाने से उसके शब्दादिक को जागृत ही कहा गया है, क्योकि दोनो ही दशा मे उसके प्रमाद के कारण कमबन्ध होना रहता है।

रज आदान-वमन-सूत्र

१२८—पर्चाह ठार्णोह जीवा रय आदिज्जति, त जहा—पाणातिवातेण, (मुसावाएण, अदिण्णादाणेण मेहुणेण), परिग्गहेण।

पाच कारणो स जीव कम-रज को ग्रहण करते ह। जैसे—
१ प्राणातिपात से २ मृपावाद स ३ अदत्तादान से ४ मथुनसेवन से
५ परिग्रह से (१२८)।

१२९—पर्चाह ठार्णोह जीवा रय वमति, त जहा—पाणातिवातवेरमणेण, (मुसावायवेरमणेण, अदिण्णादाणवेरमणेण, मेहुणवेरमणेण), परिग्गहवेरमणेण।

पाँच कारणो से जीव कम-रज को वमन करते हैं। जैसे—
१ प्राणातिपात विरमण स २ मृपावाद विरमण मे ३ अदत्तादान विरमण मे
४ मैथुन-विरमण से ५ परिग्रह विरमण से (१२९)

दत्ति-सूत्र

१३०—पचमासिय ण भिक्खुपडिम पडिवण्णस्स अणगारस्स कप्पति पच दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, पच पाणगस्स ।

पचमासिकी भिक्षुप्रतिमा को धारण करने वाले अनगार को भोजन की पाँच दत्तिया और पानक की पाच दत्तियाँ ग्रहण करना कल्पती हैं (१३०) ।

उवघात विशोधि सूत्र

१३१—पचविधे उवघाते पण्णत्ते, त जहा—उग्गमोवघाते, उप्पायणोवधाते, एसणोवघाते, परिकम्मोवघाते, परिहरणोवघाते ।

उपघात (अशुद्धि-दोष) पांच प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ उद्गमोपघात—आधाकर्मादि उद्गमदोषो से होने वाला चारित्र का घात ।
२ उत्पादनोपघात—धात्री आदि उत्पादन दोषो से होने वाला चारित्र का घात ।
३ एषणोपघात—शकित आदि एषणा के दोषा से होने वाला चारित्र का घात ।
४ परिकर्मोपघात—वस्त्र-पात्रादि के निमित्त मे होने वाला चारित्र का घात ।
५ परिहरणोपघात—अकल्प्य उपकरणा के उपभोग से होन वाला चारित्र का घात (१३१) ।

१३२—पचविहा विसोही पण्णत्ता, त जहा—उग्गमविसोही, उप्पायणविसोही, एसणविसोही, परिकम्मविसोही, परिहरणविसोही ।

विशोधि पाच प्रकार की कही गई है । जैसे—

१ उद्गमविशोधि—आधाकर्मादि उदगम जनित दोषो की विशुद्धि ।
२ उत्पादनविशोधि—धात्री आदि उत्पादन-जनित दोषो की विशुद्धि ।
३ एषणाविशोधि—शकित आदि एषणा-जनित दोषो की विशुद्धि ।
४ परिकमविशोधि—वस्त्र-पात्रादि परिकम-जनित दोषो की विशुद्धि ।
५ परिहरणविशोधि—अकल्प्य उपकरणा के उपभोग जनित दोषा की विशुद्धि (१३२) ।

दुलभ-सुलभ-बोधि-सूत्र

१३३—पचहि ठाणेहि जीवा दुल्लभबोधियत्ताए कम्म पकरेंति, त जहा—अरहताण अवण्ण वदमाणे, अरहतपण्णत्तस्स धम्मस्स अवण्ण वदमाणे, आयरियउवज्झायाण अवण्ण वदमाणे, चाउवण्णस्स सघस्स अवण्ण वदमाणे, विवक्क-तव बभचेराण देवाण अवण्ण वदमाणे ।

पाँच कारणा से जीव दुलभबोधि करने वाले (जिनधम की प्राप्ति का दुलभ बनाने वाले) मोहनीय आदि कर्मों का उपार्जन करते हैं । जैसे—

१ अर्हन्ता का अवणवाद (असद्-दोषोद्भावन—निन्दा) करता हुआ ।
२ अर्हत्प्रज्ञप्त धर्म का अवणवाद करता हुआ ।
३ आचार्य-उपाध्याय का अवणवाद करता हुआ ।
४ चतुर्वर्ण (चतुर्विध) सघ का अवणवाद करता हुआ ।

५ तप और ब्रह्मचय के परिपाक से दिव्य गति को प्राप्त देवो का अवणवाद करता हुआ (१३३)।

१३४—पचहि ठाणेहि जीवा सुलभबोधियत्ताए कम्म पकरेंति, त जहा—अरहताण वण्ण वदमाणे, (अरहतपण्णत्तस्स धम्मस्स वण्ण वदमाणे, आयरियउवज्झायाण वण्ण वदमाणे, चाउवण्णस्स सघस्स वण्ण वदमाणे), विवक्क-तव बभचेराण देवाण वण्ण वदमाणे।

पाच कारणो से जीव सुलभबोधि करने वाले कम का उपार्जन करता है। जसे—

१ अहन्ता का वणवाद (सद्-गुणोद्भावन) करता हुआ।
२ अहत्प्रज्ञप्त धम का वणवाद करता हुआ।
३ आचाय-उपाध्याय का वणवाद करता हुआ।
४ चतुवण सघ का वणवाद करता हुआ।
५ तप और ब्रह्मचय के विपाक से दिव्यगति को प्राप्त देवो का वणवाद करता हुआ (१३४)।

प्रतिसलीन अप्रतिसलीन-सूत्र

१३५—पच पडिसलीणा पण्णत्ता, त जहा—सोइदियपडिसलीणे, (चक्खिदियपडिसलीणे, घाणिदियपडिसलीणे, जिब्भिदियपडिसलीणे), फासिदियपडिसलीणे।

प्रतिसलीन (इन्द्रिय विषय-निग्रह करने वाला) पाच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ श्रोत्रेन्द्रिय-प्रतिसलीन—शुभ-अशुभ शब्दो मे राग-द्वेष न करने वाला।
२ चक्षुरिन्द्रिय-प्रतिसलीन—शुभ-अशुभ रूपो मे राग द्वेष न करने वाला।
३ घ्राणेन्द्रिय-प्रतिसलीन—शुभ अशुभ गन्ध मे राग द्वेष न करने वाला।
४ रसनेन्द्रिय प्रतिसलीन—शुभ-अशुभ रसो मे राग द्वेष न करने वाला।
५ स्पर्शनेन्द्रिय-प्रतिसलीन—शुभ अशुभ स्पर्शों मे राग-द्वेष न करने वाला (१३५)।

१३६—पच अपडिसलीणा पण्णत्ता, त जहा—सोतिदियअपडिसलीणे, (चक्खिदियअपडिसलीणे, घाणिदियअपडिसलीणे, जिब्भिदियअपडिसलीणे), फासिदियअपडिसलीणे।

अप्रतिसलीन (इन्द्रिय-विषय प्रवतक) पाच प्रकार का कहा गया है। जसे—

१ श्रोत्रेन्द्रिय अप्रतिसलीन—शुभ अशुभ शब्दो मे राग-द्वेष करने वाला।
२ चक्षुरिन्द्रिय-अप्रतिसलीन—शुभ-अशुभ रूपो मे राग-द्वेष करने वाला।
३ घ्राणेन्द्रिय अप्रतिसलीन—शुभ-अशुभ गन्ध मे राग द्वेष करने वाला।
४ रसनेन्द्रिय-अप्रतिसलीन—शुभ अशुभ रसो मे राग-द्वेष करने वाला।
५ स्पर्शनेन्द्रिय-अप्रतिसलीन—शुभ अशुभ स्पर्शों मे राग द्वेष करने वाला (१३६)।

सवर-असवर-सूत्र

१३७—पचविधे सवरे पण्णत्ते, त जहा—सोतिदियसवरे, (चक्खिदियसवरे, घाणिदियसवरे, जिब्भिदियसवरे), फासिदियसवरे।

सवर पाच प्रकार का कहा गया है। जसे—

१ श्रोत्रेन्द्रिय-सवर, २ चक्षुरिन्द्रिय-सवर, ३ घ्राणेन्द्रिय-सवर, ४ रसनेन्द्रिय सवर, ५ स्पर्शनेन्द्रिय-सवर (१३७)।

१३८—पचविधे असवरे पण्णत्ते, त जहा—सोतिंदियग्रसवरे, (चक्खिदियग्रसवरे, घाणिंदिय असवरे, जिब्भिदियग्रसवरे), फासिंदियग्रसवरे।

असवर पाच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ श्रोत्रेन्द्रिय-असवर, २ चक्षुरिन्द्रिय असवर, ३ घ्राणेन्द्रिय असवर ४ रसनेन्द्रिय असवर, ५ स्पर्शनेन्द्रिय-असवर (१३८)।

सजम-असजम सूत्र

१३९—पचविधे सजमे पण्णत्ते, त जहा—सामाइयसजमे, छेदोवट्ठावणियसजमे, परिहार विसुद्धियसजमे, सुहुमसपरागसजमे, अहक्खायचरित्तसजमे।

सयम पाच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ सामयिक-सयम—सब सावद्य कार्यों का त्याग करना।
२ छेदोपस्थानीय सयम—पच महाव्रतों का पृथक् पृथक् स्वीकार करना।
३ परिहारविशुद्धिक-सयम—तपस्या विशेष की साधना करना।
४ सूक्ष्मसापरायसयम—दशम गुणस्थान का सयम।
५ यथाख्यातचारित्रसयम—ग्यारहवें गुणस्थान से लेकर उपरिम सभी गुणस्थानवर्ती जीवो का वीतराग सयम (१३९)।

१४०—एगिंदिया ण जीवा असमारभमाणस्स पचविधे सजमे कज्जति, त जहा—पुढविकाइय सजमे, (ग्राउकाइयसजमे, तेउकाइयसजमे, वाउकाइयसजमे), वणस्सतिकाइयसजमे।

एकेन्द्रियजीवो का आरम्भ-समारम्भ नही करने वाले जीव का पाच प्रकार का सयम होता है। जसे—

१ पृथिवीकायिक-सयम, २ अप्कायिक सयम, ३ तेजस्कायिक-सयम, ४ वायुकायिक सयम, ५ वनस्पतिकायिक सयम (१४०)।

१४१—एगिंदिया ण जीवा समारभमाणस्स पचविहे असजमे कज्जति, त जहा—पुढविकाइय असजमे, (ग्राउकाइयअसजमे, तेउकाइयअसजमे, वाउकाइयअसजमे), वणस्सतिकाइयअसजमे।

एकेन्द्रिय जीवों का आरभ करने वाले को पाच प्रकार असयम होता है जसे—

१ पृथिवीकायिक-असयम, २ अप्कायिक-असयम, ३ तेजस्कायिक-असयम, ४ वायुकायिक असयम, ५ वनस्पतिकायिक-असयम (१४१)।

१४२—पचिंदिया ण जीवा असमारभमाणस्स पचविहे सजमे कज्जति, त जहा—सोतिंदिय सजमे, (चक्खिदियसजमे, घाणिंदियसजमे, जिब्भिदिय सजमे), फासिंदियसजमे।

पचेन्द्रिय जीवो का आरभ-समारभ नही करने वाले को पाच प्रकार का सयम होता है। जैसे-
१ श्रोनेन्द्रिय सयम, २ चक्षुरिन्द्रिय-सयम, ३ घ्राणेन्द्रिय सयम ४ रसनेन्द्रिय सयम
५ स्पर्शनेन्द्रिय-सयम (क्योकि वह पाँचो इन्द्रियो का व्याघात नही करता) (१४२)।

१४३—पंचिंदिया ण जीवा समारभमाणस्स पचविधे असजमे कज्जति, त जहा—सोतिंदिय-असजमे, (चक्खिदियअसजमे, घाणिदियअसजमे, जिब्भिदियअसजमे), फासिंदियअसजमे।

पचेन्द्रिय जीवो का घात करने वाले को पाच प्रकार का असयम होता है जैसे—
१ श्रोनेन्द्रिय असयम, २ चक्षुरिन्द्रिय असयम ३ घ्राणेन्द्रिय असयम
४ रसनेन्द्रिय असयम, ५ स्पर्शनेन्द्रिय-असयम (१४३)।

१४४—सव्वपाणभूयजीवसत्ता ण असमारभमाणस्स पचविहे सजमे कज्जति, त जहा—एगिंदियसजमे, (बेइंदियसजमे, तेइंदियसजमे, चउरिंदियसजमे), पचिंदियसजमे।

सब प्राण, भूत, जीव और सत्त्वो का घात नही करने करने को पाँच प्रकार का सयम होता है। जसे—
१ एकेन्द्रिय सयम, २ द्वीन्द्रिय-सयम, ३ त्रीन्द्रिय-सयम, ४ चतुरिन्द्रिय-सयम,
५ पचेन्द्रिय-सयम (१४४)।

१४५—सव्वपाणभूयजीवसत्ता ण समारभमाणस्स पचविहे असजमे कज्जति, त जहा—एगिंदियअसजमे, (बेइंदियअसजमे, तेइंदियअसजमे, चउरिंदियअसजमे), पचिंदियअसजमे।

सब प्राण, भूत, जीव और सत्वो का घात करने वाले को पाँच प्रकार का असयम होता है। जसे—
१ एकेन्द्रिय-असयम, २ द्वीन्द्रिय असयम, ३ त्रीन्द्रिय-असयम, ४ चतुरिन्द्रिय-असयम
५ पचेन्द्रिय असयम (१४५)।

तृणवनस्पति-सूत्र

१४६—पचविहा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, त जहा—अग्गबीया, मूलबीया, पोरबीया, खधबीया, बीयरुहा।

तृणवनस्पतिकायिक जीव पाच प्रकार के कहे गये हैं। जसे—
१ अग्रबीज—जिनका अग्रभाग ही बीजरूप होता है जैसे—कोरंट आदि।
२ मूलबीज—जिनका मूल भाग ही बीज रूप होता है जसे—कमलकद आदि।
३ पर्वबीज—जिनका पर्व (पोर, गाठ) ही बीजरूप होता है। जैसे—गन्ना आदि।
४ स्कधबीज—जिनका स्कध ही बीजरूप होता ह। जसे—सल्लकी आदि।
५ बीजरूप—बीज से उगने वाले—गेहू, चना आदि (१४६)।

आचार-सूत्र

१४७—पचविहे आयारे पण्णत्ते, त जहा—णाणायारे, दसणायारे, चरित्तायारे, तवायारे, वीरियायारे।

आचार पाच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ ज्ञानाचार, २ दर्शनाचार, ३ चारित्राचार, ४ तपाचार, ५ वीर्याचार (१४७)।

आचारप्रकल्प सूत्र

१४८—पंचविहे आयारकप्पे पण्णत्ते, त जहा—मासिए उग्घातिए, मासिए अणुग्घातिए, चउमासिए उग्घातिए, चउमासिए अणुग्घातिए, आरोवणा।

आचारप्रकल्प (निशीथ सूत्रोक्त प्रायश्चित्त) पाँच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ मासिक उद्-घातिक—लघु मासरूप प्रायश्चित्त।
२ मासिक अनुद्घातिक—गुरु मासरूप प्रायश्चित्त।
३ चातुर्मासिक उद्-घातिक—लघु चार मासरूप प्रायश्चित्त।
४ चातुर्मासिक अनुद्-घातिक—गुरु चार मासरूप प्रायश्चित्त।
५ आरोपणा—एक दोप से प्राप्त प्रायश्चित्त मे दूसरे दोप के सेवन से प्राप्त प्रायश्चित का आरोपण करना (१४८)।

विवेचन—मासिक तपश्चर्या वाले प्रायश्चित्त मे कुछ दिन कम करने को मासिक उद-घातिक या लघुमास प्रायश्चित्त कहते है। तथा मासिक तपश्चर्या वाले प्रायश्चित्त में से कुछ भी अंश कम नही करने को मासिक अनुद्-घातिक या गुरुमास प्रायश्चित्त कहते हैं। यही अर्थ चातुर्मासिक उद्-घातिक और अनुद घातिक का भी जानना चाहिए। आरोपणा का विवेचन आगे के सूत्र मे किया जा रहा है।

आरोपणा-सूत्र

१४९—आरोवणा पंचविहा पण्णत्ता, त जहा—पट्ठविया, ठविया, कसिणा, अकसिणा, हाडहडा।

आरोपणा पाँच प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ प्रस्थापिता आरोपणा—प्रायश्चित्त मे प्राप्त अनेक तपो मे से किसी एक तप का प्रारम्भ करना।
२ स्थापिता आरोपणा—प्रायश्चित्त रूप मे प्राप्त तपों को भविष्य के लिए स्थापित किये रखना, गुरुजनो की वैयावृत्य आदि किसी कारण से प्रारम्भ न करना।
३ कृत्स्ना आरोपणा—पूरे छह मास की तपस्या का प्रायश्चित्त देना, क्योकि वर्तमान जिन शासन मे उत्कृष्ट तपस्या की सीमा छह मास की मानी गई है।
४ अकृत्स्ना आरोपणा—एक दोप के प्रायश्चित्त को करते हुए दूसरे दोप को करने पर, तथा उसके प्रायश्चित्त को करते हुए तीसरे दोप के करने पर यदि प्रायश्चित्त-तपस्या का काल छह मास मे अधिक होता है, तो उसे छह मास मे ही आरोपण कर दिया जाता है। अतः पूरा प्रायश्चित्त नहीं कर सकने के कारण उसे अकृत्स्ना आरोपणा कहते हैं।
५ हाडहडा आरोपणा—जो प्रायश्चित्त प्राप्त हो, उसे शीघ्र ही देने को हाडहडा आरोपणा कहते हैं (१४९)।

वक्षस्कारपवत-सूत्र

१५०—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीयाए महाणदीए उत्तरे ण पच वक्खार-पव्वता पण्णत्ता, त जहा—मालवते चित्तकूडे, पम्हकूडे, णलिणकूडे, एगसेले।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पवत के पूव भाग मे, सीता महानदी की उत्तर दिशा मे पाँच वक्षस्कार पवत कहे गये हैं। जसे—

१ माल्यवान्, २ चित्रकूट, ३ पद्मकूट, ४ नलिनकूट, ५ एकशैल (१५०)।

१५१—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीयाए महाणदीए दाहिणे ण पच वक्खारपव्वता पण्णत्ता, त जहा—तिकूडे, वेसमणकूडे, अजण, मायजणे, सोमणसे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पवत के पूव भाग मे सीता महानदी की दक्षिण दिशा मे पाच वक्षस्कार-पवत कहे गये हैं। जैसे—

१ त्रिकूट, २ वैश्रमण कूट, ३ अजन, ४ माताजन, ५ सौमनस (१५१)।

१५२—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीओयाए महाणदीए दाहिणे ण पच वक्खारपव्वता पण्णत्ता, त जहा—विज्जुप्पभे, अकावती, पम्हावती, आसीविसे, सुहावहे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के पश्चिम भाग मे सीतोदा महानदी की दक्षिण दिशा मे पाच वक्षस्कार पवत कहे गये हैं। जैसे—

१ विद्युत्प्रभ, २ अकावती, ३ पक्ष्मावती, ४ आशीविष, ५ सुखावह (१५२)।

१५३—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीओयाए महाणदीए उत्तरे ण पच वक्खारपव्वता पण्णत्ता, त जहा—चदपव्वते, सूरपव्वते, णागपव्वते, देवपव्वते, गधमादणे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पवत के पश्चिम भाग मे सीतोदा महानदी की उत्तर दिशा मे पाच वक्षस्कार पवत कहे गये हैं। जैसे—

१ चन्द्रपर्वत, २ सूर्यपवत, ३ नागपवत, ४ देवपवत, ५ गन्धमादन (१५३)।

महाद्रह सूत्र

१५४—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण देवकुराए कुराए पच महद्दहा पण्णत्ता, त जहा—णिसहदहे, देवकुरुदहे, सूरदहे, सुलसदहे, विज्जुप्पभदहे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पवत के दक्षिण भाग मे देवकुरु नामक कुरुक्षेत्र मे पाच महाद्रह कहे गये हैं। जैसे—

१ निषधद्रह, २ देवकुरुद्रह, ३ सूर्यद्रह ४ सुलसद्रह, ५ विद्युत्प्रभद्रह (१५४)।

१५५—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण उत्तरकुराए कुराए पच महादहा पण्णत्ता, त जहा—णीलवतदहे, उत्तरकुरुदहे, चददहे, एरावणदहे, मालवतदहे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पवत के उत्तर भाग मे उत्तरकुरुनामक कुरुक्षेत्र मे पाँच महाद्रह कहे गये हैं। जैसे—

१ नीलवत्द्रह २ उत्तरकुरुद्रह, ३ चन्द्रद्रह, ४ ऐरावणद्रह, ५ माल्यवत्द्रह (१५५)।

वक्षस्कारपर्वत-सूत्र

१५६—सव्वेवि ण वक्खारपव्वया सीया सीओयाओ महाणईओ मदर वा पव्वत पच जोयण सताइ उड्ढ उच्चत्तेण, पचगाउसताइ उव्वेहेण।

सभी वक्षस्कार पर्वत सीता सीतोदा महानदी तथा मन्दर पर्वत की दिशा मे पाच सौ योजन ऊचे और पाच सौ कोश गहरी नीव वाले हैं।

धातकीषण्ड-पुष्करवर-सूत्र

१५७—धायइसडे दीवे पुरत्थिमद्धे ण मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीयाए महाणदीए उत्तरे ण पच वक्खारपव्वता पण्णत्ता, त जहा—मालवते, एव जहा जबुद्दीवे तहा जाव पुक्खरवरदीवड्ढ पच्चत्थिमद्धे वक्खारपव्वया दहा य उच्चत्त भाणियव्व।

धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध मे मन्दर पर्वत के पूर्व मे, तथा सीता महानदी के उत्तर मे पाच वक्षस्कार पर्वत कहे गये है। जैसे—

१ माल्यवान्, २ चित्रकूट, ३ पक्ष्मकूट, ४ नलिन कूट, ५ एकशैल।

इसी प्रकार धातकीषण्ड द्वीप के पश्चिमार्ध मे, तथा अर्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध मे भी जम्बूद्वीप के समान पाच-पाच वक्षस्कार पर्वत, महानदियों सम्बन्धी द्रह और वक्षस्कार पर्वतों की ऊचाई गहराई कहना चाहिए (१५७)।

समयक्षेत्र-सूत्र

१५८—समयक्खेत्ते ण पच भरहाइ, पच एरवताइ, एव जहा चउट्ठाणे बितीयउद्देसे तहा एत्थवि भाणियव्व जाव पच मदरा पच मदरचूलियाओ, णवर—उसुयारा णत्थि।

समयक्षेत्र (अढाई द्वीपो) मे पाच भरत, पाच ऐरवत क्षेत्र हैं। इसी प्रकार जैसे चतु स्थान के द्वितीय उद्देश मे जिन-जिनका वर्णन किया गया है, वह यहा भी कहना चाहिए। यावत पाच मन्दर, पाच मदर चूलिकाए समयक्षेत्र मे हैं। विशेष यह है कि वहा इषुकार पर्वत नही है।

अवगाहना सूत्र

१५९—उसभे ण अरहा कोसलिए पच धणुसताइ उड्ढ उच्चत्तेण होत्था।

कौशलिक (कोशल देश मे उत्पन्न हुए) अर्हत ऋषभदेव पाच सौ धनुष ऊची अवगाहना वाले थे।

१६०—भरहे ण राया चाउरतचक्कवट्टी पच धणुसताइ उड्ढ उच्चत्तेण होत्था।

चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा पाच सौ धनुष ऊची अवगाहना वाले थे (१६०)।

१६१—बाहुबली ण अणगारे (पच धणुसताइ उड्ढ उच्चत्तेण होत्था)।

अनगार बाहुबली[1] पाच सौ धनुष ऊची अवगाहना वाले थे (१६१)।

१ दि शास्त्रो मे बाहुबली की ऊचाई ५२५ धनुष बताई गई है।

१६२—बभी ण अज्जा (पच धणुसताइ उड्ढ उच्चत्तेण होत्था)।

आर्या ब्राह्मी पाच सौ धनुष ऊची अवगाहना वाली थी (१६२)।

१६३—(सुदरी ण अज्जा पच धणुसताइ उड्ढ उच्चत्तेण होत्था)।

आर्या सुन्दरी पाच सौ धनुष ऊची अवगाहना वाली थी (१६३)।

विबोध सूत्र

१६४—पचहि ठाणेहि सुत्ते विबुज्झेज्जा, त जहा—सद्दे‌ण, फासेण, भोयणपरिणामेण, णिद्दक्ख एण, सुविणदसणेण।

पाच कारणो से सोता हुआ मनुष्य जाग जाता है। जैसे—

१ शब्द से—किसी की आवाज को सुनकर।
२ स्पर्श से—किसी का स्पर्श होने पर।
३ भोजन परिणाम से—भूख लगने से।
४ निद्राक्षय से—पूरी नीद ले लेने से।
५ स्वप्नदर्शन से—स्वप्न देखने से।

निग्र न्थी अवल बन सूत्र

१६५—पचहि ठाणेहि समणे णिग्गथे णिग्गथि गिण्हमाणे वा अवलबमाणे वा णातिक्कमति, त जहा—

१ णिग्गथि च ण अण्णयरे पसुजातिए वा पक्खिजातिए वा ओहातेज्जा, तत्थ णिग्गथे णिग्गथि गिण्हमाणे वा अवलबमाणे वा णातिक्कमति।

२ णिग्गथे णिग्गथि दुग्गसि वा विसमसि वा पक्खलममाणि वा पवडमाणि वा गिण्हमाणे वा अवलबमाणे वा णातिक्कमति।

३ णिग्गथे णिग्गथि सेयसि वा पकसि वा पणगसि वा उदगसि वा उक्कसमाणि वा उवुज्झमाणि वा गिण्हमाणे वा अवलबमाणे वा णातिक्कमति।

४ णिग्गथे णिग्गथि णाव आरुभमाणे वा ओरोहमाणे वा णातिक्कमति।

५ खित्तचित्त दित्तचित्त जक्खाइट्ठ उम्मायपत्त उवसग्गपत्त साहिगरण सपायच्छित्त जाव भत्तपाणपडियाइक्खिय अट्ठजाय वा णिग्गथे णिग्गथि गेण्हमाणे वा अवलबमाणे वा णातिक्कमति।

पाच कारणो से श्रमण निग्र न्थ, निर्ग्र न्थी को पकडे, या अवलम्बन दे तो भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नही करता है। जैसे—

१ कोई पशु जाति का या पक्षिजाति का प्राणी निग्र न्थी को उपहृत करे तो वहा निग्र न्थी को ग्रहण करता या अवलम्बन (सहारा) देता हुआ निग्र न्थ भगवान की आज्ञा का अतिक्रमण नही करता है।

२ दुर्गम या विषम स्थान मे फिसलती हुई या गिरती हुई निर्ग्रन्थी को ग्रहण करता या अव-लम्बन देता हुआ निर्ग्रन्थ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नही करता है।
३ दल-दल में, या कीचड मे, या काई मे, या जल मे फसी हुई, या बहती हुई निर्ग्रन्थी को ग्रहण करता या अवलम्बन देता हुआ निर्ग्रन्थ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नही करता है।
४ निर्ग्रन्थी को नाव मे चढाता हुआ या उतारता हुआ निर्ग्रन्थ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नही करता है।
५ क्षिप्तचित्त या दृप्तचित्त या यक्षाविष्ट या उन्मादप्राप्त या उपसर्ग प्राप्त, या कलह रत या प्रायश्चित्त से डरी हुई, या भक्त-पान-प्रत्याख्यात, (उपवासी) या अर्थजात (पति या किसी अन्य द्वारा सयम से च्युत की जाती हुई) निर्ग्रन्थी को ग्रहण करता या अवलम्बन देता निर्ग्रन्थ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नही करता है (१६५)।

विवेचन—यद्यपि निर्ग्रन्थ को निर्ग्रन्थी के स्पर्श करने का सर्वथा निषेध है। तथापि जिन परिस्थिति-विशेषो मे वह निर्ग्रन्थी का हाथ आदि पकड कर उसको सहारा दे सकता है या उसकी और उसके सयम की रक्षा कर सकता है, उन पाच कारणो का प्रस्तुत सूत्र मे निर्देश किया गया है और तदनुसार कार्य करते हुए वह जिन आज्ञा का उल्लघन नही करता है।

प्रत्येक कारण मे ग्रहण और अवलम्बन इन दो पदो का प्रयोग किया गया है। निर्ग्रन्थी को सर्वाङ्ग से पकडना ग्रहण कहलाता है और हाथ से उसके एक देश को पकड कर सहारा देना अव-लम्बन कहलाता है[1]।

दूसरे कारण मे 'दुर्ग' पद आया है। जहाँ कठिनाई से जाया जा सके ऐसे दुर्गम प्रदेश को दुर्ग कहते हैं। टीकाकारने तीन प्रकार के दुर्गों का उल्लेख किया है—१ वृक्षदुर्ग-सघन झाडी, २ श्वापददुर्ग—हिंसक पशुओ का निवासस्थान, ३ मनुष्यदुर्ग—म्लेच्छादि मनुष्यो की बस्ती। साधारणत ऊबड-खाबड भूमि को भी दुर्गम कहा जाता है। ऐसे स्थानो मे प्रस्खलन या प्रपतन करती-गिरती या पडती हुई निर्ग्रन्थी को सहारा दिया जा सकता है। पैर का फिसलना, या फिसलते हुए भूमिपर हाथ-घुटने टेकना प्रस्खलन है और भूमिपर धडाम से गिर पडना प्रपतन है[2]।

दल-दल आदि मे फसी हुई निर्ग्रन्थी के मरण की आशका है, इसी प्रकार नाव मे चढते या उतरते हुए पानी मे गिरने का भय सभव है, इन दोनो ही अवसरो पर उसकी रक्षा करना साधु का कर्त्तव्य है।

पाचवें कारण मे दिये गये क्षिप्तचित्त आदि का अर्थ इस प्रकार है—

१ क्षिप्तचित्त—राग, भय, या अपमानादि से जिसका चित्त विक्षिप्त हो।
२ दृप्तचित्त—सम्मान, लाभ, ऐश्वर्य आदि मद से या दुर्जय शत्रु को जीतने से जिसका चित्त दर्प को प्राप्त हो।
३ यक्षाविष्ट—पूर्वभव के वैर से, या रागादि से यक्ष के द्वारा आक्रान्त हुई।

---

१ सव्वगियं तु गहणं करेण अवलम्बणं तु देसम्मि। (सूत्रकृताङ्गटीका, पत्र ३११)
२ भूमीए असंपत्तं पत्तं वा हत्थजाणुगादीहिं। पक्खलणं नायव्वं पवडणभूमीए गत्तेहिं॥

४ उन्मादप्राप्त—पित्त-विकार से उन्मत्त या पागल हुई।
५ उपसर्गप्राप्त—देव, मनुष्य या तिर्यंच कृत उपद्रव से पीडित।
६ साधिकरणा—कलह करती हुई या लडने के लिए उद्यत।
७ सप्रायश्चित्त—प्रायश्चित्त के भय से पीडित या डरी हुई।
८ भक्त पान-प्रत्याख्यात—जीवन भर के लिए अशन-पान का त्याग करने वाली।
९ अर्थजात—अर्थ (प्रयोजन-) विशेष से, अथवा धनादि के लिए पति या चोर आदि के द्वारा सयम मे चलायमान की जाती हुई।

उपर्युक्त सभी दशाओ मे निग्रन्थी की रक्षार्थ निग्रन्थ उसे ग्रहण या अवलम्बन देते हुए जिन-आज्ञा का अतिक्रमण नही करता।

आचार्य उपाध्याय-अतिशेष सूत्र

१६६—आयरिय उवज्झायस्स ण गणसि पच अतिसेसा पण्णत्ता, त जहा—
१ आयरिय उवज्झाए अतो उवस्सयस्स पाए णिगज्झिय णिगज्झिय पप्फोडेमाणे वा पमज्जेमाणे वा णातिक्कमति।
२ आयरिय उवज्झाए अतो उवस्सयस्स उच्चारपासवण विगिचमाणे वा विसोधेमाणे वा णातिक्कमति।
३ आयरिय उवज्झाए पभू, इच्छा वेयावडिय करेज्जा, इच्छा णो करेज्जा।
४ आयरिय उवज्झाए अतो उवस्सयस्स एगरात वा दुरात वा एगगो वसमाण णातिक्कमति।
५ आयरिय उवज्झाए बाहिं उवस्सयस्स एगरात वा दुरात वा [एगम्रो ?] वसमाणे णातिक्कमति।

गण मे आचार्य और उपाध्याय के पाच अतिशेष (अतिशय) कहे गये हैं। जैसे—
१ आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के भीतर पैरो की धूलि को सावधानी से भाडते हुए या फटकारते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते है।
२ आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के भीतर उच्चार (मल) और प्रस्रवण (मूत्र) का व्युत्सर्ग और विशोधन करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते हैं।
३ आचार्य और उपाध्याय की इच्छा हो तो वे दूसरे साधु की वैयावृत्त्य करें, इच्छा न हो तो न करे, इसके लिए व प्रभु (स्वतत्र) हैं।
४ आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के भीतर एक रात्रि या दो रात्रि अकेले रहते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते ह।
५ आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय से वाहर एक रात्रि या दो रात्रि अकेले रहते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते है (१६६)।

विवेचन—सूत्र की वाचना देन वाले को उपाध्याय और अर्थ की वाचना देने वाले को आचार्य कहते है। साधारण साधुओ की अपेक्षा आचार्य और उपाध्याय को जो विशेष अधिकार प्राप्त होते हैं, उन्हे अतिशेष या अतिशय कहते हैं।

तृतीय उद्देश

अतिकाय सूत्र

१६६—पच अत्थिकाया पण्णत्ता, त जहा—धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए।

पाच द्रव्य अस्तिकाय कहे गये हैं। जैसे—
१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ जीवास्तिकाय,
५ पुद्गलास्तिकाय। (१६६)

१७०—धम्मत्थिकाए अवण्णे अगधे अरसे अफासे अरूवी अजीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे।
से समासओ पचविधे पण्णत्ते, त जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।
दव्वओ ण धम्मत्थिकाए एग दव्व।
खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते।
कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे।
भावओ अवण्णे अगधे अरसे अफासे।
गुणओ गमणगुणे।

धर्मास्तिकाय अवर्ण, अगन्ध, अरस, अस्पर्श, अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित और लोक का अशभूत द्रव्य है अर्थात् पचास्तिकायमय लोक का एक अश है।

वह सक्षेप से पाच प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ द्रव्य की अपेक्षा, २ क्षेत्र की अपेक्षा ३ काल की अपेक्षा, ४ भाव की अपेक्षा,
५ गुण की अपेक्षा।

१ द्रव्य की अपेक्षा—धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है।
२ क्षेत्र की अपेक्षा—धर्मास्तिकाय लोकप्रमाण है।
३ काल की अपेक्षा—धर्मास्तिकाय कभी नहीं था, ऐसा नहीं है, कभी नहीं है, ऐसा नहीं है, कभी नहीं होगा, ऐसा नहीं है। वह भूतकाल मे था, वर्तमान मे है और भविष्य मे रहेगा। अत वह ध्रुव, निचित, शाश्वत, अक्षय अव्यय, अवस्थित और नित्य है।
४ भाव की अपेक्षा—धर्मास्तिकाय-अवर्ण, अगन्ध, अरस और अस्पर्श है। अर्थात् उसमे वर्ण गध रस और स्पर्श नहीं है।
५ गुण की अपेक्षा—धर्मास्तिकाय गमनगुणवाला है अर्थात् स्वय गमन करते हुए जीवो और पुद्गलो के गमन करने मे सहायक है। (१७०)

१७१—अधम्मत्थिकाए अवण्णे (अगधे अरसे अफासे अरूवी अजीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे।

से समासओ पचविधे पण्णत्ते, त जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।

दव्वओ ण अधम्मत्थिकाए एग दव्व।

खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते।

कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे।

भावओ अवण्णे अगधे अरसे अफासे।

गुणओ ठाणगुणे।

अधर्मास्तिकाय अवण, अगन्ध, अरस, अस्पर्श, अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित और लोक का अशभूत द्रव्य है।

वह सक्षेप मे पाच प्रकार का कहा गया है। जसे—

१ द्रव्य की अपेक्षा, २ क्षेत्र की अपेक्षा, ३ काल की अपेक्षा, ४ भाव की अपेक्षा, ५ गुण की अपक्षा।

१ द्रव्य की अपेक्षा—अधर्मास्तिकाय एक द्रव्य है।

२ क्षेत्र की अपेक्षा—अधर्मास्तिकाय लोकप्रमाण है।

३ काल की अपेक्षा—अधर्मास्तिकाय कभी नही था, ऐसा नही है, कभी नही है, ऐसा नही है, कभी नही होगा, ऐसा नही है। वह भूतकाल मे था, वतमान मे है और भविष्य मे रहेगा। अत वह ध्रुव, निचित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

४ भाव की अपेक्षा—अधर्मास्तिकाय अवण, अगन्ध, अरस और अस्पर्श है।

५ गुण की अपेक्षा—अधर्मास्तिकाय अवस्थान गुणवाला है। अर्थात स्वय ठहरने वाले जीव और पुदगलो के ठहरने में सहायक है। (१७१)

१७२—आगासत्थिकाए अवण्णे अगधे अरसे अफासे अरूवी अजीवे सासए अवट्ठिए लोगालोगदव्वे।

से समासओ पचविधे पण्णत्ते, त जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।

दव्वओ ण आगासत्थिकाए एग दव्व।

खेत्तओ लोगालोगपमाणमेत्ते।

कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे।

भावओ अवण्णे अगधे अरसे अफासे।

गुणओ अवगाहणागुणे।

आकाशास्तिकाय अवर्ण, अगन्ध, अरस, अस्पर्श, अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित और लोकालोक रूप द्रव्य है।

यह सक्षेप से पाच प्रकार का कहा गया है। जसे—

१ द्रव्य की अपेक्षा, २ क्षेत्र की अपेक्षा ३ काल की अपेक्षा, ४ भाव की अपेक्षा, ५ गुण की अपेक्षा।

१ द्रव्य की अपेक्षा—आकाशास्तिकाय एक द्रव्य है।

२ क्षेत्र की अपेक्षा—आकाशास्तिकाय लोक-अलोक प्रमाण सर्वव्यापक है।

३ काल की अपेक्षा—आकाशास्तिकाय कभी नही था, ऐसा नही है, कभी नही है, ऐसा नही है, कभी नही होगा, ऐसा नही है। वह भूतकाल मे था, वर्तमान मे है और भविष्य मे रहेगा। अत वह ध्रुव, निश्चित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

भाव की अपेक्षा—आकाशास्तिकाय अवर्ण, अगन्ध, अरस और अस्पर्श है।

गुण की अपेक्षा—आकाशास्तिकाय अवगाहन गुणवाला है।

१७३—जीवत्थिकाए ण अवण्णे अगधे अरसे अफासे अरूवी जीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे।
से समासओ पचविधे पण्णत्ते, त जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।
दव्वओ ण जीवत्थिकाए अणताइ दव्वाइ।
खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते।
कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुवि च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे।
भावओ अवण्णे अगधे अरसे अफासे।
गुणओ उवओगगुणे।

जीवास्तिकाय अवर्ण अगन्ध, अरस, अस्पर्श, अरूपी, जीव, शाश्वत, अवस्थित और लोक का एक अशभूत द्रव्य है।

वह सक्षेप से पाच प्रकार का कहा गया है। जसे—

१ द्रव्य की अपेक्षा, २ क्षेत्र की अपेक्षा, ३ काल की अपेक्षा, ४ भाव की अपेक्षा, ५ गुण की अपेक्षा।

१ द्रव्य की अपेक्षा—जीवास्तिकाय अनन्त द्रव्य हैं।

२ क्षेत्र की अपेक्षा—जीवास्तिकाय लोकप्रमाण हैं, अर्थात् लोकाकाश के असख्यात प्रदेशों के बराबर प्रदेशों वाला है।

३ काल की अपेक्षा—जीवास्तिकाय कभी नही था, ऐसा नही है, कभी नही है, ऐसा नही है, कभी नही होगा, ऐसा नही है। वह भूतकाल मे था, वर्तमानकाल मे है और भविष्यकाल मे रहेगा। अत वह ध्रुव, निश्चित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

४ भाव की अपेक्षा—जीवास्तिकाय अवर्ण, अगन्ध, अरस और अस्पर्श है।

५ गुण की अपेक्षा—जीवास्तिकाय उपयोग गुणवाला है। (१७३)

१७४—पोग्गलत्थिकाए पचवण्णे पचरसे दुगधे अट्ठफासे रूवी अजीवे सासते अवट्ठिते लोगदव्वे।

से समासओ पचविधे पण्णत्ते त जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ ।

दव्वओ ण पोग्गलत्थिकाए अणताइ दव्वाइ ।

खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते ।

कालओ ण कयाइ णासि, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे ।

भावओ वण्णमते गधमते रसमते फासमते ।

गुणओ गहणगुणे ।

पुद्गलास्तिकाय पच वर्ण पच रस, दो गन्ध, अष्ट स्पर्श वाला, रूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित और लोक का एक अशभूत द्रव्य है ।

वह सक्षेप से पाच प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ द्रव्य की अपेक्षा, २ क्षेत्र की अपेक्षा, ३ काल की अपेक्षा, ४ भाव की अपेक्षा ५ गुण की अपेक्षा ।

१ द्रव्य की अपेक्षा—पुद्गलास्तिकाय अनन्त द्रव्य है ।

२ क्षेत्र की अपेक्षा—पुद्गलास्तिकाय लोक प्रमाण है, अर्थात् लोक मे ही रहता है—बाहर नही ।

३ काल की अपेक्षा—पुद्गलास्तिकाय, कभी नही था, ऐसा नही है कभी नही, है, ऐसा भी नही है, कभी नही होगा, ऐसा भी नही है । वह भूतकाल मे था, वतमानकाल मे है और भविष्यकाल मे रहेगा । अत वह ध्रुव, निचित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है ।

४ भाव की अपेक्षा—पुद्गलास्तिकाय वर्णवान्, गन्धवान्, रसवान् और स्पर्शवान् है ।

५ गुण की अपेक्षा—पुद्गलास्तिकाय ग्रहण गुणवाला है । अर्थात् औदारिक आदि शरीर रूप से ग्रहण किया जाता है और इन्द्रियो के द्वारा भी वह ग्राह्य है । अथवा पूरण-गलन गुणवाला—मिलने विछुडने का स्वभाव वाला है । (१७४)

गति सूत्र

१७५—पच गतीओ पण्णत्ताओ, त जहा—णिरयगती, तिरियगती, मणुयगती, देवगती, सिद्धिगती ।

गतिया पाच कही गई है । जसे—

१ नरकगति, २ तिर्यचगति, ३ मनुष्यगति, ४ देवगति ५ सिद्धगति । (१७५)

इन्द्रियार्थ सूत्र

१७६—पच इदियत्था पण्णत्ता, त जहा—सोतिदियत्थे, चक्खिदियत्थे, घाणिदियत्थे, जिब्भिदियत्थे, फासिदियत्थे ।

इन्द्रिया के पाँच अर्थ (विषय) कहे गये है । जसे—

१ श्रोत्रेन्द्रिय का अर्थ शब्द, २ चक्षुरिन्द्रिय का अर्थ रूप, ३ घ्राणेन्द्रिय का अर्थ गन्ध, ४ रसनेन्द्रिय का अर्थ रस, ५ स्पर्शनेन्द्रिय का अर्थ स्पर्श । (१७६)

मुंड-सूत्र

१७७—पंच मुंडा पण्णत्ता, तं जहा—सोतिंदियमुंडे, चक्खिंदियमुंडे, घाणिंदियमुंडे, जिब्भिंदियमुंडे, फासिंदियमुंडे।

अहवा—पंच मुंडा पण्णत्ता, तं जहा—कोहमुंडे, माणमुंडे, मायामुंडे, लोभमुंडे, सिरमुंडे।

मुण्ड (इन्द्रियविषय-विजेता) पांच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ श्रोत्रेन्द्रियमुण्ड—शुभ-अशुभ शब्दों में राग-द्वेष के विजेता।
२ चक्षुरिन्द्रियमुण्ड—शुभ अशुभ रूपों में राग-द्वेष के विजेता।
३ घ्राणेन्द्रियमुण्ड—शुभ-अशुभ गन्ध में राग-द्वेष के विजेता।
४ रसनेन्द्रियमुण्ड—शुभ अशुभ रसों में राग-द्वेष के विजेता।
५ स्पर्शनेन्द्रियमुण्ड—शुभ-अशुभ स्पर्शों में राग-द्वेष के विजेता।

अथवा मुण्ड पांच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ क्रोधमुण्ड—क्रोध कषाय के विजेता।
२ मानमुण्ड—मान कषाय के विजेता।
३ मायामुण्ड—माया कषाय के विजेता।
४ लोभमुण्ड—लोभ कषाय के विजेता।
५ शिरोमुण्ड—मुंडे शिरवाला। (१७७)

बादर-सूत्र

१७८—अहेलोगे णं पंच बायरा पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइया, आउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, ओराला तसा पाणा।

अधोलोक में पांच प्रकार के बादर जीव कहे गये हैं। जैसे—
१ पृथिवीकायिक, २ अप्कायिक, ३ वायुकायिक, ४ वनस्पतिकायिक, ५ उदार त्रस (द्वीन्द्रियादि) प्राणी। (१७८)

१७९—उड्ढलोगे णं पंच बायरा पण्णत्ता, तं जहा—(पुढविकाइया, आउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, ओराला तसा पाणा)।

ऊर्ध्वलोक में पांच प्रकार के बादर जीव कहे गये हैं। जैसे—
१ पृथिवीकायिक, २ अप्कायिक, ३ वायुकायिक, ४ वनस्पतिकायिक, ५ उदारत्रस प्राणी। (१७९)

१८०—तिरियलोगे णं पंच बायरा पण्णत्ता, तं जहा—एगिंदिया, (बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया) पंचिंदिया।

तिर्यक्लोक में पांच प्रकार के बादर जीव कहे गये हैं। जैसे—
१ एकेन्द्रिय, २ द्वीन्द्रिय, ३ त्रीन्द्रिय, ४ चतुरिन्द्रिय, ५ पंचेन्द्रिय। (१८०)

१८१—पंचविहा बायरतेउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—इंगाले, जाले, मुम्मुरे, अच्ची, अलाते।

वादर-तेजस्कायिक जीव पाच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ अगार—धधकता हुआ अग्निपिण्ड।
२ ज्वाला—जलती हुई अग्नि की मूल से छिन्न शिखा।
३ मुर्मुर—भस्म-मिश्रित अग्निकण।
४ अर्चि—जलते काष्ठ आदि से अच्छिन्न ज्वाला।
५ अलात—जलता हुआ काष्ठ। (१८१)

१८२—पचविधा बादरवाउकाइया पण्णत्ता, त जहा—पाईणवाते, पडीणवाते, दाहिणवाते, उदीणवाते, विदिसवाते।

वादर-वायुकायिक जीव पाच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ प्राचीनवात—पूर्वदिशा का पवन।
२ प्रतीचीन वात—पश्चिम दिशा का पवन।
३ दक्षिणवात—दक्षिण दिशा का पवन।
४ उत्तरवात—उत्तरदिशा का पवन।
५ विदिग्वात—विदिशाओ के—ईशान, नैऋत, आग्नेय, वायव्य, ऊर्ध्व और अधोदिशाओ के वायु। (१८२)

अचित्त वायुकाय-सूत्र

१८३—पचविधा अचित्ता वाउकाइया पण्णत्ता, त जहा—अक्कते, धते पीलिए, सरीराणुगते, समुच्छिमे।

अचित्त वायुकाय पाँच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ आक्रान्तवात—जोर-जोर से भूमि पर पैर पटकने से उत्पन्न वायु।
२ ध्मात वात—धौकनी आदि के द्वारा धौकने से उत्पन्न वायु।
३ पीडित वात—गीले वस्त्रादि के निचोडने आदि से उत्पन्न वायु।
४ शरीरानुगत वात—शरीर से उच्छ्वास, अपान और उद्गारादि से निकलने वाली वायु।
५ सम्मूच्छिमवात—पखे के चलने-चलाने से उत्पन्न वायु।

विवेचन—सूत्रोक्त पाचो प्रकार की वायु उत्पत्तिकाल मे अचेतन होती है, किन्तु पीछे सचेतन भी हो सकती है।[1]

निर्ग्रन्थ-सूत्र

१८४—पच णियठा पण्णत्ता, त जहा—पुलाए, बउसे, कुसीले, णियठे, सिणाते।

निर्ग्रन्थ पाच प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ पुलाक—नि सार धान्य कणो के समान नि सार चारित्र के धारक (मूल गुणो मे भी दोप लगाने वाले) निर्ग्रन्थ।
२ बकुश—उत्तर गुणो मे दोप लगाने वाले निर्ग्रन्थ।

१ एते च पूर्वमचेतनास्तत सचेतना अपि भवन्तीति। (स्थानाङ्गसूत्रटीका, पत्र ३१० A)

३ कुशील—ब्रह्मचर्य रूप शील या अखंड पालन करते हुए भी शील के अठारह हजार भेदो में से किसी शील मे दोष लगाने वाले निर्ग्रन्थ।
४ निर्ग्रन्थ—मोहनीय कर्म का उपशम या क्षय करने वाले वीतराग निर्ग्रन्थ, ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थानवर्ती साधु।
५ स्नातक—चार घातिकर्मों का क्षय करके तेरहवें-चौदहवें गुणस्थानवर्ती जिन (१८४)।

१८५—पुलाए पचविहे पण्णत्ते, त जहा—णाणपुलाए, दसणपुलाए, चरित्तपुलाए, लिंगपुलाए, ग्रहासुहुमपुलाए णाम पचमे।

पुलाक निग्रन्थ पाच प्रकार के कहे गये हैं। जसे—
१ ज्ञानपुलाक—ज्ञान के स्खलित, मिलित आदि अतिचारो का सेवन करने वाला।
२ दर्शनपुलाक—शका, काक्षा आदि सम्यक्त्व के अतिचारो का सेवन करने वाला।
३ चारित्रपुलाक—मूल गुणों और उत्तर-गुणो म दोष लगाने वाला।
४ लिंगपुलाक—शास्त्रोक्त उपकरणो से अधिक उपकरण रखने वाला, जालिंग से भिन्न लिंग या वेष को कभी-कभी धारण करने वाला।
५ यथासूक्ष्मपुलाक—प्रमादवश अकल्पनीय वस्तु को ग्रहण करने का मन मे विचार करने वाला (१८५)।

१८६—बउसे पचविधे पण्णत्ते, त जहा—आभोगबउसे, अणाभोगबउसे, सवुडबउसे, असवुड बउसे, अहासुहुमबउसे णाम पचमें।

बकुश निर्ग्रन्थ पाच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ आभोगबकुश—जान-बूझ कर शरीर को विभूषित करने वाला।
२ अनाभोगबकुश—अनजान मे शरीर को विभूषित करने वाला।
३ सवृतबकुश—छुप-छिप कर शरीर को विभूषित करने वाला।
४ असवृतबकुश—प्रकट रूप से शरीर को विभूषित करने वाला।
५ यथासूक्ष्मबकुश—प्रकट या अप्रकट रूप से शरीर आदि की सूक्ष्म विभूषा करने वाला (१८६)।

१८७—कुसीले पचविधे पण्णत्ते, त जहा—णाणकुसीले, दसणकुसीले, चरित्तकुसीले, लिंगकुसीले, अहासुहुमकुसीले णाम पचमे।

कुशील निर्ग्रन्थ पाच प्रकार के कहे गये हैं। जसे—
१ ज्ञानकुशील—काल, विनय, उपधान आदि ज्ञानाचार का नहीं पालने वाला।
२ दर्शनकुशील—नि काक्षित, नि शकित आदि दर्शनाचार को नहीं पालने वाला।
३ चारित्रकुशील—कौतुक, भूतिकर्म, निमित्त, मत्र आदि का प्रयोग करने वाला।
४ लिंगकुशील—साधुलिंग से आजीविका करने वाला।
५ यथासूक्ष्मकुशील—दूसरे के द्वारा तपस्वी, ज्ञानी आदि कहे जाने पर हर्ष को प्राप्त होने वाला (१८७)।

१८८—णियठे पचविहे पण्णत्ते, त जहा—पढमसमयणियठे, अपढमसमयणियठे, चरिमसमयणियठे, अचरिमसमयणियठे, अहासुहुमणियठे णाम पचमे।

निग्रन्थ नामक निग्रन्थ पाच प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ प्रथमसमयनिग्रन्थ—निग्रन्थ दशा को प्राप्त प्रथमसमयवर्ती निग्रन्थ।
२ अप्रथमसमयनिग्रन्थ—निग्रन्थ दशा को प्राप्त द्वितीयादिसमयवर्ती निग्रन्थ।
३ चरमसमयवर्तीनिग्रन्थ—निग्रन्थ दशा के अन्तिम समय वाला निग्रन्थ।
४ अचरमसमयवर्ती निग्रन्थ—अन्तिम समय के सिवाय शेष समयवर्ती निग्रन्थ।
५ यथासूक्ष्मनिग्रन्थ—निग्रन्थ दशा के अन्तर्मुहूर्तकाल मे प्रथम या चरम आदि की विवक्षा न करके सभी समयो मे वर्तमान निग्रन्थ (१८८)।

१८९—सिणाते पचविधे पण्णत्ते, त जहा—अच्छवी, असबले, अकम्मसे सबुद्धणाणदसणधरे अरहा जिणे केवली अपरिस्साई।

स्नातक निग्रन्थ पाच प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ अच्छविस्नातक—काय योग का निरोध करने वाला स्नातक।
२ *अशबलस्नातक—निर्दोष चारित्र का धारक स्नातक।*
३ अकमांशस्नातक—कर्मों का सर्वथा विनाश करने वाला।
४ सशुद्धज्ञान-दर्शनधरस्नातक—विमल केवलज्ञान-केवलदर्शन के धारक अर्हन्त केवली-जिन।
५ अपरिश्रावी स्नातक—सम्पूर्ण काययोग का निरोध करने वाले अयोगी जिन (१८९)।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्रो मे पुलाक आदि निग्रन्थो के सामान्य रूप से पाच-पाच भेद बताये गये हैं किन्तु भगवती सूत्र मे, तत्त्वार्थसूत्र की दि० श्वे० टीकाओ मे तथा प्रस्तुत स्थानाङ्गसूत्र की सस्कृत टीका मे आदि के तीन निग्रन्थो के दो दो भेद और बताये गये हैं। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

१ पुलाक के दो भेद है—लब्धिपुलाक और प्रतिसेवनापुलाक। तपस्या-विशेष से प्राप्त लब्धि का सघ की सुरक्षा के लिए प्रयोग करने वाले पुलाक साधु को लब्धिपुलाक कहते हैं। ज्ञान-दर्शनादि की विराधना करनेवाले को प्रतिसेवनापुलाक कहते हैं।

२ बकुश के भी दो भेद हैं—शरीर-बकुश और उपकरण बकुश। अपने शरीर के हाथ, पैर, मुख आदि का पानी से धो-धोकर स्वच्छ रखने वाले, कान, आख, नाक आदि का कान-खुरचनी, अगुली आदि से मल निकालने वाले, दातो को साफ रखने और केशो का सस्कार करने वाले साधु को शरीर-बकुश कहते हैं। पात्र, वस्त्र, रजोहरण आदि को अकाल मे ही धोने वाले, पात्रो पर तेल, लेप आदि कर-कर के उन्हे सुदर बनाने वाले साधु को उपकरण-बकुश कहते हैं।

३ कुशील निग्रन्थ के भी दो भेद हैं—प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील। उत्तर गुणो मे अर्थात्—पिण्डविशुद्धि, समिति, भावना, तप, प्रतिमा और अभिग्रह आदि मे दोष लगाने वाले साधु को प्रतिसेवनाकुशील कहते हैं। सज्वलन-कषाय के उदय वश क्रोधादि कषायो मे अभिभूत होने वाले साधु को कषायकुशील कहते हैं।

४ निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थ के भी दो भेद हैं—उपशान्तमोहनिर्ग्रन्थ और क्षीणमोहनिर्ग्रन्थ। जो उपशमश्रेणी पर आरूढ होकर सम्पूर्णमोहकर्म का उपशम कर ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती वीतराग हैं, उन्हें उपशान्तमोह निर्ग्रन्थ कहते हैं। तथा जो क्षपकश्रेणी करके मोहकर्म का सर्वथा क्षय करके बारहवें गुणस्थानवर्ती वीतराग है और लघु अन्तर्मुहूर्त के भीतर ही शेष तीन घातिकर्मों का क्षय करने वाले हैं, उन्हें क्षीणमोह निर्ग्रन्थ कहते हैं।

५ स्नातक-निर्ग्रन्थ के भी दो भेद हैं—सयोगीस्नातक जिन और अयोगीस्नातक जिन। सयोगी जिन का काल आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्वकोटि वर्ष है। इतने काल तक वे भव्य जीवों को धर्म देशना करते हुए विचरते रहते हैं। जब उनका आयुष्क केवल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण रह जाता है तब वे मनोयोग वचनयोग और काययोग का निरोध कर के अयोगी स्नातक जिन बनते हैं। अयोगी स्नातक का समय अ, इ, उ, ऋ, ऌ, इन पांच ह्रस्वाक्षरों के उच्चारण काल प्रमाण है। इतने ही समय के भीतर वे चारों अघातिकर्मों का क्षय करके अजर-अमर सिद्ध हो जाते हैं।

उपधि-सूत्र

१९०—कप्पति णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पंच वत्थाइं धारित्तए वा परिहरेत्तए वा, तं जहा—जंगिए भंगिए, साणए, पोत्तिए, तिरीडपट्टए णामं पंचमए।

निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को पांच प्रकार के वस्त्र रखने और पहनने के लिए कल्पते है। जैसे—

१ जांगमिक—जंगम जीवों के बालों से बने वाले कम्बल आदि।
२ भांगिक—अतसी (अलसी) की छाल से बनने वाले वस्त्र।
३ सानिक—सन से बने वाले वस्त्र।
४ पोतक—कपास बांडी (रुई) से बनने वाले वस्त्र।
५ तिरीटपट्ट—लोध की छाल से बनने वाले वस्त्र (१९०)।

१९१—कप्पति णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पंच रयहरणाइं धारित्तए वा परिहरेत्तए वा, तं जहा—उण्णिए, उट्टिए, साणए, पच्चापिच्चिए, मुंजापिच्चिए णामं पंचमए।

निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को पांच प्रकार के रजोहरण रखने और धारण करने के लिए कल्पते हैं। जैसे—

१ औणिक—भेड की ऊन से बने रजोहरण।
२ औष्ट्रिक—ऊंट के बालों से बने रजोहरण।
३ सानिक—सन से बने रजोहरण।
४ पच्चापिच्चिय—बल्वज नाम की मोटी घास को कूटकर बनाया रजोहरण।
५ मुंजापिच्चिय—मूंज को कूटकर बनाया रजोहरण।

निश्रास्थान-सूत्र

१९२—धम्मण्णं चरमाणस्स पंच णिस्सट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—छक्काया, गणे, राया, गाहावती, सरीरं।

धम का आचरण करने वाले साधु के लिए पाच निश्रा (आलम्बन) स्थान कहे है। जैसे—

१ षट्काय २ गण (श्रमण-सघ) ३ राजा, ४ गृहपति, ५ शरीर। (१९२)

विवेचन—आलम्बन या आश्रय देने वाले उपकारक को निश्रास्थान कहते है। षटकाय को भी निश्रास्थान कहने का खुलासा इस प्रकार है—

१ पृथिवी की निश्रा—भूमि पर ठहरना, बैठना, सोना, मल-मूत्र-विसर्जन आदि।

२ जल की निश्रा—वस्त्र-प्रक्षालन, तृषा-निवारण, शरीर-शौच आदि।

३ अग्नि की निश्रा—भोजन पाचन, पानक, आचाम आदि।

४ वायु की निश्रा—अचित्त वायु का ग्रहण, श्वासोच्छ्वास आदि।

५ वनस्पति की निश्रा—संस्तारक, पाट, फलक, वस्त्र औषधि, वृक्ष की छाया आदि।

६ त्रस की निश्रा—दूध, दही आदि।

दूसरा निश्रास्थान गण है। गुरु के परिवार को गण कहते हैं। गण की निश्रा मे रहने वाले के सारण—वारण—सत्काय मे प्रवतन और असत्काय-निवारण के द्वारा कर्म-निर्जरा होती है, सयम की रक्षा होती है और धम की वृद्धि होती है।

तीसरा निश्रास्थान राजा है। वह दुष्टो का निग्रह और साधुओ का अनुग्रह करके धम के पालन मे आलम्बन होता है।

चौथा निश्रास्थान गृहपति है। गृहस्थ ठहरने को स्थान एव भोजन-पान देकर साधुजनो का आलम्बन होता है।

पाचवा निश्रास्थान शरीर है। वह धर्म का आद्य या प्रधान साधन कहा गया है।

निधि-सूत्र

१९३—पच णिही पण्णत्ता, त जहा—पुत्तणिही मित्तणिही, सिप्पणिही, धणणिही, धण्णणिही।

निधिया पाच प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ पुत्रनिधि, २ मित्रनिधि, ३ शिल्पनिधि, ४ धननिधि, ५ धान्यनिधि (१९३)।

विवेचन—धन आदि के निधान या भडार को निधि कहते है। जैसे सचित निधि समय पर काम आती है, उसी प्रकार पुत्र वृद्धावस्था मे माता-पिता की रक्षा, सेवा शुश्रूषा करता है। मित्र समय-समय पर उत्तम परामर्श देकर सहायता करता है। शिल्पकला आजीविका का साधन है। धन और धान्य तो साक्षात सदा ही उपकारक और निर्वाह के कारण है। इसलिए इन पाचो को निधि कहा गया है।

शौच-सूत्र

१९४—पचविहे सोए पण्णत्ते, त जहा—पुढविसोए, आउसोए, तेउसोए, मतसोए, बभसोए।

शौच पाँच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ पृथ्वीशौच, २ जलशौच, ३ तेजःशौच, ४ मन्त्रशौच, ५ ब्रह्मशौच (१९४)।

विवेचन—शुद्धि के साधन को शौच कहते हैं। मिट्टी, जल, अग्नि की राख आदि से शुद्धि की जाती है। अत ये तीनो द्रव्य शौच हैं। मत्र बोलकर मन शुद्धि की जाती है और ब्रह्मचर्य को धारण

करना ब्रह्मशौच कहलाता है। कहा भी है—'ब्रह्मचारी सदा शुचि'। अर्थात् ब्रह्मचारी मनुष्य सदा पवित्र है। इस प्रकार सत्यशौच और ब्रह्मशौच को भावशौच जानना चाहिए।

छद्मस्थ-केवली-सूत्र

१९५—पंच ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणति ण पासति, तं जहा—धम्मत्थिकायं, अधम्मत्थिकायं, आगासत्थिकायं, जीवं असरीरपडिबद्धं, परमाणुपोग्गलं।

एयाणि चेव उप्पण्णणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेणं जाणति पासति, तं जहा—धम्मत्थिकायं, (अधम्मत्थिकायं, आगासत्थिकायं जीवं असरीरपडिबद्धं), परमाणुपोग्गलं।

छद्मस्थ मनुष्य पांच स्थानों को सर्वथा न जानता है और न देखता है—
१ धर्मास्तिकाय को, २ अधर्मास्तिकाय को, ३ आकाशास्तिकाय को,
४ शरीर-रहित जीव को ५ और पुद्गल परमाणु को।

किन्तु जिनको सम्पूर्णज्ञान और दर्शन उत्पन्न हो गया है, ऐसे अर्हन्त, जिन केवली इन पांचों को ही सर्वभाव से जानते देखते हैं। जैसे—

१ धर्मास्तिकाय को, २ अधर्मास्तिकाय को, ३ आकाशास्तिकाय को,
४ शरीर-रहित जीव को और ५ पुद्गल परमाणु को (१९५)।

विवेचन—जिनके ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म विद्यमान है, ऐसे बारहवें गुणस्थान तक के सभी जीव छद्मस्थ कहलाते हैं। छद्मस्थ जीव अरूपी चार अस्तिकायों को समस्त पर्यायों सहित पूर्ण रूप से—साक्षात् नहीं जान सकता, और न देख सकता है। चलते फिरते शरीर-युक्त जीव तो दिखाई देते हैं, किन्तु शरीर रहित जीव कभी नहीं दिखाई देता है। पुद्गल यद्यपि रूपी है, पर एक परमाणु रूप पुद्गल सूक्ष्म होने से छद्मस्थ के ज्ञान का अगोचर कहा गया है।

महानरक-सूत्र

१९६—अधेलोगे णं पंच अणुत्तरा महतिमहालया पण्णत्ता, तं जहा—काले, महाकाले, रोरुए महारोरुए, अप्पतिट्ठाणे।

अधोलोक में पांच अनुत्तर महातिमहान् महानरक कहे गये हैं। जैसे—
१ काल, २ महाकाल, ३ रौरव, ४ महारौरव, और ५ अप्रतिष्ठान
ये पांचों महानरक सातवीं नरकभूमि में हैं (१९६)।

महाविमान-सूत्र

१९७—उड्ढलोगे णं पंच अणुत्तरा महतिमहालया महाविमाणा पण्णत्ता, तं जहा—विजये, वेजयंते, जयंते, अपराजिते, सव्वट्ठसिद्धे।

ऊर्ध्वलोक में पांच अनुत्तर महातिमहान् महाविमान कहे गये हैं। जैसे—
१ विजय, २ वैजयन्त, ३ जयन्त, ४ अपराजित और ५ सर्वार्थसिद्ध।
ये पांचों महाविमान वैमानिक लोक के सब उपरिम भाग में हैं। (१९७)।

सत्व सूत्र

१९८—पच पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—हिरिसत्ते, हिरिमणसत्ते, चलसत्ते, थिरसत्ते, उदयणसत्ते ।

पुरुष पाँच प्रकार के कहे गये हैं । जसे—

१ ह्रीसत्त्व—लज्जावश हिम्मत रखन वाला ।
२ ह्रीमन सत्त्व—लज्जावश भी मन मे ही हिम्मत लाने वाला, (देह म नही) ।
३ चलसत्त्व—हिम्मत हारने वाला ।
४ स्थिरसत्त्व—विकट परिस्थिति मे भी हिम्मत को स्थिर रखने वाला ।
५ उदयनसत्त्व—उत्तरोत्तर प्रवर्धमान सत्त्व या पराक्रम वाला (१९८) ।

भिक्षाक सूत्र

१९९—पच मच्छा पण्णत्ता, त जहा—अणुसोतचारी, पडिसोतचारी, अतचारी, मज्झचारी, सव्वचारी ।

एवामेव पच भिक्खागा पण्णत्ता, त जहा—अणुसोतचारी, (पडिसोतचारी, अतचारी, मज्झचारी), सव्वचारी ।

मत्स्य (मच्छ) पाच प्रकार के कहे गये ह । जसे—

१ अनुस्रोतचारी—जल-प्रवाह के अनुकूल चलने वाला ।
२. प्रतिस्रोतचारी—जल-प्रवाह के प्रतिकूल चलने वाला ।
३ अ तचारी—जल प्रवाह के किनार-किनारे चलने वाला ।
४ मध्यचारी—जल-प्रवाह के मध्य मे चलने वाला ।
५ मवचारी—जल मे मवत्र विचरण करने वाला ।

इसी प्रकार भिक्षुक भी पाँच प्रकार के कहे गये है । जसे—

१ अनुस्रोतचारी—उपाश्रय से लेकर सीधी गृहपक्ति से गोचरी लेने वाला ।
२ प्रतिस्रोतचारी—गली के अ तिम गृह मे उपाश्रय तक घरो से गाचरी लेने वाला ।
३ अ तचारी—ग्राम के अ तिम भाग मे स्थित गृहो मे गोचरी लेने वाला या उपाश्रय के पार्श्ववर्ती गृहो मे गाचरी लेने वाला ।
४ मध्यचारी—ग्राम के मध्य भाग से गोचरी लेने वाला ।
५ सर्वचारी—ग्राम के सभी भागो से गोचरी लेने वाला (१९९) ।

वनीपक सूत्र

२००—पच वणीमगा पण्णत्ता, त जहा—अतिहिवणीमगे, किवणवणीमगे, माहणवणीमगे, साणवणीमगे, समणवणीमगे ।

वनीपक (याचक) पाँच प्रकार के कहे गये ह । जैसे—

१ अतिथि वनीपक—अतिथिदान की प्रशसा कर भोजन मागन वाला ।
२ कृपण वनीपक—कृपणदान की प्रशसा करके भोजन माँगने वाला ।

धान्ययोनिस्थिति-सूत्र

२०९—अह भंते ! कल मसूर तिल मुग्ग मास णिप्फाव कुलत्थ आलिसंदग-सतीण पलिमंथगाण—एतेसि णं धण्णाणं कुट्ठाउत्ताणं (पल्लाउत्ताणं मंचाउत्ताणं मालाउत्ताणं ओलित्ताणं लित्ताणं लंछियाणं मुद्दियाणं पिहिताणं) केवइयं कालं जोणी संचिट्ठति ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पंच संवच्छराइं । तेण परं जोणी पमिलायति, तेण परं जोणी पविद्धंसति, तेण परं जोणी विद्धंसति, तेण परं बीए अबीए भवति), तेण परं जोणीवोच्छेदे पण्णत्ते ।

हे भगवन् ! मटर, मसूर, तिल, मूंग, उडद, निष्पाव (सेम) कुलथी, चवला, तूवर, और काला चना—इन धान्यों को कोठे में गुप्त (बन्द), पल्य में गुप्त, मचान में गुप्त और माल्य में गुप्त करके उनके द्वारों को ढक देने पर, गोबर से लीप देने पर, चारों ओर से लीप देने पर, रेखाओं से लांछित कर देने पर, मिट्टी से मुद्रित कर देने पर और भलीभाँति से सुरक्षित रखने पर उनकी योनि (उत्पादक-शक्ति) कितने काल तक बनी रहती है ?

हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक और उत्कृष्ट पाँच वर्ष तक उनकी उत्पादक शक्ति बनी रहती है । उसके पश्चात् उनकी योनि म्लान हो जाती है, उसके पश्चात् उनकी योनि विध्वस्त हो जाती है, उसके पश्चात् योनि क्षीण हो जाती है, उसके पश्चात् बीज अबीज हो जाता है, उसके पश्चात् योनि का विच्छेद हो जाता है (२०९) ।

संवत्सर-सूत्र

२१०—पंच संवच्छरा पण्णत्ता, तं जहा—णक्खत्तसंवच्छरे, जुगसंवच्छरे, पमाणसंवच्छरे, लक्खणसंवच्छरे, सणिचरसंवच्छरे ।

संवत्सर (वर्ष) पाँच प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१. नक्षत्र-संवत्सर, २. युगसंवत्सर, ३. प्रमाण-संवत्सर, ४. लक्षण-संवत्सर, ५. शनिश्चर-संवत्सर (२१०) ।

२११—जुगसंवच्छरे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—चंदे, चंदे, अभिवड्ढिते, चंदे, अभिवड्ढिते चेव ।

युगसंवत्सर पाँच प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१. चन्द्र-संवत्सर, २. चन्द्र-संवत्सर, ३. अभिवर्धित-संवत्सर, ४. चन्द्र-संवत्सर, ५. अभिवर्धित-संवत्सर (२११) ।

२१२—पमाणसंवच्छरे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—णक्खत्ते, चंदे, उऊ, आदिच्चे, अभिवड्ढिते ।

प्रमाण-संवत्सर पाँच प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१. नक्षत्र-संवत्सर, २. चन्द्र-संवत्सर, ३. ऋतु-संवत्सर, ४. आदित्य-संवत्सर, ५. अभिवर्धित-संवत्सर । (२१२)

२१३—लक्खणसवच्छरे पचविहे पण्णत्ते, त जहा—

सग्रहणी गाथाएँ

समग णक्खत्ता जोग जोयति समग उद्‌ परिणमति ।
णच्चुण्ह णातिसीतो, बहूदग्रो होति णक्खत्तो ॥१॥
ससिसगलपुण्णमासी, जोएइ विसमचारिणक्खत्ते ।
कडुग्रो बहूदग्रो वा, तमाहु सवच्छर चद ॥२॥
विसम पवालिणो परिणमति ग्रणुदूसु देंति पुप्फफल ।
वास ण सम्म वासति तमाहु सवच्छर कम्म ॥३॥
पुढविदगाण तु रस, पुप्फफलाण तु देइ ग्रादिच्चो ।
ग्रप्पेणवि वासेण, सम्म णिप्फज्जए सास ॥४॥
ग्रादिच्चतेयतविता, खणलवदिवसा उऊ परिणमति ।
पूरिति रेणु थलयाइ, तमाहु ग्रभिवड्ढित जाण ॥५॥

लक्षण-सवत्सर पाच प्रकार के कहे गये हैं । जसे—

१ नक्षत्र सवत्सर, २ चन्द्र सवत्सर, ३ कम (ऋतु)मवत्सर, ४ ग्रादित्य-सवत्सर,
५ ग्रभिवर्धित सवत्सर (२१३) ।

विवेचन—उपयु क्त चार सूत्रा मे ग्रनेक प्रकार के सवत्सरो (वर्षो) का ग्रौर उनके भेद-प्रभेदो का निरूपण किया गया है । सस्कृत टीकाकार के ग्रनुसार उनका विवरण इस प्रकार है—

१ नक्षत्र सवत्सर—जितने समय मे चन्द्रमा नक्षत्र-मण्डल का एक बार परिभोग करता है, उतने काल को नक्षत्रमास कहते है । नक्षत्र २७ होते हैं, ग्रत नक्षत्र मास २७$\frac{२१}{६७}$ दिन का होता है । यत १२ मास का सवत्सर (वष) होता है, ग्रत नक्षत्र-सवत्सर मे (२७$\frac{२१}{६७}$ × १२ =) ३२७$\frac{५१}{६७}$ दिन होत है ।

२ युगसवत्सर—पाँच सवत्सरो का एक युग माना जाता है । इसमे तीन चन्द्र सवत्सर ग्रौर दो ग्रभिवर्धित सवत्सर होते हैं । यत चन्द्रमास मे २९$\frac{३२}{६२}$ दिन होते हैं, ग्रत चन्द्र सवत्सर मे (२९$\frac{३२}{६२}$ × १२ =) ३५४$\frac{१२}{६२}$ दिन होते हैं । ग्रभिवर्धित मास मे ३१$\frac{१२१}{१२४}$ दिन होते हैं, इसलिए ग्रभिवर्धित सवत्सर मे ३१$\frac{१२१}{१२४}$ × १२ =)३८३$\frac{४४}{६२}$ दिन होते हैं । ग्रभिवर्धित सवत्सर मे एक मास ग्रधिक होता है ।

३ प्रमाण-सवत्सर—दिन, मास ग्रादि के परिमाण वाले सवत्सर को प्रमाण-सवत्सर कहते है ।

४ लक्षण-सवत्सर—लक्षणो से ज्ञात होने वाले वप को लक्षण-सवत्सर कहते हैं ।

५ शनिश्चर सवत्सर—जितने समय म शनिश्चर ग्रह एक नक्षत्र ग्रथवा बारह राशियो का भोग करता है उतने समय को शनिश्चर सवत्सर कहते हैं ।

६ ऋतु सवत्सर—दो मास प्रमाणकाल की एक ऋतु होती है । ग्रौर छह ऋतुग्रो का एक सवत्सर होता है । ऋतुमास मे ३० दिन-रात होते हैं, ग्रत ऋतु सवत्सर म ३६० दिन रात होते हैं । इसे ही कम सवत्सर कहते हैं ।

७ ग्रादित्य-सवत्सर—ग्रादित्य मास मे साढे तीस दिन रात होते हैं, ग्रत ग्रादित्य-सवत्सर मे (३०$\frac{१}{२}$ × १२ =) ३६६ दिन रात होते हैं ।

१ जिस संवत्सर में जिस तिथि में जिस नक्षत्र का योग होना चाहिए, उस नक्षत्र का उसी तिथि में योग होता है, जिसमें ऋतुएं यथासमय परिणमन करती हैं, जिसमें न अति गर्मी पड़ती है और न अधिक सर्दी ही पड़ती है और जिसमें वर्षा अच्छी होती है, वह नक्षत्र संवत्सर कहलाता है।
२ जिस संवत्सर में चन्द्रमा सभी पूर्णिमाओं का स्पर्श करता है, जिसमें अन्य नक्षत्रों की विषम गति होती है, जिसमें सर्दी और गर्मी अधिक होती है, तथा वर्षा भी अधिक होती है, उसे चन्द्रसंवत्सर कहते हैं।
३ जिस संवत्सर में वृक्ष विषमरूप में—असमय में पत्र पुष्प रूप से परिणत होते हैं, और बिना ऋतु के फल देते हैं, जिस वर्ष में वर्षा भी ठीक नहीं बरसती है, उसे कर्मसंवत्सर या ऋतुसंवत्सर कहते हैं।
४ जिस संवत्सर में अल्प वर्षा से भी सूर्य पृथ्वी, जल, पुष्प और फलों को रस अच्छा देता है और धान्य अच्छा उत्पन्न होता है, उसे आदित्य या सूर्यसंवत्सर कहते हैं।
५ जिस संवत्सर में सूर्य के तेज से संतप्त क्षण, लव, दिवस और ऋतु परिणत होते हैं, जिसमें भूमि-भाग धूलि से परिपूर्ण रहते हैं अर्थात् सदा धूलि उड़ती रहती है, उसे अभिवर्धित-संवत्सर जानना चाहिए।

जीवप्रदेश निर्याण मार्ग सूत्र

२१४—पंचविधे जीवस्स णिज्जाणमग्गे पण्णत्ते, तं जहा—पाएहिं, ऊरूहिं, उरेणं, सिरेणं सव्वंगेहिं।

पाएहिं णिज्जायमाणे णिरयगामी भवति, ऊरूहिं णिज्जायमाणे तिरियगामी भवति, उरेणं णिज्जायमाणे मणुयगामी भवति, सिरेणं णिज्जायमाणे देवगामी भवति, सव्वंगेहिं णिज्जायमाणे सिद्धिगति-पज्जवसाणे पण्णत्ते।

जीव प्रदेशों के शरीर से निकलने के मार्ग पांच कहे गये हैं। जैसे—
१ पैर, २ उरु, ३ हृदय, ४ सिर, ५ सर्वाङ्ग।
१ पैरों से निर्याण करने (निकलने) वाला जीव नरकगामी होता है।
२ उरु (जंघा) से निर्याण करने वाला जीव तिर्यग्गामी होता है।
३ हृदय से निर्याण करने वाला जीव मनुष्यगामी होता है।
४ सिर से निर्याण करने वाला जीव देवगामी होता है।
५ सर्वाङ्ग से निर्याण करने वाला जीव सिद्धगति पर्यवसानवाला कहा गया है अर्थात् मुक्ति प्राप्त करता है (२१४)।

छेदन-सूत्र

२१५—पंचविहे छेयणे पण्णत्ते, तं जहा—उप्पाछेयणे, वियच्छेयणे, बंधच्छेयणे, पएसच्छेयणे दोधारच्छेयणे।

छेदन (विभाग) पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ उत्पाद छेदन—उत्पाद पर्याय के आधार पर विभाग करना।

२ व्यय-छेदन—विनाश पर्याय के आधार पर विभाग करना ।
३ बन्ध-छेदन—कर्म बन्ध का छेदन, या पुद्गलस्कन्ध का विभाजन ।
४ प्रदेश छेदन—निर्विभागी वस्तु के प्रदेश का बुद्धि से विभाजन ।
५ द्विधा-छेदन—किसी वस्तु के दो विभाग करना (२१५) ।

आनन्तर्य-सूत्र

२१६—पचविहे आणतरिए पण्णत्ते, त जहा—उप्पायाणतरिए, वियाणतरिए, पएसाणतरिए, समयाणतरिए, सामण्णाणतरिए ।

आनन्तर्य (विरह का अभाव) पाच प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ उत्पाद आनन्तर्य—लगातार उत्पत्ति ।
२ व्यय-आनन्तर्य—लगातार विनाश ।
३ प्रदेश-आनन्तर्य—लगातार प्रदेशो की सलग्नता ।
४ समय-आनन्तर्य—समय की निरन्तरता ।
५ सामान्य आनन्तर्य—किसी पर्याय विशेष की विवक्षा न करके सामान्य निरन्तरता ।

विवेचन—उपयुक्त दोनो सूत्रो का उक्त सामान्य शब्दार्थ लिखकर सस्कृत टीकाकार ने एक दूसरा भी अर्थ किया है जो एक विशेष अर्थ का बोधक है । उसके अनुसार छेदन का अर्थ 'विरह-काल' और आनन्तर्य का अर्थ 'अविरहकाल' है । कोई जीव किसी विवक्षित पर्याय का त्याग कर अन्य पर्याय म कुछ काल तक रह कर पुन उसी पूर्व पर्याय को जितने समय के पश्चात प्राप्त करता है, उतने मध्यवर्ती काल का नाम विरहकाल है । यह एक जीव की अपेक्षा विरहकाल का कथन है । नाना जीवो की अपेक्षा—यदि नरक मे लगातार कोई भी जीव उत्पन्न न हो, तो बारह मुहूर्त तक एक भी जीव वहा उत्पन्न नहीं होगा । अत नरक मे उत्पाद का छेदन अर्थात् विरहकाल बारह मुहूर्त का कहा जायगा । इसी प्रकार उत्पाद का आनन्तर्य अर्थात् लगातार उत्पत्ति को उत्पाद-आनन्तर्य या उत्पाद का अविरह-काल समझना चाहिए । जैसे—यदि नरकगति मे लगातार नारकी जीव उत्पन्न होते रहे तो कितने काल तक उत्पन्न होते रहेगे ? इसका उत्तर है कि नरक मे लगातार जीव असख्यात समय तक उत्पन्न होते रहेगे । अत नरक गति म उत्पाद का आनन्तर्य या अविरहकाल असख्यात समय कहा जायगा ।

इसी प्रकार व्यय-छेदन का अर्थ विनाश का अविरहकाल और व्यय-आनन्तर्य का अर्थ व्यय का विरहकाल लेना चाहिए । अर्थात् नरक से मर करके बाहर निकलने वाले जीवो का विना व्यवच्छेद के लगातार निकलने का क्रम जितने समय तक जारी रहेगा—वह व्यय का अविरहकाल कहलायगा । तथा जितने समय तक नरकगति से एक भी जीव नहीं निकलेगा, वह नरक के व्यय का विरहकाल कहलायगा ।

कर्म का बन्ध लगातार जितने समय तक होता रहेगा, वह बन्ध का अविरहकाल है और जितने काल के लिए कर्म का बन्ध नहीं होगा, वह बन्ध का विरहकाल है । जैसे अभव्य के लगातार कर्मबन्ध होता ही रहेगा, कभी विरह नहीं होगा, अत अभव्य के कर्मबन्ध का अविरहकाल अनन्त समय है । भव्यजीव उपशम श्रेणी पर चढकर ग्यारहवें गुणस्थान मे पहुचता है, वहा पर एकमात्र साता-

१ जिस सवत्सर मे जिस तिथि मे जिस नक्षत्र का योग होना चाहिए, उस नक्षत्र का उसी तिथि मे योग होता है, जिसमे ऋतुए यथासमय परिणमन करती हैं, जिसमे न अति गर्मी पडती है और न अधिक सर्दी ही पडती है और जिसमे वर्षा अच्छी होती है, वह नक्षत्र-सवत्सर कहलाता है।
२ जिस सवत्सर मे चन्द्रमा सभी पूर्णिमाओ का स्पर्श करता है, जिसमे अन्य नक्षत्रो की विषम गति होती है जिसमे सर्दी और गर्मी अधिक होती है, तथा वर्षा भी अधिक होती है, उसे चन्द्रसवत्सर कहते हैं।
३ जिस सवत्सर मे वृक्ष विषमरूप से—असमय मे पत्र-पुष्प रूप से परिणत होते हैं, और बिना ऋतु के फल देते है, जिस वर्ष मे वर्षा भी ठीक नही बरसती है, उसे कर्मसवत्सर या ऋतुसवत्सर कहते हैं।
४ जिस सवत्सर मे अल्प वर्षा से भी सूर्य पृथ्वी, जल, पुष्प और फलो को रस अच्छा देता है, और धान्य अच्छा उत्पन्न होता है, उसे आदित्य या सूर्यसवत्सर कहते है।
५ जिस सवत्सर मे सूर्य के तेज से सतप्त क्षण, लव, दिवस और ऋतु परिणत होते हैं, जिसमे भूमि भाग धूलि से परिपूर्ण रहते हैं अर्थात् सदा धूलि उडती रहती है, उसे अभिवर्धित-सवत्सर जानना चाहिए।

जीवप्रदेश निर्याण मार्ग सूत्र

२१४—पचविधे जीवस्स णिज्जाणमग्गे पण्णत्ते, त जहा—पाएहिं, ऊरूहिं, उरेण, सिरेण सव्वगेहिं।

पाएहिं णिज्जायमाणे णिरयगामी भवति, ऊरूहिं णिज्जायमाणे तिरियगामी भवति, उरेण णिज्जायमाणे मणुयगामी भवति, सिरेण णिज्जायमाणे देवगामी भवति, सव्वगेहिं णिज्जायमाणे सिद्धिगति पज्जवसाणे पण्णत्ते।

जीव-प्रदेशो के शरीर से निकलने के मार्ग पाँच कहे गये हैं। जैसे—
१ पैर २ उरु, ३ हृदय, ४ सिर, ५ सर्वाङ्ग।
१ पैरो से निर्याण करने (निकलने) वाला जीव नरकगामी होता है।
२ उरु (जघा) से निर्याण करने वाला जीव तिर्यंचगामी होता है।
३ हृदय से निर्याण करने वाला जीव मनुष्यगामी होता है।
४ शिर से निर्याण करने वाला जीव देवगामी होता है।
५ सर्वाङ्ग से निर्याण करने वाला जीव सिद्धगति पर्यवसानवाला कहा गया है अर्थात मुक्ति प्राप्त करता है (२१४)।

छेदन-सूत्र

२१५—पचविहे छेयणे पण्णत्ते, त जहा—उप्पाछेयणे, वियच्छेयणे, बधच्छेयणे, पएसच्छेयणे दोधारच्छेयणे।

छेदन (विभाग) पाच प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ उत्पाद छेदन—उत्पाद पर्याय के आधार पर विभाग करना।

२ व्यय-छेदन—विनाश पर्याय के आधार पर विभाग करना ।
३ बन्ध-छेदन—कर्म-बन्ध का छेदन, या पुद्गलस्कन्ध का विभाजन ।
४ प्रदेश छेदन—निर्विभागी वस्तु के प्रदेश का बुद्धि से विभाजन ।
५ द्विधा-छेदन—किसी वस्तु के दो विभाग करना (२१५) ।

आनन्तय सूत्र

२१६—पचविहे आणतरिए पण्णत्ते, त जहा—उप्पायाणतरिए, वियाणतरिए, पएसाणतरिए, समयाणतरिए, सामण्णाणतरिए ।

आनन्तय (विरह का अभाव) पाच प्रकार का कहा गया है । जसे—

१ उत्पाद-आनन्तय—लगातार उत्पत्ति ।
२ व्यय-आनन्तय—लगातार विनाश ।
३ प्रदेश-आनन्तय—लगातार प्रदेशों की सलग्नता ।
४ समय-आनन्तय—समय की निरन्तरता ।
५ सामान्य-आनन्तय—किसी पर्याय विशेष की विवक्षा न करके सामान्य निरन्तरता ।

विवेचन—उपयुक्त दोनो सूत्रो का उक्त सामान्य शब्दार्थ लिखकर सस्कृत टीकाकार ने एक दूसरा भी अर्थ किया है जो एक विशेष अर्थ का बोधक है। उसके अनुसार छेदन का अर्थ 'विरह-काल' और आनन्तय का अर्थ 'अविरहकाल' है । कोई जीव किसी विवक्षित पर्याय का त्याग कर अन्य पर्याय मे कुछ काल तक रह कर पुन उसी पूर्व पर्याय को जितने समय के पश्चात् प्राप्त करता है, उतने मध्यवर्ती काल का नाम विरहकाल है। यह एक जीव की अपेक्षा विरहकाल का कथन है । नाना जीवो की अपेक्षा—यदि नरक मे लगातार कोई भी जीव उत्पन्न न हो, तो बारह मुहूर्त तक एक भी जीव वहा उत्पन्न नही होगा । अत नरक मे उत्पाद का छेदन अर्थात् विरहकाल बारह मुहूर्त का कहा जायगा । इसी प्रकार उत्पाद का आनन्तय अर्थात् लगातार उत्पत्ति को उत्पाद-आनन्तय या उत्पाद का अविरह-काल समझना चाहिए । जसे—यदि नरकगति मे लगातार नारकी जीव उत्पन्न होते रहें तो कितने काल तक उत्पन्न होते रहगे ? इसका उत्तर है कि नरक मे लगातार जीव असख्यात समय तक उत्पन्न होते रहगे । अत नरक गति म उत्पाद का आनन्तय या अविरहकाल असख्यात समय कहा जायगा ।

इसी प्रकार व्यय-च्छेदन का अर्थ विनाश का अविरहकाल और व्यय-आनन्तय का अर्थ व्यय का विरहकाल लेना चाहिए । अर्थात् नरक से मर कर बाहर निकलने वाले जीवो का बिना व्यवच्छेद के लगातार निकलने का क्रम जितने समय तक जारी रहेगा—वह व्यय का अविरहकाल कहलायगा । तथा जितने समय तक नरकगति से एक भी जीव नही निकलेगा, वह नरक के व्यय का विरहकाल कहलायगा ।

कम का बध लगातार जितने समय तक होता रहेगा, वह बध का अविरहकाल है और जितने काल के लिए कर्म का बध नही होगा, वह बन्ध का विरहकाल है । जैसे अभव्य के लगातार कर्मबध होता ही रहेगा, कभी विरह नही होगा, अत अभव्य के कर्मबध का अविरहकाल अनन्त समय है । भव्यजीव उपशम श्रेणी पर चढकर ग्यारहवें गुणस्थान मे पहुचता है, वहा पर एकमात्र साता-

वेदनीय कर्म का बन्ध होता है, शेष सात कर्मों का बन्ध नहीं होता। यतः ग्यारहवें गुणस्थान का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः उस जीव के सात कर्मों में बन्ध का विरहकाल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अन्य जीवों के विषय में जानना चाहिए।

कर्म प्रदेशों के छेदन या विरह को प्रदेश-छेदन कहते हैं। जैसे कोई सम्यक्त्वी जीव अनन्तानुबन्धी कषायों का विसंयोजन अर्थात् अप्रत्याख्यानादिरूप में परिवर्तन कर देता है, जितने समय तक यह विसंयोजना रहेगी—उतने समय तक अनन्तानुबन्धी कषाय के प्रदेशों का विरह कहलायगा और उस जीव के सम्यक्त्व से च्युत होते ही पुनः अनन्तानुबन्धी कषाय का बन्ध प्रारम्भ होते ही संयोजन होने लगेगा उतना मध्यवर्तीकाल अनन्तानुबन्धी का विरहकाल कहलायेगा।

इसी प्रकार द्विधा छेदन का अर्थ—मोहकर्म को प्राप्त कर्मप्रदेशों का दर्शनमोह और चारित्रमोह में विभाजित होना आदि लेना चाहिए।

काल के निरन्तर चलने वाले प्रवाह को समय-आनन्तर्य कहते हैं। सामान्य रूप से निरन्तर चलने वाले संसार-प्रवाह को सामान्य आनन्तर्य जानना चाहिए।

अनन्त सूत्र

२१७—पंचविधे अणंतए पण्णत्ते, तं जहा—णामाणंतए, ठवणाणंतए, दव्वाणंतए, गणणाणंतए पदेसाणंतए।

अहवा—पंचविहे अणंतए पण्णत्ते, तं जहा—एगतोऽणंतए, दुहओणंतए, देसवित्थाराणंतए, सव्ववित्थाराणंतए, सासयाणंतए।

अनन्तक पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. नाम अनन्तक—किसी व्यक्ति का 'अनन्त' यह नाम रख देना। जैसे आगमभाषा में वस्त्र का नाम अनन्तक है।
२. स्थापना-अनन्तक—स्थापना निक्षेप के द्वारा किसी वस्तु में अनन्त की स्थापना कर देना स्थापना-अनन्तक है।
३. द्रव्य अनन्तक—जीव, पुद्गल परमाणु आदि द्रव्य अनन्तक है।
४. गणना-अनन्तक—जिस गणना का अन्त न हो, ऐसी संख्याविशेष को गणना-अनन्तक कहते हैं।
५. प्रदेश-अनन्तक—जिसके प्रदेश अनन्त हों, जैसे आकाश के प्रदेश अनन्त हैं, यह प्रदेश-अनन्तक है।

अथवा अनन्तक पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. एकतः-अनन्तक—आकाश के एक श्रेणीगत आयत (लम्बाई में) अनन्त प्रदेश।
२. द्विधा अनन्तक—आयत और विस्तृत प्रतरक्षेत्र गत अनन्त प्रदेश।
३. देशविस्तार-अनन्तक—पूर्वादि किसी एक दिशासम्बन्धी देशविस्तारगत अनन्त प्रदेश।
४. सर्व विस्तार-अनन्तक—सम्पूर्ण आकाश के अनन्त प्रदेश।
५. शाश्वत अनन्तक—त्रिकालवर्ती अनादि अनन्त जीवादि द्रव्य या कालद्रव्य के अनन्त समय (२१७)।

ज्ञान-सूत्र

२१८—पचविहे णाणे पण्णत्ते, त जहा—आभिणिबोहियणाणे, सुयणाणे, ओहिणाणे, मणपज्जवणाणे, केवलणाणे ।

ज्ञान पाच प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ आभिनिबोधिकज्ञान, २ श्रुतज्ञान, ३ अवधिज्ञान, ४ मन पर्यवज्ञान, ५ केवल-ज्ञान (२१८) ।

२१९—पचविहे णाणावरणिज्जे कम्मे पण्णत्ते, त जहा—आभिणिबोहियणाणावरणिज्जे (सुयणाणावरणिज्जे, ओहिणाणावरणिज्जे, मणपज्जवणाणावरणिज्जे), केवलणाणावरणिज्जे ।

ज्ञानावरणीय कर्म पाच प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय, २ श्रुतज्ञानावरणीय, ३ अवधिज्ञानावरणीय, ४ मन-पर्यवज्ञानावरणीय, ५ केवलज्ञानावरणीय (२१९) ।

२२०—पचविहे सज्झाए पण्णत्ते त जहा—वायणा पुच्छणा, परियट्टणा अणुप्पेहा, धम्मकहा ।

स्वाध्याय पाच प्रकार का कहा गया है । जसे—

१ वाचना—पठन-पाठन करना । २ पृच्छना—सदिग्ध विषय को पूछना । ३ परिवर्तना—पठित विषय को फेरना । ४ अनुप्रेक्षा—बार-बार-चिंतन करना । ५ धर्मकथा—धर्म-चर्चा करना (२२०) ।

प्रत्याख्यान सूत्र

२२१—पचविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, त जहा—सद्दहणसुद्धे, विणयसुद्धे, अणुभासणासुद्धे, अणुपालणासुद्धे, भावसुद्धे ।

प्रत्याख्यान पाच प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ श्रद्धानशुद्ध-प्रत्याख्यान—श्रद्धापूर्वक निर्दोष त्याग-प्रतिज्ञा ।
२ विनयशुद्ध—प्रत्याख्यान—विनयपूर्वक निर्दोष त्याग-प्रतिज्ञा ।
३ अनुभाषणाशुद्ध-प्रत्याख्यान—गुरु के बोलने के अनुसार प्रत्याख्यान-पाठ बोलना ।
४ अनुपालनाशुद्ध-प्रत्याख्यान—विकट स्थिति मे भी प्रत्याख्यान का निर्दोष पालन करना ।
५ भावशुद्ध-प्रत्याख्यान—रागद्वेष से रहित होकर शुद्ध भाव से प्रत्याख्यान का पालन करना (२२१) ।

प्रतिक्रमण सूत्र

२२२—पचविहे पडिक्कमणे पण्णत्ते, त जहा—आसवदारपडिक्कमणे, मिच्छत्तपडिक्कमणे, कसायपडिक्कमणे, जोगपडिक्कमणे, भावपडिक्कमणे ।

प्रतिक्रमण पाच प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ आस्रवद्वार-प्रतिक्रमण—कर्मास्रव के द्वार हिंसादि से निवर्तन।
२ मिथ्यात्व-प्रतिक्रमण—मिथ्यात्व से पुन सम्यक्त्व मे आना।
३ कषाय-प्रतिक्रमण—कषायो से निवृत्त होना।
४ योग प्रतिक्रमण—मन वचन काय को अशुभ प्रवृत्ति से निवृत्त होना।
५ भाव-प्रतिक्रमण—मिथ्यात्व आदि का कृत, कारित, अनुमोदना से त्यागकर शुद्धभाव से सम्यक्त्व मे स्थिर रहना (२२२)।

सूत्र-वाचना सूत्र

२२३—पर्चाहि ठाणेहि सुत्त वाएज्जा, त जहा—सगहट्ठयाए, उवग्गहट्ठयाए, णिज्जरट्ठयाए, सुत्ते वा मे पज्जवयाते भविस्सति, सुत्तस्स वा अवोच्छित्तिणयट्ठयाए।

पाँच कारणो से सूत्र की वाचना देनी चाहिये। जैसे—
१ सग्रह के लिए—शिष्यो को श्रुत-सम्पन्न बनाने के लिए।
२ उपग्रह के लिए—भक्त पान और उपकरणादि प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त कराने के लिए।
३ निर्जरा के लिए—कर्मो की निर्जरा के लिए।
४ वाचना देने से मेरा श्रुत परिपुष्ट होगा, इस कारण से।
५ श्रुत के पठन-पाठन की परम्परा अविच्छिन्न रखने के लिए (२२३)।

२२४—पर्चाहि ठाणेहि सुत्त सिक्खेज्जा, त जहा—णाणट्ठयाए, दसणट्ठयाए, चरित्तट्ठयाए, वुग्गहविमोयणट्ठयाए, अहत्थे वा भावे जाणिस्सामीतिकट्टु।

पाच कारणो से सूत्र को सीखना चाहिए। जसे—
१ ज्ञानार्थ—नये नये तत्त्वो के परिज्ञान के लिए।
२ दर्शनार्थ—श्रद्धान के उत्तरोत्तर पोषण के लिए।
३ चारित्रार्थ—चारित्र की निर्मलता के लिए।
४ व्युद्-ग्रहविमोचनार्थ—दूसरो के दुराग्रह को छुडाने के लिए।
५ यथार्थ-भाव-ज्ञानार्थ—सूत्रशिक्षण से मैं यथार्थ भावो को जानूगा, इसलिए।
इन पाच कारणो से सूत्र को सीखना चाहिए (२२४)।

कल्प सूत्र

२२५—सोहम्मीसाणेसु ण कप्पेसु विमाणा पचवण्णा पण्णत्ता, त जहा—किण्हा, (णीला, लोहिता, हालिद्दा), सुक्किल्ला।

सौधर्म और ईशान कल्प के विमान पाच वर्ण के कहे गये हैं। जैसे—
१ कृष्ण, २ नील, ३ लोहित, ४ हारिद्र, ५ शुक्ल (२२५)।

२२६—सोहम्मीसाणेसु ण कप्पेसु विमाणा पचजोयणसयाइ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता।

सौधम और ईशान कल्प के विमान पाच सौ योजन ऊचे कहे गये है (२२६)।

२२७—बभलोग लतएसु ण कप्पेसु देवाण भवधारणिज्जसरीरगा उक्कोसेण पचरयणी उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता।

ब्रह्मलोक और लान्तक कल्प के देवो के भवधारणीय शरीर की उत्कृष्ट ऊचाई पाच रत्नि (हाथ) कही गई है (२२७)।

बध-सूत्र

२२८—णेरइया ण पचवण्णे पचरसे पोग्गले बधेंसु वा बधति वा बधस्सति वा, त जहा—किण्हे (णीले, लोहिते हालिद्दे), सुक्किल्ले। तित्ते, (कडुए, कसाए, अबिले), मधुरे।

नारक जीवो ने पाच वर्ण और पाच रस वाले पुद्गलो को कर्मरूप से भूतकाल मे बाधा है, वतमान मे बाध रहे हैं और भविष्य मे बाधेंगे। जैसे—

१ कृष्ण वर्णवाले २ नील वर्णवाले, ३ लोहित वर्णवाले, ४ हारिद्र वर्णवाले, और ५ शुक्लवर्ण वाले। तथा—१ तिक्त रसवाले, २ कटु रसवाले, ३ कषाय रसवाले, ४ अम्ल रस वाले, और ५ मधुर रसवाले (२२८)।

२२९—एव जाव वेमाणिया।

इसी प्रकार वमानिकों तक के सभी दण्डको के जीवों ने पाच वर्ण और पाच रस वाले पुद्गलो को कर्म रूप से भूतकाल मे बाधा है, वतमान मे बाध रहे है और भविष्य मे बाधेंगे (२२९)।

महानदी सूत्र

२३०—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण गग महाणदि प च महाणदीओ समप्पेंति, त जहा—जउणा, सरऊ आवी, कोसी, मही।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के दक्षिण भाग मे (भरत क्षेत्र मे) पाँच महानदियाँ गगा महानदी का समर्पित होती है, अर्थात् उसमे मिलती हैं, जैसे—१ यमुना, २ सरयू, ३ आवी, ४ कोसी, ५ मही (२३०)।

२३१—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिण ण सिंधु महाणदि प च महाणदीओ समप्पेंति, त जहा—सतदद्दू वितत्था, विभासा, एरावती, चदभागा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दरपवत के दक्षिण भाग मे (भरत क्षेत्र म) पाँच महानदियाँ सिन्धु महानदी को समर्पित होती है (उसमे मिलती है)। जसे—

१ शतद्रु (सतलज) २ वितस्ता (झेलम) ३ विपाश (व्यास) ४ ऐरावती (रावी) ५ चन्द्रभागा (चिनाव) (२३१)।

२३२—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण रत्त महाणदि प च महाणदीओ समप्पेंति, त जहा—किण्हा, महाकिण्हा, णीला, महाणीला, महातीरा।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के उत्तर भाग मे (ऐरवत क्षेत्र मे) पाच महानदिया रक्ता महानदी को समर्पित होती हैं (उसमे मिलती है)। जैसे—

१ कृष्णा, २ महाकृष्णा, ३ नीला, ४ महानीला, ५ महातीरा (२३२)।

२३३—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण रत्तावति महाणदि प च महाणदीओ समप्पेंति, त जहा—इदा, इदसेणा, सुसेणा, वारिसेणा, महाभोगा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पवत के उत्तर भाग मे (ऐरवत क्षेत्र मे) पाच महानदिया रक्तावती महानदी को समर्पित होती हैं (उसमे मिलती ह)। जैस—

१ इन्द्रा, २ इन्द्रसेना, ३ सुषेणा, ४ वारिषेणा, ५ महाभोगा (२३३)।

तीर्थंकर-सूत्र

२३४—प च तित्थगरा कुमारवासमज्झे वसित्ता मु डा (भवित्ता अगाराम्रो अणगारिय) पव्वइया, त जहा—वासुपुज्जे, मल्ली, अरिट्ठणेमी, पासे, वीरे।

पाँच तीर्थंकर कुमार वास मे रहकर मुण्डित हो अगार मे अनगारिता मे प्रव्रजित हुए। जसे—

१ वासुपूज्य, २ मल्ली, ३ अरिष्टनेमि, ४ पार्श्व और ५ महावीर (२३४)।

सभा सूत्र

२३५—चमरचचाए रायहाणीए प च सभा पण्णत्ता, त जहा—सभासुधम्मा, उववातसभा, अभिसेयसभा अलकारियसभा, ववसायसभा।

अमरचचा राजधानी मे पाच सभाए कही गई हैं। जसे—

१ सुधर्मासभा (शयनागार) २ उपपात सभा (उत्पत्ति स्थान) ३ अभिषेकसभा (राज्याभिषेक का स्थान) ४ अलकारिक सभा (शरीर-सज्जा-भवन) ५ व्यवसाय सभा (अध्ययन या तत्त्व-निणय का स्थान) (२३५)।

२३६—एगमेगे ण इदट्ठाणे प च सभाओ पण्णत्ताओ, त जहा—सभासुहम्मा, (उववातसभा, अभिसेयसभा, अलकारियसभा), ववसायसभा।

इसी प्रकार एक-एक इन्द्रस्थान मे पाँच-पाँच सभाए कही गई ह। जसे—

१ सुधर्मा सभा, २ उपपात सभा, ३ अभिषक सभा, ४ अलकारिक सभा और ५ व्यवसाय सभा (२३६)।

नक्षत्र सूत्र

२३७—प च णक्खत्ता प चतारा पण्णत्ता, त जहा—धणिट्ठा, रोहिणी, पुणव्वसू, हत्थो, विसाहा।

पाँच नक्षत्र पाँच-पाँच तारावाले कहे गये हैं। जैसे—

१ धनिष्ठा, २ रोहिणी, ३ पुनर्वसु, ४ हस्त, ५ विशाखा (२३७)।

पापकर्म-सूत्र

२३८—जीवा ण पचट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिसु वा चिणति वा चिणिस्सति, वा, त जहा—एगिदियणिव्वत्तिए, (बेइदियणिव्वत्तिए, तेइदियणिव्वत्तिए, चउरिदियणिव्वत्तिए), पचिदियणिव्वत्तिए।

एव—चिण-उवचिण बध उदीर-वेद तह णिज्जरा चेव।

जीवा न पाच स्थानो से निर्वर्तित पुद्गलो का पापकर्म के रूप से सचय भूतकाल मे किया है, वर्तमान मे कर रहे है और भविष्य मे करेगे। जैसे—

१ एकेन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलो का, २ द्वीन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलो का, ३ त्रीन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलो का, ४ चतुरिन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलो का, ५ पचेन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलो का (२३७)।

इसी प्रकार पाच स्थानो से निर्वर्तित पुद्गलो का पापकर्म रूप से उपचय, बन्ध, उदीरण, वेदन और निर्जरण भूतकाल मे किया है, वर्तमान मे कर रहे हैं और भविष्य मे करेंगे।

पुद्गल सूत्र

२३९—पचपएसिया खधा अणता पण्णत्ता।

पाँच प्रदेश वाले पुद्गलस्कन्ध अनन्त कहे गये हैं (२३८)।

२४०—पचपएसोगाढा पोग्गला अणता पण्णत्ता जाव पचगुणलुक्खा पोग्गला अणता पण्णत्ता।

(आकाश के) पाँच प्रदेशो मे अवगाढ पुद्गलस्कन्ध अनन्त कहे गये हैं। पाँच समय की स्थिति वाले पुद्गल स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं। पाँच गुणवाले पुद्गलस्कन्ध अनन्त कहे गये हैं।

इसी प्रकार शेष वर्ण, तथा सभी रस, गन्ध और स्पर्श वाले पुद्गलस्कन्ध अनन्त कहे गये हैं।

॥ तृतीय उद्देश समाप्त ॥

॥ पचम स्थान समाप्त ॥

षष्ठ स्थान

सार सक्षेप

प्रस्तुत स्थान मे छह छह सख्या से निबद्ध अनेक विषय सकलित हैं।

यद्यपि यह छठा स्थान अन्य स्थानो की अपेक्षा छोटा है और इसमे उद्देश-विभाग भी नहीं है, पर यह अनेक महत्त्वपूर्ण चर्चाओ से परिपूर्ण है जिन्हे साधु और साध्वियो को जानना अत्यावश्यक है।

सर्वप्रथम यह बताया गया है कि गण के धारक गणी, या आचार्य को कैसा होना चाहिए? यदि वह श्रद्धावान, सत्यवादी, मेधावी, बहुश्रुत, शक्तिमान और अधिकरणविहीन है, तब वह गण-धारक के योग्य है। इसका दूसरा पहलू यह है कि जो उक्त गुणो से सम्पन्न नही है, वह गण धारण के योग्य नही है।

साधुओ के कर्त्तव्यो को बताते हुए प्रमाद-युक्त और प्रमाद मुक्त प्रतिलेखना से जिन छह-छह भेदो का वर्णन किया गया है, वे सब सभी साधुवर्ग के लिए ज्ञातव्य एव आचरणीय हैं, गोचरी के छह भेद, प्रतिक्रमण के छह भेद, सयम असयम के छह भेद और प्रायश्चित्त का कल्प प्रस्तार तो साधु के लिए बडा ही उद्-बोधक है। इसी प्रकार साधु आचार के घातक छह पलिमथु, छह प्रकार के अवचन और उन्माद के छह स्थानो का वर्णन साधु-साध्वी को उन से बचने की प्रेरणा देता है। अन्तकर्म-पद भी ज्ञातव्य है।

निर्ग्रन्थ साधु किस किस अवस्था मे निर्ग्रन्थी को हस्तावलम्बन और सहारा दे सकता है, कौन कौन से स्थान साधु के लिए हित कारक और अहित कारक हैं, कब किन कारणो से साधु को आहार लेना चाहिए और किन कारणो से आहार का त्याग करना चाहिए, इसका भी बहुत सुन्दर विवेचन किया गया है।

सैद्धान्तिक तत्त्वो के निरूपण मे गति-आगति-पद, इन्द्रियार्थ-पद, सवर-असवर पद, कालचक्र-पद, सहनन और सस्थान पद, दिशा-पद, लेश्या-पद, मति पद, आयुर्बन्ध-पद आदि पठनीय एव महत्त्व-पूर्ण सन्दर्भ हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से मनुष्य पद, आर्य-पद, इतिहास-पद दर्शनीय हैं।

ज्योतिष की दृष्टि स कालचक्र-पद, दिशा-पद, नक्षत्र पद, ऋतु पद, अवमरात्र और अतिरात्र-पद विशेष ज्ञानवर्धक हैं।

भौगोलिक दृष्टि स लोकस्थिति पद, महानरक-पद, विमान प्रस्तट-पद, महाद्रह पद, नदी पद आदि अवलोकनीय हं।

प्राचीन समय मे वाद-विवाद या शास्त्रार्थ मे वादी एव प्रतिवादी किस प्रकार के दाव पेंच खेलते थे, यह विवाद-पद से ज्ञात होगा ।

इसके अतिरिक्त कौन-कौन से स्थान सर्वसाधारण के लिए सुलभ नही हैं, किन्तु अतिदुलभ हैं ? उनका जानना भी प्रत्येक मुमुक्षु एव विज्ञ-पुरुष के लिए अत्यावश्यक है ।

विष परिणाम-पद से आयुर्वेद-विषयक भी ज्ञान प्राप्त होता है । पृष्ट-पद से अनेक प्रकार के प्रश्नो का, भोजन-परिणाम-पद मे भोजन कैसा होना चाहिए आदि व्यावहारिक बातो का भी ज्ञान प्राप्त होता है ।

इस प्रकार यह स्थान अनेक महत्त्वपूर्ण विषयो से समृद्ध है ।

षष्ठ स्थान

गण धारण सूत्र

१—छहिं ठाणेहिं सपण्णे अणगारे अरिहति गणं धारित्तए, तं जहा—सड्ढी पुरिसजाते, सच्चे पुरिसजाते, मेहावी पुरिसजाते, बहुस्सुते पुरिसजाते, सत्तिमं, अप्पाधिकरणे।

छह स्थानों से सम्पन्न अनगार गण धारण करने के योग्य होता है। जैसे—

१ श्रद्धावान् पुरुष, २ सत्यवादी पुरुष, ३ मेधावी पुरुष, ४ बहुश्रुत पुरुष,

५ शक्तिमान् पुरुष, ६ अल्पाधिकरण पुरुष।

विवेचन—गण या साधु संघ को धारण करने वाले व्यक्ति को इन छह विशेषताओं से संयुक्त होना आवश्यक है, अन्यथा वह गण या संघ का सुचारु संचालन नहीं कर सकता।

उसे सर्वप्रथम श्रद्धावान् होना चाहिए। जिसे स्वयं ही जिन-प्रणीत मार्ग पर श्रद्धा नहीं होगी वह दूसरों को उसकी दृढ़ प्रतीति कैसे करायगा?

दूसरा गुण सत्यवादी होना है। सत्यवादी पुरुष ही दूसरों को सत्यार्थ की प्रतीति करा सकता है और की हुई प्रतिज्ञा के निर्वाह करने में समर्थ हो सकता है।

तीसरा गुण मेधावी होना है। तीक्ष्ण या प्रखर बुद्धिशाली पुरुष स्वयं भी श्रुत-ग्रहण करने में समर्थ होता है और दूसरों को भी श्रुत ग्रहण कराने में समर्थ हो सकता है।

चौथा गुण बहुश्रुतशाली होना है। जो गणनायक बहुश्रुत सम्पन्न नहीं होगा, वह अपने शिष्यों को कैसे श्रुत सम्पन्न कर सकेगा!

पांचवां गुण शक्तिशाली होना है। समर्थ पुरुष को स्वस्थ एवं दृढ़ संहनन वाला होना आवश्यक है। साथ ही मन्त्र-तन्त्रादि की शक्ति से भी सम्पन्न होना चाहिए।

छठा गुण अल्पाधिकरण होना है। अधिकरण का अर्थ है—कलह या विग्रह और 'अल्प' शब्द यहाँ अभाव का वाचक है। जो पुरुष स्व पक्ष या पर पक्ष के साथ कलह करता है, उसके पास नवीन शिष्य दीक्षा शिक्षा लेने से डरते हैं इसलिए गणनायक को कलहरहित होना चाहिए।

अतः उक्त छह गुणों से सम्पन्न साधु ही गण को धारण करने के योग्य कहा गया है। (१)

निर्ग्रन्थी-अवलम्बन सूत्र

२—छहिं ठाणेहिं णिग्गंथे णिग्गंथिं गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णाइक्कमइ, तं जहा—खित्तचित्तं, दित्तचित्तं, जक्खाइट्ठं, उम्मायपत्तं, उवसग्गपत्तं, साहिकरणं।

छह कारणों से निर्ग्रन्थ, निर्ग्रन्थी को ग्रहण और अवलम्बन देता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है। जैसे—

१ निर्ग्रन्थी के विक्षिप्तचित्त हो जाने पर, २ दृप्तचित्त हो जाने पर,

३ यक्षाविष्ट हो जाने पर, ४ उन्माद को प्राप्त हो जाने पर,
५ उपसर्ग प्राप्त हो जाने पर, ६ कलह को प्राप्त हो जाने पर। (२)

सार्धमिक अन्तकर्म-सूत्र

३—छहिं ठाणेहिं णिग्गंथा णिग्गंथीओ य साहम्मियं कालगतं समायरमाणा णाइक्कमंति, तं जहा—अंतोहिंतो वा बाहिं णीणेमाणा, बाहीहिंतो वा णिब्बाहिं णीणेमाणा, उवेहेमाणा वा, उवासमाणा वा, अणुण्णवेमाणा वा, तुसिणीए वा संपव्वयमाणा।

छह कारणों से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थी (साथ-साथ) अपने काल-प्राप्त सार्धमिक का अन्त्यकर्म करते हुए भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते है। जैसे—

१ उसे उपाश्रय से बाहर लाते हुए।
२ बस्ती से बाहर लाते हुए।
३ उपेक्षा करते हुए।
४ शव के समीप रह कर रात्रि-जागरण करते हुए।
५ उसके स्वजन या गृहस्थों को जताते हुए।
६ उसे एकान्त में विसर्जित करने के लिए मौन भाव से जाते हुए।

विवेचन—पूर्वकाल में जब साधु और साध्वियों के संघ विशाल होते थे और वे प्रायः नगर के बाहर रहते थे—उस समय किसी साधु या साध्वी के कालगत होने पर उसकी अन्तक्रिया उन्हें करनी पड़ती थी। उसी का निर्देश प्रस्तुत सूत्र में किया गया है।

प्रथम दो कारणों से ज्ञात होता है कि जहाँ साधु या साध्वी कालगत हो, उस स्थान से बाहर निकालना और फिर उसे निर्दोष स्थण्डिल पर विसर्जित करने के लिए बस्ती से बाहर ले जाने का भी काम उनके साम्भोगिक साधु या साध्वी स्वयं ही करते थे।

तीसरे उपेक्षा कारण का अर्थ विचारणीय है। टीकाकार ने इसके दो भेद किये हैं—व्यापारोपेक्षा और अव्यापारोपेक्षा। व्यापारोपेक्षा का अर्थ किया है—मृतक के अंगच्छेदन-बंधनादि क्रियाओं का करना। तथा अव्यापारोपेक्षा का अर्थ किया है—मृतक के सम्बन्धियों द्वारा सत्कार-संस्कार में उदासीन रहना। बृहत्कल्प भाष्य और दि० ग्रन्थ माने जाने मूलाराधना के निर्हरण प्रकरण से ज्ञात होता है कि यदि कोई आराधक रात्रि में कालगत हो जावे तो उसमें कोई भूत प्रेत आदि प्रवेश न कर जावे, इसके लिए उसकी अंगुली के मध्य पर्व का भाग छेद दिया जाता था, तथा हाथ-पैरों के अंगूठों को रस्सी से बांध दिया जाता था। अव्यापारोपेक्षा का जो अर्थ टीकाकार ने किया है, उससे ज्ञात होता है कि मृतक के सम्बन्धी आकर उसका मृत्यु महोत्सव किसी विधि विशेष से मनाते रहे होंगे, उसमें साधु या साध्वी को उदासीन रहना चाहिए।

चौथा कारण स्पष्ट है—यदि रात्रि में कोई आराधक कालगत हो और उसका तत्काल निर्हरण संभव न हो तो कालगत के साम्भोगिकों को उसके पास रात्रि-जागरण करते हुए रहना चाहिए।

पांचवें कारण से ज्ञात होता है कि यदि कालगत आराधक के सम्बन्धी जनों को मरण होने की सूचना देने के लिए वह रखा हो तो उन्हें उसकी सूचना देना भी उनका कर्तव्य है।

छठे कारण से ज्ञात होता है कि कालगत आराधक को विसर्जित करने के लिए साधु या साध्वियों को जाना पड़े तो मौनपूर्वक जाना चाहिए।

इस निहरणरूप अन्त्यकर्म का विस्तृत विवेचन बृहत्कल्पभाष्य और मूलाराधना से जानना चाहिए।

छद्मस्थ केवली सूत्र

४—छ ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेण ण जाणति ण पासति, तं जहा—धम्मत्थिकाय, अधम्मत्थिकाय, आयास, जीवमसरीरपडिबद्ध, परमाणुपोग्गल, सद्द।

एताणि चेव उप्पण्णणाणदसणधरे अरहा जिणे (केवली) सव्वभावेण जाणति पासति, त जहा—धम्मत्थिकाय (अधम्मत्थिकाय आयास, जीवमसरीरपडिबद्ध, परमाणुपोग्गल), सद्द।

छद्मस्थ पुरुष छह स्थानो को सम्पूर्ण रूप से न जानता है और न देखता है। जैसे—

१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ शरीर रहित जीव, ५ पुद्गल परमाणु, ६ शब्द।

किन्तु जिनको विशिष्ट ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है, उनके धारण करने वाले अर्हत, जिन केवली सम्पूर्ण रूप से जानते और देखते हैं। जैसे—

१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ शरीर-रहित जीव, ५ पुदगल परमाणु, ६ शब्द (४)।

असभव सूत्र

५—छहिं ठाणेहिं सव्वजीवाण णत्थि इड्ढीति वा जुतीति वा जसेति वा बलेति वा वीरिएति वा पुरिसक्कार परक्कमेति वा, त जहा—१ जीव वा अजीव करणताए। २ अजीव वा जीव करणताए। ३ एगसमए ण वा दो भासाओ भासित्तए। ४ सय कड वा कम्म वेदेमि वा मा वा वेदेमि। ५ परमाणुपोग्गल वा छिंदित्तए वा भिंदित्तए वा अगणिकाएण वा समोदहित्तए। ६ बहिता वा लोगता गमणताए।

सभी जीवो मे छह कार्य करने की न ऋद्धि है, न द्युति है, न यश है, न बल है, न वीर्य है, न पुरस्कार है और न पराक्रम है। जैसे—

१ जीव को अजीव करना।
२ अजीव का जीव करना।
३ एक समय मे दो भाषा बोलना।
४ स्वयकृत कर्म को वेदन करना या नही वेदन करना।
५ पुद्गल परमाणु का छेदन या भेदन करना, या अग्निकाय मे जलाना।
६ लोकान्त मे बाहर जाना (५)।

जीव-सूत्र

६—छज्जीवणिकाया पण्णत्ता, त जहा—पुढविकाइया, (आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया) तसकाइया।

छह जीवनिकाय कहे गये हैं। जसे—
१ पृथ्वीकायिक, २ अप्कायिक ३ तेजस्कायिक, ४ वायुकायिक, ५ वनस्पति-कायिक, ६ त्रसकायिक (६)।

७—छ तारग्गहा पण्णत्ता, त जहा—सुक्के, बुहे, बहस्सती, अगारए, सणिच्छरे, केतू।

छह ताराग्रह (तारो के आकार वाले ग्रह) कहे गये है। जैसे—
१ शुक्र, २ बुध, ३ बृहस्पति, ४ अगारक (मगल), ५ शनिश्चर ६ केतु (७)।

८—छव्विहा ससारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, त जहा—पुढविकाइया, (आउकाइया तेउकाइया, वाउकाइया वणस्सइकाइया), तसकाइया।

ससार समापन्नक जीव छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ पृथ्वीकायिक, २ अप्कायिक, ३ तेजस्कायिक, ४ वायुकायिक, ५ वनस्पति-कायिक, ६ त्रसकायिक (८)।

गति आगति सूत्र

९—पुढविकाइया छगतिया छआगतिया पण्णत्ता, त जहा—पुढविकाइए पुढविकाइएसु उववज्जमाणे पुढविकाइएहितो वा, (आउकाइएहितो वा, तेउकाइएहितो वा, वाउकाइएहितो वा, वणस्सइकाइएहितो वा), तसकाइएहितो वा उववज्जेज्जा।

से चेव ण से पुढविकाइए पुढविकाइयत्त विप्पजहमाणे पुढविकाइयत्ताए वा, (आउकाइयत्ताए वा, तेउकाइयत्ताए वा, वाउकाइयत्ताए वा, वणस्सइकाइयत्ताए वा) तसकाइयत्ताए वा गच्छेज्जा।

पृथिवीकायिक जीव षड्-गतिक और षड् आगतिक कहे गये है। जैसे—
१ पृथिवीकायिक जीव पृथिवीकायिको मे उत्पन्न होता हुआ पृथिवीकायिको से, या अप्कायिको से, या तेजस्कायिको से या वायुकायिको से, या वनस्पतिकायिको से, या त्रसकायिको से आकर उत्पन्न होता है।

वही पृथिवीकायिक जीव पृथिवीकायिक पर्याय को छोडता हुआ पृथिवीकायिको मे, या अप्कायिको मे, या तेजस्कायिको मे, या वायुकायिको मे, या वनस्पतिकायिको मे, या त्रसकायिको मे जाकर उत्पन्न होता है (९)।

१०—आउकाइया छगतिया छआगतिया एव चेव जाव तसकाइया।

इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक जीव छह स्थानो मे गति तथा छह स्थानो से आगति करने वाले कहे गये हैं।

जीव-सूत्र

११—छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—आभिणिबोहियणाणी, (सुयणाणी, ओहिणाणी, मणपज्जवणाणी), केवलणाणी, अण्णाणी।

अहवा—छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—एगिंदिया, (बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया,) पंचिंदिया, अणिंदिया।

अहवा—छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—ओरालियसरीरी, वेउव्वियसरीरी, आहारग सरीरी, तेअगसरीरी, कम्मगसरीरी, असरीरी।

सब जीव छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ आभिनिबोधिक ज्ञानी, २ श्रुतज्ञानी, ३ अवधिज्ञानी, ४ मन पयवज्ञानी ५ केवल-ज्ञानी और ६ अज्ञानी (मिथ्याज्ञानी)।

अथवा—सब जीव छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ एकेन्द्रिय, २ द्वीन्द्रिय, ३ त्रीन्द्रिय, ४ चतुरिन्द्रिय, ५ पचेन्द्रिय, ६ अनिन्द्रिय (सिद्ध)।

अथवा—सब जीव छह प्रकार के कहे गये हैं। जसे—

१ औदारिकशरीरी, २ वैक्रियशरीरी, ३ आहारकशरीरी, ४ तैजसशरीरी, ५ कामण शरीरी और ६ अशरीरी (मुक्तात्मा) (११)।

तणवनस्पति-सूत्र

१२—छव्विहा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, त जहा—अग्गबीया, मूलबीया, पोरबीया, खधबीया, बीयरुहा, समुच्छिमा।

तृण-वनस्पतिकायिक जीव छह प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ अग्रबीज, २ मूलबीज, ३ पर्वबीज, ४ स्कधबीज, ५ बीजरुह और ६ सम्मूर्च्छिम (१२)।

नो सुलभ सूत्र

१३—छट्ठाणाइ सव्वजीवाण णो सुलभाइ भवति, त जहा—माणुस्सए भवे। आरिए खेत्ते जम्म। सुकुले पच्चायाती। केवलीपण्णत्तस्स धम्मस्स सवणता। सुतस्स वा सद्दहणता। सद्दहितस्स वा पत्तितस्स वा रोइतस्स वा सम्म काएण फासणता।

छह स्थान सर्व जीवो के लिए सुलभ नही हैं। जसे—

१ मनुष्य भव, २ आय क्षेत्र मे जन्म, ३ सुकुल म आगमन, ४ केवलिप्रज्ञप्त धम का श्रवण, ५ सुने हुए धम का श्रद्धान और ६ श्रद्धान किये, प्रतीति किये और रुचि किये गये धम का काय से सम्यक स्पशन (आचरण) (१३)।

इन्द्रियाथ सूत्र

१४—छ इंदियत्था पण्णत्ता, त जहा—सोइंदियत्थे, (चक्खिदियत्थे, घाणिंदियत्थे, जिब्भिदियत्थे,) फासिंदियत्थे, णोइंदियत्थे।

इन्द्रियो के छह अथ (विषय) कहे गये हैं। जैसे—

१ श्रोत्रेन्द्रिय का अथ—शब्द, ३ चक्षुरिन्द्रिय का अथ—रूप,

३ घ्राणेन्द्रिय का अर्थ—गन्ध, ४ रसनेन्द्रिय का अर्थ—रस,
५ स्पर्शनेन्द्रिय का अर्थ—स्पर्श ६ नोइन्द्रिय (मन) का अर्थ—श्रुत (१४)।

विवेचन—पाच इन्द्रियो के विषय तो नियत एव सर्व-विदित हैं। किन्तु मन का विषय नियत नही है। वह सभी इन्द्रियो के द्वारा गृहीत विषय का चिन्तन करता है, अत सर्वार्थ-ग्राही है। तत्त्वार्थ-सूत्र मे भी उसका विषय श्रुत कहा गया है। और आचार्य अकलक देव ने उसका अर्थ श्रुतज्ञान का विषयभूत पदार्थ किया है।[1] श्री अभयदेव सूरि ने लिखा है कि श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा मनोज्ञ शब्द सुनने मे जो सुख होता है, वह तो श्रोत्रेन्द्रिय-जनित है। किन्तु इष्ट-चिन्तन से सुख होता है, वह नोइन्द्रिय-जनित है।[2]

सवर असवर-सूत्र

१५—छव्विहे सवरे पण्णत्ते, त जहा—सोतिंदियसवरे, (चक्खिदियसवरे, घाणिदियसवरे, जिब्भिदियसवरे,) फासिदियसवरे, णोइदियसवरे।

सवर छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ श्रोत्रेन्द्रिय सवर, २ चक्षुरिन्द्रिय सवर, ३ घ्राणेन्द्रिय-सवर, ४ रसनेन्द्रिय-सवर,
५ स्पर्शनेन्द्रिय सवर, ६ नोइन्द्रिय-सवर। (१५)

१६—छव्विहे असवरे पण्णत्ते, त जहा—सोतिंदियअसवरे, (चक्खिदियअसवरे, घाणिदिय-असवरे, जिब्भिदियअसवरे) फासिदियअसवरे, णोइदियअसवरे।

असवर छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ श्रोत्रेन्द्रिय-असवर, २ चक्षुरिन्द्रिय असवर, ३ घ्राणेन्द्रिय-असवर, ४ रसनेन्द्रिय असवर,
५ स्पर्शनेन्द्रिय असवर, ६ नोइन्द्रिय असवर। (१६)

सात असात-सूत्र

१७—छव्विहे साते पण्णत्ते, त जहा—सोतिंदियसाते, (चक्खिदियसाते, घाणिदियसाते, जिब्भिदियसाते, फासिदियसाते) णोइदियसाते।

सात (सुख) छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ श्रोत्रेन्द्रिय-सात, २ चक्षुरिन्द्रिय सात, ३ घ्राणेन्द्रिय-सात, ४ रसनेन्द्रिय-सात,
५ स्पर्शनेन्द्रिय सात ६ नोइन्द्रिय सात। (१७)

१८—छव्विहे असाते पण्णत्ते, त जहा—सोतिंदियअसाते, (चक्खिदियअसाते, घाणिदियअसाते, जिब्भिदियअसाते, फासिदियअसाते), णोइदियअसाते।

---

१ श्रुतज्ञानविषयोऽर्थ श्रुतम्। विषयोऽनिन्द्रियस्य। अथवा श्रुतज्ञान श्रुतम्। तदनिन्द्रियस्यार्थ प्रयोजनमिति यावत तत्पूर्वकत्वात्तस्य। (तत्त्वार्थवार्तिक, सू० २१ भाषा)

२ श्रोत्रेन्द्रियद्वारेण मनोज्ञशब्द-श्रवणतो यत्सात सुख तच्छ्रोत्रेन्द्रियसातम्। तथा यदिष्टचिन्तनतस्तन्नोइन्द्रियसात-मिति। सूत्रकृताङ्गटीका पत्र ३३८A)

असात (दुःख) छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ श्रोत्रेन्द्रिय-असात, २ चक्षुरिन्द्रिय असात, ३ घ्राणेन्द्रिय असात, ४ रसनेन्द्रिय-असात, ५ स्पर्शनेन्द्रिय-असात, ६ नोइन्द्रिय असात। (१८)

प्रायश्चित्त सूत्र

१९—छव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते तं जहा—आलोयणारिहे, पडिक्कमणारिहे, तदुभयारिहे, विवेगारिहे, विउस्सग्गारिहे, तवारिहे।

प्रायश्चित्त छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ आलोचना योग्य, २ प्रतिक्रमण योग्य, ३ तदुभय-योग्य, ४ विवेक-योग्य, ५ व्युत्सर्ग-योग्य ६ तप योग्य। (१९)

विवेचन—यद्यपि तत्त्वार्थ सूत्र में प्रायश्चित के नौ तथा प्रायश्चित सूत्र आदि में दश भेद बताये गये हैं, किन्तु यहाँ छह का अधिकार होने से छह ही भेद कहे गये हैं। किसी साधारण दोष की शुद्धि गुरु के आगे निवेदन करने से—आलोचना मात्र से हो जाती है। इससे भी बड़ा दोष लगता है, तो प्रतिक्रमण से—मेरा दोष मिथ्या हो—(मिच्छा मि दुक्कडं) ऐसा बोलने से—उसकी शुद्धि हो जाती है। कोई दोष और भी बड़ा हो तो उसकी शुद्धि तदुभय से अर्थात् आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों से होती है। कोई और भी बड़ा दोष होता है, तो उसकी शुद्धि विवेक नामक प्रायश्चित्त से होती है। इस प्रायश्चित्त में दोषी व्यक्ति को अपने भक्त पान और उपकरणादि के पृथक् विभाजन का दण्ड दिया जाता है। यदि इससे भी गुरुतर दोष होता है, तो नियत समय तक कायोत्सर्ग करारूप व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त से उसकी शुद्धि होती है। और यदि इससे भी गुरुतर अपराध होता है तो उसकी शुद्धि के लिए चतुर्थ भक्त—षष्ठभक्त आदि तप का प्रायश्चित्त दिया जाता है। सारांश यह है कि जैसा दोष होता है, उसके अनुरूप ही प्रायश्चित्त देने का विधान है। यह बात छहों पदों के साथ प्रयुक्त 'अर्ह' (योग्य) पद से सूचित की गई है।

मनुष्य-सूत्र

२०—छव्विहा मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—जंबूदीवगा, धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धगा, धायइसंडदीवपच्चत्थिमद्धगा, पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धगा, पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धगा, अंतरदीवगा।

अहवा—छव्विहा मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—संमुच्छिममणुस्सा—कम्मभूमगा, अकम्मभूमगा, अंतरदीवगा, गब्भवक्कंतिअमणुस्सा—कम्मभूमगा, अकम्मभूमगा, अंतरदीवगा।

मनुष्य छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ जम्बूद्वीप में उत्पन्न, २ धातकीषण्डद्वीप के पूर्वार्ध में उत्पन्न, ३ धातकीषण्ड के पश्चिमार्ध में उत्पन्न, ४ पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध में उत्पन्न, ५ पुष्करवरद्वीपार्ध के पश्चिमार्ध में उत्पन्न, ६ अन्तर्द्वीपों में उत्पन्न मनुष्य।

अथवा मनुष्य छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कर्मभूमि में उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम मनुष्य,
२ अकर्मभूमि में उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम मनुष्य,
३ अन्तर्द्वीप में उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम मनुष्य,

४ कर्मभूमि मे उत्पन्न होने वाले गर्भज मनुष्य,
५ अकर्मभूमि मे उत्पन्न होने वाले गर्भज मनुष्य,
६ अन्तर्द्वीप मे उत्पन्न होने वाले गर्भज मनुष्य (२०)।

२१—छव्विहा इड्ढिमंता मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेवा, वासुदेवा, चारणा, विज्जाहरा।

(विशिष्ट) ऋद्धि वाले मनुष्य छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ अर्हन्त, २ चक्रवर्ती, ३ बलदेव, ४ वासुदेव, ५ चारण, ६ विद्याधर (२१)।

विवेचन—अर्हन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, और वासुदेव की ऋद्धि तो पूर्वभवोपार्जित पुण्य के प्रभाव से होती है। वैताढ्यनिवासी विद्याधरो की ऋद्धि कुलक्रमागत भी होती है और इस भव मे भी विद्याओं की साधना से प्राप्त होती है। किन्तु चारणऋद्धि महान् तपस्वी साधुओं की कठिन तपस्या से प्राप्त लब्धिजनित होती है। श्री अभयदेव सूरि ने 'चारण' के अर्थ मे 'जंघाचारण और विद्याचारण' केवल इन दो नामो का उल्लेख किया है। जिन्हे तप के प्रभाव से भूमि का स्पर्श किये बिना ही अधर गमनागमन की लब्धि प्राप्त होती है, वे जंघाचारण कहलाते हैं और विद्या की साधना से जिन्हे आकाश मे गमनागमन की शक्ति प्राप्त होती है, वे विद्याचारण कहलाते है।

२२—छव्विहा अणिड्ढिमंता मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—हेमवतगा, हेरण्णवतगा, हरिवासगा, रम्मगवासगा, कुरुवासिणो, अंतरदीवगा।

तिलोयपण्णत्ती आदि मे ऋद्धिप्राप्त आर्यों के आठ भेद बताये गये हैं—१ बुद्धिऋद्धि, २ क्रियाऋद्धि, ३ विक्रियाऋद्धि, ४ तप ऋद्धि, ५ बलऋद्धि, ६ औषधऋद्धि ७ रसऋद्धि और ८ क्षेत्रऋद्धि। इनमे बुद्धिऋद्धि के केवलज्ञान आदि १८ भेद है। क्रियाऋद्धि के दो भेद हैं—चारणऋद्धि और आकाशगामी ऋद्धि। चारणऋद्धि के भी अनेक भेद बताये गये हैं। यथा—

१ जंघाचारण—भूमि से चार अंगुल ऊपर गमन करने वाले।
२ अग्निशिखाचारण—अग्नि की शिखा के ऊपर गमन करने वाले।
३ श्रेणिचारण—पर्वतश्रेणि आदि का स्पर्श किये बिना ऊपर गमन करने वाले।
४ फल-चारण—वृक्षो के फलो को स्पर्श किये बिना ऊपर गमन करने वाले।
५ पुष्पचारण—वृक्षो के पुष्पो को स्पर्श किये बिना ऊपर चलने वाले।
६ तन्तुचारण—मकडी के तन्तुओं को स्पर्श किये बिना उनके ऊपर चलने वाले।
७ जलचारण—जल को स्पर्श किये बिना उसके ऊपर चलने वाले।
८ अंकुरचारण—वनस्पति के अंकुरो का स्पर्श किये बिना ऊपर चलने वाले।
९ बीजचारण—बीजो का स्पर्श किये बिना उनके ऊपर चलने वाले।
१० धूमचारण—धूम का स्पर्श किये बिना उसकी गति के साथ चलने वाले।

इसी प्रकार वायुचारण, नीहारचारण, जलदचारण आदि अनेक प्रकार के चारणऋद्धि वालो की भी सूचना की गई है।

आकाशगामिऋद्धि—पर्यङ्कासन से बैठे हुए, या पद्मासन से अवस्थित रहते हुए पाद निक्षेप के बिना ही विविध आसनो से आकाश मे विहार करने वालों को आकाशगामिऋद्धि वाला बताया गया है।

विक्रियाऋद्धि के अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व, ईशित्व, अप्रतिघात, अन्तर्धान, कामरूपित्व आदि अनेक भेद बताये गये हैं।

तपऋद्धि के उग्र, दीप्त, तप्त, महाघोर, तपोघोर, पराक्रमघोर और ब्रह्मचर्य ये सात भेद बताये गये हैं।

बलऋद्धि के मनोबली, वचनबली और कायबली ये तीन भेद हैं। औषधऋद्धि के आठ भेद हैं—आमर्श, खेल (श्लेष्म) जल्ल, मल, विट्, सर्वौषधि, आस्यनिर्विष, दृष्टिनिर्विष। रसऋद्धि के छह भेद हैं—क्षीरस्रवी, मधुस्रवी, सर्पिःस्रवी, अमृतस्रवी, आस्यनिर्विष और दृष्टिनिर्विष। क्षेत्रऋद्धि दो भेद हैं—अक्षीण महानस और अक्षीण महालय।

उक्त सभी ऋद्धियों का चामत्कारिक विस्तृत वर्णन तिलोयपण्णत्ती धवलाटीका और तत्त्वार्थ-राजवार्तिक में किया गया है। विशेषावश्यकभाष्य में २८ ऋद्धियों का वर्णन किया गया है।

कालचक्र-सूत्र

२३—छव्विहा ओसप्पिणी पण्णत्ता, तं जहा—सुसम सुसमा, (सुसमा, सुसम दूसमा, दूसम-सुसमा, दूसमा), दूसम दूसमा।

अवसर्पिणी छह प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ सुषम-सुषमा, २ सुषमा, ३ सुषम-दुषमा, ४ दुःषम-सुषमा, ५ दुषमा, ६ दुःषम-दुःषमा (२३)।

२४—छव्विहा उस्सप्पिणी पण्णत्ता, तं जहा—दुस्सम दुस्समा, दुस्समा, (दुस्सम-सुसमा, सुसम-दुस्समा, सुसमा, सुसम सुसमा।

उत्सर्पिणी छह प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ दुःषम दुःषमा, २ दुःषमा, ३ दुःषम-सुषमा, ४ सुषम-दुःषमा, ५ सुषमा, ६ सुषम-सुषमा (२४)।

२५—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसम सुसमाए समाए मणुया छ धणुसहस्साइं उड्ढमुच्चत्तेण हुत्था, छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउं पालयित्था।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरत ऐरवत क्षेत्र की अतीत उत्सर्पिणी के सुषम सुषमा काल में मनुष्यों की ऊँचाई छह हजार धनुष की थी और उनकी उत्कृष्ट आयु छह अर्ध पल्योपम अर्थात् तीन पल्योपम की थी (२५)।

२६—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु इमीसे ओसप्पिणीए सुसम सुसमाए समाए (मणुया छ धणुसहस्साइं उड्ढमुच्चत्तेण पण्णत्ता, छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउं पालयित्था)।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरत-ऐरवत क्षेत्र की इसी अवसर्पिणी के सुषम-सुषमा काल में मनुष्यों की ऊँचाई छह हजार धनुष की थी और उनकी छह अर्धपल्योपम की उत्कृष्ट आयु थी (२६)।

२७—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु आगमेस्साए उस्सप्पिणीए सुसम सुसमाए समाए (मणुया छ धणुसहस्साइं उड्ढमुच्चत्तेण भविस्सति), छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउं पालइस्सति।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे भरत-एरवत क्षेत्र की आगामी उत्सर्पिणी के सुषम-सुषमा काल मे मनुष्यो की ऊँचाई छह हजार धनुष होगी और वे छह अर्धपल्योपम (तीन पल्योपम) उत्कृष्ट आयु का पालन करेंगे (२७)।

२८—जंबुद्दीवे दीवे देवकुरु उत्तरकुरुकुरासु मणुया छ धणुस्सहस्साइं उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता, छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउं पालेंति।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप म देवकुरु और उत्तरकुरु के मनुष्यो की ऊँचाई छह हजार धनुष की कही गई है और वे छह अर्धपल्योपम उत्कृष्ट आयु का पालन करते हैं (२८)।

२९—एव धायइसडदीवपुरत्थिमद्धे चत्तारि आलावगा जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे चत्तारि आलावगा।

इसी प्रकार धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध, तथा अर्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध मे भी मनुष्यो की ऊँचाई छह हजार धनुष और उत्कृष्ट आयु छह अर्धपल्योपम की जम्बूद्वीप के चारो आलापको के समान जानना चाहिए (२९)।

संहनन सूत्र

३०—छव्विहे सघयणे पण्णत्ते, त जहा—वइरोसभ णाराय सघयणे, उसभ णाराय सघयणे णाराय-सघयणे, अद्धणाराय सघयणे, खीलिया सघयणे, छेवट्ठसघयणे।

संहनन छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ वज्रर्षभनाराचसंहनन—जिस शरीर मे हड्डिया, वज्रकीलिका, परिवेष्टनपट्ट और उभयपार्श्व मर्कटबन्ध से युक्त हो।
२ ऋषभनाराचसंहनन—जिस शरीर की हड्डिया वज्रकीलिका के बिना शेष दो से युक्त हो।
३ नाराचसंहनन—जिस शरीर की हड्डिया दोनो ओर से केवल मर्कटबन्ध युक्त हो।
४ अर्धनाराचसंहनन—जिस शरीर की हड्डिया एक ओर मर्कट बन्धवाली और दूसरी ओर कीलिका वाली हो।
५ कीलिकासंहनन—जिस शरीर की हड्डिया केवल कीलिका से कीलित हो।
६ सेवार्तसंहनन—जिस शरीर की हड्डिया परस्पर मिली हो (३०)।

संस्थान-सूत्र

३१—छव्विहे सठाणे पण्णत्ते, त जहा—समचउरसे, णग्गोहपरिमडले, साई, खुज्जे, वामणे, हुडे।

संस्थान छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ समचतुरस्रसंस्थान—जिस शरीर के सभी अग अपने-अपने प्रमाण के अनुसार हो और दोनो हाथा तथा दोनो पैरो के कोण पद्मासन से बैठने पर समान हो।

२ न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान—न्यग्रोध का अर्थ वट वृक्ष है। जिस शरीर में नाभि से नीचे के अंग छोटे और ऊपर के अंग दीर्घ या विशाल हों।
३ सादिसंस्थान—जिस शरीर में नाभि के नीचे के भाग प्रमाणोपेत और ऊपर के भाग ह्रस्व हों।
४ कुब्जसंस्थान—जिस शरीर में पीठ या छाती पर कूबड़ निकली हो।
५ वामनसंस्थान—जिस शरीर में हाथ, पैर, शिर और ग्रीवा प्रमाणोपेत हों, किन्तु शेष अवयव प्रमाणोपेत न हों, किन्तु शरीर बौना हो।
६ हुण्डकसंस्थान—जिस शरीर में कोई अवयव प्रमाणयुक्त न हो (३१)।

विवेचन—दि० शास्त्रों में संहनन और संस्थान के भेदों के स्वरूप में कुछ भिन्नता है, जिसे तत्त्वार्थराजवार्तिक के आठवें अध्याय से जानना चाहिए।

अनात्मवत् आत्मवत् सूत्र

३२—छट्ठाणा अणत्तवओ अहिताए असुभाए अखमाए अणीसेसाए अणाणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा—परियाए परियाले, सुते, तवे, लाभे, पूयासक्कारे।

अनात्मवान् के लिए छह स्थान अहित अशुभ, अक्षम, अनिःश्रेयस, अनानुगामिकता (अशुभानुबन्ध) के लिए होते हैं। जैसे—

१ पर्याय—अवस्था या दीक्षा में बड़ा होना, २ परिवार, ३ श्रुत, ४ तप, ५ लाभ, ६ पूजा-सत्कार (३२)।

३३—छट्ठाणा अत्तवतो हिताए (सुभाए खमाए णीसेसाए) आणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा—परियाए, परियाले, (सुते, तवे, लाभे), पूयासक्कारे।

आत्मवान के लिए छह स्थान हित, शुभ, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता (शुभानुबन्ध) के लिए होते हैं। जैसे—

१ पर्याय, २ परिवार, ३ श्रुत, ४ तप, ५ लाभ ६ पूजा-सत्कार (३३)।

विवेचन—जिस व्यक्ति को अपनी आत्मा का भान हो गया है और जिसका अहंकार-ममकार दूर हो गया है, वह आत्मवान् है। इसके विपरीत जिसे अपनी आत्मा का भान नहीं हुआ है और जो अहंकार-ममकार से ग्रस्त है, वह अनात्मवान् कहलाता है।

अनात्मवान् व्यक्ति के लिए दीक्षा-पर्याय या अधिक अवस्था, शिष्य या कुटुम्ब परिवार, श्रुत, तप और पूजा सत्कार की प्राप्ति से अहंकार और ममकार भाव उत्तरोत्तर बढ़ता है, उससे वह दूसरों को हीन अपने को महान् समझने लगता है। इस कारण से सब उत्तम योग भी उसके लिए पतन के कारण हो जाते हैं। किन्तु आत्मवान् के लिए सूत्र प्रतिपादित छहों स्थान उत्थान और आत्म विकास के कारण होते हैं, क्योंकि ज्यों-ज्यों उसमें तप-श्रुत आदि की वृद्धि होती है, त्यों-त्यों वह अधिक विनम्र एवं उदार होता जाता है।

आर्य-सूत्र

३४—छव्विहा जाइ आरिया मणुस्सा पण्णत्ता, त जहा—

संग्रहणी गाथा

अंबट्ठा य कलंदा य, वेदेहा वेदिगादिया।
हरिता चुंचुणा चेव, छप्पेता इब्भजातिओ ॥१॥

जाति से आर्यपुरुष छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ अंबष्ठ, २ कलन्द, ३ वदेह ४ वदिक, ५ हरित, ६ चुंचुण, ये छहों इभ्यजाति के मनुष्य हैं (३४)।

३५—छव्विहा कुलारिया मणुस्सा पण्णत्ता, त जहा—उग्गा, भोगा, राइण्णा, इक्खागा, णाता, कोरव्वा।

कुल से आर्य मनुष्य छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ उग्र, २ भोज, ३ राजन्य, ४ इक्ष्वाकु, ५ ज्ञात ६ कौरव।

विवेचन—मातृ पक्ष को जाति कहते है। जिन का मातपक्ष निर्दोष और पवित्र है, वे पुरुष जात्यार्य कहलाते है। टीकाकार ने इनका कोई विवरण नहीं दिया है। अमर-कोष के अनुसार 'अम्बष्ठ' का अर्थ 'अम्बे तिष्ठति अम्बष्ठ' तथा अम्बष्ठो वैश्या-द्विजन्मनो' अर्थात वैश्य माता और ब्राह्मण पिता से उत्पन्न हुई सन्तान को अम्बष्ठ कहते है। तथा ब्राह्मणी माता और वैश्य पिता से उत्पन्न हुई सन्तान वैदेह कहलाती है (ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतस्तस्यां वैदहको विश)। चुंचुण का कोषो म कोई उल्लेख नहीं है, यदि इसके स्थान पर 'चुंचुण' पद की कल्पना की जावे तो ये कोंकण देशवासी जाति है जिनमे मातृपक्ष को आज भी प्रधानता है। कलंद और हरित जाति भी मातपक्ष-प्रधान रही है (३५)।

सग्रहणी गाथा म इन छहो को 'इभ्यजातीय' कहा है। इभ का अर्थ हाथी होता है। टीकाकार के अनुसार जिसके पास धन-राशि इतनी ऊची हो कि सूड को ऊची किया हुआ हाथी भी न दिख सके, उसे इभ्य कहा जाता था।[1] इभ्य की इस परिभाषा से इतना तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्रजातीय माता की वैश्य से उत्पन्न सन्तान से इन इभ्य जातियो के नाम पडे है। क्योंकि व्यापार करने वाले वैश्य सदा से ही धन सम्पन्न रहे है।

दूसरे सूत्र म कुछ आर्यों के छह भेद बताये गये है, उनका विवरण इस प्रकार है—

१ उग्र—भगवान् ऋषभदेव ने आरक्षक या कोट्टपाल के रूप मे जिनकी नियुक्ति की थी, वे उग्र नाम से प्रसिद्ध हुए। उनकी सन्तान भी उग्रवंशीय कहलाने लगी।

२ भोज—गुरुस्थानीय क्षत्रियो के वंशज।

३ राजन्य—मित्रस्थानीय क्षत्रियो के वंशज।

४ इक्ष्वाकु—भगवान् ऋषभदेव के वंशज।

---

१ इभमर्हन्तीतीभ्या। यद्-द्रव्यस्तूपान्तरिता उच्छ्रितकदलिकादण्डो हस्ती न दृश्यते त इभ्या इति श्रुति। (स्थानाङ्ग सूत्रपत्र ३४० A) इभ्य आढ्यो धनी इत्यमर।

छह कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ आहार का परित्याग करता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है। जैसे—

१ आतंक—ज्वर आदि आकस्मिक रोग हो जाने पर।
२ उपसर्ग—देव, मनुष्य, तिर्यंच कृत उपद्रव होने पर।
३ तितिक्षण—ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए।
४ प्राणियों की दया करने के लिए।
५ तप की वृद्धि के लिए।
६ (विशिष्ट कारण उपस्थित होने पर) शरीर का व्युत्सर्ग करने के लिए (४२)।

उन्माद-सूत्र

४३—छहिं ठाणेहिं आया उम्मायं पाउणेज्जा, तं जहा—अरहंताणं अवण्णं वदमाणे, अरहंत-पण्णत्तस्स धम्मस्स अवण्णं वदमाणे, आयरिय उवज्झायाणं अवण्णं वदमाणे, चाउवण्णस्स संघस्स अवण्णं वदमाणे, जक्खावेसेण चेव, मोहणिज्जस्स चेव कम्मस्स उदएणं।

छह कारणों से आत्मा उन्माद (मिथ्यात्व) को प्राप्त होता है। जैसे—

१ अर्हन्तों का अवर्णवाद करता हुआ।
२ अर्हत्प्रज्ञप्त धर्म का अवर्णवाद करता हुआ।
३ आचार्य और उपाध्याय का अवर्णवाद करता हुआ।
४ चतुर्वर्ण (चतुर्विध) संघ का अवर्णवाद करता हुआ।
५ यक्ष के शरीर में प्रवेश से।
६ मोहनीय कर्म के उदय से (४३)।

प्रमाद सूत्र

४४—छव्विहे पमाए पण्णत्ते, तं जहा—मज्जपमाए, णिद्दपमाए, विसयपमाए, कसायपमाए, जूतपमाए, पडिलेहणापमाए।

प्रमाद (सत् उपयोग का अभाव) छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ मद्य-प्रमाद, २ निद्रा-प्रमाद, ३ विषय प्रमाद, ४ कषाय-प्रमाद, ५ द्यूत प्रमाद,
६ प्रतिलेखना प्रमाद (४४)।

प्रतिलेखना सूत्र

४५—छव्विहा पमायपडिलेहणा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

आरभडा संमद्दा, वज्जेयव्वा य मोसली ततिया।
पप्फोडणा चउत्थी, विक्खित्ता वेइया छट्ठी[1] ॥१॥

प्रमाद पूर्वक की गई प्रतिलेखना छह प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ आरभटा—उतावल से वस्त्रादि का सम्यक् प्रकार से देखे विना प्रतिलेखना करना।
२ संमर्दा—मर्दन करके प्रतिलेखना करना।

१ उत्तराध्ययन सूत्र २६ गा० २६।

३ मामली—वस्त्र के ऊपरी, नीचले या तिरछे भाग का प्रतिलेखन करते हुए परस्पर घट्टन करना ।
४ प्रस्फोटना—वस्त्र की धूलि को झटकारते हुए प्रतिलेखना करना ।
५ विक्षिप्ता—प्रतिलेखित वस्त्रों को अप्रतिलेखित वस्त्रों के ऊपर रखना ।
६ वेदिका—प्रतिलेखना करते समय विधिवत् न बैठकर यद्वा तद्वा बैठकर प्रतिलेखना करना (४५) ।

४६—छव्विहा अप्पमायपडिलेहणा पण्णत्ता, त जहा—

संग्रहणी गाथा

अणच्चाविल अवलिल अणाणुबंधि अमोसलिं चेव ।
छप्पुरिमा णव खोडा, पाणीपाणविसोहणी[1] ॥१॥

प्रमाद-रहित प्रतिलेखना छह प्रकार की कही गई है । जैसे—

१ अनर्तिता—शरीर या वस्त्र को न नचाते हुए प्रतिलेखना करना ।
२ अवलिता—शरीर या वस्त्र को झुकाये बिना प्रतिलेखना करना ।
३ अनानुबंधी—उतावल-रहित वस्त्र को झटकाये बिना प्रतिलेखना करना ।
४ अमोसली—वस्त्र के ऊपरी, नीचले आदि भागों को मसले बिना प्रतिलेखना करना ।

५ षट्पूर्वा-नवखोडा—प्रतिलेखन किये जाने वाले वस्त्र को पसारकर और आखो से भली-भाति से देखकर उसके दोनो भागो का तीन तीन वार खखेरना षट्पूर्वा प्रतिलेखना है, वस्त्र को तीन-तीन वार पूंज कर तीन वार शोधना नवखोड है ।

६ पाणिप्राण-विशोधिनी—हाथ के ऊपर वस्त्र-गत जीव को लेकर प्रासुक स्थान पर प्रस्थापन करना (४६) ।

लेश्या सूत्र

४७—छ लेसाओ पण्णत्ताओ, त जहा—कण्हलेसा, (णीललेसा, काउलेसा, तेउलेसा, पम्हलेसा), सुक्कलेसा ।

लेश्याएं छह कही गई हैं । जैसे—

१ कृष्णलेश्या, २ नीललेश्या, ३ कापोतलेश्या, ४ तेजोलेश्या, ५ पद्मलेश्या ६ शुक्ल लेश्या (४७) ।

४८—पंचिदियतिरिक्खजोणियाण छ लेसाओ पण्णत्ताओ, त जहा—कण्हलेसा, (णीललेसा, काउलेसा तेउलेसा, पम्हलेसा), सुक्कलेसा ।

पचेन्द्रियतिर्यग्योनिक जीवों के छह लेश्याएं कही गई हैं । जैसे—

१ कृष्णलेश्या, २ नीललेश्या, ३ कापोतलेश्या, ४ तेजोलेश्या, ५ पद्मलेश्या, ६ शुक्ल-लेश्या (४८) ।

---

१ उत्तराध्ययन सूत्र २६ गा २५ ।

४९—एव मणुस्स देवाण वि।

इसी प्रकार मनुष्यों और देवों के भी छह-छह लेश्याएँ जाननी चाहिए (४९)।

अग्रमहिषी-सूत्र

५०—सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

देवराज देवेन्द्र शक्र के लोकपाल सोम महाराज की छह अग्रमहिषियाँ कही गई हैं (५०)।

५१—सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

देवराज देवेन्द्र शक्र के लोकपाल यम महाराज की छह अग्रमहिषिया कही गई है (५१)।

स्थिति सूत्र

५२—ईसाणस्स ण देविंदस्स [देवरण्णो ?] मज्झिमपरिसाए देवाण छ पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता।

देवराज देवेन्द्र ईशान की मध्यम परिषद के देवों की स्थिति छह पल्योपम कही गई है (५२)।

महत्तरिका सूत्र

५३—छ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—रूया, रूयसा, सुरूवा, रूयवती, रूयकता, रूयप्पभा।

दिक्कुमारियों की छह महत्तरिकाएँ कही गई हैं। जैसे—
१ रूपा, २ रूपांशा, ३ सुरूपा, ४ रूपवती, ५ रूपकान्ता, ६ रूपप्रभा (५३)।

५४—छ विज्जुकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—अला, सक्का, सतेरा, सोतामणी इदा, घणविज्जुया।

विद्युत्कुमारियों की छह महत्तरिकाएँ कही गई हैं। जैसे—
१ अला, २ शक्रा, ३ शतेरा, ४ सौदामिनी, ५ इन्द्रा, ६ घनविद्युत् (५४)।

अग्रमहिषी-सूत्र

५५—धरणस्स ण णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—अला, सक्का, सतेरा, सोतामणी, इदा, घणविज्जुया।

नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण की छह अग्रमहिषियाँ कही गई हैं। जसे—
१ अला (आला), २ शक्रा, ३ शतेरा ४ सौदामिनी, ५ इन्द्रा, ६ घनविद्युत (५५)।

५६—भूताणदस्स ण णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—रूया, रूयसा, सुरूवा, रूयवती, रूयकता, रूयप्पभा।

नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र भूतानन्द की छह अग्रमहिषियाँ कही गई हैं। जसे—
१ रूपा, २ रूपांशा, ३ सुरूपा, ४ रूपवती, ५ रूपकान्ता, ६ रूपप्रभा (५६)।

५७—जहा धरणस्स तहा सव्वेसिं दाहिणिल्लाण जाव घोसस्स ।

जिस प्रकार धरण की छह अग्रमहिषियां कही गई हैं, उसी प्रकार भवनपति इन्द्र वेणुदेव, हरिकान्त, अग्निशिख, पूर्ण, जलकान्त अमितगति, वेलम्ब और घोष इन सभी दक्षिणेन्द्रों की छह-छह अग्रमहिषियाँ जाननी चाहिए (५७)।

५८—जहा भूताणदस्स तहा सव्वेसिं उत्तरिल्लाण जाव महाघोसस्स ।

जिस प्रकार भूतानन्द की छह अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, उसी प्रकार भवनपति इन्द्र वेणुदालि, हरिस्सह अग्निमानव, विशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभजन और महाघोष इन सभी उत्तरेन्द्रों की छह-छह अग्रमहिषियां जाननी चाहिए (५८)।

सामानिक-सूत्र

५९—धरणस्स ण णागकुमारिदस्स णागकुमाररण्णो छस्सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ।

नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के छह हजार सामानिक देव कहे गये ह (५९)।

६०—एव भूताणदस्सवि जाव महाघोसस्स ।

इसी प्रकार नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र भूतानन्द, वेणुदालि, हरिस्सह, अग्निमानव, विशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभजन और महाघोष के भी भूतानन्द के समान छह-छह हजार सामानिक देव जानना चाहिए (६०)।

मति-सूत्र

६१—छव्विहा ओग्गहमती पण्णत्ता, त जहा—खिप्पमोगिण्हति, बहुमोगिण्हति बहुविध-मोगिण्हति, धुवमोगिण्हति, अणिस्सियमोगिण्हति, असदिद्धमोगिण्हति ।

अवग्रहमति के छह भेद कहे गये ह । जसे—

१ क्षिप्र-अवग्रहमति—शख आदि क शब्द को शीघ्र ग्रहण करने वाली मति ।
२ बहु अवग्रहमति—शख आदि अनेक प्रकार के शब्दो आदि को ग्रहण करने वाली मति ।
३ बहुविध-अवग्रहमति—बहुत प्रकार के वाजो के अनेक प्रकार के शब्दो आदि को ग्रहण करने वाली मति ।
४ ध्रुव-अवग्रहमति—एक बार ग्रहण की हुई वस्तु पुन ग्रहण करने पर उसी प्रकार से जानने वाली मति ।
५ अनिश्रित अवग्रह-मति—किसी लिंग चिह्न का आश्रय लिए विना जानने वाली मति ।
६ असदिग्ध-अवग्रहमति—सन्देह-रहित सामान्य रूप से ग्रहण करने वाली मति (६१)।

६२—छव्विहा ईहामती पण्णत्ता, त जहा—खिप्पमीहति, बहुमीहति, (बहुविधमीहति, धुवमीहति, अणिस्सियमीहति), असदिद्धमीहति ।

ईहामति (अवग्रह से जाने हुए पदार्थ के विशेष जानने की इच्छा) छह प्रकार की कही गई है । जैसे—

१ क्षिप्र ईहामति—क्षिप्रावग्रह से गृहीत वस्तु की विशेष जिज्ञासावाली मति।
२ वहु-ईहामति—बहु अवग्रह से गृहीत वस्तु की विशेष जिज्ञासावाली मति।
३ वहुविध-ईहामति—बहुविध अवग्रह से गृहीत वस्तु की विशेष जिज्ञासावाली मति।
४ ध्रुव-ईहामति—ध्रुवावग्रह से गृहीत वस्तु की विशेष जिज्ञासावाली मति।
५ अनिश्रित ईहामति—अनिश्रितावग्रह से गृहीत वस्तु की विशेष जिज्ञासावाली मति।
६ असंदिग्ध-ईहामति—असंदिग्धावग्रह से गृहीत वस्तु की विशेष जिज्ञासावाली मति(६२)।

६३—छव्विधा अवायमती पण्णत्ता, तं जहा—खिप्पमवेति, (बहुमवेति, बहुविधमवेति, धुवमवेति, अणिस्सियमवेति), असदिद्धमवेति।

अवाय-मति छह प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ क्षिप्रावाय-मति—क्षिप्र ईहा के विषयभूत पदार्थ का निश्चय करने वाली मति।
२ बहु-अवायमति—बहु-ईहा के विषयभूत पदार्थ का निश्चय करने वाली मति।
३ बहुविध-अवायमति—बहुविध ईहा के विषयभूत पदार्थ का निश्चय करने वाली मति।
४ ध्रुव-अवायमति—ध्रुव-ईहा के विषयभूत पदार्थ का निश्चय करने वाली मति।
५ अनिश्रित अवायमति—अनिश्रित ईहा के विषयभूत पदार्थ का निश्चय करने वाली मति,
६ असन्दिग्ध अवायमति—असन्दिग्ध ईहा के विषयभूत पदार्थ का निश्चय करने वाली मति (६३)।

६४—छव्विहा धारणा [मती ?] पण्णत्ता, तं जहा—बहुं धरेति, बहुविहं धरेति, पोराणं धरेति, दुद्धरं धरेति, अणिस्सितं धरेति, असंदिद्धं धरेति।

धारणा (कालान्तर में याद रखने वाली) मति छह प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ बहु धारणामति—बहु अवाय से निर्णीत पदार्थ की धारणा रखने वाली मति।
२ बहुविध धारणामति—बहुविध अवाय से निर्णीत पदार्थ की धारणा रखने वाली मति।
३ पुराण धारणामति—पुराने पदार्थ की धारणा रखने वाली मति।
४ दुर्धर-धारणामति—दुर्धर-गहन पदार्थ की धारणा रखने वाली मति।
५ अनिश्रित धारणामति—अनिश्रित अवाय से निर्णीत पदार्थ की धारणा रखने वाली मति।
६ असंदिग्ध-धारणामति—असंदिग्ध अवाय से निर्णीत पदार्थ की धारणा रखने वाली मति (६४)।

तप सूत्र

६५—छव्विहे बाहिरए तवे पण्णत्ते, तं जहा—अणसणं, ओमोदरिया, भिक्खायरिया, रस-परिच्चाए, कायक्लिसो, पडिसंलीणता।

बाह्य तप छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ अनशन, २ अवमोदरिका, ३ भिक्षाचर्या, ४ रसपरित्याग, ५ कायक्लेश,
६ प्रतिसंलीनता (६५)।

६६—छव्विहे अब्भतरिए तवे पण्णत्ते, त जहा—पायच्छित्त, विणग्रो, वेयावच्च, सज्झाग्रो, झाण, विउस्सग्गो ।

आभ्यन्तर तप छह प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ प्रायश्चित्त २ विनय, ३ वैयावृत्य, ४ स्वाध्याय, ५ ध्यान, ६ व्युत्सर्ग (६६) ।

विवाद सूत्र

६७—छव्विहे विवादे पण्णत्ते, त जहा—ग्रोसक्कइत्ता, उस्सक्कइत्ता, अणुलोमइत्ता पडिलोमइत्ता, भइत्ता, भेलइत्ता ।

विवाद-शास्त्रार्थ छह प्रकार का कहा गया है । जसे—

१ ग्रासक्कइत्ता—वादी के तर्क का उत्तर ध्यान मे न ग्राने पर समय विताने के लिए प्रकृत विषय से हट जाना ।

२ उस्सक्कइत्ता—शास्त्रार्थ की पूर्ण तयारी होते ही वादी को पराजित करने के लिए आगे ग्राना ।

३ अनुलोमइत्ता—विवादाध्यक्ष को अपने अनुकूल बना लेना, अथवा प्रतिवादी के पक्ष का एक वार समर्थन कर उसे अपने अनुकूल कर लेना ।

४ पडिलोमइत्ता—शास्त्रार्थ की पूर्ण तैयारी होने पर विवादाध्यक्ष तथा प्रतिपक्षी की उपेक्षा कर देना ।

५ भइत्ता—विवादाध्यक्ष की सेवा कर उसे अपने पक्ष मे कर लेना ।

६ भेलइत्ता—निर्णायकों मे अपने समर्थकों का बहुमत कर लेना (६७) ।

विवेचन—वाद विवाद या शास्त्रार्थ के मूल मे चार अग होते है—वादी—पूर्वपक्ष स्थापन करने वाला, प्रतिवादी—वादी के पक्षका निराकारण कर अपना पक्ष सिद्ध करने वाला, अध्यक्ष—वादी-प्रतिवादी के द्वारा मनोनीत और वाद-विवाद के समय कलह न होने देकर शान्ति कायम रखने वाला, और सभ्य-निर्णायक । किन्तु यहाँ पर वास्तविक या यथार्थ शास्त्रार्थ से हट करके प्रतिवादी को हराने की भावना से उसके छह भेद किये गये हैं, यह उक्त छहों भेदो के स्वरूप से ही सिद्ध है कि जिस किसी भी प्रकार से वादी को हराना ही अभीष्ट है । जिस विवाद मे वादी को हराने की ही भावना रहती है वह शास्त्रार्थ तत्त्व-निर्णायक न हो कर विजिगीषु वाद कहलाता है ।

क्षुद्रप्राण सूत्र

६८—छव्विहा खुड्डा पाणा पण्णत्ता, त जहा—बेंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, समुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणिया, तेउकाइया, वाउकाइया ।

क्षुद्र प्राणी छह प्रकार के कहे गये है । जसे—

१ द्वीन्द्रिय, २ त्रीन्द्रिय, ३ चतुरिन्द्रिय, ४ सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रियतिर्यग्योनिक, ५ तेजस्कायिक, ६ वायुकायिक (६८) ।

गोचरचर्या-सूत्र

६९—छव्विहा गोयरचरिया पण्णत्ता, त जहा—पेडा, अद्धपेडा, गोमुत्तिया, पतगवीहिया, सबुक्कावट्टा, गतुपच्चागता ।

गोचर-चर्या छह प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ पटा—गाँव के चार विभाग करके गोचरी करना।
२ अर्धपटा—गाव के दो विभाग करके गोचरी करना।
३ गामूत्रिका—घरो की आमने-सामने वाली दो पंक्तियों मे इधर से उधर आते जाते गोचरी करना।
४ पतगवीथिका—पतंगा की उडान के समान बिना क्रम के एक घर मे गोचरी लेकर एकदम दूरवर्ती घर से गोचरी लेना।
५ शम्बूकावर्त्ता—शख के आवर्त (गोलाकार) के समान घरो का क्रम बनाकर गोचरी लेना।
६ गत्वा प्रत्यागता—प्रथम पक्ति के घरो मे क्रम से आद्योपान्त गोचरी करके द्वितीय पक्ति के घरो म क्रमश गोचरी करते हुए वापिस आना (६९)।

महानरक-सूत्र

७०—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणे ण इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए छ अवक्कत-महाणिरया पण्णत्ता, त जहा—लोले, लोलुए, उद्दड्ढे, णिद्दड्ढे, जरए, पज्जरए।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप म मन्दर पर्वत के दक्षिण भाग मे इस रत्नप्रभा पृथ्वी मे छह अपक्रान्त (अतिनिकृष्ट) महानरक कहे गये है। जैसे—

१ लोल, २ लोलुप, ३ उद्दग्ध, ४ निर्दग्ध, ५ जरक, ६ प्रजरक (७०)।

७१—चउत्थीए ण पकप्पभाए पुढवीए छ अवक्कतमहाणिरया पण्णत्ता, त जहा—आरे, वारे, मारे, रोरे, रोरुए, खाडखडे।

चौथी पकप्रभा पृथ्वी मे छह अपक्रान्त महानरक कहे गये है। जैसे—

१ आर, २ वार, ३ मार, ४ रोर, ५ रोरुक, ६ खाडखड (७१)।

विमान प्रस्तट सूत्र

७२—बभलोगे ण कप्पे छ विमाण पत्थडा पण्णत्ता, त जहा—अरए, विरए, णीरए, णिम्मले, वितिमिरे विसुद्धे।

ब्रह्मलोक कल्प म छह विमान प्रस्तट कहे गये है। जैसे—

१ अरजस्, २ विरजस्, ३ नीरजस्, ४ निर्मल, ५ वितिमिर, ६ विशुद्ध।

नक्षत्र-सूत्र

७३—चदस्स ण जोतिसिदस्स जोतिसरण्णो छ णक्खत्ता पुव्वभागा समखेत्ता तीसतिमुहुत्ता पण्णत्ता, त जहा—पुव्वाभद्दवया, कत्तिया, महा पुव्वफग्गुणी, मूलो, पुव्वासाढा।

ज्योतिष्कराज, ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र के पूर्वभागी, समक्षेत्री और तीस मुहूर्त तक भोग करने वाले छह नक्षत्र कहे गये हैं। जैसे—

१ पूर्वभाद्रपद, २ कृत्तिका, ३ मघा, ४ पूर्वफाल्गुनी, ५ मूल, ६ पूर्वाषाढा (७३)।

७४—चंदस्स णं जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो छ णक्खत्ता णत्तंभागा अवड्ढक्खेत्ता पण्णरस-मुहुत्ता पण्णत्ता, तं जहा—सयभिसया, भरणी, भद्दा, अस्सेसा, साती, जेट्ठा।

ज्योतिष्कराज, ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र के अपार्धक्षेत्री नक्तभागी (रात्रिभोगी) पन्द्रह मुहूर्त तक भोग करने वाले छह नक्षत्र कहे गये हैं। जैसे—

१ शतभिषक्, २ भरणी, ३ भद्रा, ४ आश्लेषा, ५ स्वाति, ६ ज्येष्ठा (७४)।

७५—चंदस्स णं जोइसिंदस्स जोतिसरण्णो छ णक्खत्ता उभयभागा दिवड्ढखेत्ता पणयालीस-मुहुत्ता पण्णत्ता, तं जहा—रोहिणी, पुणव्वसू, उत्तराफग्गुणी, विसाहा, उत्तरासाढा, उत्तराभद्दवया।

ज्योतिष्कराज, ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र के उभययोगी द्व्यर्धयोगी और पैंतालीस मुहूर्त तक भोग करने वाले छह नक्षत्र कहे गये हैं। जैसे—

१ रोहिणी, २ पुनर्वसु, ३ उत्तरफाल्गुनी, ४ विशाखा, ५ उत्तराषाढा, ६ उत्तराभाद्रपद। (७५)।

इतिहास सूत्र

७६—अभिचंदे णं कुलकरे छ धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं हुत्था।

अभिचन्द्र कुलकर छह सौ धनुष ऊँचे शरीर वाले थे (७६)।

७७—भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी छ पुव्वसतसहस्साइं महाराया हुत्था।

चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा छह लाख पूर्वों तक महाराज पद पर रहे (७७)।

७८—पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणियस्स छ सता वादीणं सदेवमणुयासुराए परिसाए अपरा-जियाणं सपया होत्था।

पुरुषादानीय (पुरुषप्रिय) अर्हत् पार्श्व के देवों, मनुष्यों और असुरों की सभा में छह सौ अपराजित वादी मुनियों की सम्पदा थी (७८)।

७९—वासुपुज्जे णं अरहा छहिं पुरिससतेहिं सद्धिं मुंडे (भवित्ता अगाराओ अणगारियं) पव्वइए।

वासुपूज्य अर्हन् छह सौ पुरुषों के साथ मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए थे (७९)।

८०—चंदप्पभे णं अरहा छम्मासे छउमत्थे हुत्था।

चन्द्रप्रभ अर्हन् छह मास तक छद्मस्थ रहे (८०)।

संयम-असंयम-सूत्र

८१—तेइंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स छव्विहे संजमे कज्जति, तं जहा—घाणामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति। घाणामएणं दुक्खेणं असंजोएत्ता भवति। जिब्भामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति, (जिब्भामएणं दुक्खेणं असंजोएत्ता भवति। फासामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति। फासामएणं दुक्खेणं असंजोएत्ता भवति)।

त्रीन्द्रिय जीवों का घात न करने वाले पुरुष को छह प्रकार का संयम प्राप्त होता है। जैसे—
१ घ्राण-जनित सुख का वियोग नहीं करने से।
२ घ्राण जनित-दुःख का संयोग नहीं करने से।
३ रस जनित सुख का वियोग नहीं करने से।
४ रस-जनित दुःख का संयोग नहीं करने से।
५ स्पर्श जनित सुख का वियोग नहीं करने से।
६ स्पर्श-जनित दुःख का संयोग नहीं करने से (८१)।

८२—तेइंदिया णं जीवा समारभमाणस्स छव्विहे असंजमे कज्जति, तं जहा—घाणामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति। घाणामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। (जिब्भामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति। जिब्भामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। फासामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति) फासामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।

त्रीन्द्रिय जीवों का घात करने वाले के छह प्रकार का असंयम होता है। जैसे—
१ घ्राण-जनित सुख का वियोग करने से।
२ घ्राण-जनित दुःख का संयोग करने से।
३ रस-जनित दुःख का वियोग करने से।
४ रस-जनित दुःख का संयोग करने से।
५ स्पर्श-जनित सुख का वियोग करने से।
६ स्पर्श-जनित दुःख का संयोग करने से (८२)।

क्षेत्र पर्वत-सूत्र

८३—जंबुद्दीवे दीवे छ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—हेमवते, हेरण्णवते, हरिवासे, रम्मगवासे, देवकुरा, उत्तरकुरा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में छह अकर्मभूमियां कही गई हैं। जैसे—
१ हैमवत, २ हैरण्यवत, ३ हरिवर्ष, ४ रम्यकवर्ष, ५ देवकुरु, ६ उत्तरकुरु (८३)।

८४—जंबुद्दीवे दीवे छव्वासा पण्णत्ता, तं जहा—भरहे, एरवते, हेमवते, हेरण्णवए, हरिवासे, रम्मगवासे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में छह वर्ष (क्षेत्र) कहे गये हैं। जैसे—
१ भरत, २ ऐरवत, ३ हैमवत, ४ हैरण्यवत, ५ हरिवर्ष, ६ रम्यकवर्ष (८४)।

८५—जंबुद्दीवे दीवे छ वासहरपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—चुल्लहिमवंते, महाहिमवंते, णिसढे, णीलवंते, रुप्पी, सिहरी।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में छह वर्षधर पर्वत कहे गये हैं। जैसे—
१ क्षुद्र हिमवान्, २ महाहिमवान्, ३ निषध, ४ नीलवान्, ५ रुक्मी, ६ शिखरी (८५)।

८६—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं छ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—चुल्लहिमवंत-कूडे, वेसमणकूडे, महाहिमवंतकूडे, वेरुलियकूडे, णिसढकूडे, रुयगकूडे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण भाग में छह कूट कहे गये हैं। जैसे—
१ क्षुद्र हिमवत्कूट, २ वैश्रमण कूट, ३ महाहिमवत्कूट, ४ वैडूर्यकूट, ६ रुचककूट (८६)।

८७—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं छ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—णीलवंतकूडे, उवदंसणकूडे, रुप्पिकूडे, मणिकंचणकूडे, सिहरिकूडे, तिगिंछिकूडे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर भाग में छह कूट कहे गये हैं। जैसे—
१ नीलवत्कूट, २ उपदर्शनकूट, ३ रुक्मिकूट, ४ मणिकांचनकूट, ५ शिखरी कूट, ६ तिगिंछिकूट (८७)।

महाद्रह-सूत्र

८८—जंबुद्दीवे दीवे छ महद्दहा पण्णत्ता, तं जहा—पउमद्दहे, महापउमद्दहे, तिगिंछिद्दहे, केसरिद्दहे, महापोंडरीयद्दहे, पुंडरीयद्दहे।

तत्थ णं छ देवयाओ महिड्ढियाओ जाव पलिओवमट्ठितियाओ परिवसंति, तं जहा—सिरी, हिरी, धिती, कित्ती, बुद्धी, लच्छी।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में छह महाद्रह कहे गये हैं। जैसे—
१ पद्मद्रह २ महापद्मद्रह, ३ तिगिञ्छिद्रह, ४ केसरी द्रह ५ महापुण्डरीक द्रह, ६ पुण्डरीक द्रह (८८)।

उनमें महर्धिक, महाद्युति, महाशक्ति, महायश, महाबल, महासुख वाली तथा पल्योपम की स्थिति वाली छह देवियां निवास करती हैं जैसे—
१ श्री देवी, २ ह्री देवी ३ धृति देवी, ४ कीर्ति देवी ५ बुद्धि देवी, ६ लक्ष्मी देवी।

नदी-सूत्र

८९—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं छ महाणदीओ पण्णत्ताओ तं जहा—गंगा, सिंधू, रोहिया, रोहितंसा, हरी, हरिकंता।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण भाग में छह महानदियां कही गई हैं। जैसे—
१ गंगा, २ सिन्धु, ३ रोहिता, ४ रोहितांशा, ५ हरित्, ६ हरिकान्ता (८९)।

९०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं छ महाणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—णरकंता, णारिकंता, सुवण्णकूला, रुप्पकूला, रत्ता, रत्तवती।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर भाग में छह महानदियां कही गई हैं। जैसे—
१ नरकान्ता, नारीकान्ता, ३ सुवर्ण कूला, ४ रूप्य कूला ५ रक्ता, ६ रक्तवती (९०)।

९१—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए उभयकूले छ अंतरणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—गाहावती, दहवती, पंकवती, तत्तजला, मत्तजला, उम्मत्तजला।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के पूर्व भाग मे सीता महानदी के दोनों कूला मे मिलने वाली छह अन्तनदियाँ कही गई हैं। जैसे—

१ ग्राहवती, २ द्रहवती, ४ पंकवती, ३ तप्तजला, ५ मत्तजला, ६ उन्मत्तजला (९१)।

९२—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोदाए महाणदीए उभयकूले छ अंतरणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—खीरोदा, सीहसोता, अंतोवाहिणी, उम्मिमालिणी, फेणमालिणी, गंभीरमालिणी।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के पश्चिम भाग मे सीतोदा महानदी के दोनो कूला मे मिलने वाली छह अन्तनदियाँ कही गई हैं। जैसे—

१ क्षीरोदा, २ सिंहस्रोता, ३ अन्तर्वाहिनी, ४ ऊर्मिमालिनी, ५ फेनमालिनी
६ गम्भीरमालिनी (९२)।

धातकीषण्ड-पुष्करवर सूत्र

९३—धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं छ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—हेमवए, (हेरण्णवते, हरिवासे, रम्मगवासे, देवकुरा, उत्तरकुरा)।

धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में छह अकर्मभूमियाँ कही गई हैं। जैसे—
१ हैमवत, २ हैरण्यवत, ३ हरिवर्ष, ४ रम्यकवर्ष, ५ देवकुरु, ६ उत्तरकुरु (९३)।

९४—एवं जहा जंबुद्दीवे दीवे जाव अंतरणदीओ जाव पुक्खरवरदीवद्धपच्चत्थिमद्धे भाणितव्वं।

इसी प्रकार जैसे जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे वर्ष, वर्षधर, आदि से लेकर अन्तनदी तक का वर्णन किया गया है वैसा ही धातकीषण्ड द्वीप में भी जानना चाहिए।

इसी प्रकार धातकीषण्ड द्वीप के पश्चिमार्ध मे तथा पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध मे भी जम्बूद्वीप के समान सर्व वर्णन जानना चाहिए (९४)।

ऋतु-सूत्र

९५—छ उदू पण्णत्ता, तं जहा—पाउसे, वरिसारत्ते, सरए, हेमंते, वसंते, गिम्हे।

ऋतुएँ छह कही गई हैं। जैसे—
१ प्रावृट् ऋतु—आषाढ और श्रावण मास।
२ वर्षा ऋतु—भाद्रपद और आश्विन मास।
३ शरद् ऋतु—कार्तिक और मृगशिर मास।
४ हेमन्त ऋतु—पौष और माघ मास।
५ वसन्त ऋतु—फाल्गुन और चैत्र मास।
६ ग्रीष्म ऋतु—वैशाख और ज्येष्ठ मास (९५)।

अवमरात्र-सूत्र

९६— छ ओमरत्ता पण्णत्ता, त जहा—ततिए पव्वे, सत्तमे पव्वे, एक्कारसमे पव्वे, पण्णरसमे पव्वे, एगूणवीसइमे पव्वे, तेवीसइमे पव्वे ।

छह अवमरात्र (तिथि-क्षय) कहे गये हैं । जसे—

१ तीसरा पव—आषाढ कृष्णपक्ष मे ।
२ सातवा पव—भाद्रपद कृष्णपक्ष म ।
३ ग्यारहवा पव—कार्तिक कृष्णपक्ष मे ।
४ पन्द्रहवा पव—पौष कृष्णपक्ष मे ।
५ उन्नीसवा पव—फाल्गुन कृष्णपक्ष मे ।
६ तेईसवा पव—वशाख कृष्णपक्ष मे । (९६)

अतिरात्र सूत्र

९७—छ अतिरत्ता पण्णत्ता त जहा—चउत्थे पव्वे, अट्ठमे पव्वे, दुवालसमे पव्वे, सोलसमे पव्वे, वीसइमे पव्वे, चउवीसइमे पव्वे ।

छह अतिरात्र (तिथिवृद्धि वाल पव) कहे गये है । जैसे—

१ चौथा पव—आषाढ शुक्लपक्ष मे ।
२ आठवां पव—भाद्रपद शुक्लपक्ष मे ।
२ बारहवा पव—कार्तिक शुक्लपक्ष मे ।
४ सोलहवा पव—पौष शुक्लपक्ष मे ।
५ बीसवां पव—फाल्गुन शुक्ल पक्ष म ।
६ चौबीसवा पव—वैशाख शुक्लपक्ष मे ।

अर्थावग्रह-सूत्र

९८—आभिणिबोहियणाणस्स ण छव्विहे अत्थग्गहे पण्णत्ते, त जहा—सोइंदियत्थोग्गहे, (चक्खिदियत्थोग्गहे, घाणिदियत्थोग्गहे, जिब्भिदियत्थोग्गहे, फासिदियत्थोग्गहे), णोइंदियत्थोग्गहे ।

आभिनिबोधिक (मतिज्ञान) ज्ञान का अर्थावग्रह छह प्रकार का कहा गया है । जसे—

१ श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह २ चक्षुरिन्द्रिय-अर्थावग्रह ३ घ्राणेन्द्रिय-अर्थावग्रह,
४ रसनेन्द्रिय-अर्थावग्रह, ५ स्पर्शनेन्द्रिय-अर्थावग्रह, ६ नोइन्द्रिय अर्थावग्रह ।

विवेचन—अवग्रह के दो भेद हैं—व्यजनावग्रह और अर्थावग्रह । उपकरणेन्द्रिय और शब्दादि ग्राह्य विषय के सबध को, व्यजन कहते हैं । दोनो का सबध होने पर अव्यक्त ज्ञान की किंचित् मात्रा उत्पन्न होती है । उसे व्यजनावग्रह कहते हैं । यह चक्षु और मन से न होकर चार इन्द्रियों द्वारा ही होता है क्योकि चार इन्द्रियो का ही अपने विषय के साथ सयोग होता है—चक्षु और मन का नही । अतएव व्यजनावग्रह के चार प्रकार हैं । इसका काल असख्यात समय है । व्यजनावग्रह के पश्चात् अर्थावग्रह उत्पन्न होता है । उसका काल एक समय है । वह वस्तु के सामान्य धर्म को जानता है । इसके छह भेद यहाँ प्रतिपादित किए गए हैं ।

अवधिज्ञान सूत्र

९९—छव्विहे ओहिणाणे पण्णत्ते, तं जहा—आणुगामिए, अणाणुगामिए, वड्ढमाणए, हायमाणए, पडिवाती, अपडिवाती।

अवधिज्ञान छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ आनुगामिक, २ अनानुगामिक, ३ वर्धमान, ४ हीयमान, ५ प्रतिपाती, ६ अप्रतिपाती।

विवेचन—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अवधि, सीमा या मर्यादा को लिए हुए रूपी पदार्थों को इन्द्रियों और मन की सहायता के बिना जानने वाले ज्ञान को अवधिज्ञान कहते हैं। इसके छह भेद प्रस्तुत सूत्र में बताये गये हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—

१ आनुगामिक—जो ज्ञान नेत्र की तरह अपने स्वामी का अनुगमन करता है, अर्थात् स्वामी (अवधिज्ञानी) जहां भी जावे उसके साथ रहता है, उसे आनुगामिक अवधिज्ञान कहते हैं। इस ज्ञान का स्वामी जहाँ भी जाता है, वह अवधिज्ञान के विषयभूत पदार्थों को जानता है।

२ अनानुगामिक—जो ज्ञान अपने स्वामी का अनुगमन नहीं करता, किन्तु जिस स्थान पर उत्पन्न होता है, उसी स्थान पर स्वामी के रहने पर अपने विषयभूत पदार्थों को जानता है, उसे अनानुगामिक अवधिज्ञान कहते हैं।

३ वर्धमान—जो अवधिज्ञान उत्पन्न होने के बाद विशुद्धि की वृद्धि से बढ़ता रहता है, वह वर्धमान कहलाता है।

४ हीयमान—जो अवधिज्ञान जितने क्षेत्र को जानने वाला उत्पन्न होता है उसके पश्चात् संक्लेश की वृद्धि से उत्तरोत्तर घटता जाता है, वह हीयमान कहलाता है।

५ प्रतिपाती—जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है, वह प्रतिपाती कहलाता है।

६ जो अवधिज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् नष्ट नहीं होता, केवलज्ञान की प्राप्ति तक विद्यमान रहता है वह अप्रतिपाती कहलाता है (९९)।

अवचन सूत्र

१००—णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा इमाइं छ अवयणाइं वदित्तए, तं जहा—अलियवयणे, हीलियवयणे, खिंसितवयणे, फरुसवयणे, गारत्थियवयणे, विउसवितं वा पुणो उदीरित्तए।

निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को ये छह अवचन (गर्हित वचन) बोलना नहीं कल्पता है। जैसे—

१ अलीक वचन—असत्यवचन। २ हीलितवचन—अवहेलनायुक्त वचन।

३ खिंसितवचन—मर्मवेधी वचन। ४ परुषवचन—कठोर वचन।

५ अगारस्थितवचन—गृहस्थावस्था के सम्बन्ध सूचक वचन।

६ व्यवशमित उदीरकवचन—उपशान्त कलह को उभाडने वाला वचन (१००)।

कल्प प्रस्तार सूत्र

१०१—छ कप्पस्स पत्थारा पण्णत्ता, तं जहा—पाणातिवायस्स वायं वयमाणे, मुसावायस्स वायं वयमाणे, अदिण्णादाणस्स वायं वयमाणे, अविरतिवायं वयमाणे, अपुरिसवायं वयमाणे, दासवायं वयमाणे—इच्चेते छ कप्पस्स पत्थारे पत्थारेत्ता सम्ममपडिपूरेमाणे तट्ठाणपत्ते।

कल्प (साधु-आचार) के छह प्रस्तार (प्रायश्चित्त-रचना के विकल्प) कहे गये हैं। जैसे—

१ प्राणातिपात सम्बन्धी आरोपात्मक वचन बोलने वाला।

२ मृषावाद सम्बन्धी आरोपात्मक वचन बोलने वाला।

३ अदत्तादान-सम्बन्धी आरोपात्मक वचन बोलने वाला।

४ अब्रह्मचर्य-सम्बन्धी आरोपात्मक वचन बोलने वाला।

५ पुरुषत्व-हीनता के आरोपात्मक वचन बोलने वाला।

६ दास होने का आरोपात्मक वचन बोलने वाला (१०१)।

कल्प के इन छह प्रस्तारों को स्थापित कर यदि कोई साधु उन्हें सम्यक् प्रकार से प्रमाणित न कर सके तो वह उस स्थान को प्राप्त होता है अर्थात् आरोपित दोष के प्रायश्चित्त का भागी होता है (१०१)।

विवेचन—साधु के आचार को कल्प कहा जाता है। प्रायश्चित्त की उत्तरोत्तर वृद्धि को प्रस्तार कहते हैं। प्राणातिपात विरमण आदि के सम्बन्ध में कोई साधु किसी साधु को झूठा दोष लगावे कि तुमने यह पाप किया है, वह गुरु के सामने यदि सिद्ध नहीं कर पाता है, तो वह प्रायश्चित्त का भागी होता है। पुन वह अपने कथन को सिद्ध करने के लिए ज्यों-ज्यों असत् प्रयत्न करता है, त्यों-त्यों वह उत्तरोत्तर अधिक प्रायश्चित्त का भागी होता जाता है। संस्कृत टीकाकार ने इसे एक दृष्टान्त पूर्वक इस प्रकार से स्पष्ट किया है—

छोटे-बड़े दो साधु गोचरी के लिए नगर में जा रहे थे। मार्ग में किसी मरे हुए मेंढक पर बड़े साधु का पैर पड़ गया। छोटे साधु ने आरोप लगाते हुए कहा—आपने इस मेंढक को मार डाला। बड़े साधु ने कहा—नहीं, मैंने नहीं मारा है। तब छोटा साधु बोला—आप झूठ कहते हैं, अत आप मृषाभाषी भी हैं। इसी प्रकार दोषारोपण करते हुए वह गोचरी से लौट कर गुरु के समीप आता है। उसके इस प्रकार दोषारोपण करने पर उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह पहला प्रायश्चित्तस्थान है।

जब वह छोटा साधु गुरु से कहता है कि इन बड़े साधु ने मेंढक को मारा है, तब उसे गुरु मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह दूसरा प्रायश्चित्त स्थान है।

छोटे साधु के उक्त दोषारोपण करने पर गुरु ने बड़े साधु से पूछा—क्या तुमने मेंढक को मारा है? वह कहता है—नहीं! तब आरोप लगाने वाले को चतुर्लघु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह तीसरा प्रायश्चित्तस्थान है।

छोटा साधु पुन अपनी बात को दोहराता है और बड़ा साधु पुन यही कहता है कि मैंने मेंढक को नहीं मारा है। तब उसे चतुर्गुरु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह चौथा प्रायश्चित्त-स्थान है।

छोटा साधु गुरु से कहता है—यदि आपको मेरे कथन पर विश्वास न हो तो आप गृहस्थों से पूछ लें। गुरु अन्य विश्वस्त साधुओं को भेजकर पूछताछ कराते हैं। तब उस छोटे साधु को षट् लघु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह पाँचवाँ प्रायश्चित्तस्थान है।

उन भेजे गये साधुओं के पूछने पर गृहस्थ कहते हैं कि हमने उस साधु को मेंढक मारते नहीं देखा है, तब छोटे साधु को षड्गुरु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह छठा प्रायश्चित्तस्थान है।

अवधिज्ञान सूत्र

९९—छव्विहे ओहिणाणे पण्णत्ते, त जहा—आणुगामिए, अणाणुगामिए, वड्ढमाणए, हायमाणए, पडिवाती, अपडिवाती ।

अवधिज्ञान छह प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ आनुगामिक, २ अनानुगामिक, ३ वर्धमान, ४ हीयमान, ५ प्रतिपाती, ६ अप्रतिपाती ।

विवेचन—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अवधि, सीमा या मर्यादा को लिए हुए रूपी पदार्थों को इन्द्रिया और मन की सहायता के बिना जानने वाले ज्ञान को अवधिज्ञान कहते हैं । इसके छह भेद प्रस्तुत सूत्र मे बताये गये है । उनका विवरण इस प्रकार है—

१ आनुगामिक—जो ज्ञान नेत्र की तरह अपने स्वामी का अनुगमन करता है, अर्थात् स्वामी (अवधिज्ञानी) जहाँ भी जावे उसके साथ रहता है, उसे आनुगामिक अवधिज्ञान कहते हैं । इस ज्ञान का स्वामी जहाँ भी जाता है, वह अवधिज्ञान के विषयभूत पदार्थों को जानता है ।

२ अनानुगामिक—जो ज्ञान अपने स्वामी का अनुगमन नहीं करता, किन्तु जिस स्थान पर उत्पन्न होता है, उसी स्थान पर स्वामी के रहने पर अपने विषयभूत पदार्थों को जानता है, उसे अनानुगामिक अवधिज्ञान कहते हैं ।

३ वर्धमान—जो अवधिज्ञान उत्पन्न होने के बाद विशुद्धि की वृद्धि से बढ़ता रहता है, वह वर्धमान कहलाता है ।

४ हीयमान—जो अवधिज्ञान जितने क्षेत्र को जानने वाला उत्पन्न होता है उसके पश्चात् सक्लेश की वृद्धि से उत्तरोत्तर घटता जाता है, वह हीयमान कहलाता है ।

५ प्रतिपाती—जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है, वह प्रतिपाती कहलाता है ।

६ जो अवधिज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात नष्ट नहीं होता, केवलज्ञान की प्राप्ति तक विद्यमान रहता है वह अप्रतिपाती कहलाता है (९९) ।

अवचन सूत्र

१००—णो कप्पइ णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा इमाइ छ अवयणाइ वदित्तए, त जहा—अलियवयणे, हीलियवयणे, खिसितवयणे, फरुसवयणे, गारत्थियवयणे, विउसवित वा पुणो उदीरित्तए ।

निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो को ये छह अवचन (गर्हित वचन) बोलना नही कल्पता है । जैसे—

१ अलीक वचन—असत्यवचन । २ हीलितवचन—अवहेलनायुक्त वचन ।

३ खिसितवचन—मर्मवेधी वचन । ४ परुषवचन—कठोर वचन ।

५ अगारस्थितवचन—गृहस्थावस्था के सम्बन्ध सूचक वचन ।

६ व्यवशमित उदीरकवचन—उपशान्त कलह को उभाडने वाला वचन (१००) ।

कल्प प्रस्तार सूत्र

१०१—छ कप्पस्स पत्थारा पण्णत्ता त जहा—पाणातिवायस्स वाय वयमाणे, मुसावायस्स वाय वयमाणे, अदिण्णादाणस्स वाय वयमाणे, अविरतिवाय वयमाणे, अपुरिसवाय वयमाणे, दासवाय वयमाणे—इच्चेते छ कप्पस्स पत्थारे पत्थारेत्ता सम्ममपडिपूरेमाणे तट्ठाणपत्ते ।

कल्प (साधु-आचार) के छह प्रस्तार (प्रायश्चित्त-रचना के विकल्प) कहे गये है। जैसे—

१ प्राणातिपात सम्बन्धी आरोपात्मक वचन बोलने वाला।
२ मृषावाद सम्बन्धी आरोपात्मक वचन बोलने वाला।
३ अदत्तादान सम्बन्धी आरोपात्मक वचन बोलने वाला।
४ अब्रह्मचर्य-सम्बन्धी आरोपात्मक वचन बोलने वाला।
५ पुरुषत्व हीनता के आरोपात्मक वचन बोलने वाला।
६ दास होने का आरोपात्मक वचन बोलने वाला (१०१)।

कल्प के इन छह प्रस्तारो को स्थापित कर यदि कोई साधु उन्हे सम्यक प्रकार मे प्रमाणित न कर सके तो वह उस स्थान को प्राप्त होता है, अर्थात् आरोपित दोष के प्रायश्चित्त का भागी होता है (१०१)।

विवेचन—साधु के आचार को कल्प कहा जाता है। प्रायश्चित्त की उत्तरोत्तर वृद्धि को प्रस्तार कहते हैं। प्राणातिपात-विरमण आदि के सम्बन्ध मे कोई साधु किसी साधु को झूठा दोष लगावे कि तुमने यह पाप किया है, वह गुरु के सामने यदि सिद्ध नही कर पाता है, तो वह प्रायश्चित्त का भागी होता है। पुन वह अपने कथन को सिद्ध करने के लिए ज्यो-ज्यो असत् प्रयत्न करता है, त्यो-त्यो वह उत्तरोत्तर अधिक प्रायश्चित्त का भागी होता जाता है। सस्कृत टीकाकार ने इसे एक दृष्टान्त पूवक इस प्रकार से स्पष्ट किया है—

छोट-बडे दो साधु गोचरी के लिए नगर मे जा रहे थे। मार्ग मे किसी मरे हुए मेढक पर बडे साधु का पैर पड गया। छोटे साधु ने आरोप लगाते हुए कहा—आपने इस मेढक को मार डाला! बडे साधु ने कहा—नही, मैंने नही मारा है। तब छोटा साधु बोला—आप झूठ कहते है, अत आप मृषाभाषी भी है। इसी प्रकार दोषारोपण करते हुए वह गोचरी से लौट कर गुरु के समीप आता है। उसके इस प्रकार दोषारोपण करने पर उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह पहला प्रायश्चित्तस्थान है।

जब वह छोटा साधु गुरु से कहता है कि इन बडे साधु ने मेढक को मारा है, तब उसे गुरु मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह दूसरा प्रायश्चित्त स्थान है।

छोटे साधु के उक्त दोषारोपण करने पर गुरु ने बडे साधु से पूछा—क्या तुमने मेढक को मारा है? वह कहता है—नही! तब आरोप लगाने वाले को चतुर्लघु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह तीसरा प्रायश्चित्तस्थान है।

छोटा साधु पुन अपनी बात को दोहराता है और बडा साधु पुन यही कहता है कि मैंने मेढक को नही मारा है। तब उसे चतुर्गुरु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह चौथा प्रायश्चित्त-स्थान है।

छोटा साधु गुरु से कहता है—यदि आपको मेरे कथन पर विश्वास न हो तो आप गृहस्थो से पूछ ले। गुरु अन्य विश्वस्त साधुओ को भेजकर पूछताछ कराते हैं। तब उस छोटे साधु को षट् लघु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह पाचवा प्रायश्चित्तस्थान है।

उन भेजे गये साधुओ के पूछने पर गृहस्थ कहते हैं कि हमने उस साधु को मेढक मारते नही देखा है, तब छोटे साधु को षड्गुरु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह छठा प्रायश्चित्तस्थान है।

वे भेजे गये साधु वापस आकर गुरु से कहते हैं कि बड़े साधु ने मेंढक को नहीं मारा है। तब उस छोटे साधु को छेद प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह सातवाँ प्रायश्चित्त स्थान है।

फिर भी छोटा साधु कहता है—वे गृहस्थ सच या झूठ बोलते हैं, इसका क्या विश्वास है? ऐसा कहने पर वह मूल प्रायश्चित्त का भागी होता है। यह आठवाँ प्रायश्चित्त है।

फिर भी वह छोटा साधु कहे—ये साधु और गृहस्थ मिले हुए हैं, मैं अकेला रह गया हूँ। ऐसा कहने पर वह अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त का भागी होता है। यह नौवा प्रायश्चित्त है।

इतने पर भी यह छोटा साधु अपनी बात को पकड़े हुए कहे—आप सब जिन-शासन से बाहर हो, सब मिले हुए हो। तब वह पारांचिक प्रायश्चित्त को प्राप्त होता है। यह दशवा प्रायश्चित्त स्थान है।

इस प्रकार वह ज्यों ज्यों अपने झूठे दोषारोपण को सत्य सिद्ध करने का असत् प्रयास करता है, त्यों-त्यों उसका प्रायश्चित्त बढ़ता जाता है।

प्राणातिपात के दोषारोपण पर प्रायश्चित्त-वृद्धि का जो क्रम है वही मृषावाद, अदत्तादान आदि के दोषारोपण पर भी जानना चाहिए।

पलिमन्थु सूत्र

१०२—छ कप्पस्स पलिमथू पण्णत्ता, तं जहा—कोकुइते संजमस्स पलिमथू, मोहरिए सच्चवयणस्स पलिमथू, चक्खुलोलुए ईरियावहियाए पलिमथू, तितिणिए एसणागोयरस्स पलिमथू, इच्छालोभिते मोत्तिमग्गस्स पलिमथू, भिज्जाणिदाणकरणे मोक्खमग्गस्स पलिमथू, सव्वत्थ भगवता अणिदाणता पसत्था।

कल्प (साधु आचार) के छह पलिमन्थु (विघातक) कहे गये हैं। जैसे—

१ कौकुचित—चपलता करने वाला संयम का पलिमन्थु है।
२ मौखरिक—मुखरता या बकवाद करने वाला सत्यवचन का पलिमन्थु है।
३ चक्षुर्लोलुप—नेत्र के विषय में आसक्त ईर्यापथिक का पलिमन्थु है।
४ तितिणक—चिड़चिड़े स्वभाव वाला एषणा-गोचरी का पलिमन्थु है।
५ इच्छालोभिक—अतिलोभी निष्परिग्रह रूप मुक्तिमार्ग का पलिमन्थु है।
६ मिथ्या निदानकरण—चक्रवर्ती, वासुदेव आदि के भोगों का निदान करने वाला मोक्षमार्ग का पलिमन्थु है।

भगवान् ने अनिदानता को सर्वत्र प्रशस्त कहा है (१०२)।

कल्पस्थिति-सूत्र

१०३—छव्विहा कप्पट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—सामाइयकप्पट्ठिती, छेओवट्ठावणियकप्पट्ठिती, णिव्विसमाणकप्पट्ठिती, णिव्विट्ठकप्पट्ठिती, जिणकप्पट्ठिती थेरकप्पट्ठिती।

कल्प की स्थिति छह प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ सामायिककल्पस्थिति—सर्व सावद्ययोग की निवृत्तिरूप सामायिक संयम-सम्बन्धी मर्यादा।

२ छेदोपस्थानीयकल्पस्थिति—नवदीक्षित साधु का शिक्षाकाल पूर्ण होने पर पंच महाव्रत धारण कराने रूप मर्यादा।

३ निर्विशमानकल्पस्थिति—परिहारविशुद्धिसंयम को स्वीकार करने वाले की मर्यादा।

४ निर्विष्टकल्पस्थिति—परिहारविशुद्धिसंयम-साधना को पूर्ण करने वाले की मर्यादा।

५ जिनकल्पस्थिति—तीर्थंकर जिन के समान सर्वथा निर्ग्रन्थ निर्वस्त्र वेषधारण कर, एकाकी अखण्ड तपस्या की मर्यादा।

६ स्थविरकल्पस्थिति—साधु-संघ के भीतर रहने की मर्यादा (१०३)।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में कल्पस्थिति अर्थात् संयम-साधना के प्रकारों का वर्णन किया गया है। भगवान् पार्श्वनाथ के समय में संयम के चार प्रकार थे—१ सामायिक, २ परिहारविशुद्धिक ३ सूक्ष्मसाम्पराय और ४ यथाख्यात। किन्तु काल की विषमता से प्रेरित होकर भगवान् महावीर ने छेदोपस्थापनीय संयम की व्यवस्था कर चार के स्थान पर पाँच प्रकार के संयम की व्यवस्था की।

'परिहारविशुद्धिक' यह संयम की आराधना का एक विशेष प्रकार है। इसके दो विभाग हैं—निर्विशमानकल्प और निर्विष्टकल्प। परिहारविशुद्धि संयम की साधना में चार साधुओं की साधनावस्था को निर्विशमान कल्प कहा जाता है। ये साधु ग्रीष्म, शीत और वर्षा ऋतु में जघन्य रूप से क्रमशः एक उपवास, दो उपवास और तीन उपवास लगातार करते हैं, मध्यम रूप से क्रमशः दो, तीन और चार उपवास करते हैं और उत्कृष्ट रूप से क्रमशः तीन, चार और पांच उपवास करते हैं। पारणा में भी अभिग्रह के साथ आयंबिल की तपस्या करते हैं। ये सभी जघन्यतः नौ पूर्वों के और उत्कृष्टतः दश पूर्वों के ज्ञाता होते हैं। जो उक्त निर्विशमान कल्पस्थिति की साधना पूरी कर लेते हैं तब शेष चार साधु, जो अब तक उनकी परिचर्या करते थे—वे उक्त प्रकार से संयम की साधना में संलग्न होकर तपस्या करते हैं और ये चारों साधु उनकी परिचर्या करते हैं। इन चारों साधुओं को निर्विष्टमानकल्प वाला कहा जाता है।

परिहारविशुद्धि संयम की साधना में नौ साधु एक साथ अवस्थित होते हैं। उनमें से चार साधुओं का पहला वर्ग तपस्या करता है और दूसरे वर्ग के चार साधु उनकी परिचर्या करते हैं। एक साधु आचार्य होता है। जब दोनों वर्ग के साधु उक्त तपस्या कर चुकते हैं, तब आचार्य तपस्या में अवस्थित होते हैं और उक्त दोनों ही वर्ग के आठों साधु उनकी परिचर्या करते हैं।

जिनकल्पस्थिति—विशेष साधना के लिए जो संघ से अनुज्ञा लेकर एकाकी विहार करते हुए संयम की साधना करते हैं, उनकी आचार-मर्यादा को जिनकल्पस्थिति कहा जाता है। वे अकेले मौनपूर्वक विहार करते हैं। अपने ऊपर आने वाले बड़े से बड़े उपसर्गों को शान्तिपूर्वक दृढ़ता के साथ सहन करते हैं। वज्रऋषभनाराच संहनन के धारक होते हैं। उनके पैरों में यदि कांटा लग जाय, तो वे अपने हाथ से उसे नहीं निकालते हैं, इसी प्रकार आंखों में धूलि आदि चली जाय, तो उसे भी वे नहीं निकालते हैं। यदि कोई दूसरा व्यक्ति निकाले, तो वे मौन एवं मध्यस्थ रहते हैं।

स्थविरकल्पस्थिति—जो हीन संहनन के धारक और घोरपरीषह उपसर्गादि के सहन करने में असमर्थ होते हैं, वे संघ में रहते हुए ही संयम की साधना करते हैं, उन्हें स्थविरकल्पी कहा जाता है।

महावीर षष्ठभक्त-सूत्र

१०४—समणे भगवं महावीरे छट्ठेण भत्तेण अपाणएण मुंडे (भवित्ता अगाराओ अणगारियं) पव्वइए।

श्रमण भगवान् महावीर अपानक (जलादिपान-रहित) षष्ठभक्त अनशन (दो उपवास) के साथ मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए (१०४)।

१०५—समणस्स णं भगवओ महावीरस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं अणंते अणुत्तरे (णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे) समुप्पण्णे।

श्रमण भगवान् महावीर को अपानक षष्ठभक्त के द्वारा अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, परिपूर्ण केवलवर ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ (१०५)।

१०६—समणे भगवं महावीरे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं सिद्धे (बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे) सव्वदुक्खप्पहीणे।

श्रमण भगवान् महावीर अपानक षष्ठभक्त से सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत परिनिर्वृत, और सब दुःखों से रहित हुए (१०६)।

विमान-सूत्र

१०७—सणंकुमार माहिंदेसु णं कप्पेसु विमाणा छ जोयणसयाइं उड्ढंउच्चत्तेणं पण्णत्ता।

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के विमान छह सौ योजन उत्कृष्ट ऊँचाई वाले कहे गए हैं (१०७)।

देव सूत्र

१०८—सणंकुमार-माहिंदेसु णं कप्पेसु देवाणं भवधारणिज्जगा सरीरगा उक्कोसेणं छ रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प के देवों के भवधारणीय शरीर छह रत्निप्रमाण उत्कृष्ट ऊंचाई वाले कहे गये हैं (१०८)।

भोजन-परिणाम-सूत्र

१०९—छव्विहे भोयणपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—मणुण्णे, रसिए, पीणणिज्जे, बिंहणिज्जे, मयणिज्जे, दप्पणिज्जे।

भोजन का परिणाम या विपाक छह प्रकार का कहा गया है जैसे—

१ मनोज्ञ—मन में आनन्द उत्पन्न करने वाला।
२ रसिक—विविधरस-युक्त व्यंजन वाला।
३ प्रीणनीय—रस-रक्तादि धातुओं में समता लाने वाला।

४ बृहणीय—रस, मासादि, धातुओं को बढाने वाला ।
५ मदनीय—कामशक्ति को बढाने वाला ।
६ दर्पणीय—शरीर का पोषण करने वाला, उत्साहवर्धक (१०६) ।

विषपरिणाम-सूत्र

११०—छव्विहे विसपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—डक्के, भुत्ते, णिवतिते, मंसाणुसारी, सोणिताणुसारी, अट्ठिमिजाणुसारी ।

विष का परिणाम या विपाक छह प्रकार का कहा गया है । जैसे—
१ दष्ट—किसी विषयुक्त जीव के द्वारा काटने पर प्रभाव डालने वाला ।
२ भुक्त—खाये जाने पर प्रभाव डालने वाला ।
३ निपतित—शरीर के बाहिरी भाग से स्पर्श होने पर प्रभाव डालने वाला ।
४ मांसानुसारी—मांस तक की धातुओं पर प्रभाव डालने वाला ।
५ शोणितानुसारी—रक्त तक की धातुओं पर प्रभाव डालने वाला ।
६ अस्थि-मज्जानुसारी—अस्थि और मज्जा तक प्रभाव डालने वाला (११०) ।

पृष्ठ-सूत्र

१११—छव्विहे पट्ठे पण्णत्ते, तं जहा—संसयपट्ठे, वुग्गहपट्ठे, अणुजोगी, अणुलोमे, तहणाणे, अतहणाणे ।

प्रश्न छह प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—
१ संशय-प्रश्न—संशय दूर करने के लिए पूछा गया ।
२ व्युद्-ग्रह-प्रश्न—मिथ्याभिनिवेश से दूसरे को पराजित करने के लिए पूछा गया ।
३ अनुयोगी-प्रश्न—अर्थ व्याख्या के लिए पूछा गया ।
४ अनुलोम-प्रश्न—कुशल कामना के लिए पूछा गया ।
५ तथाज्ञान-प्रश्न—स्वयं जानते हुए भी दूसरों को ज्ञानवृद्धि के लिए पूछा गया ।
६ अतथाज्ञान-प्रश्न—स्वयं नहीं जानने पर जानने के लिए पूछा गया (१११) ।

विरहित-सूत्र

११२—चमरचंचा णं रायहाणी उक्कोसेण छम्मासा विरहिया उववातेणं ।

चमरचंचा राजधानी अधिक से अधिक छह मास तक उपपात से (अन्य देव की उत्पत्ति से) रहित रहती है (११२) ।

११३—एगमेगे णं इंदट्ठाणे उक्कोसेणं छम्मासे विरहिते उववातेणं ।

एक एक इन्द्र-स्थान उत्कर्ष से छह मास तक इन्द्र के उपपात से रहित रहता है (११३) ।

११४—अधेसत्तमा णं पुढवी उक्कोसेणं छम्मासा विरहिता उववातेणं ।

अधः सप्तम महातम पृथिवी उत्कर्ष से छह मास तक नारकीजीव के उपपात से रहित रहती है (११४) ।

महावीर षष्ठभक्त-सूत्र

१०४—समणे भगवं महावीरे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं मुंडे (भवित्ता अगाराओ अणगारियं) पव्वइए।

श्रमण भगवान् महावीर अपानक (जलादिपान-रहित) षष्ठभक्त अनशन (दो-उपवास) के साथ मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए (१०४)।

१०५—समणस्स णं भगवओ महावीरस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं अणंते अणुत्तरे (णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे) समुप्पण्णे।

श्रमण भगवान् महावीर को अपानक षष्ठभक्त के द्वारा अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, परिपूर्ण केवलवर ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ (१०५)।

१०६—समणे भगवं महावीरे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं सिद्धे (बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे) सव्वदुक्खप्पहीणे।

श्रमण भगवान् महावीर अपानक षष्ठभक्त से सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत परिनिर्वृत, और सब दुःखों से रहित हुए (१०६)।

विमान-सूत्र

१०७—सणंकुमार-माहिंदेसु णं कप्पेसु विमाणा छ जोयणसयाइं उड्ढंउच्चत्तेणं पण्णत्ता।

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के विमान छह सौ योजन उत्कृष्ट ऊँचाई वाले कहे गए हैं (१०७)।

देव सूत्र

१०८—सणंकुमार माहिंदेसु णं कप्पेसु देवाणं भवधारणिज्जगा सरीरगा उक्कोसेणं छ रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प के देवों के भवधारणीय शरीर छह रत्निप्रमाण उत्कृष्ट ऊंचाई वाले कहे गये हैं (१०८)।

भोजन परिणाम-सूत्र

१०९—छव्विहे भोयणपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—मणुण्णे, रसिए, पीणणिज्जे, बिंहणिज्जे, मयणिज्जे, दप्पणिज्जे।

भोजन का परिणाम या विपाक छह प्रकार का कहा गया है जैसे—

१ मनोज्ञ—मन में आनन्द उत्पन्न करने वाला।
२ रसिक—विविधरस-युक्त व्यंजन वाला।
३ प्रीणनीय—रस रक्तादि धातुओं में समता लाने वाला।

४ बृंहणीय—रस, मांसादि, धातुओं को बढाने वाला।
५ मदनीय—कामशक्ति को बढाने वाला।
६ दर्पणीय—शरीर का पोषण करने वाला, उत्साहवर्धक (१०९)।

विषपरिणाम-सूत्र

११०—छव्विहे विसपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—डक्के, भुत्ते, णिवतिते, मंसाणुसारी, सोणिताणुसारी, अट्ठिमिंजाणुसारी।

विष का परिणाम या विपाक छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ दष्ट—किसी विषयुक्त जीव के द्वारा काटने पर प्रभाव डालने वाला।
२ भुक्त—खाये जाने पर प्रभाव डालने वाला।
३ निपतित—शरीर के बाहिरी भाग से स्पर्श होने पर प्रभाव डालने वाला।
४ मांसानुसारी—मांस तक की धातुओं पर प्रभाव डालने वाला।
५ शोणितानुसारी—रक्त तक की धातुओं पर प्रभाव डालने वाला।
६ अस्थि मज्जानुसारी—अस्थि और मज्जा तक प्रभाव डालने वाला (११०)।

पृष्ठ-सूत्र

१११—छव्विहे पट्ठे पण्णत्ते, तं जहा—संसयपट्ठे, वुग्गहपट्ठे, अणुजोगी, अणुलोमे, तहणाणे, अतहणाणे।

प्रश्न छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ संशय-प्रश्न—संशय दूर करने के लिए पूछा गया।
२ व्युद्-ग्रह-प्रश्न—मिथ्याभिनिवेश से दूसरे को पराजित करने के लिए पूछा गया।
३ अनुयोगी-प्रश्न—अर्थ व्याख्या के लिए पूछा गया।
४ अनुलोम-प्रश्न—कुशल-कामना के लिए पूछा गया।
५ तथाज्ञान-प्रश्न—स्वयं जानते हुए भी दूसरों की ज्ञानवृद्धि के लिए पूछा गया।
६ अतथाज्ञान प्रश्न—स्वयं नहीं जानने पर जानने के लिए पूछा गया (१११)।

विरहित-सूत्र

११२—चमरचंचा णं रायहाणी उक्कोसेण छम्मासा विरहिया उववातेणं।

चमरचंचा राजधानी अधिक से अधिक छह मास तक उपपात से (अन्य देव की उत्पत्ति से) रहित रहती है (११२)।

११३—एगमेगे णं इंदट्ठाणे उक्कोसेणं छम्मासे विरहिते उववातेणं।

एक एक इन्द्र-स्थान उत्कर्ष से छह मास तक इन्द्र के उपपात से रहित रहता है (११३)।

११४—अधेसत्तमा णं पुढवी उक्कोसेणं छम्मासा विरहिता उववातेणं।

अधःसप्तम महातम पृथिवी उत्कर्ष से छह मास तक नारकीजीव के उपपात से रहित रहती है (११४)।

भाव छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ औदयिक भाव—कर्म के उदय से होने वाले क्रोध, मानादि २१ भाव।
२ औपशमिक भाव—मोह कर्म के उपशम से होने वाले सम्यक्त्वादि २ भाव।
३ क्षायिक भाव—घाति कर्मों के क्षय से उत्पन्न होने वाले अनन्त ज्ञान-दर्शनादि ६ भाव।
४ क्षायोपशमिक भाव—घातिकर्मों के क्षयोपशम से होने वाले मति-श्रुतज्ञानादि १८ भाव।
५ पारिणामिक भाव—किसी कर्म के उदयादि के विना अनादि से चले आ रहे जीवत्व आदि ३ भाव।
६ सान्निपातिक भाव—उपर्युक्त भावों के संयोग से होने वाले भाव।

जैसे—यह मनुष्य औपशमिक सम्यक्त्वी, अवधिज्ञानी और भव्य है। यह औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन चार भावों का संयोगी सान्निपातिक भाव है।

ये द्विसंयोगी १०, त्रिसंयोगी २०, चतुःसंयोगी ५ और पंचसंयोगी १ इस प्रकार सब २६ सान्निपातिक भाव होते हैं (१२४)।

प्रतिक्रमण सूत्र

१२५—छव्विहे पडिक्कमणे पण्णत्ते, तं जहा—उच्चारपडिक्कमणे, पासवणपडिक्कमणे, इत्तरिए, आवकहिए, जंकिंचिमिच्छा, सोमणंतिए।

प्रतिक्रमण छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ उच्चार-प्रतिक्रमण—मल-विसर्जन के पश्चात् वापस आने पर ईर्यापथिकी सूत्र के द्वारा प्रतिक्रमण करना।
२ प्रस्रवण-प्रतिक्रमण—मूत्र विसर्जन के पश्चात् वापस आने पर ईर्यापथिकी सूत्र के द्वारा प्रतिक्रमण करना।
३ इत्वरिक-प्रतिक्रमण-दैवसिक—रात्रिक आदि प्रतिक्रमण करना।
४ यावत्कथिक प्रतिक्रमण—मारणान्तिकी सल्लेखना के समय किया जाने वाला प्रतिक्रमण।
५ यत्किञ्चित् मिथ्यादुष्कृत प्रतिक्रमण—साधारण दोष लगने पर उसकी शुद्धि के लिए 'मिच्छा मि दुक्कडं' कहकर पश्चात्ताप प्रकट करना।
६ स्वप्नान्तिक प्रतिक्रमण—दुःस्वप्नादि देखने पर किया जाने वाला प्रतिक्रमण (१२५)।

नक्षत्र-सूत्र

१२६—कत्तियाणक्खत्ते छत्तारे पण्णत्ते।

कृत्तिका नक्षत्र छह तारावाला कहा गया है (१२६)।

१२७—असिलेसाणक्खत्ते छत्तारे पण्णत्ते।

अश्लेषा नक्षत्र छह तारावाला कहा गया है (१२७)।

पापकर्म-सूत्र

१२८—जीवा ण छट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिसु वा चिणति वा चिणिस्सति वा, त जहा—पुढविकाइयणिव्वत्तिए (आउकाइयणिव्वत्तिए, तेउकाइयणिव्वत्तिए, वाउकाइयणिव्वत्तिए, वणस्सइकाइयणिव्वत्तिए) तसकायणिव्वत्तिए।

एव—चिण-उवचिण बध उदीर वेय तह णिज्जरा चेव।

जीवो ने छह स्थान निवर्तित कमपुद्गलो को पाप कम के रूप से भूतकाल मे ग्रहण किया था, वतमान मे ग्रहण करते हैं और भविष्य मे ग्रहण करेंगे। यथा—

१ पृथ्वीकायनिवर्तित, २ अप्कायनिवर्तित, ३ तेजस्कायनिवर्तित, ४ वायुकायनिवर्तित, ५ वनस्पतिकायनिवर्तित, ३ त्रसकायनिवर्तित (१२८)।

इसी प्रकार सभी जीवा ने षट्काय-निवतिन कमपुद्गलो का पापकम के रूप से उपचय, बन्ध, उदीरण, वेदन, और निर्जरण भूतकाल मे किया है, वतमान मे करते है और भविष्य मे करेंगे।

पुद्गल सूत्र

१२९—छप्पएसिया त खधा अणता पण्णत्ता।

छह प्रदेशी स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं (१२९)।

१३०—छप्पएसोगाढा पोग्गला अणता पण्णत्ता।

छह प्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त कहे गये हैं (१३०)।

१३१—छसमयट्ठितीया पोग्गला अणता पण्णत्ता।

छह समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त कहे गये है (१३१)।

१३२—छगुणकालगा पोग्गला जाव छगुणलुक्खा पोग्गला अणता पण्णत्ता।

छह गुण काले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं (१३२)।

इसी प्रकार शेष वण, गन्ध, रस और स्पश के छह गुण वाले पुद्गल अनन्त-अनन्त कहे गये हैं।

॥ छठा स्थान समाप्त ॥

सप्तम स्थान

सार सक्षप

प्रस्तुत मप्तम स्थान मे सात की सख्या से सबद्ध विषयो का सकलन किया गया है। जन आगम यद्यपि आचार-धम का मुख्यता से प्रतिपादन करते ह, तथापि स्थानाङ्ग मे सात मख्या वाले अनेक दार्शनिक, भौगोलिक, ज्योतिष्क, ऐतिहासिक और पौराणिक आदि विषयो का भी वणन किया गया है।

ससार मे जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति पाने के लिए सम्यग्दशन, ज्ञान और चारित्र की साधना करना आवश्यक है। साधारण व्यक्ति आधार या आश्रय के विना उनकी आराधना नही कर सकता है, इसके लिए तीर्थंकरा ने सघ की व्यवस्था की और उसके सम्यक सचालन का भार अनुभवी लोक-व्यवहार-कुशल आचाय को सौंपा। वह अपने कतव्य का पालन करते हुए जब यह अनुभव करे कि सघ या गण मे रहते हुए मेरा आत्म-विकास सभव नही, तब वह गण को छोड कर या तो किसी महान् आचाय के पास जाता है, या एकल विहारी होकर आत्म-साधना मे सलग्न होता है। गण या सघ को छोडने से पूर्व उसकी अनुमति लेना आवश्यक है। इस स्थान मे सर्वप्रथम गणापक्रमण पद द्वारा इसी तथ्य का निरूपण किया गया है।

दूसरा महत्त्वपूण वणन सप्त भयो का है। जब तक मनुष्य किसी भी प्रकार के भय से ग्रस्त रहेगा, *तब तक वह सयम की साधना यथाविधि नही कर सकता। अत सात भयो का त्याग* आवश्यक है।

तीसरा महत्त्वपूर्ण वणन वचन के प्रकारो का है। इससे ज्ञात होगा कि साधक को किस प्रकार के वचन बोलना चाहिए और किस प्रकार के नही। इसी के साथ प्रशस्त और अप्रशस्त विनय के सात सात प्रकार भी ज्ञातव्य हैं। अविनयी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त नही कर पाता है। अत विनय के प्रकारो को जानकर प्रशस्त विनयो का परिपालन करना आवश्यक है।

राजनीति की दृष्टि मे दण्डनीति के सात प्रकार मननीय हैं। मनुष्या मे जसे-जैसे कुटिलता बढती गई, वसे-वैसे ही दण्डनीति भी कठोर होती गई। इसका क्रमिक विकास दण्डनीति के सात प्रकारा म निहित है।

राजाओ मे सर्वशिरोमणि चक्रवर्ती होता है। उसके रत्ना का भी वणन प्रस्तुत स्थान मे पठनीय है।

सघ के भीतर आचाय और उपाध्याय का प्रमुख स्थान होता है, अत उनके लिए कुछ विशेष अधिकार प्राप्त हैं, इसका वणन भी आचार्य-उपाध्याय-अतिशेष पद मे किया गया है।

उक्त विशेषताओ के अतिरिक्त इस स्थान मे जीव विज्ञान, लोक स्थिति सस्थान, गोत्र, नय, आसन, पवत, धान्य-स्थिति, सात प्रवचननिह्नव, सात समुद्घात, आदि विविध विषय सकलित हैं। सप्त स्वरो का बहुत विस्तृत वणन प्रस्तुत स्थान मे किया गया है, जिससे ज्ञात होगा कि प्राचीनकाल मे सगीत-विज्ञान कितना बढा-चढा था। ☐☐

सप्तम स्थान

गणापक्रमण सूत्र

१—सत्तविहे गणावक्कमणे पण्णत्ते, त जहा—सव्वधम्मा रोएमि। एगइया रोएमि एगइया णो रोएमि। सव्वधम्मा वितिगिच्छामि। एगइया वितिगिच्छामि एगइया णो वितिगिच्छामि। सव्वधम्मा जुहुणामि। एगइया जुहुणामि एगइया णो जुहुणामि। इच्छामि ण भते! एगल्लविहारपडिम उवसपिज्जत्ता ण विहरित्तए।

गण से अपक्रमण (निर्गमन-परित्याग-परिवर्तन) सात कारणो से किया जाता है। जसे—

१ सब धर्मों मे (श्रुत और चारित्र के भेदो मे) मेरी रुचि है। इस गण मे उनकी पूर्ति के साधन नही है। इसलिए हे भदन्त! मैं इस गण से अपक्रमण करता हूँ और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हूँ।

२ कितनेक धर्मो मे मेरी रुचि है और कितनेक धर्मों मे मेरी रुचि नही है। जिनमे मेरी रुचि है, उनकी पूर्ति के साधन इस गण मे नही है। इसलिए हे भदन्त! मैं इस गण से अपक्रमण करता हूँ और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हूँ।

३ सब धर्मों मे मेरा सशय है। सशय को दूर करने के लिए हे भदन्त! मैं इस गण से अपक्रमण करता हूँ और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हूँ।

४ कितनेक धर्मों मे मेरा सशय है और कितनेक धर्मों मे मेरा सशय नही है। सशय को दूर करने के लिए हे भदन्त! मैं इस गण से अपक्रमण करता हू और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हूँ।

५ मैं सभी धर्म दूसरो को देना चाहता हूँ। इस गण मे कोई योग्य पात्र नही है, जिसे कि मैं सभी धर्म दे सकूँ। इसलिए हे भदन्त! मैं इस गण से अपक्रमण करता हूँ और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हू।

६ मैं कितनेक धर्म दूसरो को देना चाहता हू और कितनेक धर्म नही देना चाहता। इस गण मे कोई योग्य पात्र नही है जिसे कि मैं जो देना चाहता हूँ, वह दे सकू। इसलिए हे भदन्त! मैं इस गण से अपक्रमण करता हूँ और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हूँ।

७ हे भदन्त! मैं एकलविहारप्रतिमा को स्वीकार कर विहार करना चाहता हूँ। इसलिए इस गण से अपक्रमण करता हूँ (१)।

विभगज्ञान सूत्र

२—सत्तविहे विभगणाणे पण्णत्ते, त जहा—एगदिसि लोगाभिगमे, पचदिसि लोगाभिगमे, किरियावरणे जीवे, मुदग्गे जीवे, अमुदग्गे जीवे, रूवी जीवे, सव्वमिण जीवा।

तत्थ खलु इमे पढमे विभगणाणे—जया ण तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभगणाणे समुप्पज्जति, से ण तेण विभगणाणेण समुप्पण्णेण पासति पाईण वा पडिण वा दाहिण वा उदीण वा उड्ढ वा जाव सोहम्मे कप्पे। तस्स ण एव भवति—अत्थि ण मम अतिसेसे णाणदसणे समुप्पण्णे—

एगदिसिं लोगाभिगमे। सतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु—पचदिसिं लोगाभिगमे। जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु—पढमे विभंगणाणे।

अहावरे दोच्चे विभंगणाणे—जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगणाणे समुप्पज्जति। से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं पासति पाईणं वा पडिणं वा दाहिणं वा उदीणं वा उड्ढं वा जाव सोहम्मे कप्पे। तस्स णं एवं भवति—अत्थि णं मम अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे—पचदिसिं लोगाभिगमे। सतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु—एगदिसिं लोगाभिगमे। जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु—दोच्चे विभंगणाणे।

अहावरे तच्चे विभंगणाणे—जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगणाणे समुप्पज्जति। से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं पासति पाणे अतिवातेमाणे, मुसं वयमाणे, अदिण्णमादियमाणे, मेहुणं पडिसेवमाणे, परिग्गहं परिगिण्हमाणे, राइभोयणं भुंजमाणे, पावं च णं कम्मं कीरमाणं णो पासति। तस्स णं एवं भवति—अत्थि णं मम अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे—किरियावरणे जीवे। सतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु—णो किरियावरणे जीवे। जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु—तच्चे विभंगणाणे। अहावरे चउत्थे विभंगणाणे—जया णं तथारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा (विभंगणाणे) समुप्पज्जति। से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं देवामेव पासति बाहिरब्भतरए पोग्गले परियाइत्ता पुढेगत्तं णाणत्तं फुसित्ता फुरित्ता फुट्टित्ता विकुव्वित्ता णं चिट्ठित्तए। तस्स णं एवं भवति—अत्थि णं मम अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे—मुदग्गे जीवे। सतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु—अमुदग्गे जीवे। जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु—चउत्थे विभंगणाणे।

अहावरे पचमे विभंगणाणे—जया णं तथारूवस्स समणस्स (वा माहणस्स वा विभंगणाणे) समुप्पज्जति। से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं देवामेव पासति बाहिरब्भतरए पोग्गलए अपरियाइत्ता पुढेगत्तं णाणत्तं (फुसित्ता फुरित्ता फुट्टित्ता) विउव्वित्ता णं चिट्ठित्तए। तस्स णं एवं भवति—अत्थि (णं मम अतिसेसे णाणदंसणे) समुप्पण्णे—अमुदग्गे जीवे। सतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु—मुदग्गे जीवे। जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु—पचमे विभंगणाणे।

अहावरे छट्ठे विभंगणाणे—जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा (विभंगणाणे) समुप्पज्जति। से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं देवामेव पासति बाहिरब्भतरए पोग्गले परियाइत्ता वा अपरियाइत्ता वा पुढेगत्तं णाणत्तं फुसित्ता (फुरित्ता फुट्टित्ता) विकुव्वित्ता णं चिट्ठित्तए। तस्स णं एवं भवति—अत्थि णं मम अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे—रूवी जीवे। सतेगइया समणा वा माहणा वा एवमहंसु—अरूवी जीवे। जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु—छट्ठे विभंगणाणे।

अहावरे सत्तमे विभंगणाणे—जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगणाणे समुप्पज्जति। से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं पासई सुहुमेणं वायुकाएणं फुडं पोग्गलकायं एयंतं वेयंतं चलंतं खुब्भंतं फंदंतं घट्टंतं उदीरेंतं तं तं भावं परिणमंतं। तस्स णं एवं भवति—अत्थि णं मम अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे—सव्वमिणं जीवा। सतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु—जीवा चेव, अजीवा चेव। जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु। तस्स णं इमे चत्तारि जीवणिकाया णो सम्ममुवगता भवंति, तं जहा—पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया। इच्चेतेहिं चउहिं जीवणिकाएहिं मिच्छादंडं पवत्तेइ—सत्तमे विभंगणाणे।

विभङ्गज्ञान (कुअवधिज्ञान) सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ एकदिग्लोकाभिगम—एक दिशा में ही सम्पूर्ण लोक का जानने वाला।

२ पचदिग्लोकाभिगम—पाचो दिशाओ मे ही सवलोक को जानने वाला ।
३ जीव को कर्मावृत नही, किन्तु क्रियावरण मानने वाला ।
४ मुदग्गजीव—जीव के शरीर का मुदग्ग-(पुद्गल) निर्मित ही मानने वाला ।
५ अमुदग्गजीव—जीव के शरीर को पुद्गल निर्मित नहीं ही मानने वाला ।
६ रूपी जीव—जीव को रूपी ही मानने वाला ।
७ यह सवजीव—इस सव दृश्यमान जगत् को जीव ही मानने वाला ।

उनमे यह पहला विभगज्ञान है—

जब तथारूप श्रमण-माहन को विभगज्ञान उत्पन्न होता है, तब वह उस उत्पन्न हुए विभगज्ञान से पूर्वदिशा को या पश्चिम दिशा को या दक्षिण दिशा को या उत्तर दिशा को या ऊर्ध्वदिशा को सौधमकल्प तक, इन पाचो दिशाओ म से किसी एक दिशा को देखता है । उस समय उसके मन मे ऐसा विचार उत्पन्न होता है—मुझे सातिशय ज्ञान दर्शन प्राप्त हुआ है । मैं इस एक दिशा म ही लोक को देख रहा हूँ । कितनेक श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि लोक पाचो दिशाओ मे है । जो ऐसा कहते हैं वे मिथ्या कहते हैं । यह पहला विभगज्ञान है ।

दूसरा विभगज्ञान इस प्रकार है—

जब तथारूप श्रमण-माहन को विभगज्ञान उत्पन्न होता है तब वह उस उत्पन्न हुए विभगज्ञान से पूर्व दिशा को, पश्चिम दिशा को, दक्षिण दिशा को, उत्तर दिशा को और ऊर्ध्वदिशा को सौधमकल्प तक देखता है । उस समय उसके मन मे ऐसा विचार उत्पन्न होता है—मुझे सातिशय (सम्पूर्ण) ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है । मैं पाचो दिशाओ मे ही लोक को देख रहा हूँ । कितनक श्रमण माहन ऐसा कहते हैं कि लोक एक ही दिशा मे है । जो ऐसा कहते है, वे मिथ्या कहते हैं । यह दूसरा विभगज्ञान है ।

तीसरा विभगज्ञान इस प्रकार है—

जब तथारूप श्रमण माहन को विभगज्ञान उत्पन्न होता है, तब वह उस उत्पन्न हुए विभगज्ञान से जीवो को हिंसा करते हुए, झूठ बोलते हुए अदत्त ग्रहण करते हुए, मथुन सेवन करते हुए, परिग्रह करते हुए और रात्रि भोजन करते हुए देखता है, किन्तु उन कार्यों के द्वारा किये जाते हुए कर्मबन्ध को नहीं देखता तब उसके मन मे ऐसा विचार उत्पन्न होता है—मुझे सातिशय ज्ञान दर्शन प्राप्त हुआ है । मैं देख रहा हूँ कि जीव क्रिया से ही आवृत है, कर्म से नही । जो श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि जीव क्रिया से आवृत नही है वे मिथ्या कहते हैं । यह तीसरा विभगज्ञान है ।

चौथा विभगज्ञान इस प्रकार है—

जब तथारूप श्रमण माहन को विभगज्ञान उत्पन्न होता है, तब वह उस उत्पन्न हुए विभगज्ञान से देवो को बाह्य (शरीर के अवगाढ क्षेत्र मे बाहर) और आभ्यन्तर (शरीर के अवगाढ क्षेत्र के भीतर) पुद्गलो को ग्रहण कर विक्रिया करते हुए देखता है कि ये देव पुद्गलो का स्पर्श कर, इनमे हलचल पैदा कर, उनका स्फोट कर, भिन्न-भिन्न काल और विभिन्न देश मे विविध प्रकार की विक्रिया करते है । यह देख कर उसके मन मे ऐसा विचार उत्पन्न होता है—मुझे सातिशय ज्ञान दर्शन प्राप्त हुआ है । मैं देख रहा हूँ कि जीव पुद्गलो से ही बना हुआ है । कितनेक श्रमण माहन ऐसा कहते हैं कि जीव शरीर-पुद्गलो से बना हुआ नही है, जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं । यह चौथा विभगज्ञान है ।

पाचवा विभगज्ञान इस प्रकार है—

जब तथारूप श्रमण-माहन को विभग ज्ञान उत्पन्न होता है, तब वह उस उत्पन्न विभग ज्ञान से देवो को बाह्य और आभ्यन्तर पुद्गलो का ग्रहण किए विना उत्तर विक्रिया करते हुए देखता है कि ये देव पुद्गलो का स्पर्श कर, उनमे हल-चल उत्पन्न कर, उनका स्फोट कर, भिन्न-भिन्न काल और देश मे विविध प्रकार की विक्रिया करते हैं। यह देखकर उसके मन मे ऐसा विचार उत्पन्न होता है—'मुझे सातिशय ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रहा हूँ कि जीव पुद्गलो से बना हुआ नही है। कितनेक श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि जीव-शरीर पुद्गलो से बना हुआ है। जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। यह पाँचवाँ विभगज्ञान है।

छठा विभगज्ञान इस प्रकार है—

जब तथारूप श्रमण माहन को विभगज्ञान उत्पन्न होता है, तब वह उस उत्पन्न हुए विभगज्ञान से देवो को बाह्य आभ्यन्तर पुद्गलो को ग्रहण करके और ग्रहण किये विना विक्रिया करते हुए देखता है। वे देव पुद्गलो का स्पर्श कर, उनमे हल चल पैदा कर, उनका स्फोट कर भिन्न भिन्न काल और देश मे विविध प्रकार की विक्रिया करते हैं। यह देख कर उसके मन मे ऐसा विचार उत्पन्न होता है—मुझे सातिशय ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रहा हूँ कि जीव रूपी ही है। कितनेक श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि जीव अरूपी है। जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। यह छठा विभगज्ञान है।

सातवाँ विभगज्ञान इस प्रकार है—

जब तथारूप श्रमण-माहन को विभग ज्ञान उत्पन्न होता है, तब वह उस उत्पन्न हुए विभग ज्ञान से सूक्ष्म (मन्द) वायु के स्पर्श से पुद्गल काय को कम्पित होते हुए, विशेष रूप से कम्पित होते हुए, चलित होते हुए, क्षुब्ध होते हुए, स्पन्दित होते हुए, दूसरे पदार्थो का स्पर्श करते हुए, दूसरे पदार्थों को प्रेरित करते हुए, और नाना प्रकार के पर्यायो मे परिणत होते हुए देखता है। तब उसके मन मे ऐसा विचार उत्पन्न होता है—'मुझे सातिशय ज्ञान दर्शन प्राप्त हुआ है। मै देख रहा हूँ कि ये सभी जीव ही जीव हैं, कितनेक श्रमण माहन ऐसा कहते हैं कि जीव भी है और अजीव भी हैं। जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते है। उस विभगज्ञानी को पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक, इन चार जीव-निकायो का सम्यक् ज्ञान नही होता। वह इन चार जीव निकायो पर मिथ्यादण्ड का प्रयोग करता है। यह सातवाँ विभगज्ञान है।

विवेचन—मति, श्रुत और अवधिज्ञान मिथ्यादर्शन के ससर्ग के कारण विपर्यय रूप भी होते है। अभिप्राय यह कि मिथ्यादृष्टि के उक्त तीनो ज्ञान मिथ्याज्ञान कहलाते हैं। जिनमे से आदि के दो ज्ञानो को कुमति और कुश्रुत कहा जाता है और अवधिज्ञान को कुअवधि या विभगज्ञान कहते हैं। मति और श्रुत ये दो ज्ञान एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के सभी ससारी जीवो मे हीनाधिक मात्रा मे पाये जाते हैं। किन्तु अवधिज्ञान सज्ञी पचेन्द्रिय जीवो को ही होता है।

अवधिज्ञान के दो भेद होते है—भवप्रत्यय और क्षयोपशमनिमित्तक। भवप्रत्यय अवधि देव और नारकी जीवो को जन्मजात होता है। किन्तु क्षयोपशमनिमित्तक अवधि मनुष्य और तिर्यंचो को तपस्या, परिणाम-विशुद्धि आदि विशेष कारण मिलने पर अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम मे उत्पन्न होता है। यद्यपि देव और नारकी जीवो का अवधिज्ञान भी तदावरण कर्म के क्षयोपशम से ही जनित है, किन्तु वहाँ अन्य बाह्य कारण के अभाव मे भी मात्र भव के निमित्त से क्षयोपशम होता है।

अत सभी को होता है। उसे भवप्रत्यय कहते है। किन्तु सज्ञी मनुष्य और तिर्यचो के तपस्या आदि बाह्य कारण विशेष के मिलने पर ही वह होता है, अन्यथा नही। अत उसे क्षयोपशमनिमित्तक या गुणप्रत्यय कहते हैं।

प्रस्तुत सूत्र मे तीन गति के जीवो को होने वाले अवधिज्ञान की चर्चा नही की गई है। किन्तु कोई श्रमण-माहन बाल-तप आदि साधना-विशेष करता है, उनमे से किसी-किसी को उत्पन्न होने वाले अवधिज्ञान का वर्णन किया गया है। जो व्यक्ति सम्यग्दृष्टि होता है, उसे जितनी मात्रा मे भी यह उत्पन्न होता है, वह उसके उत्पन्न होने पर प्रारम्भिक क्षणो मे विस्मित तो अवश्य होता है किन्तु भ्रमित नही होता। एव उसके पूर्व उसे जितना श्रुतज्ञान से छह द्रव्य, सप्त तत्त्व और नव पदार्थों का परिज्ञान था, उस अर्हत्प्रज्ञप्त तत्त्व पर श्रद्धा रखता हुआ यह जानता है कि मेरे क्षयोपशम के अनुसार इतनी सीमा या मर्यादा वाला यह अतिशय युक्त ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है, अत मैं उस सीमित क्षेत्रवर्ती पदार्थों को जानता देखता हूँ। किन्तु यह लोक और उसमे रहने वाले पदार्थ असीम है, अत उन्हे जिन-प्ररूपित आगम के अनुसार ही जानता है।

किन्तु जो श्रमण-माहन मिथ्यादृष्टि होते हैं, उनके बालतप, सयम-साधना आदि के द्वारा जब जितने क्षेत्रवाला अवधिज्ञान उत्पन्न होता है तब वे पूर्व श्रद्धान मे या श्रुतज्ञान से विचलित हो जाते है और यह मानने लगते हैं कि जिस द्रव्य, क्षेत्र, काल और भव की सीमा मे मुझे यह अतिशायी ज्ञान प्राप्त हुआ है बस इतना ही ससार है और मुझे जो भी जीव या अजीव दिख रहे है, या पदार्थ दिखाई दे रहे है, वे इतने ही हैं। इसके विपरीत जो श्रमण-माहन कहते हैं, वह सब मिथ्या है। उनके इस 'लोकाभिगम' या लोक-सम्बन्धी ज्ञान को विभगज्ञान कहा गया है।

टीकाकार ने सातो प्रकार के विभगज्ञानो की विभगता या मिथ्यापन का खुलासा करते हुए लिखा है कि पहले प्रकार मे विभगता शेष दिशाओ मे लोक निषेध करने के कारण है। दूसरे प्रकार मे विभगता एक दिशा मे लोक का निषेध करने से है, तीसरे प्रकार मे विभगता कर्मों के अस्तित्व को अस्वीकार करने से है। चौथे प्रकार मे विभगता जीव को पुद्गल-जनित मानने से है। पाचवे प्रकार मे विभगता देवो की विक्रिया को देख कर उनके शरीर के पुद्गल-जनित होने पर भी उसे पुद्गल निर्मित नही मानने से है। छठे प्रकार मे विभगता जीव को रूपी ही मानने से है। तथा सातवे प्रकार मे विभगता पृथिवी आदि चार निकायो के जीवो को नही मानने से बताई गई है।

योनिसग्रह-सूत्र

३—सत्तविधे जोणिसगहे पण्णत्ते, त जहा—अडजा, पोतजा, जराउजा, रसजा, ससेयगा, सम्मुच्छिमा, उब्भिगा।

योनि-सग्रह सात प्रकार का कहा गया है—

१ अण्डज—अण्डो से उत्पन्न होने वाले पक्षी सर्प आदि।
२ पोतज—चर्म-आवरण बिना उत्पन्न होने वाले हाथी शेर आदि।
३ जरायुज—चर्म-आवरण रूप जरायु (जेर) से उत्पन्न होने वाले मनुष्य, गाय आदि।
४ रसज—कालिक मर्यादा से अतिक्रान्त दूध दही, तेल आदि रसो मे उत्पन्न होने वाले जीव।
५ सस्वेदज—सस्वेद (पसीना) से उत्पन्न होने वाले जू, लीख आदि।

६ सम्मूर्च्छिम—तदनुकूल परमाणुओं के संयोग से उत्पन्न होने वाले लट आदि।

७ उद्भिज्ज—भूमि-भेद से उत्पन्न होने वाले खंजनक आदि जीव (३)।

विवरण—जीवों के उत्पन्न होने के स्थान-विशेषों को योनि कहते हैं। प्रस्तुत सूत्र में जिन सात प्रकार की योनियों का संग्रह किया है, उनमें से आदि की तीन योनियाँ गर्भ जन्म की आधार हैं। शेष रसज आदि चार योनियां सम्मूर्च्छिम जन्म की आधारभूत हैं। देव नारकों के उपपात जन्म की आधारभूत योनियों का यहाँ संग्रह नहीं किया गया है।

गति-आगति सूत्र

४—अंडगा सत्तगतिया सत्तागतिया पण्णत्ता, तं जहा—अंडगे अंडगेसु उववज्जमाणे अंडगेहिंतो वा, पोतजेहिंतो वा, (जराउजेहिंतो वा, रसजेहिंतो वा, संसेयगेहिंतो वा, संमुच्छिमेहिंतो वा,) उब्भिगेहिंतो वा, उववज्जेज्जा।

सच्चेव णं से अंडए अंडगत्तं विप्पजहमाणे अंडगत्ताए वा, पोतगत्ताए वा, (जराउजत्ताए वा, रसजत्ताए वा, संसेयगत्ताए वा, संमुच्छिमत्ताए वा), उब्भिगत्ताए वा गच्छेज्जा।

अण्डज जीव सप्तगतिक और सप्त आगतिक कहे गये हैं। जैसे—

अण्डज जीव अण्डजों में उत्पन्न होता हुआ अण्डजों से या पोतजों से या जरायुजों से, या रसजों से या संस्वेदजों से या सम्मूर्च्छिमों से या उद्भिज्जों से आकर उत्पन्न होता है।

वही अण्डज जीव अण्डज योनि को छोड़ता हुआ अण्डज रूप से या पोतज रूप से या जरायुज रूप से या रसज रूप से या संस्वेदज रूप से या सम्मूर्च्छिम रूप से या उद्भिज्ज रूप से जाता है। अर्थात् सातों योनियों में उत्पन्न हो सकता है।

५—पोतगा सत्तगतिया सत्तागतिया एवं चेव। सत्तण्हवि गतिरागती भाणियव्वा जाव उब्भियत्ति।

पोतज जीव सप्तगतिक और सप्त आगतिक कहे गये हैं। इसी प्रकार उद्भिज्ज तक सातों ही योनिवाले जीवों की सातों ही गति और सातों ही आगति जाननी चाहिए (५)।

संग्रहस्थान सूत्र

६—आयरिय उवज्झायस्स णं गणंसि सत्त संगहठाणा पण्णत्ता, तं जहा—

१ आयरिय उवज्झाए णं गणंसि आणं वा धारणं वा सम्मं पउंजित्ता भवति।

२ (आयरिय उवज्झाए णं गणंसि आधारातिणियाए कितिकम्मं सम्मं पउंजित्ता भवति।

३ आयरिय उवज्झाए णं गणंसि जे सुत्तपज्जवजाते धारेति ते काले काले सम्ममणुप्पवाइत्ता भवति।

४ आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि गिलाणसेहवेयावच्चं सम्ममब्भुट्ठित्ता भवति)।

५ आयरिय उवज्झाए णं गणंसि आपुच्छियचारी यावि भवति, णो अणापुच्छियचारी।

६ आयरिय उवज्झाए णं गणंसि अणुप्पण्णाइं उवगरणाइं सम्मं उप्पाइत्ता भवति।

७ आयरिय उवज्झाए णं गणंसि पुव्वुप्पण्णाइं उवकरणाइं सम्मं सारक्खेत्ता संगोवित्ता भवति, णो असम्मं सारक्खेत्ता संगोवित्ता भवति।

आचार्य और उपाध्याय के लिए गण मे सात सग्रहस्थान (ज्ञाता या शिष्यादि के सग्रह के कारण) कहे गये है। जसे—

१ आचाय और उपाध्याय गण मे आज्ञा एव धारणा का सम्यक् प्रयोग करें।
२ आचाय और उपाध्याय गण म यथारात्निक (दीक्षा पर्याय मे छोटे-बडे के क्रम से) कृतिकम (वन्दनादि) का सम्यक् प्रयोग करें।
३ आचाय और उपाध्याय जिन-जिन सूत्र पर्यवजाता का धारण करते ह, उनकी यथाकाल गण को सम्यक वाचना देव।
४ आचाय और उपाध्याय गण के ग्लान (रुग्ण) और शैक्ष (नवदीक्षित) साधुओ की सम्यक वयावृत्त्य के लिए सदा सावधान रह।
५ आचाय और उपाध्याय गण को पूछ कर अन्यत्र विहार करें, उसे पूछे विना विहार न करें।
६ आचाय और उपाध्याय गण के लिए अनुपलब्ध उपकरणो को सम्यक् प्रकार से उपलब्ध कर।
७ आचाय और उपाध्याय गण मे पूर्व उपलब्ध उपकरणा का सम्यक प्रकार से सरक्षण एव सगोपन करे, असम्यक् प्रकार स—विधि का अतिक्रमण कर सरक्षण और सगोपन न कर (६)।

असग्रहस्थान सूत्र

७—आयरिय उवज्झायस्स ण गणसि सत्त असगहट्ठाणा पण्णत्ता, त जहा—

१ आयरिय उवज्झाए ण गणसि आण वा धारण वा णो सम्म पउजित्ता भवति।
२ (आयरिय-उवज्झाए ण गणसि आधारातिणियाए कितिकम्म णो सम्म पउजित्ता भवति।
३ आयरिय उवज्झाए ण गणसि जे सुत्तपज्जवजाते धारेति ते काले काले णो सम्ममणुप्पवाइत्ता भवति।
४ आयरिय उवज्झाए ण गणसि गिलाणसेहवेयावच्च णो सम्ममब्भुट्ठित्ता भवति।
५ आयरिय-उवज्झाए ण गणसि अणापुच्छियचारी यावि हवइ, णो आपुच्छियचारी।
६ आयरिय-उवज्झाए ण गणसि अणुप्पण्णाइ उवगरणाइ णो सम्म उप्पाइत्ता भवति।
७ आयरिय उवज्झाए ण गणसि) पच्चुप्पण्णाण उवगरणाण णो सम्म सारक्खेत्ता सगोवेत्ता भवति।

आचाय और उपाध्याय के लिए गण मे सात असग्रहस्थान कहे गये है। जैसे—

१ आचाय और उपाध्याय गण मे आज्ञा एव धारणा का सम्यक् प्रयोग न करे।
२ आचार्य और उपाध्याय गण मे यथारात्निक कृतिकम का सम्यक् प्रयोग न करें।
३ आचार्य और उपाध्याय जिन जिन-सूत्र पर्यवजातो को धारण करते हैं, उनकी यथाकाल गण को सम्यक् वाचना न देव।
४ आचाय और उपाध्याय ग्लान एव शैक्ष साधुओ की यथोचित वैयावृत्त्य के लिए सदा सावधान न रहे।
५ आचाय और उपाध्याय गण को पूछे विना अन्यत्र विहार करें, उस पूछ कर विहार न करें।

६ आचार्य और उपाध्याय गण के लिए अनुपलब्ध उपकरणों को सम्यक् प्रकार से उपलब्ध न करें।
७ आचार्य और उपाध्याय गण मे पूर्व-उपलब्ध उपकरणो का सम्यक् प्रकार से सरक्षण एव सगोपन न करे (७)।

प्रतिमा-सूत्र

८—सत्त पिंडेसणाओ पण्णत्ताओ।

पिण्ड एषणाएँ सात कही गई है।

विवेचन—आहार के अन्वेषण को पिण्ड-एषणा कहते हैं। वे सात प्रकार की होती हैं। उनका विवरण सस्कृतटीका के अनुसार इस प्रकार है—

१ ससृष्ट-पिण्ड एषणा—देय वस्तु से लिप्त हाथ से, या कडछी आदि से आहार लेना।
२ असमृष्ट-पिण्ड एषणा—देय वस्तु से अलिप्त हाथ से, या कडछी आदि से आहार लेना।
३ उद्धृत-पिण्ड-एषणा—पकाने के पात्र से निकाल कर परोसने के लिए रखे पात्र से आहार लेना।
४ अल्पलेपिक-पिण्ड एषणा—रूक्ष आहार लेना।
५ अवगृहीत पिण्ड एषणा—खाने के लिए थाली मे परोसा हुआ आहार लेना।
६ प्रगृहीत-पिण्ड-एषणा—परोसने के लिए कडछी आदि से निकाला हुआ आहार लेना।
७ उज्झितधर्मा पिण्ड एषणा—घरवालो के भोजन करने के बाद बचा हुआ एव परित्याग करने के योग्य आहार लेना (८)।

९—सत्त पाणेसणाओ पण्णत्ताओ।

पान-एषणाए सात कही गई हैं।

विवेचन—पीने के योग्य जल आदि की गवेषणा को पान एषणा कहते है। उसके भी पिण्ड-एषणा के समान सात भेद इस प्रकार से जानना चाहिए—

१ ससृष्ट-पान-एषणा, २ असंसृष्ट-पान एषणा, ३ उद्धृत पान एषणा, ४ अल्पलेपिक पान एषणा, ५ अवगृहीत-पान-एषणा, ६ प्रगृहीत-पान-एषणा, और उज्झितधर्मा पान एषणा।

यहा इतना विशेष जानना चाहिए कि अल्पलेपिक-पान एषणा का अर्थ काजी, ओसामण, उष्णजल, चावल-धोवन आदि से है और इक्षुरस, द्राक्षारस, आदि लेपकृत-पान एषणा है (९)।

१०—सत्त उग्गहपडिमाओ पण्णत्ताओ।

अवग्रह-प्रतिमाए सात कही गई है।

विवेचन—वसतिका, उपाश्रय या स्थान प्राप्ति सबधी प्रतिज्ञा या सकल्प करने को अवग्रह-प्रतिमा कहते हैं। उसके सातो प्रकारो का विवरण इस प्रकार है—

१ मैं अमुक प्रकार के स्थान मे रहूगा, दूसरे स्थान मे नहीं।

२ मैं अन्य साधुओ के लिए स्थान की याचना करूगा, तथा दूसरो के द्वारा याचित स्थान मे रहूगा। यह अवग्रहप्रतिमा गच्छान्तगत साधुओं के लिए होती है।

३ मैं दूसरा के लिए स्थान की याचना करूंगा, किन्तु दूसरों के द्वारा याचित स्थान मे नही रहूंगा। यह अवग्रहप्रतिमा यथालन्दिक साधुओ के होती है। उनका सूत्र-अध्ययन जो शेष रह जाता है, उसे पूर्ण करने के लिए वे आचार्य से सम्बन्ध रखते हैं। अतएव वे आचार्य के लिए स्थान की याचना करते हैं, किन्तु स्वयं दूसरे साधुओ के द्वारा याचित स्थान में नही रहते।

४ मैं दूसरो के लिए स्थान की याचना नही करूंगा, किन्तु दूसरों के द्वारा याचित स्थान मे रहूंगा। यह अवग्रहप्रतिमा जिनकल्पदशा का अभ्यास करने वाले साधुओं के होती है।

५ मैं अपने लिए स्थान की याचना करूंगा, दूसरों के लिए नही। यह अवग्रह-प्रतिमा जिनकल्पी साधुओं के होती है।

६ जिस शय्यातर का मैं स्थान ग्रहण करूंगा, उसी के यहाँ धान-पलाल आदि सहज ही प्राप्त होगा, तो लूंगा, अन्यथा उकडू या अन्य नैषधिक आसन से बैठकर ही रात बिताऊंगा। यह अभिग्रह प्रतिमा जिनकल्पी या अभिग्रहविशेष के धारी साधुओ के होती है।

७ जिस शय्यातर का मैं स्थान ग्रहण करूंगा, उसी के यहा सहज ही बिछे हुए काष्ठपट्ट (तख्ता, चौकी) आदि प्राप्त होगा तो लूंगा, अन्यथा उकडू आदि आसन से बैठा-बैठा ही रात बिताऊंगा। यह अवग्रह-प्रतिमा भी जिनकल्पी या अभिग्रहविशेष के धारी साधुओ के होती है (१०)।

आचारचूला सूत्र

११—सत्तसत्तिक्कया पण्णत्ता।

सात सप्तैकक कहे गये हैं (११)।

विवेचन—आचारचूला की दूसरी चूलिका के उद्देशक-रहित अध्ययन, सात हैं। संस्कृत-टीका के अनुसार उनके नाम इस प्रकार हैं—

१ स्थान सप्तकक, २ नैषेधिकी सप्तैकक, ३ उच्चार-प्रस्रवणविधि-सप्तकक, ४ शब्द सप्तैकक, ५ रूपसप्तैकक, ६ परक्रिया सप्तैकक, ७ अन्योन्य-क्रिया सप्तैकक। ये सात अध्ययन सात हैं और उद्देशकों से रहित हैं, अतः 'सप्तैकक' नाम से वे व्यवहृत किये जाते हैं। इनका विशेष विवरण आचारचूला से जानना चाहिए।

१२—सत्त महज्झयणा पण्णत्ता।

सात महान् अध्ययन कहे गये हैं (१२)।

विवेचन—सूत्रकृताङ्ग के दूसरे श्रुतस्कन्ध के अध्ययन पहले श्रुतस्कन्ध के अध्ययनो की अपेक्षा बड़े हैं, अतः उन्हें महान् अध्ययन कहा गया है। संस्कृतटीका के अनुसार उनके नाम इस प्रकार हैं—

१ पुण्डरीक-अध्ययन, २ क्रियास्थान-अध्ययन, ३ आहार-परिज्ञा-अध्ययन, ४ प्रत्याख्यानक्रिया-अध्ययन, ५ अनाचार श्रुत-अध्ययन, ६ आर्द्रककुमारीय अध्ययन, ७ नालन्दीय-अध्ययन। इनका विशेष विवरण सूत्रकृताङ्ग सूत्र से जानना चाहिए।

प्रतिमा-सूत्र

१३ - *सत्तसत्तमिया ण भिक्खुपडिमाए कूणपण्णताए राइदिएहिं एगेण य छण्णउएण भिक्खा* सतेण ग्रहासुत्त (ग्रहाग्रत्थ ग्रहातच्च अहामग्ग ग्रहाकप्प सम्म काएण फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया) आराहिया यावि भवति ।

सप्तसप्तमिका (७ × ७ =) भिक्षुप्रतिमा ४६ दिन-रात, तथा १६६ भिक्षादत्तियो के द्वारा यथासूत्र, यथा-ग्रथ, यथा तत्त्व, यथा मार्ग, यथा कल्प, तथा सम्यक् प्रकार काय से ग्राचीण, पालित, शोधित, पूरित, कीर्तित ग्रौर ग्राराधित की जाती है (१३) ।

विवेचन—साधुजन विशेष प्रकार का ग्रभिग्रह या प्रतिज्ञारूप जो नियम अगीकार करते है, उसे भिक्षुप्रतिमा कहते है । भिक्षुप्रतिमाए १२ कही गई हैं, उनमे से सप्तसप्तमिका प्रतिमा सात सप्ताहो मे क्रमश एक-एक भक्त-पानकी दत्ति-द्वारा सम्पन्न की जाती है, उस का क्रम इस प्रकार है—

प्रथम सप्तक या सप्ताह मे प्रतिदिन १-१ भक्त-पान दत्ति का योग ७ भिक्षादत्तिया ।
द्वितीय सप्तक में प्रतिदिन २-२ भक्त पान दत्तियो का योग १४ भिक्षादत्तिया ।
तृतीय सप्तक मे प्रतिदिन ३-३ भक्त-पान दत्तियो का योग २१ भिक्षादत्तिया ।
चतुर्थ सप्तक मे प्रतिदिन ४-४ भक्त-पान दत्तिया का योग २८ भिक्षादत्तिया ।
पचम सप्तक मे प्रतिदिन ५-५ भक्त-पान दत्तियो का योग ३५ भिक्षादत्तिया ।
षष्ठ सप्तक मे प्रतिदिन ६-६ भक्त पान दत्तियो का योग ४२ भिक्षादत्तिया ।
सप्तम सप्तक मे प्रतिदिन ७-७ भक्त पान दत्तियो का याग ४६ भिक्षादत्तिया ।

इस प्रकार सातो सप्ताहो के ४६ दिनो की भिक्षादत्तिया १६६ होती है । इसलिए सूत्र मे कहा गया है कि यह सप्तसप्तामिका भिक्षुप्रतिमा ४६ दिन ग्रौर १६६ भिक्षादत्तियो के द्वारा यथाविधि ग्राराधित की जाती है ।

अधोलोकस्थिति सूत्र

१४—ग्रहेलोगे ण सत्त पुढवीग्रो पण्णत्ताग्रो ।

ग्रधोलोक मे सात पृथिवियाँ कही गई है (१४) ।

१५—सत्त घणोदधीग्रो पण्णत्ताग्रो ।

ग्रधोलोक मे सात घनोदधि वात कहे गये है (१५) ।

१६—सत्त घणवाता पण्णत्ता ।

ग्रधोलोक मे सात घनवात कहे गये है (१६) ।

१७—सत्त तणुवाता पण्णत्ता ।

ग्रधोलोक मे सात तनुवात कहे गये हैं (१७) ।

१८—सत्त ग्रोवासतरा पण्णत्ता ।

ग्रधोलोक मे सात ग्रवकाशान्तर (तनुवात, घनवात ग्रादि के मध्यवर्ती ग्रन्तराल क्षेत्र) कहे गये हैं । (१८)

१९—एतेसु ण सत्तसु ओवासतरेसु सत्त तणुवाया पइट्ठिया ।

इन सातो अवकाशान्तरो मे सात तनुवात प्रतिष्ठित हैं (१९) ।

२०—एतेसु ण सत्तसु तणुवातेसु सत्त घणवाता पइट्ठिया ।

इन सातो तनुवातो पर सात घनवात प्रतिष्ठित है (२०) ।

२१—एतेसु ण सत्तसु घणवातेसु सत्त घणोदधी पतिट्ठिया ।

इन सातो घनवातो पर सात घनोदधि प्रतिष्ठित है (२१) ।

२२—एतेसु ण सत्तसु घणोदधीसु पिडलग-पिहुल सठाण-सठियाओ सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, त जहा—पढमा जाव सत्तमा ।

इन साता घनोदधियो पर फूल की टोकरी के समान चौडे सस्थान वाली सात पृथिविया कही गई हैं । प्रथमा यावत सप्तमी (२२) ।

२३—एतासि ण सत्तण्ह पुढवीण सत्त णामधेज्जा पण्णत्ता, त जहा—घम्मा, वसा, सेला, अजणा, रिट्ठा मघा, माघवती ।

इन साता पृथिवियो के सात नाम कहे गये हैं । जसे—

१ घर्मा, २ वशा, ३ शैला, ४ अजना, ५ रिष्टा, ६ मघा, ७ माघवती (२३) ।

२४—एतासि ण सत्तण्ह पुढवीण सत्त गोत्ता पण्णत्ता, त जहा—रयणप्पभा, सक्करप्पभा, वालुअप्पभा, पकप्पभा, धूमप्पभा, तमा, तमतमा ।

इन साता पृथिवियो के सात गोत्र (अर्थ के अनुकूल नाम) कहे गये है । जैसे—

१ रत्नप्रभा, २ शकराप्रभा, ३ वालुकाप्रभा, ४ पकप्रभा, ५ धूमप्रभा, ६ तम प्रभा, ७ तमस्तम प्रभा (२४) ।

बायरवायुकायिक-सूत्र

२५—सत्तविहा बायरवाउकाइया पण्णत्ता, त जहा—पाईणवाते, पडीणवाते, दाहिणवाते, उदीणवाते, उड्ढवाते, अहेवाते, विदिसिवाते ।

बादर वायुकायिक जीव सात प्रकार के कहे गय हैं । जैसे—

१ पूर्व दिशा सम्बन्धी वायु, २ पश्चिम दिशा सम्बन्धी वायु ३ दक्षिण दिशा सम्बन्धी वायु, ५ उत्तर दिशा सम्बन्धी वायु, ५ ऊर्ध्व दिशा सम्बन्धी वायु, ६ अधोदिशा सम्बन्धी वायु और ७ विदिशा सम्बन्धी वायु जीव (२५) ।

सस्थान सूत्र

२६—सत्त सठाणा पण्णत्ता, त जहा—दीहे, रहस्से, वट्टे तसे, चउरसे, पिहुले, परिमडले ।

सस्थान (आकार) सात प्रकार के कहे गये हैं । जसे—

१ दीर्घसस्थान, २ ह्रस्वसस्थान, ३ वृत्तसस्थान (गोलाकार) ४ त्र्यस्र- (त्रिकोण-) सस्थान, ५ चतुरस्र (चौकोण-) सस्थान, ६ पृथुल-(स्थूल-) सस्थान ७ परिमण्डल (अण्डे या नारगी के समान) सस्थान (२६) ।

विवेचन—कहीं कहीं वृत्त का अर्थ नारंगी के समान गोल और परिमण्डल का अर्थ वलय या चूड़ी के समान गोल आकार कहा गया है।

भयस्थान-सूत्र

२७—सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—इहलोगभए, परलोगभए, आदाणभए, अकम्हाभए, वेयणभए, मरणभए, असिलोगभए।

भय के स्थान सात कहे गये हैं। जैसे—
१ इहलोक-भय—इस लोक में मनुष्य, तिर्यंच आदि से होने वाला भय।
२ परलोक-भय—परभव कैसा मिलेगा, इत्यादि परलोक सम्बन्धी भय।
३ आदान-भय—सम्पत्ति आदि के अपहरण का भय।
४ अकस्माद्-भय—अचानक या अकारण होने वाला भय।
५ वेदना-भय—रोग-पीडा आदि का भय।
६ मरण-भय—मरने का भय।
७ अश्लोक-भय—अपकीर्त्ति का भय (२७)।

विवेचन—संस्कृतटीकाकार ने सजातीय व मनुष्यादि से होने वाले भय को इहलोक भय और विजातीय तिर्यंच आदि से होने वाले भय को परलोक भय कहा है। दिगम्बर परम्परा में अश्लोक भय के स्थान पर अगुप्ति या अत्राणभय कहा है इसका अर्थ है—अरक्षा का भय।

छद्मस्थ सूत्र

२८—सत्तहिं ठाणेहिं छउमत्थं जाणेज्जा, तं जहा—पाणे अइवाएत्ता भवति। मुसं वइत्ता भवति। अदिण्णं आदित्ता भवति। सद्दफरिसरसरूवगंधे आसादेत्ता भवति। पूयासक्कारं अणुवूहेत्ता भवति। इमं सावज्जंति पण्णवेत्ता पडिसेवेत्ता भवति। णो जहावादी तहाकारी यावि भवति।

सात स्थानों से छद्मस्थ जाना जाता है। जैसे—
१ जो प्राणियों का घात करता है।
२ जो मृषा (असत्य) बोलता है।
३ जो अदत्त (बिना दी) वस्तु को ग्रहण करता है।
४ जो शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का आस्वाद लेता है।
५ जो अपने पूजा और सत्कार का अनुमोदन करता है।
६ जो 'यह सावद्य (सदोष) है', ऐसा कहकर भी उसका प्रतिसेवन करता है।
७ जो जैसा कहता है, वैसा नहीं करता (२८)।

केवलि-सूत्र

२९—सत्तहिं ठाणेहिं केवलीं जाणेज्जा, तं जहा—णो पाणे अइवाइत्ता भवति। (णो मुसं वइत्ता भवति। णो अदिण्णं आदित्ता भवति। णो सद्दफरिसरसरूवगंधे आसादेत्ता भवति। णो पूयासक्कारं अणुवूहेत्ता भवति। इमं सावज्जंति पण्णवेत्ता णो पडिसेवेत्ता भवति।) जहावादी तहाकारी यावि भवति।

सात स्थानो (कारणो) से केवली जाना जाता है। जसे—

१ जो प्राणियो का घात नही करता है।

२ जो मृषा नही बोलता है।

३ जो अदत्त वस्तु को ग्रहण नही करता है।

४ जो शब्द, स्पश, रस, रूप और गध का आस्वादन नही लेता है।

५ जो पूजा और सत्कार का अनुमोदन नहीं करता है।

६ जो 'यह सावद्य है' ऐसा कह कर उसका प्रतिसेवन नही करता है।

७ जो जसा कहता है, वैसा करता है (२९)।

गोत्र-सूत्र

३०—सत्त मूलगोत्ता पण्णत्ता, त जहा—कासवा गोतमा, वच्छा, कोच्छा, कोसिग्रा, मडवा, वासिट्ठा।

मूल गोत्र (एक पुरुष से उत्पन्न हुई वश परम्परा) सात कहे गये हैं। जैसे—

१ काश्यप, २ गौतम, ३ वत्स, ४ कुत्स, ५ कौशिक, ६ माण्डव, ७ वाशिष्ठ (३०)।

विवरण—किसी एक महापुरुष से उत्पन्न हुई वश परम्परा को गोत्र कहते है। प्रारम्भ मे ये सूत्रोक्त सात मूल गोत्र थे। कालान्तर मे उन्ही से अनेक उत्तर गोत्र भी उत्पन्न हो गये। सस्कृतटीका के अनुसार साता मूल गोत्रा का परिचय इस प्रकार है—

१ काश्यपगोत्र—मुनिसुव्रत और अरिष्टनेमि जिन को छोडकर शेष बाईस तीर्थकर, सभी चक्रवर्ती (क्षत्रिय), सातवें से ग्यारहवें गणधर (ब्राह्मण) और जम्बूस्वामी (वैश्य) आदि, ये सभी काश्यप गोत्रीय थे।

२ गौतम गोत्र—मुनिसुव्रत और अरिष्टनेमि जिन, नारायण और पद्म को छाडकर सभी बलदेव वासुदेव, तथा इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति, ये तीन गणधर गौतम गोत्रीय थे।

३ वत्सगोत्र—दशवकालिक के रचयिता शय्यम्भव आदि वत्सगोत्रीय थे।

४ कौत्स—शिवभूति आदि कौत्स गोत्रीय थे।

५ कौशिक गोत्र—षडुलुक (रोहगुप्त) आदि कौशिक गोत्रीय थे।

६ माण्डव्य गोत्र—मण्डुऋषि के वशज माण्डव्य गोत्रीय कहलाये।

७ वाशिष्ठ गोत्र—वशिष्ठ ऋषि के वशज वाशिष्ठ गोत्रीय कहे जाते है। तथा छठे गणधर और आर्य सुहस्ती आदि को भी वाशिष्ठ गोत्रीय कहा गया है।

३१—जे कासवा ते सत्तविधा पण्णत्ता, त जहा—ते कासवा, ते सडिल्ला, ते गोला, ते वाला, ते मु जइणो, ते पव्वतिणो, ते वरिसकण्हा।

जो काश्यप गोत्रीय है, वे सात प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ काश्यप, २ शाण्डिल्य, ३ गोल, ४ बाल, ५ मौज्जकी, ६ पर्वती, ७ वर्षकृष्ण (३१)।

३२—जे गोतमा ते सत्तविधा पण्णत्ता, त जहा—ते गोतमा, ते गग्गा, ते भारद्दा, ते अगिरसा, ते सक्कराभा, ते भक्खराभा ते उदत्ताभा।

गौतम गोत्रीय सात प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ गौतम, २ गार्ग्य, ३ भारद्वाज, ४ आङ्गिरस, ५ शर्कराभ, ६ भास्कराभ ७ उदत्ताभ (३२)।

३३—जे वच्छा ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—ते वच्छा, ते अग्गेया, ते मित्तेया, ते सामलिणो, ते सेलयया, ते अट्ठिसेणा, ते वीयकण्हा।

जो वत्स हैं, वे सात प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ वत्स, २ आग्नेय, ३ मत्रेय, ४ शाल्मली, ५ शलक, ६ अस्थिषेण, ७ वीतकृष्ण (३३)।

३४—जे कोच्छा ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—ते कोच्छा, ते मोग्गलायणा, ते पिंगलायणा, ते कोडीणो, [ण्णा ?], ते मडलिणो, ते हारिता, ते सोमया।

जो कौत्स, है, वे सात प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ कौत्स, २ मौद्गलायन, ३ पिङ्गलायन, ४ कौडिन्य, ५ मण्डली, ६ हारित, ७ सौम्य (३४)।

३५—जे कोसिआ ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—ते कोसिआ, ते कच्चायणा, ते सालंकायणा, ते गोलिकायणा, ते पक्खिकायणा, ते अग्गिच्चा, ते लोहिच्चा।

जो कौशिक है, वे सात प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ कौशिक, २ कात्यायन, ३ सालकायन, ४ गोलिकायन, ४ पाक्षिकायन, ६ आग्नेय ७ लौहित्य (३५)।

३६—जे मडवा ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—ते मडवा, ते आरिट्ठा, ते समुता, ते तेला, ते एलावच्चा, ते कंडिल्ला, ते खारायणा।

जो माण्डव है, वे सात प्रकार के कहे गये है। जसे—

१ माण्डव, २ अरिष्ट, ३ सम्मुत, ४ तैल, ५ ऐलापत्य, ६ काण्डिल्य, ७ क्षारायण(३६)।

३७—जे वासिट्ठा ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—ते वासिट्ठा, ते उंजायणा, ते जारकण्हा, ते वग्घावच्चा, ते कोंडिण्णा, ते सण्णी, ते पारासरा।

जो वाशिष्ठ हैं वे सात प्रकार के कहे गये हैं। जसे—

१ वाशिष्ठ, २ उञ्जायण, ३ जरत्कृष्ण, ४ व्याघ्रापत्य, ५ कौण्डिन्य, ६ सञ्ज्ञी, ७ पाराशर (३७)।

नय-सूत्र

३८—सत्त मूलणया पण्णत्ता, तं जहा—णेगमे, संगहे, ववहारे, उज्जुसुते, सद्दे समभिरूढे, एवंभूते।

मूल नय सात कहे गये हैं। जैसे—

१ नैगम—भेद और अभेद का ग्रहण करने वाला नय।

२ सग्रह—केवल अभेद को ग्रहण करने वाला नय ।
३ व्यवहार—केवल भेद को ग्रहण करने वाला नय ।
४ ऋजुसूत्र—वर्तमान क्षणवर्ती पर्याय को वस्तु रूप मे स्वीकार करने वाला नय ।
५ शब्द—भिन्न भिन्न लिंग, वचन, कारक आदि के भेद से वस्तु मे भेद मानने वाला नय ।
६ समभिरूढ—लिंगादि का भेद न होने पर भी पर्यायवाची शब्दो के भेद स वस्तु को भिन्न मानने वाला नय ।
७ एवम्भूत—वतमान क्रिया परिणत वस्तु को ही वस्तु मानने वाला नय (३८) ।

स्वरमडल-सूत्र

३६—सत्त सरा पण्णत्ता, त जहा—

सग्रहणी-गाथा

सज्जे रिसभे गधारे, मज्झिमे पचमे सरे ।
धेवते चेव णेसादे, सरा सत्त वियाहिता ॥१॥

स्वर सात कहे गये है । जसे—

१ षड्ज, २ ऋषभ, ३ गान्धार, ४ मध्यम, ५ पचम, ६ धैवत, ७ निषाद ।

विवेचन—१ षड्ज—नासिका, कण्ठ उरस, तालु, जिह्वा, और दन्त इन छह स्थानो से उत्पन्न होने वाला स्वर—'स' ।
२ ऋषभ—नाभि से उठकर कण्ठ और शिर से समाहत होकर ऋषभ (बैल) के समान गजना करने वाला स्वर —'रे' ।
३ गान्धार—नाभि से समुत्थित एव कण्ठ शीष से समाहत तथा नाना प्रकार की गन्धो को धारण करने वाला स्वर—'ग' ।
४ मध्यम—नाभि से उठकर वक्ष और हृदय से समाहत होकर पुन नाभि को प्राप्त महानाद 'म' । शरीर के मध्य भाग से उत्पन्न होने के कारण यह मध्यम स्वर कहा जाता है ।
५ पचम—नाभि, वक्ष, हृदय, कण्ठ और शिर इन पाच स्थानो से उत्पन्न होने वाला स्वर—'प' ।
६ धैवत—पूर्वोक्त सभी स्वरो का अनुसधान करने वाला स्वर—'ध' ।
७ निषाद—सभी स्वरो को समाहित करने वाला स्वर—'नी' ।

४०—एएसि ण सत्तण्ह सराण सत्त सरट्ठाणा पण्णत्ता त जहा—

सज्ज तु अग्गजिब्भाए, उरेण रिसभ सर ।
कठुग्गतेण गधार मज्झजिब्भाए मज्झिम ॥१॥
णासाए पचम बूया, दतोट्ठेण य धेवत ।
मुद्धाणेण य णेसाद, सरट्ठाणा वियाहिता ॥२॥

इन सात स्वरों के सात स्वर-स्थान कहे गये हैं। जैसे—
१ षड्ज का स्थान—जिह्वा का अग्रभाग।
२ ऋषभ का स्थान—उरस्थल।
३ गान्धार का स्थान—कण्ठ।
४ मध्यम का स्थान—जिह्वा का मध्य भाग।
५ पंचम का स्थान—नासा।
६ धैवत का स्थान—दन्त ओष्ठ-संयोग।
७ निषाद का स्थान—शिर (४१)।

४१—सत्त सरा जीवणिस्सिता पण्णत्ता, तं जहा—
सज्जं रवति मयूरो, कुक्कुडो रिसभं सरं।
हंसो णदति गंधारं, मज्झिमं तु गवेलगा ॥१॥
अह कुसुमसंभवे काले, कोइला पंचमं सरं।
छट्ठं च सारसा कोंचा, णेसायं सत्तमं गजो ॥२॥

जीव-निःसृत सात स्वर कहे गये हैं। जैसे—
१ मयूर षड्ज स्वर में बोलता है।
२ कुक्कुट ऋषभ स्वर में बोलता है।
३ हंस गान्धार स्वर में बोलता है।
४ गवेलक (भेड) मध्यम स्वर में बोलता है।
५ कोयल वसन्त ऋतु में पंचम स्वर में बोलता है।
६ क्रौञ्च और सारस धैवत स्वर में बोलते हैं।
७ हाथी निषाद स्वर में बोलता है (४१)।

४२—सत्त सरा अजीवणिस्सिता पण्णत्ता, तं जहा—
सज्जं रवति मुइंगो, गोमुही रिसभं सरं।
संखो णदति गंधारं, मज्झिमं पुण झल्लरी ॥१॥
चउचलणपतिट्ठाणा, गोहिया पंचमं सरं।
आडंबरो धेवतियं, महाभेरी य सत्तमं ॥२॥

अजीव-निःसृत सात स्वर कहे गये हैं। जैसे—
१ मृदंग से षड्ज स्वर निकलता है।
२ गोमुखी से ऋषभ स्वर निकलता है।
३ शंख से गान्धार स्वर निकलता है।
४ झल्लरी से मध्यम स्वर निकलता है।
५ चार चरणों पर प्रतिष्ठित गोधिका से पंचम स्वर निकलता है।
६ ढोल से धैवत स्वर निकलता है।
७ महाभेरी से निषाद स्वर निकलता है (४२)।

४३—एतेसि ण सत्तण्ह सराण सत्त सरलक्खणा पण्णत्ता, त जहा—

सज्जेण लभति वित्ति, कत च ण विणस्सति ।
गावो मित्ता य पुत्ता य, णारीण चेव वल्लभो ॥१॥
रिसभेण उ एसज्ज, सेणावच्च धणाणि य ।
वत्थगधमलकार, इत्थिग्रो सयणाणि य ॥२॥
गधारे गीतजुत्तिण्णा, वज्जवित्ती कलाहिया ।
भवति कइणो पण्णा, जे अण्णे सत्थपारगा ॥३॥
मज्झिमसरसपण्णा, भवति सुहजीविणो ।
खायती पियती देती, मज्झिमसरमस्सितो ॥४॥
पचमसरसपण्णा, भवति पुढवीपती ।
सूरा सगहकत्तारो अणेगगणणायगा ॥५॥
धेवतसरसपण्णा, भवति कलहप्पिया ।
'साउणिया वग्गुरिया, सोयरिया मच्छबधा य' ॥६॥
'चडाला मुट्ठिया मेया, जे अण्णे पावकम्मिणो ।
गोघातगा य जे चोरा, णेसाय सरमस्सिता' ॥७॥

इन सातो स्वरो के सात स्वर-लक्षण कहे गये हैं । जैसे—

१ षड्ज स्वर वाला मनुष्य आजीविका प्राप्त करता है, उसका प्रयत्न व्यर्थ नही जाता । उसके गाएं, मित्र और पुत्र होते हैं । वह स्त्रियो को प्रिय होता है ।
२ ऋषभ स्वर वाला मनुष्य ऐश्वर्य, सेनापतित्व, धन, वस्त्र, गन्ध, आभूषण, स्त्री, शयन और आसन को प्राप्त करता है ।
३ गान्धार स्वर वाला मनुष्य गाने मे कुशल, वादित्र वृत्तिवाला, कलानिपुण, कवि, प्राज्ञ और अनेक शास्त्रो का पारगामी होता ।
४ मध्यम स्वर से सम्पन्न पुरुष सुख से खाता, पीता, जीता और दान देता है ।
५ पचमस्वर वाला पुरुष भूमिपाल, शूर-वीर, सग्राहक और अनेक गणो का नायक होता है ।
६ धैवत स्वर वाला पुरुष कलह-प्रिय, पक्षियो को मारने वाला (चिडीमार) हिरण, सूकर और मच्छी मारने वाला होता है ।
७ निषाद स्वर वाला पुरुष चाण्डाल, वधिक, मुक्केबाज, गो-घातक, चोर और अनेक प्रकार के पाप करने वाला होता है (४३) ।

४४—एतेसि ण सत्तण्ह सराण तओ गामा पण्णत्ता, त जहा—सज्जगामे, मज्झिमगामे गधारगामे ।

इन सातो स्वरो के तीन ग्राम कहे गये है । जैसे—

१ षड्जग्राम, २ मध्यमग्राम, ३ गान्धारग्राम (४४) ।

४५—सज्जगामस्स ण सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, त जहा—

मगी कोरव्वीया, हरी य रयणी य सारकता य ।
छट्ठी य सारसी णाम, सुद्धसज्जा य सत्तमा ॥१॥

षड्जग्राम की आरोह अवरोह, या उतार-चढाव रूप सात मूर्च्छनाए कही गई हैं। जैसे—
१ मगी, २ कौरवीया, ३ हरित, ४ रजनी, ५ सारकान्ता, ६ सारसी, ७ शुद्ध षड्जा (४५)।

४६—मज्झिमगामस्स ण सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ त जहा—

उत्तरमदा, रयणी, उत्तरा उत्तरायता।
अस्सोक्ता य सोवीरा, अभिरू हवति सत्तमा ॥१॥

मध्यम ग्राम की सात मूर्च्छनाए कही गई हैं। जैसे—
१ उत्तरमन्द्रा, २ रजनी, ३ उत्तरा ४ उत्तरायता ५ अश्वक्रान्ता, ६ सौवीरा, ७ अभिरुद्गता (४६)।

४७—गधारगामस्स ण सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, त जहा—

णदी य खुद्दिमा पूरिमा, य चउत्थी य सुद्धगधारा।
उत्तरगधारावि य, पचमिया हवति मुच्छा उ ॥१॥
सुट्ठुत्तरमायामा, सा छट्ठी णियमसो उ णायव्वा।
अह उत्तरायता, कोडिमा य सा सत्तमी मुच्छा ॥२॥

गान्धार ग्राम की सात मूर्च्छनाए कही गई हैं। जैसे—
१ नन्दी २ क्षुद्रिका, ३ पूरका, ४ शुद्धगान्धारा, ५ उत्तरगान्धारा, ६ सुष्ठुतर आयामा ७ उत्तरायता कोटिमा (४७)।

४८— सत्त सरा कतो समवति ? गीतस्स का भवति जोणी ?
कतिसमया उस्सासा ? कति वा गीतस्स आगारा ? ॥१॥
सत्त सरा णाभीतो, भवति गीत च रुण्णजोणीय।
पदसमया ऊसासा, तिण्णि य गीयस्स आगारा ॥२॥
आइमिउ आरभता, समुव्वहता य मज्झगारमि।
अवसाणे य झवेंता, तिण्णि य गेयस्स आगारा ॥३॥
छद्दोसे अट्ठगुणे, तिण्णि य वित्ताइ दो य भणितीओ।
जो णाहिति सो गाहिइ, सुसिक्खिओ रगमज्झम्मि ॥४॥
भीत दुत रहस्स, गायतो मा य गाहि उत्ताल।
काकस्सरमणुणास, च होंति गेयस्स छद्दोसा ॥५॥
पुण्ण रत्त च अलकिय च वत्त तहा अविघुट्ठ।
मधुर सम सुललिय, अट्ठ गुणा होंति गेयस्स ॥६॥
उर कठ-सिर विसुद्ध, च गिज्जते मउय रिभिअ पवबद्ध।
समतालपदुक्खेव, सत्तसरसीहर गेय ॥७॥
णिद्दोस सारवत च, हेउजुत्तमलकिय।
उवणीत सोवयार च, मित मधुरमेव य ॥८॥

सममद्धसम चेव, सव्वत्थ विसम च ज ।
तिण्णि वित्तप्पयाराइ, चउत्थ णोपलब्भती ॥९॥

सक्कता पागता चेव, दोण्णि य भणिति ग्राहिया ।
सरमडलमि गिज्जते, पसत्था इसिमासिता ॥१०॥

केसी गायति मधुर ? केसी गायति खर च रक्ख च ?
केसी गायति चउर ? केसि विलब ? दुत केसी ?
विस्सर पुण केरिसी ? ॥११॥

सामा गायइ मधुर, काली गायइ खर च रुक्ख च ।
गोरी गायति चउर, काण विलब दुत ग्रधा ॥
विस्सर पुण पिंगला ॥१२॥

तंतिसम तालसम, पादसम लयसम गहसम च ।
णीससिऊससियसम सचारसमा सरा सत्त ॥१३॥

सत्त सरा तग्रो गामा, मुच्छणा एकविसती ।
ताणा एगूणपण्णासा, समत्त सरमडल ॥१४॥

(१) प्रश्न—साता स्वर किससे उत्पन्न होते हैं ? गीत की योनि क्या है ? उसका उच्छ्वास-काल कितने समय का है ? और गति के आकार कितने होते है ।

(२-३) उत्तर—सातो स्वर नाभि से उत्पन्न होते ह । रुदन गेय की योनि है । जितने समय मे किसी छन्द का एक चरण गाया जाता है, उतना उसका उच्छ्वासकाल होता है । गीत के तीन आकार होते हैं—आदि मे मृदु, मध्य मे तीव्र और अन्त मे मन्द ।

(४) गीत के छह दोष, आठ गुण, तीन वृत्त, और दो भणितिया होती है । जो इन्हे जानता है, वही सुशिक्षित व्यक्ति रगमच पर गा सकता है ।

(५) गीत के छह दोष इस प्रकार है—
१ भीत दोष—डरते हुए गाना ।
२ द्रुत दोष—शीघ्रता से गाना ।
३ ह्रस्व दोष—शब्दो को लघु बना कर गाना ।
४ उत्ताल दोष—ताल के अनुसार न गाना ।
५ काकस्वर दोष—काक के समान कर्ण-कटु स्वर से गाना ।
६ अनुनास दोष—नाक के स्वरो से गाना ।

(६) गीत के आठ गुण इस प्रकार हैं—
१ पूर्ण गुण—स्वर के आरोह-अवरोह आदि से परिपूर्ण गाना ।
२ रक्त गुण—गाये जाने वाले राग से परिष्कृत गाना ।
३ अलकृत गुण—विभिन्न स्वरा से सुशोभित गाना ।
४ व्यक्त गुण—स्पष्ट स्वर से गाना ।
५ अविघुष्ट गुण—नियत या नियमित स्वर से गाना ।
६ मधुर गुण—मधुर स्वर से गाना ।

७ समगुण—ताल, वीणा आदि का अनुसरण करते हुए गाना ।
८ सुकुमार गुण—ललित, कोमल लय से गाना ।

(७) गीत के ये आठ गुण और भी होते हैं—
१ उरोविशुद्ध—जो स्वर उर स्थल मे विशाल होता है ।
२ कण्ठविशुद्ध—जो स्वर कण्ठ मे नही फटता ।
३ शिरोविशुद्ध—जो स्वर शिर से उत्पन्न होकर भी नासिका से मिश्रित नही होता ।
४ मृदु—जो राग कोमल स्वर से गाया जाता है ।
५ रिभित—घोलना-बहुल आलाप के कारण खेल सा करता हुआ स्वर ।
६ पद-बद्ध—गेय पदो से निबद्ध रचना ।
७ समताल पदोत्क्षेप—जिसमे ताल, झाझ आदि का शब्द और नर्त्तक का पाद-निक्षेप, ये सब सम हो, अर्थात् एक दूसरे से मिलते हो ।
८ सप्तस्वरसीभर—जिसमे सातो स्वर तत्री आदि के सम हो ।

(८) गेय पदो के आठ गुण इस प्रकार हैं—
१ निर्दोष—बत्तीस दोष रहित होना ।
२ सारवन्त—सारभूत अर्थ से युक्त होना ।
३ हेतुयुक्त—अर्थ-साधक हेतु से सयुक्त होना ।
४ अलकृत—काव्य गत अलकारो से युक्त होना ।
५ उपनीत—उपसहार से युक्त होना ।
६ सोपचार—कोमल, अविरुद्ध और अलज्जनीय अर्थ का प्रतिपादन करना, अथवा व्यग्य या हसी से सयुक्त होना ।
७ मित—अल्प पद और अल्प अक्षर वाला होना ।
८ मधुर—शब्द, अर्थ और प्रतिपादन की अपेक्षा प्रिय होना ।

(९) वृत्त—छन्द तीन प्रकार के होते है—
१ सम—जिसमे चरण और अक्षर सम हो, अर्थात् चार चरण हो और उनमे गुरु-लघु अक्षर भी समान हो अथवा जिसके चारो चरण सरीखे हो ।
२ अर्धसम—जिसमे चरण या अक्षरो मे से कोई एक सम हो, या विषम चरण होने पर भी उनमे गुरु-लघु अक्षर समान हो । अथवा जिसके प्रथम और तृतीय चरण तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण समान हो ।
३ सर्वविषम—जिसमे चरण और अक्षर सब विषम हो । अथवा जिसके चारो चरण विषम हो ।

इनके अतिरिक्त चौथा प्रकार नही पाया जाता ।

(१०) भणिति—गीत की भाषा दो प्रकार की कही गई है—सस्कृत और प्राकृत । ये दोनो प्रशस्त और ऋषि भाषित हैं और स्वर-मण्डल म गाई जाती हैं ।

(११) प्रश्न—मधुर गीत कौन गाती है ? परुष और रूक्ष कौन गाती है ? चतुर गीत कौन गाती है ? विलम्ब गीत कौन गाती है ? द्रुत (शीघ्र) गीत कौन गाती है ? तथा विस्वर गीत कौन गाती है ?

(१२) उत्तर—श्यामा स्त्री मधुर गीत गाती है। काली स्त्री खर (परुष) और रूक्ष गाती है। केशी स्त्री चतुर गीत गाती है। काणी स्त्री विलम्ब गीत गाती है। अन्धी स्त्री द्रुत गीत गाती है और पिंगला स्त्री विस्वर गीत गाती है।

(१३) सप्तस्वर सीभर की व्याख्या इस प्रकार है—

१ तन्त्रीसम—तन्त्री-स्वरों के साथ-साथ गाया जाने वाला गीत।
२ तालसम—ताल वादन के साथ साथ गाया जाने वाला गीत।
३ पादसम—स्वर के अनुकूल निर्मित गेयपद के अनुसार गाया जाने वाला गीत।
४ लयसम—वीणा आदि को आहृत करने पर जो लय उत्पन्न होती है, उसके अनुसार गाया जाने वाला गीत।
५ ग्रहसम—वीणा आदि के द्वारा जो स्वर पकड़े जाते है, उसी के अनुसार गाया जाने वाला गीत।
६ निःश्वसितोच्छ्वसित सम—सास लेने और छोड़ने के क्रमानुसार गाया जाने वाला गीत।
७ सचारसम—सितार आदि के साथ गाया जाने वाला गीत।

इस प्रकार गीत स्वर तन्त्री आदि के साथ सम्बन्धित होकर सात प्रकार का हो जाता है।

(१४) उपसहार—इस प्रकार सात स्वर, तीन ग्राम और इक्कीस मूर्च्छनाए होती हैं। प्रत्येक स्वर सात तानो मे गाया जाता है, इसलिए उनके (७×७=) ४६ भेद हो जाते हैं। इस प्रकार स्वर-मण्डल का वर्णन समाप्त हुआ। (४८)

कायक्लेश-सूत्र

४६—सत्तविधे कायकिलेसे पण्णत्ते, त जहा—ठाणातिए, उक्कुडुयासणिए, पडिमठाई, वीरासणिए, णेसज्जिए, दडायतिए, लगडसाई।

कायक्लेश तप सात प्रकार का कहा गया है। जैसे

१ स्थानायतिक—खड़े होकर कायोत्सर्ग मे स्थिर होना।
२ उत्कुटुकासन—दोनो पैरो को भूमि पर टिकाकर उकड़ू बैठना।
३ प्रतिमास्थायी—भिक्षु प्रतिमा की विभिन्न मुद्राओ मे स्थित रहना।
४ वीरासनिक—सिंहासन पर बैठने के समान दोनो घुटनो पर हाथ रख कर अवस्थित होना अथवा सिंहासन पर बैठकर उसे हटा देने पर जो आसन रहता है वह वीरासन है। इस आसन वाला वीरासनिक है।
५ नैषधिक—पालथी मार कर स्थिर हो स्वाध्याय करने की मुद्रा मे बैठना।
६ दण्डायतिक—डण्डे के समान सीधे चित्त लेट कर दोनों हाथो और पैरो को सटा कर अवस्थित रहना।
७ लगडशायी—भूमि पर सीधे लेट कर लकुट के समान एड़ियो और शिर को भूमि से लगा कर पीठ आदि मध्यवर्ती भाग को ऊपर उठाये रखना।

विवेचन—परीषह और उपसर्गादि को सहने की सामर्थ्य-वृद्धि के लिए जो शारीरिक कष्ट सहन किये जाते हैं, वे सब कायक्लेशतप के अन्तर्गत हैं। ग्रीष्म में सूर्य-आतापना लेना, शीतकाल में वस्त्रविहीन रहना और डाँस-मच्छरों के काटने पर भी शरीर को न खुजाना आदि भी इसी तप के अन्तर्गत जानना चाहिए।

क्षेत्र पर्वत-नदी-सूत्र

५०—जंबुद्दीवे दीवे सत्त वासा पण्णत्ता, तं जहा—भरहे, एरवते, हेमवते, हेरण्णवते, हरिवासे, रम्मगवासे, महाविदेहे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सात वर्ष (क्षेत्र) कहे गये हैं। जैसे—

१ भरत २ ऐरवत, ३ हैमवत, ४ हैरण्यवत, ५ हरिवर्ष, ६ रम्यक वर्ष, ७ महाविदेह (५०)।

५१—जंबुद्दीवे दीवे सत्त वासहरपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—चुल्लहिमवंते, महाहिमवंते, णिसढे, णीलवंते, रुप्पी, सिहरी, मंदरे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सात वर्षधर पर्वत कहे गये हैं। जैसे—

१ क्षुद्रहिमवान्, २ महाहिमवान्, ३ निषध, ४, नीलवान, ५, रुक्मी ६ शिखरी, ७ मन्दर (सुमेरु पर्वत) (५१)।

५२—जंबुद्दीवे दीवे सत्त महाणदीओ पुरत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा—गंगा, रोहिता, हरी, सीता, णरकंता, सुवण्णकूला, रत्ता।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सात महानदियां पूर्वाभिमुख होती हुई लवण-समुद्र में मिलती हैं। जैसे—

१ गंगा, २ रोहिता, ३ हरित, ४ सीता, ५ नरकान्ता, ६ सुवर्णकूला, ७ रक्ता (५२)।

५३—जंबुद्दीवे दीवे सत्त महाणदीओ पच्चत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा—सिंधू, रोहितंसा, हरिकंता, सीतोदा, णारिकंता, रुप्पकूला, रत्तावती।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सात महानदियां पश्चिमाभिमुख होती हुई लवण-समुद्र में मिलती हैं। जैसे—

१ सिन्धु, २, रोहितांशा, ३ हरिकान्ता, ४ सीतोदा, ५ नारीकान्ता, ६ रूप्यकूला, ७ रक्तवती (५३)।

५४—धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं सत्त वासा पण्णत्ता, तं जहा—भरहे, (एरवते, हेमवते, हेरण्णवते, हरिवासे, रम्मगवासे), महाविदेहे।

धातकीषण्डद्वीप के पूर्वार्ध में सात वर्ष (क्षेत्र) कहे गये हैं। जैसे—

१ भरत, २ ऐरवत, ३ हैमवत, ४ हैरण्यवत, ५ हरिवर्ष, ६ रम्यक वर्ष, ७ महाविदेह (५४)।

५५—धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं सत्त वासहरपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—चुल्लहिमवंते, (महाहिमवंते, णिसढे, णीलवंते, रुप्पी, सिहरी), मंदरे।

धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में सात वर्षधर पर्वत कहे गये हैं। जैसे—

१ क्षुद्रहिमवान्, २ महाहिमवान्, ३ निषध, ४ नीलवान, ५ रुक्मी ६ शिखरी, ७ मन्दर। (५५)

५६—धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं सत्त महाणदीओ पुरत्थाभिमुहीओ कालोयसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा—गंगा, (रोहिता, हरी, सीता, णरकंता, सुवण्णकूला), रत्ता।

धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में सात महानदियां पूर्वाभिमुख होती हुई कालोदसमुद्र में मिलती हैं। जैसे—

१ गंगा, २ रोहिता, ३ हरित्, ४ सीता, ५ नरकान्ता, ६ सुवर्णकूला ७ रक्ता। (५६)

५७—धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं सत्त महाणदीओ पच्चत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा—सिंधू, (रोहितंसा, हरिकंता, सीतोदा, णारिकंता, रुप्पकूला), रत्तावती।

धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में सात महानदियां पश्चिमाभिमुख होती हुई लवणसमुद्र में मिलती हैं। जैसे—

१ सिन्धु, २ रोहितांशा, ३ हरिकान्ता, ४ सीतोदा, ५ नारीकान्ता, ६ रूप्यकूला ७ रक्तवती। (५७)

५८—धायइसंडदीवे पच्चत्थिमद्धे णं सत्त वासा एवं चेव, णवरं—पुरत्थाभिमुहीओ लवण समुद्दं समप्पेंति, पच्चत्थाभिमुहीओ कालोदं। सेसं तं चेव।

धातकीषण्ड द्वीप के पश्चिमार्ध में सात वर्ष, सात वर्षधर पर्वत और सात महानदियां इसी प्रकार-धातकीखण्ड के पूर्वार्ध के समान ही हैं। अन्तर केवल इतना है कि पूर्वाभिमुखी नदियां लवण समुद्र में और पश्चिमाभिमुखी नदियां कालोद समुद्र में मिलती हैं। शेष सब वर्णन वही है (५८)।

५९—पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे णं सत्त वासा तहेव, नवरं—पुरत्थाभिमुहीओ पुक्खरोदं समुद्दं समप्पेंति, पच्चत्थाभिमुहीओ कालोदं समुद्दं समप्पेंति। सेसं तं चेव।

पुष्करवर-द्वीप के पूर्वार्ध में सात वर्ष, सात वर्षधर पर्वत, और सात महानदियां तथैव है, अर्थात् धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध के समान ही हैं। अन्तर केवल इतना है कि पूर्वाभिमुखी नदियां पुष्करोदसमुद्र में और पश्चिमाभिमुखी नदियां कालोद समुद्र में मिलती हैं (५९)।

६०—एवं पच्चत्थिमद्धे वि नवरं—पुरत्थाभिमुहीओ कालोदं समुद्दं समप्पेंति, पच्चत्थाभिमुहीओ पुक्खरोदं समप्पेंति। सवत्थ वासा वासहरपव्वता णदीओ य भाणितव्वाणि।

इसी प्रकार अर्धपुष्करवर द्वीप के पश्चिमार्ध में सात वर्ष, सात वर्षधर पर्वत और सात महानदियां धातकीषण्ड द्वीप के पश्चिमार्ध के समान ही है। अन्तर केवल इतना है कि पूर्वाभिमुखी नदियां कालोद समुद्र में और पश्चिमाभिमुखी नदियां पुष्करोद समुद्र में जा कर मिलती हैं। (६०)

कुलकर सूत्र

६१—जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे तीताए उस्सप्पिणीए सत्त कुलगरा हुत्था, तं जहा—

सग्रहणी-गाथा

मित्तदामे सुदामे य, सुपासे य सयपभे ।
विमलघोसे सुघोसे य, महाघोसे य सत्तमे ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे भारत वर्ष मे अतीत उत्सर्पिणी काल मे सात कुलकर हुए । जैसे—
१ मित्रदामा, २ सुदामा, ३ सुपार्श्व, ४ स्वयप्रभ, ५ विमलघोष, ६ सुघोष, ७ महाघोष (६१) ।

६२—जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए सत्त कुलगरा हुत्था—
पढमित्थ विमलवाहण, चक्खुम जसम चउत्थमभिचदे ।
तत्तो य पसेणइए, मरुदेवे चेव णाभी य ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे भारतवर्ष मे इस अवसर्पिणी म सात कुलकर हुए हैं । जैसे—
१ विमलवाहन, २ चक्षुष्मान्, ३ यशस्वी, ४ अभिचन्द्र, ५ प्रसेनजित्, ६ मरुदेव, ७ नाभि (६२) ।

६३—एएसि ण सत्तण्ह कुलगराण सत्त भारियाओ हुत्था, त जहा—
चदजस चदकता, सुरूव पडिरूव चक्खुकता य ।
सिरिकता मरुदेवी, कुलकरइत्थीण णामाइ ॥१॥

इन सातो कुलकरो की सात भार्याए थी । जैसे—
१ चन्द्रयशा, २ चन्द्रकान्ता, ३ सुरूपा, ४ प्रतिरूपा, ५ चक्षुष्कान्ता, ६ श्रीकान्ता, ७ मरुदेवी (६३) ।

६४—जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए सत्त कुलकरा भविस्सति—
मित्तवाहण सुभोमे य, सुप्पभे य सयपभे ।
दत्ते सुहुमे सुबधू य, आगमिस्सेण होक्खती ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष मे आगामी उत्सर्पिणी काल मे सात कुलकर होगे । जैसे—
१ मित्रवाहन, २ सुभौम, ३ सुप्रभ ४ स्वयम्प्रभ ५ दत्त, ६ सूक्ष्म, ७ सुबन्धु (६४) ।

६५—विमलवाहणे ण कुलकरे सत्तविधा रुक्खा उवभोगत्ताए हव्वमार्गाच्छसु, त जहा—
मतगया य भिगा, चित्तगा चेव होंति चित्तरसा ।
मणियगा य अणियणा, सत्तमगा कप्परुक्खा य ॥१॥

विमलवाहन कुलकर के समय के सात प्रकार के (कल्प) वृक्ष निरन्तर उपभोग मे आते थे । जैसे—

१ मदाङ्गक, २ भृङ्ग, ३ चित्राङ्ग, ४ चित्ररस, ५ मण्यग, ६ अनग्नक, ७ कल्पवृक्ष । (६५)

६६—सत्तविधा दडनीती पण्णत्ता, त जहा—हक्कारे, मक्कारे, धिक्कारे, परिभासे, मडलबधे, चारए, छविच्छेदे ।

दण्ड नीति सात प्रकार की कही गई है । जैसे—

१ हाकार—हा ! तूने यह क्या किया ?

२ माकार—आगे ऐसा मत करना ।
३ धिक्कार—धिक्कार है तुझे ! तूने ऐसा किया ?
४ परिभाष—अल्प काल के लिए नजर-कद रखने का आदेश देना ।
५ मण्डलबन्ध—नियत क्षेत्र से बाहर न जाने का आदेश देना ।
६ चारक—जेलखाने मे बन्द रखने का आदेश देना ।
७ छविच्छेद—हाथ पैर आदि शरीर के अग काटने का आदेश देना ।

विवेचन—उक्त सात दण्डनीतियो मे से पहली दण्डनीति का प्रयोग पहले और दूसरे कुलकर ने किया । इसके पूर्व सभी मनुष्य अकर्मभूमि या भोगभूमि मे जीवन-यापन करते थे । उस समय युगल धर्म चल रहा था । पुत्र पुत्री एक साथ उत्पन्न होते, युवावस्था मे वे दाम्पत्य जीवन बिताते और मरते समय युगल-सन्तान को उत्पन्न करके कालगत हो जाते थे । प्रथम कुलकर के समय मे उक्त व्यवस्था मे कुछ अन्तर पडा और सन्तान प्रसव करने के बाद भी वे जीवित रहने लगे और भोगोप-के साधन घटने लगे । उस समय पारस्परिक सघर्ष दूर करने के लिए लोगो की भूमि-सीमा बाधी गई और उसमे वृक्षो से उत्पन्न फलादि खाने की व्यवस्था की गई । किन्तु काल के प्रभाव से जब वृक्षो मे भी फल-प्रदान-शक्ति घटने लगी और एक युगल दूसरे युगल की भूमि सीमा मे प्रवेश कर फलादि तोडने और खाने लगे, तब अपराधी व्यक्तियो को कुलकरो के सम्मुख लाया जाने लगा । उस समय लोग इतने सरल और सीधे थे कि कुलकर द्वारा 'हा' (हाय, तुमने क्या किया ?) इतना मात्र कह देने पर आगे अपराध नही करते थे । इस प्रकार प्रथम दण्डनीति दूसरे कुलकर के समय तक चली ।

किन्तु काल के प्रभाव से जब अपराध पर अपराध करने की प्रवृत्ति बढी तो तीसरे-चौथे कुलकर ने 'हा' के साथ 'मा' दण्डनीति जारी की । पीछे जब और भी अपराधप्रवृत्ति बढी तब पाचवें कुलकर ने 'हा, मा' के साथ 'धिक्' दण्डनीति जारी की । इस प्रकार स्वल्प अपराध के लिए 'हा', उससे बडे अपराध के लिए 'मा' और उससे बडे अपराध के लिए 'धिक्' दण्डनीति का प्रचार अन्तिम कुलकर के समय तक रहा ।

जब कुलकर-युग समाप्त हो गया और कर्मभूमि का प्रारम्भ हुआ—तब इन्द्र ने भ० ऋषभदेव का राज्याभिषेक किया और लोगो को उनकी आज्ञा मे चलने का आदेश दिया । भ० ऋषभदेव के समय मे जब अपराधप्रवृत्ति दिनो-दिन बढने लगी, तब उन्होने चौथी परिभाष और पाचवी मण्डल-बन्ध दण्डनीति का उपयोग किया ।

तदनन्तर अपराध प्रवृत्तियो की उग्रता बढने पर भरत चक्रवर्ती ने अन्तिम चारक और छविच्छेद इन दो दण्डनीतियो का प्रयोग करने का विधान किया ।

कुछ आचार्यो का मत है कि भ० ऋषभदेव ने तो कर्मभूमि की ही व्यवस्था की । अन्तिम चारो दण्डनीतियो का विधान भरत चक्रवर्ती ने किया है । इस विषय मे विभिन्न आचार्यों के विभिन्न अभिमत है ।

चक्रवर्ति रत्न-सूत्र

६७—एगमेगस्स ण रण्णो चाउरतचक्कवट्टिस्स सत्त एगिंदियरतणा पण्णत्ता, त जहा—चक्क-रयणे, छत्तरयणे, चम्मरयणे, दडरयणे, असिरयणे, मणिरयणे, काकणिरयणे ।

प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के सात एकेन्द्रिय रत्न कहे गये हैं। जैसे—
१ चक्ररत्न, २ छत्ररत्न, ३ चमररत्न, ४ दण्डरत्न, ५ असिरत्न, ६ मणिरत्न
७ काकणीरत्न (६७)।

६८—एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स सत्त पंचिंदियरतणा पण्णत्ता, तं जहा—सेणावतिरयणे, गाहावतिरयणे, वड्ढइरयणे, पुरोहितरयणे, इत्थिरयणे, आसरयणे, हत्थिरयणे।

प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के सात पंचेन्द्रिय रत्न कहे गये हैं। जैसे—
१ सेनापतिरत्न, २ गृहपतिरत्न, ३ वर्धकीरत्न, ४ पुरोहितरत्न, ५ स्त्रीरत्न
६ अश्वरत्न ७ हस्तिरत्न (६८)।

विवेचन—उपर्युक्त दो सूत्रों में चक्रवर्ती के १४ रत्नों का नाम-निर्देश किया गया है। उनमें से प्रथम सूत्र में सात एकेन्द्रिय रत्नों के नाम हैं। चक्र, छत्र आदि एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिक जीवों के द्वारा छोड़े गये काय से निर्मित हैं, अतः उन्हें एकेन्द्रिय कहा गया है। तिलोय पण्णत्ति में चक्रादि सात रत्नों को अचेतन और सेनापति आदि को सचेतन रत्न कहा गया है।[1] किसी उत्कृष्ट या सर्वश्रेष्ठ वस्तु को रत्न कहा जाता है। चक्रवर्ती के ये सभी वस्तुएं अपनी-अपनी जाति में सर्वश्रेष्ठ होती हैं।

प्रवचनसारोद्धार में एकेन्द्रिय रत्नों का प्रमाण भी बताया गया है—चक्र, छत्र और दण्ड व्याम-प्रमाण हैं। अर्थात् तिरछे फैलाये हुए दोनों हाथों की अंगुलियों के अन्तराल जितने बड़े होते हैं। चमररत्न दो हाथ लम्बा होता है। असि (खड्ग) बत्तीस अंगुल का, मणि चार अंगुल लम्बा और दो अंगुल चौड़ा होता है। काकणीरत्न की लम्बाई चार अंगुल होती है। रत्नों का यह माप प्रत्येक चक्रवर्ती के अपने-अपने अंगुल से जानना चाहिये।

चक्र, छत्र, दण्ड और असि, इन चार रत्नों की उत्पत्ति चक्रवर्ती की आयुध शाला में, तथा चर्म, मणि, और काकणी रत्न की उत्पत्ति चक्रवर्ती के श्रीगृह में होती है। सेनापति, गृहपति, वर्धकी और पुरोहित इन पुरुषरत्नों की उत्पत्ति चक्रवर्ती की राजधानी में होती है। अश्व और हस्ती इन दो पंचेन्द्रिय तिर्यंच रत्नों की उत्पत्ति वैताढ्य (विजयार्ध) गिरि की उपत्यकाभूमि (तलहटी) में होती है। स्त्रीरत्न की उत्पत्ति वैताढ्य पर्वत की उत्तर दिशा में अवस्थित विद्याधर श्रेणी में होती है।

१ सेनापतिरत्न—यह चक्रवर्ती का प्रधान सेनापति है जो सभी मनुष्यों को जीतने वाला और अपराजेय होता है।

२ गृहपतिरत्न—यह चक्रवर्ती के गृह की सदा सर्वप्रकार से व्यवस्था करता है और उसके घर के भण्डार को सदा धन-धान्य से भरा पूरा रखता है।

३ पुरोहितरत्न—यह राज पुरोहित चक्रवर्ती के शान्ति-कर्म आदि कार्यों को करता है, तथा युद्ध के लिए प्रयाण काल आदि को बतलाता है।

४ हस्तिरत्न—यह चक्रवर्ती की गजशाला का सर्वश्रेष्ठ हाथी होता है और सभी मांगलिक अवसरों पर चक्रवर्ती इसी पर सवार होकर निकलता है।

५ अश्वरत्न—यह चक्रवर्ती की अश्वशाला का सर्वश्रेष्ठ अश्व होता है और युद्ध या अन्यत्र लम्बे दूर जाने में चक्रवर्ती इसका उपयोग करता है।

---

१ चक्कादि वररयणाइं जीवाजीवप्पभेददुविहाइं। (तिलोयपण्णत्ती अ० ४ गा १३६७)

६ वधकीरत्न—यह सभी बढई, मिस्त्री या कारीगरो का प्रधान, गृहनिर्माण मे कुशल, नदिया को पार करने के लिए पुल निर्माणादि करने वाला श्रेष्ठ अभियन्ता (इजिनीयर) होता है।

७ स्त्रीरत्न—यह चक्रवर्ती के विशाल अन्त पुर मे सवश्रेष्ठ सौन्दय वाली चक्रवर्ती की सवाधिक प्राणवल्लभा पट्टरानी होती है।

८ चक्ररत्न—यह सभी आयुधो मे श्रेष्ठ और अदम्य शत्रुओ को भी दमन करने वाला आयुधरत्न है।

९ छत्ररत्न—यह सामान्य या साधारण काल मे यथोचित प्रमाणवाला चक्रवर्ती के ऊपर छाया करने वाला होता है। किन्तु अकस्मात वर्षाकाल होने पर युद्धार्थ गमन करने वाले बारह योजन लम्बे चौडे सारे स्कन्धावार के ऊपर फैलकर धूप और हवा-पानी से सब की रक्षा करता है।

१० चमरत्न—प्रवास काल मे बारह योजन लम्बे-चौडे छत्र के नीचे प्रात काल बोये गये शालि धान्य के बीजो को मध्याह्न मे उपभोग योग्य बना देने मे यह समर्थ होता है।

११ मणिरत्न—यह तीन कोण और छह अश वाला मणि प्रवास या युद्ध काल म रात्रि के समय चक्रवर्ती के सारे कटक मे प्रकाश करता है। तथा वैताढ्यगिरि की तमिस्र और खडप्रपात गुफाओ से निकलते समय हाथी के शिर के दाहिनी ओर बाध देने पर सारी गुफाओ मे प्रकाश करता है।

११ काकिणीरत्न—यह आठ सौवर्णिक-प्रमाण, चारो ओर से सम होता है। तथा सब प्रकार के विषो का प्रभाव दूर करता है।

१३ खड्गरत्न—यह अप्रतिहत शक्ति और अमोघ प्रहार वाला होता है।

१४ दण्डरत्न—यह वज्रमय दण्ड शत्रु सैन्य का मदन करने वाला, विषम भूमि को सम करने वाला और सवत्र शान्ति स्थापित करने वाला रत्न है। तिलोयपण्णत्ति में चेतन रत्नो के नाम इस प्रकार मे उपलब्ध हैं—

१ अश्वरत्न—पवनजय। २ गजरत्न—विजयगिरि। ३ गृहपतिरत्न—भद्रमुख।
४ स्थपति (वधकि) रत्न—कामवृष्टि। ५ सेनापतिरत्न—अयोध्य। ६ स्त्रीरत्न—सुभद्रा।
७ पुरोहित रत्न—बुद्धिरत्न।

दु षमा-लक्षण सूत्र

६९—सत्तहि ठाणेहि ओगाढ दुस्सम जाणेज्जा, त जहा—अकाले वरिसइ, काले ण वरिसइ, असाधू पुज्जति, साधू ण पुज्जति गुरुहि जणो मिच्छ पडिवण्णो, मणोदुहता, वइदुहता।

सात लक्षणो से दु षमा काल का आना या प्रकर्ष को प्राप्त होना जाना जाता है। जसे—

१ अकाल मे वर्षा होने से।
२ समय पर वर्षा न होने से।
३ असाधुओ की पूजा होने से।
४ साधुओ की पूजा न होने से।
५ गुरुजनो के प्रति लोगो का असद् व्यवहार होने से।

६ मन मे दु ख या उद्वेग होने से।
७ वचन-व्यवहार सबधी दु ख से (६६)।

सुषमा लक्षण-सूत्र

७०—सत्तहिं ठाणेहिं ओगाढं सुसमं जाणेज्जा, तं जहा—अकाले ण वरिसइ, काले वरिसइ, असाधू ण पुज्जंति, साधू पुज्जंति, गुरूहिं जणो सम्मं पडिवण्णो, मणोसुहता, वइसुहता।

सात लक्षणो से सुषमा काल का आना या प्रकर्षता को प्राप्त हो जाना जाता है। जैसे—
१ अकाल मे वर्षा नही होने से।
२ समय पर वर्षा होने से।
३ असाधुओं की पूजा नही होने से।
४ साधुओ की पूजा होने से।
५ गुरुजनो के प्रति लोगो का सद्‌व्यवहार होने से।
६ मन मे सुख का सचार होने से।
७ वचन व्यवहार मे सद्-भाव प्रकट होन से (७०)।

जीव सूत्र

७१—सत्तविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—णेरइया, तिरिक्खजोणिया, तिरिक्खजोणिणीओ, मणुस्सा, मणुस्सीओ, देवा, देवीओ।

ससार समापन्नक जीव सात प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ नैरयिक, २ तिर्यग्योनिक, ३ तिर्यचनी, ४ मनुष्य, ५ मनुष्यनी, ६ देव, ७ देवी (७१)।

आयुर्भेद सूत्र

७२—सत्तविधे आउभेदे पण्णत्ते, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

अज्झवसाण णिमित्ते, आहारे वेयणा पराघाते।
फासे आणापाणू सत्तविधं भिज्जए आउ ॥१॥

आयुर्भेद (अकाल मरण) के सात कारण कहे गये हैं। जैसे—
१ राग, द्वेष, भय आदि भावो की तीव्रता से।
२ शस्त्राघात आदि के निमित्त से।
३ आहार की हीनाधिकता या निरोध से।
४ ज्वर, आतक, रोग आदि की तीव्र वेदना से।
५ पर के आघात से, गड्ढे आदि मे गिर जाने से।
६ साप आदि के स्पर्श से—काटने से।
७ आन-पान—श्वासोच्छ्वास के निरोध से।

विवेचन—सप्तम स्थान के अनुरोध से यहां अकाल मरण के सात कारण बताये गये हैं। इनके अतिरिक्त, रक्त-क्षय से, सक्लेश की वृद्धि से, हिम-पात से, वज्र-पात से, अग्नि मे, उल्कापात से, जल प्रवाह मे, गिरि और वृक्षादि से नीचे गिर पडने से भी अकाल मे आयु का भेदन या विनाश हो जाता है।

जीव सूत्र

७३—सत्तविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सतिकाइया, तसकाइया अकाइया।

अहवा—सत्तविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—कण्हलेसा, (णीललेसा, काउलेसा, तेउलेसा, पम्हलेसा), सुक्कलेसा, अलेसा।

सर्व जीव सात प्रकार के कहे गये हैं। जसे—

१ पृथिवीकायिक, २ अप्कायिक, ३ तेजस्कायिक, ४ वायुकायिक ५ वनस्पतिकायिक, ६ त्रसकायिक ७ अकायिक (७३)।

अथवा—सव जीव सात प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ कृष्णलेश्या वाले, २ नील लेश्या वाले, ३ कापोत लेश्या वाले, ४ तेजो लेश्या वाले, ५ पद्म लेश्या वाले, ६ शुक्ल लेश्या वाले, ७ अलेश्य।

ब्रह्मदत्त-सूत्र

७४—बभदत्ते ण राया चाउरतचक्कवट्टी सत्त धणूइ उड्ढ उच्चत्तेण, सत्त य वाससयाइ परमाउ पालइत्ता कालमासे काल किच्चा अधेसत्तमाए पुढवीए अप्पतिट्ठाणे णरए णेरइयत्ताए उववण्णे।

चातुरन्त चक्रवर्ती राजा ब्रह्मदत्त सात धनुष ऊचे थे। वे सात सौ वर्ष की उत्कृष्ट आयु का पालन कर काल-मास मे काल कर नीचे सातवी पृथिवी के अप्रतिष्ठान नरक मे नारक रूप से उत्पन्न हुए (७४)।

मल्ली प्रव्रज्या सूत्र

७५—मल्ली ण अरहा अप्पसत्तमे मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइए, त जहा—मल्ली विदेहरायवरकण्णगा, पडिबुद्धी इक्खागराया, चदच्छाये अगराया, रुप्पी कुणालाधिपती, सखे कासीराया, अदीणसत्तू कुरुराया, जितसत्तू पचालराया।

मल्ली अर्हन् अपने सहित सात राजाओ के साथ मुण्डित होकर अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित हुए। जैसे—

१ विदेहराज की वरकन्या मल्ली।
२ साकेत निवासी इक्ष्वाकुराज प्रतिबुद्धि।
३ अग जनपद का राजा चम्पानिवासी चन्द्रच्छाय।
४ कुणाल जनपद का राजा श्रावस्ती-निवासी रुक्मी।
५ काशी जनपद का राजा वाराणसी-निवासी शख।
६ कुरु देश का राजा हस्तिनापुर-निवासी अदीनशत्रु।
७ पञ्चाल जनपद का राजा कम्पिल्लपुर-निवासी जितशत्रु (७५)।

दर्शन-सूत्र

७६—सत्तविहे दसणे पण्णत्ते, त जहा—सम्मद्दसणे, मिच्छद्दसणे, सम्मामिच्छदसणे, चक्खुदसणे, अचक्खुदसणे, ओहिदसणे, केवलदसणे।

दर्शन सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ सम्यग्दर्शन—वस्तु के स्वरूप का यथार्थ श्रद्धान।
२ मिथ्यादर्शन—वस्तु के स्वरूप का अयथार्थ श्रद्धान।
३ सम्यग्मिथ्यादर्शन—यथार्थ और अयथार्थ रूप मिश्र श्रद्धान।
४ चक्षुदर्शन—आख से सामान्य प्रतिभास रूप अवलोकन।
५ अचक्षुदर्शन—आख के सिवाय शेष इन्द्रियों एव मन से होने वाला सामान्य प्रतिभास रूप अवलोकन।
६ अवधिदर्शन—अवधिज्ञान होने के पूर्व अवधिज्ञान के विषयभूत पदार्थ का सामान्य प्रतिभासरूप अवलोकन।
७ केवल दर्शन—समस्त पदार्थों के सामान्य धर्मों का अवलोकन (७६)।

छद्मस्थ-केवलि-सूत्र

७७—छउमत्थ-वीयरागे ण मोहणिज्जवज्जाओ सत्त कम्मपयडीओ वेदेति, त जहा—णाणावरणिज्ज, दसणावरणिज्ज, वेयणिज्ज, आउय, णाम, गोत, अतराइय।

छद्मस्थ वीतरागी (ग्यारहवें और बारहवे गुणस्थानवर्ती) साधु मोहनीय कर्म को छोड कर शेष सात कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है जसे—

१ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ३ वेदनीय, ४ आयुष्य, ५ नाम, ६ गोत्र, ७ अन्तराय (७७)।

७८—सत्त ठाणाइ छउमत्थे सव्वभावेण ण याणति ण पासति, त जहा—धम्मत्थिकाय, अधम्मत्थिकाय, आगासत्थिकाय, जीव असरीरपडिबद्ध, परमाणुपोग्गल, सद्द, गध।

एयाणि चेव उप्पण्णणाण (दसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेण) जाणति पासति, त जहा—धम्मत्थिकाय, (अधम्मत्थिकाय, आगासत्थिकाय जीव असरीरपडिबद्ध, परमाणुपोग्गल सद्द), गध।

छद्मस्थ जीव सात पदार्थो का सम्पूर्ण रूप से न जानता है और न देखता है। जसे —

१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ शरीररहित जीव, ५ परमाणु पुद्गल, ६ शब्द, ७ गन्ध।

जिनको केवलज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है वे अर्हन्, जिन, केवली इन पदार्थों का सम्पूर्ण रूप से जानते देखते हैं। जैसे—

१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ शरीरमुक्त जीव, ५ परमाणुपुद्गल, ६ शब्द, ७ गन्ध (७८)।

महावीर सूत्र

७९—समणे भगव महावीरे वइरोसमणारायसघयणे समचउरस सठाण सठिते सत्त रयणीओ उड्ढ उच्चत्तेण हुत्था ।

वज्र-ऋषभ-नाराचसहनन और समचतुरस्र सस्थान से सस्थित श्रमण भगवान् महावीर के शरीर की ऊचाई सात रत्नि-प्रमाण थी (७९) ।

विकथा-सूत्र

८०—सत्त विकहाओ पण्णत्ताओ, त जहा—इत्थिकहा, भत्तकहा, देसकहा, रायकहा, मिउका लुणिया, दसणभेयणी, चरित्तभेयणी ।

विकथाए सात कही गई है । जैसे—

१ स्त्रीकथा—विभिन्न देश की स्त्रियो की कथा-वार्त्तालाप ।
२ भक्तकथा—विभिन्न देशो के भोजन पान सबधी वार्त्तालाप ।
३ देशकथा—विभिन्न देशो के रहन-सहन सबधी वार्त्तालाप ।
४ राज्यकथा—विभिन्न राज्यो के विधि-विधान आदि की कथा-वार्त्तालाप ।
५ मृदु कारुणिकी—इष्ट-वियोग-प्रदर्शक करुणरस-प्रधान कथा ।
६ दर्शन-भेदिनी—सम्यग्दर्शन का विनाश करने वाली कथा-वार्त्तालाप ।
७ चारित्र-भेदिनी—सम्यकचारित्र का विनाश करने वाली बाते करना (८०) ।

आचार्य उपाध्याय अतिशेष-सूत्र

८१—आयरिय-उवज्झायस्स ण गणसि सत्त अइसेसा पण्णत्ता, त जहा—

१ आयरिय उवज्झाए अतो उवस्सयस्स पाए णिगिज्झिय णिगिज्झिय पप्फोडेमाणे वा पमज्जमाणे वा णातिक्कमति ।
२ (आयरिय उवज्झाए अतो उवस्सयस्स उच्चारपासवण विगिचमाणे वा विसोधमाणे वा णातिक्कमति ।
३ आयरिय उवज्झाए पभू इच्छा वेयावडिय करेज्जा, इच्छा णो करेज्जा ।
४ आयरिय उवज्झाए अतो उवस्सयस्स एगरात वा दुरात वा एगगो वसमाणे णातिक्कमति ।
५ आयरिय उवज्झाए) बाहि उवस्सयस्स एगरात वा दुरात वा [एगओ ?] वसमाणे णातिक्कमति ।
६ उवकरणातिसेसे ।
७ भत्तपाणातिसेसे ।

आचार्य और उपाध्याय के गण मे सात अतिशय कहे गये है । जैसे—

१ आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के भीतर दोनो पैरो की धूलि को झाडते हुए, प्रमार्जित करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते है ।
२ आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के भीतर उच्चार-प्रस्रवण का व्युत्सर्ग और विशोधन करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नही करते हैं ।

३ आचार्य और उपाध्याय स्वतन्त्र है, यदि इच्छा हो तो दूसरे साधु की वैयावृत्त्य करें, यदि इच्छा न हो तो न करें।
४ आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के भीतर एक रात या दो रात अकेले रहते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते हैं।
५ आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के बाहर एक रात या दो रात अकेले रहते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते हैं।
६ उपकरण की विशेषता—आचार्य और उपाध्याय अन्य साधुओं की अपेक्षा उज्ज्वल वस्त्र-पात्रादि रख सकते हैं।
७ भक्त पान विशेषता—स्वास्थ्य और संयम की रक्षा के अनुकूल आगमानुकूल विशिष्ट खान पान कर सकते है (८१)।

संयम असंयम-सूत्र

८२—सत्तविधे संजमे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइयसंजमे, (आउकाइयसंजमे, तेउकाइयसंजमे, वाउकाइयसंजमे, वणस्सइकाइयसंजमे), तसकाइयसंजमे, अजीवकाइयसंजमे।

संयम सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ पृथिवीकायिक संयम, २ अप्कायिक-संयम, ३ तेजस्कायिक संयम, ४ वायुकायिक-संयम,
५ वनस्पतिकायिक-संयम, ६ त्रसकायिक संयम, ७ अजीवकायिक-संयम—अजीव वस्तुओं के ग्रहण और उपयोग का त्यागना (८२)।

८३—सत्तविधे असंजमे पण्णत्ते तं जहा—पुढविकाइयअसंजमे, (आउकाइयअसंजमे, तेउकाइयअसंजमे, वाउकाइयअसंजमे, वणस्सइकाइयअसंजमे), तसकाइयअसंजमे, अजीवकाइय-असंजमे।

असंयम सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ पृथिवीकायिक-असंयम, २ अप्कायिक असंयम, ३ तेजस्कायिक असंयम, ४ वायुकायिक-असंयम ५ वनस्पतिकायिक असंयम, ६ त्रसकायिक-असंयम, ७ अजीवकायिक असंयम—अजीव वस्तुओं के ग्रहण और परिभोग का त्याग न करना (८३)।

आरंभ-सूत्र

८४—सत्तविहे आरंभे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइयआरंभे (आउकाइयआरंभे, तेउकाइय-आरंभे, वाउकाइयआरंभे, वणस्सइकाइयआरंभे, तसकाइयआरंभे), अजीवकाइयआरंभे।

आरम्भ सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ पृथ्वीकायिक आरम्भ, २ अप्कायिक आरम्भ, ३ तेजस्कायिक आरम्भ ४ वायुकायिक-आरम्भ, ५ वनस्पतिकायिक-आरम्भ, ६ त्रसकायिक आरम्भ, ७ अजीवकायिक-आरम्भ (८४)।

८५—(सत्तविहे अणारंभे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइयअणारंभे।

अनारम्भ सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—पृथ्वी कायिक अनारंभ आदि।

१ पृथ्वीकायिक अनारम्भ, २ अप्कायिक अनारम्भ, ३ तेजस्कायिक-अनारम्भ, ४ वायुकायिक-अनारम्भ, ५ वनस्पतिकायिक-अनारम्भ, ६ त्रसकायिक-अनारम्भ, ७ अजीवकायिक-अनारम्भ (८५)।

८६—सत्तविहे सारंभे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइयसारंभे।

सरम्भ सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ पृथ्वीकायिक-सरम्भ, २ अप्कायिक-सरम्भ, ३ तेजस्कायिक-सरम्भ, ४ वायुकायिक-सरम्भ, ५ वनस्पतिकायिक-सरम्भ, ६ त्रसकायिक सरम्भ, ७ अजीवकायिक-सरम्भ (८६)।

८७—सत्तविहे असारंभे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइयअसारंभे।

असरम्भ सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ पृथ्वीकायिक-असरम्भ, २ अप्कायिक-असरम्भ, ३ तेजस्कायिक-असरम्भ, ४ वायुकायिक-असरम्भ, ५ वनस्पतिकायिक असरम्भ, ६ त्रसकायिक-असरम्भ ७ अजीव-कायिक-असरम्भ (८७)।

८८—सत्तविहे समारंभे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइयसमारंभे।

समारम्भ सात प्रकार का कहा गया है। जसे—
१ पृथ्वीकायिक-समारम्भ, २ अप्कायिक-समारम्भ, ३ तेजस्कायिक-समारम्भ, ४ वायुकायिक-समारम्भ, ५ वनस्पतिकायिक-समारम्भ, ६ त्रसकायिक-समारम्भ, ७ अजीवकायिक-समारम्भ (८८)।

८९—सत्तविहे असमारंभे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइयअसमारंभे)।

असमारम्भ सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ पृथ्वीकायिक-असमारम्भ, २ अप्कायिक-असमारम्भ, ३ तेजस्कायिक-असमारम्भ, ४ वायुकायिक-असमारम्भ, ५ वनस्पतिकायिक असमारम्भ, ६ त्रसकायिक-असमारम्भ, ७ अजीवकायिक-असमारम्भ (८९)।

योनिस्थिति सूत्र

९०—अध भंते! अदसि-कुसुम्भ कोद्दव कगु रालग वरट्ट-कोदूसग सण सरिसव मूलग-बीयाण—एतेसि णं धण्णाणं कोट्ठाउत्ताणं पल्लाउत्ताणं (मंचाउत्ताणं मालाउत्ताणं ओलित्ताणं लित्ताणं लंछियाणं मुद्दियाणं) पिहियाणं केवइयं कालं जोणी संचिट्ठति?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त संवच्छराइं। तेण परं जोणी पमिलायति (तेण परं जोणी पविद्धंसति, तेण परं जोणी विद्धंसति, तेण परं बीए अबीए भवति, तेण परं) जोणीवोच्छेदे पण्णत्ते।

प्रश्न—हे भगवन् ! अलसी, कुसुम्भ, कोद्रव, कंगु, राल, वरट (गोल चना), कोदूषक (कोद्रव-विशेष), सन, सरसों, मूलक बीज, ये धान्य जो कोष्ठागार-गुप्त, पल्यगुप्त, मचगुप्त, मालागुप्त, अवलिप्त, लिप्त, लाछित, मुद्रित, पिहित है, उनकी योनि (उत्पादक शक्ति) कितने काल तक रहती है ?

उत्तर—हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सात वर्ष तक उनकी योनि रहती है। उसके पश्चात् योनि म्लान हो जाती है, प्रविध्वस्त हो जाती है, विध्वस्त हो जाती है, बीज अबीज हो जाता है और योनि का व्युच्छेद हो जाता है (९०)।

स्थिति-सूत्र

९१—बायरआउकाइयाण उक्कोसेण सत्त वाससहस्साइ ठिती पण्णत्ता।

बादर अप्कायिक जीवो की उत्कृष्ट स्थिति सात हजार वर्ष की कही गई है (९१)।

९२—तच्चाए ण वालुयप्पभाए पुढवीए उक्कोसेण णेरइयाण सत्त सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता।

तीसरी वालुकाप्रभा पृथ्वी के नारक जीवो की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की कही गई है (९२)।

९३—चउत्थीए ण पकप्पभाए पुढवीए जहण्णेण णेरइयाण सत्त सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता।

चौथी पकप्रभा पृथ्वी के नारक जीवो की जघन्य स्थिति सात सागरोपम कही गई है (९३)।

अग्रमहिषी-सूत्र

९४—सक्कस्स ण देविदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो सत्त अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज वरुण की सात अग्रमहिषियां कही गई हैं (९४)।

९५—ईसाणस्स ण देविदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो सत्त अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल महाराज सोम की सात अग्रमहिषियां कही गई हैं (९५)।

९६—ईसाणस्स ण देविदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो सत्त अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल महाराज यम की सात अग्रमहिषियां कही गई हैं (९६)।

देव सूत्र

९७—ईसाणस्स ण देविदस्स देवरण्णो अब्भितरपरिसाए देवाण सत्त पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता।

देवेन्द्र देवराज ईशान के आभ्यन्तर परिषद् के देवो की स्थिति सात पल्योपम कही गई है (९७)।

९८—सक्कस्स ण देविदस्स देवरण्णो अग्गमहिसीण देवीण सत्त पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता।

देवेन्द्र देवराज शक्र की अग्रमहिषी देवियो की स्थिति सात पल्योपम कही गई है (९८)।

९९—सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाण देवीण उक्कोसेण सत्त पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता ।

सौधम कल्प मे परिगृहीता देवियो की उत्कृष्ट स्थिति सात पल्योपम कही गई है (९९) ।

१००—सारस्सयमाइच्चाण [देवाण ?] सत्त देवा सत्तदेवसता पण्णत्ता ।

सारस्वत और आदित्य लौकान्तिक देव स्वामीरूप मे सात हैं और उनके सात सौ देवो का परिवार कहा गया है (१००) ।

१०१—गद्दतोयतुसियाण देवाण सत्त देवा सत्त देवसहस्सा पण्णत्ता ।

गदतोय और तुषित लौकान्तिक देव स्वामीरूप मे सात हैं और उनके सात हजार देवो का परिवार कहा गया है (१०१) ।

१०२—सणकुमारे कप्पे उक्कोसेण देवाण सत्त सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता ।

सनत्कुमार कल्प मे देवो की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम कही गई है (१०२) ।

१०३—माहिंदे कप्पे उक्कोसेण देवाण सातिरेगाइ सत्त सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता ।

माहेन्द्र कल्प मे देवो की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक सात सागरोपम कही गई है (१०३) ।

१०४—बमलोगे कप्पे जहण्णेण देवाण सत्त सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता ।

ब्रह्मलोक कल्प मे देवो की जघन्य स्थिति सात सागरोपम कही गई है (१०४) ।

१०५—बंभलोय लतएसु ण कप्पेसु विमाणा सत्त जोयणसताइ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता ।

ब्रह्मलोक और लान्तक कल्प मे विमानो की ऊचाई सात सौ योजन कही गई है (१०५) ।

१०६—भवणवासीण देवाण भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेण सत्त रयणीओ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता ।

भवनवासी देवो के भवधारणीय शरीरो की उत्कृष्ट ऊचाई सात हाथ कही गई है (१०६) ।

१०७—(वाणमतराण देवाण भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेण सत्त रयणीओ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता ।

वाण-व्यन्तर देवो के भवधारणीय शरीरो की उत्कृष्ट ऊचाई सात हाथ कही गई है (१०७) ।

१०८—जोइसियाण देवाण भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेण सत्त रयणीओ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता ।

ज्योतिष्क देवो के भवधारणीय शरीरो की उत्कृष्ट ऊचाई सात रत्नि—हाथ कही गई है (१०८) ।

१०९—सोहम्मीसाणेसु ण कप्पेसु देवाण भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेण सत्त रयणीओ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता ।

सौधर्म और ईशान कल्प में देवों के भवधारणीय शरीरों की उत्कृष्ट ऊंचाई सात रत्नि कही गई है (१०६)।

नन्दीश्वरवर द्वीप-सूत्र

११०—णंदिस्सरवरस्स णं दीवस्स अंतो सत्त दीवा पण्णत्ता, तं जहा—जंबुद्दीवे, धायइसंडे, पोक्खरवरे, वरुणवरे, खीरवरे, घयवरे, खोयवरे।

नन्दीश्वरवर द्वीप के अन्तराल में सात द्वीप कहे गये हैं। जैसे—
१ जम्बूद्वीप, २ धातकीषण्ड, ३ पुष्करवर, ४ वरुणवर, ५ क्षीरवर, ६ घृतवर और ७ क्षोदवर द्वीप (११०)।

१११—णंदीसरवरस्स णं दीवस्स अंतो सत्त समुद्दा पण्णत्ता, तं जहा—लवणे, कालोदे, पुक्खरोदे, वरुणोदे, खीरोदे, घओदे, खोओदे।

नन्दीश्वरवर द्वीप के अन्तराल में सात समुद्र कहे गये हैं। जैसे—
१ लवण समुद्र, २ कालोद, ३ पुष्करोद, ४ वरुणोद, ५ क्षीरोद, ६ घृतोद और ७ क्षोदोदसमुद्र (१११)।

श्रेणि-सूत्र

११२—सत्त सेढीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—उज्जुआयता, एगतोवंका, दुहतोवंका, एगतोखहा, दुहतोखहा, चक्कवाला, अद्धचक्कवाला।

श्रेणियां (आकाश की प्रदेश-पंक्तियां) सात कही गई हैं। जैसे—
१ ऋजु-आयता—सीधी और लम्बी श्रेणी।
२ एकतो वक्रा—एक दिशा में वक्र श्रेणी।
३ द्वितो वक्रा—दो दिशाओं में वक्र श्रेणी।
४ एकतः खहा—एक दिशा में अंकुश के समान मुड़ी श्रेणी। जिसके एक ओर त्रसनाड़ी का आकाश है।
५ द्वितः खहा—दोनों दिशाओं में अंकुश के समान मुड़ी हुई श्रेणी। जिसके दोनों ओर त्रसनाड़ी के बाहर का आकाश है।
६ चक्रवाला—चाक के समान वलयाकार श्रेणी।
७ अर्धचक्रवाला—आधे चाक के समान अर्धवलयाकार श्रेणी (११२)।

विवेचन—आकाश के प्रदेशों की पंक्ति को श्रेणी कहते हैं। जीव और पुद्गल अपनी स्वाभाविक रूप से श्रेणी के अनुसार गमन करते हैं। किन्तु पर से प्रेरित होकर वे विश्रेणी-गमन भी करते हैं। प्रस्तुत सूत्र में सात प्रकार की श्रेणियों का निर्देश किया गया है। उनका खुलासा इस प्रकार है—

१ ऋजु-आयता श्रेणी—जब जीव और पुद्गल ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में, या अधोलोक से ऊर्ध्वलोक में सीधी श्रेणी से गमन करते हैं, कोई मोड़ नहीं लेते हैं। तब उसे ऋजु-आयता श्रेणी कहते हैं। इसका आकार (।) ऐसी सीधी रेखा के समान है।

२ एकतो वक्रा श्रेणी—यद्यपि आकाश की प्रदेश-श्रेणिया ऋजु (सीधी) ही होती हैं तथापि जीव या पुद्गल के मोडदार गमन के कारण उसे वक्र कहा जाता है। जब जीव और पुद्गल ऋजु गति से गमन करते हुए दूसरी श्रेणी मे पहुचते हैं, तब उन्हे एक मोड लेना पडता है, इसलिए उसे एकतोवक्रा श्रेणो कहा जाता है। जैसे कोई जीव या पुद्गल ऊर्ध्वदिशा से अधोदिशा की पश्चिम श्रेणी पर जाना चाहता है, तो पहले समय मे वह ऊपर से नीचे की ओर समश्रेणी से गमन करेगा। पुन दूसरे समय मे वहा से पश्चिम दिशा वाली श्रेणी पर गमन कर अभीष्ट स्थान पर पहुँचेगा। इस गति मे दो समय और एक मोड लगने से इसका आकार ∟ इस प्रकार का होगा।

३ द्वितो वक्रा श्रेणी—जिस गति मे जीव या पुद्गल को दोनो ओर मोड लेना पडे उसे द्वितोवक्रा श्रेणो कहते है। जैसे कोई जीव या पुद्गल आकाश-प्रदेशो की ऊपरी सतह के ईशान कोण से चलकर नीचे जाकर नैऋ त कोण मे जाकर उत्पन्न होता है, तो उसे पहले समय मे ईशान कोण से चलकर पूवदिशा-वाली श्रेणी पर जाना होगा। पुन वहा से सीधी श्रेणी द्वारा नीचे की ओर जाना होगा। पुन समरेखा पर पहुँच कर नऋ त कोण की ओर जाना होगा। इस प्रकार इस गति मे दो मोड और तीन समय लगेंगे। इसका आकार ऐसा ‾|__ होगा।

४ एकत खहा श्रेणी—जब कोई स्थावर जीव त्रसनाडी के वाम पाश्व से उसम प्रवेश कर उसके वाम या दक्षिण किसी पाश्व मे दो या तीन मोड लेकर नियत स्थान मे उत्पन्न होता है, तब उसके त्रसनाडी के बाहर का आकाश एक ओर से स्पृष्ट होता है, इसलिए उसे 'एकत खहा' श्रेणी कहा जाता है। इस का आकार ∟ ऐसा होता है।

५ द्वित खहा श्रेणी—जब कोई जीव मध्यलोक के पश्चिम लोकान्तवर्ती प्रदेश से चलकर मध्यलोक के पूर्वदिशावर्ती लोकान्तप्रदेश पर जाकर उत्पन्न होता है, तब उसके दोनो ही स्थलो पर लोकात का स्पश होने से द्वित खहा श्रेणी कहा जाता है। इसका आकार ⌐—०—¬ ऐसा होगा।

६ चक्रवाला श्रेणी—चक्र के समान गोलाकार गति को चक्रवाला श्रेणी कहते हैं। जैसे— O

७ अर्धचक्रवाला श्रेणी—आधे चक्र के समान आकार वाली श्रेणी को अर्धचक्रवाला कहते हैं। जैसे— C

इन दोनो श्रेणियो से केवल पुदगल का ही गमन होता है, जीव का नही।

अनीक-अनीकाधिपति सूत्र

११३—चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाधिपती पण्णत्ता, त जहा—पायत्ताणिए, पीढाणिए, कु जराणिए, महिसाणिए, रहाणिए, णट्टाणिए, गधव्वाणिए।

(दुमे पायत्ताणियाधिवती, सोदामे आसराया पीढाणियाधिवती, कुथू हत्थिराया कु जराणियाधिवती लोहितक्खे महिसाणियाधिवती), किण्णरे रधाणियाधिवती, रिट्ठे णट्टाणियाधिवती, गीतरती गधव्वाणियाधिवती।

असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर की सात सेनाएँ और सात सेनाधिपति कहे गये हैं। जैसे—
सेनाऐं—१ पदातिसेना, २ अश्वसेना, ३ हस्तिसेना, ४ महिषसेना, ५ रथसेना,
६ नर्तकसेना, ७ गन्धर्व-(गायक-) सेना।
सेनापति—१ द्रुम—पदातिसेना का अधिपति।

२ अश्वराज सुदामा—अश्वसेना का अधिपति ।
३ हस्तिराज कुंथु—हस्तिसेना का अधिपति ।
४ लोहिताक्ष—महिषसेना का अधिपति ।
५ किन्नर—रथसेना का अधिपति ।
६ रिष्ट—नर्तकसेना का अधिपति ।
७ गीतरति—गन्धर्वसेना का अधिपति (११३) ।

११४—बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सत्ताणिया, सत्त अणियाधिपती पण्णत्ता, तं जहा—पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए ।

महद्दुमे पायत्ताणियाधिपती जाव किंपुरिसे रधाणियाधिपती, महारिट्ठे णट्टाणियाधिपती, गीतजसे गंधव्वाणियाधिपती ।

वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बली की सात सेनाएँ और सात सेनापति कहे गये हैं । जैसे—
सेनाएँ—१ पदातिसेना, २ अश्वसेना, ३ हस्तिसेना ४ महिषसेना, ५ रथसेना
६ नर्तकसेना, ७ गन्धर्वसेना ।
सेनापति—१ महाद्रुम—पदातिसेना का अधिपति ।
२ अश्वराज महासुदामा—अश्वसेना का अधिपति ।
३ हस्तिराज मालंकार—हस्तिसेना का अधिपति ।
४ महालोहिताक्ष—महिषसेना का अधिपति ।
५ किम्पुरुष—रथसेना का अधिपति ।
६ महारिष्ट—नर्तकसेना का अधिपति ।
७ गीतयश—गायकसेना का अधिपति (११४) ।

११५—धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाधिपती पण्णत्ता, तं जहा—पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए ।

भद्दसेणे पायत्ताणियाधिपती जाव आणंदे रधाणियाधिपती, णंदणे णट्टाणियाधिपती, तेतली गंधव्वाणियाधिपती ।

नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण की सात सेनाएँ और सात सेनापति कहे गये हैं । जैसे—
१ पदातिसेना, २ अश्वसेना, ३ हस्तिसेना, ४ महिषसेना, ५ रथसेना, ६ नर्तकसेना
७ गन्धर्वसेना ।
सेनापति—१ भद्रसेन—पदातिसेना का अधिपति ।
२ अश्वराज यशोधर—अश्वसेना का अधिपति ।
३ हस्तिराज सुदर्शन—हस्तिसेना का अधिपति ।
४ नीलकण्ठ—महिषसेना का अधिपति ।
५ आनन्द—रथसेना का अधिपति ।
६ नन्दन—नर्तकसेना का अधिपति ।
७ तेतली—गन्धर्वसेना का अधिपति (११५) ।

११६—भूताणदस्स ण णागकुमारिदस्स नागकुमाररण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता, त जहा—पायत्ताणिए जाव गधव्वाणिए।

दक्खे पायत्ताणियाहिवती जाव णदुत्तरे रहाणियाहिवई, रती णट्टाणियाहिवई, माणसे गधव्वाणियाहिवई।

नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द की सात सेनाएँ और सात सेनापति कहे गये है। जैसे—
सेनाए—१ पदातिसेना २ अश्वसेना ३ हस्तिसेना ४ महिपसेना, ५ रथसेना
६ नतकसेना ७ गन्धवसेना।
सेनापति—१ दक्ष—पदातिसेना का अधिपति।
२ अश्वराज सुग्रीव—अश्वसेना का अधिपति।
३ हस्तिराज सुविक्रम—हस्तिसेना का अधिपति।
४ श्वेतकण्ठ—महिपसेना का अधिपति।
५ नन्दोत्तर—रथसेना का अधिपति।
६ रति—नतकसेना का अधिपति।
७ मानस—गधवसेना का अधिपति (११६)।

११७—(जधा धरणस्स तधा सव्वेसि दाहिणिल्लाण जाव घोसस्स।

जिस प्रकार धरण की सेना और सेनापति कहे गये हैं, उसी प्रकार दक्षिण दिशा के भवनवासी देवो के इन्द्र वेणुदेव, हरिकान्त, अग्निशिख, पूण, जलकान्त अमितगति, वेलम्ब और घोप की भी सात-सात सेनाएँ और सात-सात सेनापति जानना चाहिए (११७)।

११८—जधा भूताणदस्स तधा सव्वेसि उत्तरिल्लाण जाव महाघोसस्स)।

जिस प्रकार भूतानन्द के सेना और सेनापति कहे गये हैं, उसी प्रकार उत्तर दिशा के भवनवासी देवो के इन्द्र वेणुदालि हरिस्सह, अग्निमानव, विशिष्ट जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभजन और महाघोप की भी सात सात सेनाए और सात सात सेनापति जानना चाहिए (११८)।

११९—सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाहिवती पण्णत्ता, त जहा—पायत्ताणिए जाव रहाणिए, णट्टाणिए, गधव्वाणिए।

हरिणेगमेसी पायत्ताणियाधिपती जाव माढरे रधाणियाधिपती, सेते णट्टाणियाहिवती, तुबुरू गधव्वाणियाधिपती।

देवेन्द्र देवराज शक्र की सात सेनाएँ और सात सेनापति कहे गये है। जैसे—
सेनाएँ—१ पदातिसेना, २ अश्वसेना ३ हस्तिसेना ४ महिपसेना ५ रथसेना
६ नतकसेना ७ गन्धवसेना।
सेनापति—१ हरिनैगमेषी—पदातिसेना का अधिपति।
२ अश्वराज वायु—अश्वसेना का अधिपति।
३ हस्तिराज ऐरावण—हस्तिसेना का अधिपति।
४ दामर्द्धि—महिपसेना का अधिपति।

२ अश्वराज सुदामा—अश्वसेना का अधिपति ।
३ हस्तिराज कुन्थु—हस्तिसेना का अधिपति ।
४ लोहिताक्ष—महिषसेना का अधिपति ।
५ किन्नर—रथसेना का अधिपति ।
६ रिष्ट—नतकसेना का अधिपति ।
७ गीतरति—गन्धवसेना का अधिपति (११३) ।

११४—बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सत्ताणिया, सत्त अणियाधिपती पण्णत्ता, तं जहा—पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए ।

महद्दुमे पायत्ताणियाधिपती जाव किंपुरिसे रधाणियाधिपती, महारिट्ठे णट्टाणियाधिपती, गीतजसे गंधव्वाणियाधिपती ।

वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बली की सात सेनाएँ और सात सेनापति कहे गये हैं । जैसे—
सेनाएँ—१ पदातिसेना, २ अश्वसेना, ३ हस्तिसेना ४ महिषसेना, ५ रथसेना ६ नतकसेना, ७ गन्धवसेना ।
सेनापति—१ महाद्रुम—पदातिसेना का अधिपति ।
२ अश्वराज महासुदामा—अश्वसेना का अधिपति ।
३ हस्तिराज मालकार—हस्तिसेना का अधिपति ।
४ महालोहिताक्ष—महिषसेना का अधिपति ।
५ किम्पुरुष—रथसेना का अधिपति ।
६ महारिष्ट—नतकसेना का अधिपति ।
७ गीतयश—गायकसेना का अधिपति (११४) ।

११५—धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाधिपती पण्णत्ता, तं जहा—पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए ।

भद्दसेणे पायत्ताणियाधिपती जाव आणंदे रधाणियाधिपती, णंदणे णट्टाणियाधिपती, तेतली गंधव्वाणियाधिपती ।

नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण की सात सेनाएँ और सात सेनापति कहे गये हैं । जैसे—
१ पदातिसेना, २ अश्वसेना, ३ हस्तिसेना, ४ महिषसेना, ५ रथसेना, ६ नतकसेना ७ गन्धवसेना ।
सेनापति—१ भद्रसेन—पदातिसेना का अधिपति ।
२ अश्वराज यशोधर—अश्वसेना का अधिपति ।
३ हस्तिराज सुदर्शन—हस्तिसेना का अधिपति ।
४ नीलकण्ठ—महिषसेना का अधिपति ।
५ आनन्द—रथसेना का अधिपति ।
६ नन्दन—नर्तकसेना का अधिपति ।
७ तेतली—गन्धवसेना का अधिपति (११५) ।

११६—भूताणदस्स णं णागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता, तं जहा—पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए।

दक्खे पायत्ताणियाहिवती जाव णंदुत्तरे रहाणियाहिवई, रती णट्टाणियाहिवई, माणसे गंधव्वाणियाहिवई।

नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द की सात सेनाएँ और सात सेनापति कहे गये है। जैसे—
सेनाएं—१ पदातिसेना २ अश्वसेना ३ हस्तिसेना ४ महिषसेना, ५ रथसेना,
६ नर्तकसेना ७ गन्धर्वसेना।
सेनापति—१ दक्ष—पदातिसेना का अधिपति।
२ अश्वराज सुग्रीव—अश्वसेना का अधिपति।
३ हस्तिराज सुविक्रम—हस्तिसेना का अधिपति।
४ श्वेतकण्ठ—महिषसेना का अधिपति।
५ नन्दोत्तर—रथसेना का अधिपति।
६ रति—नर्तकसेना का अधिपति।
७ मानस—गन्धर्वसेना का अधिपति (११६)।

११७—(जधा धरणस्स तधा सव्वेसिं दाहिणिल्लाण जाव घोसस्स।

जिस प्रकार धरण की सेना और सेनापति कहे गये हैं, उसी प्रकार दक्षिण दिशा के भवनवासी देवों के इन्द्र वेणुदेव, हरिकान्त, अग्निशिख, पूर्ण, जलकान्त अमितगति, वेलम्ब और घोष की भी सात-सात सेनाएँ और सात-सात सेनापति जानना चाहिए (११७)।

११८—जधा भूताणदस्स तधा सव्वेसिं उत्तरिल्लाण जाव महाघोसस्स)।

जिस प्रकार भूतानन्द के सेना और सेनापति कहे गये हैं, उसी प्रकार उत्तर दिशा के भवनवासी देवा के इन्द्र वेणुदालि हरिस्सह, अग्निमानव, विशिष्ट जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभजन और महाघोष की भी सात-सात सेनाए और सात सात सेनापति जानना चाहिए (११८)।

११९—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाहिवती पण्णत्ता, तं जहा—पायत्ताणिए जाव रहाणिए, णट्टाणिए, गंधव्वाणिए।

हरिणेगमेसी पायत्ताणियाधिपती जाव माढरे रधाणियाधिपती, सेते णट्टाणियाहिवती, तुंबुरू गंधव्वाणियाधिपती।

देवेन्द्र देवराज शक्र की सात सेनाएँ और सात सेनापति कहे गये हैं। जैसे—
सेनाएँ—१ पदातिसेना, २ अश्वसेना ३ हस्तिसेना ४ महिषसेना ५ रथसेना
६ नर्तकसेना ७ गन्धर्वसेना।
सेनापति—१ हरिनैगमेषी—पदातिसेना का अधिपति।
२ अश्वराज वायु—अश्वसेना का अधिपति।
३ हस्तिराज ऐरावण—हस्तिसेना का अधिपति।
४ दामर्द्धि—महिषसेना का अधिपति।

५ माठर—रथसेना का अधिपति ।
६ श्वेत—नर्तकसेना का अधिपति ।
७ तुम्बुरु—गन्धर्वसेना का अधिपति (११९) ।

१२०—ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता, तं जहा—पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए ।

लहुपरक्कमे पायत्ताणियाहिवती जाव महासेते णट्टाणियाहिवती, रते गंधव्वाणिताधिपती ।

देवेन्द्र देवराज ईशान की सात सेनाएँ और सात सेनापति कहे गये हैं । जैसे—

सेनाएँ—१ पदातिसेना २ अश्वसेना ३ हस्तिसेना ४ महिषसेना ५ रथसेना ६ नर्तकसेना, ७ गन्धर्वसेना ।

सेनापति—१ लघुपराक्रम—पदातिसेना का अधिपति ।
२ अश्वराज महावायु—अश्वसेना का अधिपति ।
३ हस्तिराज पुष्पदन्त—हस्तिसेना का अधिपति ।
४ महादामर्द्धि—महिषसेना का अधिपति ।
५ महामाठर—रथसेना का अधिपति ।
६ महाश्वेत—नर्तकसेना का अधिपति ।
७ रत—गन्धर्वसेना का अधिपति (१२०) ।

१२१—(जधा सक्कस्स तहा सव्वेसिं दाहिणिल्लाण जाव आरणस्स ।

जिस प्रकार शक्र के सेना और सेनापति कहे गये हैं, उसी प्रकार देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार, ब्रह्म, शुक्र, आनत और आरण इन सभी दक्षिणेन्द्रों की सात सात सेनाएँ और सात सात सेनापति जानना चाहिए । (१२१)

१२२—जधा ईसाणस्स तहा सव्वेसिं उत्तरिल्लाण जाव अच्चुतस्स) ।

जिस प्रकार ईशान की सेना और सेनापति कहे गये है, उसी प्रकार देवेन्द्र देवराज माहेन्द्र, लान्तक, सहस्रार, प्राणत और अच्युत इन सभी उत्तरेन्द्रों के भी सात-सात सेनाएँ और सात-सात सेनापति जानना चाहिए । (१२२)

१२३—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो दुमस्स पायत्ताणियाधिपतिस्स सत्त कच्छाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पढमा कच्छा जाव सत्तमा कच्छा ।

असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के पदातिसेना के अधिपति द्रुम के सात कक्षाएँ कही गई हैं । जैसे—पहली कक्षा, यावत् सातवी कक्षा [illegible])

१२४—चमरस्स णं असुरिंदस्स [illegible] पढमाए कच्छाए चउसट्ठिं देवसहस्सा पण्णत्ता । जा [illegible] कच्छा [illegible] । कच्छा । जावतिया दोच्चा कच्छा तव्विगुणा तच्चा कच्छा । [illegible]

असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के पदातिसेना के अधिपति द्रुम की पहली कक्षा मे ६४ हजार देव हैं। दूसरी कक्षा मे उससे दुगुने १२८००० देव है। तीसरी कक्षा मे उससे दुगुने २५६००० देव हैं। इसी प्रकार सातवी कक्षा तक दुगुने दुगुने देव जानना चाहिए (१२४)।

१२५—एव बलिस्सवि, णवर—महद्दुमे सट्ठिदेवसाहस्सिओ। सेस त चेव।

इसी प्रकार वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज वलि के पदातिसेना के अधिपति महाद्रुम की पहली कक्षा मे ६० हजार देव हैं। आगे की कक्षाओ मे क्रमश दुगुने दुगुने देव जानना चाहिए (१२५)।

१२६—धरणस्स एव चेव, णवर—अट्ठावीस देवसहस्सा। सेस त चेव।

इसी प्रकार नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के पदातिसेना के अधिपति भद्रसेन की पहली कक्षा मे २८ हजार देव हैं। आगे की कक्षाओ मे क्रमश दुगुन दुगुने देव जानना चाहिए (१२६)।

१२७—जधा धरणस्स एव जाव महाघोसस्स, णवर—पायत्ताणियाधिपती अण्णे, ते पुव्वभणिता।

धरण के समान ही भूतानन्द से महाघोष तक के सभी इन्द्रो के पदाति सेनापतियो की कक्षाओं की देव-सख्या जाननी चाहिए। विशेष—उनके पदातिसेनापति दक्षिण और उत्तर दिशा के भेद से भिन्न भिन्न हैं, जो कि पहले कहे जा चुके है (१२७)।

१२८—सक्कस्स ण देविदस्स देवरण्णो हरिणेगमेसिस्स सत्त कच्छाओ पण्णत्ताओ, त जहा—पढमा कच्छा एव जहा चमरस्स तहा जाव अच्चुतस्स। णाणत्त पायत्ताणियाधिपतीण। ते पुव्वभणिता। देवपरिमाण इम—सक्कस्स चउरासीति देवसहस्सा, ईसाणस्स असीति देवसहस्साइ जाव अच्चुतस्स लहुपरक्कमस्स दस देवसहस्सा जाव जावतिया छट्ठा कच्छा तव्विगुणा सत्तमा कच्छा। देवा इमाए गाथाए अणुगतव्वा—

चउरासीति असीति, बावत्तरी मत्तरी य सट्ठी य।
पण्णा चत्तालीसा, तीसा वीसा य दससहस्सा ॥१॥

देवेन्द्र देवराज शक्र के पदातिसेना के अधिपति हरिनगमेषी की सात कक्षाएँ कही गई हैं। जैसे—पहली कक्षा यावत् सातवी कक्षा। जैसे चमर की कही, उसी प्रकार यावत् अच्युत कल्प तक के सभी देवेन्द्रो के पदातिसेना के अधिपतियो की सात-सात कक्षाए जाननी चाहिए।

उनके पदातिसेना के अधिपतियो के नामो की जो विभिन्नता है, वह पहले कही जा चुकी है। उनकी कक्षाओ के देवो का परिमाण इस प्रकार है—

शक्र के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा मे ८४ हजार देव हैं।
ईशान के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा मे ८० हजार देव हैं।
सनत्कुमार के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा मे ७२ हजार देव हैं।
माहेन्द्र के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा मे ७० हजार देव हैं।
ब्रह्म के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा मे ६० हजार देव हैं।
लान्तक के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा मे ५० हजार देव हैं।

शुक्र के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा मे ४० हजार देव हैं।
सहस्रार के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा मे ३० हजार देव हैं।
प्राणत के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा मे २० हजार देव हैं।
अच्युत के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा मे १० हजार देव है।
देवो का उक्त परिमाण इस गाथा के अनुसार जानना चाहिए—

चौरासी हजार, अस्सी हजार, बहत्तर हजार, सत्तर हजार, साठ हजार, पचास हजार, चालीस हजार, तीस हजार, बीस हजार, और दश हजार है।

उक्त सब देवेन्द्रो की शेष कक्षाओ के देवो का प्रमाण पहली कक्षा के देवो के परिमाण स सातवी कक्षा तक दुगुना-दुगुना जानना चाहिए (१२८)।

वचन विकल्प-सूत्र

१२९—सत्तविहे वयणविकप्पे पण्णत्ते, त जहा—आलावे, अणालावे, उल्लावे, अणुल्लावे, सलावे, पलावे, विप्पलावे।

वचन-विकल्प (बोलने के भेद) सात प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ आलाप—कम बोलना।
२ अनालाप—खोटा बोलना।
३ उल्लाप—काकु ध्वनि-विकार के साथ बोलना।
४ अनुल्लाप—कुत्सित ध्वनि-विकार के साथ बोलना।
५ सलाप—परस्पर बोलना।
६ प्रलाप—निरर्थक बकवाद करना।
७ विप्रलाप—विरुद्ध वचन बोलना (१२९)।

विनय-सूत्र

१३०—सत्तविहे विणए पण्णत्ते, त जहा—णाणविणए, दसणविणए, चरित्तविणए, मणविणए, वइविणए, कायविणए, लोगोवयारविणए।

विनय सात प्रकार का कहा गया है। जसे—
१ ज्ञान विनय—ज्ञान और ज्ञानवान की विनय करना, गुरु का नाम न छिपाना आदि।
२ दर्शन-विनय—सम्यग्दर्शन और सम्यग्दष्टि का विनय करना, उसके आचारो का पालन करना।
३ चारित्र-विनय—चारित्र और चारित्रवान् का विनय करना, चारित्र धारण करना।
४ मनोविनय—मन की अशुभ प्रवत्ति रोकना, शुभ प्रवृत्ति मे लगाना।
५ वाग्-विनय—वचन की अशुभ प्रवृत्ति रोकना, शुभ प्रवृत्ति मे लगाना।
६ काय-विनय—काय की अशुभ प्रवृत्ति रोकना, शुभ प्रवृत्ति म लगाना।
७ लोकोपचार-विनय—लोक-व्यवहार के अनुकूल सब का यथायोग्य विनय करना (१३०)।

१३१—पसत्थमणविणए सत्तविधे पण्णत्ते, त जहा—अपावए, असावज्जे, अकिरिए, णिरुवक्केसे, अणण्हयकरे, अच्छविकरे, अभूताभिसकणे।

प्रशस्त मनोविनय सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ अपापक-मनोविनय—पाप-रहित निर्मल मनोवृत्ति रखना।
२ असावद्य मनोविनय—सावद्य, गर्हित कार्य करने का विचार न करना।
३ अक्रिय मनोविनय—मन को कायिकी, आधिकरणिकी आदि क्रियाओं में नहीं लगाना।
४ निरुपक्लेश मनोविनय—मन को क्लेश, शोक आदि में प्रवृत्त न करना।
५ अनास्रवकर मनोविनय—मन को कर्मों का आस्रव कराने वाले हिंसादि पापों में नहीं लगाना।
६ अक्षयिकर मनोविनय—मन को प्राणियों के पीडा करने वाले कार्यों में नहीं लगाना।
७ अभूताभिशंकन मनोविनय—मन को दूसरे जीवों को भय या शंका आदि उत्पन्न करने वाले कार्यों में नहीं लगाना (१३१)।

१३२—अपसत्थमणविणए सत्तविधे पण्णत्ते तं जहा—पावए, सावज्जे, सकिरिए, सउवक्केसे, अण्हयकरे, छविकरे, भूताभिसंकणे।

अप्रशस्त मनोविनय सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ *पापक अप्रशस्त मनोविनय—पाप कार्यों को करने का चिन्तन करना।*
२ सावद्य अप्रशस्त मनोविनय—गर्हित, लोक-निन्दित कार्यों को करने का चिन्तन करना।
३ सक्रिय अप्रशस्त मनोविनय—कायिकी आदि पापक्रियाओं के करने का चिन्तन करना।
४ सोपक्लेश अप्रशस्त मनोविनय—क्लेश, शोक आदि में मन को लगाना।
५ आस्रवकर अप्रशस्त मनोविनय—कर्मों का आस्रव कराने वाले कार्यों में मन को लगाना।
६ क्षयिकर अप्रशस्त मनोविनय—प्राणियों को पीडा पहुँचाने वाले कार्यों में मन को लगाना।
७ भूताभिशंकन अप्रशस्त मनोविनय—दूसरे जीवों को भय, शंका आदि उत्पन्न करने वाले कार्यों में मन को लगाना (१३२)।

१३३—पसत्थवइविणए सत्तविधे पण्णत्ते, तं जहा—अपावए, असावज्जे, (अकिरिए, णिरुवक्केसे, अणण्हयकरे, अच्छविकरे), अभूताभिसंकणे।

प्रशस्त वाग्-विनय सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ अपापक-वाग्-विनय—निष्पाप वचन बोलना।
२ असावद्य वाग्-विनय—निर्दोष वचन बोलना।
३ अक्रिय वाग्-विनय—पाप-क्रिया-रहित वचन बोलना।
४ निरुपक्लेश वाग्-विनय—क्लेश-रहित वचन बोलना।
५ अनास्रवकर वाग्-विनय—कर्मों का आस्रव रोकने वाले वचन बोलना।
६ अक्षयिकर वाग्-विनय—प्राणियों का विघात-कारक वचन न बोलना।
७ अभूताभिशंकन वाग्-विनय—प्राणियों को भय शंकादि उत्पन्न करने वाले वचन न बोलना (१३३)।

१३४—अपसत्थवइविणए सत्तविधे पण्णत्ते, तं जहा—पावए, (सावज्जे, सकिरिए, सउवक्केसे, अण्हयकरे, छविकरे), भूताभिसंकणे।

अप्रशस्त वाग्-विनय सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ पापक वाग्-विनय—पाप युक्त वचन बोलना।
२ सावद्य वाग्-विनय—सदोष वचन बोलना।
३ सक्रिय वाग-विनय—पाप क्रिया करने वाले वचन बोलना।
४ सोपक्लेश वाग्-विनय—क्लेश-कारक वचन बोलना।
५ आस्रवकर वाग-विनय—कर्मों का आस्रव करने वाले वचन बोलना।
६ क्षयिकर वाग् विनय—प्राणियो का विघात-कारक वचन बोलना।
७ भूताभिशकन वाग्-विनय—प्राणिया को भय शकादि उत्पन्न करने वाले वचन बोलना (१३४)।

१३५—पसत्थकायविणए सत्तविधे पण्णत्ते, त जहा—आउत्त गमण, आउत्त ठाण, आउत्त *णिसीयण, आउत्त तुअट्टण, आउत्त उल्लघण, आउत्त पल्लघण, आउत्त सव्विदियजोगजु जणता।*

प्रशस्त काय विनय सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ आयुक्त गमन—यतनापूर्वक चलना।
२ आयुक्त स्थान—यतनापूर्वक खडे होना, कायोत्सग करना।
३ आयुक्त निषीदन—यतनापूर्वक बठना।
४ आयुक्त त्वग्-वत्त न—यतनापूर्वक करवट बदलना, सोना।
५ आयुक्त उल्लघन—यतनापूर्वक देहली आदि को लाघना।
६ आयुक्त प्रलघन—यतनापूर्वक नाली आदि को पार करना।
७ आयुक्त सर्वेन्द्रिय योगयोजना—यतनापूर्वक सव इन्द्रियो का व्यापार करना (१३५)।

१३६—अपसत्थकायविणए सत्तविधे पण्णत्ते, त जहा—अणाउत्त गमण, (अणाउत्त ठाण, अणाउत्त णिसीयण, अणाउत्त तुअट्टण, अणाउत्त उल्लघण, अणाउत्त पल्लघण), अणाउत्त सव्विदियजोगजु जणता।

अप्रशस्त कायविनय सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ अनायुक्त गमन—अयतनापूर्वक चलना।
२ अनायुक्त स्थान—अयतनापूवक खडे होना।
३ अनायुक्त निषीदन—अयतनापूवक बैठना।
४ अनायुक्त त्वग्वतन—अयतनापूवक सोना, करवट बदलना।
५ अनायुक्त उल्लघन—अयतनापूवक देहली आदि को लाघना।
६ अनायुक्त प्रलघन—अयतनापूवक नाली आदि को लाघना।
७ अनायुक्त सर्वेन्द्रिय योगयोजना—अयतनापूवक सब इन्द्रियो का व्यापार करना (१३६)।

१३७—लोगोवयारविणए सत्तविधे पण्णत्ते, त जहा—अब्भासवत्तित्त, परच्छदाणुवत्तित, *कज्जहेउ, कतपडिकतिता, अत्तगवेसणता, देसकालण्णता, सव्वत्थेसु अपडिलोमता।*

लोकोपचार विनय सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ अभ्यासवर्तित्व—श्रुतग्रहण करने के लिए गुरु के समीप बैठना।

२ परछन्दानुवर्तित्व—आचार्यादि के अभिप्राय के अनुसार चलना।
३ कार्य हेतु—'इसने मुझे ज्ञान दिया' ऐसे भाव से उसका विनय करना।
४ कृतप्रतिकृतिता—प्रत्युपकार की भावना से विनय करना।
५ आर्तगवेषणता—रोग-पीडित के लिए औषध आदि का अन्वेषण करना।
६ देश कालज्ञता—देश काल के अनुसार अवसरोचित विनय करना।
७ सर्वार्थ अप्रतिलोमता—सब विषयो मे अनुकूल आचरण करना (१३७)।

समुद्घात सूत्र

१३८—सत्त समुग्घाता पण्णत्ता, त जहा—वेयणासमुग्घाए, कसायसमुग्घाए, मारणंतियसमुग्घाए, वेउव्वियसमुग्घाए, तेजससमुग्घाए, आहारगसमुग्घाए, केवलिसमुग्घाए।

समुद-घात सात कहे गये हैं। जसे—

१ वेदनासमुद्घात—वेदना से पीडित होने पर कुछ आत्मप्रदेशो का बाहर निकलना।
२ कषायसमुद्घात—तीव्र क्रोधादि की दशा मे कुछ आत्मप्रदेशो का बाहर निकलना।
३ मारणान्तिक समुद्घात—मरण से पूव कुछ आत्मप्रदेशो का बाहर निकलना।
४ वैक्रियसमुद्घात—विक्रिया करते समय मूल शरीर को नही छोडते हुए उत्तर शरीर म जीवप्रदेशो का प्रवेश करना।
५ तैजससमुद्घात—तेजोलेश्या प्रकट करते समय कुछ आत्म-प्रदेशो का बाहर निकलना।
६ आहारकसमुदघात—समीप मे केवली के न होने पर चतुर्दशपूर्वी साधु की शका के समाधानार्थ मस्तक से एक श्वेत पुतले के रूप मे कुछ आत्म-प्रदेशो का केवली के निकट जाना और वापिस आना।
७ केवलि-समुद्घात—आयुष्य के अन्तमुहूत रहने पर तथा शेष तीन कर्मो की स्थिति बहुत अधिक होने पर उसके समीकरण करने के लिए दण्ड कपाट आदि के रूप म जीव-प्रदेशो का शरीर से बाहर फैलना (१३८)।

१३९—मणुस्साण सत्त समुग्घाता पण्णत्ता एव चेव।

मनुष्यो के इसी प्रकार ये ही सातो समुद्घात कहे गये है (१३९)।

विवेचन—आत्मा जब वेदनादि परिणाम के साथ एक रूप हो जाता है तब वेदनीय आदि के कमपुद्गलो का विशेष रूप से घात निर्जरण होता है। इसी को समुद्घात कहते हैं। समुद्घात के समय जीव के प्रदेश शरीर से बाहर भी निकलते हैं। वेदना आदि के भेद से समुद्घात के भी सात भेद कहे गये है। इनमे से आहारक और केवलि समुद्घात केवल मनुष्यगति मे ही सभव हैं, शेष तीन गतियो मे नही। यह इस सूत्र से सूचित किया गया है।

प्रवचन निह्नव-सूत्र

१४०—समणस्स ण भगवओ महावीरस्स तित्थसि सत्त पवयणणिण्हगा पण्णत्ता, त जहा—बहुरता, जीवपएसिया, अवत्तिया, सामुच्छेइया, दोकिरिया, तेरासिया, अबद्धिया।

श्रमण भगवान् महावीर के तीर्थ मे सात प्रवचननिह्नव (आगम के अन्यथा प्ररूपक) कहे गये है। जैसे—

१ बहुरत-निह्नव, २ जीव प्रादेशिक-निह्नव, ३ अव्यक्तिक-निह्नव, ४ सामुच्छेदिक निह्नव, ५ द्वैक्रिय-निह्नव ६ त्रैराशिक-निह्नव, ७ अबद्धिक-निह्नव (१४०)।

१४१—एएसि ण सत्तण्ह पवयणणिण्हगाण सत्त धम्मायरिया हुत्था, त जहा—जमाली, तीसगुत्ते, ग्रासाढे, ग्रासमित्ते, गगे, छलुए, गोट्ठामाहिले।

इन सात प्रवचन-निह्नवो के सात धर्माचार्य हुए। जैसे—

१ जमाली, २ तिष्यगुप्त, ३ आषाढभूति, ४ अश्वमित्र, ५ गग ६ षड्लूक ७ गोष्ठामाहिल (१४१)।

१४२—एतेसि ण सत्तण्ह पवयणणिण्हगाण सत्तउप्पत्तिणगरा हुत्था, त जहा—

सग्रहणी-गाथा

सावत्थी उसभपुर, सेयविया मिहिलउल्लगातीर।
पुरिमतरजि दसपुर णिण्हगउप्पत्तिणगराइ ॥१॥

इन सात प्रवचन-निह्नवो की उत्पत्ति सात नगरो मे हुई। जैसे—

१ श्रावस्ती, २ ऋषभपुर ३ श्वेतविका, ४ मिथिला, ५ उल्लुकातीर, ६ अन्तरजिका, ७ दशपुर (१४२)।

विवेचन—भगवान् महावीर के समय मे और उनके निर्वाण के पश्चात भगवान् महावीर की परम्परा मे कुछ सैद्धान्तिक विषयो को लेकर मत-भेद उत्पन्न हुआ। इस कारण कुछ साधु भगवान् के शासन से पृथक हो गये, उनका आगम मे 'निह्नव' नाम से उल्लेख किया गया है। इनमे से कुछ वापिस शासन मे आ गए, कुछ आजीवन अलग रहे। इन निह्नवो के उत्पन्न होने का समय भ महावीर के कैवल्य-प्राप्ति के १६ वर्ष के बाद मे लेकर उनके निर्वाण के ५८४ वर्ष बाद तक का है। इनका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१ **प्रथम निह्नव बहुरत वाद**—भ महावीर के कैवल्य-प्राप्ति के १४ वर्ष बाद श्रावस्ती नगरी मे बहुरतवाद की उत्पत्ति जमालि ने की। वे कुण्डपुर नगर के निवासी थे। उनकी मा का नाम सुदर्शना और पत्नी का नाम प्रियदर्शना था। वे पाच सौ पुरुषो के साथ भ महावीर के पास प्रव्रजित हुए। उनके साथ उनकी पत्नी भी एक हजार स्त्रियो के साथ प्रव्रजित हुई। जमालि ने ग्यारह अग पढे और नाना प्रकार की तपस्याए करते हुए अपने पाच सौ साथियो के साथ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वे श्रावस्ती नगरी पहुचे। घोर तपश्चरण करने एव पारणा मे रूखा-सूखा आहार करने से वे रोगाक्रान्त हो गये। पित्तज्वर से उनका शरीर जलने लगा। तब बैठने मे असमर्थ होकर अपने साथी साधुओ से कहा—'श्रमणो! बिछौना करो'। वे बिछौना करने लगे। इधर वेदना बढने लगी और उन्हे एक-एक क्षण बिताना कठिन हो गया। उन्होने पूछा—'बिछौना कर लिया?' उत्तर मिला—'बिछौना हो गया।' जब वे बिछौने के पास गये तो देखा कि बिछौना किया नही गया, किया जा रहा है। यह देख कर वे सोचने लगे—भगवान् 'क्रियमाण' को 'कृत' कहते हैं, यह सिद्धान्त मिथ्या है। मैं प्रत्यक्ष देख रहा हू कि बिछौना किया जा रहा है, उसे 'कृत' कैसे माना जा सकता है? उन्होंने इस घटना के आधार पर यह निर्णय किया—'क्रियमाण को कृत नही

कहा जा सकता। जो सम्पन्न हो चुका है, उसे ही कृत कहा जा सकता है। कार्य की निष्पत्ति अन्तिम क्षण मे ही होती है, उसके पूर्व नही।' उन्होने अपने साधुओ को बुलाकर कहा—भ महावीर कहते है—

'जो चलमान है, वह चलित है, जो उदीयमाण है, वह उदीरित है और जो निर्जीयमाण है, वह निर्जीर्ण है। किन्तु मैं अपने अनुभव से कहता हू कि उनका सिद्धान्त मिथ्या है। यह प्रत्यक्ष देखो कि बिछौना क्रियमाण है, किन्तु कृत नही है। वह सस्तीयमाण है, किन्तु सस्तृत नही है।'

जमालि का उक्त कथन सुनकर अनेक साधु उनकी बात से सहमत हुए और अनेक सहमत नही हुए। वृद्ध स्थविरो ने उन्हे समझाने का प्रयत्न भी किया, परन्तु उन्होने अपना मत नही बदला। जो उनके मत से सहमत नही हुए, वे उन्हे छोडकर भ महावीर के पास चले गये। जो उनके मत से सहमत हुए, वे उनके पास रह गये।

जमालि जीवन के अन्त तक अपने मत का प्रचार करते रहे। यह पहला निह्नव बहुरतवाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। क्योकि वह बहुत समयो मे कार्य की निष्पत्ति मानते थे।

२ **जीवप्रादेशिक निह्नव**—भ महावीर के कैवल्यप्राप्ति के सोलह वर्ष बाद ऋषभपुर मे जीवप्रादेशिकवाद नाम के निह्नव की उत्पत्ति हुई। चौदह पूर्वों के ज्ञाता आ वसु से उनका एक शिष्य तिष्यगुप्त आत्मप्रवाद पूर्व पढ रहा था। उसमे भ महावीर और गौतम का सवाद आया।

गौतम ने पूछा—भगवन ! क्या जीव के एक प्रदेश को जीव कह सकते हैं ?

भगवान् ने कहा—नही।

गौतम—भगवन् ! क्या दो तीन आदि सख्यात या असख्यात प्रदेश को जीव कह सकते हैं ?

भगवान् ने कहा—नही। अखण्ड चेतन द्रव्य मे एक प्रदेश से कम को भी जीव नही कहा जा सकता।

भगवान् का यह उत्तर सुन तिष्यगुप्त का मन शकित हो गया। उसने कहा—'अन्तिम प्रदेश के बिना शेष प्रदेश जीव नही है, इसलिए अन्तिम प्रदेश ही जीव है।' आ० वसु ने उसे बहुत समझाया, किन्तु उसने अपना आग्रह नही छोडा, तब उन्होंने उसे सघ से अलग कर दिया।

तिष्यगुप्त अपनी मान्यता का प्रचार करते आमलकल्पा नगरी पहुँचे। वहा मित्रश्री श्रमणोपासक रहता था। अन्य लोगो के साथ वह भी उनका धर्मोपदेश सुनने गया। तिष्यगुप्त ने अपनी मान्यता का प्रतिपादन किया। मित्रश्री ने जान लिया कि ये मिथ्या प्ररूपण कर रहे है। फिर भी वह प्रतिदिन उनके प्रवचन सुनने को आता रहा। एक दिन तिष्यगुप्त भिक्षा के लिए मित्रश्री के घर गये। तब मित्रश्री ने अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थ उनके सामने रखे और उनका एक एक अन्तिम अश तोड कर उन्हे देने लगा। इसी प्रकार चावल का एक, घास का एक तिनका और वस्त्र के अन्तिम छोर का एक तार निकाल कर उन्हे दिया। तिष्यगुप्त सोच रहा था कि यह भोज्य सामग्री मुझे बाद मे देगा। किन्तु मित्रश्री उनके चरण-वन्दन करके बोला—अहो, मैं पुण्यशाली हू कि आप जैसे गुरुजन मेरे घर पधारे। यह सुनते ही तिष्यगुप्त क्रोधित होकर बोले—'तूने मेरा अपमान किया है।' मित्रश्री ने कहा—'मैंने आपका अपमान नही किया, किन्तु आपकी मान्यता के अनुसार ही आपको भिक्षा दी है। आप वस्तु के अन्तिम प्रदेश को ही वस्तु मानते है, दूसरे प्रदेशो को नही। इसलिए मैंने प्रत्येक पदार्थ का अन्तिम अश आपको दिया है।'

तिष्यगुप्त समझ गये। उन्होने कहा—'आर्य ! इस विषय मे तुम्हारा अनुशासन चाहता हू।' मित्रश्री ने उन्हे समझा कर पुन यथाविधि भिक्षा दी। इस घटना से तिष्यगुप्त अपनी भूल समझ गये और फिर भगवान् के शासन मे सम्मिलित हो गये।

३ अव्यक्तिक-निह्नव—भ महावीर के निर्वाण के २१४ वर्ष बाद श्वेतविका नगरी मे अव्यक्तवाद की उत्पत्ति हुई। इसके प्रवर्तक आचार्य आषाढभूति के शिष्य थे।

श्वेतविका नगरी मे रहते समय वे अपने शिष्यो को योगाभ्यास कराते थे। एक बार वे हृदय-शूल से पीडित हुए और उसी रोग से मर कर सौधर्म स्वर्ग मे उत्पन्न हुए। उन्होंने अवधि-ज्ञान से अपने मृत शरीर को देखा और देखा कि उनके शिष्य आगाढ योग मे लीन हैं, तथा उन्हे आचार्य की मृत्यु का पता नही है। तब देवरूप मे आ आषाढ का जीव नीचे आया और अपने मृत शरीर मे प्रवेश कर उसने शिष्यो को कहा—'वैरात्रिक करो।' शिष्यो ने उनको वन्दना कर वैसा ही किया। जब उनकी योग-साधना समाप्त हुई, तब आ आषाढ का जीव देवरूप मे प्रकट होकर बोला—'श्रमणो ! मुझे क्षमा करें। मैंने असयती होते हुए भी आप सयतो से वन्दना कराई है।' यह कह के अपनी मृत्यु की सारी बात बता कर वे अपने स्थान को चले गये।

उनके जाते ही श्रमणो को सन्देह हो गया—'कौन जाने कि कौन साधु है और कौन देव है? निश्चयपूर्वक कुछ नही कह सकते ! सभी वस्तुए अव्यक्त है।' उनका मन सन्देह के हिंडोले मे झूलने लगा। स्थविरो ने उन्हे समझाया, पर वे नही समझे। तब उन्ह सघ से बाहर कर दिया गया।

अव्यक्तवाद को मानने वालो का कहना है कि किसी भी वस्तु के विषय मे निश्चयपूर्वक कुछ भी नही कहा जा सकता, क्योकि सब कुछ अव्यक्त है।

अव्यक्तवाद का प्रवर्तन आ आषाढ ने नही किया था। इसके प्रवर्तक उनके शिष्य थे। किन्तु इस मत के प्रवर्तन मे आ आषाढ का देवरूप निमित्त बना, इसलिए उन्हे इस मत का प्रवर्तक मान लिया गया।

४ सामुच्छेदिक-निह्नव—भ महावीर के निर्वाण के २२० वर्ष बाद मिथिलापुरी मे समुच्छेदवाद की उत्पत्ति हुई। इसके प्रवर्तक आ अश्वमित्र थे।

एक बार मिथिलानगरी मे आ महागिरि ठहरे हुए थे। उनके शिष्य का नाम कौण्डिन्य और प्रशिष्य का नाम अश्वमित्र था। वह विद्यानुवाद पूर्व के नैपुणिक वस्तु का अध्ययन कर रहा था। उसमे छिन्नच्छेदनय के अनुसार एक आलापक यह था कि पहले समय मे उत्पन्न सभी नारक जीव विच्छिन्न हो जावेंगे, इसी प्रकार दूसरे-तीसरे आदि समयो मे उत्पन्न नारक विच्छिन्न हो जावेंगे। इस पर्यायवाद के प्रकरण को सुनकर अश्वमित्र का मन शकित हो गया। उसने सोचा—यदि वर्तमान समय मे उत्पन्न सभी जीव किसी समय विच्छिन्न हो जावेंगे, तो सुकृत-दुष्कृत कर्मों का वेदन कौन करेगा? क्योकि उत्पन्न होने के अनन्तर ही सब की मृत्यु हो जाती है।

गुरु ने कहा—वत्स ! ऋजुसूत्र नय के अभिप्राय से ऐसा कहा गया है, सभी नयो की अपेक्षा से नही। निर्ग्रन्थप्रवचन सर्वनय-सापेक्ष होता है। अत शका मत कर। एक पर्याय के विनाश से वस्तु का सर्वथा विनाश नही होता। इत्यादि अनेक प्रकार से आचार्य-द्वारा समझाने पर भी वह नही समझा। तब आचार्य ने उसे सघ से निकाल दिया।

सघ से अलग होकर वह समुच्छेदवाद का प्रचार करने लगा। उसके अनुयायी एकान्त समुच्छेद का निरूपण करते है।

५ द्वैक्रिय-निह्नव—भ महावीर के निर्वाण के २२८ वष बाद उल्लुकातीर नगर मे द्विक्रियावाद की उत्पत्ति हुई। इसके प्रवतक गग थे।

प्राचीन काल मे उल्लुका नदी के एक किनारे एक खेडा था और दूसरे किनारे उल्लुकातीर नाम का नगर था। वहाँ आ महागिरि के शिष्य आ धनगुप्त रहते थे। उनके शिष्य का नाम गग था। वे भी आचाय थे। एक बार वे शरद् ऋतु मे अपने आचाय की वन्दना के लिए निकले। मार्ग मे उल्लुका नदी थी। वे नदी मे उतरे। उनका शिर गजा था। ऊपर सूरज तप रहा था और नीचे पानी की ठडक थी। नदी पार करते समय उन्हे शिर पर सूय की गर्मी और पैरो मे नदी की ठडक का अनुभव हो रहा था। वे सोचने लगे—'आगम मे ऐसा कहा है कि एक समय मे एक ही क्रिया का वेदन होता है, दो का नही। किन्तु मुझे स्पष्ट रूप से एक साथ दो क्रियाओ का वेदन हो रहा है।' वे अपने आचार्य के पास पहुचे और अपना अनुभव उन्हे सुनाया। गुरु ने कहा—'वत्स! वस्तुत एक समय मे एक ही क्रिया का वेदन होता है, दो का नही। समय और मन का क्रम बहुत सूक्ष्म है, अत हमे उनके क्रम का पता नही लगता।' गुरु के समझाने पर भी वे नही समझे, तब उन्होने गग को सघ से बाहर कर दिया।

सघ से अलग होकर वे द्विक्रियावाद का प्रचार करने लगे। उनके अनुयायी एक ही क्षण मे एक ही साथ दो क्रियाओ का वेदन मानते है।

६ त्रैराशिक निह्नव—भ० महावीर के निर्वाण के ५४४ वष बाद अन्तरजिका नगरी मे त्रैराशिक मत का प्रवतन हुआ। इसके प्रवतक रोहगुप्त (षडुलूक) थे।

अतिरजिका नगरी मे एक बार आ श्रीगुप्त ठहरे हुए थे। उनके ससार-पक्ष का भानेज उनका शिष्य था। एक बार वह दूसरे गाव से आचाय की वन्दना को आरहा था। माग मे उसे एक पोट्टशाल नाम का परिव्राजक मिला, जो हर एक को अपने साथ शास्त्राथ करने की चुनौती दे रहा था। रोहगुप्त ने उसकी चुनौती स्वीकार कर ली और आकर आचाय को सारी बात कही। आचाय ने कहा—'वत्स! तूने ठीक नही किया। वह परिव्राजक सात विद्याओ मे पारगत है, अत तुझसे बलवान् है।' रोहगुप्त आचाय की बात सुन कर अवाक रह गया। कुछ देर बाद बोला—गुरुदेव! अब क्या किया जाय! आचार्य ने कहा—वत्स! अब डर मत! मैं तुझे उसकी प्रतिपक्षी सात विद्याए सिखा देता हू। तू यथासमय उनका प्रयाग करना। आचाय ने उसे प्रतिपक्षी सात विद्याए इस प्रकार सिखाई—

पोट्टशाल की विद्याए	प्रतिपक्षी विद्याए
१ वृश्चिकविद्या	=मायूरीविद्या
२ सपविद्या	=नाकुलीविद्या।
३ मूषकविद्या	=विडालीविद्या
४ मृगीविद्या	=व्याघ्रीविद्या
५ वराहीविद्या	=सिंहीविद्या

६ काकविद्या =उलूकीविद्या
७ पाताकीविद्या =उलावकीविद्या

आचार्य ने रजोहरण को मन्त्रित कर उसे देते हुए कहा—वत्स ! इन सातों विद्याओं से तू उस परिव्राजक को पराजित कर देगा। फिर भी यदि आवश्यकता पड़े तो तू इस रजोहरण को घुमाना, फिर तुझे वह पराजित नहीं कर सकेगा।

रोहगुप्त सातों विद्याएं सीख कर और गुरु का आशीर्वाद लेकर राज-सभा में गया। राजा बलश्री से सारी बात कह कर उसने परिव्राजक को बुलवाया। दोनों शास्त्रार्थ के लिए उद्यत हुए। परिव्राजक ने अपना पक्ष स्थापित करते हुए कहा—राशि दो हैं—एक जीवराशि और दूसरी अजीव राशि। रोहगुप्त ने जीव, अजीव और नोजीव, इन तीन राशियों की स्थापना करते हुए कहा परिव्राजक का कथन मिथ्या है। विश्व में स्पष्ट रूप से तीन राशियां पाई जाती हैं—मनुष्य तिर्यंच आदि जीव हैं, घट-पट आदि अजीव हैं और छछुन्दर की कटी हुई पूंछ नोजीव है। इत्यादि अनेक युक्तियों से अपने कथन को प्रमाणित कर रोहगुप्त ने परिव्राजक को निरुत्तर कर दिया।

अपनी हार देख परिव्राजक ने क्रुद्ध हो एक-एक कर अपनी विद्याओं का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। रोहगुप्त ने उसकी प्रतिपक्षी विद्याओं से उन सबको विफल कर दिया। तब उसने अंतिम अस्त्र के रूप में गदभीविद्या का प्रयोग किया। रोहगुप्त ने उस मंत्रित रजोहरण को घुमा कर उसे भी विफल कर दिया। सभी उपस्थित सभासदों ने परिव्राजक को पराजित घोषित कर रोहगुप्त की विजय की घोषणा की।

रोहगुप्त विजय प्राप्त कर आचार्य के पास आया और सारी घटना उन्हें ज्यों की त्यों सुनाई। आचार्य ने कहा—वत्स ! तूने असत् प्ररूपणा कैसे की ? तूने अंत में यह क्यों नहीं स्पष्ट कर दिया कि राशि तीन नहीं हैं, केवल परिव्राजक को परास्त करने के लिए ही मैंने तीन राशियों का समर्थन किया है।

आचार्य ने फिर कहा—अभी समय है। जा और स्पष्टीकरण कर आ।

रोहगुप्त अपना पक्ष त्यागने के लिए तैयार नहीं हुआ। तब आचार्य ने राजा के पास जाकर कहा—राजन् ! मेरे शिष्य रोहगुप्त ने जैन सिद्धान्त के विपरीत तत्त्व की स्थापना की है। जिनमत के अनुसार दो ही राशि हैं। किन्तु समझाने पर भी रोहगुप्त अपनी भूल स्वीकार नहीं कर रहा है। आप राज-सभा में उसे बुलायें और मैं उसके साथ चर्चा करूंगा। राजा ने रोहगुप्त को बुलवाया। चर्चा प्रारम्भ हुई। अंत में आचार्य ने कहा—यदि वास्तव में तीन राशि हैं तो 'कुत्रिकापण'[1] में चल और तीसरी राशि नोजीव मांगें।

राजा को साथ लेकर सभी लोग 'कुत्रिकापण' गये और वहां के अधिकारी से कहा—हमें जीव अजीव और नोजीव, ये तीन वस्तुएं दो। उसने जीव और अजीव दो वस्तुएं ला दी और बोला-'नोजीव' नाम की कोई वस्तु संसार में नहीं है। राजा को आचार्य का कथन सत्य प्रतीत हुआ और उसने रोहगुप्त को अपने राज्य से निकाल दिया। आचार्य ने भी उसे संघ से बाह्य घोषित कर दिया।

---

१ जिसे आज 'जनरल स्टोर' कहते हैं, पूर्वकाल में उसे 'कुत्रिकापण' कहते थे। यहां अखिल विश्व की सभी वस्तुएं बिका करती थीं। वह देवाधिष्ठित माना जाता है।

तब वह अपने अभिमत का प्ररूपण करते हुए विचरने लगा। अन्त मे उसने वैशेषिक मत की स्थापना की।

७ अबद्धकनिह्नव—भ० महावीर के निर्वाण के ५८४ वर्ष बाद दशपुर नगर मे अबद्धिकमत प्रारम्भ हुआ। इसके प्रवर्तक गोष्ठामाहिल थे।

उस समय दशपुर नगर मे राजकुल से सम्मानित ब्राह्मणपुत्र आर्यरक्षित रहता था। उसने अपने पिता से पढना प्रारम्भ किया। जब वह पिता से पढ चुका तब विशेष अध्ययन के लिए पाटलिपुत्र नगर गया। वहा मे वेद-वेदाङ्गो का पढ कर घर लौटा। माता के कहने से उसने जैनाचार्य तोसलिपुत्र के पास जाकर प्रव्रजित हो दृष्टिवाद पढना प्रारम्भ किया। आर्यवज्र के पास नौ पूर्वो को पढ कर दशवें पूर्व के चौवीस यविक ग्रहण किये।

आ० आर्यरक्षित के तीन प्रमुख शिष्य थे—दुर्वलिकापुष्यमित्र, फल्गुरक्षित और गोष्ठामाहिल। उन्होने अंतिम समय मे दुर्वलिकापुष्यमित्र को गण का भार सौंपा।

एक वार दुर्वलिकापुष्यमित्र अर्थ की वाचना दे रहे थे। उनके जाने बाद विन्ध्य उस वाचना का अनुभाषण कर रहा था। गोष्ठामाहिल उसे सुन रहा था। उस समय आठवें कर्मप्रवाद पूर्व के अंतर्गत कर्म का विवेचन चल रहा था। उसमे एक प्रश्न यह था कि जीव के साथ कर्मो का बंध किस प्रकार होता है? उसके समाधान मे कहा गया था कि कर्म का बन्ध तीन प्रकार से होता है—

१ स्पृष्ट—कुछ कर्म जीव-प्रदेशो के साथ स्पर्श मात्र करते हैं और तत्काल सूखी दीवाल पर लगी धूलि के समान झड जाते है।

२ स्पृष्ट बद्ध—कुछ कर्म जीव-प्रदेशो का स्पर्श कर बंधते है, किन्तु वे भी कालांतर मे झड जाते हैं, जैसे कि गीली दीवाल पर उडकर लगी धूलि कुछ तो चिपक जाती है और कुछ नीचे गिर जाती है।

३ स्पृष्ट, बद्ध निकाचित—कुछ कर्म जीव-प्रदेशो के साथ गाढ रूप से बंधते हैं, और दीर्घ काल तक बंधे रहने के बाद स्थिति का क्षय होने पर वे भी अलग हो जाते हैं।

उक्त व्याख्यान सुनकर गोष्ठामाहिल का मन शंकित हो गया। उसने कहा—कर्म को जीव के साथ बद्ध मानने से मोक्ष का अभाव हो जायगा। फिर कोई भी जीव मोक्ष नही जा सकेगा। अतः सही सिद्धान्त यही है कि कर्म जीव के साथ स्पृष्ट मात्र होते हैं, बंधते नही है, क्योंकि कालान्तर मे वे जीव से वियुक्त होते है। जो वियुक्त होता है, वह एकात्मरूप से बद्ध नही हो सकता। उसने अपनी शंका विन्ध्य के सामने रखी। विन्ध्य ने कहा कि आचार्य ने इसी प्रकार का अर्थ बताया था।

गोष्ठामाहिल के गले यह बात नही उतरी। वह अपने ही आग्रह पर दृढ रहा। इसी प्रकार नौवें पूर्व की वाचना के समय प्रत्याख्यान के यथाशक्ति और यथाकाल करने की चर्चा पर विवाद खडा होने पर उसने तीर्थंकर-भाषित अर्थ को भी स्वीकार नही किया, तब संघ ने उसे बाहर कर दिया। वह अपनी मान्यता का प्रचार करने लगा कि कर्म आत्मा का स्पर्शमात्र करते हैं, किन्तु उसके साथ लालीभाव से बद्ध नही होते।

उक्त सात निह्नवो मे से जमालि, रोहगुप्त तथा गोष्ठामाहिल ये तीन अंत तक अपने आग्रह पर दृढ रहे और अपने मत का प्रचार करते रहे। शेष चार ने अपना आग्रह छोडकर अंत मे भगवान् के शासन को स्वीकार कर लिया (१४२)।

अनुभाव-सूत्र

१४३—सातावेयणिज्जस्स ण कम्मस्स सत्तविधे अणुभावे पण्णत्ते, त जहा—मणुण्णा सद्दा, मणुण्णा रूवा, (मणुण्णा गधा, मणुण्णा रसा), मणुण्णा फासा, मणोसुहता, वइसुहता।

साता-वेदनीय कर्म का अनुभाव सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ मनोज्ञ शब्द, २ मनोज्ञ रूप, ३ मनोज्ञ गन्ध, ४ मनोज्ञ रस, ५ मनोज्ञ स्पर्श, ६ मन सुख, ७ वच सुख (१४३)।

१४४—असातावेयणिज्जस्स ण कम्मस्स सत्तविधे अणुभावे पण्णत्ते, त जहा—अमणुण्णा सद्दा, (अमणुण्णा रूवा, अमणुण्णा गधा, अमणुण्णा रसा, अमणुण्णा फासा, मणोदुहता), वइदुहता।

असातावेदनीय कर्म का अनुभाव सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ अमनोज्ञ शब्द, २ अमनोज्ञ रूप, ३ अमनोज्ञ गन्ध, ४ अमनोज्ञ रस, ५ अमनोज्ञ स्पर्श, ६ मनोदु ख, ७ वचोदु ख (१४४)।

नक्षत्र-सूत्र

१४५—महाणक्खत्ते सत्ततारे पण्णत्ते।

मघा नक्षत्र सात ताराओं वाला कहा गया है (१४५)।

१४६—अभिईयादिया ण सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, त जहा—अभिई, सवणो, धणिट्ठा, सतभिसया, पुव्वभद्दवया, उत्तरभद्दवया, रेवती।

अभिजित आदि सात नक्षत्र पूर्वद्वार वाले कहे गये हैं। जैसे—

१ अभिजित, २ श्रवण, ३ धनिष्ठा, ४ शतभिषक्, ५ पूर्वभाद्रपद, ६ उत्तरभाद्रपद, ७ रेवती (१४६)।

१४७—अस्सिणियादिया ण सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता, त जहा—अस्सिणी भरणी, कित्तिया, रोहिणी, मिगसिरे, अद्दा, पुणव्वसू।

अश्विनी आदि सात नक्षत्र दक्षिणद्वार वाले कहे गये है। जैसे—

१ अश्विनी, २ भरणी, ३ कृत्तिका, ४ रोहिणी, ५ मृगशिर, ६ आर्द्रा, ७ पुनर्वसु (१४७)।

१४८—पुस्सादिया ण सत्त णक्खत्ता अवरदारिया पण्णत्ता, त जहा—पुस्सो, असिलेसा, मघा, पुव्वाफग्गुणी, उत्तराफग्गुणी, हत्थो, चित्ता।

पुष्य आदि सात नक्षत्र पश्चिमद्वार वाले कहे गये है। जैसे—

१ पुष्य, २ अश्लेषा, ३ मघा, ४ पूर्वफाल्गुनी, ५ उत्तरफाल्गुनी, ६ हस्त, ७ चित्रा (१४८)।

१४९—सातियाइया ण सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता, त जहा—साती, विसाहा अणुराहा, जेट्ठा, मूलो, पुव्वासाढा, उत्तरासाढा।

स्वाति आदि सात नक्षत्र उत्तरद्वार वाले कहे गये है । जैसे—
१ स्वाति, २ विशाखा, ३ अनुराधा, ४ ज्येष्ठा, ५ मूल, ६ पूर्वाषाढा, ७ उत्तराषाढा (१४६) ।

कूट सूत्र

१५०—जबुद्दीवे दीवे सोमणसे वक्खारपव्वते सत्त कूडा पण्णत्ता, त जहा—

सग्रहणी गाथा

सिद्धे सोमणसे या, बोद्धव्वे मगलावतीकूडे ।
देवकुर विमल कचण, विसिट्ठकूडे य बोद्धव्वे ।।१।।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे सौमनस वक्षस्कार पवत पर सात कूट कहे गये हैं । जैसे—
१ सिद्धकूट, २ सौमनसकूट, ३ मगलावतीकूट, ४ देवकुरुकूट, ५ विमलकूट, ६ काचनकूट ७ विशिष्टकूट (१५०) ।

१५१—जबुद्दीवे दीवे गधमायणे वक्खारपव्वते सत्त कूडा पण्णत्ता, त जहा—

सिद्धे य गधमायण, बोद्धव्वे गधिलावतीकूडे ।
उत्तरकुरु फलिहे, लोहितक्खे आणदणे चेव ।।१।।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप म गन्धमादन वक्षस्कार पवत पर सात कूट कहे गये है । जसे—
१ सिद्धकूट, २ गन्धमादनकूट, ३ गन्धिलावतीकूट, ४ उत्तरकुरुकूट ५ स्फटिककूट ३ लोहिताक्षकूट, ७ आनन्दनकूट (१५१) ।

कुलकोटी सूत्र

१५२—बिइदियाण सत्त जाति कुलकोडि जोणीपमुह सयसहस्सा पण्णत्ता ।

द्वीन्द्रिय जाति की सात लाख योनिप्रमुख कुलकोटि कही गई है (१५२) ।

पापकर्म-सूत्र

१५३—जीवा ण सत्तट्ठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिसु वा चिणति वा चिणिस्सति वा, त जहा—णेरइयनिव्वत्तिते, (तिरिक्खजोणियणिव्वत्तिते, तिरिक्खजोणिणीणिव्वत्तिते, मणुस्सणिव्वत्तिते, मणुस्सीणिव्वत्तिते), देवणिव्वत्तिते, देवीणिव्वत्तिते ।

एव—चिण-(उवचिण बध उदीर वेद तह) णिज्जरा चेव ।

जीवा ने सात स्थानो से निर्वतित पुद्गलो का पापकर्मरूप से सचय किया है, करते हैं और करेंगे । जैसे—
१ नैरयिक निर्वतित पुद्गलो का,
२ तिर्यग्योनिक (तिर्यंच) निर्वतित पुदगलो का,
३ तिर्यग्योनिकी (तिर्यंचनी) निर्वतित पुद्गलो का,
४ मनुष्य निर्वतित पुद्गला का,
५ मानुषी निर्वतित पुदगला का,

६ देव निर्वर्तित पुद्गलो का,
७ देवी निर्वर्तित पुद्गलो का (१५३)।

इसी प्रकार जीवो ने सात स्थानो से निर्वर्तित पुद्गलों का पापकर्मरूप से उपचय, बन्ध, उदीरण, वेदन और निजरण किया है, करते है और करेंगे।

पुद्गल-सूत्र

१५४—सत्तपएसिया खधा अणता पण्णत्ता।

सात प्रदेश वाले पुद्गलस्कन्ध अनन्त हैं (१५४)।

१५५—सत्तपएसोगाढा पोग्गला जाव सत्तगुणलुक्खा पोग्गला अणता पण्णत्ता।

सात प्रदशावगाह वाले पुद्गलस्कन्ध अनन्त हैं। सात समय की स्थिति वाले पुद्गलस्कन्ध अनन्त हैं। सात गुणवाले पुद्गलस्कन्ध अनन्त हैं।

इसी प्रकार शेष वर्ण, तथा गन्ध, रस और स्पर्शों के सात गुणवाले पुद्गलस्कन्ध अनन्त-अनन्त है (१५५)।

॥ सप्तम स्थान समाप्त ॥

अष्टम स्थान

सार सक्षेप

आठवे स्थान मे आठ की सख्या से सम्बन्धित विषयो का सकलन किया गया है। उनमे से सबसे अधिक महत्त्वपूण विवेचन आलोचना-पद मे किया गया है। यहाँ बताया गया है कि मायाचारी व्यक्ति दोषो का सेवन करके भी उनको छिपाने का प्रयत्न करता है। उसे यह भय रहता है कि यदि मैं अपने दोषो को गुरु के सम्मुख प्रकट करूगा तो मेरी अकीर्ति होगी, अवणवाद होगा, मेरा अविनय होगा मेरा यश कम हो जायगा। इस प्रकार के मायावी व्यक्ति को सचेत करने के लिए बताया गया है कि वह इस लोक मे निन्दित होता है, परलोक मे भी निन्दित होता है और यदि अपनी आलोचना, निन्दा, गर्हा आदि न करके वह देवलोक मे उत्पन्न होता है, तो वहा भी अन्य देवो के द्वारा तिरस्कार ही पाता है। वहा से चयकर मनुष्य होता है तो दीन-दरिद्र कुल मे उत्पन्न होता है और वहाँ भी तिरस्कार-अपमानपूण जीवन यापन करके अन्त मे दुर्गतियो मे परिभ्रमण करता है।

इसके विपरीत अपने दोषो की आलोचना करने वाला देवो मे उत्तम देव होता है, देवो के द्वारा उसका अभिनन्दन किया जाता है। वहा से चयकर उत्तम जाति-कुल और वश मे उत्पन्न होता है, सभी के द्वारा आदर, सत्कार पाता है और अन्त मे सयम धारण कर सिद्ध-बुद्ध होकर मोक्ष प्राप्त करता है।

मायाचारी की मन स्थिति का चित्रण करते हुए बताया गया है कि वह अपने मायाचार को छिपाने के लिए भीतर ही भीतर लोह, तावे, सीसे, सोने, चादी आदि को गलाने की भट्टिया के समान, कुभार के आपाक (अवे) के समान और ईटा के भट्टे के समान निरन्तर सतप्त रहता है। किसी को बात करते हुए देखकर मायावी समझता है कि वह मेरे विषय मे ही बात कर रहा है।

इस प्रकार मायाचार के महान् दोषा को बतलाने का उद्देश्य यही है कि साधक पुरुष मायाचार न करे। यदि प्रमाद या अज्ञानवश कोई दोष हो गया हो तो निश्छलभाव से, सरलतापूर्वक उसकी आलोचना-गर्हा करके आत्म-विकास के माग मे उत्तरोत्तर आगे बढता जावे।

गणि-सम्पत्-पद मे बताया गया है कि गण-नायक मे आचार सम्पदा, श्रुत सम्पदा आदि आठ सम्पदाओ का होना आवश्यक है। आलोचना करने वाले को प्रायश्चित्त देने वाले मे भी अपरिश्रावी आदि आठ गुणो का होना आवश्यक है।

केवलि-समुद्घात पद मे केवली जिन के होने वाले समुद्घात के आठ समयो का वणन, ब्रह्म-लोक के अन्त मे कृष्णराजियो का वणन, अक्रियावादि-पद मे आठ प्रकार के अक्रियावादियो का, आठ प्रकार की आयुर्वेदचिकित्सा का, आठ पृथिवियो का वणन द्रष्टव्य है। जम्बूद्वीप-पद मे जम्बूद्वीप सम्बन्धी अन्य वणनो के साथ विदेहक्षेत्र स्थित ३२ विजयो और ३२ राजधानियो का वणन भी ज्ञातव्य है।

भौगोलिक वणन अनेक प्राचीन सग्रहणी गाथाओ के आधार पर किया गया है। इस स्थान के प्रारम्भ मे बताया गया है कि एकल विहार करने वाले साधु को श्रद्धा, सत्य, मेधा, बहुश्रुतता आदि आठ गुणो का धारक होना आवश्यक है। तभी वह अकेला विहार करने के योग्य है। ☐☐

जीवो ने आठ कमप्रकृतियो का अतीत काल मे सचय किया है, वर्तमान मे कर रहे है और भविष्य मे करेगे। जैसे—

१ ज्ञानावरणीय, २ दशनावरणीय, ३ वेदनीय, ४ मोहनीय, ५ आयु, ६ नाम, ७ गोत्र, ८ अतराय (५)।

६—णेरइया ण अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिसु वा चिणति वा चिणिस्सति वा एव चेव।

नारक जीवो न उक्त आठ कमप्रकृतियो का सचय किया है, कर रहे ह और भविष्य मे करेंग (६)।

७—एव णिरतर जाव वेमाणियाण।

इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डक वाले जीवो ने आठ कमप्रकृतियो का सचय किया है, कर रहे हैं और करेंगे (७)।

८—जीवा ण अट्ठ कम्मपगडीओ उवचिणिसु वा उवचिणति वा उवचिणिस्सति वा एव चेव।

एव—चिण उवचिण बध-उदीर वेय तह णिज्जरा चेव।

एते छ चउवीसा दडगा भाणियव्वा।

जीवो ने आठ कमप्रकृतियो का सचय, उपचय, ब ध, उदीरण, वेदन और निजरण किया है, कर रहे हैं और करग (८)।

इसी प्रकार नारको से लेकर वमानिको तक सभी दण्डका के जीवा ने आठ कम-प्रकृतियो का सचय, उपचय, बन्ध, उदीरण, वेदन और निजरण किया है, कर रहे है और करेंगे।

इस प्रकार सचय आदि छह पदो की अपेक्षा चौवीस दण्डक जानना चाहिए।

आलोचना सूत्र

९—अट्ठहि ठाणेहि मायी माय कट्टु णो आलोएज्जा, णो पडिक्कमेज्जा (णो णिदेज्जा णो गरिहेज्जा, णो विउट्टेज्जा, णो विसोहेज्जा, णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, णो अहारिह पायच्छित्त तवोकम्म) पडिवज्जेज्जा, त जहा—करिसु वाह, करेमि वाह, करिस्सामि वाह, अकित्ती वा मे सिया, अवण्णे वा मे सिया, अविणए वा मे सिया, कित्ती वा मे परिहाइस्सइ, जसे वा मे परिहाइस्सइ।

आठ कारणो से मायावी पुरुष माया करके न उसकी आलोचना करता है, न प्रतिक्रमण करता है, न निन्दा करता है, न गर्हा करता है, न व्यावृत्ति करता है न विशुद्धि करता है, न पुन वैसा नही करू गा' ऐसा कहने को उद्यत होता है, न यथायोग्य प्रायश्चित्त, और तप कम को स्वीकार करता है। वे आठ कारण इस प्रकार है—

१ मैंने (स्वय) अकरणीय काय किया है,

२ मैं अकरणीय कार्य कर रहा हूँ,

३ मैं अकरणीय काय करू गा।

४ मेरी अकीर्ति होगी,

५ मेरा अवणवाद होगा,

६ मेरा अविनय होगा,

७ मेरी कीर्त्ति कम हो जायगी,
८ मेरा यश कम हो जायगा।
इन आठ कारणो से मायावी माया करके भी उसकी आलोचनादि नही करता है।

१०—अट्ठहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु आलोएज्जा (पडिक्कमेज्जा, णिंदेज्जा, गरिहेज्जा, विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं) पडिवज्जेज्जा, तं जहा—

१ मायिस्स णं अस्सिं लोए गरहिते भवति।
२ उववाए गरहिते भवति।
३ आयाती गरहिता भवति।
४ एगमवि मायी मायं कट्टु णो आलोएज्जा, (णो पडिक्कमेज्जा, णो णिंदेज्जा, णो गरिहेज्जा, णो विउट्टेज्जा, णो विसोहेज्जा, णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं) पडिवज्जेज्जा, णत्थि तस्स आराहणा।
५ एगमवि मायी मायं कट्टु आलोएज्जा, (पडिक्कमेज्जा, णिंदेज्जा, गरिहेज्जा, विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं) पडिवज्जेज्जा, अत्थि तस्स आराहणा।
६ बहुओवि मायी मायं कट्टु णो आलोएज्जा, (णो पडिक्कमेज्जा, णो णिंदेज्जा णो गरिहेज्जा, णो विउट्टेज्जा, णो विसोहेज्जा, णो अकरणाए अब्भुट्ठेज्जा, णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं) पडिवज्जेज्जा, णत्थि तस्स आराहणा।
७ बहुओवि मायी मायं कट्टु आलोएज्जा, (पडिक्कमेज्जा, णिंदेज्जा, गरिहेज्जा, विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जेज्जा), अत्थि तस्स आराहणा।
८ आयरिय-उवज्झायस्स वा मे अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जेज्जा, सेयं, ममंमालोएज्जा मायी णं एसे।

मायी णं मायं कट्टु से जहाणामए अयागरेति वा तंबागरेति वा तउआगरेति वा सीसागरेति वा रुप्पागरेति वा सुवण्णागरेति वा तिलागणीति वा तुसागणीति वा बुसागणीति वा णलागणीति वा दलागणीति वा सोंडियालिछाणि वा भंडियालिछाणि वा गोलियालिछाणि वा कुंभारावाएति वा कवेल्लुआवाएति वा इट्टावाएति वा जंतवाडचुल्लीति वा लोहारंबरिसाणि वा।

तत्ताणि समजोतिभूताणि किंसुकफुल्लसमाणाणि उक्कासहस्साइं विणिम्मुयमाणाइं विणिम्मुयमाणाइं, जालासहस्साइं पमुंचमाणाइं पमुंचमाणाइं, इंगालसहस्साइं पविक्खिरमाणाइं-पविक्खिरमाणाइं, अंतो अंतो झियायंति, एवामेव मायी मायं कट्टु अंतो अंतो झियाइ।

जवि य णं अण्णे केइ वदंति तंपि य णं मायी जाणति अहमेसे अभिसंकिज्जामि अभिसंकिज्जामि।

मायी णं मायं कट्टु अणालोइयपडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा अण्णतरेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववत्तारो भवति, तं जहा—णो महिड्डिएसु (णो महज्जुइएसु णो महाणुभागेसु णो महायसेसु णो महाबलेसु णो महासोक्खेसु) णो दूरगतिएसु णो चिरट्ठितिएसु। से णं तत्थ देवे भवति णो महिड्डिए

(णो महज्जुइए णो महाणुभाग णो महायसे णो महाबले णो महासोक्खे णो दूरगतिए) णो चिरट्ठितिए।

जावि य से तत्थ बाहिरब्भतरिया परिसा भवति सावि य ण णो आढाति णो परिजाणाति णो महरिहेण आसणेण उवणिमतेति, भासपि य से भासमाणस्स जाव चत्तारि पच देवा अणुत्ता चेव अब्भुट्ठ ति—मा बहु देवे! भासउ भासउ।

से ण ततो देवलोगाओ आउक्खएण भवक्खएण ठितिक्खएण अणतर चय चइत्ता इहेव माणुस्सए भवे जाइ इमाइ कुलाइ भवति, त जहा—अतकुलाणि वा पतकुलाणि वा तुच्छकुलाणि वा दरिद्दकुलाणि वा भिक्खागकुलाणि वा किवणकुलाणि वा, तहप्पगारेसु कुलेसु पुमत्ताए पच्चायाति। से ण तत्थ पुमे भवति दुरूवे दुवण्णे दुग्गधे दुरसे दुफासे अणिट्ठे अकते अप्पिए अमणुण्णे अमणामे हीणस्सरे दीणस्सरे अणिट्ठस्सरे अकतस्सरे अप्पियस्सरे अमणुण्णस्सरे अमणामस्सरे अणाएज्जवयणे पच्चायाते।

जावि य से तत्थ बाहिरब्भतरिया परिसा भवति, सावि य ण णो आढाति णो परिजाणाति णो महरिहेण आसणेण उवणिमतेति, भासपि य से भासमाणस्स जाव चत्तारि पच जणा अणुत्ता चेव अब्भुट्ठ ति—मा बहु अज्जउत्तो! भासउ भासउ।

मायी ण माय कट्टु आलोचित पडिक्कते कालमासे काल किच्चा अण्णतरेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववत्तारो भवति, त जहा—महिड्डिएसु (महज्जुइएसु महाणुभागेसु महायसेसु महाबलेसु महासोक्खेसु दूरगतिएसु) चिरट्ठितिएसु। से ण तत्थ देवे भवति महिड्डिए (महज्जुइए महाणुभाग महायसे महाबले महासोक्खे दूरगतिए) चिरट्ठितिए हार-विराइय वच्छे कडग तुडित थमित भुए अगद कु डल मट्ठ-गडतल कण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणे विचित्तवत्थाभरणे विचित्तमालामउली कल्लाणग-पवर-वत्थ परिहिते कल्लाणग 'पवर-गध-मल्लाणुलेवणधरे' भासुरबोंदी पलब वणमालधरे दिव्वेण वण्णेण दिव्वेण गधेण दिव्वेण रसेण दिव्वेण फासेण दिव्वेण सघातेण दिव्वेण सठाणेण दिव्वाए इड्डीए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेण तेएण दिव्वाए लेस्साए दस दिसाओ उज्जोवेमाणे पभासेमाणे महयाहत-णट्ट-गीत वादित-तती-तल ताल-तुडित-घण मुइग पडुप्पवादित रवेण दिव्वाइ भोगभोगाइ भु जमाणे विहरइ।

जावि य से तत्थ बाहिरब्भतरिया परिसा भवति, सावि य ण आढाइ परिजाणाति महरिहेण आसणेण उवणिमतेति, भासपि य से भासमाणस्स जाव चत्तारि पच देवा अणुत्ता चेव अब्भुट्ठ ति—बहु देवे! भासउ भासउ।

से ण ताओ देवलोगाओ आउक्खएण (भवक्खएण ठितिक्खएण अणतर चय) चइत्ता इहेव माणुस्सए भवे जाइ इमाइ कुलाइ भवति—अड्ढाइ (दित्ताइ वित्थिण्ण-विउल-भवण सयणासण जाण वाहणाइ 'बहुधण-बहुजायरूव रययाइ' आओगपओग सपउत्ताइ विच्छड्डिय पउर भत्तपाणाइ बहुदासी-दास-गो महिस-गवेलय प्पभूयाइ) बहुजणस्स अपरिभूताइ, तहप्पगारेसु कुलेसु पुमत्ताए पच्चायाति। से ण तत्थ पुमे भवति सुरूवे सुवण्णे सुगधे सुरसे सुफासे इट्ठे कते (पिए मणुण्णे) मणामे अहीणस्सरे (अदीणस्सरे इट्ठस्सरे कतस्सरे पियस्सरे मणुण्णस्सरे) मणामस्सरे आदेज्जवयणे पच्चायाते।

जावि य से तत्थ बाहिरब्भतरिया परिसा भवति, सावि य ण आढाति (परिजाणाति महरिहेण आसणेण उवणिमतेति, भासपि य से भासमाणस्स जाव चत्तारि पच जणा अणुत्ता चेव अब्भुट्ठ ति)—बहु अज्जउत्ते! भासउ भासउ।

आठ कारणो से मायावी माया करके उसकी आलोचना करता है, प्रतिक्रमण करता है, निन्दा करता है, गर्हा करता है, व्यावृत्ति करता है, विशुद्धि करता है, 'मैं पुन वैसा नही करूगा' ऐसा कहने को उद्यत होता है, और यथायोग्य प्रायश्चित्त तथा तप कर्म स्वीकार करता है। वे आठ कारण इस प्रकार हैं—

१ मायावी का यह लोक गर्हित होता है,

२ उपपात गर्हित होता है,

३ आजाति—जन्म गर्हित होता है।

४ जो मायावी एक भी मायाचार करके न आलोचना करता है, न प्रतिक्रमण करता है, न निन्दा करता है, न गर्हा करता है, न व्यावृत्ति करता है, न विशुद्धि करता है, न 'पुन वैसा नही करूगा', ऐसा कहने को उद्यत होता है न यथायोग्य प्रायश्चित्त और तप कर्म को स्वीकार करता है, उसके आराधना नहीं होती है।

५ जो मायावी एक भी बार मायाचार करके उसकी आलोचना करता है, प्रतिक्रमण करता है, निन्दा करता है, गर्हा करता है, व्यावृत्ति करता है, विशुद्धि करता है, 'मैं पुन वैसा नही करूगा', ऐसा कहने को उद्यत होता है, यथायोग्य प्रायश्चित्त और तप कर्म स्वीकार करता है, उसके आराधना होती है।

६ जो मायावी बहुत मायाचार करके न उसकी आलोचना करता है न प्रतिक्रमण करता, है न निन्दा करता है,न गर्हा करता है, न व्यावृत्ति करता है, न विशुद्धि करता है, न 'मै पुन वैसा नही करूगा', ऐसा कहने को उद्यत होता है, न यथायोग्य प्रायश्चित्त और तप कर्म स्वीकार करता है, उसके आराधना नहीं होती है।

७ जो मायावी बहुत मायाचार करके उसकी आलोचना करता है, प्रतिक्रमण करता है, निन्दा करता है, गर्हा करता है, व्यावृत्ति करता है, विशुद्धि करता है 'मैं पुन वैसा नही करूगा', ऐसा कहने को उद्यत होता है यथायोग्य-प्रायश्चित्त और तप कर्म स्वीकार करता है, उसके आराधना होती है।

८ मेरे आचार्य या उपाध्याय को अतिशायी ज्ञान और दर्शन उत्पन्न हो तो वे मुझे देख कर ऐसा न जान लेवें कि यह मायावी है ?

अकरणीय कार्य करने के बाद मायावी उसी प्रकार भीतर ही भीतर जलता है जैसे—लोहे को गलाने की भट्टी, ताम्बे को गलाने की भट्टी, त्रपु (जस्ता) को गलाने की भट्टी शीशे को गलाने की भट्टी, चादी को गलाने की भट्टी, सोने को गलाने की भट्टी, तिल की अग्नि, तुष की अग्नि, भूसे की अग्नि, नलाग्नि (नरकट की अग्नि), पत्तो की अग्नि, मुण्डिका का चूल्हा, भण्डिका का चूल्हा, गोलिका का चूल्हा[1], घडो का पजावा, खप्परो का पजावा, ईटो का पजावा, गुड बनाने की भट्टी, लोहकार की भट्टी तपती हुई, अग्निमय होती हुई, किंशुक फूल के समान लाल होती हुई, सहस्रो उल्काओ और सहस्रो ज्वालाओ को छोडती हुई सहस्रो अग्निकणो को फेकती हुई भीतर ही भीतर जलती है, उसी प्रकार मायावी माया करके भीतर ही भीतर जलता है।

यदि कोई अन्य पुरुष आपस मे बात करते हैं तो मायावी समझता है कि 'ये मेरे विषय मे ही शका कर रहे हैं।'

---

१ ये विभिन्न देशो मे विभिन्न वस्तुओ को पकाने, रांधने आदि कार्य के लिए काम मे आने वाले छोटे-बडे चूल्हों के नाम है।

कोई मायावी माया करके उसकी आलोचना या प्रतिक्रमण किये बिना ही काल मास में काल करके किसी देवलोक में देवरूप से उत्पन्न होता है, किन्तु वह महाऋद्धि वाले, महाद्युति वाले विक्रियादि शक्ति से युक्त, महायशस्वी, महाबलशाली, महान् सौख्य वाले, ऊंची गति वाले और दीर्घस्थिति वाले देवों में उत्पन्न नहीं होता। वह देव होता है, किन्तु महाऋद्धि वाला, महाद्युति वाला, विक्रिया आदि शक्ति से युक्त, महायशस्वी, महाबलशाली, महान् सौख्यवाला, ऊंची गतिवाला और दीर्घ स्थितिवाला देव नहीं होता।

वहां देवलोक में उसकी जो बाह्य और आभ्यन्तर परिषद् होती है, वह भी न उसको आदर देती है, न उसे स्वामी के रूप में मानती है और न महान् व्यक्ति के योग्य आसन पर बैठने के लिए निमन्त्रित करती है। जब वह भाषण देना प्रारम्भ करता है, तब चार-पांच देव बिना कहे ही खड़े हो जाते हैं और कहते हैं 'देव! बहुत मत बोलो, बहुत मत बोलो।'

पुनः वह देव आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय के अनन्तर देवलोक से च्युत होकर यहां मनुष्यलोक में मनुष्य भव में जो ये अन्तकुल हैं, या प्रान्तकुल हैं, या तुच्छकुल हैं, या दरिद्रकुल हैं, या भिक्षुककुल हैं, या कृपणकुल हैं या इसी प्रकार के अन्य हीन कुल हैं, उनमें मनुष्य के रूप में उत्पन्न होता है।

वहां वह कुरूप, कुवर्ण, दुर्गन्ध, अनिष्ट रस और कठोर स्पर्शवाला पुरुष होता है। वह अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ और मन को न गमन योग्य होता है। वह हीनस्वर, दीनस्वर, अनिष्ट स्वर अकान्तस्वर, अप्रियस्वर, अमनोज्ञस्वर, अरुचिकर स्वर और अनादेय वचनवाला होता है।

वहां उसकी जो बाह्य और आभ्यन्तर परिषद् होती है, वह भी उसका न आदर करती है, न उसे स्वामी के रूप में समझती है, न महान् व्यक्ति के योग्य आसन पर बैठने के लिए निमन्त्रित करती है। जब वह बोलने के लिए खड़ा होता है, तब चार-पांच मनुष्य बिना कहे ही खड़े जाते हैं और कहते हैं—'आर्यपुत्र! बहुत मत बोलो, बहुत मत बोलो।'

मायावी माया करके उसकी आलोचना कर, प्रतिक्रमण कर, कालमास में काल कर किसी एक देवलोक में देवरूप से उत्पन्न होता है। वह महाऋद्धि वाले, महाद्युति वाले, विक्रिया आदि शक्ति से युक्त, महायशस्वी, महाबलशाली, महान् सौख्यवाले, ऊंची गतिवाले, और दीर्घ स्थितिवाले देवों में उत्पन्न होता है।

वह महाऋद्धिवाला, महाद्युतिवाला, विक्रिया आदि शक्ति से युक्त, महायशस्वी, महाबलशाली, महान् सौख्यवाला, ऊंची गतिवाला और दीर्घ स्थितिवाला देव होता है। उसका वक्षस्थल हार से शोभित होता है, वह भुजाओं में कड़े, त्रोटे और अंगद (बाजूबन्द) पहने हुए रहता है। उसके कानों में चंचल तथा कपोल तक कानों को घिसने वाले कुण्डल होते हैं। वह विचित्र वस्त्राभरणों, विचित्र मालाओं और सेहरा वाला मांगलिक एवं उत्तम वस्त्रों को पहने हुए होता है, वह मांगलिक, प्रवर, सुगन्धित पुष्प और विलेपन को धारण किये हुए होता है। उसका शरीर तेजस्वी होता है, वह लम्बी लटकती हुई मालाओं को धारण किये रहता है। वह दिव्य वर्ण, दिव्य गन्ध, दिव्य रस दिव्य स्पर्श, दिव्य संघात (शरीर की बनावट), दिव्य संस्थान (शरीर की आकृति) और दिव्य ऋद्धि से युक्त होता है। वह दिव्यद्युति, दिव्यप्रभा, दिव्यकान्ति दिव्य अर्चि, दिव्य तेज, और दिव्य लेश्या से दशों दिशाओं को उद्योतित करता है प्रभासित करता है, वह नाट्यों, गीतों तथा युगल

वादकों के द्वारा जोर से बजाये गये वादित्र, तन्त्री तल, ताल, त्रुटित, घन और मृदग की महान् ध्वनि से युक्त दिव्य भोगो को भोगता हुआ रहता है।

उसकी वहा जो बाह्य और आभ्यन्तर परिषद् होती है, वह भी उसका आदर करती है, उसे स्वामी के रूप मे मानती है, उसे महान् व्यक्ति के योग्य आसन पर बैठने के लिए निमन्त्रित करती है। जब वह भाषण देना प्रारम्भ करता है, तब चार-पाँच देव विना कहे ही खडे हो जाते हैं और कहते है—'देव ! और अधिक बोलिए और अधिक बोलिए।

पुन वह देव आयुक्षय के भवक्षय के और स्थितिक्षय के अनन्तर देवलोक मे च्युत होकर यहीं मनुष्यलोक मे, मनुष्य भव म सम्पन्न, दीप्त विस्तीर्ण और विपुल भवन, शयन, आसन यान और वाहनवाले, बहुधन, बहु सुवर्ण और बहुचादी वाले, आयोग और प्रयोग (लेनदेन) मे सम्प्रयुक्त, प्रचुर भक्त पान का त्याग करनेवाले, अनेक दासी-दास, गाय-भैस, भेड आदि रखने वाले और बहुत व्यक्तियो के द्वारा अपराजित, एसे उच्च कुलो मे मनुष्य के रूप मे उत्पन्न होता है।

वहा वह सुरूप, सुवर्ण सुगन्ध, सुरस, और सुस्पर्श वाला होता है। वह इष्ट, कान्त, प्रिय मनोज्ञ और मन के लिए गम्य होता है। वह उच्च स्वर, प्रखर स्वर, कान्त स्वर प्रिय स्वर, मनोज्ञ स्वर, रुचिकर स्वर, और आदेय वचन वाला होता है।

वहाँ पर उसकी जो बाह्य और आभ्यन्तर परिषद् होती हैं, वह भी उसका आदर करती है, उसे स्वामी के रूप मे मानती ह उसे महान् व्यक्ति के योग्य आसन पर बठने के लिए निमन्त्रित करती है। वह जब भाषण देना प्रारम्भ करता है, तब चार-पाच मनुष्य विना कहे ही खडे हो जाते है और कहते हैं—आर्यपुत्र ! और अधिक बोलिए और अधिक बोलिए। (इस प्रकार उसे और अधिक बोलने के लिए ससम्मान प्रेरणा की जाती है।)

संवर असंवर सूत्र

११—अट्ठविहे सवरे पण्णत्ते, त जहा—सोइंदियसवरे, (चक्खिदियसवरे, घाणिंदियसवरे, जिब्भिंदियसवरे), फासिंदियसवरे, मणसवरे, वइसवरे, कायसवरे।

सवर आठ प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ श्रोत्रेन्द्रिय-सवर, २ चक्षुरिन्द्रिय-सवर, ३ घ्राणेन्द्रिय-सवर, ४ रसनेन्द्रिय-सवर, ५ स्पर्शनेन्द्रिय-सवर, ६ मन सवर, ७ वचन-सवर, ८ काय-सवर (११)।

१२—अट्ठविहे असवरे पण्णत्ते, त जहा—सोतिंदियअसवरे, (चक्खिदियअसवरे, घाणिंदिय-असवरे, जिब्भिंदियअसवरे, फासिंदियअसवरे, मणअसवरे, वइअसवरे, कायअसवरे।

असवर आठ प्रकार का कहा गया है। जसे—

१ श्रोत्रेन्द्रिय असवर, २ चक्षुरिन्द्रिय असवर, ३ घ्राणेन्द्रिय असवर, ४ रसनेन्द्रिय-असवर, ५ स्पर्शनेन्द्रिय-असवर, ६ मन -असवर, ७ वचन-असवर, ८ काय-असवर (१२)।

स्पर्श सूत्र

१३—अट्ठ फासा पण्णत्ता, त जहा—कक्खडे, मउए, गरुए, लहुए, सीते, उसिणे, णिद्धे, लुक्खे।

स्पर्श आठ प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ कर्कश, २ मृदु, ३ गुरु, ४ लघु, ५ शीत, ६ उष्ण, ७ स्निग्ध, ८ रूक्ष (१३)।

लोकस्थिति-सूत्र

१४—अट्ठविधा लोगट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—आगासपतिट्ठिते वाते, वातपतिट्ठिते उदही, (उदधिपतिट्ठिता पुढवी पुढविपतिट्ठिता तसा थावरा पाणा, अजीवा जीवपतिट्ठिता) जीवा कम्म पतिट्ठिता, अजीवा जीवसंगहीता, जीवा कम्मसंगहीता।

लोक स्थिति आठ प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ वायु (तनुवात) आकाश पर प्रतिष्ठित है।
२ समुद्र (घनोदधि) वायु पर प्रतिष्ठित है।
३ पृथ्वी समुद्र पर प्रतिष्ठित है।
४ त्रस-स्थावर प्राणी पृथ्वी पर प्रतिष्ठित हैं।
५ अजीव जीव पर प्रतिष्ठित हैं।
६ जीव कर्म पर प्रतिष्ठित है।
७ अजीव जीव के द्वारा संगृहीत है।
८ जीव कर्म के द्वारा संगृहीत है (१४)।

गणिसंपदा-सूत्र

१५—अट्ठविहा गणिसंपया पण्णत्ता, तं जहा—आचारसंपया, सुयसंपया, सरीरसंपया, वयण संपया, वायणासंपया, मतिसंपया, पओगसंपया, संगहपरिण्णा णाम अट्ठमा।

गणी (आचार्य) की सम्पदा आठ प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ आचार-सम्पदा—संयम की समृद्धि,
२ श्रुत सम्पदा—श्रुतज्ञान की समृद्धि,
३ शरीर सम्पदा—प्रभावक शरीर सौन्दर्य,
४ वचन-सम्पदा—वचन-कुशलता,
५ वाचना-सम्पदा—अध्यापन-निपुणता,
६ मति-सम्पदा—बुद्धि की कुशलता,
७ प्रयोग-सम्पदा—वाद-प्रवीणता,
८ संग्रह-परिज्ञा—संघ व्यवस्था की निपुणता (१५)।

महानिधि-सूत्र

१६—एगमेगे णं महाणिही अट्ठचक्कवालपतिट्ठाणे अट्ठट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते।

चक्रवर्ती की प्रत्येक महानिधि आठ आठ पहियों पर आधारित है और आठ आठ योजन ऊंची कही गई है (१६)।

समिति सूत्र

१७—अट्ठ समितीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—इरियासमिती, भासासमिती, एसणासमिती,

आयाणभंड-मत्त णिक्खेवणासमिती, उच्चार-पासवण-खेल सिंघाण जल्ल परिट्ठावणियासमिती, मण-समिती, वइसमिती, कायसमिती।

समितियां आठ कही गई हैं। जैसे—

१ ईर्यासमिति, २ भाषासमिति, ३ एषणासमिति, ४ आदान भाण्ड-अमत्र निक्षेपणा-समिति, ५ उच्चार-प्रस्रवण-श्लेष्म सिंघाण-जल्ल-परिष्ठापनासमिति, ६ मन समिति, ७ वचनसमिति, ८ कायसमिति (१७)।

आलोचना सूत्र

१८—अट्ठहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहति आलोयणं पडिच्छित्तए, तं जहा—आयारवं, आधारवं, ववहारवं, ओवीलए, पकुव्वए अपरिस्साई, णिज्जावए, अवायदंसी।

आठ स्थानों से सम्पन्न अनगार आलोचना देने के योग्य होता है। जैसे—

१ आचारवान्—जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य, इन पांच आचारों से सम्पन्न हो।
२ आधारवान्—जो आलोचना लेने वाले के द्वारा आलोचना किये जाने वाले समस्त अतिचारों को जानने वाला हो।
३ व्यवहारवान—आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत, इन पांच व्यवहारों का ज्ञाता हो।
४ अपव्रीडक—आलोचना करने वाले व्यक्ति में वह लाज या संकोच से मुक्त होकर यथार्थ आलोचना कर सके ऐसा साहस उत्पन्न करने वाला हो।
५ प्रकारी—आलोचना करने पर विशुद्धि कराने वाला हो।
६ अपरिश्रावी—आलोचना करने वाले के आलोचित दोषों को दूसरों के सामने प्रकट करने वाला न हो।
७ निर्यापक—बड़े प्रायश्चित्त को भी निभा सके, ऐसा सहयोग देने वाला हो।
८ अपायदर्शी—प्रायश्चित्त भंग से तथा यथार्थ आलोचना न करने से होने वाले दोषों को दिखाने वाला हो (१८)।

१९—अट्ठहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहति अत्तदोसमालोइत्तए, तं जहा—जातिसंपण्णे, कुलसंपण्णे, विणयसंपण्णे, णाणसंपण्णे, दंसणसंपण्णे, चरित्तसंपण्णे, खंते, दंते।

आठ स्थानों से सम्पन्न अनगार अपने दोषों की आलोचना करने के लिए योग्य होता है। जैसे—

१ जातिसम्पन्न, २ कुलसम्पन्न, ३ विनयसम्पन्न, ४ ज्ञानसम्पन्न, ५ दर्शनसम्पन्न, ६ चारित्रसम्पन्न, ७ क्षान्त (क्षमाशील) ८ दान्त (इन्द्रिय-जयी) (१९)।

प्रायश्चित्त-सूत्र

२०—अट्ठविहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—आलोयणारिहे, पडिक्कमणारिहे, तदुभयारिहे, विवेगारिहे, विउस्सग्गारिहे, तवारिहे, छेयारिहे, मूलारिहे।

प्रायश्चित्त आठ प्रकार का कहा गया है। जैसे

१ आलोचना के योग्य, २ प्रतिक्रमण के योग्य,

३ आलोचना और प्रतिक्रमण दोनो के योग्य,
४ विवेक के योग्य,   ५ व्युत्सर्ग के योग्य,   ६ तप के योग्य,
७ छेद के योग्य,   ८ मूल के योग्य (२०)।

मदस्थान-सूत्र

२१—अट्ठ मयट्ठाणा पण्णत्ता, त जहा—जातिमए, कुलमए, बलमए, रूवमए, तवमए, सुतमए, लाभमए, इस्सरियमए।

मद के स्थान आठ कहे गये हैं। जैसे—
१ जातिमद, २ कुलमद, ३ बलमद, ४ रूपमद, ५ तपोमद, ६ श्रुतमद,
७ लाभमद, ८ ऐश्वर्यमद (२१)।

अक्रियावादि सूत्र

२२—अट्ठ अकिरियावाई पण्णत्ता, त जहा—एगावाई, अणेगावाई, मितवाई, णिम्मितवाई, सायवाई, समुच्छेदवाई, णितावाई, ण सतिपरलोगवाई।

अक्रियावादी आठ प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ एकवादी—एक ही तत्त्व को स्वीकार करने वाले।
२ अनेकवादी—एकत्व को सर्वथा अस्वीकार कर अनेक तत्त्वो को ही मानने वाले।
३ मितवादी—जीवो को परिमित मानने वाले।
४ निर्मितवादी—ईश्वर को सृष्टि का निर्माता माननेवाले।
५ सातवादी—सुख से ही सुख की प्राप्ति मानने वाले।
६ समुच्छेदवादी—क्षणिक वादी, वस्तु को सर्वथा क्षण विनश्वर मानने वाले।
७ नित्यवादी, वस्तु को सर्वथा नित्य मानने वाले।
८ अ-शान्ति-परलोकवादी—मोक्ष एव परलोक को नही मानने वाले (२२)।

महानिमित्त सूत्र

२३—अट्ठविहे महाणिमित्ते पण्णत्ते, त जहा—भोमे उप्पाते, सुविणे, अतलिक्खे, अगे, सरे, लक्खणे, वजणे।

आठ प्रकार के शुभाशुभ-सूचक महानिमित्त कहे गये हैं। जैसे—
१ भौम—भूमि की स्निग्धता—रूक्षता भूकम्प आदि से शुभाशुभ जानना।
२ उत्पात—उल्कापात रुधिर-वर्षा आदि से शुभाशुभ जानना।
३ स्वप्न—स्वप्नो के द्वारा भावी शुभाशुभ जानना।
४ आन्तरिक्ष—आकाश मे विविध वर्णों के देखने से शुभाशुभ जानना।
५ आङ्ग—शरीर के अगो को देखकर शुभाशुभ जानना।
६ स्वर—स्वर को सुनकर शुभाशुभ जानना।
७ लक्षण—स्त्री पुरुषो के शरीर गत चक्र आदि लक्षणो को देखकर शुभाशुभ जानना।
८, व्यञ्जन—तिल, मसा आदि देखकर शुभाशुभ जानना (२३)।

वचनविभक्ति-सूत्र

२४—अट्ठविधा वयणविभत्ती पण्णत्ता, त जहा—

संग्रहणी-गाथाएँ

णिद्देसे पढमा होती, बितिया उवएसणे ।
ततिया करणम्मि कता चउत्थी सपदावणे ॥१॥
पचमी य अवादाणे, छट्ठी सस्सामिवादणे ।
सत्तमी सण्णिहाणत्थे, अट्ठमी आमतणी भवे ॥२॥
तत्थ पढमा विभत्ती, णिद्देसे—सो इमो अह वत्ति ।
बितिया उण उवएसे—भण 'कुण व' इम व त वत्ति ॥३॥
ततिया करणम्मि कया—णीत व कत व तेण व मए व ।
हदि णमो साहाए, हवति चउत्थी पदाणमि ॥४॥
अवणे गिण्हसु तत्तो, इत्तोत्ति वा पचमी अवादाणे ।
छट्ठी तस्स इमस्स व, गतस्स वा सामि सबधे ॥५॥
हवइ पुण सत्तमी तमिमम्मि आहारकालभावे य ।
आमतणी भवे अट्ठमी उ जह हे जुवाण ! त्ति ॥६॥

वचन विभक्तिया आठ प्रकार की कही गई है । जसे—

१ निर्देश (नमोच्चारण) मे प्रथमा विभक्ति होती है ।
२ उपदेश क्रिया मे व्याप्त कम के प्रतिपादन मे द्वितीया विभक्ति होती है ।
३ क्रिया के प्रति साधकतम कारण के प्रतिपादन मे ततीया विभक्ति होती है ।
४ सत्कार-पूवक दिये जाने वाले पात्र को देने, नमस्कार आदि करने के अथ मे चतुर्थी विभक्ति होती है ।
५ पृथक्ता, पतनादि अपादान बतान के अथ मे पचमी विभक्ति होती है ।
६ स्वामित्व-प्रतिपादन करने के अथ म षष्ठी विभक्ति होती है ।
७ सन्निधान या आधार बताने के अथ मे सप्तमी विभक्ति होती है ।
८ किसी को सम्बोधन करने या पुकारने के अथ मे अष्टमी विभक्ति होती है ।

१ प्रथमा विभक्ति का चिह्न—वह, यह, मै आप, तुम आदि ।
२ द्वितीया विभक्ति का चिह्न—को, इसको कहो, उसे करा, आदि ।
३ तृतीया विभक्ति का चिह्न—से, द्वारा, जसे—गाडी से या गाडी के द्वारा आया, मेरे द्वारा किया गया, आदि
४ चतुर्थी विभक्ति का चिह्न—लिए—जसे गुरु के लिए नमस्कार आदि ।
५ पचमी विभक्ति का चिह्न—जैसे—घर ले जाओ, यहा से ले जा आदि ।
६ षष्ठी विभक्ति का चिह्न—यह उसकी पुस्तक है, वह इसकी है, आदि ।
७ सप्तमी विभक्ति का चिह्न—जसे उस चौकी पर पुस्तक, इस पर दीपक आदि ।
८ अष्टमी विभक्ति का चिह्न—हे युवक, हे भगवान्, आदि (२४) ।

छद्मस्थ-केवलि-सूत्र

२५—अट्ठ ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेण ण याणति ण पासति, त जहा—धम्मत्थिकाय, (अधम्मत्थिकाय, आगासत्थिकाय, जीव असरीरपडिबद्ध, परमाणुपोग्गल, सद्द), गध, वात।

एताणि चेव उप्पण्णणाणदसणधरे अरहा जिणे केवली (सव्वभावेण, जाणइ पासइ, त जहा—धम्मत्थिकाय, अधम्मत्थिकाय, आगासत्थिकाय जीव असरीरपडिबद्ध, परमाणुपोग्गल, सद्द), गध वात।

आठ पदार्थों को छद्मस्थ पुरुष सम्पूर्ण रूप से न जानता है और न देखता है। जैसे—

१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ शरीर-मुक्त जीव, ५ परमाणु पुद्गल, ६ शब्द, ७ गन्ध, ८ वायु।

प्रत्यक्ष ज्ञान दर्शन के धारक अर्हन जिन केवली इन आठ पदार्थों को सम्पूर्ण रूप से जानते-देखते हैं। जैसे—

१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ शरीर- मुक्त जीव, ५ परमाणु पुद्गल, ६ शब्द, ७ गन्ध, ८ वायु (२५)।

आयुर्वेद-सूत्र

२६—अट्ठविधे आउव्वेदे पण्णत्ते, त जहा—कुमारभिच्चे, कायतिगिच्छा, सालाई, सल्लहत्ता, जगोली, भूतविज्जा, खारतते, रसायणे।

आयुर्वेद आठ प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ कुमारभृत्य—बाल-रोगो का चिकित्साशास्त्र।
२ कायचिकित्सा—शारीरिक रोगो का चिकित्साशास्त्र।
३ शालाक्य—शलाका (सलाई) के द्वारा नाक-कान आदि के रोगो का चिकित्साशास्त्र।
४ शल्यहत्या—शस्त्र द्वारा चीर-फाड करने का शास्त्र।
५ जगोली—विष-चिकित्साशास्त्र।
६ भूतविद्या—भूत, प्रेत, यक्षादि से पीडित व्यक्ति की चिकित्सा का शास्त्र।
७ क्षारतन्त्र—वाजीकरण, वीर्य-वर्धक औषधियो का शास्त्र।
८ रसायन—पारद आदि धातु रसो आदि के द्वारा चिकित्सा का शास्त्र (२६)।

अग्रमहिषी-सूत्र

२७—सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो अट्ठग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—पउमा, सिवा, सची, अजू अमला, अच्छरा, णवमिया, रोहिणी।

देवेन्द्र देवराज शक्र के आठ अग्रमहिषिया कही गई हैं। जैसे—

१ पद्मा, २ शिवा, ३ शची, ४ अजु, ५ अमला, ६ अप्सरा, ७ नवमिका ८ रोहिणी (२७)।

२८—ईसाणस्स ण देविंदस्स देवरण्णो अट्ठग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—कण्हा, कण्हराई, रामा, रामरक्खिता, वसू, वसुगुत्ता वसुमित्ता, वसु धरा।

देवेन्द्र देवराज ईशान के आठ अग्रमहिषिया कही गई हैं। जसे—

१ कृष्णा, २ कृष्णराजी, ६ रामा, ४ रामरक्षिता, ५ वसु, ६ वसुगुप्ता ७ वसुमित्रा, ८ वसु धरा (२८)।

२९—सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो अट्ठग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

देवे द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज सोम के आठ अग्रमहिषिया कही गई है (२९)।

३०—ईसाणस्स ण देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स महारण्णो अट्ठग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

देवे द्र, देवराज ईशान के लोकपाल महाराज वैश्रमण के आठ अग्रमहिषिया कही गई है (३०)।

महाग्रह सूत्र

३१—अट्ठ महग्गहा पण्णत्ता, त जहा—चदे, सूरे, सुक्के, बुहे बहस्सती, अगारे, सणिचरे, केऊ।

आठ महाग्रह कहे गये है। जसे—

१ च द्र, २ सूर्य, ३ शुक्र, ४ बुध, ५ बृहस्पति, ६ अगार, ७ शनैश्चर, ८ केतु (३१)।

तणवनस्पति-सूत्र

३२—अट्ठविधा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, त जहा—मूले, कदे, खधे, तया, साले, पवाले, पत्ते, पुप्फे।

तृण वनस्पतिकायिक आठ प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ मूल, २ क द, ३ स्कन्द, ४ त्वचा, ५ शाखा, ६ प्रवाल (कोपल) ७ पत्र, ८ पुष्प (३२)।

सयम असयम सूत्र

३३—चउरिंदिया ण जीवा असमारभमाणस्स अट्ठविधे सजमे कज्जति, त जहा—चक्खुमातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति। चक्खुमएण दुक्खेण असजोएत्ता भवति। (घाणामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति। घाणामएण दुक्खेण असजोएत्ता भवति। जिब्भामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति। जिब्भामएण दुक्खेण असजोएत्ता भवति)। फासामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति। फासामएण दुक्खेण असजोगेत्ता भवति।

चतुरि द्रिय जीवो का घात नही करने वाले के आठ प्रकार का सयम होता है। जैसे—

१ चक्षुरि द्रिय सम्बन्धी सुखका वियोग नही करने से,
२ चक्षुरि द्रिय सम्ब धी दु ख का सयोग नही करने से,
३ घ्राणे द्रिय सम्ब धी सुख का वियोग नही करने से,
४ घ्राणे द्रिय सम्बन्धी दु ख का सयोग नही करने से,
५ रसनेन्द्रिय-सम्ब धी सुख का वियोग नही करने से,
६ रसने द्रिय-सम्ब धी दु ख का सयोग नही करने से,

७ स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से,
८ स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से (३३)।

३४—चउरिंदिया णं जीवा समारभमाणस्स अट्ठविधे असंजमे कज्जति, तं जहा—चक्खुमातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति। चक्खुमएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। (घाणामातो सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति। घाणामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। जिब्भामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति, जिब्भामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति)। फासामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति। फासामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।

चतुरिन्द्रिय जीवों का घात करने वाले के आठ प्रकार का असंयम होता है। जैसे—
१ चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से,
२ चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से,
३ घ्राणेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से,
४ घ्राणेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से,
५ रसनेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से,
६ रसनेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से,
७ स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से,
८ स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से (३४)।

सूक्ष्म-सूत्र

३५—अट्ठ सुहुमा पण्णत्ता, तं जहा—पाणसुहुमे, पणगसुहुमे, बीयसुहुमे, हरितसुहुमे, पुप्फसुहुमे, अंडसुहुमे, लेणसुहुमे, सिणेहसुहुमे।

सूक्ष्म जीव आठ प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ प्राणसूक्ष्म—अनुंधरी, कुन्थु आदि प्राणी,
२ पनकसूक्ष्म—उल्ली आदि,
३ बीजसूक्ष्म—धान आदि के बीज के मुख मूल की कणी आदि जिसे तुष-मुख कहते हैं।
४ हरितसूक्ष्म—एकदम नवीन उत्पन्न हरित काय जो पृथ्वी के समान वर्ण वाला होता है।
५ पुष्पसूक्ष्म—वट-पीपल आदि के सूक्ष्म पुष्प।
६ अण्डसूक्ष्म—मक्षिका, पिपीलिकादि के सूक्ष्म अण्ड।
७ लयनसूक्ष्म—कीडीनगरा आदि।
८ स्नेहसूक्ष्म—ओस, हिम आदि जलकाय के सूक्ष्म जीव (३५)।

भरतचक्रवर्ति-सूत्र

३६—भरहस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अट्ठ पुरिसजुगाइं अणुबद्धं सिद्धाइं (बुद्धाइं मुत्ताइं अंतगडाइं परिणिव्वुडाइं) सव्वदुक्खप्पहीणाइं, तं जहा—आदिच्चजसे, महाजसे, अतिबले, महाबले, तेयवीरिए, कत्तवीरिए, दंडवीरिए, जलवीरिए।

चातुरन्त चक्रवर्ती राजा भरत के आठ उत्तराधिकारी पुरुष-युग राजा लगातार सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत और समस्त दुःखों से रहित हुए। जैसे—

१ आदित्ययश, २ महायश, ३ अतिबल, ४ महाबल, ५ तेजोवीय, ६ कातवीर्य, ७ दण्डवीय, ८ जलवीय (३६)।

पाश्वगण सूत्र

३७—पासस्स ण अरहओ पुरिसादाणियस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा होत्था, त जहा—सुभे, अज्जघोसे, वसिट्ठे, बभचारी, सोमे, सिरिधरे, वीरभद्दे, जसोभद्दे।

पुरुपादानीय (लोक-प्रिय) अहन पाश्वनाथ के आठ गण और आठ गणधर हुए। जैसे—

१ शुभ, २ आयघोष, ३ वशिष्ठ, ४ ब्रह्मचारी, ५ सोम, ६ श्रीधर, ७ वीरभद्र, यशोभद्र (३७)।

दशन-सूत्र

३८—अट्ठविधे दसणे पण्णत्ते, त जहा—सम्मदसणे, मिच्छदसणे, सम्मामिच्छदसणे, चक्खुदसणे, (अचक्खुदसणे, ओहिदसणे), केवलदसणे, सुविणदसणे।

दशन आठ प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ सम्यग्दशन, २ मिथ्यादशन, ३ सम्यग्मिथ्यादर्शन, ४ चक्षुदशन ५ अचक्षुदशन, ६ अवधिदशन, ७ केवलदशन, ८ स्वप्नदशन (३८)।

औपमिक काल-सूत्र

३६—अट्ठविधे अद्धोवमिए पण्णत्ते, त जहा—पलिओवमे, सागरोवमे, ओसप्पिणी, उस्सप्पिणी, पोग्गलपरियट्टे, तीतद्धा, अणागतद्धा, सव्वद्धा।

औपमिक अद्धा (काल) आठ प्रकार का कहा गया है। जसे—

१ पल्योपम, २ सागरोपम, ३ अवसर्पिणी, ४ उत्सर्पिणी, ५ पुद्गल परिवत, ६ अतीत-अद्धा, ७ अनागत-अद्धा, ८ सव-अद्धा (३६)।

अरिष्टनेमि-सूत्र

४०—अरहतो ण अरिट्ठणेमिस्स जाव अट्ठमातो पुरिसजुगातो जुगतकरभूमी। दुवासपरियाए अतमकासी।

अहत् अरिष्टनेमि मे आठवे पुरुपयुग तक युगा तकर भूमि रही—मोक्ष जाने का क्रम चालू रहा, आग नही।

अहत् अरिष्टनेमि के केवलज्ञान प्राप्त करने के दो वर्ष बाद ही उनके शिष्य मोक्ष जाने लगे थे (४०)।

महावीर सूत्र

४१—समणेण भगवता महावीरेण अट्ठ रायाणो मु डे भवेत्ता अगाराओ अणगारित पव्वाइया, त जहा—

सग्रहणी गाहा

वीरगए वीरजसे, सजय एणिज्जए य रायरिसी।
सेये सिवे उद्दायणे, तह सखे कासिवद्धणे ॥१॥

श्रमण भगवान् महावीर ने आठ राजाओं को मुण्डित कर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित किया। जैसे—

१ वीराङ्गक, २ वीययश, ३ सजय, ४ एणेयक, ५ सेय, ६ शिव, ७ उद्दायन, ८ शख-राशीवधन (४१)।

आहार-सूत्र

४२—अट्ठविहे आहारे पण्णत्ते, त जहा—मणुण्णे असणे, पाणे, खाइमे, साइमे। अमणुण्णे (असणे, पाणे, खाइमे), साइमे।

आहार आठ प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ मनोज्ञ अशन, २ मनोज्ञ पान, ३ मनोज्ञ खाद्य, ४ मनोज्ञ स्वाद्य, ५ अमनोज्ञ अशन, ६ अमनोज्ञ पान, ७, अमनोज्ञ स्वाद्य, ८ अमनोज्ञ खाद्य (४२)।

कृष्णराजि सूत्र

४३—उप्पि सणकुमार-माहिदाण कप्पाण हेट्ठि बमलोगे कप्पे रिट्ठविमाण-पत्थडे, एत्थ ण अक्खाडग समचउरस-सठाण सठिताओ अट्ठ कण्हराईओ पण्णत्ताओ त जहा—पुरत्थिमे ण दो कण्हराईओ, दाहिणे ण दो कण्हराईओ, पच्चत्थिमे ण दो कण्हराईओ, उत्तरे ण दो कण्हराईओ। पुरत्थिमा अब्भतरा कण्हराई दाहिण बाहिर कण्हराइ पुट्ठा। दाहिणा अब्भतरा कण्हराई पच्चत्थिम बाहिर कण्हराइ पुट्ठा। पच्चत्थिमा अब्भतरा कण्हराई उत्तर बाहिर कण्हराइ पुट्ठा। उत्तरा अब्भतरा कण्हराई पुरत्थिम बाहिर कण्हराइ पुट्ठा। पुरत्थिमपच्चत्थिमिल्लाओ बाहिराओ दो कण्हराईओ छलसाओ। उत्तरदाहिणाओ बाहिराओ दो कण्हराईओ तसाओ। सव्वाओ वि ण अब्भतरकण्हराईओ चउरसाओ।

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के ऊपर और ब्रह्मलोक कल्प के नीचे रिष्ट विमान का प्रस्तट है, वहाँ अखाड़े के समान समचतुरस्र (चतुष्कोण) संस्थान वाली आठ कृष्णराजियाँ (काले पुद्गलों की पंक्तियाँ) कही गई हैं। जैसे—

१ पूर्व दिशा में दो कृष्णराजियाँ, २ दक्षिण दिशा में दो कृष्णराजियाँ,
३ पश्चिम दिशा में दो कृष्णराजियाँ, ४ उत्तर दिशा में दो कृष्णराजियाँ।

पूर्व की आभ्यन्तर कृष्णराजि दक्षिण की बाह्य कृष्णराजि से स्पृष्ट है।
दक्षिण की आभ्यन्तर कृष्णराजि पश्चिम की बाह्य कृष्णराजि से स्पृष्ट है।
पश्चिम की आभ्यन्तर कृष्णराजि उत्तर की बाह्य कृष्णराजि से स्पृष्ट है।
उत्तर की आभ्यन्तर कृष्णराजि पूर्व की बाह्य कृष्णराजि से स्पृष्ट है।
पूर्व और पश्चिम की बाह्य दो कृष्णराजियाँ षट्कोण हैं।
उत्तर और दक्षिण की बाह्य दो कृष्णराजियाँ त्रिकोण हैं।
समस्त आभ्यन्तर कृष्णराजियाँ चतुष्कोण वाली हैं।

४४—एतासि ण अट्ठण्ह कण्हराईण अट्ठ णामधेज्जा पण्णत्ता, त जहा—कण्हराईति वा, मेहराईति वा, मघाति वा, माघवतीति वा, वातफलिहेति वा, वातपलिक्खोभेति वा, देवफलिहेति वा, देवपलिक्खोभेति वा।

इन आठो कृष्णराजियो के आठ नाम कहे गये है। जसे—

१ कृष्णराजि, २ मेघराजि, ३ मघा, ४ माघवती ५ वातपरिघ ६ वातपरिक्षोभ, ७ देवपरिघ ८ देव परिक्षोभ (४४)।

विवेचन—इन आठो कृष्णराजियो के चित्रो को अन्यत्र देखिये।

४५—एतासि ण अट्ठण्ह कण्हराईण अट्ठसु ओवासतरेसु अट्ठ लोगतियविमाणा पण्णत्ता, त जहा—अच्ची, अच्चीमाली, वइरोअणे, पभकरे, चदाभे, सूराभे, सुपइट्ठाभे अग्गिच्चाभे'।

इन आठो कृष्णराजियो के आठ अवकाशान्तरो मे आठ लोकान्तिक देवो के विमान कहे गये हैं। जैसे—

१ अर्चि २ अर्चिमाली ३ वैरोचन ४ प्रभकर ५ चन्द्राभ ६ सूर्याभ ७ सुप्रतिष्ठाभ ८ अग्न्यर्चाभ (४५)।

४६—एतेसु ण अट्ठसु लोगतियविमाणेसु अट्ठविधा लोगतिया देवा पण्णत्ता, त जहा—

संग्रहणी गाथा

सारस्सतमाइच्चा, वण्ही वरुणा य गद्दतोया य।
तुसिता अव्वाबाहा, अग्गिच्चा चेव बोद्धव्वा ॥१॥

इन आठो लोकान्तिक विमानो मे आठ प्रकार के लोकान्तिक देव कहे गये हैं। जैसे—

१ सारस्वत, २ आदित्य, ३ वह्नि ४ वरुण, ५ गर्दतोय, ३ तुषित ७ अव्याबाध ८ अग्न्यर्च (४६)।

४७—एतेसि ण अट्ठण्ह लोगतियदेवाण अजहण्णमणुक्कोसेण अट्ठ सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता।

इन आठो लोकान्तिक देवो की जघन्य और उत्कृष्ट भेद से रहित—एक-सी स्थिति आठ-आठ सागरोपम की कही गई है।

मध्यप्रदेश सूत्र

४८—अट्ठ धम्मत्थिकाय मज्झपएसा पण्णत्ता।

धर्मास्तिकाय के आठ मध्य प्रदेश (रुचक प्रदेश) कहे गये हैं (४८)।

४९—अट्ठ अधम्मत्थिकाय (मज्झपएसा पण्णत्ता)।

अधर्मास्तिकाय के आठ मध्य प्रदेश कहे गये हैं (४९)।

५०—अट्ठ आगासत्थिकाय-(मज्झपएसा पण्णत्ता)।

आकाशास्तिकाय के आठ मध्य प्रदेश कहे गये हैं (५०)।

५१—अट्ठ जीव मज्झपएसा पण्णत्ता।

जीव के आठ मध्य प्रदेश कहे गये है (५१)।

महापद्म-सूत्र

५२—अरहा ण महापउमे अट्ठ रायाणो मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारितं पव्वावेस्सति, तं जहा—पउम, पउमगुम्म, णलिण, णलिणगुम्म, पउमद्धय, धणुद्धय, कणगरह, भरह।

(भावी प्रथम तीर्थंकर) अर्हत् महापद्म आठ राजाओं को मुण्डित कर अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित करेंगे। जैसे—

१ पद्म २ पद्मगुल्म ३ नलिन, ४ नलिन गुल्म ५ पद्मध्वज ६ धनुध्वज, ७ कनकरथ ८ भरत (५२)।

कृष्ण-अग्रमहिषी सूत्र

५३—कण्हस्स ण वासुदेवस्स अट्ठ अग्गमहिसीओ अरहतो णं अरिट्ठणेमिस्स अंतिए मुंडा भवेत्ता अगाराओ अणगारितं पव्वइया सिद्धाओ (बुद्धाओ मुत्ताओ अंतगडाओ परिणिव्वुडाओ) सव्वदुक्खप्पहीणाओ, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

पउमावती य गोरी, गंधारी लक्खणा सुसीमा य।
जंबवती सच्चभामा, रुप्पिणी अग्गमहिसीओ ॥१॥

वासुदेव कृष्ण की आठ अग्रमहिषियाँ अर्हत् अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित होकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त अन्तकृत, परिनिर्वृत्त और समस्त दुःखो से रहित हुईं। जैसे—

१ पद्मावती २ गोरी ३ गान्धारी, ४ लक्ष्मणा ५ सुषीमा, ६ जाम्बवती ७ सत्यभामा, ८ रुक्मिणी (५३)।

पूर्ववस्तु सूत्र

५४—वीरियपुव्वस्स ण अट्ठ वत्थू अट्ठ चूलवत्थू पण्णत्ता।

वीर्यप्रवाद पूर्व के आठ वस्तु (मूल अध्ययन) और आठ चूलिका वस्तु कहे गये है (५४)।

गति-सूत्र

५५—अट्ठ गतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—णिरयगती, तिरियगती, (मणुयगती, देवगती), सिद्धिगती, गुरुगती पणोल्लणगती, पब्भारगती।

गतियाँ आठ कही गई हैं। जैसे—

१ नरकगति २ तिर्यग्गति ३ मनुष्यगति ४ देवगति, ५ सिद्धगति, ६ गुरुगति ७ प्रणोदनगति, ८ प्राग्-भारगति (५५)।

विवेचन—परमाणु आदि की स्वाभाविक गति को गुरुगति कहा जाता है। दूसरे की प्रेरणा से जो गति होती है वह प्रणोदन गति कहलाती है। जो दूसरे द्रव्यो से आक्रान्त होने पर गति होती है, उसे प्राग्भारगति कहते हैं। जैसे—नाव मे भरे भार से उसकी नीचे की ओर होने वाली गति। शेष गतियाँ प्रसिद्ध हैं।

द्वीप समुद्र सूत्र

५६—गगा सिंधु रत्त रत्तवतिदेवीण दीवा अट्ठ अट्ठ जोयणाइ आयामविक्खभेण पण्णत्ता ।

गगा, सिन्धु रक्ता और रक्तवती नदियो की अधिष्ठात्री देवियो के द्वीप आठ-आठ योजन लम्बे-चौडे कहे गये हैं (५६)।

५७—उक्कामुह मेहमुह विज्जुमुह विज्जुदतदीवा ण दीवा अट्ठ अट्ठ जोयणसयाइ आयाम-विक्खभेण पण्णत्ता ।

उल्कामुख, मेघमुख, विद्युन्मुख और विद्युद्दन्त द्वीप आठ-आठ सौ योजन लम्बे-चौडे कहे गये है (५७)।

५८—कालोदे ण समुद्दे अट्ठ जोयणसयसहस्साइ चक्कवालविक्खभेण पण्णत्ते ।

कालोद समुद्र चक्रवाल विष्कम्भ (गोलाई की अपेक्षा) से आठ लाख योजन विस्तृत कहा गया है (५८)।

५९—अब्भतरपुक्खरद्धे ण अट्ठ जोयणसयसहस्साइ चक्कवालविक्खभेण पण्णत्ते ।

आभ्यतर पुष्करार्ध चक्रवाल विष्कम्भ से आठ लाख योजन विस्तृत कहा गया है (५९)।

६०—एव बाहिरपुक्खरद्धे वि ।

इसी प्रकार बाह्य पुष्करार्ध भी चक्रवाल विष्कम्भ से आठ लाख योजन विस्तृत कहा गया है (६०)।

काकणिरत्न सूत्र

६१—एगमेगस्स ण रण्णो चाउरतचक्कवट्टिस्स अट्ठसोवण्णिए काकणिरयणे छत्तले दुवाल-ससिए अट्ठकण्णिए अधिकरणिसठिते ।

प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के आठ सुवर्ण जितना भारी काकिणी रत्न होता है। वह छह तल, बारह कोण, आठ कर्णिका वाला और अहरन के सस्थान वाला होता है (६१)।

विवरण—'सुवर्ण' प्राचीन काल का सोने का सिक्का है, जो उस समय ८० गु जा-प्रमाण होता था। काकिणी रत्न का प्रमाण चक्रवर्ती के अगुल से चार अगुल होता है।

मागध-योजन सूत्र

६२—मागधस्स ण जोयणस्स अट्ठ धणुसहस्साइ णिधत्ते पण्णत्ते ।

मगध देश के योजन का प्रमाण आठ हजार धनुष कहा गया है (६२)।

जम्बूद्वीप सूत्र

६३—जबू ण सुदसणा अट्ठ जोयणाइ उड्ढ उच्चत्तेण, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइ विक्खभेण, सातिरेगाइ अट्ठ जोयणाइ सव्वग्गेण पण्णत्ता ।

सुदर्शन जम्बू वृक्ष आठ योजन ऊंचा, बहुमध्यदेश भाग में आठ योजन चौड़ा और सर्व परिमाण में कुछ अधिक आठ योजन कहा गया है (६३)।

६४—कूडसामली ण अट्ठ जोयणाइ एव चेव।

कूट शाल्मली वृक्ष भी पूर्वोक्त प्रमाण वाला जानना चाहिए (६४)।

६५—तिमिसगुहा ण अट्ठ जोयणाइ उड्ढ उच्चत्तेण।

तमिस्र गुफा आठ योजन ऊंची है (६५)।

६६—खडप्पवातगुहा ण अट्ठ (जोयणाइ उड्ढ उच्चत्तेण)।

खण्डप्रपात गुफा आठ योजन ऊंची है (६६)।

६७—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणदीए उभतो कूले अट्ठ वक्खारपव्वया पण्णत्ता, त जहा—चित्तकूडे, पम्हकूडे, णलिणकूडे, एगसेले, तिकूडे, वेसमणकूडे, अजणे, मायजणे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के पूर्व मे सीता महानदी के दोनो कूलो पर आठ वक्षस्कार पर्वत हैं। जैसे—

१ चित्रकूट, २ पद्मकूट, ३ नलिनकूट, ४ एकशैल, ५ त्रिकूट, ६ वैश्रमणकूट ७ अजनकूट, ८ मानाजनकूट (६७)।

६८—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेण सीतोयाए महाणदीए उभतो कूले अट्ठ वक्खारपव्वता पण्णत्ता, त जहा—अकावती, पम्हावती, आसीविसे, सुहावहे, चदपव्वते, सूरपव्वते, णागपव्वते, देवपव्वते।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के दोनो कूलो पर आठ वक्षस्कार पर्वत हैं। जैसे—

१ अकावती, २ पक्ष्मावती, ३ आशीविष, ४ सुखावह, ५ चन्द्रपर्वत, ६ सूरपर्वत ७ नाग पर्वत, ८ देव पर्वत (६८)।

६९—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणदीए उत्तरे ण अट्ठ चक्कवट्टि-विजया पण्णत्ता, त जहा—कच्छे, सुकच्छे, महाकच्छे, कच्छगावती, आवत्ते, (मगलावत्ते, पुक्खले), पुक्खलावती।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के पूर्व मे शीता महानदी के उत्तर मे चक्रवर्ती के आठ विजय क्षेत्र कहे गये हैं। जैसे—

१ कच्छ, २ सुकच्छ ३ महाकच्छ ४ कच्छकावती, ५, आवर्त, ६ मगलावर्त, ७ पुष्कल, ८ पुष्कलावती (६९)।

७०—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणदीए दाहिणे ण अट्ठ चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, त जहा—वच्छे, सुवच्छे (महावच्छे, वच्छगावती, रम्मे, रम्मगे, रमणिज्जे), मगलावती।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पवत के पूव में शीता महानदी के दक्षिण मे चक्रवर्ती के आठ विजय क्षेत्र कहे गये हैं जैसे—

१ वत्स, २ सुवत्स, ३ महावत्स, ४ वत्सकावती, ५ रम्य, ६ रम्यक, ७ रमणीय, ८ मगलावती (७०)।

७१—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीतोयाए महाणदीए दाहिणे ण अट्ठ चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, त जहा—पम्हे, (सुपम्हे, महापम्हे, पम्हगावती, सखे, णलिणे, कुमुए), सलिलावती।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पवत के पश्चिम म शीतोदा महानदी के दक्षिण मे चक्रवर्ती के आठ विजयक्षेत्र कहे गये हैं। जैसे—

१ पक्ष्म, २ सुपक्ष्म, ३ महापक्ष्म ४ पक्ष्मकावती, ५ शख, ६ नलिन, ७ कुमुद, ८ सलिलावती (७१)।

७२—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीतोयाए महाणदीए उत्तरे ण अट्ठ चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, त जहा—वप्पे, सुवप्पे, (महावप्पे, वप्पगावती, वग्गू, सुवग्गू, गधिल्ले), गधिलावती।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पवत के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के उत्तर मे चक्रवर्ती के आठ विजय कहे गये हैं। जसे—

१ वप्र, २ सुवप्र, ३ महावप्र ४ वप्रकावती, ५ वल्गु, ६ सुवल्गु, ७ गन्धिल, ८ गन्धिलावती (७२)।

७३—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणदीए उत्तरे ण अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, त जहा—खेमा, खेमपुरी, (रिट्ठा, रिट्ठपुरी, खग्गी, मजूसा, ओसधी), पुडरीगिणी।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पवत के पूव मे शीता महानदी के उत्तर मे आठ राजधानिया कही गई है। जसे।

१ क्षेमा, २ क्षेमपुरा, ३ रिप्टा, ४ रिष्टपुरी, ५ खड्गी, ६ मजूषा, ७ औषधि, ८ पौण्डरीकिणी (७३)।

७४—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणईए दाहिणे ण अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, त जहा—सुसीमा, कुडला, (अपराजिया, पभकरा, अकावई, पम्हावई, सुभा), रयणसचया।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पवत के पूव मे शीता महानदी के दक्षिण मे आठ राजधानिया कही गई है। जैसे—

१ सुसीमा, २ कुण्डला, ३ अपराजिता, ४ प्रभकरा, ५ अकावती, ६ पक्ष्मावती, ७ शुभा, ८ रत्नसचया (७४)।

७५—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीओदाए महाणदीए दाहिणे ण अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, त जहा—आसपुरा, (सीहपुरा, महापुरा, विजयपुरा, अवराजिता, अवरा, असोया), वीतसोगा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप म मन्दर पर्वत के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के दक्षिण मे आठ राजधानिया कही गई है। जैसे—
१ अश्वपुरी २ सिंहपुरी, ३ महापुरी, ४ विजयपुरी, ५ अपराजिता, ६ अपरा, ७ अशोका ८ वीतशोका (७५)।

७६—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीतोयाए महाणईए उत्तरे ण अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, त जहा—विजया, वेजयती, (जयती, अपराजिया, चक्कपुरा, खग्गपुरा अवज्झा), अउज्झा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप म मन्दर पवत के पश्चिम मे शीतादा महानदी के उत्तर मे आठ राजधानिया कही गई है। जैसे—
१ विजया २ वैजयन्ती, ३ जयन्ती ४ अपराजिता ५ चक्रपुरी, ६ खड्गपुरी ७ अवध्या ८ अयोध्या (७६)।

७७—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणदीए उत्तरे ण उक्कोसपए अट्ठ अरहता, अट्ठ चक्कवट्टी, अट्ठ बलदेवा, अट्ठ वासुदेवा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पवत के पूव मे शीता महानदी के उत्तर म उत्कृष्टत आठ अर्हन् (तीर्थंकर), आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव और आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थ, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होगे (७७)।

७८—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए [महाणदीए ?] दाहिणे ण उक्कोसपए एव चेव।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप म मन्दर पवत के पूव म शीता महानदी के दक्षिण मे उत्कृष्टत इसी प्रकार आठ अर्हत, आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव और आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (७८)।

७९—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीओयाए महाणदीए दाहिणे ण उक्कोसपए एव चेव।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के दक्षिण म उत्कृष्टत इसी प्रकार आठ अर्हन्, आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव और आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (७९)।

८०—एव उत्तरेणवि।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के उत्तर मे उत्कृष्टत

इसी प्रकार आठ अर्हत आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव और आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते है और उत्पन्न होगे (८०)।

८१—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणईए उत्तरे ण अट्ठ दीहवेयड्ढा, अट्ठ तिमिसगुहाओ, अट्ठ खडगप्पवातगुहाओ, अट्ठ कयमालगा देवा, अट्ठ णट्टमालगा देवा, अट्ठ गगाकु डा, अट्ठ सिधुकु डा, अट्ठ गगाओ, अट्ठ सिधूओ, अट्ठ उसभकूडा पव्वता, अट्ठ उसभकूडा देवा पण्णत्ता।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पवत के पूव मे, शीता महानदी के उत्तर मे आठ दीघ वैताढ्य, आठ तमिस्र गुफाए, आठ खण्डप्रपात गुफाए, आठ कृतमालक देव, आठ गगाकुण्ड, आठ सिधुकुण्ड, आठ गगा, आठ सिन्धु, आठ ऋपभकूट पवत और आठ ऋपभकूट-देव है।

८२—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण सीताए महाणदीए दाहिणे ण अट्ठ दीहवेअड्ढा एव चेव जाव अट्ठ उसभकूडा देवा पण्णत्ता, णवरमेत्थ रत्त रत्तावती, तासि चेव कु डा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पवत के पूव मे शीता महानदी के दक्षिण मे आठ दीघ वताढ्य, आठ तमिस्र गुफाए, आठ खण्डप्रपात गुफाए, आठ कृतमालक देव, आठ रक्ताकुण्ड, आठ रक्तवती कुण्ड, आठ रक्ता, आठ रक्तवती, आठ ऋपभकूट पवत और आठ ऋपभकूट-देव है (८२)।

८३—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीतोयाए महाणदीए दाहिणे ण अट्ठ दीहवेयड्ढा जाव अट्ठ णट्टमालगा देवा, अट्ठ गगाकु डा, अट्ठ सिधुकु डा, अट्ठ गगाओ, अट्ठ सिधूओ, अट्ठ उसभकूडा पव्वता, अट्ठ उसभकूडा देवा पण्णत्ता।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पवत के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के दक्षिण मे आठ दीघ वैताढय, आठ तमिस्रगुफाए, आठ खण्डकप्रपात गुफाए, आठ कृतमालक देव, आठ नृत्यमालक देव, आठ गगाकुण्ड, आठ सिधुकुण्ड, आठ गगा, आठ सिधु, आठ ऋपभकूट पवत और आठ ऋपभकूट देव है (८३)।

८४—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे ण सीओयाए महाणदीए उत्तरे ण अट्ठ दीहवेयड्ढा जाव अट्ठ णट्टमालगा देवा पण्णत्ता। अट्ठ रत्ताकु डा, अट्ठ रत्तावतिकु डा, अट्ठ रत्ताओ, (अट्ठ रत्तावतीओ, अट्ठ उसभकूडा पव्वता), अट्ठ उसभकूडा देवा पण्णत्ता।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दरपवत के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के उत्तर मे आठ दीघ वताढ्य, आठ तमिस्रगुफाए, आठ खण्डकप्रपात गुफाए, आठ कृतमालक देव, आठ नत्यमालक देव, आठ रक्ताकुण्ड, आठ रक्तवतीकुण्ड, आठ रक्ता, आठ रक्तवती, आठ ऋपभकूट पवत और आठ ऋपभकूट देव हैं (८३)।

८५—मदरचूलिया ण बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोइणाइ विक्खभेण पण्णत्ता।

मन्दर पवत की चूलिका बहुमध्यदेश भाग मे आठ योजन चौडी है (८५)।

धातकीषण्डद्वीप सूत्र

८६—धायइसडदीवपुरत्थिमद्धे ण धायइरुक्खे अट्ठ जोयणाइ उड्ड उच्चत्तेण, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइ विक्खभेण, साइरेगाइ अट्ठ जोयणाइ सव्वग्गेण पण्णत्ते।

धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध मे धातकीवृक्ष आठ योजन ऊचा, बहुमध्यदेश भाग मे आठ योजन चौडा और सब परिमाण मे कुछ अधिक आठ योजन विस्तृत कहा गया है (८६)।

८७—एव धायइरुक्खाओ आढवेत्ता सच्चेव जबूदीववत्तव्वता भाणियव्वा जाव मदरचूलियत्ति।

इसी प्रकार धातकीषण्ड के पूर्वार्ध मे धातकी वृक्ष से लेकर मन्दरचूलिका तक का सर्व वर्णन जम्बूद्वीप की वक्तव्यता के समान जानना चाहिए (८७)।

८८—एव पच्चत्थिमद्धे वि महाधातइरुक्खातो आढवेत्ता जाव मदरचूलियत्ति।

इसी प्रकार धातकीषण्ड के पश्चिमार्ध मे महाधातकी वृक्ष से लेकर मन्दरचूलिका तक का सब वर्णन जम्बू द्वीप की वक्तव्यता के समान है (८८)।

पुष्करवर द्वीप-सूत्र

८९—एव पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे वि पउमरुक्खाओ आढवेत्ता जाव मदरचूलियत्ति।

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध मे पद्मवृक्ष से लेकर मन्दरचूलिका तक का सब वर्णन जम्बूद्वीप की वक्तव्यता के समान है (८९)।

९०—एव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे वि महापउमरुक्खातो जाव मदरचूलियत्ति।

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पश्चिमार्ध मे महापद्म वृक्ष से लेकर मन्दरचूलिका तक का सब वर्णन जम्बूद्वीप की वक्तव्यता के समान है (९०)।

कूट सूत्र

९१—जबुद्दीवे दीवे मदरे पव्वते भद्दसालवणे अट्ठ दिसाहत्थिकूडा पण्णत्ता, त जहा—

सग्रहणी गाथा

पउमुत्तर णीलवंते, सुहत्थि अजणागिरी।
कुमुदे य पलासे य, वडेंसे रोयणागिरी॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दरपर्वत के भद्रशाल वन मे आठ दिशाहस्तिकूट (पूर्व आदि दिशाओ मे हाथी के समान आकार वाले शिखर) कहे गये हैं। जैसे—

१ पद्मोत्तर, २ नीलवान्, ३ सुहस्ती, ४ अजनगिरि, ५ कुमुद, ६ पलाश, ७ अवतसक, ८ रोचनगिरि (९१)।

जगती-सूत्र

९२—जबुद्दीवस्स ण दीवस्स जगती अट्ठ जोयणाइ उड्ढ उच्चत्तेण, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइ विक्खभेण पण्णत्ता।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप की जगती आठ योजन ऊची और बहुमध्यदेश भाग मे आठ योजन विस्तृत कही गई है (९२)।

कूट-सूत्र

६३—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं महाहिमवंते वासहरपव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी गाथा

सिद्धे महाहिमवंते, हिमवंते रोहिता हिरीकूडे।
हरिकंता हरिवासे, वेरुलिए चेव कूडा उ ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के ऊपर आठ कूट कहे गये हैं जैसे—

१ सिद्ध कूट, २ महाहिमवान् कूट, ३ हिमवान् कूट, ४ रोहित कूट, ५ ह्री कूट, ६ हरिकान्त कूट, ७ हरिवर्ष कूट, ८ वैडूर्य कूट (६३)।

६४—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं रुप्पिमि वासहरपव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता तं जहा—

सिद्धे य रुप्पि रम्मग, णरकंता बुद्धि रुप्पकूडे य।
हिरण्णवते मणिकंचणे, य रुप्पिम्मि कूडा उ ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर में रुक्मी वर्षधर पर्वत पर आठ कूट कहे गये हैं। जैसे—

१ सिद्ध कूट, २ रुक्मी कूट, ३ रम्यक कूट, ४ नरकान्त कूट, ५ बुद्धि कूट, ६ रूप्य कूट, ७ हैरण्यवत कूट, ८ मणिकांचन कूट (६४)।

६५—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं रुयगवरे पव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

रिट्ठे तवणिज्ज कंचण, रयत दिसासोत्थिते पलंबे य।
अंजणे अंजणपुलए, रुयगस्स पुरत्थिमे कूडा ॥१॥

तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्डियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति, तं जहा—

णंदुत्तरा य णंदा, आणंदा णंदिवद्धणा।
विजया य वेजयंती, जयंती अपराजिया ॥२॥

जम्बू द्वीप नामक द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व में रुचकवर पर्वत के ऊपर आठ कूट कहे गये हैं। जैसे—

१ रिष्ट कूट, २ तपनीय कूट, ३ कांचन कूट, ४ रजत कूट, ५, दिशास्वस्तिक कूट, ६ प्रलम्ब कूट, ७ अंजन कूट, ८ अंजन पुलक कूट (६५)।

वहाँ महाऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपम की स्थितिवाली आठ दिशाकुमारी महत्तरिकाएं रहती हैं। जैसे—

१ नन्दोत्तरा, २ नन्दा, ३ आनन्दा, ४ नन्दिवर्धना, ५ विजया, ६ वैजयन्ती, ७ जयन्ती, ८ अपराजिता (९५)

९६—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं रुयगवरे पव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

कणए कंचणे पउमे, णलिणे ससि दिवायरे चेव ।
वेसमणे वेरुलिए, रुयगस्स उ दाहिणे कूडा ॥१॥

तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्डियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति, तं जहा—

समाहारा सुप्पतिण्णा, सुप्पबुद्धा जसोहरा ।
लच्छिवती सेसवती, चित्तगुत्ता वसुंधरा ॥२॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में रुचकवर पर्वत के ऊपर आठ कूट कहे गये हैं। जैसे—

१ कनक कूट, २ कांचन कूट, ३ पद्म कूट, ४ नलिन कूट, ५ शशी कूट, ५ दिवाकर कूट, ७ वैश्रमण कूट, ८ वैडूर्य कूट (९६)।

वहाँ महाऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपम की स्थितिवाली आठ दिशाकुमारी महत्तरिकाएं रहती हैं। जैसे—

१ समाहारा, २ सुप्रतिज्ञा, ३ सुप्रबुद्धा, ४ यशोधरा, ५ लक्ष्मीवती, ६ शेषवती, ७ चित्रगुप्ता, ८ वसुंधरा।

९७—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं रुयगवरे पव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

सोत्थिते य अमोहे य, हिमवं मंदरे तहा ।
रुयगे रुयगुत्तमे चंदे, अट्ठमे य सुदंसणे ॥१॥

तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्डियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति, तं जहा—

इलादेवी सुरादेवी, पुढवी पउमावती ।
एगणासा णवमिया, सीता भद्दा य अट्ठमा ॥२॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम में रुचकवर पर्वत के ऊपर आठ कूट कहे गये हैं। जैसे—

१ स्वस्तिक कूट, २ अमोह कूट, ३ हिमवान् कूट, ४ मन्दर कूट, ५ रुचक कूट, ६ रुचकोत्तम कूट, ७ चन्द्र कूट, ८ सुदर्शन कूट (९७)।

वहाँ ऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपम की स्थितिवाली आठ दिशाकुमारी महत्तरिकाएं रहती हैं। जैसे—

१ इलादेवी, २ सुरादेवी, ३ पृथ्वी, ४ पद्मावती, ५ एकनासा, ६ नवमिका, ७ सीता, ८ भद्रा।

६८—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण रुयगवरे पव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता त जहा—

रयण रयणुच्चए या, सव्वरयण रयणसचए चेव ।
विजये य वेजयते, जयते अपराजिते ॥१॥

तत्थ ण अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्ढियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसति, त जहा—

अलबुसा मिस्सकेसी, पोडरिगी य वारुणी ।
आसा सव्वगा चेव, सिरी हिरी चेव उत्तरतो ॥२॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पवत के उत्तर मे रुचकवर पवत के ऊपर आठ कूट कहे गये है । जैसे —

१ रत्न कूट, २ रत्नोच्चय कूट, ३ सवरत्न कूट, ४ रत्नसचय कूट, ५ विजय कूट, ६ वजयन्त कूट ७, जयन्त कूट, ८ अपराजित कूट (६८) ।

वहा महाऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाली आठ दिशाकुमारी महत्तरिकाए रहती हैं । जैसे—

१ अलवुषा, २ मिश्रकेशी, ३ पौण्डरिकी ४ वारुणी ५ आशा, ६ सवगा, ७ श्री, ८ ह्री ।

महत्तरिका-सूत्र

६९—अट्ठ अहेलोगवत्थव्वाओ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—

सग्रहणी गाथा

भोगकरा भोगवती, सुभोगा भोगमालिणी ।
सुवच्छा वच्छमित्ता य, वारिसेणा बलाहगा ॥१॥

अधोलोक मे रहने वाली आठ दिशाकुमारियो की महत्तरिकाए कही गई हैं । जैसे—

१ भोगकरा, २ भोगवती, ३ सुभोगा, ४ भोगमालिनी, ५ सुवत्सा, ६ वत्समित्रा, ७ वारिषेणा, ८ वलाहका (६९) ।

१००—अट्ठ उड्ढलोगवत्थव्वाओ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—

मेघकरा मेघवती, सुमेघा मेघमालिणी ।
तोयधारा विचित्ता य, पुप्फमाला अणिदिता ॥१॥

ऊर्ध्वलोक मे रहने वाली आठ दिशाकुमारी-महत्तरिकाए कही गई हैं । जसे—

१ मेघकरा, २ मेघवती, ३ सुमेघा, ४ मेघमालिनी, ५ तोयधारा, ६ विचित्रा, ७ पुष्पमाला, ८ अनिन्दिता (१००) ।

कल्प सूत्र

१०१—अट्ठ कप्पा तिरिय मिस्सोववण्णगा पण्णत्ता, त जहा—सोहम्मे, (ईसाणे, सणकुमारे, माहिंदे, बभलोगे, लतए, महासुक्के), सहस्सारे ।

तियग्-मिश्रोपनक (तिर्यंच और मनुष्य दोनो के उत्पन होन के योग्य) कल्प आठ कहे गये है। जैसे—

१ सोधम, २ ईशान, ३ सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, ५ ब्रह्मलोक, ६ लान्तक, ७ महाशुक्र, ८ सहस्रार (१०१)।

१०२—एतेसु ण अट्ठसु कप्पेसु अट्ठ इदा पण्णत्ता, त जहा—सक्के, (ईसाणे, सणकुमारे, माहिदे, बमे, लतए, महासुक्के), सहस्सारे।

इन आठो कल्पो मे आठ इन्द्र कहे गये हैं। जैसे—

१ शक्र, २ ईशान, ३ सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, ५ ब्रह्म, ६ लान्तक, ७ महाशुक्र, ८ सहस्रार (१०२)।

१०३—एतेसि ण अट्ठण्ह इदाण अट्ठ परियाणिया विमाणा पण्णत्ता, त जहा—पालए, पुप्फए, सोमणसे, सिरिवच्छे, णदियावत्ते, कामकमे, पीतिमणे, मणोरमे।

इन आठो इन्द्रो के आठ पारियानिक (यात्रा मे काम आने वाले) विमान कहे गये हैं। जैसे—

१ पालक, २ पुष्पक, ३ सोमनस, ४ श्रीवत्स, ५ नद्यावत, ६ कामक्रम, ७ प्रीतिमन, ८ मनोरम (१०३)।

प्रतिमा सूत्र

१०४—अट्ठट्ठमिया ण भिक्खुपडिमा चउसट्ठीए राइदिएहिं दोहि य अट्ठासीतेहिं भिक्खासतेहिं अहासुत्त (अहाअत्थ अहातच्च अहामग्ग अहाकप्प सम्म काएण फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया) अणुपालितावि भवति।

अष्टाष्टमिका भिक्षुप्रतिमा ६४ दिन-रात, तथा २८८ भिक्षादत्तियो के द्वारा यथासूत्र, यथा-अर्थ, यथातत्त्व, यथामार्ग, यथाकल्प, तथा सम्यक् प्रकार काया से स्पृष्ट, पालित, शोधित, तीरित और अनुपालित की जाती है।

जीव-सूत्र

१०५—अट्ठविधा ससारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, त जहा—पढमसमयणेरइया, अपढमसमयणेरइया, (पढमसमयतिरिया, अपढमसमयतिरिया, पढमसमयमणुया, अपढमसमयमणुया, पढमसमयदेवा), अपढमसमयदेवा।

१०६—अट्ठविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा णेरइया, तिरिक्खजोणिया, तिरिक्खजोणिणीओ, मणुस्सा, मणुस्सीओ, देवा, देवीओ, सिद्धा ।

अहवा—अट्ठविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—आभिणिबोहियणाणी, (सुयणाणी, ओहिणाणी, मणपज्जवणाणी), केवलणाणी, मतिअण्णाणी, सुतअण्णाणी, विभगणाणी ।

सवजीव आठ प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१ नारक, २ तिर्यग्योनिक, ३ तिर्यग्योनिकी, ४ मनुष्य, ५ मानुषी, ६ देव, ७ देवी, ८ सिद्ध ।

अथवा सर्वजीव आठ प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१ आभिनिबोधिकज्ञानी, २ श्रुतज्ञानी, ३ अवधिज्ञानी, ४ मन पर्यवज्ञानी, ५ केवलज्ञानी ६ मत्यज्ञानी, ७ श्रुताज्ञानी, ८ विभगज्ञानी (१०६) ।

सयम सूत्र

१०७—अट्ठविधे सजमे पण्णत्ते, त जहा—पढमसमयसुहुमसपरायसरागसजमे, अपढमसमयसुहुमसपरायसरागसजमे, पढमसमयबादरसपरायसरागसजमे, अपढमसमयबादरसपरायसरागसजमे, पढमसमयउवसतकसायवीतरागसजमे, अपढमसमयउवसतकसायवीतरागसजमे, पढमसमयखीणकसायवीतरागसजमे, अपढमसमयखीणकसायवीतरागसजमे ।

सयम आठ प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ प्रथमसमय सूक्ष्मसाम्परायसराग सयम,
२ अप्रथमसमय सूक्ष्मसाम्परायसराग सयम,
३ प्रथमसमय बादरसम्परायसराग सयम,
४ अप्रथमसमय बादरसाम्परायसराग सयम,
५ प्रथम समय उपशान्तकषाय वीतराग सयम,
६ अप्रथम समय उपशान्तकषाय वीतराग सयम,
७ प्रथम समय क्षीणकषाय वीतराग सयम,
८ अप्रथम समय क्षीणकषाय वीतराग सयम (१०७) ।

पृथिवी-सूत्र

१०८—अट्ठ पुढवीओ पण्णत्ताओ, त जहा—रयणप्पभा, (सक्करप्पभा, वालुअप्पभा, पकप्पभा, धूमप्पभा, तमा), अहेसत्तमा, ईसिपब्भारा ।

पृथिविया आठ कही गई हैं । जैसे—

१ रत्नप्रभा, २ शर्कराप्रभा, ३ वालुकाप्रभा, ४ पक प्रभा ५ धूम प्रभा, ६ तम प्रभा, ७ अध सप्तमी (तमस्तम प्रभा), ८ ईषत्प्राग्भारा (१०८) ।

१०९—ईसिपब्भाराए ण पुढवीए बहुमज्झदेसभागे अट्ठजोयणिए खेत्ते अट्ठ जोयणाइ बाहल्लेण पण्णत्ते ।

ईषत्प्राग्भारा पृथिवी के बहुमध्य देशभाग मे आठ योजन लम्बे-चौडे क्षेत्र का बाहल्य (मोटाई) आठ योजन है (१०९) ।

११०—ईसिपब्भाराए णं पुढवीए अट्ठ णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—ईसिति वा, ईसिपब्भाराति वा, तणूति वा, तणुतणूइ वा, सिद्धीति वा, सिद्धालएति वा, मुत्तीति वा, मुत्तालएति वा।

ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के आठ नाम है। जैसे—

१ ईषत, २ ईषत्प्राग्भारा ३ तनु, ४ तनुतनु, ५ सिद्धि, ६ सिद्धालय, ७ मुक्ति, ८ मुक्तालय (११०)।

अभ्युत्थातव्य सूत्र

१११—अट्ठहिं ठाणेहिं सम्मं घडितव्वं जतितव्वं परक्कमितव्वं अस्सिं च णं अट्ठे णो पमाएतव्वं भवति—

१ असुयाणं धम्माणं सम्मं सुणणताए अब्भुट्ठेतव्वं भवति।
२ सुताणं धम्माणं ओगिण्हणयाए उवधारणयाए अब्भुट्ठेतव्वं भवति।
३ णवाणं कम्माणं संजमेणमकरणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवति।
४ पोराणाणं कम्माणं तवसा विगिंचणताए विसोहणताए अब्भुट्ठेतव्वं भवति।
५ असंगिहीतपरिजणस्स संगिण्हणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवति।
६ सेहं आयारगोयरं गाहणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवति।
७ गिलाणस्स अगिलाए वेयावच्चकरणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवति।
८ साहम्मियाणमधिकरणंसि उप्पण्णंसि तत्थ अणिस्सितोवस्सितो अपक्खग्गाही मज्झत्थभावभूते कहं णु साहम्मिया अप्पसद्दा अप्पझंझा अप्पतुमंतुमा? उवसामणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवति।

आठ वस्तुओं की प्राप्ति के लिए साधक सम्यक् चेष्टा करे, सम्यक् प्रयत्न करे, सम्यक् पराक्रम करे, इन आठों के विषय में कुछ भी प्रमाद नहीं करना चाहिए—

१ अश्रुत धर्मों को सम्यक् प्रकार से सुनने के लिए जागरूक रहे।
२ सुने हुए धर्मों को मन से ग्रहण करने और उनकी स्थिर-स्मृति के लिए जागरूक रहे।
३ संयम के द्वारा नवीन कर्मों का निरोध करने के लिए जागरूक रहे।
४ तपश्चरण के द्वारा पुराने कर्मों को पृथक् करने और विशोधन करने के लिए जागरूक रहे।
५ असंगृहीत परिजनों (शिष्यों) का संग्रह करने के लिए जागरूक रहे।
६ शैक्ष (नवदीक्षित) मुनि को आचार-गोचर का सम्यक् बोध कराने के लिए जागरूक रहे।
७ ग्लान साधु की ग्लानि-भाव से रहित होकर वैयावृत्त्य करने के लिए जागरूक रहे।
८ साधर्मिकों में परस्पर कलह उत्पन्न होने पर—'ये मेरे साधर्मिक किस प्रकार अपशब्द, कलह और तू-तू, मैं-मैं से मुक्त हों' ऐसा विचार करते हुए लिप्सा और अपेक्षा से रहित होकर किसी का पक्ष न लेकर मध्यस्थ भाव को स्वीकार कर उसे उपशान्त करने के लिए जागरूक रहे।

विमान-सूत्र

११२—महासुक्क-सहस्सारेसु णं कप्पेसु विमाणा अट्ठ जोयणसताइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

महाशुक्र और सहस्रार कल्पो मे विमान आठ सौ योजन ऊंचे कहे गये है (११२)।

वादि सम्पदा-सूत्र

११३—अरहतो ण अरिट्ठणेमिस्स अट्ठसया वादीण सदेवमणुयासुराए परिसाए वादे अपराजिताण उक्कोसिया वादिसपया हुत्था।

अर्हत् अरिष्टनेमि के वादी मुनियो की उत्कृष्ट सम्पदा आठ सौ थी, जो देव, मनुष्य और असुरो की परिषद् मे वाद-विवाद के समय किसी से भी पराजित नही होते थे (११३)।

केवलिसमुदघात-सूत्र

११४—अट्ठसमइए केवलिसमुग्घाते पण्णत्ते, त जहा—पढमे समए दड करेति, बीए समए कवाड करेति, ततिए समए मथ करेति, चउत्थे समए लोग पूरेति, पचमे समए लोग पडिसाहरति, छट्ठे समए मथ पडिसाहरति, सत्तमे समए कवाड पडिसाहरति, अट्ठमे समए दड पडिसाहरति।

केवलिसमुद्घात आठ समय का कहा गया है। जैसे—

१ केवली पहले समय म दण्ड समुद्घात करते है।
२ दूसरे समय मे कपाट समुद्घात करते है।
३ तीसरे समय मे मन्थान समुद्घात करते है।
४ चौथे समय मे लोकपूरण समुद्घात करते है।
५ पाचवे समय मे लोक-व्याप्त आत्मप्रदेशो का उपसहार करते (सिकोडते) हैं।
६ छठे समय मे मन्थान का उपसहार करते है।
७ सातवें समय मे कपाट का उपसहार करते है।
८ आठवे समय मे दण्ड का उपसहार करते है (११४)।

विवेचन—सभी केवली भगवान् समुद्-घात करते हैं, या नही करते हैं ? इस विषय मे श्वे० और दि० शास्त्रो मे दो दो मान्यताए स्पष्ट रूप से लिखित मिलती हैं। पहली मान्यता यही है कि सभी केवली भगवान् समुद्-घात करते हुए ही मुक्ति प्राप्त करते हैं। किन्तु दूसरी मान्यता यह है कि जिनको छह मास से अधिक आयुष्य के शेष रहने पर केवलज्ञान उत्पन्न होता है, वे समुद्घात नही करते है। किन्तु छह मास या इससे कम आयुष्य शेष रहने पर जिनको केवलज्ञान उत्पन्न होता है वे नियम से समुद्घात करते हुए ही मोक्ष प्राप्त करते हैं।

उक्त दोनो मान्यताओ मे से कौन सत्य है और कौन सत्य नही, यह तो सर्वज्ञ देव ही जानें। प्रस्तुत सूत्र म केवलिसमुद्घात की प्रक्रिया और समय का निरूपण किया गया है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

जब केवली का आयुष्य कर्म अन्तमुहूर्तप्रमाण रह जाता है और शेष नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मों की स्थिति अधिक शेष रहती हैं, तब उनकी स्थिति का आयुष्यकर्म के साथ समीकरण करने के लिए यह समुद्घात किया जाता या होता है।

समुद्घात के पहले समय मे केवली के आत्म प्रदेश ऊपर और नीचे की ओर लोकान्त तक शरीर प्रमाण चौडे आकार मे फैलते हैं। उनका आकार दण्ड के समान होता है, अत इसे दण्डसमुद्घात कहा जाता है। दूसरे समय मे वे ही आत्म-प्रदेश पूर्व पश्चिम दिशा मे चौडे होकर लोकान्त तक

फैल कर कपाट के आकार के हो जाते हैं, अत उसे कपाटसमुद्घात कहते हैं। तीसरे समय मे व ही आत्म-प्रदेश दक्षिण-उत्तर दिशा मे लोक के अ त तक फल जाते हैं, इसे म याम समुद्घात कहते हैं। दि० शास्त्रो मे इसे प्रतर समुद्घात कहते हैं। चौथे समय मे वे आत्म प्रदेश बीच के भागो सहित सारे लोक मे फल जाते हैं, इसे लोक-पूरण समुद्घात कहते हैं। इस अवस्था मे केवली के आत्म-प्रदेश और लोकाकाश के प्रदेश सम-प्रदेश रूप से अवस्थित होते हैं। इस प्रकार इन चार समयो मे केवली के प्रदेश उत्तरोत्तर फैलते जाते है।

पुन पाँचवें समय मे उनका सकोच प्रारम्भ होकर मथान-आकार हो जाता है, छठे समय म कपाट-आकार हो जाता है, सातवें समय मे दण्ड-आकार हो जाता है और आठवें समय मे वे शरीर म प्रवेश कर पूर्ववत् शरीराकार से अवस्थित हो जाते हैं।

इन आठ समयो के भीतर नाम, गोत्र और वेदनीय-कर्म की स्थिति, अनुभाग और प्रदेशो की उत्तरोत्तर असख्यात गुणित क्रम से निजरा होकर उनकी स्थिति अ तमु हूर्त-प्रमाण रह जाती है। तब वे सयोगी जिन योग-निरोध को क्रिया करते हुए अयोगी बनकर चौदहवें गुणस्थान मे प्रवेश करते हैं और 'अ, इ, उ, ऋ, लृ' इन पाच ह्रस्व अक्षरो के प्रमाणकाल मे शेष रहे चारो अघाति-कर्मों की एक साथ सम्पूर्ण निर्जरा करके मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

अनुत्तरौपपातिक सूत्र

११५—समणस्स ण भगवतो महावीरस्स अट्ठ सया अणुत्तरोववाइयाण गतिकल्लाणाण (ठितिकल्लाणाण) आगमेसिभद्दाण उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयसपया हुत्था।

श्रमण भगवान् महावीर के अनुत्तर विमानो मे उत्पन्न होने वाले साधुओ की उत्कृष्ट सम्पदा आठ सौ थी। वे कल्याणगति वाले, कल्याण स्थितिवाले और आगामी काल मे निर्वाण प्राप्त करने वाले हैं।

वानव्य तर सूत्र

११६—अट्ठविधा वाणमतरा देवा पण्णत्ता, त जहा—पिसाया, भूता, जक्खा, रक्खसा, किण्णरा, किंपुरिसा, महोरगा, गधव्वा।

वाण-व्य तर देव आठ प्रकार के कहे गये हैं। जसे—

१ पिशाच, २ भूत, ३ यक्ष, ४ राक्षस ५ कि नर, ६ किम्पुरुष ७ महोरग ८ गधर्व (११६)।

११७—एतेसि ण अट्ठविहाण वाणमतरदेवाण अट्ठ चेइयरुक्खा पण्णत्ता, त जहा—

सग्रहणी गाथा

फलबो उ पिसायाण, वडो जक्खाण चेइय।
तुलसी भूयाण भवे, रक्खसाण च कडओ ॥१॥
असोओ किण्णराण च, किंपुरिसाण तु चपओ।
णागरुक्खो भुयगाण, गधव्वाण य तेंदुओ ॥२॥

आठ प्रकार के वाण-व्य तर देवो के आठ चैत्य वृक्ष कहे गये हैं। जसे—

१ कदम्ब पिशाचो का चत्यवृक्ष है।
२ वट यक्षो का चैत्यवृक्ष है।
३ तुलसी भूतो का चत्यवृक्ष है।
४ काण्डक राक्षसो का चैत्यवक्ष है।
५ अशोक किनरो का चत्यवृक्ष है।
६ चम्पक किम्पुरुषो का चैत्यवृक्ष है।
७ नागवृक्ष महोरगो का चैत्यवृक्ष है।
८ तिन्दुक गन्धर्वो का चत्यवृक्ष है (११७)।

ज्योतिष्क-सूत्र

११८—इमीसे रयणप्पमाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ अट्ठजोयणसते उड्ढमबाहाए सूरविमाणे चार चरति।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम रमणीय भूमिभाग मे आठ सौ योजन की ऊचाई पर सूयविमान भ्रमण करता है (११८)।

११९—अट्ठ णक्खत्ता चदेण सद्धि पमद्द जोग जोएति, त जहा—कत्तिया, रोहिणी, पुणव्वसू, महा, चित्ता, विसाहा, अणुराधा, जेट्ठा।

आठ नक्षत्र चन्द्रमा के साथ प्रमदयोग करते ह। जैसे—

१ कृत्तिका, २ रोहिणी, ३ पुनवसु, ४ मघा, ५ चित्रा, ६ विशाखा, ७ अनुराधा, ८ ज्येष्ठा (११९)।

विवेचन—चन्द्रमा के साथ स्पश करने को प्रमदयोग कहते है। उक्त आठ नक्षत्र उत्तर और दक्षिण दोनो ओर से स्पश करते है। चन्द्रमा उनके बीच मे मे गमन करता हुआ निकल जाता है।

द्वार सूत्र

१२०—जबुद्दीवस्स ण दीवस्स दारा अट्ठ जोयणाइ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप के चारो द्वार आठ आठ योजन ऊचे कहे गये हैं (१२०)।

१२१—सव्वेसिपि ण दीवसमुद्दाण दारा अट्ठ जोयणाइ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता।

सभी द्वीप और समुद्रा के द्वार आठ-आठ योजन ऊचे कहे गये हैं (१२१)।

बन्धस्थिति सूत्र

१२२—पुरिसवेयणिज्जस्स ण कम्मस्स जहण्णेण अट्ठसवच्छराइ बधठिती पण्णत्ता।

पुरुपवेदनीयकम का जघन्य स्थितिबन्ध आठ वष कहा गया है (१२२)।

१२३—जसोकित्तीणामस्स ण कम्मस्स जहण्णेण अट्ठ मुहुत्ताइ बधठिती पण्णत्ता।

यश कीर्तिनाम कम का जघन्य स्थितिबन्ध आठ मुहूर्त कहा गया है (१२३)।

१२४—उच्चागोतस्स ण कम्मस्स (जहण्णेण अट्ठ मुहुत्ताइ बधठिती पण्णत्ता)।

उच्चगोत्र कम का जघन्य स्थितिबन्ध आठ मुहूर्त कहा गया है (१२४)।

कुलकोटी सूत्र

१२५—तेइंदियाण अट्ठ जाति कुलकोडी जोणीपमुह सतसहस्सा पण्णत्ता ।

त्रीन्द्रिय जीवों की जाति-कुलकोटियोनिया आठ लाख कही गई हैं (१२५) ।

विवेचन—जीवों की उत्पत्ति के स्थान या आधार को योनि कहते है। उस योनिस्थान मे उत्पन्न होने वाली अनेक प्रकार की जातियो को कुलकोटि कहते है। गोवर रूप एक ही योनि म कृमि, कीट, और विच्छू आदि अनेक जाति के जीव उत्पन्न होते है, उन्हे कुल कहा जाता है। जैसे—कृमिकुल, कीटकुल, वृश्चिककुल आदि। त्रीन्द्रिय जीवों की योनिया दो लाख ह और उनकी कुल-कोटिया आठ लाख होती हैं।

पापकर्म सूत्र

१२६—जीवा ण अट्ठठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्सति वा, त जहा—पढमसमयणेरइयणिव्वत्तिते, (अपढमसमयणेरइयणिव्वत्तिते, पढमसमयतिरियणिव्वत्तिते, अपढमसमयतिरियणिव्वत्तिते, पढमसमयमणुयणिव्वत्तिते, अपढमसमयमणुयणिव्वत्तिते, पढमसमयदेव-णिव्वत्तिते), अपढमसमयदेवणिव्वत्तिते ।

एव—चिण-उवचिण-(बध उदीर वेद तह) णिज्जरा चेव ।

जीवों ने आठ स्थानो से निर्वर्तित पुद्गलो का पापकमरूप मे अतीत काल मे सचय किया है, वर्तमान मे कर रहे हैं और आगे करेंगे। जैसे—

१ प्रथम समय नरयिक निर्वर्तित पुद्गलो का ।
२ अप्रथम समय नैरयिक निर्वर्तित पुद्गलो का ।
३ प्रथम समय तिर्यंचनिवर्तित पुद्गलो का ।
४ अप्रथम समय तिर्यंचनिवर्तित पुद्गलो का ।
५ प्रथम समय मनुष्यनिर्वर्तित पुदगलो का ।
६ अप्रथम समय मनुष्यनिर्वर्तित पुदगलो का ।
७ प्रथम समय देवनिर्वर्तित पुद्गलो का ।
८ अप्रथम समय देवनिर्वर्तित पुद्गलो का (१२६) ।

इसी प्रकार सभी जीवो ने उनका उपचय, बन्धन, उदीरण, वेदन और निर्जरण अतीत काल मे किया है, वर्तमान मे करते हैं और आगे करेंगे ।

पुद्गल-सूत्र

१२७—अट्ठपएसिया खधा अणता पण्णत्ता ।

आठ प्रदेशी पुद्गलस्कन्ध अनन्त हैं (१२७) ।

१२८—अट्ठपएसोगाढा पोग्गला अणता पण्णत्ता जाव अट्ठगुणलुक्खा पोग्गला अणता पण्णत्ता ।

आकाश के आठ प्रदेशों मे अवगाढ पुद्गल अनन्त कहे गये है ।

आठ गुणवाले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं ।

इसी प्रकार शेष वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के आठ गुणवाले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं(१२८)।

॥ आठवा स्थान समाप्त ॥

नवम स्थान

सार सक्षेप

नवे स्थान मे नौ-नौ सख्याओ से सम्बन्धित विषया का सकलन किया गया है। इसमे सवप्रथम विसभोग का वणन है। सभोग का यहा अथ है—एक समान धम का आचरण करने वाले साधुओ का एक मण्डली मे खान पान आदि व्यवहार करना। ऐसे एक साथ खान-पानादि करने वाले साधु को साभोगिक कहा जाता है। जब कोई साधु आचाय, उपाध्याय स्थविर, गण, सघ आदि के प्रतिकूल आचरण करता है, तब उसे पृथक कर दिया जाता है अर्थात् उसके साथ खान पानादि बन्द कर दिया जाता है इसे ही साभोगिक से असाभोगिक करना कहा जाता है। यदि ऐसा न किया जाय, तो सघमर्यादा कायम नही रह सकती।

सयम की साधना मे अग्रसर होने के लिए ब्रह्मचय का सरक्षण बहुत आवश्यक है, अत उसके पश्चात् ब्रह्मचय की नौ गुप्तिया या वाडो का वणन किया गया है। ब्रह्मचारी को एकान्त मे शयन-आसन करना, स्त्री-पशु-नपु सकादि से ससक्त स्थान से दूर रहना, स्त्रियो की कथा न करना, उनके मनोहर अगो को न देखना मधुर और गरिष्ठ भोजन-पान न करना, और पूव मे भोगे हुए भोगो की याद न करना अत्यन्त आवश्यक है। अन्यथा उसका ब्रह्मचय स्थिर नही रह सकता।

साधक के लिए नौ विकृतियो (विगयो) का, पाप के नौ स्थानो का और पाप-बधक नौ प्रकार के श्रुत का परिहार भी आवश्यक है, इसलिए इनका वणन प्रस्तुत स्थानक मे किया गया है।

भिक्षा पद मे साधु को नौ कोटि-विशुद्ध भिक्षा लेने का विधान किया गया है। देव-पद मे देव सम्बन्धी अन्य वणनो के साथ नौ ग्रैवेयको का कूट पद मे जम्बूद्वीप के विभिन्न स्थाना पर स्थित कूटो का सग्रहणी गाथाओ के द्वारा नाम-निर्देश किया गया है।

इस स्थान मे सबसे बडा 'महापद्म' पद है। महाराज बिम्बराज श्रेणिक आगामी उत्सर्पिणी के प्रथम तीर्थंकर होगे। उनके नारकावास से निकलकर महापद्म के रूप मे जन्म लेने उनके अनेक नाम रखे जाने, शिक्षा-दीक्षा लेने, केवली होने और वधमान स्वामी के समान ही विहार करते हुए धम-देशना देने एव उन्ही के समान ७२ वप की आयु पालन कर अन्त म सिद्ध, बुद्ध, मुक्त परिनिर्वृत्त और सब दुखो के अन्त करने का विस्तृत विवेचन किया गया है।

इस स्थान मे रोग की उत्पत्ति के नौ कारणो का भी निर्देश किया गया है। उनमे आठ कारण तो शारीरिक रोगो के हैं और नवा इन्द्रियाथ-विकोपन' मानसिक रोग का कारण है। रोगोपत्ति-पद के ये नवा ही कारण मननीय हैं और रोगो से बचने के लिए उनका त्याग आवश्यक है।

अवगाहना, दर्शनावरण कम, नौ महानिधिया, आयु परिणाम भावी तीर्थंकर, कुलकोटि, पापकम आदि पदो के द्वारा अनेक ज्ञातव्य विषयो का सकलन किया गया है। सक्षेप मे यह स्थानक अनेक दृष्टियो से महत्त्वपूण है। □□

नवम स्थान

विसभोग सूत्र

१—णवहि ठाणेहि समणे णिग्गथे सभोइय विसभोइय करेमाणे णातिक्कमति त जहा—आयरियपडिणीय, उवज्झायपडिणीय, थेरपडिणीय, कुलपडिणीय, गणपडिणीय, सघपडिणीय, णाणपडिणीय, दसणपडिणीय, चरित्तपडिणीय।

नौ कारणो से श्रमण निग्रन्थ साम्भोगिक साधु को विसाम्भोगिक करता हुआ तीर्थंकर की आज्ञा का अतिक्रमण नही करता है। जैसे—

१ आचार्य प्रत्यनीक—आचार्य के प्रतिकूल आचरण करनेवाले को।
२ उपाध्याय प्रत्यनीक—उपाध्याय के प्रतिकूल आचरण करनेवाले को।
३ स्थविर-प्रत्यनीक—स्थविर के प्रतिकूल आचरण करनेवाले को।
४ कुल-प्रत्यनीक—साधु कुल के प्रतिकूल आचरण करनेवाले को।
५ गण-प्रत्यनीक—साधु-गण के प्रतिकूल आचरण करनेवाले को।
६ सघ-प्रत्यनीक—सघ के प्रतिकूल आचरण करनेवाले को।
७ ज्ञान-प्रत्यनीक—सम्यग्ज्ञान के प्रतिकूल आचरण करनेवाले को।
८ दर्शन प्रत्यनीक—सम्यग्दर्शन के प्रतिकूल आचरण करनेवाले को।
९ चारित्र प्रत्यनीक—सम्यक्चारित्र के प्रतिकूल आचरण करनेवाले को (१)।

विवेचन—एक मण्डली मे बैठकर खान पान करनेवालो को साम्भोगिक कहते हैं। जब कोई साधु सूत्रोक्त नौ पदो मे से किसी के भी साथ उसकी प्रतिष्ठा या मर्यादा के प्रतिकूल आचरण करता है तब श्रमण-निग्रन्थ उसे अपनी मण्डली से पृथक् कर सकते हैं। इस पृथक्करण को ही विसम्भोग कहा जाता है।

ब्रह्मचर्य-अध्ययन-सूत्र

२—णव बभचेरा पण्णत्ता, त जहा—सत्थपरिण्णा, लोगविजओ, (सीओसणिज्ज, सम्मत्त, आवती, धूत, विमोहो), उवहाणसुय, महापरिण्णा।

आचाराङ्ग सूत्र मे ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी नौ अध्ययन कहे गये हैं। जैसे—

१ शस्त्रपरिज्ञा, २ लोकविजय ३ शीतोष्णीय ४ सम्यक्त्व, ५ आवन्ती लोकसार, ६ धूत ७ विमोह, ८ उपधानश्रुत, ९ महापरिज्ञा।

विवेचन—अहिंसकभाव रूप उत्तम आचरण करने को ब्रह्मचर्य या सयम कहते हैं। आचाराङ्ग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध मे ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी नौ अध्ययन हैं। उनका यहाँ उल्लेख किया गया है। उनका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१ शस्त्र परिज्ञा—जीव-घात के कारणभूत द्रव्य-भावरूप शस्त्रो के ज्ञानपूर्वक प्रत्याख्यान का वर्णन करनेवाला अध्ययन।
२ लोक-विजय—राग-द्वेष रूप भावलोक का विजय या निराकरण प्रतिपादक अध्ययन।

३ शीतोष्णीय—शीत अर्थात् अनुकूल और उष्ण अर्थात् प्रतिकूल परीषहो के सहने का वर्णन करनेवाला अध्ययन ।
४ सम्यक्त्व—दृष्टि-व्यामोह को छुडाकर सम्यक्त्व की दृढता का प्रतिपादक अध्ययन ।
५ आवन्ती-लोकसार—अज्ञानादि असार तत्त्वो को छुडाकर लोक मे सारभूत रत्नत्रय की श्रेष्ठता का प्रतिपादक अध्ययन ।
६ धूत—परिग्रहो के धोने अर्थात् त्यागने का वर्णन करने वाला अध्ययन ।
७ विमोह—परीषह और उपसर्गो के आने पर होनेवाले मोह के त्यागने और परीषहादि को सहने का वर्णन करनेवाला अध्ययन ।
८ उपधानश्रुत—भ० महावीर-द्वारा आचरित उपधान अर्थात् तप का प्रतिपादक श्रुत अर्थात अध्ययन ।
९ महापरिज्ञा—जीवन के अन्त मे समाधिमरणरूप अन्तक्रिया सम्यक् प्रकार करनी चाहिए, इसका प्रतिपादक अध्ययन ।

उक्त नौ स्थान ब्रह्मचर्य के कहे गये हैं (२) ।

ब्रह्मचर्य गुप्ति सूत्र

३—णव बंभचेरगुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—१ विवित्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता भवति—णो इत्थिसंसत्ताइं णो पसुसंसत्ताइं णो पंडगसंसत्ताइं । २ णो इत्थीणं कहं कहेत्ता भवति । ३ णो इत्थिठाणाइं सेवित्ता भवति । ४ णो इत्थीणमिंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता णिज्झाइत्ता भवति । ५ णो पणीतरसभोई [भवति ?] । ६ णो पाणभोयणस्स अतिमातमाहारए सया भवति । ७ णो पुव्वरतं पुव्वकीलियं सरेत्ता भवति । ८ णो सद्दाणुवाती णो रूवाणुवाती णो सिलोगाणुवाती [भवति ?] । ९ णो सातसोक्खपडिबद्धे यावि भवति ।

ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियाँ (बाड) कही गई हैं । जैसे—
१ ब्रह्मचारी एकान्त मे शयन और आसन करता है किन्तु स्त्रीसंसक्त, पशुसंसक्त और नपुंसक के संसर्गवाले स्थानो का सेवन नही करता है ।
२ ब्रह्मचारी स्त्रियो की कथा नही करता है ।
३ ब्रह्मचारी स्त्रियो के बैठने-उठने के स्थानो का सेवन नही करता है ।
४ ब्रह्मचारी स्त्रियो की मनोहर और मनोरम इन्द्रियो को नही देखता है ।
५ ब्रह्मचारी प्रणीतरस घृत-तेलबहुल-भोजन नही करता है ।
६ ब्रह्मचारी सदा अधिक मात्रा मे आहार-पान नही करता है ।
७ ब्रह्मचारी पूर्वकाल मे भोगे हुए भोगो और स्त्रीक्रीडाओ का स्मरण नही करता है ।
८ ब्रह्मचारी मनोज्ञ शब्दो को सुनने का, सुन्दर रूपो को देखने का और कीर्त्ति-प्रशंसा का अभिलाषी नही होता है ।
९ ब्रह्मचारी सातावेदनीय-जनित सुख मे प्रतिबद्ध—आसक्त नही होता है (३) ।

ब्रह्मचर्य अगुप्ति सूत्र

४—णव बंभचेरअगुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—१ णो विवित्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता भवति—इत्थीसंसत्ताइं पसुसंसत्ताइं पंडगसंसत्ताइं । २ इत्थीणं कहं कहेत्ता भवति । ३ इत्थिठाणाइं

सेवित्ता भवति। ४ इत्थीण इंदियाइं (मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता) णिज्झाइत्ता भवति। ५ पणीयरसभोई [भवति ?]। ६ पाणभोयणस्स अइमायमाहारए सया भवति। ७ पुव्वरय पुव्वकीलियं सरित्ता भवति। ८ सद्दाणुवाई रुवाणुवाई सिलोगाणुवाई [भवति ?]। ९ सायासोक्ख पडिबद्धे यावि भवति।

ब्रह्मचर्य की नौ अगुप्तियाँ या विराधिकाए कही गई हैं। जैसे—

१ जो ब्रह्मचारी एकान्त मे शयन-आसन का सेवन नही करता, किन्तु स्त्रीसंसक्त, पशुसंसक्त और नपुंसकसंसक्त स्थानो का सेवन करता है।
२ जो ब्रह्मचारी स्त्रियों की कथा करता है।
३ जो ब्रह्मचारी स्त्रियो के बैठने-उठने के स्थानों का सेवन करता है।
४ जो ब्रह्मचारी स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियो को देखता है और उनका चिन्तन करता है।
५ जो ब्रह्मचारी प्रणीत रसवाला भोजन करता है।
६ जो ब्रह्मचारी सदा अधिक मात्रा मे आहार-पान करता है।
७ जो ब्रह्मचारी पूर्वभुक्त भोगो और क्रीडाओ का स्मरण करता है।
८ जो ब्रह्मचारी मनोज्ञ शब्दो को सुनने का, सुन्दर रूपो को देखने का और कीर्ति प्रशंसा का अभिलाषी होता है।
९ जो ब्रह्मचारी सातावेदनीय-जनित सुखमे प्रतिबद्ध होता है (४)।

तीर्थंकर सूत्र

५—अभिणंदणाओ णं अरहओ सुमती अरहा णर्वाहं सागरोवमकोडीसयसहस्सेहिं वीइक्कंतेहिं समुप्पण्णे।

अर्हत् अभिनन्दन के अनन्तर नौ लाख करोड सागरोपमकाल व्यतीत हो जाने पर अर्हत् सुमति देव उत्पन्न हुए (५)।

सद्भावपदार्थ-सूत्र

६—णव सब्भावपयत्था पण्णत्ता, तं जहा—जीवा, अजीवा, पुण्णं, पावं, आसवो, संवरो, णिज्जरा, बंधो, मोक्खो।

सद्भाव रूप पारमार्थिक पदार्थ नौ कहे गये हैं। जसे—

१ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आस्रव, ६ संवर, ७ निर्जरा, ८ बंध, ९ मोक्ष (६)।

जीव-सूत्र

७—णवविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइया, (आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया), वणस्सइकाइया, बेइंदिया, (तेइंदिया, चउरिंदिया), पंचिंदिया।

संसार-समापन्नक जीव नौ प्रकार के कहे गये हैं। जसे—

१ पृथ्वीकायिक, २ अप्कायिक, ३ तेजस्कायिक, ४ वायुकायिक, ५ वनस्पतिकायिक, ६ द्वीन्द्रिय, ७ त्रीन्द्रिय, ८ चतुरिन्द्रिय, ९ पंचेन्द्रिय (७)।

गति-आगति सूत्र

८—पुढविकाइया णवगतिया णवआगतिया पण्णत्ता, त जहा—पुढविकाइए पुढविकाइएसु उववज्जमाणे पुढविकाइएहिंतो वा, (आउकाइएहिंतो वा, तेउकाइएहिंतो वा, वाउकाइएहिंतो वा, वणस्सइकाइएहिंतो वा, बेइंदिएहिंतो वा, तेइंदिएहिंतो वा, चउरिंदिएहिंतो वा), पंचिंदिएहिंतो वा उववज्जेज्जा।

से चेव ण से पुढविकाइए पुढविकायत्त विप्पजहमाणे पुढविकाइयत्ताए वा, (आउकाइयत्ताए वा, तेउकाइयत्ताए वा, वाउकाइयत्ताए वा, वणस्सइकाइयत्ताए वा, बेइंदियत्ताए वा, तेइंदियत्ताए वा, चउरिंदियत्ताए वा), पंचिंदियत्ताए वा गच्छेज्जा।

पृथ्वीकायिक जीव नौ गतिक और नौ आगतिक कहे गये है। जैसे—

१ पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने वाला पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिको से, या अप्कायिको से, या तेजस्कायिको से, या वायुकायिको स, या वनस्पतिकायिको से, या द्वीन्द्रियो से, या त्रीन्द्रियो से, या चतुरिन्द्रियो से, या पचेन्द्रियो मे आकर उत्पन्न होता है।

वही पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिकपने को छोडता हुआ पृथ्वीकायिक रूप से, या अप्कायिक रूप से, या तजस्कायिक रूप से, या वायुकायिक रूप से या वनस्पतिकायिक रूप से, या द्वीन्द्रिय-रूप से, या त्रीन्द्रियरूप से, या चतुरिन्द्रिय रूप मे, या पचेन्द्रिय रूप से जाता है, अर्थात् उनमे उत्पन्न होता है (८)।

९—एवमाउकाइयावि जाव पंचिंदियत्ति।

इसी प्रकार अप्कायिक से लेकर पचेन्द्रिय तक के सभी जीव नौ गतिक और नौ आगतिक जानना चाहिए (९)।

जीव-सूत्र

१०—णवविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, णेरइया, पंचेंदियतिरिक्खजोणिया, मणुया, देवा, सिद्धा।

अहवा—णवविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—पढमसमयणेरइया, अपढमसमयणेरइया, (पढमसमयतिरिया, अपढमसमयतिरिया पढमसमयमणुया, अपढमसमयमणुया, पढमसमयदेवा), अपढमसमयदेवा, सिद्धा।

सब जीव नौ प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ एकेन्द्रिय, २ द्वीन्द्रिय, ३ त्रीन्द्रिय, ४ चतुरिन्द्रिय, ५ नारक, ६ पचेन्द्रिय, तिर्यग्योनिक, ७ मनुष्य, ८ देव, ९, सिद्ध।

अथवा सब जीव नौ प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ प्रथम समयवर्ती नारक, २ अप्रथम समयवर्ती नारक।
३ प्रथम समयवर्ती तिर्यंच, ४ अप्रथम समयवर्ती तिर्यंच।
५ प्रथम समयवर्ती मनुष्य, ६ अप्रथम समयवर्ती मनुष्य।
७ प्रथम समयवर्ती देव, ८ अप्रथम समयवर्ती देव।
९ सिद्ध (१०)।

अवगाहना सूत्र

११—णवविहा सव्वजीवोगाहणा पण्णत्ता, त जहा—पुढविकाइओगाहणा, आउकाइओगाहणा, (तेउकाइओगाहणा, वाउकाइओगाहणा), वणस्सइकाइओगाहणा, बेइंदियओगाहणा, तेइंदियओगाहणा, चउरिंदियओगाहणा, पंचिदियओगाहणा ।

सब जीवो की अवगाहना नौ प्रकार की कही गई है । जैसे—

१ पृथ्वीकायिक जीवो की अवगाहना, २ अप्कायिक जीवो की अवगाहना,
३ तेजस्कायिक जीवो की अवगाहना, ४ वायुकायिक जीवो की अवगाहना,
५ वनस्पतिकायिक जीवो की अवगाहना, ६ द्वीन्द्रिय जीवो की अवगाहना,
७ त्रीन्द्रिय जीवो की अवगाहना, ८ चतुरिन्द्रिय जीवो की अवगाहना,
९ पचेन्द्रिय जीवो की अवगाहना (११) ।

ससार-सूत्र

१२—जीवा ण णवहिं ठाणेहिं ससार वत्तिसु वा वत्तति वा वत्तिस्सति वा, त जहा—पुढविकाइयत्ताए, (आउकाइयत्ताए, तेउकाइयत्ताए, वाउकाइयत्ताए, वणस्सइकाइयत्ताए, बेइंदियत्ताए, तेइंदियत्ताए, चउरिंदियत्ताए), पंचिदियत्ताए ।

जीवो ने नौ स्थानो से (नौ पर्यायो मे) ससार परिभ्रमण किया है, कर रहे हैं और आगे करेंगे । जसे—

१ पृथ्वीकायिक रूप से, २ अप्कायिक रूप से, ३ तेजस्कायिक रूप से, ४ वायुकायिक रूप से, ५ वनस्पतिकायिक रूप से, ६ द्वीन्द्रिय रूप से, ७ त्रीन्द्रिय रूप से, ८ चतुरिन्द्रिय रूप से, ९ पचेन्द्रिय रूप से (१२) ।

रोगोत्पत्ति-सूत्र

१३—णवहिं ठाणेहिं रोगुप्पत्ती सिया, त जहा—अच्चासणयाए, अहितासणयाए, अतिणिद्दाए, अतिजागरितेण, उच्चारणिरोहेण, पासवणणिरोहेण, अद्धाणगमणेण, भोयणपडिकूलताए, इंदियत्थविकोवणयाए ।

नौ स्थानों—कारणो से रोग की उत्पत्ति होती है । जसे—

१ अधिक बैठे रहने से, या अधिक भोजन करने से ।
२ अहितकर आसन से बैठने से, या अहितकर भोजन करने से ।
३ अधिक नींद लेने से, ४ अधिक जागने से,
५ उच्चार (मल) का निरोध करने से ६ प्रस्रवण (मूत्र) का वेग रोकने से,
७ अधिक मार्ग गमन से, ८ भोजन की प्रतिकूलता से,
९ इन्द्रियार्थ विकोपन अर्थात् काम विकार से (१३) ।

दर्शनावरणीयकर्म सूत्र

१४—णवविधे दरिसणावरणिज्जे कम्मे पण्णत्ते, त जहा—णिद्दा, णिद्दाणिद्दा, पयला, पयलापयला, थीणगिद्धी, चक्खुदसणावरणे, अचक्खुदसणावरणे, ओहिदसणावरणे, केवलदसणावरणे ।

दर्शनावरणीय कर्म नौ प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ निद्रा—हलकी नींद सोना, जिससे सुखपूर्वक जगाया जा सके।
२ निद्रानिद्रा—गहरी नींद सोना, जिससे कठिनता से जगाया जा सके।
३ प्रचला—खड़े या बैठे हुए ऊंघना।
४ प्रचला-प्रचला—चलते-चलते सोना।
५ स्त्यानर्द्धि—दिन में सोचे काम को निद्रावस्था में कराने वाली घोर निद्रा।
६ चक्षुदर्शनावरण—चक्षु के द्वारा होने वाले वस्तु के सामान्य रूप के अवलोकन का आवरण करने वाला कर्म।
७ अचक्षुदर्शनावरण—चक्षु के सिवाय शेष इन्द्रियों और मन से होने वाले सामान्य अवलोकन या प्रतिभास का आवरक कर्म।
८ अवधिदर्शनावरण—इन्द्रिय और मन की सहायता बिना मूर्त्त पदार्थों के सामान्य दर्शन का प्रतिबन्धक कर्म।
९ केवलदर्शनावरण—सब द्रव्य और पर्यायों के साक्षात् दर्शन का आवरक कर्म (१४)।

ज्योतिष सूत्र

१५—अभिई णं णक्खत्ते सातिरेगे णवमुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोगं जोएति।

अभिजित नक्षत्र कुछ अधिक नौ मुहूर्त तक चन्द्रमा के साथ योग करता है (१५)।

१६—अभिइआइया णं णव णक्खत्ता णं चंदस्स उत्तरेण जोगं जोएंति, तं जहा—अभिई, सवणो धणिट्ठा, (सयभिसया, पुव्वाभद्दवया, उत्तरापोट्ठवया, रेवई, अस्सिणी), भरणी।

अभिजित् आदि नौ नक्षत्र चन्द्रमा के साथ उत्तर दिशा से योग करते हैं। जैसे—

१ अभिजित, २ श्रवण, ३ धनिष्ठा, ४ शतभिषक्, ५ पूर्वभाद्रपद, ६ उत्तरभाद्रपद, ७ रेवती, ८ अश्विनी, ९ भरणी (१६)।

१७—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ णव जोअणसताइं उड्ढं अबाहाए उवरिल्ले तारारूवे चारं चरति।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम रमणीय भूमिभाग से नौ सौ योजन ऊपर सब से ऊपर वाला तारा (शनैश्चर) भ्रमण करता है (१७)।

मत्स्य सूत्र

१८—जंबुद्दीवे णं दीवे णवजोयणिआ मच्छा पविसिंसु वा पविसंति वा पविसिस्संति वा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में नौ योजन के मत्स्यों ने अतीत काल में प्रवेश किया है, वर्तमान में करते हैं और भविष्य में करेंगे। (लवणसमुद्र से जम्बूद्वीप की नदियों में आ जाते हैं) (१८)।

बलदेव-वासुदेव सूत्र

१९—जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए णव बलदेव-वासुदेवपियरो हुत्था, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

> पयावती य बंभे रोद्दे सोमे सिवेति य।
> महसीहे अग्गिसीहे, दसरहे णवमे य वसुदेवे ॥१॥
> इत्तो आढत्त जधा समवाये णिरवसेस जाव—
> एगा से गब्भवसही, सिज्झिहिति आगमेसेण ॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष मे इसी अवसर्पिणी मे बलदेवो के नौ और वासुदेवो के नौ पिता हुए हैं। जैसे—

१ प्रजापति, २ ब्रह्म, ३ रौद्र, ४ सोम, ५ शिव, ६ महासिंह, ७ अग्निसिंह ८ दशरथ, ९ वसुदेव।

यहाँ से आगे शेप सब वक्तव्य समवायाग के समान है यावत् वह आगामी काल मे एक गर्भ-वास करके सिद्ध होगा (१९)।

२०—जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमेसाए उस्सप्पिणीए णव बलदेव वासुदेवपितरो भविस्संति, णव बलदेव वासुदेवमायरो भविस्संति। एवं जधा समवाए णिरवसेस जाव महाभीमसेणे, सुग्गीवे य अपच्छिमे।

> एए खलु पडिसत्तू, कित्तिपुरिसाण वासुदेवाण।
> सव्वे वि चक्कजोही, हम्मेहिंती सचक्केहिं ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे भारतवर्ष मे आगामी उत्सर्पिणी मे बलदेव और वासुदेव के नौ माता-पिता होंगे।

इस प्रकार जैसे समवायाग मे वर्णन किया गया है, वैसा सब वर्णन महाभीमसेन और सुग्रीव तक जानना चाहिए।

वे कीर्त्तिपुरुष वासुदेवो के प्रतिशत्रु होंगे। वे सब चक्रयोधी होंगे और वे सब अपने ही चक्रो से वासुदेवो के द्वारा मारे जावेंगे (२०)।

महानिधि-सूत्र

२१—एगमेगे णं महाणिधी णव णव जोयणाइं विक्खंभेण पण्णत्ते।

एक एक महानिधि नौ-नौ योजन विस्तार वाली कही गई है (२१)।

२२—एगमेगस्स णं रण्णो चाउरतचक्कवट्टिस्स णव महाणिहिओ [णो ?] पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी गाथाएं

> णेसप्पे पंडुयए, पिंगलए सव्वरयण महापउमे।
> काले य महाकाले, माणवग, महाणिही संखे ॥१॥
> णेसप्पमि णिवेसा, गामागर णगर-पट्टणाणं च।
> दोणमुह मडंबाणं, खंधाराणं गिहाणं च ॥२॥
> गणियस्स य बीयाणं, माणुम्माणस्स जं पमाणं च।
> धण्णस्स य बीयाणं, उप्पत्ती पंडुए भणिया ॥३॥

सव्वा आभरणविही, पुरिसाण जा य होइ महिलाण।
आसाण य हत्थीण य, पिंगलगणिहिम्मि सा भणिया ॥४॥
रयणाइ सव्वरयणे, चोद्दस पवराइ चक्कवट्टिस्स।
उप्पज्जंति एगिंदियाइ पंचिंदियाइ च ॥५॥
वत्थाण य उप्पत्ती, णिप्फत्ती चेव सव्वभत्तीण।
रंगाण य धोयाण य, सव्वा एसा महापउमे ॥६॥
काले कालण्णाणं, भव्व पुराण च तीसु वासेसु।
सिप्पसत कम्माणि य, तिण्णि पयाए हियकराइ ॥७॥
लोहस्स य उप्पत्ती, होइ महाकाले आगराण च।
रुप्पस्स सुवण्णस्स य मणि मोत्ति सिल प्पवालाण ॥८॥
जोधाण य उप्पत्ती, आवरणाण च पहरणाण च।
सव्वा य जुद्धनीती, माणवए दडणीती य ॥९॥
णट्टविही णाडगविही, कव्वस्स चउव्विहस्स उप्पत्ती।
सखे महाणिहिम्मी, तुडियगाण च सव्वेसि ॥१०॥
चक्कट्ठपइट्ठाणा, अट्ठुस्सेहा य णव य विक्खभे।
बारसदीहा मजूस-सठिया जह णवीए मुहे ॥११॥
वेरुलियमणि-कवाडा, कणगमया विविध रयण पडिपुण्णा।
ससि सूर-चक्क लक्खण अणुसम जुग बाहु-वयणा य ॥१२॥
पलिओवमट्ठितीया, णिहिसरिणामा य तेसु खलु देवा।
जेसि ते आवासा, अक्किज्जा आहिवच्चा वा ॥१३॥
एए ते णवणिहिणो, पभूतधणरयणसचयसमिद्धा।
जे वसमुवगच्छती, सव्वेसि चक्कवट्टीण ॥१४॥

एक-एक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा की नौ-नौ निधिया कही गई है। जैसे—

सग्रहणी-गाथा—१ नैसर्पनिधि, २ पाण्डुकनिधि, ३ पिंगलनिधि, ४ सर्वरत्ननिधि, ५ महापद्मनिधि, ६ कालनिधि, ७ महाकालनिधि ८ माणवकनिधि, ९ शखनिधि ॥१॥

१ ग्राम, आकर, नगर, पट्टन, द्रोणमुख, मडब, स्कन्धावार और गृहो की नैसर्पनिधि से प्राप्ति होती है ॥२॥

२ गणित तथा बीजो के मान-उन्मान का प्रमाण तथा धान्य और बीजो की उत्पत्ति पाण्डुक महानिधि से होती है ॥३॥

३ स्त्री, पुरुष, घोडे और हाथियो के समस्त वस्त्र-आभूषण की विधि पिंगलकनिधि मे कही गई है ॥४॥

४ चक्रवर्ती के सात एकेन्द्रिय रत्न और सात पचेन्द्रिय रत्न, ये सब चौदह श्रेष्ठरत्न सर्वरत्न-निधि से उत्पन्न होते हैं ॥५॥

५ रंगे हुए या श्वेत सभी प्रकार के वस्त्रो की उत्पत्ति और निष्पत्ति महापद्म निधि से होती है ॥६॥

६ अतीत और अनागत के तीन-तीन वर्षों के शुभाशुभ का ज्ञान, सौ प्रकार के शिल्प, प्रजा के लिए हितकारक सुरक्षा, कृषि और वाणिज्य कर्म काल महानिधि से प्राप्त होते हैं ॥७॥

७ लोहे, चादी तथा सोने के आकर, मणि, मुक्ता, स्फटिक और प्रवाल की उत्पत्ति महाकाल निधि से होती है ॥८॥

८ योद्धाओं, आवरणों (कवचों) और आयुधों की उत्पत्ति, सब प्रकार की युद्धनीति और दण्डनीति की प्राप्ति माणवक महानिधि से होती है ॥९॥

९ नृत्यविधि, नाटकविधि, चार प्रकार के काव्यों, तथा सभी प्रकार के वाद्यों की प्राप्ति शख महानिधि से होती है ॥१०॥

विवेचन—चक्रवर्ती के नौ निधानों के नायक नौ देव हैं। यहाँ पर निधान और निधान नायक देव के अभेद की विवक्षा है। अतएव जिस निधान (निधि) से जिन वस्तुओं की प्राप्ति कही गई है, वह निधान नायक उस-उस देव से समझना चाहिए। नौ निधियों में चक्रवर्ती के उपयोग की सभी वस्तुओं का समावेश हो जाता है।

प्रत्येक महानिधि आठ-आठ चक्रों पर अवस्थित है। वे आठ योजन ऊची, नौ योजन चौडी, बारह योजन लम्बी और मजूषा के आकार वाली होती हैं। ये सभी महानिधियाँ गगा के मुहाने पर अवस्थित रहती है ॥११॥

उन निधियों के कपाट वैडूर्यरत्नमय और सुवर्णमय होते है। उनमें अनेक प्रकार के रत्न जड़े होते है। उन पर चन्द्र, सूर्य और चक्र के आकार के चिह्न होते हैं। वे सभी कपाट समान होते हैं, उनके द्वार के मुखभाग खम्भे के समान गोल और लम्बी द्वार-शाखाएं होती है ॥१२॥

ये सभी निधिया एक एक पल्योपम की स्थिति वाले देवों से अधिष्ठित रहती हैं। उन पर निधियों के नाम वाले देव निवास करते हैं। ये निधियाँ खरीदी या बेची नहीं जा सकती हैं और उन पर सदा देवों का आधिपत्य रहता है ॥१३॥

ये नवों निधियाँ विपुल धन और रत्नों के सचय से समृद्ध रहती हैं और ये चक्रवर्तियों के वश में रहती हैं[1] ॥१४॥

विकृति सूत्र

२३—णव विगतीओ पण्णत्ताओ, त जहा—खीर, दधि णवणीत, सप्पि, तेल, गुलो, महु, मज्ज, मस।

---

१ दि० शास्त्रों में भी चक्रवर्ती की उक्त नौ निधियों का वर्णन है केवल नामों के क्रम में अन्तर है। कार्यों के साथ उनके नाम इस प्रकार है—

१ कालनिधि—द्रव्य प्रदात्री। २ महाकालनिधि—भाजन पात्र प्रदात्री।
३ पाण्डुनिधि—धान्य प्रदात्री। ४ माणवकनिधि—आयुध प्रदात्री।
५ शखनिधि—वादित्र प्रदात्री। ६ पद्मनिधि—वस्त्र प्रदात्री।
७ नैसर्पनिधि—भवन-प्रदात्री। ८ पिंगलनिधि—आभरण प्रदात्री।
९ नानारत्ननिधि—नाना प्रकार के रत्नों की प्रदात्री।

—तिलोयपण्णत्ती ४ गा १३८४, १३८६

नौ विकृतियाँ कही गई है। जैसे—

१ दूध, २ दही, ३ नवनीत (मक्खन) ४ घी, ५ तेल, ६ गुड, ७ मधु, ८ मद्य, ९ मास (२३)।

बोन्दी (शरीर)-सूत्र

२४—णव सोत परिस्सवा बोंदी पण्णत्ता, त जहा—दो सोत्ता, दो णेत्ता, दो घाणा, मुहं, पोसए, पाऊ।

शरीर नौ स्रोतो से झरने वाला कहा गया है। जैसे—

दो कर्णस्रोत, दो नेत्रस्रोत, दो नाकस्रोत, एक मुखस्रोत, एक उपस्थस्रोत (मूत्रेन्द्रिय) और एक अपानस्रोत (मलद्वार) (२४)।

पुण्य-सूत्र

२५—णवविधे पुण्णे, पण्णत्ते, त जहा—अण्णपुण्णे, पाणपुण्णे, वत्थपुण्णे, लेणपुण्णे, सयणपुण्णे, मणपुण्णे, वइपुण्णे, कायपुण्णे, णमोक्कारपुण्णे।

नौ प्रकार का पुण्य कहा गया है। जैसे—

१ अन्न पुण्य, २ पान पुण्य, ३ वस्त्र पुण्य, ४ लयन-(भवन) पुण्य, ५ शयन पुण्य, ६ मन पुण्य ७ वचन पुण्य, ८ काय पुण्य, ९ नमस्कार पुण्य (२५)।

पापायतन-सूत्र

२६—णव पावस्सायतणा पण्णत्ता, त जहा—पाणातिवाते, मुसावाए, (अदिण्णादाणे, मेहुणे), परिग्गहे, कोहे, माणे, माया, लोभे।

पाप के आयतन (स्थान) नौ कहे गये हैं। जैसे—

१ प्राणातिपात, २ मृषावाद, ३ अदत्तादान, ४ मैथुन, ५ परिग्रह, ६ क्रोध ७ मान, ८ माया, ९ लोभ (२६)।

पापश्रुतप्रसग सूत्र

२७—णवविधे पावसुयपसगे पण्णत्ते, त जहा—

सग्रहणी-गाथा

उप्पाते णिमित्ते मते, आइक्खिए तिगिच्छिए।
कला आवरणे अण्णाणे मिच्छापवयणे ति य ॥१॥

पाप श्रुत प्रसग (पाप के कारणभूत शास्त्र का विस्तार) नौ प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ उत्पातश्रुत—प्रकृति विप्लव और राष्ट्र विप्लव का सूचक शास्त्र।
२ निमित्तश्रुत—भूत, वर्तमान और भविष्य के फल का प्रतिपादक शास्त्र।
३ मन्त्रश्रुत—मन्त्र-विद्या का प्रतिपादक शास्त्र।
४ आख्यायिकाश्रुत—परोक्ष बातो की प्रतिपादक मातगविद्या का शास्त्र।
५ चिकित्साश्रुत—रोग-निवारक औषधियो का प्रतिपादक आयुर्वेद शास्त्र।

६ कलाश्रुत—स्त्री-पुरुषों की कलाओं का प्रतिपादक शास्त्र।
७ आवरणश्रुत—भवन निर्माण की वास्तुविद्या का शास्त्र।
८ अज्ञानश्रुत—नृत्य, नाटक, संगीत आदि का शास्त्र।
९ मिथ्या प्रवचन—कुतीर्थिक मिथ्यात्वियों के शास्त्र (२७)।

नैपुणिक सूत्र

२८—णव णेउणिया वत्थू पण्णत्ता, तं जहा—

संखाणे णिमित्ते काइए पोराणे पारिहत्थिए।
परपंडिते वाई य, भूतिकम्मे तिगिच्छिए ॥१॥

नैपुणिक वस्तु नौ कही गई हैं। अर्थात् किसी वस्तु में निपुणता प्राप्त करने वाले पुरुष नौ प्रकार के होते हैं। जैसे—

१ संख्यान नैपुणिक—गणित शास्त्र का विशेषज्ञ।
२ निमित्त नैपुणिक—निमित्त शास्त्र का विशेषज्ञ।
३ काय नैपुणिक—शरीर की इडा, पिंगला आदि नाडियों का विशेषज्ञ।
४ पुराण नैपुणिक—प्राचीन इतिहास का विशेषज्ञ।
५ पारिहस्तिक नैपुणिक—प्रकृति से ही समस्त कार्यों में कुशल।
६ परपंडित—अनेक शास्त्रों को जानने वाला।
७ वादी—शास्त्रार्थ या वाद विवाद करने में कुशल।
८ भूतिकर्म नैपुणिक—भस्म लेप करके और डोरा आदि बाँध कर चिकित्सा आदि करने में कुशल।
९ चिकित्सा नैपुणिक—शारीरिक चिकित्सा करने में कुशल (२८)।

विवेचन—आ० अभयदेव सूरि ने उक्त नौ प्रकार के नैपुणिक पुरुषों की व्याख्या करने के पश्चात् सूत्र-पठित 'वत्थु' (वस्तु) पद के आधार पर अथवा कहकर अनुप्रवाद पूर्व के वस्तु नामक नौ अधिकारों को सूचित किया है, जिनके नाम भी ये ही हैं।

गण-सूत्र

२९—समणस्स णं भगवतो महावीरस्स णव गणा हुत्था, तं जहा—गोदासगणे, उत्तर-बलिस्स-हगणे, उद्देहगणे, चारणगणे, उद्दवाइयगणे, विस्सवाइयगणे, कामड्ढियगणे, माणवगणे, कोडियगणे।

श्रमण भगवान् महावीर के नौ गण (एक-सी सामाचारी का पालन करने वाले और एक सा वाचना वाले साधुओं के समुदाय) थे। जैसे—

१ गोदासगण, २ उत्तरबलिस्सहगण,
३ उद्देहगण, ४ चारणगण,
५ उद्दवाइयगण, ६ विस्सवाइयगण,
७ कामर्धिकगण ८ मानवगण, ९ कोटिकगण (२९)।

भिक्षाशुद्धि-सूत्र

३०—समणेण भगवता महावीरेण समणाण णिग्गथाण णवकोडिपरिसुद्धे भिक्खे पण्णत्ते, त जहा—ण हणइ, ण हणावइ, हणत णाणुजाणइ, ण पयइ, ण पयावेति, पयत णाणुजाणति, ण किणति, ण किणावेति, किणत णाणुजाणति ।

श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निग्र न्थो के लिए नौ कोटि परिशुद्ध भिक्षा का निरूपण किया है । जसे—

१ आहार निष्पादनाथ गेहूँ आदि सचित्त वस्तु का घात नही करता है ।
२ आहार निष्पादनाथ गेहूँ आदि सचित्त वस्तु का घात नही कराता है ।
३ आहार निष्पादनाथ गेहू आदि सचित्त वस्तु के घात की अनुमोदना नही करता है ।
४ आहार स्वय नही पकाता है ।
५ आहार दूसरा से नही पकवाता है ।
६ आहार पकाने वाला की अनुमोदना नही करता है ।
७ आहार को स्वय नही खरीदता है ।
८ आहार को दूसरो से नही खरीदवाता है ।
९ आहार मोल लेने वाले की अनुमोदना नही करता है (३०) ।

देव-सूत्र

३१—ईसाणस्स ण देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो णव अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ ।

देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल महाराज वरुण की नौ अग्रमहिषियाँ कही गई है (३१) ।

३२—ईसाणस्स ण देविंदस्स देवरण्णो अग्गमहिसीण णव पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता ।

देवेन्द्र देवराज ईशान की अग्रमहिषियो की स्थिति नौ पल्योपम की कही गई है (३२) ।

३३—ईसाणे कप्पे उक्कोसेण देवीण णव पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता ।

ईशानकल्प मे देविया की उत्कृष्ट स्थिति नौ पल्योपम की कही गई है (३३) ।

३४—णव देवणिकाया पण्णत्ता त जहा—

सग्रहणी-गाथा

सारस्सयमाइच्चा, वण्ही वरुणा य गद्दतोया य ।
तुसिया अव्वाबाहा, अग्गिच्चा चेव रिट्ठा य ॥१॥

देव (लोकान्तिकदेव) निकाय नौ कहे गये हैं । जैसे—

१ सारस्वत, २ आदित्य, ३ वह्नि, ४ वरुण, ५ गर्दतोय, ६ तुषित, ७ अव्याबाध, ८ अग्न्यच, ९ रिष्ट (३४) ।

३५—अव्वाबाहाण देवाण णव देवा णव देवसया पण्णत्ता ।

अव्याबाध देव स्वामी रूप मे नौ हैं और उनका नौ सौ देवो का परिवार कहा गया है (३५) ।

३६—(अग्गिच्चाण देवाण णव देवा णव देवसया पण्णत्ता ।

अग्न्यच देव स्वामी रूप मे नौ हैं और उनके नौ सौ देवो का परिवार कहा गया है (३६) ।

३७—रिट्ठाण देवाण णव देवा णव देवसया पण्णत्ता) ।

रिष्ट देव स्वामी के रूप मे नौ ह और उनके नौ सौ देवो का परिवार कहा गया है (३७) ।

३८—णव गेवेज्ज विमाण-पत्थडा पण्णत्ता, त जहा—हेट्ठिम हेट्ठिम गेविज्ज विमाण पत्थडे, हेट्ठिम मज्झिम--गेविज्ज विमाण पत्थडे, हेट्ठिम उवरिम गेविज्ज विमाण पत्थडे, मज्झिम हेट्ठिम गेविज्ज विमाण-पत्थडे, मज्झिम-मज्झिम गेविज्ज विमाण पत्थडे, मज्झिम उवरिम गेविज्ज-विमाण पत्थडे, उवरिम हेट्ठिम-गेविज्ज विमाण पत्थडे, उवरिम मज्झिम गेविज्ज विमाण पत्थडे, उवरिम उवरिम-गेविज्ज विमाण-पत्थडे ।

ग्रैवेयक विमान के प्रस्तट (पटल) नौ कहे गये ह । जैसे—

१ अधस्तन-त्रिक का अधस्तन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट ।
२ अधस्तन त्रिक का मध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट ।
३ अधस्तन त्रिक का उपरितन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट ।
४ मध्यम त्रिक का अधस्तन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट ।
५ मध्यम त्रिक का मध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट ।
६ मध्यम त्रिक का उपरितन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट ।
७ उपरितन त्रिक का अधस्तन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट ।
८ उपरितन त्रिक का मध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट ।
९ उपरितन त्रिक का उपरितन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट (३८) ।

३९—एतेसि ण णवण्ह गेविज्ज विमाण-पत्थडाण णव णामधिज्जा पण्णत्ता, त जहा—

संग्रहणी-गाथा

भद्दे सुभद्दे सुजाते, सोमणसे पियदरिसणे ।
सुदसणे अमोहे य, सुप्पबुद्धे जसोधरे ॥१॥

इन ग्रैवेयक विमानो के नवो प्रस्तटो के नौ नाम कहे गये हैं । जसे—

१ भद्र, २ सुभद्र, ३ सुजात, ४ सौमनस, ५ प्रियदर्शन, ६ सुदर्शन, ७ अमोह, ८ सुप्रबुद्ध, ९ यशोधर (३९) ।

आयुपरिणाम-सूत्र

४०—णवविहे आउपरिणामे पण्णत्ते, त जहा—गतिपरिणामे, गतिबंधणपरिणामे, ठिती-परिणामे, ठितीबंधणपरिणामे, उड्ढगारवपरिणामे, अहेगारवपरिणामे, तिरियगारवपरिणामे, दीहगारवपरिणामे, रहस्सगारवपरिणामे ।

आयु परिणाम नौ प्रकार का कहा गया है । जसे—

१ गति परिणाम—जीव को देवादि नियत गति प्राप्त कराने वाला आयु का स्वभाव ।

२ गतिबन्धन परिणाम—प्रतिनियत गति नामकर्म का बन्ध कराने वाला आयु का स्वभाव। जैसे—नारकायु के स्वभाव से जीव मनुष्य या तिर्यंच गतिनाम कर्म का बन्ध करता है, देव या नरक गतिनाम कर्म का नहीं।
३ स्थिति परिणाम—भव सम्बन्धी अन्तमुहूर्त से लेकर तेतीस सागरोपम तक की स्थिति का यथायोग्य बन्ध कराने वाला परिणाम।
४ स्थितिबन्धन परिणाम—पूर्व भव की आयु के परिणाम से अगले भव की नियत आयु स्थिति का बन्ध कराने वाला परिणाम जैसे—तिर्यगायु के स्वभाव से देवायु का उत्कृष्ट भी बन्ध अठारह सागरोपम होगा, इससे अधिक नहीं।
५ ऊर्ध्वगौरव परिणाम—जीव का ऊर्ध्व दिशा मे गमन कराने वाला परिणाम।
६ अधोगौरव परिणाम—जीव का अधो दिशा मे गमन कराने वाला परिणाम।
७ तिर्यग्गौरव परिणाम—जीव का तिर्यग् दिशा मे गमन कराने वाला परिणाम।
८ दीर्घगौरव परिणाम—जीव का लोक के अन्त तक गमन कराने वाला परिणाम।
९ ह्रस्वगौरव परिणाम—जीव का अल्प गमन कराने वाला परिणाम (४०)।

प्रतिमा सूत्र

४१—णवणवमिया णं भिक्खुपडिमा एगासीतीए रातिंदिएहिं चउहि य पंचुत्तरेहिं भिक्खा-सतेहिं अहासुत्तं (अहाअत्थं अहातच्चं अहामग्गं अहाकप्पं सम्मं काएण फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया) आराहिया यावि भवति।

नव-नवमिका भिक्षुप्रतिमा ८१ दिन रात तथा ४०५ भिक्षादत्तियो के द्वारा यथासूत्र, यथा-अर्थ, यथातत्त्व, यथामार्ग, यथाकल्प, तथा सम्यक् प्रकार काय से आचरित, पालित, शोधित, पूरित, कीर्तित और आराधित की जाती है (४१)।

प्रायश्चित्त सूत्र

४२—णवविधे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—आलोयणारिहे (पडिक्कमणारिहे, तदुभयारिहे, विवेगारिहे, विउस्सग्गारिहे, तवारिहे, छेयारिहे), मूलारिहे, अणवट्टप्पारिहे।

प्रायश्चित्त नौ प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ आलोचना के योग्य, २ प्रतिक्रमण के योग्य,
३ तदुभय—आलोचना और प्रतिक्रमण दोनो के योग्य,
४ विवेक के योग्य, ५ व्युत्सर्ग के योग्य,
६ तप के योग्य, ७ छेद के योग्य,
८ मूल के योग्य, ९ अनवस्थाप्य के योग्य (४२)।

कूट-सूत्र

४३—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं भरहे दीहवेतड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी गाथा

सिद्धे भरहे खंडग, माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा ।
भरहे वेसमणे या, भरहे कूडाण णामाइं ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में, भरत क्षेत्र में दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर नौ कूट कहे गये हैं।

१ सिद्धायतन कूट, २ भरत कूट, ३ खण्डकप्रपात गुफा कूट, ४ माणिभद्र कूट, ५ वैताढ्य कूट, ६ पूर्णभद्र कूट, ७ तमिस्रगुफा कूट, ८ भरत कूट, ९ वैश्रमण कूट (४३)।

४४—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं णिसहे वासहरपव्वते णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

सिद्धे णिसहे हरिवस, विदेह हरि धिति अ सीतोया ।
अवरविदेहे रुयगे, णिसहे कूडाण णामाणि ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में निषध वर्षधर पर्वत के ऊपर नौ कूट कहे गये हैं। जैसे—

१ सिद्धायतन कूट, २ निषध कूट, ३, हरिवर्ष कूट, ४ पूर्वविदेह कूट, ५ हरि कूट, ६ धृति कूट, ७ सीतोदा कूट, ८ अपरविदेह कूट ९ रुचक कूट (४४)।

४५—जंबुद्दीवे दीवे मंदरपव्वते णंदणवणे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

णंदणे मंदरे चेव, णिसहे हेमवते रयय रयए य ।
सागरचित्ते वइरे, बलकूडे चेव बोद्धव्वे ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के नन्दन वन में नौ कूट कहे गये हैं। जैसे—

१ नन्दन कूट, २ मन्दर कूट, ३ निषध कूट, ४ हैमवत कूट, ५ रजत कूट, ६ रुचक कूट, ७ सागरचित्र कूट, ८ वज्र कूट, ९ बल कूट (४५)।

४६—जंबुद्दीवे दीवे मालवंतवक्खारपव्वते णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

सिद्धे य मालवंते, उत्तरकुरु कच्छ सागरे रयते ।
सीता य पुण्णणामे, हरिस्सहकूडे य बोद्धव्वे ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के [उत्तर में उत्तरकुरु के पश्चिम पार्श्व में] माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत के ऊपर नौ कूट कहे गये हैं। जैसे—

१ सिद्धायतन कूट, २ माल्यवान् कूट, ३ उत्तर कुरु कूट, ४ कच्छ कूट ५ सागर कूट, ६ रजत कूट, ७ सीता कूट, ८ पूर्णभद्र कूट, ९ हरिस्सह कूट (४६)।

४७—जंबुद्दीवे दीवे कच्छे दीहवेयड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

सिद्धे कच्छे खंडग, माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा ।
कच्छे वेसमण या, कच्छे कूडाण णामाइं ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में कच्छवर्ती दीर्घ वैताढ्य के ऊपर नौ कूट कहे गये हैं। जैसे—

१ सिद्धायतन कूट, २ कच्छ कूट, ३ खण्डकप्रपातगुहा कूट, ४ माणिभद्र कूट, ५ वताढ्य कूट, ६ पूर्णभद्र कूट, ७ तमिस्रगुफा कूट, ८ कच्छ कूट, ९ वैश्रमण कूट (४७)।

४८—जंबुद्दीवे दीवे सुकच्छे दीहवेयड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
सिद्धे सुकच्छे खंडग, माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा।
सुकच्छे वेसमणे या, सुकच्छे कूडाण णामाइं ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे सुकच्छवर्ती दीर्घ वैताढ्य पर्वत के ऊपर नौ कूट कहे गये है। जैसे—

१ सिद्धायतन कूट, २ सुकच्छ कूट, ३ खण्डकप्रपातगुफा कूट, ४ माणिभद्र कूट, ५ वैताढ्य कूट, ६ पूर्णभद्र कूट, ७ तमिस्रगुफाकूट, ८ सुकच्छ कूट, ९ वैश्रमण कूट (४८)।

४९—एवं जाव पोक्खलावइम्मि दीहवेयड्ढे।

इसी प्रकार महाकच्छ, कच्छकावती, आवर्त, मंगलावर्त, पुष्कल और पुष्कलावती विजय मे विद्यमान दीर्घ वताढ्यो के ऊपर नौ नौ कूट जानना चाहिए (४९)।

५०—एवं वच्छे दीहवेयड्ढे।

इसी प्रकार वत्स विजय मे विद्यमान दीर्घ वताढ्य पर नौ कूट कहे गये है (५०)।

५१—एवं जाव मंगलावतिम्मि दीहवेयड्ढे।

इसी प्रकार सुवत्स, महावत्स, वत्सकावती, रम्य, रम्यक, रमणीय और मगलावती विजयो मे विद्यमान दीर्घ वताढ्यो के ऊपर नौ नौ कूट जानना चाहिए (५१)।

५२—जंबुद्दीवे दीवे विज्जुप्पभे वक्खारपव्वते णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
सिद्धे अ विज्जुणामे, देवकुरा पम्ह कणग सोवत्थी।
सीओदा य सयजले, हरिकूडे चेव बोद्धव्वे ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत के ऊपर नौ कूट कहे गये है। जसे—

१ सिद्धायतनकूट, २ विद्युत्प्रभकूट, ३ देवकुराकूट, ४ पक्ष्मकूट, ५ कनककूट, ६ स्वस्तिककूट, ७ सीतोदाकूट, ८ शतज्वलकूट, ९ हरिकूट (५२)।

५३—जंबुद्दीवे दीवे पम्हे दीहवेयड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—
सिद्धे पम्हे खंडग, माणी वेयड्ढ (पुण्ण तिमिसगुहा।
पम्हे वेसमणे या, पम्हे कूडाण णामाइं) ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के पक्ष्मवर्ती दीर्घ वैताढ्य के ऊपर नौ कूट कहे गये हैं। जसे—

१ सिद्धायतनकूट, २ पक्ष्मकूट, ३ खण्डकप्रतापगुफाकूट, ४ माणिभद्रकूट, ५ वैताढ्यकूट, ६ पूर्णभद्रकूट, ७ तमिस्रगुफाकूट, ८ पक्ष्मकूट, ९ वैश्रमणकूट (५३)।

५४—एव चेव जाव सलिलावतिम्मि दीहवेयड्ढे।

इसी प्रकार सुपक्ष्म, महापक्ष्म, पक्ष्मकावती, शख, नलिन, कुमुद और सलिलावती मे विद्यमान दीर्घ वैताढ्य के ऊपर नौ-नौ कूट जानना चाहिए (५४)।

५५—एव वप्पे दीहवेयड्ढे।

इसी प्रकार वप्र विजय मे विद्यमान दीर्घ वैताढ्य के ऊपर नौ कूट कहे गये है (५५)।

५६—एव जाव गधिलावतिम्मि दोहवेयड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, त जहा—

सिद्धे गधिल खडग, माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा।
गधिलावति वेसमणे, कूडाण होंति णामाइ ॥१॥

एव—सव्वेसु दोहवेयड्ढेसु दो कूडा सरिसणामगा, सेसा ते चेव।

इसी प्रकार सुवप्र, महावप्र, वप्रकावती, वल्गु, सुवल्गु, गन्धिल और गन्धिलावती में विद्यमान दीघ वैताढय के ऊपर नौ-नौ कूट कहे गये हैं। जैसे—

१ सिद्धायतन कूट २ गन्धिलावती कूट, ३ खण्डप्रपातगुफा कूट, ४ माणिभद्र कूट, ५ वैताढय कूट, ६ पूणभद्र कूट, ७ तमिस्रगुफा कूट, ८ गन्धिलावती कूट ९ वश्रमण कूट (५६)।

इसी प्रकार सभी दीघवैताढ्यो के ऊपर दो दो (दूसरा और आठवा) कूट एक ही नाम के (उसी विजय के नाम के) हैं और शेष सात कूट वे ही हैं।

५७—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण णेलवते वासहरपव्वते णव कूडा पण्णत्ता, त जहा—

सिद्धे णेलवंते विदेहे, सीता कित्ती य णारिकता य।
अवरविदेहे रम्मगकूडे, उवदसणे चेव ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पर्वत के ऊपर उत्तर मे नीलवान् वषधर पवत के ऊपर नौ कूट कहे गये हैं। जैसे—

१ सिद्धायतन कूट, २ नीलवान् कूट, ३ पूवविदेह कूट, ४ सीता कूट, ५ कीर्ति कूट ६ नारिकान्ता कूट, ७ अपर विदेह कूट, ८ रम्यक कूट, ९ उपदर्शनकूट (५७)।

५८—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण एरवते दीहवेतड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, त जहा—

सिद्धेरवए खडग, माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा।
एरवते वेसमणे, एरवते कूडणामाइ ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पवत के उत्तर मे ऐरवत क्षेत्र के दीघवताढ्य के ऊपर नौ कूट कहे गये हैं। जैसे—

१ सिद्धायतन कूट, २ ऐरवत कूट, ३ खण्डकप्रपातगुफा कूट, ४ माणिभद्र कूट, ५ वताढ्य कूट ६ पूणभद्र कूट, ७ तमिस्रगुफा कूट ८ ऐरवत कूट ९ वश्रमण कूट (५८)।

पाश्व-उच्चत्व-सूत्र

५९—पासे ण अरहा पुरिसादाणिए वज्जरिसहणारायसघयणे समचउरस सठाण सठिते णव रयणीओ उड्ढ उच्चत्तेण हुत्था ।

पुरुषादानीय (पुरुष प्रिय) वज्रपभनाराचसहनन और समचतुरस्रसस्थान वाले पाश्व अर्हत नौ हाथ ऊचे थे (५९) ।

तीथकर नामनिवतन-सूत्र

६०—समणस्स ण भगवतो महावीरस्स तित्थसि णवहि जीवेहि तित्थगरणामगोत्ते कम्मे णिव्वत्तिते, त जहा—सेणिएण, सुपासेण, उदाइणा, पोट्टिलेण अणगारेण, दढाउणा, सखेण, सतएण, सुलसाए सावियाए, रेवतीए ।

श्रमण भगवान महावीर के तीथ मे नौ जीवो ने तीर्थंकर नाम गोत्र कम अर्जित किया था जैसे—

१ श्रेणिक, २ सुपाश्व, ३ उदायी ४ पोटि्टल अनगार, ५ दढायु, ६ श्रावक शख, ७ श्रावक शतक, ८ श्राविका सुलसा, ९ श्राविका रेवती (६०) ।

भावितीथकर सूत्र

६१—एस ण अज्जो ! कण्हे वासुदेवे रामे बलदेवे, उदए पेढालपुत्ते, पुट्टिले सतए गाहावती, दारुए णियठे, सच्चई णियठीपुत्ते, सावियबुद्धे अव [म्म ?] डे परिव्वायए, अज्जावि ण सुपासा पासावच्चिज्जा । आगमेस्साए उस्सप्पिणीए चाउज्जाम धम्म पण्णवइत्ता सिज्झिहिति (बुज्झिहिति मुच्चिहिति परिणिव्वाइहिति सव्वदुक्खाण) अत काहिति ।

हे आर्यो !

१ वासुदेव कृष्ण, २ बलदेव राम, ३ उदक पेडाल पुत्र, ४ पोटि्टल, ५ गृहपति शतक ६ निग्रन्थ दारक, ७ निग्रन्थीपुत्र सत्यकी, ८ श्राविका के द्वारा प्रतिबुद्ध अम्मड परिव्राजक, ९ पाश्वनाथ की परम्परा मे दीक्षित आर्या सुपार्श्वा, ये नौ आगामी उत्सर्पिणी मे चातुर्याम धम की प्ररूपणा कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिवृ त्त और सब दु खो से रहित होंगे (६१) ।

महापद्म तीथकर सूत्र

६२—एस ण अज्जो ! सेणिए राया भिभिसारे कालमासे काल किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए सोमतए णरए चउरासीतिवाससहस्सट्ठितीयसि णिरयसि णेरइयत्ताए उववज्जिहिति । से ण तत्थ णेरइए भविस्सति—काले कालोभासे (गभीरलोमहरिसे भीमे उत्तासणए) परमकिण्हे वण्णेण । से ण तत्थ वेयण वेदिहिती उज्जल (तिउल पगाढ कडुय कक्कस चड दुक्ख दुग्ग दिव्व) दुरहियास ।

से ण ततो णरयाओ उव्वट्टे त्ता आगमेसाए उस्सप्पिणीए इहेव जबुद्दीवे दीवे भरहे वासे वेयड्ढगिरिपायमूले पु डेसु जणवएसु सतदुवारे णगरे समुइस्स कुलकरस्स भद्दाए भारियाए कुच्छिसि पुमत्ताए पच्चायाहिति ।

तए ण सा भद्दा भारिया णवण्ह मासाण बहुपडिपुण्णाण अद्धट्ठमाण य राइदियाण वीतिक्कताण सुकुमालपाणिपाय अहीण-पडिपुण्ण पचिंदिय-सरीर लक्खण-वजण-(गुणोववेय माणुम्माण प्पमाण-

पडिपुण्ण-सुजाय सव्वंग-सुंदरंग ससिसोमाकारं कंतं पियदंसणं) सुरूवं दारगं पयाहिती। जं रयणिं च णं से दारए पयाहिती, तं रयणिं च णं सतदुवारे णगरे सब्भतरबाहिरए भारग्गसो य कुंभग्गसो य पउमवासे य रयणवासे य वासे वासिहिति।

तए णं तस्स दारयस्स अम्मापियरो एक्कारसमे दिवसे वीइक्कंते (णिवत्ते असुइजायकम्मकरणे संपत्ते) बारसाहे अयमेयारूवं गोण्णं गुणणिप्फण्णं णामधिज्जं काहिंति, जम्हा णं अम्हमिमंसि दारगंसि जातंसि समाणंसि सयदुवारे णगरे सब्भितरबाहिरए भारग्गसो य कुंभग्गसो य पउमवासे य रयणवासे य वासे वुट्ठे तं होउ णमम्हमिमस्स दारगस्स णामधिज्जं महापउमे महापउमे। तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो णामधिज्जं काहिंति महापउमेत्ति।

तए णं महापउमं दारगं अम्मापितरो सातिरेगं अट्ठवासजातगं जाणित्ता महता महता रायाभिसेएणं अभिसिंचिहिंति। से णं तत्थ राया भविस्सति महता हिमवंत महंत मलय मंदर-महिंदसारे रायवण्णओ जाव रज्जं पसासेमाणे विहरिस्सति।

तए णं तस्स महापउमस्स रण्णो अण्णदा कयाइ दो देवा महिड्ढिया (महज्जुइया महाणुभागा महायसा महाबला) महासोक्खा सेणाकम्मं काहिंति, तं जहा—पुण्णभद्दे य माणिभद्दे य।

तए णं सतदुवारे णगरे बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय कोडुंबिय इब्भ सेट्ठि सेणावति सत्थवाह प्पभितयो अण्णमण्णं सद्दावेहिंति, एवं वइस्संति—जम्हा णं देवाणुप्पिया! अम्हं महापउमस्स रण्णो दो देवा महड्ढिया (महज्जुइया महाणुभागा महायसा महाबला) महासोक्खा सेणाकम्मं करेंति, तं जहा—पुण्णभद्दे य माणिभद्दे य। तं होउ णमम्हं देवाणुप्पिया! महापउमस्स रण्णो दोच्चेवि णामधेज्जे देवसेणे देवसेणे। तते णं तस्स महापउमस्स रण्णो दोच्चेवि णामधेज्जे भविस्सइ देवसेणेति।

तए णं तस्स देवसेणस्स रण्णो अण्णया कयाई सेयं संखतल विमल सण्णिकासे चउदंते हत्थिरयणे समुप्पज्जिहिति। तए णं से देवसेणे राया तं सेयं संखतल विमल सण्णिकासं चउदंतं हत्थिरयणं दुरूढे समाणे सतदुवारं णगरं मज्झं-मज्झेणं अभिक्खणं अभिक्खणं अतिज्जाहिति य णिज्जाहिति य।

तए णं सतदुवारे णगरे बहवे राईसर तलवर-(माडंबिय कोडुंबिय इब्भ सेट्ठि सेणावति-सत्थवाह-प्पभितयो) अण्णमण्णं सद्दावेहिंति, एवं वइस्संति—जम्हा णं देवाणुप्पिया! अम्हं देवसेणस्स रण्णो सेते संखतल विमल सण्णिकासे चउदंते हत्थिरयणे समुप्पण्णे, तं होउ णमम्हं देवाणुप्पिया! देवसेणस्स तच्चेवि णामधेज्जे विमलवाहणे [विमलवाहणे ?]। तए णं तस्स देवसेणस्स रण्णो तच्चेवि णामधेज्जे भविस्सति विमलवाहणेति।

तए णं से विमलवाहणे राया तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता अम्मापितीहिं देवत्तं गतेहिं गुरुमहत्तरएहिं अब्भणुण्णाते समाणे, उदुंमि सरए, संबुद्धे अणुत्तरे मोक्खमग्गे पुणरवि लोगंतिएहिं जीयकप्पिएहिं देवेहिं, ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं उरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धण्णाहिं मंगलाहिं सस्सिरिआहिं वग्गूहिं अभिणंदिज्जमाणे अभिथुव्वमाणे य बहिया सुभूमिभागे उज्जाणे एगं देवदूसमादाय मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयाहिति। से णं भगवं जं चेव दिवसं मुंडे भवित्ता (अगाराओ अणगारियं) पव्वयाहिति तं चेव दिवसं सयमेयमेतारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हिहिति—जे केइ उवसग्गा उप्पज्जिहिंति, तं जहा—दिव्वा वा माणुसा वा तिरिक्ख-जोणिया वा ते सव्वे सम्मं सहिस्सइ खमिस्सइ तितिक्खिस्सइ अहियासिस्सइ।

तए ण से भगव अणगारे भविस्सति—इरियासमिते भासासमिते एव जहा वद्धमाणसामी त चेव णिरवसेस जाव अव्वावारविउसजोगजुत्ते ।

तस्स ण भगवतस्स एतेण विहारेण विहरमाणस्स दुवालसहि सवच्छरेहि वीतिवकतेहि तेरसहि य पक्खेहि तेरसमस्स ण सवच्छरस्स अतरा वट्टमाणस्स अणुत्तरेण णाणेण जहा भावणाते केवलवरणाण दसणे समुप्पज्जिहिति । जिणे भविस्सति केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी सणेरइय जाव पच महव्वयाइ समावणाइ छच्च जीवणिकाए धम्म देसेमाणे विहरिस्सति ।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाण णिग्गथाण एगे आरभठाणे पण्णत्ते । एवामेव महापउमेवि अरहा समणाण णिग्गथाण एग आरभठाण पण्णवेहिति ।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाण णिग्गथाण दुविहे बधणे पण्णत्ते, त जहा—पेज्जबधणे य, दोसबधणे य । एवामेव महापउमेवि अरहा समणाण णिग्गथाण दुविह बधण पण्णवेहिति, त जहा—पेज्जबधण च, दोसबधण च ।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाण णिग्गथाण तओ दडा पण्णत्ता, त जहा—मणदडे, वयदडे, कायदडे । एवामेव महापउमेवि अरहा समणाण णिग्गथाण तओ दडे पण्णवेहिति, त जहा—मणोदड, वयदड, कायदड ।

से जहाणामए (अज्जो ! मए समणाण णिग्गथाण चत्तारि कसाया पण्णत्ता, त जहा—कोहकसाए, माणकसाए मायाकसाए, लोभकसाए । एवामेव महापउमेवि अरहा समणाण णिग्गथाण चत्तारि कसाए पण्णवेहिति त जहा—कोहकसाय, माणकसाय, मायाकसाय, लोभकसाय ।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाण णिग्गथाण पच कामगुणा पण्णत्ता, त जहा—सद्दे, रूवे, गधे, रसे, फासे । एवामेव महापउमेवि अरहा समणाण णिग्गथाण पच कामगुणे पण्णवेहिति, त जहा—सद्द, रूव, गध, रस, फास ।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाण णिग्गथाण छज्जीवणिकाया पण्णत्ता, त जहा—पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, तसकाइया । एवामेव महापउमेवि अरहा समणाण णिग्गथाण छज्जीवणिकाए पण्णवेहिति, त जहा—पुढविकाइए, आउकाइए, तेउकाइए, वाउकाइए, वणस्सइकाइ), तसकाइए ।

से जहाणामए (अज्जो ! मए समणाण णिग्गथाण) सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता, त जहा—(इहलोगभए, परलोगभए, आदाणभए, अकम्हाभए वेयणभए मरणभए, असिलोगभए) । एवामेव महापउमेवि अरहा समणाण णिग्गथाण सत्त भयट्ठाण पण्णवेहिति (त जहा—इहलोगभय परलोगभय आदाणभय अकम्हाभय वेयणभय मरणभय असिलोगभय) ।

एव अट्ठ मयट्ठाणे, णव बभचेरगुत्तीओ, दसविधे समणधम्मे, एव जाव तेत्तीसमासातणाउत्ति ।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाण णिग्गथाण णग्गभावे मुडभावे अण्हाणए अदतवणए अच्छत्तए अणुवाहणए भूमिसेज्जा फलगसेज्जा कट्ठसेज्जा केसलोए बभचेरवासे परघरपवेसे लद्धावलद्धवित्तीओ पण्णत्ताओ । एवामेव महापउमेवि अरहा समणाण णिग्गथाण णग्गभाव (मुडभाव अण्हाणय अदतवणय अच्छत्तय अणुवाहणय भूमिसेज्ज फलगसेज्ज कट्ठसेज्ज केसलोय बभचेरवास परघरपवेस) लद्धावलद्धवित्ती पण्णवेहिति ।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाण णिग्गथाण आधाकम्मिएति वा उद्देसिएति वा मीसज्जाएति वा अज्झोयरएति वा पूतिए कीते पामिच्चे अच्छेज्जे अणिसट्ठे अभिहडेति वा कतारभत्तेति वा दुब्भिक्खभत्तेति वा गिलाणभत्तेति वा वद्दलियाभत्तेति वा पाहुणभत्तेति वा मूलभोयणति वा कदभोयणेति वा फलभोयणेति वा बीयभोयणेति वा हरियभोयणेति वा पडिसिद्धे । एवामेव महापउमेवि अरहा समणाण णिग्गथाण आधाकम्मिय वा (उद्देसिय वा मीसज्जाय वा अज्झोयरय वा पूतिय कीत पामिच्च अच्छेज्ज अणिसट्ठ अभिहड वा कतारभत्त वा दुब्भिक्खभत्त वा गिलाणभत्त वा वद्दलियाभत्त वा पाहुणभत्त वा मूलभोयण वा कदभोयण वा फलभोयण वा बीयभोयण वा) हरितभोयण वा पडिसेहिस्सति ।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाण णिग्गथाण पचमहव्वतिए सपडिक्कमणे अचेलए धम्मे पण्णत्ते । एवामेव महापउमेवि अरहा समणाण णिग्गथाण पचमहव्वतिय (सपडिक्कमण) अचेलग धम्म पण्णवेहिति ।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणोवासगाण पचाणुव्वतिए सत्तसिक्खावतिए—दुवालसविधे सावगधम्मे पण्णत्ते । एवामेव महापउमेवि अरहा समणोवासगाण पचाणुव्वतिय (सत्तसिक्खावतिय—दुवालसविध) सावगधम्म पण्णवेस्सति ।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाण णिग्गथाण सेज्जातरपिडेति वा रायपिडेति वा पडिसिद्धे । एवामेव महापउमेवि अरहा समणाण णिग्गथाण सेज्जातरपिड वा रायपिड वा पडिसेहिस्सति ।

से जहाणामए अज्जो ! मम णव गणा एगारस गणधरा । एवामेव महापउमस्सवि अरहतो णव गणा एगारस गणधरा भविस्सति ।

से जहाणामए अज्जो ! अह तीस वासाइ अगारवासमज्झे वसित्ता मु डे भवित्ता (अगाराम्रो अणगारिय) पव्वइए, दुवालस सवच्छराइ तेरस पक्खा छउमत्थपरियाग पाउणित्ता तेरसहि पक्खेहि ऊणगाइ तीस वासाइ केवलिपरियाग पाउणित्ता, बायालीस वासाइ सामण्णपरियाग पाउणित्ता, बावत्तरिवासाइ सव्वाउय पालइत्ता सिज्झिस्स (बुज्झिस्स मुच्चिस्स परिणिव्वाइस्स) सव्वदुक्खाणमत करेस्स । एवामेव महापउमेवि अरहा तीस वासाइ अगारवासमज्झे वसित्ता (मु डे भवित्ता अगाराम्रो अणगारिय) पव्वाहिती, दुवालस सवच्छराइ (तेरसपक्खा छउमत्थपरियाग पाउणित्ता, तेरसहि पक्खेहि ऊणगाइ तीस वासाइ केवलिपरियाग पाउणित्ता, बायालीस वासाइ सामण्णपरियाग पाउणित्ता), बावत्तरिवासाइ सव्वाउय पालइत्ता सिज्झिहिती (बुज्झिहिती मुच्चिहिती परिणिव्वाइहिती), सव्वदुक्खाणमत काहिती—

सग्रहणी गाथा

जस्सील समायारो, अरहा तित्थकरो महावीरो ।
तस्सील समायारो, होति उ अरहा महापउमो ॥१॥

आर्यो ! श्रेणिक राजा भिम्भसार (बिम्बसार) काल मास मे काल कर इसी रत्नप्रभा पृथ्वी के सीमन्तक नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति वाले नारकीय भाग मे नारक रूप से उत्पन्न होगा (६२) ।

उसका वण काला, काली आभावाला, गम्भीर लोमहर्षक, भयकर, त्रासजनक, और परम कृष्ण होगा। वह वहा ज्वलन्त मन वचन और काय—तीनो को तोलने वाली-जिसमे तीनो योग तन्मय हो जाएगे ऐसी प्रगाढ, कटुक, कर्कश, प्रचण्ड, दु खकर दुग के समान अलघ्य, ज्वलन्त, असह्य वेदना की वेदन करेगा।

वह उस नरक से निकल कर आगामी उत्सर्पिणी मे इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, भारतवर्ष मे, वताढयगिरि के पादमूल मे 'पुण्ड्र' जनपद के शतद्वार नगर मे सम्मति कुलकर की भद्रा नामक भार्या की कुक्षि मे पुरुष रूप से उत्पन्न होगा।

वह भद्रा भार्या परिपूण नौ मास तथा साढे सात दिन रात बीत जाने पर सुकुमार हाथ-पर वाले, अहीन-परिपूण पचेन्द्रिय शरीर वाले लक्षण, व्यजन और गुणो से युक्त अवयव वाले, मान, उन्मान, प्रमाण आदि से सर्वांग सुन्दर शरीर के धारक चन्द्र के समान सौम्य आकार कान्त प्रिय-दशन और सुरूप पुत्र को उत्पन्न करेगी।

जिस रात मे वह बालक जनगी, उस रात म सारे शतद्वार नगर मे भीतर और बाहर भार और कुम्भ प्रमाण वाले पद्म और रत्नो की वषा होगी।

उस बालक के माता-पिता ग्यारह दिन व्यतीत हो जाने पर अशुचिकम के निवत्त हो जाने पर, बारहवे दिन उसका यथाथ गुणनिष्पन्न नाम सस्कार करेंगे। यत हमारे इस बालक के उत्पन्न होने पर समस्त शतद्वार नगर के भीतर-बाहिर भार और कुम्भ प्रमाण वाले पद्म और रत्नो की वर्षा हुई है, अत हमारे बालक का नाम महापद्म होना चाहिए। इस प्रकार विचार-विमश कर उस बालक के माता-पिता उसका नाम 'महापद्म' निधारित करेंगे।

तब महापद्म को कुछ अधिक आठ वष का हुआ जानकर उसके माता-पिता उसे महान् राज्याभिषेक के द्वारा अभिषिक्त करेंगे। वह वहा महान हिमवान्, महान मलय मन्दर, और महेन्द्र पवत के समान सर्वोच्च राज्यधम का पालन करता हुआ, यावत् राज्य-शासन करता हुआ विचरेगा।

तब उस महापद्म राजा को अन्य किसी समय महर्धिक, महाद्युति-सम्पन्न, महानुभाग, महायशस्वी, महाबली, महान् सौख्य वाले पूणभद्र और माणिभद्र नाम के धारक दो देव सैनिक कम-सेना सबधी काय करेंगे।

तब उस शतद्वार नगर मे अनेक राजा, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, साथवाह आदि एक दूसरे का इस प्रकार सम्बोधित करेंगे और इस प्रकार से कहेंगे—देवानु-प्रियो! महर्धिक, महाद्युतिसम्पन्न, महानुभाग, महायशस्वी, महाबली, और महान् सौख्य वाले पूणभद्र और माणिभद्र नामक दो देव यत राजा महापद्म का सनिककम कर रहे हैं, अत हमारे महापद्म राजा का दूसरा नाम 'देवसेन होना चाहिए। तब से उस महापद्म राजा का दूसरा नाम देवसेन' होगा।

तब उस देवसेन राजा के अन्य किसी समय निमल शखतल के समान श्वेत, चार दात वाला हस्तिरत्न उत्पन्न होगा। तब वह देवसेन राजा निमल शखतल के समान श्वेत चार दात वाले हस्ति-रत्न पर आरूढ होकर शतद्वार नगर के बीचोबीच होते हुए बार-बार जायगा और आयगा।

तब उस शतद्वार नगर के अनेक राजा, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, साथवाह आदि परस्पर एक दूसरे को सम्बोधित करेंगे और इस प्रकार से कहेंगे—देवानु-

प्रियो ! हमारे राजा देवसेन के निर्मल शंखतल के समान श्वेत, चार दांत वाला हस्तिरत्न है, अतः देवानुप्रियो ! हमारे राजा का तीसरा नाम 'विमलवाहन' होना चाहिए। तब से उस देवसेन राजा का तीसरा नाम 'विमलवाहन' होगा।

तब वह विमलवाहन राजा तीस वर्ष तक गृहवास में रहकर, माता-पिता के देवगति को प्राप्त होने पर, गुरुजनों और महत्तर पुरुषों के द्वारा अनुज्ञा लेकर शरद् ऋतु में जीतकल्पिक, लोकान्तिक देवों के द्वारा अनुत्तर मोक्षमार्ग के लिए सबुद्ध होंगे। तब वे इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मन प्रिय, उदार कल्याण, शिव, धन्य, मांगलिक श्रीकार-सहित वाणी से अभिनन्दित और संस्तुत होते हुए नगर के बाहर 'सुभूमिभाग' नाम के उद्यान में एक देवदूष्य लेकर मुण्डित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होंगे।

वे भगवान् जिस दिन मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होंगे, उसी दिन वे स्वयं ही इस प्रकार का अभिग्रह ग्रहण करेंगे—

देवकृत, मनुष्यकृत या तिर्यग्योनिक जिस किसी प्रकार के भी उपसर्ग उत्पन्न होंगे, उन सब को मैं भली भांति से सहन करूंगा, अहीन भाव से दृढता के साथ सहन करूंगा, तितिक्षा करूंगा और अविचल भाव से सहूंगा।

तब वे भगवान् (महापद्म) अनगार ईर्यासमिति से, भाषासमिति से संयुक्त होकर जैसे वर्धमान स्वामी (तपश्चरण में सलग्न हुए थे उन्हीं के समान) सर्व अनगार धर्म का पालन करते हुए व्यापार-रहित व्युत्सृष्ट योग से युक्त होंगे।

उन भगवान् महापद्म के इस प्रकार के विहार से विचरण करते हुए बारह वर्ष और तेरह पक्ष बीत जाने पर, तेरहवें वर्ष के अन्तराल में वर्तमान होने पर अनुत्तरज्ञान के द्वारा भावना अध्ययन के कथनानुसार केवल वर ज्ञान दर्शन उत्पन्न होंगे। तब वे जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी होकर नारक आदि सब लोकों के पर्यायों को जानेंगे-देखेंगे। वे भावना सहित पांच महाव्रतों की, छह जीव निकायों की और धर्म की देशना करते हुए विहार करेंगे।

आर्यो ! जैसे मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए एक आरम्भ-स्थान का निरूपण किया है, इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए एक आरम्भस्थान का निरूपण करेंगे।

आर्यो ! मैंने जैसे श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए दो प्रकार के बन्धनों का निरूपण किया है, जैसे प्रेयोबन्धन और द्वेषबन्धन। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए दो प्रकार के बन्धन कहेंगे। जैसे—प्रेयोबन्धन और द्वेषबन्धन।

आर्यो ! जैसे मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए तीन प्रकार के दण्डों का निरूपण किया है, जैसे—मनोदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए तीन प्रकार के दण्डों का निरूपण करेंगे। जैसे - मनोदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए जैसे चार कषायों का निरूपण किया है, यथा क्रोध-कषाय, मानकषाय मायाकषाय और लोभकषाय। इसी प्रकार अर्हत महापद्म भी श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए चार प्रकार के कषायों का निरूपण करेंगे। जैसे—क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय और लोभकषाय।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निग्रन्थों के लिए जैसे पाच कामगुणों का निरूपण किया है, जैसे—शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पाच कामगुणों का निरूपण करेंगे। जैसे—शब्द, रूप, गन्ध रस और स्पर्श।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निग्रन्थों के लिए जैसे छह जीवनिकायों का निरूपण किया है, यथा—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण निग्रन्थों के लिए छह जीवनिकायों का निरूपण करेंगे। जैसे—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निग्रन्थों के लिए जसे सात भयस्थानों का निरूपण किया है, जैसे—इहलोकभय, परलोकभय आदानभय अकस्माद् भय वेदनाभय मरणभय और अश्लोकभय। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निग्रन्थों के लिए सात भयस्थानों का निरूपण करेंगे। जैसे—इहलोकभय, परलोकभय, आदानभय, अकस्माद्भय, वेदनाभय, मरणभय और अश्लोकभय।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निग्रन्थों के लिए जैसे आठ मदस्थानों का, नौ ब्रह्मचर्य गुप्तियों का, दशप्रकार के श्रमण धर्मों का यावत् तेतीस आशातनाओं का निरूपण किया है इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निग्रन्थों के लिए आठ मदस्थानों का नौ ब्रह्मचर्यगुप्तियों का दश प्रकार के श्रमण धर्मों का यावत् तेतीस आशातनाओं का निरूपण करेंगे।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निग्रन्थों के लिए जैसे नग्नभाव मुण्डभाव, स्नान त्याग, दन्त-धावन-त्याग छत्र धारण-त्याग उपानह (जूता) त्याग, भूमिशय्या, फलकशय्या, काष्ठशय्या, केशलोच, ब्रह्मचर्यवास और परगृहप्रवेश कर लब्ध अपलब्ध वृत्ति (आदर-अनादरपूर्वक प्राप्त भिक्षा) का निरूपण किया है, इसी प्रकार अर्हत महापद्म भी श्रमण निग्रन्थों के लिए नग्नभाव, मुण्डभाव, स्नान-त्याग भूमिशय्या, फलकशय्या काष्ठशय्या केशलोच ब्रह्मचर्यवास और परगृहप्रवेश कर लब्ध अलब्ध वृत्ति का निरूपण करेंगे।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निग्रन्थों के लिए जैसे आधाकर्मिक, औद्देशिक, मिश्रजात, अध्यवपूरक, पूतिक, क्रीत, प्रामित्य, आछेद्य, अनिसृष्ट, अभ्याहृत, कान्तारभक्त, दुर्भिक्षभक्त, ग्लानभक्त, वादलिकाभक्त, प्राघूर्णिकभक्त मूलभोजन, कन्दभोजन, फलभोजन, बीजभोजन और हरितभोजन का निषेध किया है, उसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निग्रन्थों के लिए आधाकर्मिक, औद्देशिक मिश्रजात अध्यवपूरक, पूतिक, क्रीत, प्रामित्य आछेद्य, अनिसृष्टिक, अभ्याहृत, कान्तारभक्त, दुर्भिक्षभक्त ग्लानभक्त, वादलिकाभक्त, प्राघूर्णिकभक्त, मूलभोजन कन्दभोजन, फलभोजन, बीजभोजन, कन्दभोजन फलभोजन, बीजभोजन और हरितभोजन का निषेध करेंगे।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निग्रन्थों के लिए जसे—प्रतिक्रमण और अचेलतायुक्त पाच महाव्रतरूप धर्म का निरूपण किया है इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निग्रन्थों के लिए प्रतिक्रमण और अचेलतायुक्त पाच महाव्रतरूप धर्म का निरूपण करेंगे।

आर्यो ! मैंने श्रमणोपासकों के लिए जैसे पाच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार के श्रावकधर्म का निरूपण किया है, इसी प्रकार अर्हन् महापद्म भी पाच अणुव्रत और सात शिक्षा-व्रतरूप बारह प्रकार के श्रावकधर्म का निरूपण करेंगे।

आर्यो ! मैंने श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए जैसे शय्यातरपिण्ड और राजपिण्ड का प्रतिषेध किया है, इसी प्रकार अर्हन् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए शय्यातरपिण्ड और राजपिण्ड का प्रतिषेध करेंगे।

आर्यो ! मेरे जैसे नौ गण और ग्यारह गणधर हैं, इसी प्रकार अर्हत महापद्म के भी नौ गण और ग्यारह गणधर होंगे।

आर्यो ! जैसे मैं तीस वर्ष तक अगारवास मे रहकर मुण्डित हो अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित हुआ, बारह वर्ष और तेरह पक्ष तक छद्मस्थ-पर्याय को प्राप्त कर, तेरह पक्षो से कम तीस वर्षों तक केवलि पर्याय पाकर बयालीस वर्ष तक श्रामण्य-पर्याय पालन कर सब आयु बहत्तर वर्ष पालन कर सिद्ध बुद्ध मुक्त और परिनिर्वृत्त होकर सब दुःखों का अन्त करूंगा। इसी प्रकार अर्हन महापद्म भी तीस वर्ष तक अगारवास मे रह कर मुण्डित हो अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित होंगे, बारह वर्ष तेरह पक्ष तक छद्मस्थ-पर्याय को प्राप्त कर तेरह पक्षो से कम तीस वर्षों तक केवलि पर्याय पाकर बयालीस वर्ष तक श्रामण्य पर्याय पालन कर बहत्तर वर्ष की सम्पूर्ण आयु भोग कर सिद्ध बुद्ध मुक्त और परिनिर्वृत्त होकर सब दुःखो का अन्त करेंगे।

जिस प्रकार के शील-समाचार वाले अर्हत् तीर्थंकर महावीर हुए है उसी प्रकार के शील-समाचार वाले अर्हत् महापद्म होंगे।

नक्षत्र-सूत्र

६३—णव णक्खत्ता चंदस्स पच्छंभागा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी गाथा

अभिई समणो धणिट्ठा, रेवति अस्सिणि मग्गसिर पूसो।
हत्थो चित्ता य तहा, पच्छंभागा णव हवंति ॥१॥

नौ नक्षत्र चन्द्रमा के पृष्ठ भाग के होते हैं, अर्थात् चन्द्रमा उनका पृष्ठ भाग से भोग करता है। जैसे—

१ अभिजित २ श्रवण ३ धनिष्ठा, ४ रेवती ५ अश्विनी, ६ मृगशिर ७ पुष्य ८ हस्त, ९ चित्रा।

विमान-सूत्र

६४—आणत पाणत आरणच्चुतेसु कप्पेसु विमाणा णव जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेण पण्णत्ता।

आनत प्राणत आरण और अच्युत कल्पो मे विमान नौ योजन ऊंचे कहे गये हैं (६४)।

कुलकर-सूत्र

६५—विमलवाहणे णं कुलकरे णव धणुसताइं उड्ढं उच्चत्तेण हुत्था।

विमलवाहन कुलकर नौ सौ धनुष ऊंचे थे (६५)।

तीर्थंकर-सूत्र

६६—उसभेण अरहा कोसलिएणं इमीसे ओसप्पिणीए णवहिं सागरोवमकोडाकोडीहिं वीइक्कंताहिं तित्थे पवत्तिते।

कौशलिक (कोशला नगरी मे उत्पन्न) अर्हन् ऋषभ ने इस अवसर्पिणी का नौ कोडाकोडी सागरोपम काल व्यतीत होने पर तीर्थ का प्रवर्तन किया (६६)।

[अन्त] द्वीप सूत्र

६७—घणदंत लट्ठदंत गूढदंत सुद्धदंतदीवा ण दीवा णव णव जोयणसताइं आयामविक्खंभेण पण्णत्ता।

घनदन्त, लष्टदन्त गूढदन्त और शुद्धदन्त, ये द्वीप (अन्तर्द्वीप) नौ नौ सौ योजन लम्बे-चौडे कहे गये हैं। (६७)

शुक्रग्रह वीथी सूत्र

६८—सुक्कस्स ण महागहस्स णव वीहीओ पण्णत्ताओ, त जहा—हयवीही, गयवीही, णागवीही, वसहवीही गोवीही, उरगवीही, अयवीही, मियवीही, वेसाणरवीही।

शुक्र महाग्रह की नौ वीथिया (परिभ्रमण की गतिया) कही गई हैं। जैसे—

१ हयवीथि २ गजवीथि ३ नागवीथि ४ वृषभवीथि ५ गोवीथि ६ उरगवीथि, ७ अजवीथि ८ मृगवीथि ९ वैश्वानर वीथि (६८)।

कर्म-सूत्र

६९—णवविधे णोकसायवेयणिज्जे कम्मे पण्णत्ते, त जहा—इत्थिवेए, पुरिसवेए, णपु सकवेए, हासे, रती, अरती, भये, सोगे, दुगु छा।

नोकषाय वेदनीय कर्म नौ प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ स्त्रीवेद २ पुरुष वेद ३ नपु सक वेद ४ हास्य वेदनीय ५ रति वेदनीय, ६ अरति वेदनीय ७ भय वेदनीय, ८ शोक वेदनीय ९ जुगुप्सा वेदनीय (६९)।

कुलकोटि सूत्र

७०—चउरिंदियाण णव जाइ कुलकोडि जोणिपमुह-सयसहस्सा पण्णत्ता।

चतुरिन्द्रिय जीवो की नौ लाख जाति-कुलकोटिया कही गई है (७०)।

७१—भुयगपरिसप्प-थलयर पंचिंदियतिरिक्खजोणियाण णव जाइ-कुलकोडि-जोणिपमुह-सयसहस्सा पण्णत्ता।

पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक स्थलचर-भुजग परिसर्पो की नौ लाख जाति कुलकोटिया कही गई हैं (७१)।

पापकर्म सूत्र

७२—जीवा ण णवट्ठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिसु वा चिणति वा चिणिस्सति वा, त जहा—पुढविकाइयणिव्वत्तिते, (आउकाइयनिव्वत्तिते, तेउकाइयणिव्वत्तिते, वाउकाइयणिव्वत्तिते, वणस्सइकाइयणिव्वत्तिते, बेइंदियणिव्वत्तिते, तेइंदियणिव्वत्तिते चउरिंदियणिव्वत्तिते) पंचिंदियणिव्वत्तिते।

एव—चिण उवचिण (बध-उदीर-वेद तह) णिज्जरा चेव।

जीवों ने नौ स्थानों से निर्वर्तित पुद्गलों का पापकर्मरूप से अतीतकाल में संचय किया है, वर्तमान में कर रहे हैं और भविष्य में करेंगे। जैसे—

१ पृथ्वीकायिक निर्वर्तित पुद्गलों का, २ अप्कायिक निर्वर्तित पुद्गलों का, ३ तेजस्कायिक निर्वर्तित पुद्गलों का, ४ वायुकायिकनिर्वर्तित पुद्गलों का, ५ वनस्पतिकायिकनिर्वर्तित पुद्गलों का, ६ द्वीन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का ७ त्रीन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का, ८ चतुरिन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का ९ पंचेन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का।

इसी प्रकार उनका उपचय बन्ध, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे।

पुद्गल सूत्र

७३—णवपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता जाव णवगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

नौ प्रदेशी पुद्गल स्कन्ध अनन्त हैं।

आकाश के नौ प्रदेशों में अवगाढ पुद्गल अनन्त हैं।

नौ समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त हैं।

नौ गुण काले पुद्गल अनन्त हैं।

इसी प्रकार शेष वर्ण तथा गन्ध, रस और स्पर्शों के नौ गुण वाले पुद्गल अनन्त जानना चाहिए (७३)।

॥ नवम स्थान समाप्त ॥

दशम स्थान

सार सक्षेप

प्रस्तुत स्थान मे दश की सख्या से सम्बद्ध विविध विषयो का वणन किया गया है। सवप्रथम लोकस्थिति के १० प्रकार बताये गये है। तदनन्तर इन्द्रिय विषयो के और पुद्गल-सचलन के १० प्रकार बताकर क्रोध की उत्पत्ति के १० कारणो का विस्तार से विवेचन किया गया है। प्रान्तरग मे क्रोधकषाय का उदय होने पर और बाह्य मे सूत्र-निर्दिष्ट कारणो के मिलने पर क्रोध उत्पन्न होता है। अत साधक को क्रोध उत्पन्न करने वाले कारणो से बचना चाहिए। इसी प्रकार अहकार के कारणभूत १० कारणो का और चित्त समाधि असमाधि के १०-१० कारणो का निर्देश मननीय है। प्रव्रज्या के १० कारणो से ज्ञात होता है कि मनुष्य किस किस निमित्त के मिलने पर घर त्याग कर साधु बनता है। वैयावृत्य के १० प्रकारो से सिद्ध है कि साधक को आचार्य, उपाध्याय, स्थविर आदि गुरुजनो के सिवाय रुग्ण साधु की, नवीन दीक्षित की और सार्धमिक साधु की भी वैयावृत्य करना आवश्यक है।

प्रतिसेवना, आलोचना और प्रायश्चित्त के १०-१० दोषो का वणन साधक को उनसे बचने की प्रेरणा देता है। उपघात-विशोधि, और सक्लेश-असक्लेश के १०-१० भेद मननीय हैं। वे उपघात और सक्लेश के कारणो से बचने तथा विशोधि और असक्लेश या चित्त निर्मलता रखने की सूचना देते है।

स्वाध्याय काल मे ही स्वाध्याय करना चाहिए, अस्वाध्याय काल मे नही, क्योकि उल्कापात, आदि के समय पठन-पाठन करने से दृष्टिमन्दता आदि की सम्भावना रहती है। नगर के राजादि प्रधान पुरुष के मरण होने पर स्वाध्याय करना लोक विरुद्ध है, इसी प्रकार अन्य अस्वाध्याय कालो मे स्वाध्याय करने पर शास्त्रो मे अनेक दोषो का वणन किया है।

सूक्ष्म पद मे १० प्रकार के सूक्ष्म जीवो का जानना अहिंसाव्रती के लिए परम आवश्यक है। मिथ्यात्व के १० भेद मिथ्यात्व को छुडाने और रुचि (सम्यक्त्व) के १० भेद सम्यक्त्व का ग्रहण कराने की प्रेरणा देते हैं। भाविभद्रत्व के १० स्थान मनुष्य के भावी कल्याण के कारण होने से समाचरणीय है। आशसा के १० स्थान साधक के पतन के कारण है।

धम-पद के अन्तगत ग्रामधर्म, नगरधम, राष्ट्रधम और कुलधर्म लौकिक कर्तव्यो के पालन की और श्रुतधम, चारित्रधम आदि आत्मधम पारलौकिक कर्तव्यो के पालन की प्रेरणा देते हैं।

स्थविरो के १० भेद सब की विनय और वैयावृत्य करने के सूचक हैं। पुत्र के दश भेद तात्कालिक परिस्थिति के परिचायक हैं। तेजोलेश्या-प्रयोग के १० प्रकार तेजोलब्धि की उग्रता के द्योतक है। दान के १० भेद भारतीय दान की प्राचीनता और विविधता को प्रकट करते हैं। वाद के १० दोषो का वणन प्राचीनकाल मे वाद होने की अधिकता बताते हैं।

भ० महावीर के छद्मस्थकालीन १० स्वप्न, १० आश्चयक (अच्छेरे) एव अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण वणनो के साथ दश दशाओ के भेद-प्रभेदो का वर्णन मननीय है। इसी प्रकार दृष्टिवाद के १० भेद आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयो का सकलन इस दशवें स्थान मे किया गया है। ☐☐

दशम स्थान

लोकस्थिति सूत्र

१—दसविधा लोगट्ठिती पण्णत्ता, त जहा—

१ जण्ण जीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायति—एव एगा (एव एगा) लोगट्ठिती पण्णत्ता।

२ जण्ण जीवाण सया समित पावे कम्मे कज्जति—एवप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

३ जण्ण जीवाण सया समित मोहणिज्जे पावे कम्मे कज्जति—एवप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

४ ण एव भू वा भव्व वा, भविस्सति वा ज जीवा अजीवा भविस्सति, अजीवा वा जीवा भविस्सति—एवप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

५ ण एव भूत वा भव्व वा भविस्सति वा ज तसा पाणा वोच्छिज्जिस्सति थावरा पाणा भविस्सति, थावरा पाणा वोच्छिज्जिस्सति तसा पाणा भविस्सति—एवप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

६ ण एव भूत वा भव्व वा भविस्सति वा ज लोगे अलोगे भविस्सति, अलोगे वा लोगे भविस्सति—एवप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

७ ण एव भूत वा भव्व वा भविस्सति वा ज लोए अलोए पविस्सति, अलोए वा लोए पविस्सति—एवप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

८ जाव ताव लोगे ताव ताव जीवा, जाव ताव जीवा ताव ताव लोए—एवप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

९ जाव ताव जीवाण य पोग्गलाण य गतिपरियाए ताव ताव लोए जाव ताव लोगे ताव ताव जीवाण य पोग्गलाण य गतिपरियाए एवप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

१० सव्वेसुवि ण लोगतेसु अबद्धपासपुट्ठा पोग्गला लुक्खत्ताए कज्जति, जेण जीवा य पोग्गला य णो सचायति बहिया लोगता गमणयाए—एवप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

लोक-स्थिति अर्थात् लोक का स्वभाव दश प्रकार का है। जैसे—

१ जीव बार-बार मरते हैं और वहीं (लोक में) बार-बार उत्पन्न होते हैं, यह एक लोक स्थिति कही गई है।

२ जीव सदा निरन्तर पाप कर्म करते हैं, यह भी एक लोकस्थिति कही गई है।

३ जीव सदा हर समय मोहनीय पापकर्म का बन्ध करते हैं, यह भी एक लोकस्थिति कही गई है।

४ न कभी ऐसा हुआ है, न ऐसा हो रहा है और न ऐसा कभी होगा कि जीव, अजीव हो जाय और अजीव, जीव हो जायें। यह भी एक लोकस्थिति कही गई है।

५ न कभी ऐसा हुआ है, न ऐसा हो रहा है, और न कभी ऐसा होगा कि त्रसजीवों का विच्छेद हो जाय और सब जीव स्थावर हो जायें। अथवा स्थावर जीवों का विच्छेद हो जाय और सब जीव त्रस हो जावें। यह भी एक लोकस्थिति कही गई है।

६ न कभी ऐसा हुआ है, न ऐसा हो रहा है और न कभी ऐसा होगा कि जब लोक, अलोक हो जाय और अलोक, लोक हो जाय। यह भी एक लोकस्थिति कही गई है।

७ न कभी ऐसा हुआ है, न ऐसा हो रहा है और न कभी ऐसा होगा कि जब लोक अलोक मे प्रविष्ट हो जाय और अलोक लोक मे प्रविष्ट हो जाय। यह भी एक लोकस्थिति कही गई है।

८ जहा तक लोक है, वहा तक जीव हैं और जहा तक जीव हैं वहा तक लोक है। यह भी एक लोकस्थिति कही गई है।

९ जहा तक जीव और पुद्गलो का गतिपर्याय (गमन) है, वहा तक लोक है और जहा तक लोक है, वहा तक जीवो और पुदगलो का गतिपर्याय है। यह भी एक लोकस्थिति कही गई है।

१० लोक के सभी अन्तिम भागो मे अबद्ध पाश्वस्पृष्ट (अबद्ध और अस्पृष्ट) पुद्गल दूसरे रूक्ष पुदगलो के द्वारा रूक्ष कर दिये जाते हैं, जिससे जीव और पुद्गल लोकान्त से बाहर गमन करने के लिए समर्थ नही होते हैं। यह भी एक लोकस्थिति कही गई है (१)।

इन्द्रियार्थ सूत्र

२—दसविहे सद्दे पण्णत्ते, त जहा—

सग्रह श्लोक

णीहारि पिंडिमे लुक्खे, भिण्णे जज्जरिते इ य।
दीहे रहस्से पुहत्ते य, काकणी खिखिणिस्सरे ॥१॥

शब्द दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ निर्हारी—घण्टे से निकलने वाला घोषवान् शब्द।
२ पिण्डिम—घोष-रहित नगाडे का शब्द।
३ रूक्ष—काक के समान ककश शब्द।
४ भिन्न—वस्तु के टूटने से होने वाला शब्द।
५ जर्जरित—तार वाले बाजे का शब्द।
६ दीर्घ—दूर तक सुनाई देने वाला मेघ जैसा शब्द।
७ ह्रस्व—सूक्ष्म या थोडी दूर तक सुनाई देने वाला वीणादि का शब्द।
८ पृथक्त्व—अनेक बाजो का सयुक्त शब्द।
९ काकणी—सूक्ष्म कण्ठो से निकला शब्द।
१० किंकिणीस्वर—घू घरुओ की ध्वनि रूप शब्द (२)।

३—दस इदियत्था तीता पण्णत्ता, त जहा—देसेणवि एगे सद्दाइ सुणिसु। सव्वेणवि एगे सद्दाइ सुणिसु। देसेणवि एगे रूवाइ पासिसु। सव्वेणवि एगे रूवाइ पासिसु। (देसेणवि एगे गधाइ जिंघिसु। सव्वेणवि एगे गधाइ जिंघिसु। देसेणवि एगे रसाइ आसादेंसु। सव्वेणवि एगे रसाइ आसादेंसु। देसेणवि एगे फासाइ पडिसवेदेंसु)। सव्वेणवि एगे फासाइ पडिसवेदेंसु।

इन्द्रियो के अतीतकालीन विषय दश कहे गये हैं। जैसे—

१ अनेक जीवों ने शरीर के एक देश से भी शब्द सुने थे ।
२ अनेक जीवों ने शरीर के सर्वदेश से भी शब्द सुने थे ।
३ अनेक जीवों ने शरीर के एक देश से भी रूप देखे थे ।
४ अनेक जीवों ने शरीर के सर्व देश से भी रूप देखे थे ।
५ अनेक जीवों ने शरीर के एक देश से भी गन्ध सूंघे थे ।
६ अनेक जीवों ने शरीर के सर्व देश से भी गन्ध सूंघे थे ।
७ अनेक जीवों ने शरीर के एक देश से भी रस चखे थे ।
८ अनेक जीवों ने शरीर के सर्व देश से भी रस चखे थे ।
९ अनेक जीवों ने शरीर के एक देश से भी स्पर्शों का वेदन किया था ।
१० अनेक जीवों ने शरीर के सर्व देश से भी स्पर्शों का वेदन किया था (३) ।

विवेचन—टीकाकार ने 'देशत' और 'सर्वत' के अनेक अर्थ किए हैं । यथा—बहुत-से शब्दों के समूह में किसी को सुनना और किसी को न सुनना देशत सुनना है । सबको सुनना सर्वत सुनना है । अथवा देशत सुनने का अर्थ इन्द्रियों के एक देश से अर्थात् श्रोत्र से सुनना है । संभिन्नश्रोतोलब्धि वाला सभी इन्द्रियों से शब्द सुनता है । अथवा एक कान से सुनना देशत और दोनों कानों से सुनना सर्वत सुनना कहलाता है ।

४—दस इंदियत्था पडुप्पण्णा पण्णत्ता, तं जहा—देसेणवि एगे सद्दाइं सुणेंति । सव्वेणवि एगे सद्दाइं सुणेंति । (देसेणवि एगे रूवाइं पासंति । सव्वेणवि एगे रूवाइं पासंति । देसेणवि एगे गंधाइं जिंघंति । सव्वेणवि एगे गंधाइं जिंघंति । देसेणवि एगे रसाइं आसादेंति । सव्वेणवि एगे रसाइं आसादेंति । देसेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेंति । सव्वेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेंति) ।

इन्द्रियों के वर्तमानकालीन विषय दश कहे गये हैं । जैसे—
१ अनेक जीव शरीर के एक देश से भी शब्द सुनते हैं ।
२ अनेक जीव शरीर के सर्वदेश से भी शब्द सुनते हैं ।
३ अनेक जीव शरीर के एक देश से भी रूप देखते हैं ।
४ अनेक जीव शरीर के सर्व देश से भी रूप देखते हैं ।
५ अनेक जीव शरीर के एक देश से भी गन्ध सूंघते हैं ।
६ अनेक जीव शरीर के सर्व देश से भी गन्ध सूंघते हैं ।
७ अनेक जीव शरीर के एक देश से भी रस चखते हैं ।
८ अनेक जीव शरीर के सर्व भाग से भी रस चखते हैं ।
९ अनेक जीव शरीर के एक देश से भी स्पर्शों का वेदन करते हैं ।
१० अनेक जीव शरीर के सर्व देश से भी स्पर्शों का वेदन करते हैं ।

५—दस इंदियत्था अणागता पण्णत्ता, तं जहा—देसेणवि एगे सद्दाइं सुणिस्संति । सव्वेणवि एगे सद्दाइं सुणिस्संति (देसेणवि एगे रूवाइं पासिस्संति । सव्वेणवि एगे रूवाइं पासिस्संति । देसेणवि एगे गंधाइं जिंघिस्संति । सव्वेणवि एगे गंधाइं जिंघिस्संति । देसेणवि एगे रसाइं आसादेस्संति । सव्वेणवि एगे रसाइं आसादेस्संति । देसेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेस्संति) । सव्वेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेस्संति ।

इन्द्रियो के भविष्यकालीन विषय दश कहे गये है । जसे—

१ अनेक जीव शरीर के एक देश से शब्द सुनेंगे ।
२ अनेक जीव शरीर के मव देश से शब्द सुनगे ।
३ अनेक जीव शरीर के एक देश से रूप देखगे ।
४ अनेक जीव शरीर के सव देश से रूप देखेंगे ।
५ अनेक जीव शरीर के एक देश से गन्ध सू घेंगे ।
६ अनेक जीव शरीर के सव देश से गन्ध सू घेंग ।
७ अनेक जीव शरीर के एक दश से रस चखेंगे ।
८ अनेक जीव शरीर के सव देश से रस चखग ।
९ अनेक जीव शरीर के एक देश से स्पर्शों का वेदन करगे ।
१० अनेक जीव शरीर के सव देशा से स्पर्शो का वेदन करेंगे (५) ।

अच्छिन्न पुद्गल-चलन-सूत्र

६—दसहि ठाणेहि अच्छिण्णे पोग्गले चलेज्जा, त जहा—आहारिज्जमाणे वा चलेज्जा । परिणामेज्जमाणे वा चलेज्जा । उस्ससिज्जमाणे वा चलेज्जा । णिस्ससिज्जमाणे वा चलेज्जा । वेदेज्जमाणे वा चलेज्जा । णिज्जरिज्जमाणे वा चलेज्जा । विउव्विज्जमाणे वा चलेज्जा । परियारिज्जमाणे वा चलेज्जा । जक्खाइट्ठे वा चलेज्जा । वातपरिगए वा चलेज्जा ।

दश स्थाना से अच्छिन्न (स्कन्ध से सवद्ध) पुद्गल चलित होता है । जसे—

१ आहार के रूप मे ग्रहण किया जाता हुआ पुद्गल चलता है ।
२ आहार के रूप मे परिणत किया जाता हुआ पुद्गल चलता है ।
३ उच्छवास के रूप मे ग्रहण किया जाता हुआ पुद्गल चलता है ।
४ नि श्वास के रूप मे परिणत किया जाता हुआ पुद्गल चलता ह ।
५ वेद्यमान पुद्गल चलता है ।
६ निर्जीयमाण पुदगल चलता है ।
७ विक्रियमाण पुद्गल चलता है ।
८ परिचारणा (मथुन) के समय पुद्गल चलता ह ।
९ यक्षाविष्ट पुद्गल चलता है ।
१० वायु से प्रेरित होकर पुद्गल चलता है (६) ।

क्रोधोत्पत्ति स्थान सूत्र

७—दसहि ठाणेहि कोधुप्पत्ती सिया, त जहा—मणुण्णाइ मे सद्द फरिस-रस रूव गधाइ अवहरिसु । अमणुण्णाइ मे सद्द-फरिस रस रूव गधाइ उवहरिसु । मणुण्णाइ मे सद्द फरिस रस रूव गधाइ अवहरइ । अमणुण्णाइ मे सद्द फरिस (रस रूव)-गधाइ उवहरति । मणुण्णाइ मे सद्द (फरिस-रस रूव-गधाइ) अवहरिस्सति । अमणुण्णाइ मे सद्द-(फरिस रस रूव गधाइ) उवहरिस्सति । मणुण्णाइ मे सद्द-(फरिस-रस रूव)-गधाइ अवहरिसु वा अवहरइ वा अवहरिस्सति वा । अमणुण्णाइ मे सद्द-(फरिस-रस रूव गधाइ) उवहरिसु वा उवहरति वा उवहरिस्सति वा । मणुण्णामणुण्णाइ मे सद्द-(फरिस रस रूव गधाइ) अवहरिसु वा अवहरति वा अवहरिस्सति वा, उवहरिसु वा उवहरति वा

उवहरिस्सति वा। अह च ण आयरिय उवज्झायाण सम्म यट्टामि, मम च ण आयरिय उवज्झाया मिच्छं विप्पडिवण्णा।

दश कारणा से क्रोध की उत्पत्ति होती है। जसे—

१ उस अमुक पुरुष ने मेरे मनोज्ञ शब्द स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का अपहरण किया।
२ उस पुरुष ने मुझे अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध प्राप्त कराए हैं।
३ वह पुरुष मेरे मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का अपहरण करता है।
४ वह पुरुष मुझे अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध को प्राप्त कराता है।
५ वह पुरुष मेरे मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का अपहरण करेगा।
६ वह पुरुष मुझे अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध प्राप्त कराएगा।
७ वह पुरुष मेरे मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का अपहरण करता था, अपहरण करता है और अपहरण करेगा।
८ उस पुरुष ने मुझे अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप, और गन्ध प्राप्त कराए हैं कराता है और कराएगा।
९ उस पुरुष ने मेरे मनोज्ञ तथा अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का अपहरण किया है, करता है और करेगा। तथा प्राप्त कराए है, कराता है और कराएगा।
१० मैं आचार्य और उपाध्याय के प्रति सम्यक् व्यवहार करता हूं, परन्तु आचार्य और उपाध्याय मेरे साथ प्रतिकूल व्यवहार करते हैं (७)।

संयम-असंयम-सूत्र

८—दसविधे संजमे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइयसंजमे, (आउकाइयसंजमे, तेउकाइयसंजमे, वाउकाइयसंजमे) वणस्सतिकाइयसंजमे, बेइंदियसंजमे, तेइंदियसंजमे चउरिंदियसंजमे, पंचिंदियसंजमे, अजीवकायसंजमे।

संयम दश प्रकार का कहा गया है। जसे—

१ पृथ्वीकायिक-संयम, २ अप्कायिक-संयम, ३ तेजस्कायिक-संयम, ४ वायुकायिक-संयम, ५ वनस्पतिकायिक-संयम, ६ द्वीन्द्रिय-संयम, ७ त्रीन्द्रिय-संयम, ८ चतुरिन्द्रिय संयम, ९ पचेन्द्रिय-संयम, १० अजीवकाय संयम (८)।

९—दसविधे असंजमे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइयअसंजमे, आउकाइयअसंजमे, तेउकाइयअसंजमे, वाउकाइयअसंजमे, वणस्सतिकाइयअसंजमे, (बेइंदियअसंजमे, तेइंदियअसंजमे, चउरिंदियअसंजमे, पंचिंदियअसंजमे), अजीवकायअसंजमे।

असंयम दश प्रकार का कहा गया है। जसे—

१ पृथ्वीकायिक असंयम, २ अप्कायिक असंयम, ३ तेजस्कायिक असंयम, ४ वायुकायिक-असंयम, ५ वनस्पतिकायिक-असंयम, ६ द्वीन्द्रिय असंयम ७ त्रीन्द्रिय असंयम, ८ चतुरिन्द्रिय असंयम, ९ पचेन्द्रिय असंयम, १० अजीवकाय-असंयम (९)।

संवर-असंवर-सूत्र

१०—दसविधे संवरे पण्णत्ते, तं जहा—सोतिंदियसंवरे, (चक्खिंदियसंवरे, घाणिंदियसंवरे, जिब्भिंदियसंवरे), फासिंदियसंवरे, मणसंवरे, वयसंवरे, कायसंवरे, उवकरणसंवरे, सूचीकुसग्गसंवरे।

संवर दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ श्रोत्रेन्द्रिय संवर, २ चक्षुरिन्द्रिय संवर, ३ घ्राणेन्द्रिय-संवर, ४ रसनेन्द्रिय संवर, ५ स्पर्शनेन्द्रिय-संवर ६ मन संवर ७ वचन-संवर ८ काय-संवर, ९ उपकरण संवर, १० सूचीकुशाग्र-संवर (१०)।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में आदि के आठ भाव-संवर और अन्त के दो द्रव्य-संवर कहे गये हैं। उपकरणों के संवर को उपकरण-संवर कहते हैं। उपधि (उपकरण) दो प्रकार की होती है—ओघ-उपधि और उपग्रह-उपधि। जो उपकरण प्रतिदिन काम में आते हैं उन्हें ओघ-उपधि कहते हैं और जो किसी कारण-विशेष से संयम की रक्षा के लिए ग्रहण किये जाते हैं उन्हें उपग्रह-उपधि कहते हैं। इन दोनों प्रकार की उपधि का यतनापूर्वक संरक्षण करना उपकरण-संवर है।

सूई और कुशाग्र का संवरण कर रखना सूची कुशाग्र संवर कहलाता है। कांटा आदि निकालने या वस्त्र आदि सीने के लिए सूई रखी जाती है। इसी प्रकार कारण-विशेष से कुशाग्र भी ग्रहण किये जाते हैं। इनकी संभाल रखना—कि जिससे अंगच्छेद आदि न हो सके। इन दोनों पदों को उपलक्षण मानकर इसी प्रकार की अन्य वस्तुओं की भी सार-संभाल रखना सूचीकुशाग्र संवर है।

११—दसविधे असंवरे पण्णत्ते, तं जहा—सोतिंदियअसंवरे (चक्खिंदियअसंवरे, घाणिंदियअसंवरे, जिब्भिंदियअसंवरे, फासिंदियअसंवरे, मणअसंवरे, वयअसंवरे, कायअसंवरे, उवकरणअसंवरे), सूचीकुसग्गअसंवरे।

असंवर दश प्रकार का है। जैसे—

१ श्रोत्रेन्द्रिय-असंवर, २ चक्षुइन्द्रिय-असंवर, ३ घ्राणेन्द्रिय असंवर, ४ रसना-इन्द्रिय-असंवर, ५ स्पर्शनेन्द्रिय-असंवर, ६ मन-असंवर, ७ वचन-असंवर ८ काय-असंवर, ९ उपकरण-असंवर १० सूचीकुशाग्र-असंवर (११)।

अहंकार-सूत्र

१२—दसहिं ठाणेहिं अहमंतीति थंभिज्जा, तं जहा—जातिमएण वा, कुलमएण वा, (बलमएण वा, रूवमएण वा तवमएण वा, सुतमएण वा, लाभमएण वा), इस्सरियमएण वा, णागसुवण्णा वा मे अंतियं हव्वमागच्छंति, पुरिसधम्मातो वा मे उत्तरिए आहोधिए णाणदंसणे समुप्पण्णे।

दश कारणों से पुरुष अपने आपको 'मैं ही सबसे श्रेष्ठ हूं' ऐसा मानकर अभिमान करता है। जैसे—

१ मेरी जाति सबसे श्रेष्ठ है इस प्रकार जाति के मद से।
२ मेरा कुल सब से श्रेष्ठ है इस प्रकार कुल के मद से।
३ मैं सबसे अधिक बलवान् हूं, इस प्रकार बल के मद से।
४ मैं सबसे अधिक रूपवान हूं, इस प्रकार रूप के मद से।
५ मेरा तप सब से उत्कृष्ट है इस प्रकार तप के मद से।

६ मैं श्रुत-पारगत हू, इस प्रकार शास्त्रज्ञान के मद से ।
७ मेरे पास सबसे अधिक लाभ के साधन हैं, इस प्रकार लाभ के मद से ।
८ मेरा ऐश्वर्य सबसे बढा चढा है, इस प्रकार ऐश्वर्य के मद से ।
९ मेरे पास नागकुमार या सुपर्णकुमार देव दौडकर आते हैं, इस प्रकार के भाव से ।
१० मुझे सामान्य जनो की अपेक्षा विशिष्ट अवधिज्ञान और अवधिदर्शन उत्पन्न हुआ है, इस प्रकार के भाव से (१२) ।

समाधि-असमाधि-सूत्र

१३—दसविधा समाधी पण्णत्ता, त जहा—पाणातिवायवेरमण, मुसावायवेरमणे, अदिण्णादाणवेरमणे, मेहुणवेरमणे, परिग्गहवेरमणे, इरियासमिती, भासासमिती, एसणासमिती, आयाण भड-मत्त-णिक्खेवणासमिती, उच्चार पासवण खेल सिंघाणग-जल्ल-पारिट्ठावणिया समिती ।

समाधि दस प्रकार की कही गई है । जैसे—
१ प्राणातिपात-विरमण २ मृषावाद-विरमण, ३ अदत्तादान विरमण, ४ मथुन विरमण,
५ परिग्रह-विरमण ६ ईर्यासमिति, ७ भाषासमिति, ८ एषणासमिति,
९ आमत्र निक्षेपण (पात्र निक्षेपण) समिति
१० उच्चार-प्रस्रवण-श्लेष्म-सिंघाण जल्ल परिष्ठापना समिति (१३) ।

१४—दसविधा असमाधी पण्णत्ता, त जहा—पाणातिवाते, (मुसावाए, अदिण्णादाणे, मेहुणे), परिग्गहे, इरियाऽसमिती, (भासाऽसमिती, एसणाऽसमिती, आयाण भड मत्त णिक्खेवणाऽसमिती), उच्चार-पासवण खेल सिंघाणग-जल्ल पारिट्ठावणियाऽसमिती ।

असमाधि दस प्रकार की कही गई है । जैसे—
१ प्राणातिपात अविरमण, २ मृषावाद अविरमण ३ अदत्तादान अविरमण,
४ मथुन-अविरमण, ५ परिग्रह-अविरमण, ६ ईर्या असमिति (गमन की असावधानी),
७ भाषा असमिति (बोलने की असावधानी) ८ एषणा असमिति (गोचरी की असावधानी)
९ आदान-भाण्ड अमत्र-निक्षेप की असमिति,
१० उच्चार प्रस्रवण श्लेष्म सिंघाण जल्ल परिष्ठापना की असमिति (१४) ।

प्रव्रज्या-सूत्र

१५—दसविधा पव्वज्जा पण्णत्ता, त जहा—

सग्रहणी गाथा

छदा रोसा परिजुण्णा, सुविणा पडिस्सुता चेव ।
सारणिया रोगिणिया, अणाढिता देवसण्णत्ती ॥१॥
वच्छाणुबधिया ।

प्रव्रज्या दस प्रकार की कही गई है जैसे—
१ छन्दाप्रव्रज्या—अपनी या दूसरो की इच्छा से ली जाने वाली दीक्षा ।
२ रोषप्रव्रज्या—रोष से ली जानेवाली दीक्षा ।

३ परिद्यूनाप्रव्रज्या—दरिद्रता से ली जाने वाली दीक्षा ।
४ स्वप्नाप्रव्रज्या—स्वप्न देखने से ली जाने वाली, या स्वप्न मे ली जाने वाली दीक्षा ।
५ प्रतिश्रुता प्रव्रज्या—पहले की हुई प्रतिज्ञा के कारण ली जाने वाली दीक्षा ।
६ स्मारणिका प्रव्रज्या—पूर्व जन्मो का स्मरण होने पर ली जाने वाली दीक्षा ।
७ रोगिणिका प्रव्रज्या—रोग के हो जाने पर ली जाने वाली दीक्षा ।
८ अनादृता प्रव्रज्या—अनादर होने पर ली जाने वाली दीक्षा ।
९ देवसंज्ञप्ति प्रव्रज्या—देव के द्वारा प्रतिबुद्ध करने पर ली जाने वाली दीक्षा ।
१० वत्सानुबन्धिका प्रव्रज्या—दीक्षित होते हुए पुत्र के निमित्त से ली जाने वाली दीक्षा (१५) ।

श्रमणधर्म सूत्र

१६—दसविधे समणधम्मे पण्णत्ते त जहा—खती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे, लाघवे, सच्चे, सजमे तवे, चियाए, बभचेरवासे ।

श्रमण-धर्म दश प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ क्षान्ति (क्षमा धारण करना), २ मुक्ति (लोभ नही करना),
३ आर्जव (मायाचार नही करना), ४ मार्दव (अहकार नही करना),
५ लाघव (गौरव नही रखना), ६ सत्य (सत्य वचन बोलना)
७ सयम धारण करना ८ तपश्चरण करना,
९ त्याग (साम्भोगिक साधुओ को भोजनादि देना),
१० ब्रह्मचर्यवास (ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरुजनो के पास रहना) (१६) ।

वैयावृत्य सूत्र

१७—दसविधे वेयावच्चे पण्णत्ते, त जहा—आयरियवेयावच्चे, उवज्झायवेयावच्चे, थेरवेयावच्चे, तवस्सिवेयावच्चे, गिलाणवेयावच्चे, सेहवेयावच्चे, कुलवेयावच्चे, गणवेयावच्चे, सघवेयावच्चे, साहम्मियवेयावच्चे ।

वैयावृत्य दश प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ आचार्य का वैयावृत्य, २ उपाध्याय का वैयावृत्य,
३ स्थविर का वैयावृत्य, ४ तपस्वी का वैयावृत्य,
५ ग्लान का वैयावृत्य, ६ शैक्ष का वैयावृत्य,
७ कुल का वैयावृत्य, ८ गण का वैयावृत्य,
९ सघ का वैयावृत्य, १० साधर्मिक का वैयावृत्य (१७) ।

परिणाम सूत्र

१८—दसविधे जीवपरिणामे पण्णत्ते, त जहा—गतिपरिणामे इदियपरिणामे, कसायपरिणामे, लेसापरिणामे, जोगपरिणामे, उवओगपरिणामे, णाणपरिणामे, दसणपरिणामे, चरित्तपरिणामे, वेयपरिणामे ।

६ मैं श्रुत पारगत हू, इस प्रकार शास्त्रनान के मद से ।
७ मेरे पास सबसे अधिक लाभ के साधन हैं इस प्रकार लाभ के मद से ।
८ मेरा ऐश्वय सबसे बटा चटा है, इस प्रकार ऐश्वर्य के मद से ।
९ मेरे पास नागकुमार या सुपर्णकुमार देव दौडकर आते हू इस प्रकार के भाव से ।
१० मुझे सामाय जनो की अपेक्षा विशिष्ट अवधिज्ञान और अवधिदशन उत्पन्न हुआ है, इस प्रवार के भाव से (१२) ।

समाधि असमाधि-सूत्र

१३—दसविधा समाधी पण्णत्ता, त जहा—पाणातिवायवेरमण, मुसावायवेरमणे, अदिण्णा दाणवेरमणे, मेहुणवेरमणे, परिग्गहवेरमणे, इरियासमिती भासासमिती, एसणासमिती, आयाण भड मत्त-णिक्खेवणासमिती, उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाणग-जल्ल-पारिट्ठावणिया समिती ।

समाधि दश प्रकार की कही गई है । जैसे—
१ प्राणातिपात-विरमण २ मृपावाद-विरमण, ३ अदत्तादान-विरमण, ४ मैथुन विरमण,
५ परिग्रह-विरमण ६ ईर्यासमिति, ७ भापासमिति, ८ एपणासमिनि
९ अमत्र निक्षेपण (पात्र निक्षेपण) समिति
१० उच्चार-प्रस्रवण-श्लेष्म-सिघाण-जल्ल परिष्ठापना ममिति (१३) ।

१४—दसविधा असमाधी पण्णत्ता, त जहा—पाणातिवाते, (मुसावाए, अदिण्णादाणे, मेहुणे), परिग्गहे, इरियाऽसमिती, (भासऽसमिती, एसणाऽसमिती, आयाण भड-मत्त णिक्खेवणाऽसमिती), उच्चार-पासवण खेल सिंघाणग जल्ल-पारिट्ठावणियाऽसमिती ।

असमाधि दश प्रकार की कही गई है । जसे—
१ प्राणातिपात अविरमण २ मृपावाद-अविरमण ३ अदत्तादान अविरमण,
४ मैथुन-अविरमण, ५ परिग्रह-अविरमण ६ ईर्या-असमिति (गमन की असावधानी),
७ भापा असमिति (बोलने की असावधानी) ८ एपणा-असमिति (गोचरी की असावधानी)
९ आदान-भाण्ड-अमत्र निक्षेप की असमिति
१० उच्चार-प्रस्रवण श्लेष्म-सिघाण-जल्ल-परिष्ठापना की असमिति (१४) ।

प्रव्रज्या-सूत्र

१५—दसविधा पव्वज्जा पण्णत्ता त जहा—

सग्रहणी गाथा

छदा रोसा परिजुण्णा, सुविणा पडिस्सुता चेव ।
सारणिया रोगिणिया, अणाढिता देवसण्णत्ती ॥१॥
वच्छाणुबंधिया ।

प्रव्रज्या दश प्रकार की कही गई है जसे—
१ छदाप्रव्रज्या—अपनी या दूसरो की इच्छा से ली जाने वाली दीक्षा ।
२ रोपाप्रव्रज्या—रोप से ली जानेवाली दीक्षा ।

३ परिद्यूनाप्रव्रज्या—दरिद्रता मे ली जाने वाली दीक्षा ।
४ स्वप्नाप्रव्रज्या—स्वप्न देखने से ली जाने वाली या स्वप्न मे ली जाने वाली दीक्षा ।
५ प्रतिश्रुता प्रव्रज्या—पहले की हुई प्रतिज्ञा के कारण ली जाने वाली दीक्षा ।
६ स्मारणिका प्रव्रज्या—पूर्व जन्मो का स्मरण होने पर ली जाने वाली दीक्षा ।
७ रोगिणिका प्रव्रज्या—रोग के हो जाने पर ली जाने वाली दीक्षा ।
८ अनादृता प्रव्रज्या—अनादर होने पर ली जाने वाली दीक्षा ।
९ देवसज्ञप्ति प्रव्रज्या—देव के द्वारा प्रतिबुद्ध करने पर ली जाने वाली दीक्षा ।
१० वत्सानुबन्धिका प्रव्रज्या—दीक्षित होते हुए पुत्र के निमित्त से ली जाने वाली दीक्षा (१५) ।

श्रमणधर्म-सूत्र

१६—दसविधे समणधम्मे पण्णत्ते त जहा—खती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे, लाघवे, सच्चे, सजमे तवे, चियाए, बभचेरवासे ।

श्रमण-धर्म दश प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ क्षान्ति (क्षमा धारण करना), २ मुक्ति (लोभ नही करना),
३ आर्जव (मायाचार नही करना), ४ मार्दव (अहकार नही करना),
५ लाघव (गौरव नही रखना), ६ सत्य (सत्य वचन बोलना)
७ सयम धारण करना, ८ तपश्चरण करना,
९ त्याग (साम्भोगिक साधुओ को भोजनादि देना),
१० ब्रह्मचर्यवास (ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरुजनो के पास रहना) (१६) ।

वैयावृत्त्य सूत्र

१७—दसविधे वेयावच्चे पण्णत्ते, त जहा—आयरियवेयावच्चे, उवज्झायवेयावच्चे, थेरवेयावच्चे, तवस्सिवेयावच्चे, गिलाणवेयावच्चे सेहवेयावच्चे, कुलवेयावच्चे, गणवेयावच्चे, सघवेयावच्चे, साहम्मियवेयावच्चे ।

वैयावृत्त्य दश प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ आचार्य का वैयावृत्त्य, २ उपाध्याय का वैयावृत्त्य,
३ स्थविर का वैयावृत्त्य, ४ तपस्वी का वैयावृत्त्य,
५ ग्लान का वैयावृत्त्य, ६ शैक्ष का वैयावृत्त्य,
७ कुल का वैयावृत्त्य, ८ गण का वैयावृत्त्य,
९ सघ का वैयावृत्त्य, १० साधर्मिक का वैयावृत्त्य (१७) ।

परिणाम सूत्र

१८—दसविधे जीवपरिणामे पण्णत्ते, त जहा—गतिपरिणामे इदियपरिणामे, कसायपरिणामे, लेसापरिणामे, जोगपरिणामे, उवओगपरिणामे, णाणपरिणामे, दसणपरिणामे, चरित्तपरिणामे, वेयपरिणामे ।

जीव का परिणाम दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ गति परिणाम, २ इन्द्रिय-परिणाम, ३ कषाय-परिणाम, ४ लेश्या-परिणाम, ५ योग-परिणाम, ६ उपयोग परिणाम, ७ ज्ञान-परिणाम, ८ दर्शन परिणाम ९ चारित्र परिणाम, १० वेद-परिणाम (१८)।

१९—दसविधे अजीवपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—बंधणपरिणामे, गतिपरिणामे, संठाणपरिणामे भेदपरिणामे वण्णपरिणामे, रसपरिणामे, गंधपरिणामे, फासपरिणामे, अगुरुलहुपरिणामे, सद्दपरिणामे।

अजीव का परिणाम दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ बन्धन-परिणाम, २ गति-परिणाम, ३ संस्थान परिणाम, ४ भेद-परिणाम, ५ वर्ण-परिणाम, ६ रस-परिणाम, ७ गन्ध-परिणाम, ८ स्पर्श-परिणाम, ९ अगुरु लघु-परिणाम, १० शब्द परिणाम (१९)।

अस्वाध्याय-सूत्र

२०—दसविधे अंतलिक्खए असज्झाइए पण्णत्ते, तं जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, विज्जुते, णिग्घाते, जुवए, जक्खालित्ते, धूमिया, महिया, रयुग्घाते।

अन्तरिक्ष (आकाश) सम्बन्धी अस्वाध्यायकाल दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ उल्कापात अस्वाध्याय—बिजली गिरने या तारा टूटने पर स्वाध्याय नही करना।
२ दिग्दाह—दिशाओं को जलती हुई देखने पर स्वाध्याय नही करना।
३ गर्जन—आकाश मे मेघो की घोर गर्जना के समय स्वाध्याय नही करना।
४ विद्युत्—तडतडाती हुई बिजली के चमकने पर स्वाध्याय नही करना।
५ निर्घात—मेघो के होने या न होने पर आकाश मे व्यन्तरादिकृत घोर गर्जन या वज्रपात के होने पर स्वाध्याय नही करना।
६ यूपक—सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रमा की प्रभा एक साथ मिलने पर स्वाध्याय नही करना।
७ यक्षादीप्त—यक्षादि के द्वारा किसी एक दिशा मे बिजली जैसा प्रकाश दिखने पर स्वाध्याय नही करना।
८ धूमिका—कोहरा होने पर स्वाध्याय नही करना।
९ महिका—तुषार या बर्फ गिरने पर स्वाध्याय नही करना।
१० रज-उद्घात—तेज आँधी से धूलि उड़ने पर स्वाध्याय नही करना (२०)।

२१—दसविधे ओरालिए असज्झाइए पण्णत्ते, तं जहा—अट्ठि, मंसे, सोणिते, असुइसामंते, सुसाणसामंते, चंदोवराए, सूरोवराए, पडणे, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे।

औदारिक शरीर सम्बन्धी अस्वाध्याय दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ अस्थि, २ मांस ३ रक्त, ४ अशुचि ५ श्मशान के समीप होने पर, ६ चन्द्र-ग्रहण, ७ सूर्य-ग्रहण के होने पर, ८ पतन प्रमुख व्यक्ति के मरन पर, ९ राजविप्लव होने पर, १० उपाश्रय के भीतर सौ हाथ औदारिक कलेवर के होने पर स्वाध्याय करने का निषेध किया गया है (२१)।

संयम असंयम सूत्र

२२—पंचिंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स दसविधे संजमे कज्जति, तं जहा—सोतामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति। सोतामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति। (चक्खुमयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति। चक्खुमएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति। घाणामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति। घाणामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति। जिब्भामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति। जिब्भामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति। फासामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति।) फासामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति।

पंचेन्द्रिय जीवों का घात नहीं करने वाले के दश प्रकार का संयम होता है। जैसे—

१ श्रोत्रेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से।
२ श्रोत्रेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से।
३ चक्षुरिन्द्रिय सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से।
४ चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से।
५ घ्राणेन्द्रिय सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से।
६ घ्राणेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से।
७ रसनेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से।
८ रसनेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से।
९ स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से।
१० स्पर्शनेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से (२२)।

२३—पंचिंदिया णं जीवा समारभमाणस्स दसविधे असंजमे कज्जति, तं जहा—सोतामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति। सोतामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। चक्खुमयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति। चक्खुमएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। घाणामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति। घाणामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। जिब्भामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति। जिब्भामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। फासामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति। फासामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।

पंचेन्द्रिय जीवों का घात करने वाले के दश प्रकार का असंयम होता है। जैसे—

१ श्रोत्रेन्द्रिय सम्बन्धी सुख का वियोग करने से।
२ श्रोत्रेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से।
३ चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से।
४ चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से।
५ घ्राणेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से।
६ घ्राणेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से।
७ रसनेन्द्रिय सम्बन्धी सुख का वियोग करने से।
८ रसनेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से।
९ स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से।
१० स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से (२३)।

सूक्ष्मजीव-सूत्र

२४—दस सुहुमा पण्णत्ता, त जहा—पाणसुहुमे, पणगसुहुमे, (बीयसुहुमे, हरितसुहुमे, पुप्फसुहुमे, अडसुहुमे, लेणसुहुमे) सिणेहसुहुमे, गणियसुहुमे, भगसुहुमे।

सूक्ष्म दश प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ प्राण सूक्ष्म—सूक्ष्मजीव,
२ पनक सूक्ष्म—काई आदि।
३ बीज-सूक्ष्म—धान्य आदि का अग्रभाग,
४ हरितसूक्ष्म—सूक्ष्मतृण आदि,
५ पुष्प-सूक्ष्म—वट आदि के पुष्प
६ अण्डसूक्ष्म—चींटी आदि के अण्डे
७ लयनसूक्ष्म—कीडीनगरा,
८ स्नेहसूक्ष्म—ओस आदि,
९ गणितसूक्ष्म—सूक्ष्म बुद्धिगम्य गणित,
१० भगसूक्ष्म—सूक्ष्म बुद्धिगम्य विकल्प(२४)।

महानदी सूत्र

२५—जबुद्दीव दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणेण गगा सिधु महाणदीओ दस महाणदीओ समप्पेंति, त जहा—जउणा, सरऊ, आवी, कोसी, मही, सतद्दू, वितत्था, विभासा, एरावती, चदभागा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप म मन्दरपर्वत के दक्षिण मे गगा सिन्धु महानदी म दश महानदिया मिलती हैं। जसे—

१ यमुना, २ सरयू, ३ आवी, ४ कोशी, ५ मही, ६ शतद्रु, ७ वितस्ता, ८ विपाशा, ९ एरावती, १० चन्द्रभागा (२५)।

२६—जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरे ण रत्ता रत्तवतीओ महाणदीओ दस महाणदीओ समप्पेंति, त जहा—किण्हा, महाकिण्हा, णीला, महाणीला, महातीरा, इदा, (इदसेणा सुसेणा, वारिसेणा), महाभोगा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप म मन्दर पर्वत के उत्तर मे रक्ता और रक्तावती महानदी म दश महानदिया मिलती है। जसे—

१ कृष्णा, २ महाकृष्णा, ३ नीला, ४ महानीला, ५ महातीरा, ६ इन्द्रा, ७ इन्द्रसेना, ८ सुषेणा ९ वारिषेणा, १० महाभोगा (२६)।

राजधानी सूत्र

२७—जबुद्दीवे दीवे भरहे वासे दस रायहाणीओ पण्णत्ताओ, त जहा—

सग्रहणी गाथा

चपा महुरा वाणारसी य सावत्थि तह य साकेत।
हत्थिणउर कपिल्ल, मिहिला कोसबि रायगिह ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे भारतवर्ष मे दश राजधानिया कही गई है। जैसे—

१ चम्पा—अगदेश की राजधानी,
२ मथुरा—सूरसेन देश की राजधानी,
३ वाराणसी—काशी देश की राजधानी,
४ श्रावस्ती—कुणाल देश की राजधानी

५ साकेत—कोशल देश की राजधानी, ६ हस्तिनापुर—कुरु देश की राजधानी,
७ काम्पिल्य—पांचाल देश की राजधानी, ८ मिथिला—विदेह देश की राजधानी,
९ कौशाम्बी—वत्स देश की राजधानी, १० राजगृह—मगध देश की राजधानी (२७)।

राज सूत्र—

२८—एयासु णं दससु रायहाणीसु दस रायाणो मुंडा भवेत्ता (अगाराओ अणगारियं) पव्वइया, तं जहा—भरहे, सगरे, मघवं सणंकुमारे, संती, कुंथू अरे, महापउमे, हरिसेणे, जयणामे।

इन दश राजधानियों में दश राजा मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए। जैसे—

१ भरत, २ सगर, ३ मघवा, ४ सनत्कुमार, ५ शान्ति ६ कुन्थु, ७ अर, ८ महापद्म, ९ हरिषेण, १० जय (२८)।

मन्दर सूत्र

२९—जंबुद्दीवे दीवे मंदरे पव्वए दस जोयणसयाइं उव्वेहेणं, धरणितले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, उवरिं दसजोयणसयाइं विक्खंभेणं, दसदसाइं जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते।।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत एक हजार योजन भूमि में गहरा है, भूमितल पर दश हजार योजन विस्तृत है, ऊपर पण्डकवन में एक हजार योजन विस्तृत और सर्व परिमाण से एक लाख योजन ऊंचा कहा गया है (२९)।

दिशा-सूत्र

३०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स बहुमज्झदेसभागे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिम-हेट्ठिल्लेसु खुड्डगपतरेसु एत्थ णं अट्ठपएसिए रुयगे पण्णत्ते, जओ णं इमाओ दस दिसाओ पवहंति, तं जहा—पुरत्थिमा पुरत्थिमदाहिणा, दाहिणा दाहिणपच्चत्थिमा, पच्चत्थिमा, पच्चत्थिमुत्तरा, उत्तरा, उत्तरपुरत्थिमा, उड्ढा, अहा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के बहुमध्य देश भाग में इसी रत्नप्रभा पृथिवी के ऊपर क्षुल्लक प्रतर में गोस्तनाकार चार तथा उसके नीचे के क्षुल्लक प्रतर में भी गोस्तनाकार चार, इस प्रकार आठ प्रदेशवाला रुचक कहा गया है। इससे दशों दिशाओं का उद्गम होता है। जैसे—

१ पूर्व दिशा, २ पूर्व दक्षिण—आग्नेय दिशा, ३ दक्षिण दिशा, ४ दक्षिण पश्चिम—नैर्ऋत्य दिशा, ५ पश्चिम दिशा, ६ पश्चिम-उत्तर—वायव्य दिशा, ७ उत्तर दिशा, ८ उत्तर-पूर्व—ईशान दिशा, ९ ऊर्ध्वदिशा, १० अधोदिशा (३०)।

३१—एतासि णं दसण्हं दिसाणं दस णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

इंदा अग्गेइ जम्मा य, णेरती वारुणी य वायव्वा।
सोमा ईसाणी य, विमला य तमा य बोद्धव्वा ।।१।।

इन दश दिशाओं के दश नाम कहे गये हैं। जैसे—

१ ऐन्द्री, २ आग्नेयी, ३ याम्या, ४ नैर्ऋती, ५ वारुणी, ६ वायव्या, ७ सोमा, ८ ईशानी, ९ विमला, १० तमा (३१)।

लवणसमुद्र-सूत्र

३२—लवणस्स णं समुद्दस्स दस जोयणसहस्साइं गोतित्थविरहिते खेत्ते पण्णत्ते।

लवणसमुद्र का दश हजार योजन क्षेत्र गोतीर्थ-रहित (समतल) कहा गया है (३२)।

३३—लवणस्स णं समुद्दस्स दस जोयणसहस्साइं उदगमाले पण्णत्ते।

लवणसमुद्र की उदकमाला (वेला) दश हजार योजन चौडी कही गई है (३३)।

विवेचन—जिस जलस्थान पर गाएं जल पीने को उतरती हैं, वह क्रम से ढलानवाला भाग अधिक नीचा होता है, उसे गोतीर्थ कहते हैं। लवणसमुद्र के दोनों पार्श्वों में ९५ ९५ हजार योजन तक पानी गोतीर्थ के आकार है। बीच में दश हजार योजन तक पानी समतल है, उसमें ढलान नहीं है उसे 'गोतीर्थ-रहित' कहा गया है।

जल की शिखर या चोटी को उदकमाला कहते है। यह समुद्र के मध्यभाग में होती है। लवण समुद्र की उदकमाला दश हजार योजन चौडी और सोलह हजार योजन ऊंची होती है (३३)।

पाताल सूत्र

३४—सव्वेवि णं महापाताला दसदसाइं जोयणसहस्साइं उव्वेहेणं पण्णत्ता, मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ता, बहुमज्झदेसभागे एगपएसियाए सेढीए दसदसाइं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ता, उवरिं मुहमूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ता। तेसि णं महापातालाणं कुड्डा सव्ववइरामया सव्वत्थ समा दस जोयणसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता।

सभी महापाताल (पातालकलश) एक लाख योजन गहरे कहे गये है। मूल भाग में वे दश हजार योजन विस्तृत कहे गये हैं। मूल भाग के विस्तार से दोनों ओर एक एक प्रदेश की वृद्धि से बहुमध्यदेश भाग में एक लाख योजन विस्तार कहा गया है। ऊपर मुखमूल में उनका विस्तार दश हजार योजन कहा गया है।

उन पातालों की भित्तियां सर्ववज्रमयी, सर्वत्र समान और सर्वत्र दश हजार योजन विस्तार वाली कही गई हैं (३४)।

३५—सव्वेवि णं खुड्डा पाताला दस जोयणसताइं उव्वेहेणं पण्णत्ता, मूले दसदसाइं जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता, बहुमज्झदेसभागे एगपएसियाए सेढीए दस जोयणसताइं विक्खंभेणं पण्णत्ता, उवरिं मुहमूले दसदसाइं जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता। तेसि णं खुड्डापातालाणं कुड्डा सव्ववइरामया सव्वत्थ समा दस जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता।

सभी छोटे पातालकलश एक हजार योजन गहरे कहे गये हैं। मूल भाग में उनका विस्तार सौ योजन कहा गया है। मूलभाग के विस्तार से दोनों ओर एक-एक प्रदेश की वृद्धि से बहुमध्य देशभाग में उनका विस्तार एक हजार योजन कहा गया है। ऊपर मुखमूल में उनका विस्तार सौ योजन कहा गया है।

उन छोटे पातालों की भित्तियाँ सर्ववज्रमयी, सर्वत्र समान और सर्वत्र दश योजन विस्तार वाली कही गई हैं (३५)।

पवत-सूत्र

३६—धायइसडगा ण मदरा दसजोयणसयाइ उव्वेहेण, धरणीतले देसूणाइ दस जोयणसहस्साइ विक्खभेण, उवरिं दस जोयणसयाइ विक्खभेण पण्णत्ता ।

धातकीषण्ड के मन्दर पव त भूमि मे एक हजार योजन गहरे, भूमितल पर कुछ कम दश हजार योजन विस्तृत और ऊपर एक हजार योजन विस्तृत कहे गये ह (३६) ।

३७—पुक्खरवरदीवड्ढगा ण मदरा दस जोयणसयाइ उव्वेहेण, एव चेव ।

पुष्करवरद्वीपार्ध के मन्दर पवत इसी प्रकार भूमि मे एक हजार योजन गहरे, भूमितल पर कुछ कम दश हजार योजन विस्तृत और ऊपर एक हजार योजन कहे गये है (३७) ।

३८—सव्ववि ण वट्टवेयड्डपव्वता दस जोयणसयाइ उड्ढ उच्चत्तेण, दस गाउयसयाइ उव्वेहेण, सव्वत्थ समा पल्लगसठिता, दस जोयणसयाइ विक्खभेण पण्णत्ता ।

सभी वृत्तवताढय पवत एक हजार योजन ऊचे, एक हजार गव्यूति (कोश) गहरे, सर्वत्र समान विस्तार वाले, पल्य के आकार से सस्थित और दश सौ (एक हजार) योजन विस्तृत कहे गये है (३८) ।

क्षेत्र सूत्र

३९—जबुद्दीवे दीवे दस खेत्ता पण्णत्ता, त जहा—भरहे, एरवते हेमवते, हेरण्णवते, हरिवस्से, रम्मगवस्से, पुव्वविदेहे, अवरविदेहे, देवकुरा, उत्तरकुरा ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे दश क्षेत्र कहे गये हैं । जसे—

१ भरत क्षेत्र, २ ऐरवत क्षेत्र, ३ हमवत क्षेत्र, ४ हैरण्यवत क्षेत्र, ५ हरिवष क्षेत्र, ६ रम्यकवप क्षेत्र, ७ पूव विदेह क्षेत्र ८ अपरविदेह क्षेत्र, ९ देवकुरु क्षत्र १० उत्तरकुरु क्षेत्र (३९)।

पवत सूत्र

४०—माणुसुत्तरे ण पव्वते मूले दस बावीसे जोयणसते विक्खभेण पण्णत्ते ।

मानुषोत्तर पव त मूल मे दश सौ बाईस (१०२२) योजन विस्तारवाला कहा गया है (४०) ।

४१—सव्वेवि ण अजण पव्वता दस जोयणसयाइ उव्वेहेण, मूले दस जोयणसहस्साइ विक्खभेण, उवरिं दस जोयणसताइ विक्खभेण पण्णत्ता ।

सभी अजन पव त दश सौ (१०००) योजन गहरे, मूल मे दश हजार योजन विस्तृत, और ऊपर दश सौ (१०००) योजन विस्तार वाले कहे गये है (४१) ।

४२—सव्वेवि ण दहिमुहपव्वता दस जोयणसताइ उव्वेहेण, सव्वत्थ समा पल्लगसठिता, दस जोयणसहस्साइ विक्खभेण पण्णत्ता ।

सभी दधिमुखपर्वत भूमि मे दश सौ योजन गहरे, सव त्र समान विस्तारवाले, पल्य के आकार से सस्थित और दश हजार योजन चौडे कहे गये हैं (४२) ।

४३—सव्वेवि ण रतिकरपव्वता दस जोयणसताइं उड्ढं उच्चत्तेण, दसगाउयसताइं उव्वेहेण, सव्वत्थ समा झल्लरिसंठिता, दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेण पण्णत्ता।

सभी रतिकर पर्वत दश सौ (१०००) योजन ऊंचे, दश सौ गव्यूति गहरे, सर्वत्र समान, झल्लरी के आकार के और दश हजार योजन विस्तार वाले कहे गये हैं (४३)।

४४—रुयगवरे णं पव्वते दस जोयणसयाइं उव्वेहेण, मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेण, उवरि दस जोयणसताइं विक्खंभेण पण्णत्ते।

रुचकवर पर्वत दश सौ (१०००) योजन गहरे, मूल मे दश हजार योजन विस्तृत और ऊपर दश सौ (१०००) योजन विस्तार वाले कहे गये हैं (४४)।

४५—एवं कुंडलवरेवि।

इसी प्रकार कुण्डलवर पर्वत भी रुचकवर पर्वत के समान जानना चाहिए (४५)।

द्रव्यानुयोग-सूत्र

४६—दसविहे दवियाणुओगे पण्णत्ते, तं जहा—दवियाणुओगे, माउयाणुओगे, एगट्ठियाणुओगे, करणाणुओगे, अप्पितणप्पिते, भाविताभाविते, बाहिराबाहिरे, सासतासासते, तहणाणे, अतहणाणे।

द्रव्यानुयोग दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ द्रव्यानुयोग, २ मातृकानुयोग, ३ एकार्थिकानुयोग, ४ करणानुयोग, ५ अर्पितानर्पितानुयोग, ७ भाविताभावितानुयोग, ७ बाह्याबाह्यानुयोग, ८ शाश्वताशाश्वतानुयोग, ९ तथाज्ञानानुयोग, १० अतथाज्ञानानुयोग।

विवेचन—जीवादि द्रव्यो की व्याख्या करने वाले अनुयोग को द्रव्यानुयोग कहते हैं। गुण और पर्याय जिसमे पाये जावें, उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य के सहभावी ज्ञान दर्शनादि धर्मो को गुण और मनुष्य, तिर्यचादि क्रमभावी धर्मो को पर्याय कहते हैं। द्रव्यानुयोग मे इन गुणो और पर्यायो वाले द्रव्य का विवेचन किया गया है।

२ मातृकानुयोग—इस अनुयोग मे उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यरूप मातृका पद के द्वारा द्रव्य का विवेचन किया गया है।

३ एकार्थिकानुयोग—इसमे एक अर्थ के वाचक अनेक शब्दो की व्याख्या के द्वारा द्रव्य का विवेचन किया गया है। जैसे—सत्त्व, भूत, प्राणी और जीव, ये शब्द एक अर्थ के वाचक हैं, आदि।

४ करणानुयोग—द्रव्य की निष्पत्ति मे साधकतम कारण को करण कहते हैं। जैसे घट की निष्पत्ति मे मिट्टी, कुम्भकार, चक्र आदि। जीव को क्रियाओ म काल, स्वभाव नियति, आदि साधक हैं। इस प्रकार द्रव्यो के साधकतम कारणो का विवेचन इस करणानुयोग मे किया गया है।

५ अर्पितानर्पितानुयोग—मुख्य या प्रधान विवक्षा को अर्पित और गौण या अप्रधान विवक्षा को अनर्पित कहते हैं। इस अनुयोग मे सभी द्रव्यो के गुण-पर्यायो का विवेचन मुख्य और गौण की विवक्षा से किया गया है।

६ भाविताभावितानुयोग—इस अनुयोग मे द्रव्यान्तर से प्रभावित या अप्रभावित होने का विचार किया गया है। जैसे—सकषाय जीव अच्छे या बुरे वातावरण से प्रभावित होता है, किन्तु अकषाय जीव नही होता, आदि।

७ वाह्यावाह्यानुयोग—इस अनुयोग में एक द्रव्य की दूसरे द्रव्य के साथ वाह्यता (भिन्नता) और अवाह्यता (अभिन्नता) का विचार किया गया है।

८ शाश्वताशाश्वतानुयोग—इस अनुयोग मे द्रव्यो के शाश्वत (नित्य) और अशाश्वत (अनित्य) धर्मों का विचार किया गया है।

९ तथाज्ञानानुयोग—इसमे द्रव्यो के यथाथ स्वरूप का विचार किया गया है।

१० अतथाज्ञानानुयोग—इस अनुयोग मे मिथ्यादृष्टियो के द्वारा प्ररुपित द्रव्यो के स्वरूप का (अयथाथ स्वरूप का) निरूपण किया गया है (४६)।

उत्पातपवत सूत्र

४७—चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तिगिंछिकूडे उप्पातव्वते मूल दस बावीसे जोयणसते विक्खभेण पण्णत्ते।

असुरेंद्र, असुरकुमारराज चमर का तिगिंछकूट नामक उत्पात पवत मूल मे दश सौ बाईस (१०२२) याजन विस्तत कहा गया है (४७)।

४८—चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सोमस्स महारण्णो सोमप्पभे उप्पातपव्वते दस जोयणसयाइ उड्ढ उच्चत्तेण, दस गाउयसताइ उव्वेहेण, मूले दस जोयणसयाइ विक्खभेण पण्णत्ते।

असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के लोकपाल महाराज सोम का सोमप्रभ नामक उत्पातपवत दश सौ (१०००) योजन ऊचा, दश सौ गव्यूति भूमि मे गहरा और मूल मे दश सौ (१०००) याजन विस्तत कहा गया है (४८)।

४९—चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो जमस्स महारण्णो जमप्पभे उप्पातपव्वते एव चेव।

असुरेंद्र असुरकुमारराज चमर के लोकपाल यम महाराज का यमप्रभनामक उत्पातपवत सोम के उत्पातपवत के समान ही ऊचा, गहरा और विस्तार वाला कहा गया है (४९)।

५०—एव वरुणस्सवि।

इसी प्रकार वरुण लोकपाल का उत्पातपवत भी जानना चाहिए (५०)।

५१—एव वेसमणस्सवि।

इसी प्रकार वश्रमण लोकपाल का उत्पातपवत भी जानना चाहिए (५१)।

५२—बलिस्स ण वइरोयणिदस्स वइरोयणरण्णो रुयगिंदे उप्पातपव्वते मूले दस बावीसे जोयणसते विक्खभेण पण्णत्ते।

वैरोचनेंद्र वैरोचनराज बलि का रुचकेंद्र नामक उत्पातपवत मूल मे दश सौ बाईस (१०२२) याजन विस्तृत कहा गया है (५२)।

५३—बलिस्स ण वइरोयणिदस्स वइरोयणरण्णो सोमस्स एव चेव, जधा चमरस्स लोगपालाण त चेव बलिस्सवि।

५ प्रदेश-अनन्त—प्रदेशों की अपेक्षा 'अनन्त' की गणना।
६ एकत अनन्त—एक ओर से अनन्त, जैसे अतीतकाल की अपेक्षा अनन्त समयों की गणना।
७ द्विधा अनन्त—दोनों ओर से अनन्त, जैसे—अतीत और अनागत काल की अपेक्षा अनन्त समयों की गणना।
८ देश विस्तार-अनन्त—दिशा या प्रतर की दृष्टि से अनन्त गणना।
९ सर्वविस्तार-अनन्त—क्षेत्र की व्यापकता की दृष्टि से अनन्त।
१० शाश्वत-अनन्त—शाश्वतता या नित्यता की दृष्टि से अनन्त (९६)।

पूर्ववस्तुसूत्र

९७—उप्पायपुव्वस्स णं दस वत्थू पण्णत्ता।

उत्पादपूर्व के वस्तु नामक दश अध्याय कहे गये हैं (९७)।

९८—अत्थिणत्थिप्पवायपुव्वस्स णं दस चूलवत्थू पण्णत्ता।

अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व के चूलावस्तु नामक दश लघु अध्याय कहे गये हैं (९८)।

प्रतिषेवना-सूत्र

९९—दसविहा पडिसेवणा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

दप्प पमायऽणाभोगे, आउरे आवतीसु य।
संकिते सहसक्कारे, भयप्पओसा य वीमंसा ॥१॥

प्रतिषेवना दश प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ दर्पप्रतिषेवना, २ प्रमादप्रतिषेवना, ३ अनाभोगप्रतिषेवना, ४ आतुरप्रतिषेवना ५ आपत्प्रतिषेवना, ६ शंकितप्रतिषेवना, ७ सहसाकरणप्रतिषेवना, ८ भयप्रतिषेवना, ९ प्रदोषप्रतिषेवना १० विमर्शप्रतिषेवना।

विवेचन—गृहीत व्रत की मर्यादा के प्रतिकूल आचरण और खान पान आदि करने को प्रतिषेवणा या प्रतिसेवना कहते हैं। प्रस्तुत सूत्र में कही गई प्रतिसेवनाओं का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

१ दर्पप्रतिसेवना—दर्प या उद्धत भाव से जीव-घात आदि करना।
२ प्रमादप्रतिसेवना—विकथा आदि प्रमाद के वश जीव-घात आदि करना।
३ अनाभोगप्रतिसेवना—विस्मृतिवश या उपयोगशून्यता से अयोग्य वस्तु का सेवन करना।
४ आतुरप्रतिसेवना—भूख-प्यास आदि से पीड़ित होकर अयोग्य वस्तु का सेवन करना।
५ आपत्प्रतिसेवना—आपत्ति आने पर अयोग्य कार्य करना।
६ शंकितप्रतिसेवना—एषणीय वस्तु में भी शंका होने पर उसका सेवन करना।
७ सहसाकरणप्रतिसेवना—अकस्मात् किसी अयोग्य वस्तु का सेवन हो जाना।
८ भयप्रतिसेवना—भय-वश किसी अयोग्य वस्तु का सेवन करना।

९ प्रदोपप्रतिसेवना—द्वेष-वश जीव-घात आदि करना ।

१० विमशप्रतिसेवना—शिष्यो की परीक्षा के लिए किसी अयोग्य काय को करना ।

इन प्रतिसेवनाओ के अन्य उपभेदो का विस्तृत विवेचन निशीथभाष्य आदि से जानना चाहिए (६९) ।

आलोचना सूत्र

७०—दस आलोयणादोसा पण्णत्ता, त जहा—

आकपइत्ता अणुमाणइत्ता, ज दिट्ठ बायर च सुहुम वा ।
छण्ण-- सद्दाउलग, बहुजण अव्वत्त तस्सेवी ।।१।।

आलोचना के दश दोप कहे गये है । जैसे—

१ आकम्प्य या आकम्पित दोप २ अनुमन्य या अनुमानित दोप, ३ दृष्टदोप, ४ बादरदोप, ५ सूक्ष्म दोप, ६ छन्न दोप, ७ शब्दाकुलित दोप ८ बहुजन दोप ९ अव्यक्त दोप, १० तत्सेवी दोप ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे आलोचना के दश दोपो को प्रतिपादक जो गाथा दी गई है, वह निशीथभाष्य चूर्णि मे मिलती है और कुछ पाठ भेद के साथ दि० ग्रन्थ मूलाचार के शीलगुणाधिकार मे तथा भगवती आराधना मे मूल गाथा के रूप मे निबद्ध एव अन्य ग्रन्थो मे उद्धृत पाई जाती है । दोपो के अर्थ मे कही-कही कुछ अन्तर है उस सब का स्पष्टीकरण श्वे० व्याख्या० न० १ मे और दि० व्याख्या न० २ मे इस प्रकार है—

(१) १ आकम्प्य या आकम्पित दोप—सेवा आदि के द्वारा प्रायश्चित्त देने वाले की आराधना कर आलोचना करना, गुरु को उपकरण देने मे वे मुझे लघु प्रायश्चित्त देगे, ऐसा विचार कर उपकरण देकर आलोचना करना ।
२ कपते हुए आलोचना करना जिससे कि गुरु अल्प प्रायश्चित्त दें ।

(२) १ अनुमान्य या अनुमानितदोप—'मै दुर्बल हू मुझे अल्प प्रायश्चित्त देवें', इस भाव से अनुनय कर आलोचना करना ।
२ शारीरिक शक्ति का अनुमान लगाकर तदनुसार दोप-निवेदन करना, जिससे कि गुरु उससे अधिक प्रायश्चित्त न दे ।

(३) १ यद्दृष्ट गुरु आदि के द्वारा जो दोप देख लिया गया है, उसी की आलोचना करना, अन्य अदृष्ट दोपो की नही करना ।
२ दूसरो के द्वारा अदृष्ट दोप छिपाकर दृष्ट दोप की आलोचना करना ।

(४) १ बादर दोप—केवल स्थूल या बडे दोप की आलोचना करना ।
२ सूक्ष्म दोप न कहकर केवल स्थूल दोप की आलोचना करना ।

(५) १ सूक्ष्म दोप—केवल छोटे दोपो की आलोचना करना ।
२ स्थूल दोप कहने मे गुरुप्रायश्चित्त मिलेगा यह सोचकर छोटे छोटे दोपो की आलोचना करना ।

(६) १ छन्न दोप—इस प्रकार से आलोचना करना कि गुरु सुनने न पावें ।
२ किसी बहाने से दोप कह कर स्वय प्रायश्चित्त ले लेना अथवा गुप्त रूप से एकान्त में जाकर गुरु से दोप कहना जिससे कि दूसरे सुन न पावें ।

(७) १ शब्दाकुल या शब्दाकुलित दोष—जोर-जोर से बोलकर आलोचना करना, जिससे कि दूसरे अगीतार्थ साधु सुन ले।
 २ पाक्षिक आदि प्रतिक्रमण के समय कोलाहलपूर्ण वातावरण मे अपने दोष की आलोचना करना।
(८) १ बहुजन दोष—एक के पास आलोचना कर शंकाशील होकर फिर उसी दोष की दूसरे के पास जाकर आलोचना करना।
 २ बहुत जनो के एकत्रित होने पर उनके सामने आलोचना करना।
(९) १ अव्यक्त दोष—अगीतार्थ साधु के पास दोषो की आलोचना करना।
 २ दोषो की अव्यक्त रूप मे आलोचना करना।
(१०) १ तत्सेवी दोष—आलोचना देने वाले जिन दोषो का स्वय सेवन करते हैं, उनके पास जाकर उन दोषो की आलोचना करना। अथवा—मेरा दोष इसके समान है, इसे जो प्रायश्चित्त प्राप्त हुआ है, वही मेरे लिए भी उपयुक्त है, ऐसा सोचकर अपने दोषो का सवरण करना।
 २ जो व्यक्ति अपने समान ही दोषों से युक्त है, उसको अपने दोष का निवेदन करना, जिससे कि वह बड़ा प्रायश्चित्त न दे। अथवा—जिस दोष का प्रकाशन किया है उसका पुन सेवन करना।

७१—दसहिं ठाणेहिं सपण्णे अणगारे अरिहति अत्तदोसमालोएत्तए, त जहा—जाइसपण्णे, कुलसपण्णे, (विणयसपण्णे णाणसपण्णे, दसणसपण्णे, चरित्तसपण्णे), खते, दते, अमायी, अपच्छाणुतावी।

दश स्थानो से सम्पन्न अनगार अपने दोषो की आलोचना करने के योग्य होता है। जैसे—

१ जातिसम्पन्न, २ कुलसम्पन्न, ३ विनयसम्पन्न, ४ ज्ञानसम्पन्न, ५ दर्शनसम्पन्न, ६ चारित्रसम्पन्न, ७ क्षान्त (क्षमासम्पन्न) ८ दान्त (इन्द्रिय-जयी) ९ अमायावी (मायाचार-रहित) १० अपश्चात्तापी (पीछे पश्चात्ताप नही करने वाला) (७१)।

७२—दसहिं ठाणेहिं सपण्णे अणगारे अरिहति आलोयण पडिच्छित्तए, त जहा—आयारव, आहारव, ववहारव, ओवीलए, पकुव्वए, अपरिस्साई, णिज्जावए), अवायदसी, पियधम्मे, दढधम्मे।

दश स्थानो से सम्पन्न अनगार आलोचना देने के योग्य होता है। जैसे—

१ आचारवान्—जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य इन पच आचारो से युक्त हो।
२ आधारवान्—आलोचना लेने वाले के द्वारा आलोचना किये जाने वाले दोषो का जानने वाला हो।
३ व्यवहारवान्—आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत इन पाच व्यवहारो का जानने वाला हो।
४ अपव्रीडक—आलोचना करने वाले की लज्जा या सकोच छुड़ाकर उसमे आलोचना करने का साहस उत्पन्न करने वाला हो।
५ प्रकारी—अपराधी के आलोचना करने पर उसकी शुद्धि करने वाला हो।

५ अपरिश्रावी—आलोचना करने वाले के दोष दूसरो के सामने प्रकट करने वाला न हो।
७ निर्यापक—बड़े प्रायश्चित्त को भी निर्वाह कर सके, ऐसा सहयोग देने वाला हो।
८ अपायदर्शी—सम्यक आलोचना न करने के अपायों-दुष्फलो को बताने वाला हो।
६ प्रियधर्मा—धर्म से प्रेम रखने वाला हो।
१० दृढधर्मा—आपत्तिकाल मे भी धर्म मे दृढ रहने वाला हो (७२)।

प्रायश्चित्त सूत्र

७३—दसविधे पायच्छित्ते, त जहा—आलोयणारिहे, (पडिक्कमणारिहे, तदुभयारिहे, विवेगारिहे, विउसग्गारिहे, तवारिहे छेयारिहे, मूलारिहे), अणवट्ठप्पारिहे, पारचियारिहे।

प्रायश्चित्त दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ आलोचना के योग्य—गुरु के सामने निवेदन करने से ही जिसकी शुद्धि हो।
२ प्रतिक्रमण के योग्य—'मेरा दुष्कृत मिथ्या हो' इस प्रकार के उच्चारण से जिस दोष की शुद्धि हो।
३ तदुभय के योग्य—जिसकी शुद्धि आलोचना और प्रतिक्रमण दोनो से हो।
४ विवेक के योग्य—जिसकी शुद्धि ग्रहण किये गये अशुद्ध भक्त-पानादि के त्याग से हो।
५ व्युत्सर्ग के योग्य—जिस दोष की शुद्धि कायोत्सर्ग से हो।
६ तप के योग्य—जिस दोष की शुद्धि अनशनादि तप के द्वारा हो।
७ छेद के योग्य—जिस दोष की शुद्धि दीक्षा-पर्याय के छेद से हो।
८ मूल के योग्य—जिस दोष की शुद्धि पुन दीक्षा देने से हो।
६ अनवस्थाप्य के योग्य—जिस दोष की शुद्धि तपस्या पूर्वक पुन दीक्षा देने से हो।
१० पाराचिक के योग्य—भर्त्सना एव अवहेलनापूर्वक एक वार सघ से पृथक् कर पुन दीक्षा देने से जिस दोष की शुद्धि हो (७३)।

मिथ्यात्व-सूत्र

७४—दसविधे मिच्छत्ते पण्णत्ते, त जहा—अधम्मे धम्मसण्णा, धम्मे अधम्मसण्णा, उम्मग्गे मग्गसण्णा, मग्गे उम्मग्गसण्णा, अजीवेसु जीवसण्णा, जीवेसु अजीवसण्णा असाहुसु साहुसण्णा, साहुसु असाहुसण्णा, अमुत्तेसु मुत्तसण्णा, मुत्तेसु अमुत्तसण्णा।

मिथ्यात्व दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ अधर्म को धर्म मानना, २ धर्म को अधर्म मानना,
३ उन्मार्ग को सुमार्ग मानना, ४ सुमार्ग को उन्मार्ग मानना,
५ अजीवों को जीव मानना, ६ जीवों को अजीव मानना,
७ असाधुओं को साधु मानना, ८ साधुओं को असाधु मानना,
६ अमुक्तों को मुक्त मानना, १० मुक्तों को अमुक्त मानना (७४)।

तीर्थंकर सूत्र

७५—चदप्पभे ण अरहा दस पुव्वसतसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे (बुद्धे मुत्ते अतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख) प्पहीणे।

अर्हन् चन्द्रप्रभ दश लाख पूर्व वर्ष की पूर्ण आयु पालकर सिद्ध बुद्ध मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत और समस्त दुःखों से रहित हुए (७५)।

७६—धम्मे णं अरहा दस वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे (बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख) प्पहीणे।

अर्हन् धर्मनाथ दश लाख वर्ष की पूर्ण आयु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत परिनिर्वृत और समस्त दुःखों से रहित हुए (७६)।

७७—णमी णं अरहा दस वाससहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे (बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख) प्पहीणे।

अर्हन् नमि दश हजार वर्ष की पूर्ण आयु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत और समस्त दुःखों से रहित हुए (७७)।

वासुदेव-सूत्र

७८—पुरिससीहे णं वासुदेवे दस वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता छट्ठीए तमाए पुढवीए णेरइयत्ताए उववण्णे।

पुरुषसिंह नाम के पांचवें वासुदेव दश लाख वर्ष की पूर्ण आयु भोगकर 'तमा' नाम की छठी पृथिवी में नारक रूप से उत्पन्न हुए (७८)।

तीर्थकर सूत्र

७९—णेमी णं अरहा दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस य वाससयाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे (बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख) प्पहीणे।

अर्हत नमि के शरीर की ऊंचाई दश धनुष की थी। वे एक हजार वर्ष की आयु पालकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत और समस्त दुःखों से रहित हुए (७९)।

वासुदेव-सूत्र

८०—कण्हे णं वासुदेवे दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस य वाससयाइं सव्वाउयं पालइत्ता तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए णेरइयत्ताए उववण्णे।

वासुदेव कृष्ण के शरीर की ऊंचाई दश धनुष की थी। वे दश सौ (१०००) वर्ष की पूर्णायु पालकर 'वालुकाप्रभा' नाम की तीसरी पृथिवी में नारक रूप से उत्पन्न हुए (८०)।

भवनवासि सूत्र

८१—दसविहा भवणवासी देवा पण्णत्ता, तं जहा—असुरकुमारा जाव थणियकुमारा।

भवनवासी देव दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ असुरकुमार, २ नागकुमार, ३ सुपर्णकुमार, ४ विद्युत्कुमार
५ अग्निकुमार, ६ द्वीपकुमार, ७ उदधिकुमार, ८ दिशाकुमार
९ वायुकुमार, १० स्तनितकुमार (८१)।

८२—एएसि ण दसविधाण भवणवासीण देवाण दस चेइयरुक्खा पण्णत्ता, त जहा—

संग्रहणी गाथा

अस्सत्थ सत्तिवण्णे, सामलि उबर सिरीस दहिवण्णे ।
वजुल-पलास वग्घा, तले य कणियाररुक्खे ॥१॥

इन दशो प्रकार के भवनवासी देवो के दश चत्यवृक्ष कहे गये है । जैसे—

१ असुरकुमार का चैत्यवृक्ष—अश्वत्थ (पीपल) ।
२ नागकुमार का चैत्यवृक्ष—सप्तपण (सात पत्ते वाला) वृक्ष विशेष ।
३ सुपणकुमार का चत्यवृक्ष—शाल्मली (सेमल) वृक्ष ।
४ विद्युत्कुमार का चैत्यवृक्ष—उदुम्बर (गूलर) वृक्ष ।
५ अग्निकुमार का चत्यवृक्ष—शिरीष (सिरीस) वृक्ष ।
६ द्वीपकुमार का चैत्यवृक्ष—दधिपण वक्ष ।
७ उदधिकुमार का चैत्यवृक्ष—व जुल (अशोक वृक्ष) ।
८ दिशाकुमार का चत्यवृक्ष—पलाश वृक्ष ।
९ वायुकुमार का चत्यवृक्ष—व्याघ्र (लाल एरण्ड) वृक्ष ।
१० स्तनितकुमार का चत्यवृक्ष—कणिकार (कनेर) वृक्ष (८२) ।

सौख्य सूत्र

८३—दसविधे सोक्खे पण्णत्ते, त जहा—

आरोग्ग दीहमाउ, अड्ढेज्ज काम भोग सतोसे ।
अत्थि सुहभोग णिक्खम्ममेव तत्तो अणाबाहे ॥१॥

सुख दश प्रकार का कहा गया है । जसे—

१ आरोग्य (नीरोगता) । २ दीघ आयुष्य ।
३ आढचता (धन की सम्पन्नता) । ४ काम (शब्द और रूप का सुख) ।
५ भोग (ग ध, रस और स्पश का सुख) ६ स तोष निर्लोभता ।
७ अस्ति—जब जिस वस्तु की आवश्यकता हो तब उसकी पूर्ति हो जाना ।
८ शुभभोग—सु दर रम्य भोगो की प्राप्ति होना ।
९ निष्क्रमण—प्रव्रजित होने का सुयोग मिलना ।
१० अनाबाध—ज म-मृत्यु आदि की बाधाओ से रहित मुक्ति-सुख ।

उपघात विशोधि सूत्र

८४—दसविधे उवघाते पण्णत्ते, त जहा—उग्गमोवघाते, उप्पायणोवघाते, (एसणोवघाते, परिकम्मोवघाते), परिहरणोवघाते, णाणोवघाते, दसणोवघाते, चरित्तोवघाते, अचियत्तोवघाते, सारक्खणोवघाते ।

उपघात दश प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ उद्गमदोष—भिक्षासम्ब धी दोष से होने वाला चारित्र का घात ।

२ उत्पादनादोष—भिक्षासम्बन्धी उत्पाद से होने वाला चारित्र का उपघात ।
३ एषणादोष—गोचरी के दोष से होने वाला चारित्र का उपघात ।
४ परिकमदोष—वस्त्र पात्र आदि के सवारने से होने वाला चारित्र का उपघात ।
५ परिहरणदोष—अकल्प्य उपकरणो के उपभोग से होने वाला चारित्र का उपघात ।
६ प्रमाद आदि से होने वाला ज्ञान का उपघात ।
७ शका आदि से होने वाला दर्शन का उपघात ।
८ समितियो के यथाविधि पालन न करने से होने वाला चारित्र का उपघात ।
९ अप्रीति या अविनय से होने वाला विनय आदि गुणो का उपघात ।
१० सरक्षण-उपघात—शरीर, उपधि आदि मे मूर्च्छा रखने से होने वाला परिग्रह-विरमण का उपघात (८४) ।

८५—दसविधा विसोही पण्णत्ता, त जहा—उग्गमविसोही, उप्पायणविसोही, (एसणविसोही, परिकम्मविसोही, परिहरणविसोही णाणविसोही, दसणविसोही, चरित्तविसोही, अचियत्तविसोही), सारक्खणविसोही ।

विशोधि दश प्रकार की कही गई है । जैसे—
१ उद्गम-विशोधि—उद्गम-सम्बन्धी दोषो की विशुद्धि ।
२ उत्पादना-विशोधि—उत्पादन-सम्बन्धी दोषो की विशुद्धि ।
३ एषणा-विशोधि—एषणा-सम्बन्धी दोषो की विशुद्धि ।
४ परिकम-विशोधि—वस्त्र पात्रादि सवारने से उत्पन्न दोषो की विशुद्धि ।
५ परिहरण-विशोधि—अकल्प्य उपकरणो के उपभोग से उत्पन्न दोषो की विशुद्धि ।
६ ज्ञान विशोधि—ज्ञान के अगो का यथाविधि अभ्यास न करने से लगे हुए दोषो की विशुद्धि ।
७ दर्शन-विशोधि—सम्यग्दर्शन मे लगे हुए दोषो की विशुद्धि ।
८ चारित्र-विशोधि—चारित्र मे लगे हुए दोषो की विशुद्धि ।
९ अप्रीति-विशोधि—अप्रीति की विशुद्धि ।
१० सरक्षण विशोधि—सयम के साधनभूत उपकरणो मे मूर्च्छादि रखने से लगे हुए दोषो की विशुद्धि (८५) ।

सक्लेश असंक्लेश सूत्र

८६—दसविधे सकिलेसे पण्णत्ते, त जहा—उवहिसकिलेसे उवस्सयसकिलेसे, कसायसकिलेसे, भत्तपाणसकिलेसे, मणसकिलेसे, वइसकिलेसे, कायसकिलेसे, णाणसकिलेसे, दसणसकिलेसे, चरित्तसकिलेसे ।

सक्लेश दश प्रकार का कहा गया है । जैसे—
१ उपधि सक्लेश—वस्त्र पात्रादि उपधि के निमित्त से होने वाला सक्लेश ।
२ उपाश्रय-सक्लेश—उपाश्रय या निवास स्थान के निमित्त से होने वाला सक्लेश ।
३ कषाय-सक्लेश—क्रोधादि के निमित्त से होने वाला सक्लेश ।
४ भक्त पान-सक्लेश—आहारादि के निमित्त से होने वाला सक्लेश ।

५ मन सक्लेश—मन के उद्वेग से होने वाला सक्लेश।
६ वाक्-सक्लेश—वचन के निमित्त से होने वाला सक्लेश।
७ काय-सक्लेश—शरीर के निमित्त से होने वाला सक्लेश।
८ ज्ञान-सक्लेश—ज्ञान की अशुद्धि से होने वाला सक्लेश।
९ दर्शन-सक्लेश—दर्शन की अशुद्धि से होने वाला सक्लेश।
१० चारित्र सक्लेश—चारित्र की अशुद्धि से होने वाला सक्लेश (८६)।

८७—दसविहे असंकिलेसे पण्णत्ते, त जहा—उवहिअसंकिलेसे, (उवस्सयअसंकिलेसे, कसाय असंकिलेसे, भत्तपाणअसंकिलेसे, मणअसंकिलेसे, वइअसंकिलेसे, कायअसंकिलेसे, णाणअसंकिलेसे, दसणअसंकिलेसे), चरित्तअसंकिलेसे।

असक्लेश (विमल भाव) दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ उपधि-असक्लेश—उपधि के निमित्त से सक्लेश न होना।
२ उपाश्रय-असक्लेश—निवासस्थान के निमित्त से सक्लेश न होना।
३ कषाय-असक्लेश—कषाय के निमित्त से सक्लेश न होना।
४ भक्त-पान-असक्लेश—आहारादि के निमित्त से सक्लेश न होना।
५ मन-असक्लेश—मन के निमित्त से सक्लेश न होना, मन की विशुद्धि।
६ वाक्-असक्लेश—वचन के निमित्त से सक्लेश न होना।
७ काय असक्लेश—शरीर के निमित्त से सक्लेश न होना।
८ ज्ञान-असक्लेश—ज्ञान की विशुद्धता।
९ दर्शन-असक्लेश—सम्यग्दर्शन की निर्मलता।
१० चारित्र-असक्लेश—चारित्र की निर्मलता (८७)।

बल सूत्र

८८—दसविधे बले पण्णत्ते त जहा—सोतिंदियबले (चक्खिदियबले, घाणिंदियबले, जिब्भिदियबले), फासिदियबले, णाणबले दसणबले, चरित्तबले, तवबले, वीरियबले।

बल दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ श्रोत्रेन्द्रिय-बल।	२ चक्षुरिन्द्रिय-बल।
३ घ्राणेन्द्रिय-बल।	४ रसनेन्द्रिय बल।
५ स्पर्शनेन्द्रिय-बल।	६ ज्ञानबल।
७ दर्शन-बल।	८ चारित्रबल।
९ तपोबल।	१० वीर्यबल (८८)।

सत्य-सूत्र

८९—दसविहे सच्चे पण्णत्ते, त जहा—

सगहणी-गाहा

जणवय सम्मय ठवणा, णामे रूवे पडुच्चसच्चे य।
ववहार भाव जोगे, दसमे ओवम्मसच्चे य ॥१॥

दृष्टिवाद सूत्र

९२—दिट्ठिवायस्स ण दस णामधेज्जा पण्णत्ता, त जहा—दिट्ठिवाएति वा, हेउवाएति वा, भूयवाएति वा, तच्चावाएति वा, सम्मावाएति वा, धम्मावाएति वा, भासाविजएति वा, पुव्वगतेति वा, अणुजोगगतेति वा, सव्वपाणभूतजीवसत्तसुहावहेति वा।

दृष्टिवाद नामक बारहवे अग के दश नाम कहे गये है। जसे—

१ दृष्टिवाद—अनेक दृष्टियो से या अनेक नयो की अपेक्षा वस्तु तत्त्व का प्रतिपादन करने वाला।

२ हेतुवाद—हेतु-प्रयोग से या अनुमान के द्वारा वस्तु की सिद्धि करने वाला।

३ भूतवाद—भूत अर्थात् सद्-भूत पदार्थों का निरूपण करने वाला।

४ तत्त्ववाद या तथ्यवाद—सारभूत तत्त्व का, या यथार्थ तथ्य का प्रतिपादन करने वाला।

५ सम्यग्-वाद—पदार्थों के सत्य अर्थ का प्रतिपादन करने वाला।

६ धर्मवाद—वस्तु के पर्यायरूप धर्मों का, अथवा चारित्ररूप धर्म का प्रतिपादन करने वाला।

७ भाषाविचय, या भाषाविजय—सत्य आदि अनेक प्रकार की भाषाओ का विचय अर्थात् निर्णय करने वाला, अथवा भाषाओ की विजय अर्थात् समृद्धि का वर्णन करने वाला।

८ पूर्वगत—सर्वप्रथम गणधरो के द्वारा ग्रथित या रचित उत्पादपूर्व आदि का वर्णन करने वाला।

९ अनुयोगगत—प्रथमानुयोग, गण्डिकानुयोग आदि अनुयोगो का वर्णन करने वाला।

१० सर्वप्राण-भूत-जीव-सत्त्व-सुखावह—सभी द्वीन्द्रियादि प्राणी, वनस्पतिरूप भूत, पचेन्द्रिय जीव और पृथिवी आदि सत्त्वो के सुखो का प्रतिपादन करने वाला (९२)।

शस्त्र सूत्र

९३—दसविधे सत्थे पण्णत्ते, त जहा—

सग्रह-श्लोक

सत्थमग्गी विस लोण, सिणहो खारमबिल।
दुप्पउत्तो मणो वाया, काओ भावो य अविरती ॥१॥

शस्त्र दश प्रकार के कहे गये हैं। जसे—

१ अग्निशस्त्र, २ विषशस्त्र, ३ लवणशस्त्र, ४ स्नेहशस्त्र, ५ क्षारशस्त्र, ६ अम्लशस्त्र, ७ दुष्प्रयुक्त मन, ८ दुष्प्रयुक्त वचन, ९ दुष्प्रयुक्त काय, १० अविरति भाव (९३)।

विवेचन—जीव घात या हिंसा के साधन को शस्त्र कहते है। वह दो प्रकार का होता है—द्रव्य-शस्त्र और भाव-शस्त्र। सूत्रोक्त १० प्रकार के शस्त्रो मे से आदि के छह द्रव्य-शस्त्र हैं और अतिम चार भाव-शस्त्र हैं। अग्नि आदि से द्रव्य हिंसा होती है और दुष्प्रयुक्त मन आदि से भावहिंसा होती है। लवण, क्षार अम्ल आदि वस्तुओ के सम्बन्ध से सचित्त वनस्पति, आदि अचित्त हो जाती हैं। इसी प्रकार स्नेह-तेल-घृतादि से भी सचित्त वस्तु अचित्त हो जाती है, इसलिए लवण आदि को भी शस्त्र कहा गया है।

दोष सूत्र

६४—दसविहे दोसे पण्णत्ते, त जहा—

तज्जातदोसे मतिभगदोसे, पसत्थारदोसे परिहरणदोसे ।
सलक्खण क्कारण हेउदोसे सकामण णिग्गह-वत्थुदोसे ॥१॥

दोष दश प्रकार के कहे गये है । जैसे—

१ तज्जात दोष—वादकाल मे प्रतिवादी से क्षुब्ध होकर चुप रह जाना ।
२ मतिभग दोष—तत्त्व को भूल जाना ।
३ प्रशास्तृ-दोष—सभ्य या सभाध्यक्ष की ओर से होने वाला दोष, पक्षपात आदि ।
४ परिहरण दोष—वादी के द्वारा दिये गये दोष का छल या जाति से परिहार करना ।
५ स्वलक्षण दोष—वस्तु के निर्दिष्ट लक्षण म अव्याप्ति, अतिव्याप्ति या असभव दोष का होना ।
६ कारण-दोष—कारण-सामग्री के एक अश को कारण मान लेना, या पूर्ववर्ती होने मात्र से कारण मानना ।
७ हेतु दोष—हेतु का असिद्धता, विरुद्धता आदि दोष म दोषयुक्त होना ।
८ सक्रमण-दोष—प्रस्तुत प्रमेय का छोडकर अप्रस्तुत प्रमेय की चर्चा करना ।
९ निग्रह-दोष—छल, जाति, वितण्डा आदि के द्वारा प्रतिवादी को निगृहीत करना ।
१० वस्तुदोष—पक्ष सम्बन्धी प्रत्यक्षनिराकृत, अनुमाननिराकृत आदि दोषो मे से कोई दोष होना (९४) ।

विशेष सूत्र

९५—दसविधे विसेसे पण्णत्ते, त जहा—

वत्थु तज्जातदोसे य दोसे एगट्ठिएत्ति य ।
कारणे य पडुप्पण्णे दोसे णिच्चेहिय अट्ठमे ॥
अत्तणा उवणीते य, विसेसेति य ते दस ॥१॥

विशेष दश प्रकार के कहे गये है । जैसे—

१ वस्तुदोष-विशेष—पक्ष सम्बन्धी दोष के विशेष प्रकार ।
२ तज्जात दोष विशेष—वादकाल मे प्रतिवादी के जन्म आदि सम्बन्धी विशेष दोष ।
३ दोष-विशेष—मतिभग आदि दोषो के विशेष प्रकार ।
४ एकार्थिक-विशेष—एक अर्थ के वाचक शब्दो की निरुक्ति-जनित विशेष प्रकार ।
५ कारण-विशेष—कारण के विशेष प्रकार ।
६ प्रत्युत्पन्न दोष-विशेष—वस्तु को क्षणिक मानने पर कृतनाश और अकृत-अभ्यागम आदि दोषो की प्राप्ति ।
७ नित्यदोष विशेष—वस्तु को सर्वथा नित्य मानने पर प्राप्त होने वाले दोष के विशेष प्रकार ।
८ अधिकदोष-विशेष—वादकाल मे दृष्टान्त, उपनय आदि का अधिक प्रयोग ।

९ आत्मोपनीत-विशेष—उदाहरण दोष का एक प्रकार।
१० विशेष—वस्तु का भेदात्मक धर्म (९५)।

शुद्धवाग्-अनुयोग सूत्र

९६—दसविधे सुद्धवायाणुओगे पण्णत्ते, तं जहा—चकारे, मकारे, पिंकारे, सेयकारे, सायकारे, एगत्ते, पुधत्ते, संजूहे, संकामिते, भिण्णे।

वाक्य-निरपेक्ष शुद्ध पद का अनुयोग दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ चकार-अनुयोग—'च' शब्द के अनेक अर्थों का विस्तार। जैसे—कहीं 'च' शब्द समुच्चय, कहीं अन्वादेश, कहीं अवधारण आदि अर्थ का बोधक होता है।
२ मकार-अनुयोग—'म' शब्द के अनेक अर्थों का विस्तार। जैसे—'जेणामेव, तेणामेव' आदि पदों में उसका प्रयोग आगमिक है, लाक्षणिक या प्राकृतव्याकरण से सिद्ध नहीं, आदि।
३ पिकार-अनुयोग—'अपि' शब्द के सम्भावना, निवृत्ति, अपेक्षा, समुच्चय, आदि अनेक अर्थों का विचार।
४ सेयकार अनुयोग—'से' शब्द के अनेक अर्थों का विचार। जैसे—कहीं 'से' शब्द 'अथ' का वाचक होता है, कहीं 'वह' का वाचक होता है आदि।
५ सायकार अनुयोग—'साय' आदि निपात शब्दों के अर्थ का विचार। जैसे—वह कहीं सत्य अर्थ का और कहीं प्रश्न का बोधक होता है।
६ एकत्व-अनुयोग—एकवचन के अर्थ का विचार। जैसे—'नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं य तवो तहा। एस मग्गुत्ति पन्नत्तो' यहां पर ज्ञान, दर्शनादि समुदितरूप को ही मोक्षमार्ग कहा है। यहां बहुता के लिए भी 'मग्गो' यह एकवचन का प्रयोग किया गया है।
७ पृथक्त्व-अनुयोग—बहुवचन के अर्थ का विचार। जैसे—'धम्मत्थिकायप्पदेसा' इस पद में बहुवचन का प्रयोग उसके असंख्यात प्रदेश बतलाने के लिए है।
८ संयूथ-अनुयोग—समासान्त पद के अर्थ का विचार। जैसे—'सम्मत्तदंसणसुद्ध' इस समासान्त पद का विग्रह अनेक प्रकार से किया जा सकता है—
   १ सम्यग्दर्शन के द्वारा शुद्ध'—तृतीया विभक्ति के रूप में,
   २ सम्यग्दर्शन के लिए शुद्ध'—चतुर्थी विभक्ति के रूप में,
   ३ 'सम्यग्दर्शन से शुद्ध'—पंचमी विभक्ति के रूप में।
९ संक्रामित अनुयोग—विभक्ति और वचन के संक्रमण का विचार। जैसे—'साहूणं वंदणेणं नासति पावं असंकिया भावा' अर्थात्—साधुओं को वन्दना करने से पाप नष्ट होता है और साधु के पास रहने से भाव अशंकित होते हैं। यहां वन्दना के प्रसंग में 'साहूणं' षष्ठी भक्ति है। उसका भाव असंकित होने के सम्बन्ध में पंचमी विभक्ति के रूप से संक्रमित किया गया। यह विभक्ति-संक्रमण है। तथा 'अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइत्ति वुच्चई' यहां 'स चाई' यह बहुवचन के स्थान में एकवचन का संक्रामित प्रयोग है।
१० भिन्न अनुयोग—क्रमभेद और कालभेद आदि का विचार। जैसे—'तिविहं तिविहेणं' यह संग्रहवाक्य है। इसमें १—मणेणं वायाए काएणं, २—न करेमि, न कारवेमि, करतंपि

न समणुजानामि' इन दो खडो का सग्रह किया गया है। द्वितीय खड 'न करेमि' आदि तीन वाक्यो मे 'तिविहेण' का स्पष्टीकरण है और प्रथम खड 'मणेण' आदि तीन वाक्यांशो मे 'तिविहेण' स्पष्टीकरण है। यहा 'न करेमि' आदि बाद मे हैं और 'मणेण' आदि पहले। यह क्रम-भेद है। काल-भेद—जसे—सक्के देविंदे देवराया वदति नमसति' यहा अतीत के अर्थ मे वर्तमान की क्रिया का प्रयोग है (९६)।

दान सूत्र

९७—दसविहे दाणे पण्णत्ते, त जहा—

संग्रह श्लोक

अणुकपा सगहे चेव, भये कालुणिएति य।
लज्जाए गारवेण च, अहम्मे उण सत्तमे ॥
धम्मे य अट्ठमे वुत्ते, काहीति य कतति य ॥१॥

दान दश प्रकार का कहा गया है। जसे—

१ अनुकम्पा-दान—करुणाभाव से दान देना।
२ सग्रह-दान—सहायता के लिए दान देना।
३ भय-दान—भय से दान देना।
४ कारुण्य-दान—मृत व्यक्ति के पीछे दान देना।
५ लज्जा दान—लोक लाज से दान दना।
६ गौरव-दान—यश के लिए, या अपना बडप्पन बताने के लिए दान देना।
७ अधर्म-दान—अधार्मिक व्यक्ति को दान देना या जिससे हिंसा आदि का पोषण हो।
८ धर्म दान—धार्मिक व्यक्ति को दान देना।
९ कृतमिति दान—कृतज्ञता-ज्ञापन के लिए दान दना।
१० करिष्यति दान—भविष्य मे किसी का सहयोग प्राप्त करने की आशा मे दना (९७)।

गति सूत्र

९८—दसविधा गती पण्णत्ता, त जहा—णिरयगती, णिरयविग्गहगती, तिरियगती, तिरियविग्गहगती, (मणुयगती मणुयविग्गहगती, देवगती, देवविग्गहगती), सिद्धगती, सिद्धिविग्गहगती।

गति दश प्रकार की कही गई है। जसे—

१ नरकगति, २ नरकविग्रहगति, ३ तिर्यग्गति ४ तिर्यग्विग्रहगति, ५ मनुष्यगति, ६ मनुष्य-विग्रहगति, ७ देवगति, ८ देवविग्रहगति, ९ सिद्धिगति, १० सिद्धि-विग्रहगति (९८)।

विवेचन—'विग्रह' शब्द के दो अर्थ होते हैं—वक्र या मोड और शरीर। प्रारम्भ के आठ पदो मे से चार गतियो मे उत्पन्न होने वाले जीव ऋजु और वक्र दानो प्रकार से गमन करते है। इस प्रकार प्रत्येक गति का प्रथम पद ऋजुगति का बोधक है और द्वितीयपद वक्रगति का बोधक है, यह स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु सिद्धिगति तो सभी जीवो की 'अविग्रहा जीवस्य' इस तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार विग्रहरहित ही होती है अर्थात् सिद्धजीव सीधी ऋजुगति से मुक्ति प्राप्त करते हैं। इस व्यवस्था के अनुसार दशव पद 'सिद्धिविग्रहगति' नही घटित होती है। इसी बात को ध्यान मे रखकर सस्कृत टीकाकार ने 'सिद्धिविग्गहगइ' त्ति सिद्धावविग्रहेण—अवक्रेण गमन 'सिद्धयविग्रहगति', अर्थात्

सिद्धि-मुक्ति मे अविग्रह से-विना मुड जाना, ऐसी निरुक्ति करके दशव पद की सगति बिठलाई है। नव पद का सामान्य अपेक्षा से और दशव पद को विशेष की विवक्षा से कहकर भेद बताया है।

मुण्ड-सूत्र

९९—दस मु डा पण्णत्ता, त जहा—सोतिंदियमु डे, (चक्खिदियमु डे, घाणिंदियमु डे, जिब्भिंदियमु डे), फासिंदियमु डे, कोहमु डे, (माणमु ड मायामु डे) लोभमु डे, सिरमु ड।

मुण्ड दश प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ श्रोत्रेन्द्रियमुण्ड—श्रोत्रेन्द्रिय के विषय का मुण्डन (त्याग) करने वाला।
२ चक्षुरिन्द्रियमुण्ड—चक्षुरिन्द्रिय के विषय का मुण्डन करने वाला।
३ घ्राणेन्द्रियमुण्ड—घ्राणेन्द्रिय के विषय का मुण्डन करने वाला।
४ रसनेन्द्रियमुण्ड—रसनेन्द्रिय के विषय का मुण्डन करने वाला।
५ स्पर्शनेन्द्रियमुण्ड—स्पर्शनेन्द्रिय के विषय का मुण्डन करने वाला।
६ क्रोधमुण्ड—क्रोध कषाय का मुण्डन करने वाला।
७ मानमुण्ड—मानकषाय का मुण्डन करने वाला।
८ मायामुण्ड—मायाकषाय का मुण्डन करने वाला।
९ लोभमुण्ड—लोभकषाय का मुण्डन करने वाला।
१० शिरोमुण्ड—शिर के केशो का मुण्डन करने कराने वाला (९९)।

सख्यान सूत्र

१००—दसविधे सखाणे पण्णत्ते, त जहा—

सग्रहणी-गाथा

परिकम्म ववहारो रज्जू रासी कला सवण्णे य।
जावतावति वग्गो घणो य तह वग्गवग्गोवि ॥१॥
कप्पो य० ॥

सख्यान (गणित) दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ परिकर्म—जोड, बाकी, गुणा, भाग आदि गणित।
२ व्यवहार—पाटी गणित-प्रसिद्ध श्रेणी व्यवहार, मिश्रक व्यवहार आदि।
३ रज्जु—क्षेत्रगणित, रज्जु से कूप आदि की लबाई-गहराई आदि की माप विधि।
४ राशि—धान्य आदि के ढेर को नापने का गणित।
५ कलासवर्ण—अशो वाली सख्या समान करना।
६ यावत-तावत्—गुणकार या गुणा करनेवाला गणित।
७ वर्ग—दो समान सख्या का गुणन फल।
८ घन—तीन समान सख्याओ का गुणन फल।
९ वर्ग वर्ग—वर्ग का वर्ग।
१० कल्प—लकडी आदि की चिराई आदि का माप करनेवाला गणित (१००)।

प्रत्याख्यान सूत्र

१०१—दसविधे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, त जहा—

> अणागयमतिक्कत, कोडीसहिय णियटित चेव ।
> सागारमणागार परिमाणकड णिरवसेस ।।
> सकेयग चेव अद्धाए, पच्चक्खाण दसविह तु ।।१।।

प्रत्याख्यान दश प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ अनागत-प्रत्याख्यान—आगे किये जाने वाले तप का पहले करना ।

२ अतिक्रान्त-प्रत्याख्यान—जो तप कारणवश वर्तमान मे न किया जा सके, उसे भविष्य मे करना ।

३ कोटिसहित प्रत्याख्यान—जो एक प्रत्याख्यान का अतिम दिन और दूसरे प्रत्याख्यान का आदि दिन हो, वह कोटिसहित प्रत्याख्यान है ।

४ नियत्रित-प्रत्याख्यान—नीरोग या सरोग अवस्था म नियत्रण या नियमपूर्वक अवश्य ही किया जानेवाला तप ।

५ सागार-प्रत्याख्यान—आगार या अपवाद के साथ किया जाने वाला तप ।

६ अनागार प्रत्याख्यान—अपवाद या छूट के बिना किया जाने वाला तप ।

७ परिमाणकृत-प्रत्याख्यान—दत्ति, कवल, गह, द्रव्य, भिक्षा आदि के परिमाणवाला प्रत्याख्यान ।

८ निरवशेष-प्रत्याख्यान—चारो प्रकार के आहार का सर्वथा परित्याग ।

९ सकेत प्रत्याख्यान—सकेत या चिह्न के साथ किया जाने वाला प्रत्याख्यान ।

१० अद्धा-प्रत्याख्यान—मुहूर्त, प्रहर आदि काल की मर्यादा के साथ किया जाने वाला प्रत्याख्यान (१०१) ।

सामाचारी सूत्र

१०२—दसविहा सामायारी पण्णत्ता, त जहा—

सग्रह श्लोक

> इच्छा मिच्छा तहक्कारो, आवस्सिया य णिसीहिया ।
> आपुच्छणा य पडिपुच्छा, छदणा य णिमतणा ।।
> उवसपया य काले, सामायारी दसविहा उ ।।१।।

सामाचारी दश प्रकार की कही गई है । जैसे—

१ इच्छा-समाचारी—कार्य करने या कराने मे इच्छाकार का प्रयोग ।

२ मिच्छा-समाचारी—भूल हो जाने पर मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ऐसा बोलना ।

३ तथाकार-समाचारी—आचार्य के वचन को 'तह' त्ति कहकर स्वीकार करना ।

४ आवश्यकी-समाचारी—उपाश्रय से बाहर जाते समय 'आवश्यक कार्य के लिए जाता हू,' ऐसा बोलकर जाना ।

५ नषेधिकी-समाचारी—कार्य से निवृत्त होकर के आने पर 'मैं निवृत्त होकर आया हू' ऐसा बोलकर उपाश्रय मे प्रवेश करना ।

६ आपृच्छा समाचारी—किसी कार्य के लिए आचार्य से पूछकर जाना।
७ प्रतिपृच्छा-समाचारी—दूसरा का काम करने के लिए आचार्य आदि से पूछना।
८ छन्दना-समाचारी—आहार करने के लिए साधर्मिक साधुओं को बुलाना।
९ निमंत्रणा-समाचारी—'मैं आपके लिए आहारादि लाऊं' इस प्रकार गुरजनादि का निमंत्रित करना।
१० उपसंपदा समाचारी—ज्ञान दर्शन और चारित्र की विशेष प्राप्ति के लिए कुछ समय तक दूसरे आचार्य के पास जाकर उनके समीप रहना (१०२)।

स्वप्न फल सूत्र

१०३—समणे भगवं महावीरे छउमत्थकालियाए अंतिमराइयंसि इमे दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तं जहा—

१ एगं च णं महं घोररूवदित्तधरं तालपिसायं सुमिणे पराजितं पासित्ता णं पडिबुद्धे।
२ एगं च णं महं सुक्किलपक्खगं पुंसकोइलगं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।
३ एगं च णं महं चित्तविचित्तपक्खगं पुंसकोइलं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।
४ एगं च णं महं दामदुगं सव्वरयणामयं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।
५ एगं च णं महं सेतं गोवग्गं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।
६ एगं च णं महं पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमितं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।
७ एगं च णं महं सागरं उम्मी-वीची-सहस्सकलितं भुयाहिं तिण्णं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।
८ एगं च णं महं दिणयरं तेयसा जलंतं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।
९ एगं च णं महं हरि-वेरुलिय-वण्णाभेणं णियएणमतेणं माणुसुत्तरं पव्वतं सव्वतो समंता आवेढियं परिवेढियं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।
१० एगं च णं महं मंदरे पव्वते मंदरचूलियाए उवरिं सीहासणवरगयमत्ताणं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।
१ जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं घोररूवदित्तधरं तालपिसायं सुमिणे पराजितं पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणेणं भगवता महावीरेणं मोहणिज्जे कम्मे मूलओ उग्घाइते।
२ जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं सुक्किलपक्खगं (पुंसकोइलगं सुमिणे पासित्ता णं) पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे सुक्कज्झाणोवगए विहरइ।
३ जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं चित्तविचित्तपक्खगं (पुंसकोइलं सुविणे पासित्ता णं) पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे ससमय-परसमयियं चित्तविचित्तं दुवालसंगं गणिपिडगं आघवेति पण्णवेति परूवेति दंसेति णिदंसेति उवदंसेति, तं जहा—आयारं, (सूयगडं, ठाणं, समवायं, विवा [आ ?] हपण्णत्ति, णायधम्मकहाओ, उवासगदसाओ, अंतगडदसाओ, अणुत्तरोववाइयदसाओ, पण्हावागरणाइं, विवागसुयं) दिट्ठिवायं।
४ जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं दामदुगं सव्वरयणा (मयं सुमिणे पासित्ता णं) पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे दुविहं धम्मं पण्णवेति, तं जहा—अगारधम्मं च, अणगारधम्मं च।

५ जण्ण समणे भगव महावीरे एग च ण मह सेत गोवग्ग सुमिणे (पासित्ता ण) पडिबुद्धे, तण्ण समणस्स भगवग्रो महावीरस्स चाउव्वण्णाइण्णे सघे, त जहा—समणा, समणीग्रो, सावगा, साविग्राग्रो ।

६ जण्ण समणे भगव महावीरे एग च ण मह पउमसर (सव्वग्रो समता कुसुमित सुमिणे पासित्ता ण) पडिबुद्धे, तण्ण समणे भगव महावीरे चउव्विहे देवे पण्णवेति, त जहा—भवणवासी, वाणमतरे, जोइसिए, वेमाणिए ।

७ जण्ण समणे भगव महावीरे एग च ण मह सागर उम्मी वीची (सहस्स कलित भुयाहि तिण्ण सुमिणे पासित्ता ण) पडिबुद्धे, त ण समणेण भगवता महावीरेण ग्रणादिए ग्रणवदग्गे दीहमद्धे चाउरते ससारकतारे तिण्णे ।

८ जण्ण समणे भगव महावीरे एग च ण मह दिणयर (तेयसा जलत सुमिणे पासित्ता ण) पडिबुद्धे, तण्ण समणस्स भगवग्रो महावीरस्स ग्रणते ग्रणुत्तरे (णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदसणे) समुप्पण्णे ।

९ जण्ण समणे भगव महावीरे एग च ण मह हरि वेरुलिय (वण्णाभेण णियएणमतेण माणुसुत्तर पव्वत सव्वतो समता ग्रावेढिय परिवेढिय सुमिणे पासित्ता ण) पडिबुद्धे तण्ण समणस्स भगवतो महावीरस्स सदेवमणुयासुरलोगे उराला कित्ति-वण्ण सद्द-सिलोगा परिगुव्वति—इति खलु समणे भगव महावीरे, इति खलु समणे भगव महावीरे ।

१० जण्ण समणे भगव महावीरे एग च ण मह मदरे पव्वते मदरचूलियाए उवरि (सीहासण वरगयमत्ताण सुमिणे पासित्ता ण) पडिबुद्ध, तण्ण समणे भगव महावीरे सदेवमणुयासुराए परिसाए मज्झगते केवलिपण्णत्त धम्म ग्राघवेति पण्णवेत्ति (परूवेति दसेति णिदसेति) उवदसेति ।

श्रमण भगवान् महावीर छद्मस्थ काल की ग्रन्तिम रात्रि मे इन दस महास्वप्नो को देखकर प्रतिबुद्ध हुए । जैसे—

१ एक महान् घोर रूप वाले दीप्तिमान ताड वृक्ष जैसे लम्बे पिशाच को स्वप्न मे पराजित हुग्रा देखकर प्रतिबद्ध हुए ।

२ एक महान् श्वेत पख वाले पु स्कोकिल का स्वप्न मे देखकर प्रतिबुद्ध हुए ।

३ एक महान् चित्र विचित्र पखो वाले पु स्कोकिल का स्वप्न मे देखकर प्रतिबुद्ध हुए ।

४ सर्वरत्नमयी दो बडी मालाग्रो को स्वप्न मे देखकर प्रतिबुद्ध हुए ।

५ एक महान श्वेत गोवर्ग को स्वप्न मे देखकर प्रतिबुद्ध हुए ।

६ एक महान् सब ग्रोर से प्रफुल्लित कमल वाल सरोवर को देखकर प्रतिबुद्ध हुए ।

७ एक महान छोटी-बडी लहरो से व्याप्त महासागर को स्वप्न मे भुजाग्रो से पार किया हुग्रा देखकर प्रतिबुद्ध हुए ।

८ एक महान्, तेज से जाज्वल्यमान सूर्य को स्वप्न म देखकर प्रतिबुद्ध हुए ।

९ एक महान्, हरित ग्रौर वडूर्य वर्ण वाले ग्रपने ग्रात-समूह के द्वारा मानुषोत्तर पर्वत को सब ग्रोर से ग्रावेष्टित-परिवेष्टित किया हुग्रा स्वप्न मे देखकर प्रतिबुद्ध हुए ।

१० मन्दर-पर्वत पर मन्दर-चूलिका के ऊपर एक महान् सिंहासन पर ग्रपने को स्वप्न मे बैठा हुग्रा देखकर प्रतिबुद्ध हुए ।

उपर्युक्त स्वप्नो का फल श्रमण भगवान् महावीर ने इस प्रकार प्राप्त किया—

१ श्रमण भगवान महावीर महान घोर रूप वाले दीप्तिमान् एक ताल पिशाच को स्वप्न मे पराजित हुआ देखकर प्रतिबुद्ध हुए। उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर ने मोहनीय कर्म को मूल से उखाड फेंका।

२ श्रमण भगवान् महावीर श्वेत पखो वाले एक महान पुस्कोकिल को स्वप्न मे देखकर प्रतिबुद्ध हुए। उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर शुक्लध्यान को प्राप्त होकर विचरने लगे।

३ श्रमण भगवान् महावीर चित्र-विचित्र पखो वाले एक महान पुस्कोकिल का स्वप्न मे देखकर प्रतिबुद्ध हुए। उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर ने स्व समय और पर-समय का निरूपण करने वाले द्वादशाङ्ग गणिपिटक का व्याख्यान किया, प्रज्ञापन किया, प्ररूपण किया, दर्शन, निदर्शन, और उपदर्शन कराया।

वह द्वादशाङ्ग गणिपिटक इस प्रकार है—

१ आचाराङ्ग, २ सूत्रकृताङ्ग, ३ स्थानाङ्ग, ४ समवायाङ्ग, ५ व्याख्या-प्रज्ञप्ति अग, ६ ज्ञाताधर्मकथाङ्ग, ७ उपासकदशाङ्ग, ८ अन्तकृद्दशाङ्ग, ९ अनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग, १० प्रश्नव्याकरणाङ्ग, ११ विपाकसूत्राङ्ग, और १२ दृष्टिवाद।

४ श्रमण भगवान् महावीर सर्वरत्नमय दो बडी मालाओ को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए। उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर ने दो प्रकार के धर्म की प्ररूपणा की। जैसे—

अगारधर्म (श्रावकधर्म) और अनगारधर्म (साधुधर्म)।

५ श्रमण भगवान् महावीर एक महान् श्वेत गोवर्ग को स्वप्न मे देखकर प्रतिबुद्ध हुए। उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान महावीर का चार वर्ण से व्याप्त सघ हुआ। जैसे—

१ श्रमण, २ श्रमणी, ३ श्रावक, ४ श्राविका।

६ श्रमण भगवान महावीर सब ओर से प्रफुल्लित कमलो वाले एक महान् सरोवर का स्वप्न मे देखकर प्रतिबुद्ध हुए। उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर ने चार प्रकार के देवो की प्ररूपणा की। जैसे—

१ भवनवासी, २ वानव्यन्तर, ३ ज्योतिष्क और ४ वैमानिक।

७ श्रमण भगवान महावीर स्वप्न मे एक महान् छोटी-बडी लहरो से व्याप्त महासागर को स्वप्न मे भुजाओ से पार किया हुआ देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान महावीर ने अनादि, अनन्त, प्रलम्ब और चार अन्त (गति) वाले ससार रूपी कान्तार (महावन) या भवसागर को पार किया।

८ श्रमण भगवान महावीर तेज से जाज्वल्यमान एक महान् सूर्य को स्वप्न मे देखकर प्रतिबुद्ध हुए। उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर को अनन्त अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, पूर्ण, प्रतिपूर्ण केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त हुआ।

९ श्रमण भगवान् महावीर हरित और वैडूर्य वर्ण वाले अपने आन्त-समूह के द्वारा मानुषोत्तर पर्वत को सब ओर से आवेष्टित परिवेष्टित किया हुआ स्वप्न मे देखकर प्रतिबुद्ध हुए। उसके फल-स्वरूप श्रमण भगवान् महावीर की देव मनुष्य और असुरो के लोक मे उदार, कीर्त्ति वर्ण, शब्द और श्लाघा व्याप्त हुई—कि श्रमण भगवान महावीर ऐसे महान् हैं, श्रमण भगवान् महावीर ऐसे महान् हैं इस प्रकार से उनका यश तीनो लोको मे फैल गया।

१० श्रमण भगवान् महावीर मन्दर-पर्वत पर मन्दर-चूलिका के ऊपर एक महान् सिंहासन पर अपने को स्वप्न में बैठा हुआ देखकर प्रतिबुद्ध हुए। उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर ने देव, मनुष्य और असुरों की परिषद् के मध्य में विराजमान होकर केवलि-प्रज्ञप्त धर्म का आख्यान किया, प्रज्ञापन किया, प्ररूपण किया, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन कराया (१०३)।

सम्यक्त्व सूत्र

१०४—दसविधे सरागसम्मद्दंसणे पण्णत्ते तं जहा—

संग्रहणी गाथा

णिसग्गुवएसरुई, आणारुई सुत्तबीयरुइमेव ।
अभिगम वित्थाररुई, किरिया-संखेव धम्मरुई ॥१॥

सरागसम्यग्दर्शन दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ निसर्गरुचि—बिना किसी बाह्य निमित्त से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन।
२ उपदेशरुचि—गुरु आदि के उपदेश से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन।
३ आज्ञारुचि—अर्हत-प्रज्ञप्त सिद्धान्त से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन।
४ सूत्ररुचि—सूत्र ग्रन्थों के अध्ययन से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन।
५ बीजरुचि—बीज की तरह अनेक अर्थों के बोधक एक ही वचन के मनन से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन।
६ अभिगमरुचि—सूत्रों के विस्तृत अर्थ से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन।
७ विस्ताररुचि—प्रमाण-नय के विस्तारपूर्वक अध्ययन से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन।
८ क्रियारुचि—धार्मिक क्रियाओं के अनुष्ठान से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन।
९ संक्षेपरुचि—संक्षेप से कुछ धर्म पदों के सुनने मात्र से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन।
१० धर्मरुचि—श्रुतधर्म और चारित्रधर्म के श्रद्धान से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन (१०४)।

संज्ञा सूत्र

१०५—दस सण्णाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—आहारसण्णा, (भयसण्णा, मेहुणसण्णा), परिग्गहसण्णा, कोहसण्णा, (माणसण्णा मायासण्णा) लोभसण्णा लोगसण्णा, ओहसण्णा।

संज्ञाएं दश प्रकार की कही गई हैं। जैसे—

१ आहारसंज्ञा, २ भयसंज्ञा ३ मैथुनसंज्ञा, ४ परिग्रहसंज्ञा, ५ क्रोधसंज्ञा, ६ मानसंज्ञा, ७ मायासंज्ञा ८ लोभसंज्ञा, ९ लोकसंज्ञा, १० ओघसंज्ञा (१०५)।

विवेचन—आहार आदि चार संज्ञाओं का अर्थ चतुर्थ स्थान में किया गया तथा क्रोधादि चार कषायसंज्ञाएं भी स्पष्ट ही हैं। संस्कृत टीकाकार ने लोकसंज्ञा का अर्थ सामान्य अवबोधरूप क्रिया या दर्शनोपयोग और ओघसंज्ञा का अर्थ विशेष अवबोधरूप क्रिया या ज्ञानोपयोग करके लिखा है कि कुछ आचार्य सामान्य प्रवृत्ति को ओघसंज्ञा और लोकदृष्टि को लोकसंज्ञा कहते हैं।

कुछ विद्वानों का अभिमत है कि मन के निमित्त से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह दो प्रकार का होता है—विभागात्मक ज्ञान और निर्विभागात्मक ज्ञान। स्पर्श-रसादि के विभाग वाला विशेष ज्ञान विभागात्मक ज्ञान है और स्पर्श-रसादि के विभाग बिना जो साधारण ज्ञान होता है, उसे ओघसंज्ञा

कहते हैं। भूकम्प आदि आने के पूर्व ही ओघसंज्ञा से उसका आभास पाकर अनेक पशु पक्षी सुरक्षित स्थानों को चले जाते हैं।

१०६—णेरइयाणं दस सण्णाओ एवं चेव।

इसी प्रकार नारकों के दश संज्ञाएं कही गई हैं (१०६)।

१०७—एवं णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।

इसी प्रकार वैमानिकों तक सभी दण्डक वाले जीवों को दश दश संज्ञाएं जाननी चाहिए (१०७)।

वेदना सूत्र

१०८—णेरइया णं दसविधं वेयणं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—सीतं, उसिणं, खुधं, पिवासं, कंडुं, परज्झं, भयं, सोगं, जरं, वाहिं।

नारक जीव दश प्रकार की वेदनाओं का अनुभव करते रहते हैं। जैसे—

१ शीत वेदना, २ उष्ण वेदना, ३ क्षुधा वेदना, ४ पिपासा वेदना, ५ कण्डू वेदना, (खुजली का कष्ट) ६ परजन्य वेदना (परतन्त्रता का या परजनित कष्ट) ७ भय वेदना, ८ शोक वेदना, ९ जरा वेदना, १० व्याधि वेदना (१०८)।

छद्मस्थ सूत्र

१०९—दस ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणति ण पासति, तं जहा—धम्मत्थिकायं, (अधम्मत्थिकायं आगासत्थिकायं, जीवं असरीरपडिबद्धं, परमाणुपोग्गलं, सद्दं, गंधं), वातं, अयं जिणे भविस्सति वा ण वा भविस्सति, अयं सव्वदुक्खाणमंतं करेस्सति वा ण वा करेस्सति।

एताणि चेव उप्पण्णणाणदंसणधरे अरहा (जिणे केवली सव्वभावेणं जाणइ पासइ, तं जहा—धम्मत्थिकायं अधम्मत्थिकायं आगासत्थिकायं, जीवं असरीरपडिबद्धं, परमाणुपोग्गलं, सद्दं, गंधं, वातं, अयं जिणे भविस्सति वा ण वा भविस्सति), अयं सव्वदुक्खाणमंतं करेस्सति वा ण वा करेस्सति।

छद्मस्थ जीव दश पदार्थों को सम्पूर्ण रूप से न जानता है न देखता है। जैसे—

१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ शरीरमुक्त जीव, ५ परमाणु-पुद्गल, ६ शब्द, ७ गंध ८ वायु ९ यह जिन होगा, या नहीं, १० यह सभी दुःखों का अन्त करेगा, या नहीं (१०९)।

किन्तु विशिष्ट ज्ञान और दर्शन के धारक अर्हत, जिन, केवली उन्हीं दश पदार्थों को सम्पूर्ण रूप से जानते देखते हैं। जैसे—

१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ शरीर मुक्त जीव, ५ परमाणु-पुद्गल, ६ शब्द, ७ गंध, ८ वायु, ९ यह जिन होगा, या नहीं, १० यह सभी दुःखों का अन्त करेगा, या नहीं।

दसा सूत्र

११०—दस दसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कम्मविवागदसाओ, उवासगदसाओ, अंतगड-

दसाम्रो, अणुत्तरोववाइयदसाम्रो, आयारदसाम्रो, पण्हावागरणदसाम्रो, बंधदसाम्रो, दोगिद्धिदसाम्रो, दीहदसाम्रो, सखेवियदसाम्रो ।

दश दशा (अध्ययन) वाले दश आगम कहे गये हैं। जैसे—

१ कर्मविपाकदशा, २ उपासकदशा, ३ अन्तकृतदशा, ४ अनुत्तरोपपातिकदशा, ५ आचारदशा (दशाश्रुतस्कन्ध) ६ प्रश्नव्याकरणदशा, ७ बन्धदशा ८ द्विगृद्धिदशा, ९ दीघदशा, १० सक्षेपकदशा (११०)।

१११—कम्मविवागदसाण दस अज्झयणा पण्णत्ता, त जहा—

सग्रह श्लोक

मियापुत्ते य गोत्तासे, अड सगडेति यावरे ।
माहणे णदिसेणे सोरिए य उदु बरे ।।
सहसुद्दाहे आमलए, कुमारे लेच्छई इति ।।१।।

कर्मविपाकदशा के दश अध्ययन कहे गये है। जैसे—

१ मृगापुत्र, २ गोत्रास, ३ अण्ड, ४ शकट, ५ ब्राह्मण, ६ नन्दिषेण, ७ शौरिक ८ उदुम्बर, ९ सहस्रोद्दाह आमरक १० कुमारलिच्छवी (१११)।

विवेचन—उल्लिखित सूत्र मे गिनाए गए अध्ययन दु खविपाक के हैं, किन्तु इन नामो मे और वर्त्त मान मे उपलब्ध नामो मे कुछ को छोडकर भिन्नता पाई जाती है।

११२—उवासगदसाण दस अज्झयणा पण्णत्ता, त जहा—

आणदे कामदेवे आ गाहावतिचूलणीपिता ।
सुरादवे चुल्लसतए गाहावतिकु डकोलिए ।।
सद्दालपुत्ते महासतए णदिणीपिया लेइयापिता ।।१।।

उपासकदशा के दश अध्ययन कहे गय ह। जसे—

१ आनन्द, २ कामदव, ३ गृहपति चूलिनीपिता ४ सुरादव, ५ चुल्लशतक, ६ गृहपति कुण्डकोलिक, ७ सद्दालपुत्र ८ महाशतक ९ नन्दिनीपिता, १० लेयिका (सालिही) पिता (११२)।

११३—अतगडदसाण दस अज्झयणा पण्णत्ता, त जहा—

णमि मातगे सोमिले, रामगुत्ते सुदसणे चेव ।
जमाली य भगाली य किंकसे चिल्लए ति य ।।
फाले अबडपुत्ते य एमेते दस आहिता ।।१।।

अन्तकृतदशा के दश अध्ययन कहे गये हैं। जैसे—

१ नमि, २ मातग, ३ सोमिल ४ रामगुप्त, ५ सुदर्शन ६ जमाली ७ भगाली, ८ किंकष ९ चिल्वक १० पाल अम्बडपुत्र (११३)।

११४—अणुत्तरोववातियदसाण दस अज्झयणा पण्णत्ता, त जहा—

इसिदासे य धण्णे य, सुणक्खत्ते कातिए ति य ।
सठाणे सालिभद्दे य आणदे तेतली ति य ।।
दसण्णभद्दे अतिमुत्ते, एमेते दस ।।

अनुत्तरोपपातिकदशा के दश अध्ययन कहे गये हैं। जैसे—
१ ऋषिदास, २ धन्य ३ सुनक्षत्र, ४ कार्तिक, ५ सस्थान, ६ शालिभद्र, ७ आनन्द, ८ तेतली, ९ दशाणभद्र, १० अतिमुक्त (११४)।

११५—आयारदसाण दस अज्झयणा पण्णत्ता, त जहा—वीस असमाहिट्ठाणा, एगवीस सबला, तेत्तीस आसायणाओ, अट्ठविहा गणिसपया, दस चित्तसमाहिट्ठाणा, एगारस उवासगपडिमाओ, बारस भिक्खुपडिमाओ, पज्जोसवणाकप्पो, तीस मोहणिज्जट्ठाणा, आजाइट्ठाण।

आचारदशा (दशाश्रुतस्कन्ध) के दश अध्ययन कहे गये हैं। जसे—
१ वीस असमाधिस्थान, २ इक्कीस शबलदोष, ३ तेतीस आशातना, ४ अष्टविध गणि सम्पदा, ५ दश चित्तसमाधिस्थान, ६ ग्यारह उपासकप्रतिमा ७ बारह भिक्षुप्रतिमा, ८ पर्युषणाकल्प, ९ तीस मोहनीयस्थान, १० आजातिस्थान (११५)।

११६—पण्हावागरणदसाण दस अज्झयणा पण्णत्ता, त जहा—उवमा, सखा, इसिभासियाइं, आयरियभासियाइ, महावीरभासिआइ, खोमगपसिणाइ, कोमलपसिणाइ, अद्दागपसिणाइ, अगुट्ठपसिणाइ, बाहुपसिणाइ।

प्रश्नव्याकरणदशा के दश अध्ययन कहे गये हैं। जसे—
१ उपमा, २ सख्या, ३ ऋषिभाषित, ४ आचार्यभाषित, ५ महावीरभाषित ६ क्षौमक-प्रश्न, ७ कोमलप्रश्न ८ आदर्शप्रश्न, ९ अगुष्ठप्रश्न, १० बाहुप्रश्न (११६)।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे प्रश्नव्याकरण के जो दश अध्ययन कहे गए हैं उनका वर्तमान म उपलब्ध प्रश्नव्याकरण से कुछ भी सम्बन्ध नही है। प्रतीत होता है कि मूल प्रश्नव्याकरण मे नाना विद्याओ और मन्त्रो का निरूपण था, अतएव उसका किसी समय विच्छेद हो गया और उसकी स्थान पूर्ति के लिए नवीन प्रश्नव्याकरण की रचना की गई, जिसमे पाच आस्रवो और पाच सवरो का विस्तृत वर्णन है।

११७—बधदसाण दस अज्झयणा पण्णत्ता, त जहा—
बधे य मोक्खे य देवड्ढि, दसारमडलेवि य।
आयरियविप्पडिवत्ती, उवज्झायविप्पडिवत्ती, भावणा, विमुत्ती सातो, कम्मे।

बन्धदशा के दश अध्ययन कहे गये हैं। जैसे—
१ बन्ध, २ मोक्ष, ३ देवर्धि, ४ दशारमण्डल, ५ आचार्य-विप्रतिपत्ति ६ उपाध्याय-विप्रतिपत्ति, ७ भावना ८ विमुक्ति, ९ सात १० कर्म (११७)।

११८—दोगेद्धिदसाण दस अज्झयणा पण्णत्ता, त जहा—वाए, विवाए, उववाते, सुखेत्ते, कसिणे, बायालीस सुमिणा, तीस महासुमिणा, बावत्तरिं सव्वसुमिणा।
हारे रामगुत्ते य, एमेते दस आहिता।

द्विगृद्धिदशा के दश अध्ययन कहे गये हैं। जैसे—
१ वाद, २ विवाद, ३ उपपात, ४ सुक्षेत्र, ५ कृत्स्न, ६ बयालीस स्वप्न, ७ तीस महास्वप्न ८ बहत्तर सवस्वप्न, ९ हार, १० रामगुप्त (११८)।

११६—दीहदसाण दस अज्झयणा पण्णत्ता, त जहा—

चदे सूरे य सुक्के य, सिरिदेवी पभावती।
दीवसमुद्दोववत्ती बहूपुत्ती मदरेति य॥
थेरे सभूतिविजए य, थेरे पम्ह ऊसासणीसासे ॥१॥

दीघदशा के दश अध्ययन कहे गये है। जैसे—

१ चन्द्र, २ सूर्य, ३ शुक्र ४ श्रीदेवी, ५ प्रभावती, ६ द्वीप-समुद्रापपत्ति, ७ बहुपुत्री मन्दरा, ८ स्थविर सम्भूतविजय, ६ स्थविर पक्ष्म, १० उच्छ्वास-नि श्वास (११६)।

१२०—सखेवियदसाण दस अज्झयणा पण्णत्ता, त जहा—खुड्डिया विमाणपविभत्ती, महल्लिया विमाणपविभत्ती, अगचूलिया, वग्गचूलिया, विवाहचूलिया, अरुणोववाते, वरुणोववाते, गरुलोववाते, वेलधरोववाते वेसमणोववाते।

सक्षेपिकदशा के दश अध्ययन कहे गये है। जसे—

१ क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्ति, २ महतीविमानप्रविभक्ति
३ अगचूलिका (आचार आदि अगो की चूलिका)
४ वगचलिका (अन्तकृत्दशा की चूलिका),
५ विवाहचूलिका (व्याख्याप्रज्ञप्ति की चलिका)
६ अरुणोपपात, ७ वरुणोपपात, ८ गरुडापपात,
६ वेलधरोपपात, १० वैश्रमणोपपात (१२०)।

कालचक्र सूत्र

१२१—दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणीए।

अवसर्पिणी का काल दश कोडाकोडी सागरोपम है (१२१)।

१२२—दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो उस्सप्पिणीए।

उत्सर्पिणी का काल दश कोडाकोडी सागरोपम है (१२२)।

अनन्तर परम्पर उपपन्नादि-सूत्र

१२३—दसविधा णरइया पण्णत्ता, त जहा—अणतरोववण्णा, परपरोववण्णा, अणतरावगाढा, परपरावगाढा, अणतराहारगा, परपराहारगा, अणतरपज्जत्ता, परपरपज्जत्ता, चरिमा, अचरिमा।

एव—णिरतर जाव वेमाणिया।

नारक दश प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१ अनन्तर-उपपन्न नारक—जिन्हें उत्पन्न हुए एक समय हुआ है।
२ परम्पर-उपपन्न नारक—जिन्हे उत्पन्न हुए दो आदि अनेक समय हो चुके हैं।
३ अनन्तर-अवगाढ नारक—विवक्षित क्षेत्र से सलग्न आकाश-प्रदेश मे अवस्थित।
४ परम्पर-अवगाढ नारक—विवक्षित क्षेत्र से व्यवधान वाले आकाश-प्रदेश मे अवस्थित।
५ अनन्तर-आहारक नारक—प्रथम समय के आहारक।
६ परम्पर-आहारक नारक—दो आदि समयो के आहारक।

७ अनन्तर पर्याप्त नारक—प्रथम समय के पर्याप्त।
८ परम्पर-पर्याप्त नारक—दो आदि समयों के पर्याप्त।
९ चरम-नारक—नरकगति मे अन्तिम बार उत्पन्न होने वाले।
१० अचरम-नारक—जो आगे भी नरकगति मे उत्पन्न होंगे।

इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डकों में जीवों के दश-दश प्रकार जानना चाहिए (१२३)।

नरक-सूत्र

१२४—चउत्थीए ण पकप्पभाए पुढवीए दस णिरयावाससतसहस्सा पण्णत्ता।

चौथी पकप्रभा पृथिवी मे दश लाख नारकावास कहे गये हैं (१२४)।

स्थिति-सूत्र

१२५—रयणप्पभाए पुढवीए जहण्णेण णेरइयाण दसवाससहस्साइ ठिती पण्णत्ता।

रत्नप्रभा पृथिवी में नारकों की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है (१२५)।

१२६—चउत्थीए ण पकप्पभाए पुढवीए उक्कोसेण णेरइयाण दस सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता।

चौथी पकप्रभा पृथिवी मे नारकों की उत्कृष्ट स्थिति दश सागरोपम की कही गई है (१२६)।

१२७—पचमाए ण धूमप्पभाए पुढवीए जहण्णेण णेरइयाण दस सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता।

पाचवीं धूमप्रभा पृथिवी में नारकों की जघन्य स्थिति दश सागरोपम की कही गई है (१२७)।

१२८—असुरकुमाराण जहण्णेण दस वाससहस्साइ ठिती पण्णत्ता। एव जाव थणिय-कुमाराण।

असुरकुमार देवों की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है।
इसी प्रकार स्तनितकुमार तक के सभी भवनवासी देवों की जघन्य आयु दश हजार वर्ष की कही गई है (१२८)।

१२९—बायरवणस्सतिकाइयाण उक्कोसेण दस वाससहस्साइ ठिती पण्णत्ता।

बादर वनस्पतिकायिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है (१२९)।

१३०—वाणमतराण देवाण जहण्णेण दस वाससहस्साइ ठिती पण्णत्ता।

वानव्यन्तर देवों की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है (१३०)।

१३१—बभलोगे कप्पे उक्कोसेण देवाण दस सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता।

ब्रह्मलोककल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति दश सागरोपम की कही गई है (१३१)।

१३२—लतए कप्पे देवाण जहण्णेण दस सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता।

लान्तक कल्प मे देवों की जघन्य स्थिति दश सागरोपम की कही गई है (१३२)।

भाविभद्रत्व-सूत्र

१३३—दसहिं ठाणेहिं जीवा आगमेसिभद्दत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—अणिदाणताए, दिट्ठिसंपण्णताए, जोगवाहियत्ताए, खंतिखमणताए, जितिंदियताए, अमाइल्लताए, अपासत्थताए, सुसामण्णताए, पवयणवच्छल्लताए, पवयणउब्भावणताए।

दस कारणों से जीव आगामी भद्रता (आगामीभव में देवत्व की प्राप्ति और तदनन्तर मनुष्य-भव पाकर मुक्ति प्राप्ति) के योग्य शुभ कर्म का उपार्जन करते हैं। जैसे—

१ निदान नहीं करने से—तप के फल से सांसारिक सुखों की कामना न करने से।
२ दृष्टिसम्पन्नता से—सम्यग्दर्शन की सांगोपांग आराधना से।
३ योगवाहिता से—मन, वचन, काय की समाधि रखने से।
४ क्षान्तिक्षमणता से—समर्थ होकर के भी अपराधी को क्षमा करने एवं क्षमा धारण करने से।
५ जितेन्द्रियता से—पाँचों इन्द्रियों के विषयों को जीतने से।
६ ऋजुता से—मन, वचन, काय की सरलता से।
७ अपार्श्वस्थता से—चारित्र पालने में शिथिलता न रखने से।
८ सुश्रामण्य से—श्रमण धर्म का यथाविधि पालन करने से।
९ प्रवचनवत्सलता से—जिन आगम और शासन के प्रति गाढ़ अनुराग से।
१० प्रवचन उद्भावनता से—आगम और शासन की प्रभावना करने से (१३३)।

आशंसा प्रयोग सूत्र

१३४—दसविहे आससप्पओगे पण्णत्ते, तं जहा—इहलोगाससप्पओगे, परलोगाससप्पओगे, दुहओलोगाससप्पओगे, जीवियाससप्पओगे, मरणाससप्पओगे, कामाससप्पओगे, भोगाससप्पओगे, लाभाससप्पओगे, पूयाससप्पओगे, सक्काराससप्पओगे।

आशंसा प्रयोग (इच्छा व्यापार) दस प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ इहलोकाशंसा प्रयोग—इस लोक-सम्बन्धी इच्छा करना।
२ परलोकाशंसा प्रयोग—परलोक सम्बन्धी इच्छा करना।
३ द्वयलोकाशंसा प्रयोग—दोनों लोक-सम्बन्धी इच्छा करना।
४ जीविताशंसा प्रयोग—जीवित रहने की इच्छा करना।
५ मरणाशंसा प्रयोग—मरने की इच्छा करना।
६ कामाशंसा प्रयोग—काम (शब्द और रूप) की इच्छा करना।
७ भोगाशंसा प्रयोग—भोग (गन्ध, रस और स्पर्श) की इच्छा करना।
८ लाभाशंसा प्रयोग—लौकिक लाभों की इच्छा करना।
९ पूजाशंसा प्रयोग—पूजा, ख्याति और प्रशंसा प्राप्त करने की इच्छा करना।
१० सत्काराशंसा प्रयोग—दूसरों से सत्कार पाने की इच्छा करना (१३४)।

धर्म सूत्र

१३५—दसविधे धम्मे पण्णत्ते, तं जहा—गामधम्मे, णगरधम्मे, रट्ठधम्मे, पासंडधम्मे, कुलधम्मे, गणधम्मे, संघधम्मे, सुयधम्मे, चरित्तधम्मे, अत्थिकायधम्मे।

७ अनन्तर-पर्याप्त नारक—प्रथम समय के पर्याप्त ।
८ परम्पर-पर्याप्त नारक—दो आदि समयों के पर्याप्त ।
९ चरम-नारक—नरकगति में अन्तिम बार उत्पन्न होने वाले ।
१० अचरम-नारक—जो आगे भी नरकगति में उत्पन्न होंगे ।
इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डकों में जीवों के दश-दश प्रकार जानना चाहिए (१२३) ।

नरक-सूत्र

१२४—चउत्थीए णं पंकप्पभाए पुढवीए दस णिरयावाससतसहस्सा पण्णत्ता ।

चौथी पंकप्रभा पृथिवी में दश लाख नारकावास कहे गये हैं (१२४) ।

स्थिति सूत्र

१२५—रयणप्पभाए पुढवीए जहण्णेणं णेरइयाणं दसवाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता ।

रत्नप्रभा पृथिवी में नारकों की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है (१२५) ।

१२६—चउत्थीए णं पंकप्पभाए पुढवीए उक्कोसेणं णेरइयाणं दस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता ।

चौथी पंकप्रभा पृथिवी में नारकों की उत्कृष्ट स्थिति दश सागरोपम की कही गई है (१२६) ।

१२७—पंचमाए णं धूमप्पभाए पुढवीए जहण्णेणं णेरइयाणं दस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता ।

पांचवी धूमप्रभा पृथिवी में नारकों की जघन्य स्थिति दश सागरोपम की कही गई है (१२७) ।

१२८—असुरकुमाराणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता । एवं जाव थणियकुमाराणं ।

असुरकुमार देवों की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है ।
इसी प्रकार स्तनितकुमार तक के सभी भवनवासी देवों की जघन्य आयु दश हजार वर्ष की कही गई है (१२८) ।

१२९—बायरवणस्सतिकाइयाणं उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता ।

बादर वनस्पतिकायिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है (१२९) ।

१३०—वाणमंतराणं देवाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता ।

वानव्यन्तर देवों की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है (१३०) ।

१३१—बंभलोगे कप्पे उक्कोसेणं देवाणं दस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता ।

ब्रह्मलोककल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति दश सागरोपम की कही गई है (१३१) ।

१३२—लंतए कप्पे देवाणं जहण्णेणं दस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता ।

लान्तक कल्प में देवों की जघन्य स्थिति दश सागरोपम की कही गई है (१३२) ।

भाविभद्रत्व सूत्र

१३३—दसहिं ठाणेहिं जीवा आगमेसिभद्दत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—अणिदाणताए, दिट्ठि-सपण्णताए जोगवाहिताए, खंतिखमणताए, जितिंदियताए, अमाइल्लताए, अपासत्थताए, सुसामण्णताए, पवयणवच्छल्लताए, पवयणउब्भावणताए।

दस कारणों से जीव आगामी भद्रता (आगामीभव में देवत्व की प्राप्ति और तदनन्तर मनुष्य-भव पाकर मुक्ति प्राप्ति) के योग्य शुभ कर्म का उपार्जन करते हैं। जैसे—

१ निदान नहीं करने से—तप के फल से सांसारिक सुखों की कामना न करने से।
२ दृष्टिसम्पन्नता से—सम्यग्दर्शन की सांगोपांग आराधना से।
३ योगवाहिता से—मन, वचन, काय की समाधि रखने से।
४ क्षान्तिक्षमणता से—समर्थ होकर के भी अपराधी को क्षमा करने एवं क्षमा धारण करने से।
५ जितेन्द्रियता से—पांचों इन्द्रियों के विषयों को जीतने से।
६ ऋजुता से—मन, वचन, काय की सरलता से।
७ अपार्श्वस्थता से—चारित्र पालने में शिथिलता न रखने से।
८ सुश्रामण्य से—श्रमण धर्म का यथाविधि पालन करने से।
९ प्रवचनवत्सलता से—जिन आगम और शासन के प्रति गाढ़ अनुराग से।
१० प्रवचन-उद्भावना से—आगम और शासन की प्रभावना करने से (१३३)।

आशंसा प्रयोग-सूत्र

१३४—दसविहे आससप्पओगे पण्णत्ते, तं जहा—इहलोगाससप्पओगे, परलोगाससप्पओगे, दुहओलोगाससप्पओगे, जीवियाससप्पओगे, मरणाससप्पओगे, कामाससप्पओगे, भोगाससप्पओगे, लाभाससप्पओगे, पूयाससप्पओगे, सक्काराससप्पओगे।

आशंसा प्रयोग (इच्छा व्यापार) दस प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ इहलोकाशंसा प्रयोग—इस लोक-सम्बन्धी इच्छा करना।
२ परलोकाशंसा प्रयोग—परलोक सम्बन्धी इच्छा करना।
३ द्वयलोकाशंसा प्रयोग—दोनों लोक-सम्बन्धी इच्छा करना।
४ जीविताशंसा प्रयोग—जीवित रहने की इच्छा करना।
५ मरणाशंसा प्रयोग—मरने की इच्छा करना।
६ कामाशंसा प्रयोग—काम (शब्द और रूप) की इच्छा करना।
७ भोगाशंसा प्रयोग—भोग (गन्ध, रस और स्पर्श) की इच्छा करना।
८ लाभाशंसा प्रयोग—लौकिक लाभों की इच्छा करना।
९ पूजाशंसा प्रयोग—पूजा, ख्याति और प्रशंसा प्राप्त करने की इच्छा करना।
१० सत्काराशंसा प्रयोग—दूसरों से सत्कार पाने की इच्छा करना (१३४)।

धर्म सूत्र

१३५—दसविधे धम्मे पण्णत्ते, तं जहा—गामधम्मे, णगरधम्मे, रट्ठधम्मे, पासंडधम्मे, कुलधम्मे, गणधम्मे, संघधम्मे, सुयधम्मे, चरित्तधम्मे, अत्थिकायधम्मे।

धर्म दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१ ग्रामधर्म—गाँव की परम्परा या व्यवस्था का पालन करना।
२ नगरधर्म—नगर की परम्परा या व्यवस्था का पालन करना।
३ राष्ट्रधर्म—राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य का पालन करना।
४ पाषण्डधर्म—पापों का खंडन करने वाले आचार का पालन करना।
५ कुलधर्म—कुल के परम्परागत आचार का पालन करना।
६ गणधर्म—गणतंत्र राज्यों की परम्परा या व्यवस्था का पालन करना।
७ संघधर्म—संघ की मर्यादा और व्यवस्था का पालन करना।
८ श्रुतधर्म—द्वादशांग श्रुत की आराधना या अभ्यास करना।
९ चारित्रधर्म—संयम की आराधना करना, चारित्र का पालना।
१० अस्तिकायधर्म—अस्तिकाय अर्थात् बहुप्रदेशी द्रव्यों का धर्म (स्वभाव) (१३५)।

स्थविर सूत्र

१३६—दस थेरा पण्णत्ता, तं जहा—गामथेरा, णगरथेरा, रट्ठथेरा, पसत्थथेरा, कुलथेरा, गणथेरा, संघथेरा, जातिथेरा, सुयथेरा, परियायथेरा।

स्थविर (ज्येष्ठ या वृद्ध ज्ञानी पुरुष) दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ ग्राम-स्थविर—गाम का व्यवस्थापक, ज्येष्ठ, वृद्ध और ज्ञानी पुरुष।
२ नगर-स्थविर—नगर का व्यवस्थापक, ज्येष्ठ, वृद्ध और ज्ञानी पुरुष।
३ राष्ट्र-स्थविर—राष्ट्र का व्यवस्थापक, ज्येष्ठ, वृद्ध और ज्ञानी पुरुष।
४ प्रशास्तृ स्थविर—प्रशासन करने वाला प्रधान अधिकारी।
५ कुल-स्थविर—लौकिक पक्ष में कुल का ज्येष्ठ या वृद्ध पुरुष।
लोकोत्तर पक्ष में एक आचार्य की शिष्य परम्परा में ज्येष्ठ साधु।
६ गण-स्थविर—लौकिक पक्ष में गणराज्य का प्रधान पुरुष।
लोकोत्तर पक्ष में साधुओं के गण में ज्येष्ठ साधु।
७ संघ-स्थविर—लौकिक पक्ष में राज्य संघ का प्रधान पुरुष।
लोकोत्तर पक्ष में साधुसंघ का ज्येष्ठ साधु।
८ जाति-स्थविर—साठ वर्ष या इससे अधिक आयुवाला वृद्ध।
९ श्रुत-स्थविर—स्थानांग और समवायांग श्रुत का धारक साधु।
१० पर्याय-स्थविर—बीस वर्ष की या इससे अधिक की दीक्षा पर्यायवाला साधु (१३६)।

पुत्र-सूत्र

१३७—दस पुत्ता पण्णत्ता, तं जहा—अत्तए, खेत्तए, दिण्णए, विण्णए, उरसे, मोहरे, सोंडीरे संवुड्ढे, उवयाइते, धम्मंतेवासी।

पुत्र दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ आत्मज—अपने पिता से उत्पन्न पुत्र।
२ क्षेत्रज—नियोग-विधि से उत्पन्न पुत्र।
३ दत्तक—गोद लिया हुआ पुत्र।

४ विनय—विद्यागुरु का शिष्य।
५ औरस—स्नेहवश स्वीकार किया पुत्र।
६ मौखर—वचन कुशलता के कारण पुत्र रूप से स्वीकृत।
७ शौण्डीर—शूरवीरता के कारण पुत्र रूप से स्वीकृत।
८ संवर्धित—पालन पोषण किया गया अनाथ पुत्र।
९ औपयाचितक—देवता की आराधना से उत्पन्न पुत्र, या प्रिय सेवक।
१० धर्मान्तेवासी—धर्माराधन के लिए समीप रहने वाला शिष्य (१३७)।

अनुत्तर-सूत्र

१३८—केवलिस्स णं दस अणुत्तरा पण्णत्ता, तं जहा—अणुत्तरे णाणे, अणुत्तरे दंसणे, अणुत्तरे चरित्ते, अणुत्तरे तवे, अणुत्तरे वीरिए, अणुत्तरा खंती, अणुत्तरा मुत्ती, अणुत्तरे अज्जवे, अणुत्तरे मद्दवे, अणुत्तरे लाघवे।

केवली के दश अनुत्तर (अनुपम धर्म) कहे गये हैं। जैसे—

१ अनुत्तर ज्ञान, २ अनुत्तर दर्शन, ३ अनुत्तर चारित्र, ४ अनुत्तर तप, ५ अनुत्तर वीर्य, ६ अनुत्तर क्षान्ति, ७ अनुत्तर मुक्ति, ८ अनुत्तर आर्जव, ९ अनुत्तर मार्दव १० अनुत्तर लाघव (१३८)।

कुरा-सूत्र

१३९—समयक्खेत्ते णं दस कुराओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पंच देवकुराओ पंच उत्तरकुराओ।

तत्थ णं दस महतिमहालया महादुमा पण्णत्ता, तं जहा—जंबू सुदंसणा, धायइरुक्खे, महाधायइरुक्खे, पउमरुक्खे, महापउमरुक्खे पंच कूडसामलीओ।

तत्थ णं दस देवा महिड्ढिया जाव परिवसंति, तं जहा—अणाढिते जंबुद्दीवाधिपती, सुदंसणे, पियदंसणे पोंडरीए, महापोंडरीए, पंच गरुला वेणुदेवा।

समयक्षेत्र (मनुष्यलोक) में दश कुरा कहे गये हैं। जैसे—
पांच देवकुरा, पांच उत्तरकुरा।
वहां दश महातिमहान् दश महाद्रुम कहे गये हैं। जैसे—
१ जम्बू सुदर्शन वृक्ष, २ धातकीवृक्ष, ३ महाधातकी वृक्ष, ४ पद्म वृक्ष ५ महापद्म वृक्ष। तथा पांच कूटशाल्मली वृक्ष।
वहां महर्धिक, महाद्युति सम्पन्न, महानुभाग, महायशस्वी, महाबली और महासुखी तथा एक पल्योपम की स्थितिवाले दश देव रहते हैं। जैसे—
१ जम्बूद्वीपाधिपति अनादृत, २ सुदर्शन ३ प्रियदर्शन, ४ पौण्डरीक, ५ महापौण्डरीक। तथा पांच गरुड़ वेणुदेव ((१३९)।

दुःषमा-लक्षण-सूत्र

१४०—दसहिं ठाणेहिं ओगाढं दुस्समं जाणेज्जा, तं जहा—अकाले वरिसइ, काले ण वरिसइ, असाहू पूइज्जति, साहू ण पूइज्जति, गुरुसु जणो मिच्छं पडिवण्णो, अमणुण्णा सद्दा, (अमणुण्णा रूवा, अमणुण्णा गंधा, अमणुण्णा रसा, अमणुण्णा) फासा।

दश निमित्ता से अवगाढ दु पमा-काल का आगमन जाना जाता है । जैसे—

१ अकाल मे वर्षा होने से, २ समय पर वर्षा न होने से,
३ असाधुओ की पूजा होने से, ४ साधुओ की पूजा न होने से,
५ गुरुजनो के प्रति मनुष्यो का मिथ्या या असद व्यवहार होने से,
६ अमनोज्ञ शब्दो के हो जाने से, ७ अमनोज्ञ रूपो के हो जाने से,
८ अमनोज्ञ गन्धो के हो जाने से, ९ अमनोज्ञ रसो के हो जाने से,
१० अमनोज्ञ स्पर्शों के हो जाने से (१४०) ।

सुषमा-लक्षण सूत्र

१४१—दर्साहि ठार्णोहि ओगाढ सुसम जाणेज्जा, त जहा—अकाले ण वरिसति, (काले वरिसति, असाहू ण पूइज्जति, साहू पुइज्जति, गुरुसु जणो सम्म पडिवण्णो, मणुण्णा सद्दा, मणुण्णा रूवा मणुण्णा गधा, मणुण्णा रसा), मणुण्णा फासा ।

दश निमित्तो से सुषमा काल की अवस्थिति जानी जाती है । जसे—

१ अकाल मे वर्षा न होने से, २ समय पर वर्षा होने से,
३ असाधुओ की पूजा नही होने से, ४ साधुओ की पूजा होने से,
५ गुरुजनो के प्रति मनुष्य का सद्व्यवहार होने से,
६ मनोज्ञ शब्दो के होने से, ७ मनोज्ञ रूपो के होने से, ८ मनोज्ञ गन्धो के होने से,
९ मनोज्ञ रसो के होने से, १० मनोज्ञ स्पर्शों के होने से (१४१) ।

[कल्प] वृक्ष सूत्र

१४२—सुसमसुसमाए ण समाए दसविहा रुक्खा उवभोगत्ताए हव्वमागच्छति, त जहा—

सग्रहणी गाथा

मत्तगया य भिगा, तुडितगा दीव जोति चित्तगा ।
चित्तरसा मणियगा, गेहागारा अणियणा य ॥१॥

सुषम-सुषमा काल मे दश प्रकार के वृक्ष उपभोग के लिए सुलभता से प्राप्त होते हैं । जसे—

१ मदाग—मादक रस देने वाले ।
२ भृ ग—भाजन-पात्र आदि देने वाले ।
३ त्रुटितांग—वादित्रध्वनि उत्पन्न करने वाले वृक्ष ।
४ दीपाग——प्रकाश करने वाले वृक्ष ।
५ ज्योतिरग—उष्णता उत्पन्न करने वाले वृक्ष ।
६ चित्राग—अनेक प्रकार की माला-पुष्प उत्पन्न करने वाले वृक्ष ।
७ चित्ररस—अनेक प्रकार के मनोज्ञ रस वाले वृक्ष ।
८ मणि-अग—आभरण प्रदान करने वाले वृक्ष ।
९ गेहाकार—घर के आकार वाले वृक्ष ।
१० अनग्न—नग्नता को ढाकने वाले वृक्ष (१४२) ।

कुलकर-सूत्र

१४३—जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे तीताए उस्सप्पिणीए दस कुलगरा हुत्था, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

सयजले सयाऊ य, अणंतसेणे य अजितसेणे य।
कक्कसेणे भीमसेणे, महाभीमसेणे य सत्तमे ॥१॥
दढरहे दसरहे, सयरहे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारतवर्ष में, अतीत उत्सर्पिणी में दश कुलकर उत्पन्न हुए थे। जैसे—
१ स्वयजल २ शतायु ३ अनन्तसेन, ४ अजितसेन, ५ कर्कसेन, ६ भीमसेन, ७ महाभीमसेन, ८ दृढरथ, ९ दशरथ १० शतरथ (१४३)।

१४४—जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमीसाए उस्सप्पिणीए दस कुलगरा भविस्संति, तं जहा—सीमंकरे, सीमंधरे, खेमंकरे, खेमंधरे, विमलवाहणे, संमुती, पडिसुते, दढधणू, दसधणू, सतधणू।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भारतवर्ष में, आगामी उत्सर्पिणी में दश कुलकर होंगे। जैसे—
१ सीमंकर २ सीमंधर, ३ क्षेमङ्कर, ४ क्षेमंधर, ५ विमलवाहन, ६ सन्मति, ७ प्रतिश्रुत ८ दृढधनु, ९ दशधनु १० शतधनु (१४४)।

वक्षस्कार सूत्र

१४५—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणईए उभओकूले दस वक्खारपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—मालवंते, चित्तकूडे, पम्हकूडे, (णलिणकूडे, एगसेले, तिकूडे, वेसमणकूडे, अंजणे, मायंजणे), सोमणसे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के दोनों कूलों पर दश वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं। जैसे—

१ माल्यवान् कूट, २ चित्रकूट, ३ पक्ष्मकूट ४ नलिनकूट ५ एकशैल ६ त्रिकूट ७ वैश्रमणकूट ८ अंजनकूट ९ मातांजनकूट, १० सौमनसकूट (१४५)।

१४६—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीओदाए महाणईए उभओकूले दस वक्खारपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—विज्जुप्पभे, (अंकावती, पम्हावती, आसीविसे, सुहावहे, चंदपव्वते, सूरपव्वते, णागपव्वते, देवपव्वते), गंधमायणे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के दोनों कूलों पर दश वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं। जैसे—
१ विद्युत्प्रभकूट, २ अङ्कावतीकूट, ३ पक्ष्मावतीकूट, ४ आशीविषकूट, ५ सुखावहकूट, ६ चन्द्रपर्वतकूट ७ सूरपर्वतकूट, ८ नागपर्वतकूट, ९ देवपर्वतकूट, १० गन्धमादनकूट (१४६)।

१४७—एवं धायइसंडपुरत्थिमद्धे वि वक्खारा भाणियव्वा जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे।

इसी प्रकार धातकीषण्ड के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में, तथा पुष्करवर द्वीपार्ध के पूर्वार्ध-पश्चिमार्ध में शीता और शीतोदा महानदियों के दोनों कूलों पर दश-दश वक्षस्कार पर्वत जानना चाहिए (१४७)।

कल्प सूत्र

१४८—दस कप्पा इंदाहिट्ठिया पण्णत्ता, तं जहा—सोहम्मे, (ईसाणे, सणंकुमारे, माहिंदे, बंभलोए, लंतए, महासुक्के), सहस्सारे, पाणते, अच्चुते।

इन्द्रों से अधिष्ठित कल्प दश कहे गये हैं। जैसे—

१ सौधर्म कल्प, २ ईशान कल्प, ३ सनत्कुमार कल्प ४ माहेन्द्र कल्प ५ ब्रह्मलोक कल्प, ६ लान्तक कल्प, ७ महाशुक्र कल्प, ८ सहस्रार कल्प, ९ प्राणत कल्प, १० अच्युत कल्प (१४८)।

१४९—एतेसु णं दससु कप्पेसु दस इंदा पण्णत्ता, तं जहा—सक्के, ईसाणे, (सणंकुमारे, माहिंदे, बंभे, लंतए, महासुक्के, सहस्सारे, पाणते), अच्चुते।

इन दश कल्पों में दश इन्द्र हैं। जैसे—

१ शक्र, २ ईशान, ३ सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, ५ ब्रह्म, ६ लान्तक, ७ महाशुक्र, ८ सहस्रार, ९ प्राणत, १० अच्युत (१४९)।

१५०—एतेसि णं दसण्हं इंदाणं दस परिजाणिया विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—पालए, पुप्फए, (सोमणसे, सिरिवच्छे, णंदियावत्ते, कामकमे, पीतिमणे, मणोरमे), विमलवरे, सव्वतोभद्दे।

इन दशों इन्द्रों के पारियानिक विमान दश कहे गये हैं। जैसे—

१ पालक, २ पुष्पक, ३ सौमनस ४ श्रीवत्स, ५ नन्द्यावर्त, ६ कामक्रम ७ प्रीतिमना ८ मनोरम, ९ विमलवर, १० सर्वतोभद्र (१५०)।

प्रतिमा सूत्र

१५१—दसदसमिया णं भिक्खुपडिमा एगेण राइंदियसतेणं अद्धछट्ठेहिं य भिक्खासतेहिं अहासुत्तं (अहाअत्थं अहातच्चं अहामग्गं अहाकप्पं सम्मं काएण फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया) आराहिया यावि भवति।

दश दशमिका भिक्षु प्रतिमा सौ दिन-रात, तथा ५५० भिक्षा दत्तियों द्वारा यथासूत्र, यथा-*अर्थ, यथातथ्य, यथामार्ग, यथाकल्प, तथा सम्यक् प्रकार काय से आचरित, पालित, शोधित, पूरित,* कीर्तित और आराधित की जाती है (१५१)।

जीव-सूत्र

१५२—दसविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—पढमसमयएगिंदिया, अपढम-समयएगिंदिया, (पढमसमयबेइंदिया, अपढमसमयबेइंदिया, पढमसमयतेइंदिया, अपढमसमयतेइंदिया, पढमसमयचउरिंदिया, अपढमसमयचउरिंदिया, पढमसमयपंचिंदिया,) अपढमसमयपंचिंदिया।

संसारी जीव दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ जिनको उत्पन्न हुए प्रथम समय ही है ऐसे एकेन्द्रिय जीव।
२ अप्रथम—जिनको उत्पन्न हुए एक से अधिक समय हो चुका है ऐसे एकेन्द्रिय जीव।
३ प्रथम समय में उत्पन्न द्वीन्द्रिय जीव।
४ अप्रथम समय में उत्पन्न द्वीन्द्रिय जीव।
५ प्रथम समय में उत्पन्न त्रीन्द्रिय जीव।

६ अप्रथम समय म उत्पन्न त्रीन्द्रिय जीव ।
७ प्रथम समय मे उत्पन्न चतुरिन्द्रिय जीव ।
८ अप्रथम समय मे उत्पन्न चतुरिन्द्रिय जीव ।
९ प्रथम समय मे उत्पन्न पचेन्द्रिय जीव ।
१० अप्रथम समय म उत्पन्न पचेन्द्रिय जीव (१५२) ।

१५३—दसविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—पुढविकाइया, (आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया), वणस्सइकाइया, बेंदिया, (तेइंदिया, चउरिंदिया), पचेंदिया, अणिदिया ।

अहवा—दसविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—पढमसमयणेरइया, अपढमसमयणेरइया, (पढमसमयतिरिया, अपढमसमयतिरिया, पढमसमयमणुया, अपढमसमयमणुया, पढमसमयदेवा), अपढमसमयदेवा, पढमसमयसिद्धा, अपढमसमयसिद्धा ।

सब जीव दस प्रकार के कहे गये हैं । जसे—
१ पृथ्वीकायिक, २ अप्कायिक, ३ तजस्कायिक, ४ वायुकायिक, ५ वनस्पतिकायिक,
६ द्वीन्द्रिय, ७ त्रीन्द्रिय, ८ चतुरिन्द्रिय, ९ पचेन्द्रिय, १० अनिन्द्रिय (सिद्ध) जीव ।

अथवा सब जीव दस प्रकार के कहे गये हैं । जसे—

१ प्रथम समय-उत्पन्न नारक ।
२ अप्रथम समय उत्पन्न नारक ।
३ प्रथम समय मे उत्पन्न तियच ।
४ अप्रथम समय मे उत्पन्न तियच ।
५ प्रथम समय मे उत्पन्न मनुष्य ।
६ अप्रथम समय मे उत्पन्न मनुष्य ।
७ प्रथम समय मे उत्पन्न दव ।
८ अप्रथम समय मे उत्पन्न देव ।
९ प्रथम समय म सिद्धगति को प्राप्त सिद्ध ।
१० अप्रथम समय मे सिद्धगति को प्राप्त सिद्ध (१५३) ।

शतायुष्क दशा-सूत्र

१५४—वाससताउयस्स ण पुरिसस्स दस दसाओ पण्णत्ताओ, त जहा—

सग्रह श्लोक

बाला किड्डा य मदा य, बला पण्णा य, हायणी ।
पवचा पब्भारा य मुम्मुही सायणी तधा ॥१॥

सौ वप की आयु वाले पुरुष की दस दशाए कही गई हैं । जसे—
१ बालदशा, २ क्रीडादशा, ३ मन्दादशा, ४ बलादशा, ५. प्रज्ञादशा, ६ हायिनीदशा ७ प्रपचादशा, ८ प्राग्भारादशा, ९ उन्मुखीदशा, १० शायिनीदशा (१५४) ।

विवेचन—मनुष्य की पूण आयु सौ वप मानकर, दस-दस वप की एक-एक दशा का वणन प्रस्तुत सूत्र मे किया गया है । खुलासा इस प्रकार है—

१ बालदशा—इसमें सुख-दुःख या भले-बुरे का विशेष बोध नहीं होता।
२ क्रीडादशा—इसमें खेल-कूद की प्रवृत्ति प्रबल रहती है।
३ मन्ददशा—इसमें भोग प्रवृत्ति की अधिकता से बुद्धि के कार्यों की मन्दता रहती है।
४ बलादशा—इसमें मनुष्य अपने बल का प्रदर्शन करता है।
५ प्रज्ञादशा—इसमें मनुष्य की बुद्धि धन कमाने, कुटुम्ब पालने आदि में लगी रहती है।
६ हायनीदशा—इसमें शक्ति क्षीण होने लगती है।
७ प्रपंचादशा—इसमें मुख से लार-थूक आदि गिरने लगते हैं।
८ प्राग्भारदशा—इसमें शरीर झुर्रियों से व्याप्त हो जाता है।
९ उन्मुखीदशा—इसमें मनुष्य बुढ़ापा से आक्रान्त हो मौत के सम्मुख हो जाता है।
१० शायिनीदशा—इसमें मनुष्य दुर्बल, दीनस्वर होकर शय्या पर पड़ा रहता है।

तृणवनस्पति सूत्र

१५५—दसविधा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, तं जहा—मूले, कंदे, (खंधे, तया, साले, पवाले, पत्ते), पुप्फे, फले, बीये।

तृणवनस्पतिकायिक जीव दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ मूल, २ कन्द, ३ स्कन्ध, ४ त्वक्, ५ शाखा, ६ प्रवाल, ७ पत्र, ८ पुष्प ९ फल,
१० बीज (१५५)।

श्रेणि-सूत्र

१५६—सव्वाओवि णं विज्जाहरसेढीओ दस-दस जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर अवस्थित सभी विद्याधर-श्रेणियां दश दश योजन विस्तृत कही गई हैं (१५६)।

१५७—सव्वाओवि णं आभिओगसेढीओ दस-दस जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर अवस्थित सभी आभियोगिक श्रेणियां दश दश योजन विस्तृत कही गई हैं (१५७)।

विवेचन—भरत और ऐरवत क्षेत्र के ठीक मध्यभाग में पूर्व समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र तक लम्बा और मूल में पचास योजन चौड़ा एक-एक वैताढ्य पर्वत है। इसकी ऊंचाई पच्चीस योजन है। भूमितल से दश योजन की ऊंचाई पर उसके उत्तरी और दक्षिणी भाग पर विद्याधरों की श्रेणियां मानी गई हैं। उनमें विद्याधर रहते हैं, जो कि विद्याओं के बल से आकाश में गमनादि करने में समर्थ होते हैं। वे श्रेणियां दोनों ओर दश दश योजन चौड़ी हैं। इन विद्याधर श्रेणियों से भी दश योजन की ऊंचाई पर आभियोगिक श्रेणियां मानी गई हैं, जिनमें अभियोग जाति के व्यन्तर देव रहते हैं। ये श्रेणियां भी दोनों ओर दश-दश योजन चौड़ी कही गई हैं।

ग्रैवेयक-सूत्र

१५८—गेविज्जगविमाणा णं दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

ग्रैवेयक विमानों के ऊपर की ऊंचाई दश सौ (१०००) योजन कही गई है (१५८)।

तेजसा भस्मकरण-सूत्र

१५९—दसहिं ठाणेहिं सह तेयसा भासं कुज्जा, तं जहा—

१ केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते समाणे परिकुविते तस्स तेयं णिसिरेज्जा। से तं परितावेति, से तं परितावेत्ता तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

२ केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते समाणे देवे परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा। से तं परितावेति, से तं परितावेत्ता तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

३ केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते समाणे परिकुविते देवेवि य परिकुविते ते दुहओ पडिण्णा तस्स तेयं णिसिरेज्जा। ते तं परितावेंति, ते तं परितावेत्ता तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

४ केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा से य अच्चासातिते [समाणे ?] परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा समुच्छंति, ते फोडा भिज्जंति, ते फोडा भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

५ केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] देवे परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा समुच्छंति, ते फोडा भिज्जंति, ते फोडा भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

६ केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] परिकुविए देवेवि य परिकुविए ते दुहओ पडिण्णा तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा समुच्छंति, (ते फोडा भिज्जंति, ते फोडा भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा) भासं कुज्जा।

७ केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा समुच्छंति, ते फोडा भिज्जंति, तत्थ पुला समुच्छंति, ते पुला भिज्जंति, ते पुला भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

८ (केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] देवे परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा समुच्छंति, ते फोडा भिज्जंति, तत्थ पुला समुच्छंति ते पुला भिज्जंति, ते पुला भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

९ केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] परिकुविए देवेवि य परिकुविए ते दुहओ पडिण्णा तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा समुच्छंति, ते फोडा भिज्जंति तत्थ पुला समुच्छंति, ते पुला भिज्जंति, ते पुला भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा)।

१० केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेमाणे तेयं णिसिरेज्जा, से य तत्थ णो कम्मति, णो पकम्मति, अंचिअंचियं करेति, करेत्ता आयाहिणपयाहिणं करेति, करेत्ता उड्ढं वेहासं उप्पतति, उप्पतेत्ता से णं ततो पडिहते पडिणियत्तति, पडिणियत्तित्ता तमेव सरीरगं अणुदहमाणे अणुदहमाणे सह तेयसा भासं कुज्जा—जहा वा गोसालस्स मंखलि-पुत्तस्स तवेतेए।

१ बालदशा—इसमे सुख दुःख या भले-बुरे का विशेष बोध नही होता।
२ क्रीडादशा—इसमे खेल-कूद की प्रवृत्ति प्रबल रहती है।
३ मन्दादशा—इसमे भोग-प्रवृत्ति की अधिकता से बुद्धि के कार्यों की मन्दता रहती है।
४ बलादशा—इसमे मनुष्य अपने बल का प्रदर्शन करता है।
५ प्रज्ञादशा—इसमे मनुष्य की बुद्धि धन कमाने, कुटुम्ब पालने आदि मे लगी रहती है।
६ हायनीदशा—इसमे शक्ति क्षीण होने लगती है।
७ प्रपचादशा—इसमे मुख से लार-थूक आदि गिरने लगते हैं।
८ प्राग्भारदशा—इसमे शरीर झुरियों से व्याप्त हो जाता है।
९ उन्मुखीदशा—इसमे मनुष्य बुढापा से आक्रान्त हो मौत के सन्मुख हो जाता है।
१० शायिनीदशा—इसमे मनुष्य दुर्बल, दीनस्वर होकर शय्या पर पडा रहता है।

तृणवनस्पति-सूत्र

१५५—दसविधा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, त जहा—मूले, कदे (खधे, तया, साले, पवाले, पत्ते), पुप्फे फले, बीये।

तृणवनस्पतिकायिक जीव दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१ मूल, २ कन्द, ३ स्कन्ध, ४ त्वक्, ५ शाखा, ६ प्रवाल, ७ पत्र, ८ पुष्प ९ फल, १० बीज (१५५)।

श्रेणि सूत्र

१५६—सव्वाओवि ण विज्जाहरसेढीओ दस-दस जोयणाइ विक्खभेण पण्णत्ता।

दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर अवस्थित सभी विद्याधर-श्रेणिया दश-दश योजन विस्तृत कही गई हैं (१५६)।

१५७—सव्वाओवि ण आभिओगसेढीओ दस-दस जोयणाइ विक्खभेण पण्णत्ता।

दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर अवस्थित सभी आभियोगिक-श्रेणिया दश-दश योजन विस्तृत कही गई हैं (१५७)।

विवेचन—भरत और ऐरवत क्षेत्र के ठीक मध्यभाग मे पूर्व समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र तक लम्बा और मूल मे पचास योजन चौडा एक-एक वैताढ्य पर्वत है। इसकी ऊचाई पच्चीस योजन है। भूमितल से दश योजन की ऊचाई पर उसके उत्तरी और दक्षिणी भाग पर विद्याधरो की श्रेणिया मानी गई है। उनमे विद्याधर रहते हैं, जो कि विद्याओ के बल से आकाश मे गमनादि करने मे समर्थ होते हैं। वे श्रेणिया दोनो ओर दश-दश योजन चौडी हैं। इन विद्याधर-श्रेणियो से भी दश योजन की ऊचाई पर आभियोगिक श्रेणिया मानी गई हैं, जिनमे अभियोग जाति के व्यन्तर देव रहते हैं। ये श्रेणिया भी दोनो ओर दश-दश योजन चौडी कही गई हैं।

ग्रैवेयक-सूत्र

१५८—गेविज्जगविमाणा ण दस जोयणसयाइ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता।

ग्रैवेयक विमानो के ऊपर की ऊचाई दश सौ (१०००) योजन कही गई है (१५८)।

तेजसा भस्मकरण-सूत्र

१५६—दसहिं ठाणेहिं सह तेयसा भास कुज्जा, त जहा—

१ केइ तहारूव समण वा माहण वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते समाणे परिकुविते तस्स तेय णिसिरेज्जा। से त परितावेति, से त परितावेत्ता तामेव सह तेयसा भास कुज्जा।

२ केइ तहारूव समण वा माहण वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते समाणे देवे परिकुविए तस्स तेय णिसिरेज्जा। से त परितावेति से त परितावेत्ता तामेव सह तेयसा भास कुज्जा।

३ केइ तहारूव समण वा माहण वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते समाणे परिकुविते देवेवि य परिकुविते ते दुहग्रो पडिण्णा तस्स तेय णिसिरेज्जा। ते त परितावेंति ते त परितावेत्ता तामेव सह तेयसा भास कुज्जा।

४ केइ तहारूव समण वा माहण वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] परिकुविए तस्स तेय णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा समुच्छति, ते फोडा भिज्जति, ते फोडा भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भास कुज्जा।

५ केइ तहारूव समण वा माहण वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] देवे परिकुविए तस्स तेय णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा समुच्छति, ते फोडा भिज्जति, ते फोडा भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भास कुज्जा।

६ केइ तहारूव समण वा माहण वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] परिकुविए देवेवि य परिकुविए ते दुहग्रो पडिण्णा तस्स तेय णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा समुच्छति, (ते फोडा भिज्जति, ते फोडा भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा) भास कुज्जा।

७ केइ तहारूव समण वा माहण वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] परिकुविए तस्स तेय णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा समुच्छति, ते फोडा भिज्जति, तत्थ पुला समुच्छति, ते पुला भिज्जति, ते पुला भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भास कुज्जा।

८ (केइ तहारूव समण वा माहण वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] देवे परिकुविए तस्स तेय णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा समुच्छति, ते फोडा भिज्जति, तत्थ पुला समुच्छति ते पुला भिज्जति, ते पुला भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भास कुज्जा।

९ केइ तहारूव समण वा माहण वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] परिकुविए देवेवि य परिकुविए ते दुहग्रो पडिण्णा तस्स तेय णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा समुच्छति, ते फोडा भिज्जति तत्थ पुला समुच्छति, ते पुला भिज्जति, ते पुला भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भास कुज्जा)।

१० केइ तहारूव समण वा माहण वा अच्चासातेमाणे तेय णिसिरेज्जा, से य तत्थ णो कम्मति, णो पकम्मति, अचिअचिय करेति, करेत्ता आयाहिणपयाहिण करेति, करेत्ता उड्ढ वेहास उप्पतति, उप्पतेत्ता से ण ततो पडिहते पडिणियत्तति, पडिणियत्तित्ता तमेव सरीरग अणुदहमाणे अणुदहमाण सह तेयसा भास कुज्जा—जहा वा गोसालस्स मखलिपुत्तस्स तवेतेए।

दश कारणों से श्रमण माहन (अति आशातना करने वाले को) तेज से भस्म कर डालता है। जैसे—

१ कोई व्यक्ति तथारूप (तेजोलब्धि से सम्पन्न) श्रमण-माहन की तीव्र आशातना करता है, वह उस आशातना से पीडित होता हुआ उस व्यक्ति पर क्रोधित होता है। तब उसके शरीर से तेज निकलता है। वह तेज उस उपसर्ग करने वाले को परितापित करता है और उसे भस्म कर देता है।

२ कोई व्यक्ति तथारूप (तेजोलब्धिसम्पन्न) श्रमण माहन की अत्याशातना करता है, उसकी अत्याशातना करने पर कोई देव कुपित होता है। तब उस देव के शरीर से तेज निकलता है। वह तेज उस उपसर्ग करने वाले को परितापित करता है और परितापित कर उस तेज से उसे भस्म कर देता है।

३ कोई व्यक्ति तथारूप (तेजोलब्धिसम्पन्न) श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना से परिकुपित वह श्रमण माहन और परिकुपित देव दोनों ही उसे मारने की प्रतिज्ञा करते हैं। तब उन दोनों के शरीर से तेज निकलता है। वे दोनों तेज उस उपसर्ग करने वाले व्यक्ति को परितापित करते हैं और परितापित करके उसे उस तेज से भस्म कर देते हैं।

४ कोई व्यक्ति तथारूप (तेजोलब्धिसम्पन्न) श्रमण माहन की अत्याशातना करता है। वह उस अत्याशातना से परिकुपित होता है, तब उसके शरीर से तेज निकलता है उससे उस व्यक्ति के शरीर में स्फोट (फोड़े-फफोले) उत्पन्न होते हैं। वे फोड़े फूटते हैं और फटते हुए उसे उस तेज से भस्म कर देते हैं।

५ कोई व्यक्ति तथारूप (तेजोलब्धिसम्पन्न) श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना करने पर कोई देव परिकुपित होता है, तब उसके शरीर से तेज निकलता है, उससे उस व्यक्ति के शरीर में स्फोट उत्पन्न होते हैं। वे स्फोट फूटते है और उसे उस तेज से भस्म कर देते हैं।

६ कोई व्यक्ति तथारूप (तेजोलब्धिसम्पन्न) श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है, उसके अत्याशातना करने पर परिकुपित वह श्रमण माहन और परिकुपित देव ये दोनों ही उसे मारने की प्रतिज्ञा करते हैं। तब उन दोनों के शरीरों से तेज निकलता है। उससे उस व्यक्ति के शरीर में स्फोट उत्पन्न होते है। वे स्फोट फूटते है और फूटते हुए उसे उस तेज से भस्म कर देते हैं।

७ कोई व्यक्ति तथारूप (तेजोलब्धिसम्पन्न) श्रमण माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना करने पर वह उस पर परिकुपित होता है। तब उसके शरीर से तेज निकलता है। उससे उस व्यक्ति के शरीर में स्फोट उत्पन्न होते हैं। वे स्फोट फूटते है, तब उनमें से पुल (फुंसिया) उत्पन्न होती है। वे फूटती हैं और फूटती हुई उस तेज से उसे भस्म कर देती हैं।

८ कोई व्यक्ति तथारूप (तेजोलब्धिसम्पन्न) श्रमण माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना करने पर कोई देव परिकुपित होता है, तब उसके शरीर से तेज निकलता है, उससे उस व्यक्ति के शरीर में स्फोट उत्पन्न होते हैं। वे स्फोट फूटते हैं, तब उनमें पुल (फुंसिया) निकलती हैं। वे फूटती हैं और फूटती हुई उस तेज से उसे भस्म कर देती हैं।

९ कोई व्यक्ति तथारूप (तेजोलब्धिसम्पन्न) श्रमण माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना करने पर परिकुपित वह श्रमण-माहन और परिकुपित देव दोनों ही उसे मारने की प्रतिज्ञा करते हैं। तब उन दोनों के शरीरों से तेज निकलता है। उससे उस व्यक्ति के शरीर में

स्फोट उत्पन्न होते हैं। वे स्फोट फूटते ह, तब उनमे से पुल (फुसिया) निकलती हैं। वे फूटती है और फूटती हुई उस तेज से उसे भस्म कर देती हैं।

१० कोई व्यक्ति तथारूप (तेजोलब्धिसम्पन्न) श्रमण-माहन की अत्याशातना करता हुआ उस पर तेज फेंकता है। वह तेज उम श्रमण-माहन के शरीर पर आक्रमण नही कर पाता, प्रवेश नही कर पाता है। तब वह उसके ऊपर से नीचे और नीचे मे ऊपर आता जाता है, दाए-बाए प्रदक्षिणा करता है और यह सब करके ऊपर आकाश मे चला जाता है। वहाँ से लौटकर उस श्रमण-माहन के प्रबल तेज से प्रतिहत होकर वापिस उसी फेंकनेवाले के पास चला जाता है और उसके शरीर मे प्रवेश कर उसे उसकी तेजोलब्धि के साथ भस्म कर देता है, जिस प्रकार मखली पुत्र गोशालक के तपस्तेज ने उसी को भस्म कर दिया था (१५९)।

(मखलीपुत्र गोशालक ने क्रोधित होकर भगवान महावीर पर तेजोलेश्या का प्रयोग किया था। किन्तु वीतरागता के प्रभाव से उसने वापिस लौटकर गोशालक को ही भस्म कर दिया था। चरमशरीरी श्रमणो पर तेजोलेश्या का असर नही होता है।)

आश्चयक सूत्र

१६०—दस अच्छेरगा पण्णत्ता त जहा—

संग्रहणी गाथा

उवसग्ग गब्भहरण, इत्थीतित्थ अभाविया परिसा।
कण्हस्स अवरकका, उत्तरण चदसूराण ॥१॥
हरिवसकुलुप्पत्ती, चमरुप्पातो य अट्ठसयसिद्धा।
अस्सजतेसु पूआ, दसवि अणतेण कालेण ॥२॥

दश आश्चयक कहे गये हैं। जैसे—

१ उपसग—तीर्थंकरो के ऊपर उपसग होना।
२ गभहरण—भगवान् महावीर का गभापहरण होना।
३ स्त्री का तीर्थंकर हाना।
४ अभावित परिषत्—तीर्थंकर भगवान् महावीर का प्रथम धर्मोपदेश विफल हुआ अर्थात् उसे सुनकर किसी ने चारित्र अगीकार नही किया।
५ कृष्ण का अमरकका नगरी मे जाना।
६ चन्द्र और सूय देवा का विमान-सहित पृथ्वी पर उतरना।
७ हरिवश कुल की उत्पत्ति।
८ चमर का उत्पात—चमरेन्द्र का सौधमकल्प मे जाना।
९ एक सौ आठ सिद्ध—एक समय मे एक साथ एक सौ आठ जीवा का सिद्ध होना।
१० असयमी की पूजा।

ये दश आश्चय अनन्तकाल के व्यवधान से हुए हैं (१६०)।

विवेचन—जो घटनाए सामान्य रूप से सदा नही होती, किन्तु किसी विशेष कारण से चिरकाल के पश्चात् होती हैं, उन्हे आश्चय कारक होने से 'आश्चयक' या अच्छेरा कहा जाता है। जैनशासन मे भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर के समय तक ऐसी दश अद्भुत

१६९—अणुराधाणक्खत्ते सव्वब्भतराओ मडलाओ दसमे मडले चार चरति ।

अनुराधा नक्षत्र चन्द्रमा के सर्वाभ्यन्तर-मण्डल से दशवें मण्डल मे सचार करता है (१६९) ।

ज्ञानवृद्धिकर सूत्र

१७०—दस णक्खत्ता णाणस्स विद्धिकरा पण्णत्ता, त जहा—

सग्रहणी-गाथा

मिगसिरमद्दा पुस्सो, तिण्णि य पुव्वाइ मूलमस्सेसा ।
हत्थो चित्ता य तहा, दस विद्धिकराइ णाणस्स ॥१॥

दश नक्षत्र ज्ञान की वृद्धि करने वाले कहे गये है । जैसे—
१ मृगशिरा, २ आर्द्रा, ३ पुष्य, ४ पूर्वाषाढा, ५ पूर्वभाद्रपद, ६ पूर्व फाल्गुनी, ७ मूल, ८ आश्लेषा, ९ हस्त, १० चित्रा । ये दश नक्षत्र ज्ञान की वृद्धि करते हैं (१७०) ।

कुलकोटि-सूत्र

१७१—चउप्पयथलयरपचिदियतिरिक्खजोणियाण दस जाति कुलकोडि जोणिपमुह सतसहस्सा पण्णत्ता ।

पचेन्द्रिय, तिर्यग्योनिक, स्थलचर चतुष्पद की जाति कुल कोटिया दश लाख कही गई है (१७१) ।

१७२—उरपरिसप्पथलयरपचिदियतिरिक्खजोणियाण दस जाति कुलकोडि-जोणिपमुह सत-सहस्सा पण्णत्ता ।

पचेन्द्रिय, तिर्यग्योनिक स्थलचर उर परिसर्प की जाति कुलकोटिया दश लाख कही गई हैं (१७२) ।

पापकर्म सूत्र

१७३—जीवा ण दसठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिसु वा चिणति वा चिणिस्सति वा, त जहा—पढमसमयएगिदियणिव्वत्तिए (अपढमसमयएगिदियणिव्वत्तिए, पढमसमयबेइदियणिव्व-त्तिए, अपढमसमयबेइदियणिव्वत्तिए, पढमसमयतेइदियणिव्वत्तिए, अपढमसमयतेइदियणिव्वत्तिए, पढम-समयचउरिंदियणिव्वत्तिए अपढमसमयचउरिंदियणिव्वत्तिए, पढमसमयपचिदियणिव्वत्तिए, अपढम-समय)पचिदियणिव्वत्तिए ।

एव—चिण उवचिण-बध उदीर वेय तह णिज्जरा चेव ।

जीवा ने दश स्थानो से निर्वर्तित पुद्गलो का पापकर्म के रूप से सचय किया है, करते है और करेंगे । जैसे—

१ प्रथम समय—एकेन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलो का ।
२ अप्रथम समय—एकेन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलो का ।
३ प्रथम समय—द्वीन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलो का ।
४ अप्रथम समय—द्वीन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलो का ।
५ प्रथम समय—त्रीन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलो का ।

६ अप्रथम समय—त्रीन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलो का।
७ प्रथम समय—चतुरिन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलो का।
८ अप्रथम समय—चतुरिन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलो का।
९ प्रथम समय—पचेन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलो का।
१० अप्रथम समय—पचेन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलो का।

इसी प्रकार उनका चय, उपचय, बन्धन, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे (१७३)।

पुद्गल-सूत्र

१७४—दसपएसिया खधा अणता पण्णत्ता।

दश प्रदेशी पुद्गलस्कन्ध अनन्त कहे गये हैं (१७४)।

१७५—दसपएसोगाढा पोग्गला अणता पण्णत्ता।

दश प्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त कहे गये हैं (१७५)।

१७६—दससमयठितीया पोग्गला अणता पण्णत्ता।

दश समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं (१७६)।

१७७—दसगुणकालगा पोग्गला अणता पण्णत्ता।

दश गुण काले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं (१७७)।

१७८—एव वण्णेहिं गधेहिं रसेहिं फासेहिं दसगुणलुक्खा पोग्गला अणता पण्णत्ता।

इसी प्रकार शेष वर्ण तथा गन्ध, रस और स्पर्शों के दश-दश गुण वाले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं (१७८)।

॥ दशम स्थानक समाप्त ॥

॥ स्थानाग समाप्त ॥

गाथानुक्रम

[प्रस्तुत अनुक्रम मे सूत्र मे आई गाथाओ के केवल प्रथम चरण का उल्लेख किया गया है। पूरी गाथा सामने अकित पृष्ठ पर देखना चाहिए।]

व्यक्तिनाम-अनुक्रम

आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

अर्थसहयोगी सदस्यो की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१ श्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
२ श्री सेठ खींवराजजी चोरडिया, मद्रास
३ श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, बगलोर
४ श्री एस किशनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
५ श्री गुमानमलजी चोरडिया, मद्रास
६ श्री कवरलालजी बेताला, गोहाटी
७ श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
८ श्री प्रेमराजजी भवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुग
९ श्री गुलाबचन्दजी मागीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद

स्तम्भ

१ श्री जसराजजी गणेशमलजी सचेती, जोधपुर
२ श्री अगरचदजी फतेचदजी पारख, जोधपुर
३ श्री पूसालालजी किस्तूरचदजी सुराणा, बालाघाट
४ श्री मूलचदजी चोरडिया, कटगी
५ श्री तिलोकचदजी सागरमलजी सचेती, मद्रास
६ श्री जे दुलीचदजी चोरडिया, मद्रास
७ श्री हीराचदजी चोरडिया, मद्रास
८ श्री एस रतनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
९ श्री वर्द्धमान इन्डस्ट्रीज, कानपुर
१० श्री एस सायरचदजी चोरडिया, मद्रास
११ श्री एस बादलचदजी चोरडिया, मद्रास
१२ श्री एस रिखबचदजी चोरडिया, मद्रास
१३ श्री आर परसनचदजी चोरडिया, मद्रास
१४ श्री अन्नराजजी चोरडिया, मद्रास
१५ श्री दीपचदजी बोकडिया, मद्रास
१६ श्री मिश्रीलालजी तिलोकचदजी सचेती, दुग

सरक्षक

१ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चोपडा, ब्यावर
२ श्री दीपचदजी चन्दनमलजी चोरडिया, मद्रास
३ श्री ज्ञानराजजी मूथा, पाली
४ श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
५ श्री रतनचदजी उत्तमचदजी मोदी, ब्यावर
६ श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चागा-टोला
७ श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया, ब्यावर
८ श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेडता
९ श्री जडावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
१० श्री वस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (K G F) एव जाडन
११ श्री केशरीमलजी जवरीलालजी तालेरा, पाली
१२ श्री नेमीचदजी मोहनलालजी ललवाणी, चागाटोला
१३ श्री विरदीचदजी प्रकाशचदजी तलेसरा, पाली
१४ श्री सिरेकँवर बाई धमपत्नी स्व श्री सुगनचद-जी भामड, मदुरान्तकम
१५ श्री थानचदजी मेहता, जोधपुर
१६ श्री मूलचदजी सुजानमलजी सचेती, जोधपुर
१७ श्री लालचदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
१८ श्री भेरुदानजी लाभचदजी सुराणा, धोबडी तथा नागौर
१९ श्री रावतमलजी भीकमचदजी पगारिया, बालाघाट
२० श्री सागरमलजी नोरतमलजी पींचा, मद्रास
२१ श्री धर्मीचन्दजी भागचदजी बोहरा,

२२ श्री मोहनराजजी बालिया, अहमदाबाद
२३ श्री चेनमलजी सुराणा, मद्रास
२४ श्री गणेशमलजी धर्मीचदजी काकरिया, नागौर
२५ श्री बादलचदजी मेहता, इन्दौर
२६ श्री हरकचदजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२७ श्री सुगनचन्दजी बोकडिया, इन्दौर
२८ श्री इन्दरचदजी वैद, राजनादगाव
२९ श्री मागीलालजी धर्मीचदजी चोरडिया, चागाटोला
३० श्री रघुनाथमलजी लिसमीचदजी लोढा, चागाटोला
३१ श्री भवरलालजी मूलचदजी सुराणा मद्रास
३२ श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चागाटोला
३३ श्री जालमचदजी रिखबचदजी बाफना, आगरा
३४ श्री भवरीमलजी चोरडिया, मद्रास
३५ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चोपडा, अजमेर
३६ श्री घेवरचदजी पुखराज जी, गोहाटी
३७ श्री मागीलालजी चोरडिया, आगरा
३८ श्री भवरलालजी गोठी, मद्रास
३९ श्री गुणचदजी दल्लीचदजी कटारिया, बेल्लारी
४० श्री अमरचदजी बोथरा, मद्रास
४१ श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढा, डोडीलोहारा
४२ श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बगलोर
४३ श्री जडावमलजी सुगनचदजी, मद्रास
४४ श्री पुखराजजी विजयराज जी, मद्रास
४५ श्री जवरचदजी गेलडा, मद्रास
४६ श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी महेता, कुप्पल
४७ श्री लूणकरणजी रिखबचदजी लोढा, मद्रास

सहयोगी सदस्य

१ श्री पूनमचदजी नाहटा, जोधपुर
२ श्री अमरचदजी बालचदजी मोदी, ब्यावर
३ श्री चम्पालालजी मीठालालजी सकलेचा, जालना
४ श्री छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
५ श्री भवरलालजी चोपडा, ब्यावर
६ श्री रतनलालजी चतर, ब्यावर
७ श्री जवरीलालजी अमरचदजी कोठारी, ब्यावर
८ श्री मोहनलालजी गुलाबचदजी चतर, ब्यावर
९ श्री बादरमलजी पुखराजजी बट, कानपुर
१० श्री के पुखराजजी बाफना, मद्रास
११ श्री पुखराजजी बोहरा, पीपलिया
१२ श्री चम्पालालजी बुधराजजी बाफणा, ब्यावर
१३ श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१४ श्री मागीलालजी प्रकाशचदजी रणवाल, बर
१५ श्री मोहनलालजी मगलचदजी पगारिया, रायपुर
१६ श्री भवरलालजी गौतमचदजी पगारिया, कुशालपुरा
१७ श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१८ श्री फूलचदजी गौतमचदजी काठेड, पाली
१९ श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
२० श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
२१ श्री देवकरणजी श्रीचदजी डोसी, मेडतासिटी
२२, श्री माणकराजजी किशनराजजी, मेडतासिटी
२३ श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेडतासिटी
२४ श्री बी गजराजजी बोकडिया, सलेम
२५ श्री भवरलालजी विजयराजजी काकरिया, विल्लीपुरम्
२६ श्री कनकराज जी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
२७ श्री हरकराजजी मेहता, जोधपुर
२८ श्री सुमेरमलजी मेडतिया, जोधपुर
२९, श्री घेवरचदजी पारसमलजी टाटिया, जोधपुर
३० श्री गणेशमलजी नेमीचदजी टाटिया, जोधपुर
३१ श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
३२ श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
३३ श्री जसराजजी जवरीलालजी धारीवाल, जोधपु
३४ श्री मूलचदजी पारख, जो
३५ श्री आसुमल [illegible] व, [illegible]

३६ श्री देवराजजी लाभचदजी मेडतिया, जोधपुर
३७ श्री घेवरचदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
३८ श्री पुखराजजी बोह्रा, (जैन ट्रान्सपोर्ट क) जोधपुर
३९ श्री बच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
४० श्री ताराचदजी केवलचदजी कर्णावट, जोधपुर
४१ श्री मिश्रीलालजी लिखमीचदजी मांड, जोधपुर
४२ श्री उत्तमचदजी मागीलालजी, जोधपुर
४३ श्री मागीलालजी रेखचदजी पारख, जोधपुर
४४ श्री उदयराजजी पुखराजजी सचेती, जोधपुर
४५ श्री सरदारमल एड क , जोधपुर
४६ श्री रायचदजी मोहनलालजी, जोधपुर
४७ श्री नेमीचदजी डाकलिया, जोधपुर
४८ श्री घेवरचदजी रूपराजजी, जोधपुर
४९ श्री मुन्नीलालजी, मूलचदजी, पुखराजजी गुलेच्छा, जोधपुर
५० श्री सुदरबाई गोठी, महामदिर
५१ श्री मागीलालजी चोरडिया, कुचेरा
५२ श्री पुखराजजी लोढा, महामदिर
५३ श्री इद्रचदजी मुकदचदजी, इदौर
५४ श्री भवरलालजी बाफणा, इन्दौर
५५ श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
५६ श्री स्व भीकमचदजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
५७ श्री सुगनचदजी सचेती, राजनादगाव
५८ श्री विजयलालजी प्रेमचदजी गोलेच्छा, राजनादगाव
५९ श्री घीसूलालजी लालचदजी पारख, दुर्ग
६० श्री आसकरणजी जसराज जी पारख, दुग
६१ श्री ओखचदजी हेमराज जी सोनी, दुग
६२ श्री भवरलालजी मूथा, जयपुर
६३ श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
६४ श्री भवरलालजी डूगरमलजी काकरिया, भिलाई न ३
६५ श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई न ३
६६ श्री रावतमलजी छाजेड, भिलाई न ३
६७ श्री हीरालालजी हस्तीमलजी, भिलाई न ३
६८ श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुलि
६९ श्री प्रेमराजजी मिट्ठालालजी कामदार, चावडिया
७० श्री भवरलालजी माणकचदजी सुराणा, मद्रास
७१ श्री भवरलालजी नवरतनमलजी साखला, मेट्टूपालियम
७२ श्री सूरजकरणजी सुराणा, लाम्बा
७३ श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
७४ श्री हरखचदजी जुगराजजी बाफना, बगलोर
७५ श्री लालचदजी मोतीलालजी गादिया, बगलोर
७६ श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७७ श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
७८ श्री चिम्मनसिहजी मोहनसिहजी लोढा, ब्यावर
७९ श्री अखेचदजी भण्डारी, कलकत्ता
८० श्री बालचदजी थानमलजी भुरट (कुचेरा), कलकत्ता
८१ श्री चन्दनमलजी प्रेमचदजी मोदी, भिलाई
८२ श्री तिलोकचदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
८३ श्री सोहनलालजी सोजतिया, थावला
८४ श्री जीवराजजी भवरलालजी, चोरडिया भरुदा
८५ श्री मागीलालजी मदनलालजी, चोरडिया भरुदा
८६ श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेडता सिटी
८७ श्री भीवराजजी बागमार, कुचेरा
८८ श्री गगारामजी इदरचदजी बोहरा, कुचेरा
८९ श्री फकीरचदजी कमलचदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
९० श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
९१ श्री प्रकाशचदजी जैन, नागौर (भरतपुर)
९२ श्री भवरलालजी रिखवचदजी नाहटा, नागौर
९३ श्री गूदडमलजी चम्पालालजी, गोठन
९४ श्री पारसमलजी महावीरचदजी बाफना, गोठन
९५ श्री धीसूलालजी, पारसमलजी, जवरीलालजी कोठारी, गोठन
९६ श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली

९७ श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
९८ श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जन, श्रावकसंघ, दल्ली-राजहरा
९९ श्री जवरीलालजी शांतिलालजी सुराणा, बुलारम
१०० श्री फतेराजजी नेमीचंदजी कर्णावट, कलकत्ता
१०१ श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गोहाटी
१०२ श्री जुगराजजी बरमेचा, मद्रास
१०३ श्री कुशालचंदजी रिखबचंदजी सुराणा, बुलारम
१०४ श्री माणकचंदजी रतनलालजी मुणोत, नागौर
१०५ श्री सम्पतराजजी चोरडिया, मद्रास
१०६ श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भण्डारी, बगलोर
१०७ श्री समग्रमत ज्ञान प्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
१०८ श्री तेजराज जी कोठारी, मांगलियावास
१०९ श्री अमरचंदजी चम्पालालजी छाजेड, पादु बडी
११० श्री माँगीलालजी शांतिलालजी रुणवाल, हरसोलाव
१११ श्री कमलाकंवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व पारसमलजी ललवाणी, गोठन
११२ श्री लक्ष्मीचंदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
११३ श्री भंवरलालजी मांगीलालजी बेताला, डेह
११४ श्री कंचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
११५ श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
११६ श्री चांदमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११७ श्री माँगीलालजी उत्तमचंदजी बाफणा, बैंगलोर
११८ श्री इन्दरचंदजी जुगराजजी बाफणा, बगलोर
११९ श्री चम्पालालजी माणकचंदजी सिंघी, कुचेरा
१२० श्री संचालालजी बाफना, औरंगाबाद
१२१ श्री भूरमलजी दुल्लीचंदजी बोकडिया, मेडता सिटी
१२२ श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड, सिकन्दराबाद
१२३ श्रीमती रामकुंवर धमपत्नी श्रीचांदमलजी लोढा, बम्बई
१२४ श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर), मद्रास
१२५ श्री जीतमलजी भडारी, कलकत्ता
१२६ श्री सम्पतराजजी सुराणा-मनमाड
१२७ श्री टी पारसमलजी चोरडिया, मद्रास

अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमो मे जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रो का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल मे स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियो मे भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायो का उल्लेख करते है। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थो का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या सयुक्त होने के कारण, इन का भी आगमो मे अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, त जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जित, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते, असज्झातिते, त जहा—अट्ठि, मस, सोणिते, असुतिसामते, सुसाणसामते, चदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गथाण वा, निग्गथीण वा चउहि महापाडिवएहि सज्झाय करित्तए, त जहा—आसाढपाडिवए, इदमहापाडिवए कत्तिअपाडिवए, सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चउहि सझाहि सज्झाय करेत्तए, त जहा—पडिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चाउक्काल सज्झाय करेत्तए त जहा—पुव्वण्हे, अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपरोक्त सूत्र पाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए है। जिनका सक्षेप मे निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१ उल्कापात-तारापतन—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र स्वाध्याय नही करना चाहिए।

२ दिग्दाह—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पडे कि दिशा मे आग सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नही करना चाहिए।

३ गर्जित—बादलो के गर्जन पर दो प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४ विद्युत—बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

किन्तु गर्जन और विद्युत का अस्वाध्याय चातुर्मास मे नही मानना चाहिए। क्योकि वह

गर्जन और विद्युत प्राय ऋतु स्वाभाव से ही होता है। अत आर्द्रा मे स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नही माना जाता।

५ निर्घात—बिना बादल के आकाश मे व्यन्तरादिकृत घोर गर्जन होने पर, या बादला सहित आकाश मे कडकने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६ यूपक—शुक्ल पक्ष मे प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, को सन्ध्या चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनो प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

७ यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा मे बिजली चमकने जैसा, थोडे थोडे समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अत आकाश मे जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

८ धूमिका कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघो का गर्भमास होता है। इसमे धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुन्ध पडती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुन्ध पडती रहे, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

९ मिहिकाश्वेत—शीतकाल म श्वेत वर्ण का सूक्ष्म जलरूप धुन्ध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे तब तक अस्वाध्याय काल है।

१० रज उद्घात—वायु के कारण आकाश मे चारो ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है। स्वाध्याय नही करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के हैं।

औदारिक सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३ हड्डी मांस और रुधिर—पचेन्द्रिय तिर्यंच की हड्डी मास और रुधिर यदि सामने दिखाई दे, तो जब तक वहाँ से यह वस्तुएँ उठाई न जाएँ तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओ के होने पर अस्वाध्याय मानते है।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि मांस और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। *विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन रात का होता है।* स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एव बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमश सात एव आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४ अशुचि—मल मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५ श्मशान—श्मशानभूमि के चारो ओर सौ सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६ चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ,मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

१७ सूर्यग्रहण—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८ पतन—किसी बडे मान्य राजा अथवा राष्ट्र पुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसस्कार न हो तब तक स्वाध्याय न करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो तब तक शनै शनै स्वाध्याय करना चाहिए।

१६ राजव्युद्ग्रह—समीपस्थ राजाओ मे परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नही करें।

२० औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पडा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पडा हो तो स्वाध्याय नही करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्ध कहे गये है।

२१-२८ चार महोत्सव और चार महाप्रतिदा—आषाढपूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव है। इन पूर्णिमाओ के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते है। इनमे स्वाध्याय करने का निषेध है।

२६-३२ प्रात, साय, मध्याह्न और अधरात्रि—प्रात सूर्य उगने मे एक घडी पहिले तथा एक घडी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घडी पहले तथा एक घडी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर मे एक घडी आगे और एक घडी पीछे एव अधरात्रि मे भी एक घडी आगे तथा एक घडी पीछे स्वाध्याय नही करना चाहिए।